हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की सं० २०२१ की प्रथमा परीक्षा में
निश्चित सफलता प्रदान कराने वाली पुस्तक

अशोक हिन्दी प्रथमा गाइड

सं० २०२१ संस्करण (सन् १९६४) के लिए

(हिन्दी साहित्य, इतिहास, भूगोल, गणित पर परीक्षोपयोगी सामग्री दी है)

रचयिता

श्री नरेन्द्र एम० ए०, साहित्यरत्न

श्री शिवप्रसाद शास्त्री, ए० ए०

श्री कृष्णानन्द एम० ए०, साहित्यरत्न

प्रकाशक

अशोक प्रकाशन

नई सड़क, दिल्ली–६

षष्ठ संस्करण सन् १९६४ मूल्य ७·००

प्रकाशकीय

आज हमें आपकी प्रिय 'अशोक हिन्दी प्रथमा गाइड' का नवीन पाठ्य-क्रम के अनुसार षष्ठ संस्करण प्रकाशित करते हुये अतुल हर्ष का अनुभव हो रहा है।

'अशोक हिन्दी प्रथमा गाइड' को छात्र-समुदाय ने अब तक जिस स्नेह से अपनाया है, निस्सन्देह ही हमारे लिए वह संजीवनी है जो हमें बल एवं शक्ति प्रदान कर उसकी सेवा में सतत संलग्न रहने की प्रेरणा देती है। उसी प्रेरणा से इस षष्ठ संस्करण का भी निर्माण हुआ है हम उन्हें विश्वास दिलाते हैं कि यदि हमें उनका यह सहयोग प्राप्त होता रहा तो हम इसे भविष्य में अधिक से अधिक उपयोगी और आकर्षक बनाने में अपनी ओर से कुछ भी नहीं उठा रखेंगे।

नये पाठ्य-क्रम की 'अशोक हिन्दी-प्रथमा गाइड' अब आपके सामने है। यह कैसी है इसे अपनी कसौटी पर कसिये और अपने सुझाव हमारे पास भेजिये ताकि अगले संस्करण में हम उनका समावेश कर आपको अधिक सन्तुष्ट कर सकें।

अन्त में हम अपने सम्मान्य लेखक सर्वश्री नरेन्द्र एम० ए०, शिवप्रसाद शास्त्री एवं श्री कृष्णानंद का आभार स्वीकार करते हुये उनका अभिनंदन करते हैं तथा परीक्षार्थियों के साफल्य-लाभ की कामना करते हैं।

—प्रकाशक

विषय-सूची

प्रथम-पत्र
तैयार करने की विधि

इस पत्र में निम्नलिखित पुस्तकें पाठ्यक्रम में नियत हैं। उनके अंकों का विभाजन इस प्रकार है।

(१) काव्य संग्रह (प्रथम भाग)	······	४० अंक
(२) काव्य संग्रह (द्वितीय भाग)	······	४० अंक
(३) काव्यांग कल्पद्रुम	······	२० अंक
	कुल योग	१०० अंक

पिंगल—पाठ्य ग्रन्थों में आये हुए छन्दों के नाम, लक्षण, यति ज्ञान तथा गणभेद का ज्ञान।

अलंकार—उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, अनुप्रास और उनके भेद, विभावना, श्लेष, अपह्नुति, यमक और अर्थान्तरन्यास।

काव्य-संग्रह (प्रथम भाग)

प्रथम प्रश्न में ३ या ४ पद्यांश दिये जाते हैं, जिनमें से किन्हीं दो की प्रसंग सहित इस प्रकार व्याख्या करनी होती है कि उनका काव्यात्मक सौन्दर्य स्पष्ट हो जाय। यह प्रश्न २८ अंक का होता है। परीक्षार्थियों को इनमें से उन पद्यांशों को चुन लेना चाहिए जो उन्हें अच्छी तरह आते हैं और प्रश्न में जो भी बात पूछी गई हो, केवल उन्हीं को लिखना चाहिए। प्रसंग में उस कवि तथा कविता का संकेत दे देना चाहिए, जिनमें से जो पद्यांश लिया गया हो। साथ ही उस अवतरण का पूर्वापर सम्बन्ध दिखाने के लिए थोड़ा सा प्रकरण निर्देश भी कर देना चाहिए। कविता का उद्देश्य भी संक्षिप्त करके दे देना अधिक अच्छा होगा। इससे अवतरण के भाव को प्रकट करने में आसानी हो जाती है। यदि परीक्षार्थी को किसी कठिन शब्द का अर्थ नहीं आता है, तो उसके लिए उसे घबराने की आवश्यकता नहीं है। उस पंक्ति का भावार्थ मात्र ही लिख देना पर्याप्त होगा और भावार्थ तो पद्यांश को पढ़ते ही आ जाता है। इसलिए विद्यार्थी को थोड़ा साहस तथा चतुराई से काम लेना चाहिए।

काव्य-संग्रह (द्वितीय भाग)

इस पुस्तक में से भी तीन या चार पद्यांश दिये होते हैं जिनमें से किन्हीं दो की प्रसंग सहित व्याख्या करनी होती है। यह प्रश्न भी २८ अंक का होता है। इस पुस्तक में आधुनिक कवियों (भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी से लेकर आज तक के कवियों) की कविताएँ संकलित हैं। इन कविताओं की भाषा सरल तथा भाव गम्भीर होते हैं। इसलिए परीक्षार्थियों को इस पुस्तक की कविताओं की व्याख्या करते समय बहुत सावधानी से काम लेना चाहिए। व्याख्या करने की विधि उपयुक्त ही है।

कवियों का परिचय तथा समालोचनात्मक प्रश्न

इस पत्र में १२-१२ अंकों के दो प्रश्न कवियों तथा उनकी कविता से सम्बन्धित होते हैं। इस प्रश्न के लिए निम्नलिखित कवियों का जीवन तथा साहित्यिक परिचय प्राप्त कर लेना चाहिए—

कबीर, जायसी, सूरदास, तुलसीदास, बिहारी, मीरा, रहीम, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पन्त, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, रामधारीसिंह दिनकर, महादेवी वर्मा, सुभद्राकुमारी चौहान।

जीवन-परिचय—कवि के जीवन परिचय में उसका जन्म-स्थान तथा तिथि, पारिवारिक परिचय, शिक्षा, जीवन की कोई विशेष घटना और मृत्यु के विषय में लिखना चाहिए।

साहित्यिक परिचय—वास्तव में किसी भी कवि का साहित्यिक परिचय ही उसका सर्वस्व होता है। प्रश्न में कवि के साहित्यिक परिचय के ही अधिक अंक होते हैं। साहित्यिक परिचय में कवि विशेष की कविता के गुण-दोष, काव्य-सौष्ठव का पूर्ण रूप से वर्णन करना चाहिए।

कवियों के विषय में जो प्रश्न प्रायः पूछे जाते हैं वे नीचे की पंक्तियों में उदाहरणार्थ दिये गए हैं। विद्यार्थियों को इन प्रश्नों तथा इस प्रकार के अन्य प्रश्नों को अच्छी प्रकार तैयार कर लेना चाहिए :—

१. द्विवेदी युग के प्रमुख कवियों के नाम और उनमें से जिस कवि की कविता आपको विशेष प्रिय है, उसका जीवन चरित्र लिखिए।

(प्रथमा, सं० २०१०)

२. प्रगतिवादी धारा के प्रमुख कवियों का उल्लेख करते हुए किसी एक कवि के काव्य की समीक्षा अपने शब्दों में कीजिए। (प्रथमा, सं० २०१३)

३. 'प्रगतिवादी काव्य में सामाजिक विषमताओं एवं असंगतियों के कटु चित्र मिलते है।' इस कथन की समीक्षा समुचित अवतरणों के साथ कीजिए। (प्रथमा, सं० २०१३)

४. "भारतेन्दु का नाम आधुनिक काल के आदि साहित्यिक रूप में लिया जाता है। कविता के क्षेत्र में—भाषा और भाव—दोनों दृष्टियों से उन्हें प्रधानत: मध्यकाल में रखना पड़ता है।" इस कथन की समीक्षा कीजिए। (प्रथमा, सं० २०१४)

५. सूफी शाखा के प्रमुख कवियों का उल्लेख करते हुए इस युग के प्रेम काव्य की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए। (प्रथमा, सं० २०१४)

६. अपनी पाठ्य पुस्तक में आये हुए आधुनिक कवियों में से जो कवि आपको सर्वप्रिय हो उसके काव्य की समीक्षा (क) भाव (ख) भाषा तथा शैली की दृष्टि से कीजिए। (प्रथमा सं० २०१४)

७. रीतिकालीन धारा के प्रमुख कवियों में से किसी एक के काव्य की समीक्षा इस प्रकार कीजिए कि तत्कालीन काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ स्पष्ट हो जाएँ। (प्रथमा सं० २०१५)

८. निम्नलिखित में से किसी एक कथन की समीक्षा कीजिए—

(क) "महादेवी वर्मा की कविता में दुःख और निराशा के चित्रण की प्रधानता है। उनका प्रियतम अलख और अव्यक्त रहकर प्रतिक्षण उनकी आत्मा को दग्ध करता रहता है।"

(ख) "द्विवेदी-युग में कविता की जीवन भूमि तो बन गई थी पर आत्मा का संगीत और हृदय का सरस सारमय गुंजन अभी फूटने को था।" (प्रथमा परीक्षा सं० २०१५)

पिंगल—पिंगल का एक प्रश्न होता है। यह १० अंकों का होता है। प्रश्न इस प्रकार होता है—

१. गीतिका और हरि गीतिका छन्दों का भेद स्पष्ट कीजिए।

अथवा

मात्रिक एवं वार्णिक छन्दों का भेद स्पष्ट करते हुए दोनों ही प्रकार के छन्दों का एक-एक उदाहरण दीजिए। (प्रथमा परीक्षा सं० २०१५)

कभी-कभी किसी दिये हुए पद्य भाग में से भी छन्द छँटवा लेते हैं। जैसे—

प्रश्न (१) के अवतरणों में से किसी एक में प्रयुक्त छन्द का नाम बतलाइए तथा लक्षण बतलाते हुए उसकी व्याख्या कीजिए।

(प्रथमा परीक्षा सं० २०१४)

इस प्रकार के प्रश्न के उत्तर के लिए परीक्षार्थी को उन पद्यों में से वह पद चुन लेना चाहिए जिसमें वह छन्द को छाँट सके और फिर पहले उस छन्द का लक्षण लिखना चाहिए और फिर यह बताना चाहिए कि वह लक्षण उस दिये हुए पद्यांश पर किस प्रकार घटता है।

अलंकार—एक दस अंकों के प्रश्न में दिये हुए अलंकारों के लक्षण तथा उदाहरण पूछे जाते हैं। इस प्रश्न को हल करने की शैली निम्नलिखित है—

उत्प्रेक्षा—जहाँ उपमेय-उपमान में भेद जानते हुए भी उपमेय में उपमान की सम्भावना की जाय। जैसे—

"मुख मानो चन्द्रमा है" इस उक्ति में मुख और चन्द्रमा दोनों का भेद स्पष्ट करते हुए भी मुख उपमेय में चन्द्रमा उपमान की सम्भावना की गई है।

काव्य-संग्रह
(प्रथम भाग)
आलोचना भाग

प्रश्न १—आदिकालीन साहित्य का संक्षिप्त परिचय देकर निर्गुण पन्थ को जन्म देने वाली परिस्थितियों पर प्रकाश डालिये।

उत्तर—हिन्दी-साहित्य का इतिहास जहां से आरम्भ होता है, उसे आदि-काल कहते हैं। कुछ लोग इसका आरम्भ संवत् ७०० से मानते हैं, अन्य आचार्य संवत १०५० से इसका जन्म स्वीकार करते हैं। इसका साहित्य दो भागों में विभक्त है। अपभ्रंश भाषा साहित्य, वीरगाथा साहित्य।

अपभ्रंश साहित्य—इसमें विशेषकर सिद्धों, योगियों और जैन कवियों की कृतिया हैं, विद्यापति की 'कीर्तिलता', 'कीर्तिपताका', शारंगधर का 'हम्मीर वीरता वर्णन' या 'हमीर रासो' अपभ्रंश या अवहट्ट भाषा में लिखे गये है। अपभ्रंश ही बिगड़कर अपभ्रष्ट या अवहट्ट कहलाई है। जैन कवियों की कृतियों में सोमप्रभ सूरि का 'कुमारपाल प्रतिबोध', जैन आचार्य मेरुतुंग का 'प्रबन्ध चिन्तामणि', विद्याधर का 'पिंगल सूत्र' आदि हैं।

आदिकाल का अपभ्रंश साहित्य समय-क्रम के अनुसार संवत् १०५० से १२०० लिखा गया। विषय के अनुसार इन डेढ-सौ वर्षों के साहित्य में नीति, धर्म, शृंगार, वीरता आदि को लेकर लिखा गया। छन्दों में दूहा (दोहा) विशेष प्रयुक्त हुआ।

सवत् १२०० से १३७५ तक जो साहित्य लिखा गया, वह वीरगाथा साहित्य कहा जाता है। इसके लेखक चारण थे, जो कि विभिन्न राजपूत राजाओं के आश्रय में रहते थे। अपने आश्रयदाताओं के शौर्य की प्रशंसा करना एवं उनको प्रोत्साहित करना ही उनकी मुख्य प्रवृत्ति थी। इस साहित्य में

शौर्य-वर्णन तो रहता ही था, साथ मे शृंगार का पुट भी रहता था । छप्पय छन्द की प्रमुखता थी । कल्पना की मात्रा सत्य से बहुत अधिक थी । इसके भी वीर गीत और प्रबन्धकाव्य दो रूप हैं । प्रबन्धकाव्यों में पृथ्वीराज रासो और खुमान रासो उल्लेखनीय हैं । वीरगीतों के रूप में बीसलदेव रासो पाया जाता है । इन रचनाओं का नाम रासो रखने पर भी मतभेद है । रासो, रहस्य, राजसूय, रसायन और राजसुत—इन पांच शब्दों से इसकी उत्पत्ति कही जाती है । भट्ट केदार का जयचन्द प्रकाश और मधुकर की जयमयंक जस-चन्द्रिका कन्नौज के राजा जयचन्द की प्रशंसा में लिखी गई । जगनिक का आल्हाखण्ड भी इस काल की प्रसिद्ध कृति है ।

इस काल की कुछ रचनाएँ अप्रामाणिक हैं और कुछ प्रमाणिक हैं ।

निर्गुण पन्थ का जन्म—वीरगाथा काल की समाप्ति तक भारत पर यवनों का राज्य स्थापित हो चुका था । सम्राट् पृथ्वीराज चौहान के अन्त के साथ-साथ भारत के हिन्दू साम्राज्य का भी सदा के लिये अन्त हो गया । अब कोई केन्द्रीय शक्ति आक्रामक मुसलमानों को रोकने वाली न रही थी । इधर राजाओं ने पराजय स्वीकार करके यवनों का आधिपत्य स्थापित होने दिया तो विजय-मद से अन्धे यवनों ने हिन्दू धर्म पर कुठाराघात करना आरम्भ कर दिया । मन्दिर तोड़ना, गो-वध, बहू-बेटियों पर अत्याचार—ये उनके दिन-प्रतिदिन बढ़ते दुष्कर्म थे । कोई रक्षक न होने से जनता निराश हो प्रभु की शरण में गई ।

उस समय धार्मिक अवस्था भी शोचनीय थी । धार्मिक सिद्धान्त पण्डितों तक सीमित थे । जाति-भेद, वाह्याचार, पाखण्ड ही धर्म का स्वरूप रह गया था, इनके कारण हिन्दुओं और मुसलमानों में द्वेष बढ़ रहा था । नाथपन्थियों ने यौगिक चमत्कार दिखाकर लोगों को अपनी ओर आकृष्ट कर लिया था । सूफी हिन्दुओं में अपने इस्लामी सिद्धान्तों का प्रचार कर रहे थे । निम्न श्रेणी के लोग हिन्दू धर्म की जाति-भावना से असन्तुष्ट थे । इस कारण महाराष्ट्र में नामदेव नामक महात्मा हिन्दुओं एवं मुसलमानों द्वारा समान रूप से ग्राह्य धर्म का प्रचार कर रहे थे ।

उस समय तक शंकराचार्य के अद्वैतवाद का पर्याप्त प्रचार हो चुका था ।

रामानुज का विशिष्टाद्वैतवाद, निम्बार्क का द्वैताद्वैतवाद आदि सिद्धान्त भी प्रचलित थे । परन्तु दक्षिण में वैष्णव भक्ति का एक प्रबल आन्दोलन चला था, जिसका उत्तर भारत में प्रचार काशी के स्वामी रामानन्द जी ने किया और राम-भक्ति का द्वार सवर्ण एवं असवर्ण सभी हिन्दुओं तथा इतर जातियों के लिए खोल दिया ।

महात्मा कबीर ने देश में भ्रमण कर इस परिस्थिति को समझा, उन्हें ऐसे धर्म के प्रचार की आवश्यकता प्रतीत हुई, जिसे हिन्दू एव मुसलमान दोनों समान रूप से ग्रहण कर सकें । भले ही नामदेव इस दिशा मे काम कर रहे थे, पर उनका कोई सुव्यवस्थित धर्म न था । इस त्रुटि को दूर करके कबीर ने सुगठित निर्गुण पन्थ का प्रवर्तन किया जो कि उनकी आशा के अनुरूप बहुत लोकप्रिय हुआ ।

प्रश्न २—महात्मा कबीर का परिचय देते हुए सक्षेप में उनकी भक्ति-पद्धति पर प्रकाश डालिये ।

उत्तर—महात्मा कबीर का जन्म सं० १४५६ वि० में एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से हुआ था । कहा जाता है, समाज के भय से उसने इस नवजात शिशु को लहरतारा नामक तालाब (काशी) के किनारे फेंक दिया था । नीरू नामक जुलाहा दम्पति उसी मार्ग से जा रहे थे । बालक को देख उन्होंने उसे उठा लिया । वे निस्सन्तान थे, उनकी बहुत दिनो से सन्तान की अभिलाषा थी । ऐसे अनाथ बालक को पाकर उनकी हार्दिक इच्छा साकार हो उठी । नीरू इस बालक को अपने घर ले आया जहाँ पर इसका लालन-पालन हुआ ।

बालक कबीर बचपन से ही साधु-सगति मे रहते थे । कभी-कभी व तिलक भी लगा लिया करते थे और प्राय: 'राम-राम' कहा करते थे । माता-पिता के मना करने पर भी कबीर भगवान् की भक्ति को छोड़ न सके । भगवान् की भक्ति से विमुख करने के लिए कबीर का विवाह भी जल्दी कर दिया परन्तु इसका भी बन्धन उनको सांसारिक माया-जाल में बाँध न सका ।

कहा जाता है कि कबीरदास के ऊपर बचपन से ही स्वामी रामानन्दजी का प्रभाव था । उन दिनों स्वामी रामानन्दजी के नाम की धूम मची हुई थी ।

कबीरदासजी ने स्वामी रामानन्दजी को अपना गुरु बनाया और उनसे ही दीक्षा ली। परन्तु कबीर के 'राम' रामानन्द के दशरथ-सुत राम न होकर निर्गुण राम थे।

कबीर पढ़े-लिखे न होकर भी बहुश्रुत थे। उनकी प्रतिभा अक्षुण्ण थी। संतों की संगति से उन्होंने अपूर्व ज्ञान-लाभ किया था। शेख तकी की सत्संगति में वह कुछ दिन तक रहे, ऐसा उनकी कतिपय उक्तियों से स्पष्ट होता है। कबीर ने अपने मत की पुष्टि के लिए अनेक साधु-सम्प्रदायों के सुन्दर तत्वों को ग्रहण किया। सिद्धों, हठयोगियों और नाथपंथियों से उन्होंने अन्तः साधना, चक्र, सहस्रदल कमल, शब्द-ब्रह्म, बीज-बिन्दु, नाद, नाड़ी आदि की साधना पर स्थित गुह्य-उपासना के सिद्धान्त लिये वैष्णवों से अहिंसावाद और प्रपत्तिवाद, सूफियों से प्रेम-तत्व तथा शंकराचार्य से अद्वैतवाद को लेकर समन्वय किया और उन्होंने अपना एक स्वतन्त्र पन्थ खड़ा किया।

कबीरदासजी ने गुरु-महिमा, सदाचार सेवन, सत्संग-नाम, संयम आदि पर बहुत बल दिया है।

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काके लागूँ पांय।
बलिहारी गुरु आपने गोविन्द दियो बताय॥

कंचन-कामिनी ये ईश्वर के मार्ग में बाधक हैं। माया, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सर को साथ लेकर लोगों को अपनी ओर खींचती रहती है, इसलिए माया का त्याग करना आवश्यक है।

वह निर्गुण और निराकार भगवान् के उपासक थे। उनके भगवान् को ढूँढने के लिए न तो काबा जाने की आवश्यकता हुई और न ही कैलाश, वह हृदय के अन्तर ही बैठा हुआ है इसीलिए वह कहते हैं:—

सुमिरन सुरत लगाइ कै, मुख ते कछू न बोल।
बाहर के पट देइ कै, अन्तर के पट खोल॥

भक्ति के लिए दिखावट की आवश्यकता नहीं। भगवान् के स्वरूप को हृदय में ही साक्षात्कार करना चाहिए। उसके लिए मन की एकाग्रता अपेक्षित है। हाथ में माला फेरने से कोई लाभ नहीं है:—

माला फेरत जुग गया, मिटा न मन का फेर।
कर का मन का छांडि कर, मन का मनका फेर॥

कबीरदासजी की भक्ति-पद्धति के भीतर हम शुद्ध और सात्विक ईश्वर-प्रेम तथा पवित्र सदाचारपूर्ण जीवन का उपदेश पाते हैं। ऊँच-नीच, ब्राह्मण-शूद्र का भेद-भाव मिटाकर मानवता के स्तर को ऊँचा किया गया है। सभी प्राणी चींटी से लेकर हाथी तक उसी एक परमात्मा के जीव हैं, एतदर्थ वे हमारी दया के पात्र हैं। कबीरजी निर्भीक और सच्चे अर्थ में महात्मा और उच्चकोटि के संत थे।

प्रश्न ३—सूफी शाखा के प्रमुख कमियों का उल्लेख करते हुए, इस युग के प्रेम-काव्य की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए। (प्रथमा, स० २०१४)

उत्तर—प्रेममार्गी सूफी शाखा के अंतर्गत अधिकतर मुसलमान हिन्दी साहित्यकार ही आते हैं। जिस प्रकार निर्गुण पंथ की ज्ञानाश्रयी शाखा में भारतीय पद्धति प्रधान रही है, और हृदय पक्ष की अपेक्षा मस्तिष्क पक्ष ही अधिकतर निर्गुण संतों का विपय रहा है, ठीक इसके विपरीत सूफियों की प्रेममार्गी शाखा में हृदय पक्ष का ही प्राधान्य मिलता है। अत: प्रेममार्गी कवियों की सबसे बड़ी विशेषता उनकी भावुकता है, जो कवि जितना भावुक होगा, वह उतना ही सफल कवि होगा, इस दृष्टि से हम सर्वप्रथम मलिक मुहम्मद जायसी को सूफी शाखा का प्रधान कवि मानते हैं।

मलिक मुहम्मद जायसी प्रेममार्गी कवि थे। यह शेख मुहीउद्दीन चिश्ती की परम्परा में आते हैं। जायसी नगर इनका निवासस्थान अनुमानित किया जाता है। इनके जन्म तथा निधन की कोई निश्चित तिथि अभी तक सिद्ध नहीं की जा सकी है। बचपन में चेचक से इनकी एक आँख और एक कान खराब हो गए थे। इस कारण यह देखने में कुरूप लगते थे। शेरशाह सूरी के संबंध में एक किंवदन्ती प्रसिद्ध है। कहा जाता है उसने एक बार जायसी को अपने दरबार में बुलाया। इनकी कुरूपता देखकर वह हँसने लगा। जायसी उसको हँसता हुआ देखकर यह समझ गए कि वह उनकी कुरूपता पर हँस रहा है, यह देखकर वह बोले "मों कहँ हँससि कि कोहरिहि" अर्थात् तू मुझ पर हँस रहा है या मुझे बनाने वाले भगवान् पर हँस रहा है। यह सुनकर शेरशाह बहुत लज्जित हुआ और अपने इस अपराध के लिए क्षमा-याचना की।

अमेठी के राजा इनका बहुत सम्मान करते थे। कहा जाता है कि इनके

आशीर्वाद से राजा के पुत्र हुआ था। इनका अंतकाल भी अमेठी में ही हुआ, ऐसा सिद्ध है।

जायसी बड़े उदार और भावुक थे। मुसलमान होते हुए भी उन्होंने हिन्दू देवी-देवताओं, रीति-रिवाजों का पूरा पूरा सम्मान किया है। फारसी में अपनी रचनाएं न करके केवल जनसाधारण की बोली अवधी में कीं। पद्मावत इनका सर्वश्रेष्ठ और अत्यन्त उच्चकोटि का सरस प्रबन्धकाव्य है। इसके अतिरिक्त 'अखरावट' और 'आखरी कलाम' भी मुख्य रचनाएँ हैं। भाषा इनकी अवधी है जो मंजी हुई और मुहावरेदार है। काव्य के लिए यद्यपि इन्होंने दोहे, चौपाई ही लिखे हैं, तथापि शैली इनकी मसनवी है।

सूफीमत के सिद्धान्तों को लेकर ही इन्होंने अपने विषय का प्रतिपादन किया है। लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम का चित्रण करके उसे ही ईश्वर-प्राप्ति का मार्ग बतलाया है। हिन्दी के प्रेममार्गी कवियों में जायसी का स्थान बहुत ऊँचा है। तुलसी और सूरदास के समान ही ये अपने क्षेत्र में उच्चकोटि के संत और सहृदय कवि थे।

जायसी के अतिरिक्त और भी कई एक प्रमुख सूफी कवि हुए हैं। इनमें कुतुबन का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यह चिश्ती वंश के शेख बुरहान के शिष्य थे और जौनपुर के बादशाह हुसेनशाह के आश्रित थे। इनकी प्रसिद्ध रचना 'मृगावती' है जो अवधी भाषा में दोहे और चौपाइयों में लिखी हुई है। मंझन कवि की अमर कृति, मधुमालती' है। जहाँगीर के समकालीन, गाजीपुर निवासी उसमान की 'चित्रावली' भाव तथा कला की दृष्टि से बड़ी ही सरस एवं ललित कृति है। इनके अतिरिक्त शेख नबी का 'ज्ञान-दीप', कासिमशाह का 'हँस जवाहिर', नूर मुहम्मद की 'इन्द्रावती' आदि रचनाएँ सूफी काव्य की अमर निधि हैं। सूफी प्रेम-काव्य की विशेषताएँ निम्न-लिखित हैं :—

(१) लौकिक कहानियों के द्वारा अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना सूफी प्रेम-काव्य की प्रथम विशेषता है। प्रेमी अपनी प्रेयसी को प्राप्त करने के लिए नाना प्रकार के कष्टों को सहन करता है, प्रेम में विह्वल होता है और अंत में वह जैसे-तैसे उसे प्राप्त करता है।

(२) प्रियतम को अपनी प्रेयसी तक पहुंचने के लिए किसी पथप्रदर्शक गुरु की आवश्यकता होती है। विना पथप्रदर्शक के प्रेमी प्रियतमा तक नहीं पहुंच सकता है। राजा रत्नसेन का पथप्रदर्शक हीरामणि तोता है जो उसे अनेक कठिन मार्गों से निकालकर पद्मिनी तक पहुंचाता है।

(३) सूफी काव्य के भीतर प्रेम की पीर और विरह का बाहरी स्वरूप लौकिक होने पर भी वस्तुतः आध्यात्मिक है। इन काव्यों में हिन्दू घरों में जो प्रचलित कहानियां हैं उनको आवश्यक हेर-फेर के साथ प्रस्तुत किया गया है।

(४) प्रेममार्गी सूफी काव्य की भाषा अवधी है और छन्द के लिए दोहे और चौपाई का प्रयोग किया गया है। कथाएँ सरल और सरस ढंग से लिखी गई हैं।

(५) शैली मसनवी है, परन्तु उपमाएँ अधिकतर भारतीय हैं।

(६) प्राकृतिक व्यापारों और उससे अनुभूत मनोदशाओं की अभिव्यक्ति वाग्-विदग्ध शैली में की गई है।

(७) यद्यपि आध्यात्मिक प्रियतम अज्ञात है, पर वह सुन्दर है। उसकी महत्ता, भव्यता, सुन्दरता प्रकृति के व्यापारों में प्रतिविम्बित होती है। पेड़, पौदे, नदी, नद, पर्वत, चांद, तारे, सूर्य आदि में उसी का स्वरूप झलकता है।

(८) सूफी काव्य में रहस्यात्मक विचारधारा में विरह की उर्मिल तरंग दृष्टिगोचर होती है।

प्रश्न ४—तुलसीदास के रामचरितमानस के संदेश से आप क्या समझते हैं? वर्णन कीजिए।

अथवा

"तुलसी में कल्याण की भावना मिलती है।" उदाहरण देकर इस विषय का पूर्णतः स्पष्ट कीजिए। (प्रथमा, सं० २०१७)

उत्तर—मुसलमानों से आतंकित हिन्दू जनता को तुलसीदास जी का 'राम चरितमानस' साहस, आस्था, विश्वास, आशावाद और ईश्वर-भक्ति का संदेश देता है।

एकाकी राम वन में रहते हुए रावण की दुर्दम्य शक्ति को नष्ट करके धर्म की जय की घोषणा करते हैं। भयंकर परिस्थितियों में भी वह साहस के अंचल को हाथ से नहीं छोड़ते हैं। आशा की किरण निराशा के अंधकार को उनके हृदय में रहने नहीं देती।

हिन्दू पारिवारिक जीवन का सन्तुलित आदर्श मानस के भीतर सन्निहित है। पति का कर्तव्य पत्नी के लिए, पत्नी का पति के लिए, भाई का भाई के लिए, स्वामी और सेवक का सम्बन्ध, राजा के सम्बन्ध आदि का विस्तृत वर्णन हमें रामचरितमानस में मिलता है।

तत्कालीन परिस्थितियों और उसके समाधानों के लिए मानो यह 'एनसाईक्लोपीडिया' है। उत्तरकाण्ड के कलियुग वर्णन में सारी देश-कालीन अवस्थाओं का दिग्दर्शन किया गया है—"वादहि सूद्र द्विजन्ह सन, हम तुम सों कछु घाट ?" की उक्ति समाज की विशृंखलता की ओर संकेत करती है। समस्त प्रवृत्तियों का जितना विशद चित्रण रामायण में है, उतना किसी ग्रंथ में नहीं है।

समन्वय की भावना का संदेश रामचरितमानस का मूल मन्त्र है। उस समय शक्ति और वैष्णवों में सैद्धान्तिक मतभेद चल रहा था, इस कारण जनता किसी भी निर्णय पर भक्ति के सम्बन्ध में निश्चय कर नहीं पा रही थी। तुलसीदास जी ने शक्ति और वैष्णव दोनों का समन्वय करके शंकर तथा विष्णु के अवतार राम की भक्ति प्रत्येक हिन्दू के लिए अनिवार्य ठहराई।

रामचरितमानस नाथपंथियों वज्रयानियों के सहस्रदल, षट्चक्र, प्राणायाम, इडा, पिंगला और सुषुम्णा का अनुमोदन न करके "सूधे मन, सूधे वचन, सूधी सब करतूति" का उपदेश देता है। मानस की भक्ति में चमत्कार दिखलाने की प्रवृत्ति नहीं है। उद्दण्डता, हठधर्मी, मर्यादोल्लंघन, कर्मकांड तथा अन्य विहित कर्मों के प्रति उदासीनता का भाव कहीं भी निर्दिष्ट नहीं किया जा सकता है। जीवन संसार से विरक्त होकर रहने के लिए नहीं है, अपितु सतत संघर्षशील रहने के लिए है लोक का त्याग यहां नहीं है। लोक-मंगल और लोक-संग्रह की भावना मानस के भीतर काम करती हुई दिखाई पड़ती है। धार्मिक विवादों को भूलकर एक-दूसरे का आदर करते हुए आगे बढ़ने का मानस का प्रमुख संदेश है।

इस विवेचन के पश्चात् अन्त में यह कहना भी सत्य ही है कि तुलसी में कल्याण की भावना मिलती है।

प्रश्न ५—तुलसीदासजी का संक्षेप में जीवन-वृत्तान्त देते हुये उनकी काव्य शैली पर संक्षिप्त प्रकाश डालिए।

उत्तर—भक्तवर गोस्वामी तुलसीदास जी का जन्म बांदा जिले के राजापुर नामक गांव मे होना बताया जाता है। कुछ विद्वान् इनको कान्यकुब्ज और कुछ सरयूपारी ब्राह्मण मानते है। इनके पिता का नाम आत्माराम दुबे और माता का नाम हुलसी था।

मूल नक्षत्र में जन्म होने के कारण इनके पिता ने कीट के समान तुरन्त त्याग दिया। शैशव-काल बहुत ही करुण और दुःखद रहा। स्वामी नरहरिदास ने इनको अपने पास रखकर इनका लालन-पालन किया, और राम-कथा अनेक बार सुनाई। उस समय तक इनका नाम 'रामबोला' था, स्वामी जी ने उस नाम को बदलकर तुलसीदास रखा।

कुछ कालोपरान्त ये काशी गये जहाँ पर शेषसनातन नामक प्रसिद्ध विद्वान् के तत्त्वावधान में समस्त वेद-वेदांग का आद्योपान्त अध्ययन किया। वहां से लौटने के उपरान्त इनका विवाह रत्नावली नामक एक सुशीला युवति से हुआ। तुलसीदास की आसक्ति उस पर इतनी अधिक थी कि वह उसे क्षण-मात्र के लिए भी विलग करने के लिए प्रस्तुत नहीं होते थ।

अति तो प्रत्येक वस्तु की बुरी होती है। तुलसीदास जी की अत्यासक्ति रत्नावली के सत्य परन्तु कठोर वचनों से अनासक्ति में बदल गई। वे विरक्त हो गये। तीर्थाटन और सत्संग मे वह अपना कालयापन करने लगे।

एक दीर्घकालीन जीवन व्यतीत कर संवत् १६८० में गंगा के किनारे असीघाट पर इनका गोलोकवास हुआ।

संवत् सोलह सो असि, असि गंग के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी तुलसी तजौ शरीर॥

संवत् १६३१ में इन्होंने अयोध्या में रामचरितमानस की रचना आरम्भ की। यह हिन्दी साहित्य का सर्वश्रेष्ठ प्रबन्धकाव्य है। हिन्दू धर्म का यह दर्पण है। विश्व का कोई भी व्यक्ति रामचरितमानस को पढ़कर हिन्दू धर्म और इसकी संस्कृति का अनुमान कर सकता है। रामचन्द्र का चरित्र आदर्श मानव का चरित्र है जिसे तुलसीदासजी ने मानस में बड़ी सफलता के साथ चित्रित किया है।

रामचरितमानस के अतिरिक्त गोस्वामी जी ने विनयपत्रिका, दोहावली, कवितावली, गीतावली, बरवै रामायण, जानकीमंगल और पार्वतीमंगल आदि कितनी ही अनुपम रचनाएं कीं जिनमें काव्य की सरसता के अतिरिक्त लोक-धर्म और लोक-संग्रह की भावना निहित है।

तुलसीदास की भाषा अवधी है परन्तु उस पर संस्कृत की चाशनी चढ़ी हुई है। कवितावली और गीतावली इनकी ब्रज भाषा में लिखी हुई रचनाएं हैं। तुलसीदासजी ने सभी प्रकार की प्रचलित काव्य-पद्धतियों में कविता करके अपनी कवित्व-शक्ति की अमन्द छाप हिन्दी के पृष्ठ पर अंकित कर दी। भाव, भाषा, सरलता, सरसता और साहित्यिकता सभी दृष्टियों से गोस्वामीजी की समस्त रचनाएं अद्वितीय हैं। तुलसीदास केवल उच्चकोटि के महात्मा, युगद्रष्टा और प्रकाण्ड पंडित ही नहीं, वरन् वह एक रससिद्ध कवीश्वर थे।

प्रश्न ६—कृष्ण-भक्ति साहित्य का उल्लेख करते हुए उसमें सूरदासजी का स्थान निर्दिष्ट कीजिये।

उत्तर—कृष्ण-भक्ति साहित्य का आरम्भ स्वामी वल्लभाचार्य द्वारा चलाये गये 'पुष्टिमार्ग' से होता है। पुष्टिमार्ग में प्रेम-लक्षणा भक्ति को विशिष्टता दी गई है। इसमें लोक-मर्यादा और वेद-मर्यादा दोनों का त्याग विधेय है। भगवान् की कृपा पर भरोसा रखने वाले पुष्टिजीव, वेदमार्गानुयायी मर्यादा-जीव और सांसारिकता में फंसे हुए प्रवाहजीव कहलाते हैं। पुष्टिमार्ग ने भक्ति में भोग, राग-विलास, राग-रागनी आदि को प्रधानता दी।

भक्ति की मधुर भावनाओं से प्रेरित होकर कृष्ण-भक्त कवियों ने राधा-कृष्ण से सम्बन्धित सरस गीत मधुर पदों में गाये। स्वामी वल्लभाचार्य की प्रेमलक्षणा भक्ति का प्रभाव लगभग सभी अष्टछाप के कवियों पर पड़ा है। यह ध्यान रहे कि इन कवियों ने कृष्ण के लोक-रक्षक एवं धर्म-संस्थापक रूप को छोड़कर केवल उनके मधुर लीलामय रूप को ही लिया है।

कृष्ण-साहित्य के विषय प्रायः नन्द और यशोदा की वात्सल्य भावना; भगवान् कृष्ण की बाल-लीला, तोतली बातें, दधि-माखन चोरी, ब्रज-लीला, गो-चारण, मुरलीवादन, गोपीलीला, रासलीला, वंशीवट विहार, कुंज विहार,

चीरहरण आदि हैं। सूफियों के सम्पर्क से, महाप्रभु चैतन्य और मीरा आदि के साहित्य में रहस्यात्मक भावों का समावेश हुआ।

राम-काव्य की भाषा प्रायः अवधी रही है और कृष्ण-काव्य की भाषा ब्रज भाषा रही है। प्रबन्धात्मकता का अभाव है। गेय और मुक्तक शैली में ही पद कहे गये हैं। शृंगार रस और प्रसाद गुण इस काव्य की विशेषता है।

इस काव्य का प्रभाव सूरदास तथा अष्टछाप के कवियों से लेकर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तक अक्षुण्ण बना रहा। मीरा ने रहस्यात्मक पद कहे, रसखान ने कृष्णानुराग में ऊंची-ऊंची अट्टालिकाओं को तुच्छ समझा। रहीम को माखन-चाखनहार की देख-रेख में किसी का डर न रहा। विषय-वैविध्य की दृष्टि से कृष्ण-काव्य राम-काव्य की अपेक्षा विस्तृत है।

कृष्ण-साहित्य में सूरदासजी का प्रमुख स्थान है। कहा जाता है कि वल्लभाचार्य से दीक्षित होने से पूर्व यह आगरा के पास गऊ घाट पर रहा करते थे। वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित होने के उपरान्त यह वृन्दावन चले आये जहां पर स्वामी वल्लभाचार्य के आदेश से श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध के आधार पर इन्होंने कृष्ण-लीला के स्वतन्त्र पद बनाने आरम्भ किए। सूरसागर इनका सबसे वृहद् ग्रन्थ है। व्रजभाषा में सबसे पहली कृति होते हुए भी साहित्य-सौन्दर्य से ओत-प्रोत है। भाषा परिमार्जित एवं सुडौल है। रचना काव्यांगों से प्रगल्भ है।

विरह-वर्णन, वाग्विदग्धता और वक्रोक्ति की दृष्टि से भ्रमरगीत विश्व-साहित्य में अनुपम स्थान रखता है। व्यंग्य, कटाक्ष और वक्रोक्ति का यह अपूर्व कोष है। सगुण और निर्गुण का खंडन-मंडन इसमें बड़ी ही भावुकता-पूर्ण शैली में किया गया है। सूरसारावली और साहित्य-लहरी भी सूरदासजी की प्रौढ़ रचनाएं हैं।

सूरदासजी की अन्तर्दृष्टि कल्पना-जगत् के कोने-कोने तक अबाध रूप से पहुंच जाती है। एक ही विषय को विभिन्न ढंगों से कहना और नई-नई उद्भावनाएं करने में सूरदासजी बेजोड़ हैं। इसीलिए साहित्य-मनीषियों ने सूरदास को हिन्दी-आकाश का सूर्य कहा है :—

"सूर सूर तुलसी ससी, उडुगन केसवदास।
अब के कवि खद्योत सम, जहँ-तहँ करत प्रकास ॥"'

प्रश्न ९—रीतिकालीन धारा के प्रमुख कवियों में से किसी एक के काव्य की समीक्षा इस प्रकार कीजिये कि तत्कालीन काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ स्पष्ट हो जाये। (प्रथमा, संवत् २०१५)

उत्तर—हिन्दी-साहित्य में रीतिकालीन धारा का विशेष स्थान है। इस काल मे कवियों की एक बाढ़-सी आई। विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से यह काल संकुचित सीमा में बंधा रहा, परन्तु कला की दृष्टि से यह काल सर्वोत्तम है। प्रत्येक कवि आचार्यत्व का भार भी अपने सर ले रहा था। छन्दों का लक्षण निर्धारित करके फिर ये कवि कविता किया करते थे। इनकी कविताओं में साहित्यिक सरसता की अद्भुत छटा दिखाई पड़ती है। इस काल में ऐसे ग्रन्थों की संख्या अधिक है जो अलंकार शास्त्र, काव्य शास्त्र अथवा उसके अंगभूत नायिका-भेद, ऋतु वर्णन, अष्टयाम, नख-सिख वर्णन, अलंकार निरूपण आदि विषयों के ग्रन्थ है। इस प्रकार हम देखते है कि रीतिकालीन काव्य या तो नायक-नायिकाओं का साहित्य है या राज-दरबारों की चाटुकारिता का—ये सभी प्रवृत्तियाँ हमे रीतिकालीन कवि देव की रचनाओं में लक्षित होती है।

महाकवि देव आचार्य और कवि के रूप मे हमारे सामने आते हैं। यह रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि है। इन्होंने लगभग ७० पुस्तके लिखी है जिनमें भाव-विलास, अष्टछाप, भवानीविलास, सुजानविनोद, प्रेमतरंग, रागरत्नाकर, कुशल विलास, प्रेमदीपिका और नख-शिख, प्रेम दर्शन आदि प्रसिद्ध कृतिया है।

आचार्यत्व की दृष्टि से भी देव का स्थान ऊचा है। उन्होंने अभिधा, लक्षणा और व्यंजना शब्द-शक्तियों का निरूपण करते हुए लिखा है :—

अभिधा उत्तम काव्य है, मध्य लक्षणा लीन।
अधम व्यंजना रस विरस उलटी कहत नवीन ॥

कवित्व शक्ति और मौलिकता देवजी में खूब थी, पर उनकी रुचि अत्यधिक शृंगारप्रिय होने के कारण वह शक्ति यथावत् स्फुरित न हो सकी।

कभी-कभी वे उच्च कोटि की कविता लिखने के लिए योजना बनाते थे परन्तु अनुप्रास के आडम्बर में भटक कर रह जाते थे। भाषा में कहीं-कहीं स्निग्ध प्रवाह पाया जाता है। शब्द की तड़क-भड़क की अपेक्षा अर्थ-गौरव की न्यूनता खटकती है :—

कोऊ कहौ कुलटा कुलीन, अकुलीन कहौ,
कोऊ कहौ रंकिनी, कलंकिनी कुनारी हौं।
कैसे नरलोक, परलोक, बरलोकनि में,
लीन्हीं मैं अलीक लोक लोकनि ते न्यारी हौं।
तन जाउ, मन जाउ देव गुरुजन जाउ,
प्रान किन जाउ, टेक टरति न टारी हौं।
वृन्दावन बारी बनवारी की मुकुट बारी,
पीत पटवारी, वाही मूरति पै वारी हौं।

अक्षर-मैत्री के ध्यान से इन्हें कहीं-कहीं अशक्त शब्द रखने पड़ते थे जो कभी-कभी अर्थ का अनर्थ कर देते थे। तुकान्त और अनुप्रास के लिए वाक्य के वाक्य को तोड़ना-मोड़ना इनके लिए साधारण-सी बात थी।

अर्थ-सौष्ठव की दृष्टि से इनकी रचनाएं अनुपम हैं। रीतिकाल के कवियों में ये बड़े ही प्रगल्भ और प्रतिभासम्पन्न कवि थे। इस काल के बड़े कवियों में इनका विशेष गौरवपूर्ण स्थान है। किसी किसी स्थान पर इनकी कल्पना बहुत सूक्ष्म है।

प्रश्न ८—"भारतेन्दु का नाम आधुनिक काल के आदि साहित्यिक के रूप में लिया जाता है तथापि कविता के क्षेत्र में भाषा और भाव दोनों दृष्टियों से उन्हें प्रधानतः मध्यकाल में रखना पड़ता है।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।
(प्र०, स० २०१४)

उत्तर—भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का जन्म सं० १९०७ को भाद्रपद पचमी के दिन एक सम्पन्न वैश्य कुल में काशी में हुआ था। यह वह समय था जब कि स्वतन्त्रता संग्राम की अग्नि अंग्रेजी शासन के विरुद्ध बुझी नहीं थी। उत्साह, ओज, राष्ट्रीयता की भावना प्रखर रूप धारण कर चुकी थी, यदि इस भावना का सन् १९५७ के रूप में विस्फोट न हुआ होता, तो आगे चलकर

यह भावना अंग्रेजी शासन को निर्मूल करने में शीघ्र ही सफल हुई होती। भारतेन्दु जी राष्ट्रीय चेतना के हिन्दी साहित्य में अग्रदूत थे। उनके ऊपर सभी तत्कालीन प्रवृत्तियों का प्रभाव पड़ा जिसकी अभिव्यक्ति उनके साहित्य में स्पष्ट रूप से हुई है।

अंग्रेजी राज्य की स्थापना से उसका प्रभाव भारतवर्ष की राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों पर पड़ा। रेल, तार, डाक की व्यवस्था हो जाने से सामाजिक जीवन में नूतनता का सूत्रपात हुआ। छापेखाने के प्रयोग में आ जाने से साहित्यिक जगत् में भी हलचल मची। अंग्रेजी शासन के सुव्यवस्थित एवं दृढ़ प्रवन्ध से भारतीय राजनीतिक जीवन में परिवर्तन हुआ। राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती और अंग्रेजी सरकार द्वारा बनाई दण्ड-धाराओं के परिणामस्वरूप सांस्कृतिक क्षेत्र में पर्याप्त सुधार की लहर दौड़ पड़ी थी। इन सभी बातों का प्रभाव भारतेन्दुजी पर पड़ना स्वाभाविक था।

सं० १९२५ में वे अपने परिवार के साथ यात्रा के प्रसंग में जगन्नाथजी गए। उसी यात्रा में उनका परिचय वंगला-साहित्य की नवीन प्रगतियों से हुआ। सं० १९२५ में उन्होंने वंगला के 'विद्यासुन्दर' नाटक का अनुवाद करके उसे प्रकाशित किया। इसी समय से उन्होंने हिन्दी गद्य का परिमार्जन करना और उसको एक सुडौल रूप में ढालने का कार्य आरम्भ किया। इन्होंने 'कवि-वचन सुधा', 'हरिश्चन्द्र मैगज़ीन', 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका', 'बालबोधिनी' आदि अनेक पत्र-पत्रिकाओं को जन्म देकर हिन्दी की आधुनिक गद्य भाषा को शिष्ट व्यावहारिक रूप दिया। इस प्रकार से भारतेन्दु आधुनिक हिन्दी गद्य के प्रवर्तक कहे जाते हैं।

इनका सारा जीवन ही समाज-सुधार, देश-सुधार और भाषा-सुधार में व्यतीत हुआ। कितने ही मौलिक एवं अनूदित नाटक लिखे और दूसरे लेखकों को भी लिखने के लिए प्रोत्साहित किया। गद्य क्षेत्र में हिन्दी के नवीन रूप के जन्मदाता भारतेन्दुजी ही हैं।

कविता के क्षेत्र में ये रीतिकालीन कवियों की परम्परा में आते हैं। इनकी लेखनी से शृंगार रस के ऐसे सम्पूर्ण और मार्मिक कवित्त-सवैये निकले

कि उनके जीवन-काल में ही चारों ओर लोगों के मुँह से सुनाई पड़ने लगे और दूसरी ओर स्वदेश-प्रेम में डूबी हुई उनकी कविताएं चारों ओर देश में मंगल-मंत्र फूंकने लगीं।

प्राचीनता और नवीनता का समन्वय हमें भारतेन्दु जी में मिलता है। एक ओर तो वे अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा से रीतिकालीन परिपाटी के अनुसार ब्रजभाषा में कविता लिखते, राधा-कृष्ण की भक्ति को अपनी कविता का विषय बनाते थे तो दूसरी ओर स्त्री-शिक्षा, समाज-सुधार आदि पर व्याख्यान देते पाए जाते थे। प्राचीनता और नवीनता का यही सुन्दर सामंजस्य भारतेन्दु की कला का विशेष माधुर्य है। वास्तव में प्राचीन-नवीन के उस सन्धिकाल में जैसी शीतल कला का संचार आवश्यक था वैसी ही कला के साथ भारतेन्दुजी हिन्दी आकाश में उदय हुए।

भारतेन्दु जी के कवित्त-सवैयों में वही सरसता, प्रगल्भता एवं वाग्विदग्धता मिलती है जो हमें पद्माकर और घनानन्द के सवैये और कवित्तों में मिलती है। उदाहरण के रूप में उनका एक सवैया यहां रखा जाता है:—

> व्यापक ब्रह्म सबै थल पूरन है हमहूँ पहचानती हैं।
> पै बिना नन्दलाल विहाल सदा 'हरिश्चन्द्र' न ज्ञानहिं ठानती हैं॥
> तुम ऊधौं यहै कहियो उनसो हम और कछू नहिं जानती हैं।
> पिय प्यारे तिहारे निहारे बिना अँखियाँ दुखियां नहिं मानती हैं॥

काव्य के क्षेत्र में भारतेन्दुजी एक सफल और सहृदय कवि हैं। शब्द और भाव उनके अनुचर हैं, भक्ति और शृंगार की उनकी रचनाएं अत्यन्त प्रौढ़ हैं। भारतेन्दुजी उस दीपक की भांति रीतिकालीन युग के भवन बहिर्द्वार पर खड़े होकर अपनी दीप्ति से आधुनिक युग के विशाल क्षेत्र की ओर इंगित कर रहे हैं। भाव और भाषा की दृष्टि से इनकी आत्मा रीतिकालीन है।

प्रश्न ९—मीराबाई का परिचय देते हुए उनके भक्तिमार्ग का उल्लेख कीजिए।

उत्तर—मीराबाई का जन्म सं० १५७३ में मेड़तिया के राठौर रत्नसिंह के यहां चौकड़ी नामक गांव में हुआ था। बचपन से ही ये कृष्ण भगवान् की उपासिका थीं और प्रेम के गीत बनाकर गाया करती थीं। कहा जाता है, कि

जिस समय इनका विवाह उदयपुर के महाराणा भोजराजजी के साथ सम्पन्न हुआ तो वे अपने साथ ही कृष्ण भगवान् की मूर्ति भी ससुराल में ले गईं और वहां भी ये उनकी भक्ति में मग्न रहीं। परमात्मा को इनको सांसारिक बन्धनों के अधिक दिनों तक बांधे रखना रुचिकर न था, इसलिए विवाह होने के कुछ ही दिन बाद इनके पार्थिव पति का परलोकवास हो गया, परिणाम-स्वरूप मीरा के लौकिक प्रेम की धारा अलौकिकता के महार्णव की ओर अग्रसर हुई।

ये प्रायः मन्दिरों में जातीं और कृष्ण-कीर्तन में विह्वल होकर नाचने लगतीं। साधु-संतों की संगत में रहतीं और उनकी सेवा-सत्कार करतीं। इन का यह व्यवहार इनके परिवार को कुल-मर्यादा के प्रतिकूल अनुभव होने लगा, अतएव वे लोग इनको मन्दिरों में जाने से रोकते और इनको नाना प्रकार की यातनायें देते। केवल इतना ही नहीं, इनके राजघराने के लोगों ने इनका प्राणान्त करने के उद्देश्य से विषपान भी कराया। मीरा ने इसको हँसते-हँसते पी लिया और इनका बाल-बांका भी न हुआ। मीराबाई कृष्ण भगवान् को ही अपना पति समझती थीं। अतः उनकी सेवा में अपना तन तथा मन सब कुछ अर्पण कर दिया था—

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट मेरे पति सोई॥

इन्होंने कृष्ण भगवान् के बालस्वरूप का भी कितना सुन्दर चित्रण किया है। कोई भी ऐसा कृष्ण-भक्त न होगा जिसने मीरा का यह सुन्दर पद न सुना हो और उसका रसास्वादन न किया हो। कितना प्रचलित और लोक-प्रिय है यह पद—

बसो मेरे नयनन में नन्दलाल।
मोहिनी मूरति, साँवरी सूरति, नैना बने बिसाल॥
मोर मुकुट, मकराकृत कुण्डल, अरुण तिलक दिये भाल।
अधर सुधारस मुरली राजति, उर बैजन्ती माल॥
छुद्र घंटिका कटि तट सोभित नूपुर शबद रसाल।
मीरा प्रभु सन्तन सुखदाई, भगत-बछल गोपाल॥

मीराबाई का भक्तिमार्ग मधुर का भाव है। वह कृष्ण को अपना प्रियतम इष्टदेव मानती थीं। इनकी उपासना-पद्धति पर नाथपंथियों की गुह्य भावना तथा सूफियों का रहस्यात्मक प्रभाव लक्षित होता है।

भाषा इनकी राजस्थानी मिश्रित व्रजभाषा है जिसमें माधुर्य और प्रसाद गुण का प्राचुर्य है। भावात्मकता, स्निग्धता और सरसता मीरा के पदों की विशिष्टता है। व्यजना और लक्षणा शक्तियों की अपेक्षा अभिधा शक्ति का ही प्रयोग हुआ है, परन्तु उसमें रोचकता है, कोमलकान्त पदावली का यथावत् स्वाभाविक समन्वय है।

प्रश्न १०—महाकवि बिहारीलाल तथा उनकी काव्यकला का संक्षिप्त परिचय दीजिये।

अथवा

'बिहारी की रचनाओं में भावों की व्यंजना के साथ-साथ उक्ति-कौशल और अलंकारों का सुन्दर चमत्कार भी दिखाई पड़ता है। सउदाहरण उक्ति की सत्यता सिद्ध कीजिये। (प्रथमा, संवत् २०१६)

उत्तर—महाकवि बिहारी का पूरा नाम बिहारीलाल था। ये मथुरा के चौबे थे। सं० १६६० के आस-पास ग्वालियर के निकट वसुवा गोविन्दपुर में इनका जन्म हुआ था। कहा जाता है कि इनकी बाल्यावस्था वुन्देलखण्ड में बीती और युवावस्था में वे अपनी ससुराल मथुरा में रहा करते थे।

महाराज जयसिंह के दरबार में इनका अच्छा मान था। यह उनके राज-कवि थे। किंवदन्ती प्रसिद्ध है जब राजा जयसिंह ने अपनी छोटी रानी के प्रेम में आसक्त होकर राजकवि को देखना छोड़ दिया, और मन्त्रियों का साहस उनको समझाने का नहीं रहा तो बिहारी ने अपने इस दोहे को लिखकर राजा को समझाया था :—

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास यहि काल।
अली कली ही सों बंध्यौ, आगे कौन हवाल॥

इस दोहे में कवि की उक्ति-कौशलता के दर्शन होते हैं। इसको पढ़ते ही राजा के ज्ञान-नेत्र खुल गये। वे विलासिता-बन्धन को तोड़कर राज-काज देखने लगे। तभी से बिहारी कवि उनके दरबार में दरबारी-कवि के रूप में

रहने लगे थे। ऐसा कहा जाता है कि कविवर विहारी को उनके प्रत्येक दोहे पर एक अशरफी मिलती थी, इस प्रकार लगभग सात सौ दोहे वने, जो 'विहारी सतसई' के नाम से प्रसिद्ध हुए।

विहारीलाल जी मुख्यत: शृंगार रस के कवि हैं। इनके इन दोहों में संयोग तथा विप्रलम्भ शृंगार दोनों का सुन्दर चित्रण हुआ हैं। संयोग के पक्ष की अपेक्षा वियोग पक्ष के हाव-भावों को चमत्कारपूर्ण शैली में अभिव्यक्त करने में विहारी निपुण हैं। इनके अतिरिक्त इन्होंने भक्ति और नीतिपरक दोहे भी लिखे हैं परन्तु इनकी प्रसिद्धी के कारण इनके शृंगार रस के दोहे हैं। 'विहारी सतसई' हिन्दी साहित्य में शृंगार रस का एक अनूठा ग्रन्थ है और हिन्दी में शृंगार ग्रन्थों में इसका वहुत ऊंचा स्थान है। 'विहारी सतसई' की लोकप्रियता का अनुमान तो केवल इसी वात से लगाया जा सकता है कि इसका अनुवाद विभिन्न भाषाओं में हो चुका है। गद्य, पद्य, दोहा, कुण्डलियां, कवित्त, सवैया आदि में इसके ५२ अनुवाद हो चुके हैं। विहारी की केवल एक ही रचना उनकी अमर कीर्ति को अक्षुण्ण वनाये हुए है।

यह सतसई मुक्तक काव्य है। इसके प्रत्येक दोहे में गागर में सागर भरने की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। छोटे-छोटे दोहों में भाव कूट-कूट कर भर दिए गए हैं। सतसई के सम्बन्ध में प्राय: यह दोहा कहा जाता है :—

सतसैया के दोहरे ज्यों नाविक के तीर।
देखन में छोटे लगें, घाव करें गम्भीर॥

इनकी रचनाओं में भावों की ललित व्यंजना के साथ-साथ उक्ति-कौशल और अलकारों का सुन्दर चमत्कार भी दिखाई पड़ता है। उपमा, उत्प्रेक्षा, अन्योक्ति, रूपक, श्लेप और यमक आदि अलंकारों के प्रयोग का वाहुल्य है।

———

व्याख्या-भाग

कबीर

'कबिरा' संगति साधु की, ज्यों गंधी की बास ।
जो कछु गंधी दे नहीं, तौ भी बास सुवास ॥

प्रसंग—यह दोहा 'काव्य-संग्रह' में संगृहीत कबीरदास की 'साखी' में से उद्धृत किया गया है । कवि ने इसमें साधु संगति (सत्संगति) के महत्त्व पर बल दिया गया है ।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि साधुओं की संगत उस इत्र बेचने वाले के समान हैं जो अपने पास से ग्राहकों को कुछ भी न दे तो भी ग्राहक को उसके पास जाने से ही सुगन्ध का लाभ हो सकता है । तात्पर्य यह है कि साधु-सेवा और साधु-संगति से कुछ-न-कुछ गुणकारी ज्ञान का अर्जन अवश्य होता है ।

कुमोदिनी जलहर बसे, चन्दा बसे अकास ।
जो जाही को भावता, सो वाही के पास ॥

प्रसंग—पूर्ववत् ।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं, यद्यपि कुमुदिनी (रात के समय खिलने वाला एक विशेष पुष्प) तालाब में खिलती है, और उसको आनन्द देने वाला उसका प्रियतम चन्द्रमा आकाश में रहता है तथापि वह कुमुदिनी के लिए दूर नहीं है. वह तो उसके अन्तर में निवास करता है । वास्तव में प्रियतम के दूर अथवा निकट रहने से कोई अन्तर नहीं पड़ता है, यदि सच्चा प्यार है । किन्तु सच्चा प्यार न होने की अवस्था में निकट रहता हुआ भी प्रियतम दूर है । कहने का आशय यह है कि प्रेम ही प्रधान वस्तु है ।

माला फेरत जुग गया, गया न मन का फेर ।
कर का मनका डार के, मन का मनका फेर ॥

प्रसंग—पूर्ववत् ।

भावार्थ—हाथ में माला लेकर जपते-जपते युग-के-युग व्यतीत हो गए, परन्तु चित्त की एकाग्रता और मन की शुद्धि न हुई । मन हेर-फेर के चक्करों

में ही पड़ा रहा। कबीरदासजी कहते हैं कि इस ऊपरी मन की माला को त्याग कर अपने हृदय के मनके से भगवान् का स्मरण कर अर्थात् वाह्याडम्बरों से मुक्त होकर शुद्ध हृदय से भगवान् की आराधना करने से ही चित्त को शान्ति मिल सकती है।

'मन का मनका' में श्लेषालकार है।

तेरा साई तुज्झ में, ज्यों पुहपन में बास।
कस्तूरी का मिरग ज्यों, फिरि-फिरि ढूँढें घास॥

प्रसंग—पूर्ववत्।

भावार्थ—कबीरदासजी साधुओं को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि ऐ परमात्मा के जिज्ञासु भक्तों, तुम परमात्मा को इधर उधर क्यों ढूँढते-फिरते हो, वह तो तुम्हारे हृदय के भीतर नैसर्गिक होता है। परमात्मा को वन-खंडों में खोजना तो ठीक उसी प्रकार से है, जैसे मृग अपनी नाभि की कस्तूरी की सुगन्ध न पहचानकर इधर-उधर घास में मारा फिरता है। कहने का तात्पर्य यह है कि यदि परमात्मा को समाधिस्थ होकर खोजा जावे तो उसके दर्शन अन्तरात्मा में हो सकते हैं।

माली आवत देखकर, कलियाँ करी पुकार।
फूले-फूले चुन लिए, काल्हि हमारी वार॥

प्रसंग—पूर्ववत्।

भावार्थ—माली को आता देखकर उपवन की कलियाँ रुदन कर चीखने लगीं। पुष्पित कलियों को उसने तोड़ लिया है और वह मुकुलित कलियों को दूसरे दिन तोड़ लेगा ऐसा विचार कर वे चिन्तित है। इस अन्योक्ति से कबीरदासजी ने अभिमानी मनुष्य के उसके क्षणभंगुर जीवन की ओर संकेत किया है। माली रूपी काल प्राणियों को एक-एक करके खाता जा रहा है, उसके मुखग्रास से कोई भी प्राणी बच नहीं सकता।

उक्त दोहे में अन्योक्ति अलंकार है।

मलिक मुहम्मद जायसी

अपने चलत सो कीन्ह कुबानी, लाभ न देख मूर में हानी।
का मैं बोया जनम ओहि भूँजी, खोइ चलेऊँ घरहूँ कै पूँजी॥
जेहि ब्यौहरिया कर ब्यौहारू, का लेइ देव जो छेंकहि बारू।
घर कैसे पैठब छूँछे, कौन उतर देवौं तेहि पूँछे।
साथि चले संग बीछुरा, भए बिच समुद्र पहार।
आस-निरास हौं फिरौं, तू विधि देहि अधार॥

प्रसंग—ये चौपाइयां मलिक मुहम्मद जायसी के अमर काव्य 'पद्मावत' के 'बनजारा खण्ड' से ली गई हैं। चित्तौड़गढ़ का एक वणिक् व्यापार के लिए सिंहलद्वीप चला, उसके साथ एक ब्राह्मण भी जो अत्यन्त निर्धन था, साथ में हो लिया। सिंहलद्वीप की व्यापारिक मण्डियों में अपेक्षित वस्तुओं को खरीदने के उपरान्त घर की ओर पुनरावर्तन करते समय बेचारा ब्राह्मण, धनाभाव के कारण कुछ भी खरीद न सका और चिन्तित हो कहने लगा कि यहाँ आकर मैंने अपना मूल भी गँवा दिय और मुझे कुछ भी हाथ न लगा। इन चौपाइयों में उसकी मनोव्यथा की अभिव्यक्ति हुई है।

भावार्थ—जिस समय सिंहलद्वीप से घर की ओर प्रस्थान किया तो वह अपने-आपको बुरा-भला कहने लगा क्योंकि लाभ के स्थान पर उसको हानि हुई थी। वह कोसने लगा कि मैंने पूर्वजन्म में कौन-सा ऐसा भुना हुआ बीज (निष्फल कर्म) बोया था जिसका उगना तो दूर रहा, मेरे घर की पूंजी भी नष्ट हो गई। जिस व्यापारी (महाजन) से उसने लेन-देन किया है, यदि वह घर छेंकेगा तो उसे क्या दूंगा? रिक्त हाथ घर में कैसे प्रवेश करूंगा (और जब घर वाले) पूछेंगे (कि परदेश से क्या लाए हो तो मैं क्या उत्तर दूंगा? मेरे साथी जा चुके है, मै अकेला बिछुड़ गया हूं, मार्ग में समुद्र और पर्वत है। हे ईश्वर! मैं आशा और निराशा के बीच भटक रहा हूं, तू ही मुझे अवलम्ब दे!

लौकिक पक्ष के साथ-साथ इसके अलौकिक अर्थ पर ध्यान देना आवश्यक है। यह जीवात्मा-रूपी ब्राह्मण इस जगत् में कार्य-व्यापार करने के लिए आता

है, परन्तु वह अपनी सारी आयु समाप्त कर रिक्त हाथ पयान करता है, उस समय उसको स्मरण होता है, भगवान् के साथ जो उसने प्रण किया हुआ था, उसके पूछने पर क्या उत्तर देगा ? यह सोचकर उसको अपने पूर्व कर्मो पर ग्लानि होती है। मरते समय कोई साथ नहीं जाता है, अकेला ही गमन करना पड़ता है, उस समय वही परमात्मा उसका आधार बनता है। मलिक मुहम्मद जायसी ने सूफी विचारधारा के अनुसार लौकिक पक्ष के माध्यम से अलौकिक पक्ष की अभिव्यक्ति की है।

डासन सेज जहां किछु नाहीं। भुइँ परि रहै लाइ गिउ बाहीं।
आंधर रहै जो देख न नैना। गूँग रहै, मुख आव न बैना॥
बहिर रहै, जो स्रवन न सुना। पै यह पेट न रह निरगुना।
कै कै मेरा नित यह तोखी। बारहि बार फिरै, संतोखी॥

प्रसंग—ये चौपाइयाँ मलिक मुहम्मद जायसी के पद्मावत के बनजारा खण्ड से ली गई हैं। चित्तौरगढ़ पहुंचने पर राजा रत्नसेन ब्राह्मण से हीरामणि को अपने राज-दरबार में मंगवाता है। यद्यपि ब्राह्मण जीते-जी उसको अलग नहीं करना चाहता है तो भी पेट के कारण वह उसे राजा के हाथ बेच देता है क्योंकि अंधा, गूंगा और बहरा बनकर तो जीवित रहा जा सकता है, परन्तु भूखा रहकर जीवन-यात्रा असम्भव बन जाती है। इसी बात की व्याख्या इन चौपाइयों में हुई है।

भावार्थ—(ब्राह्मण मन ही में सोचता है, कि देखो) जहां पर कोई बिछौना नहीं है वहां पर सिर के नीचे हाथ लगा कर भूमि पर शयन किया जा सकता है। नेत्र के अभाव में अंधा होकर, वाणी के अभाव में गूंगा और श्रवणेन्द्रिय के अभाव में बहरा बनकर भी मनुष्य के नेत्र, जिह्वा और श्रवण रह सकते हैं, परन्तु पेट कभी भी रिक्त नहीं रह सकता है। शरीर की अन्य इन्द्रियां अपना कार्य व्यापार त्याग सकती हैं, परन्तु पेट अपना कार्य व्यापार कदापि नहीं छोड़ सकता है। बार-बार इस दोषी पेट को कितना-कितना भरा है, फिर भी इसे संतोष नहीं होता है। (यह कितने आश्चर्य की बात है।)

उक्त पदों में ठेठ अवधी का मिठास और स्वाभाविक लालित्य द्रष्टव्य है।

भक्त शिरोमणि सूरदास

चरन कमल बन्दौं हरि राइ।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अंधे कौं सब कछु दरसाइ।
बहिरौ सुनै, गूँग पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराइ।
सूरदास स्वामी करुनानय, बार-बार बन्दौं तिहिं पाइ॥

प्रसंग—यह पद काव्य-संग्रह में संगृहीत 'सूर पदावली' से उद्धृत किया गया है। इसमें सूरदासजी ने ईश्वर-विनय करते परमात्मा की वन्दना की है।

भावार्थ———हे भगवान् मैं आपके कमल-चरणों की वन्दना करता हूं जिसकी कृपा से लूले-लंगड़े पहाड़ को छलाँग जाते हैं और अंधे को सब कुछ दिखाई पड़ने लगता है। बहरा व्यक्ति सुनने लगता है, गूंगा वक्ता बन जाता है (और उसकी ही कृपा से) निर्धन व्यक्ति राजा बन छत्र धारण करता है। सूरदास विनय करते हैं कि हे दयानिधान! मैं बार-बार आपके चरणों में प्रणाम करता हूं।

मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै।
जैसे उड़ि जहाज को पंछी, फिर जहाज पर आवै।
कमल-नैन को छाँड़ि महातम, और देव को धावै।
परम गंग को छाड़ि पियासो, दुरमति कूप खनावै।
जिहि मधुकर अंबुज रस चाख्यो, क्यों करील फल भावै।
सूरदास-प्रभु कामधेनु तजि, छेरी कौन दुहावै॥

(प्रथमा, सं० २०१७)

प्रसंग—पूर्ववत् है।

भावार्थ—सूरदासजी अपनी विनय में कहते हैं कि हे प्रभु! मेरा मन आपको छोड़कर अन्यत्र कहां सुख पा सकता है। जिस प्रकार से जहाज पर बैठा हुआ पक्षी उड़ता है, और कोई आधार न पाकर पुनः उसी जहाज पर लौट आता हैं उसी प्रकार से मेरा मन सन्निकट रहकर सुख व शान्ति

का अनुभव करता है। वास्तव में आपके महात्म्य के आगे दूसरे देवताओं की कौन आराधना करे। गंगा के पावन जल को त्यागकर कौन ऐसा मूर्ख व्यक्ति है जो कुआं खोदने का विचार करेगा ? जिसने कमल के रस का स्वाद ले लिया है उसको कीकर का फल कैसे स्वादिष्ट लग सकता है। सूरदासजी कहते है कि कामधेनु के दूध को छोड़कर कौन ऐसा व्यक्ति है जो बकरी को दुहाना चाहता है, अर्थात कोई ही ऐसा भाग्यशाली होगा जो इसके विपरीत चाहेगा।

'जैसे उडि जहाज में पंछी' में उदाहरण और 'कमल नैन' में रूप कालंकार है।

आजु जौ हरिहिं न शस्त्र गहाऊँ।
तौं लाजौं गंगा जननी कौं, सांतनु-सुत न कहाऊँ॥
स्यन्दन खंडि महारथ खंडौं कपिध्वज सहित गिराऊँ।
पांडव-दल सम्मुख ह्वै धाऊँ, सरिता रुधिर वहाऊँ॥
इती न करौं सपथ तौ हरि की, छत्रिय गतिहिं न पाऊँ।
सूरदास रणभूमि विजय बिनु, जियत न पीठि दिखाऊँ॥

प्रसग—उक्त पद सूरदासजी का है कुरुक्षेत्र की संग्राम भूमि में जिस समय भीष्म पितामह ने यह सुना कि कृष्ण भगवान् ने शस्त्र न उठाने की प्रतिज्ञा की है, उस समय उन्होंने कृष्ण भगवान् से शस्त्र ग्रहण कराने के लिए प्रण किया। इन पदों में हम भीष्म पितामह की सिंह-गर्जना सुनते है।

भावार्थ—यदि आज मैं कृष्ण भगवान् से युद्ध में शस्त्र न ग्रहण करा सका, तो मैं अपनी माता गंगा के दूध को लज्जित कर दूंगा, राजा शान्तनु का पुत्र कहलाने योग्य नहीं रहूं। आज मैं सारथि को मारकर रथ की धज्जियां उड़ा दूंगा। अर्जुन को मार गिराऊँगा। पांडवों की सेना के सम्मुख बढ़-बढ़ कर रक्त की नदी बहा दूंगा। भीष्म पितामह जी कहते हैं कि यदि मैं इतना न कर सका तो मुझे भगवान् की सौगन्ध है, मुझे क्षत्रियोचित वीर गति न प्राप्त होवे। सूरदासजी कहते है कि भीष्म जी ने प्रण किया कि मैं जीते-जी कभी पीठ रणक्षेत्र में न दिखाऊँगा।

प्रसाद गुण प्रधान होता हुआ भी यह पद ओजगुण से परिपूर्ण है। वीरोचित ललकार और रण की घोषणा के मध्य वीर रस साकार हो उठा है।

ललन हौं या छवि ऊपर वारी।
बाल गोपाल लागौ इन नैननि रोग बलाइ तुम्हारी।
लट लटकनि मोह मसि-बिन्दु का तिलक भाल सुखकारी।
मनो कमलदल सावक पेखत उड़त मधुप छवि न्यारी।
लोचन ललित कपोलन काजर, छवि उपजत अधिकारी।
मुख में सुख औरै रुचि बाढ़त, हँसत देत किलकारी।
अलप दसन, कलबल करि बोलनि, बुधि नहिं परत बिचारी।
विकसित ज्योति अधर बिच मानौ, विधु में बिज्जु उजियारी।
सुन्दरता कौ पार न पावति, रूप देखि महतारी।
सूर सिन्धु की बूँद भई मिलि, मति गति-दृष्टि हमारी।

प्रसंग—भक्त शिरोमणि सूरदास की पदावलियों में से उद्धृत किया गया है। यशोदा का मातृवात्सल्य, कृष्ण भगवान् के शैशवकाल के अनुपम चित्रण की झांकी इस पद में देखने के योग्य है।

भावार्थ—यशोदा जी कृष्ण के बाल-सौन्दर्य पर मुग्ध होकर कहती हैं, हे वत्स! तुम्हारे इस सौन्दर्य पर मैं बलिहारी जाती हूं। हे गोपाल तुम्हारा यह बाल-स्वरूप मेरी आंखों में बसा रहे, तुम्हारे रोग नष्ट हो जावें। बालों की लटें लटकती हुई कितनी शोभा कर रही हैं; मन को मोह लेने वाली स्याही की बिन्दी और ललाट पर लगा हुआ तिलक कितना मनोहर दिखाई पड़ रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो कमल-दल को कोई हिरण का बच्चा देख रहा हो अथवा उस पर उड़ता हुआ भ्रमर शोभा को प्राप्त होता है। कृष्ण भगवान् का मुख यशोदा के आनन्द को और भी बढ़ा रहा है। गोपाल कृष्ण किलकारी मारकर हँस रहे हैं, छोटे-छोटे दांत और समझ में न आने वाली तोतली बातें बड़ी प्यारी हैं। दोनों अधरों के बीच मे दांत की भव्यता चद्रमा में बिजली की चमक के समान प्रतीत होती है। यशोदा जी उनके

सौन्दर्य का पार नहीं पा रही हैं। सूरदास कहते हैं कि जैसे सिन्धु में बूंद मिल जाती है उसी प्रकार से यशोदा की सुधि-बुधि सब कृष्ण के रूप में तल्लीन हो गई है।

सोभित कर नवनीत लिए।
घुटुरुनि चलत रेनु-तन-मंडित मुख दधि लेप किए।
चारु कपोल, लोल लोचन गोरोचन तिलक दिए।
लट लटकनि मनु मत्त मधुपगन मादक मधुहि पिए।
कठुला कंठ, वज्र केहरि नख राजत रुचिर हिए।
धन्य सूर एकौ पल इहि सुख का सत कल्प जिए॥

प्रसंग—यह पद भक्तशिरोमणि सूरदास जी का है, जिसमें कृष्ण भगवान् के बाल-स्वरूप का वर्णन किया गया है।

भावार्थ—कृष्ण भगवान हाथ में मक्खन लिए हुए शोभा को प्राप्त हो रहे हैं। मुख में दधि लिपटाये हुए शरीर को धूल में धूसरित किए हुए वह घुटनों के बल चल रहे हैं। उनके कपोल सुन्दर और नेत्र चंचल हैं, मस्तक पर गोरोचन का तिलक लगा हुआ है। उनके मुखारविन्द पर जो केशों की लटें लटक रही हैं वे ऐसी प्रतीत होती हैं मानो भ्रमर मधुर रस का पान कर रहे हों। गले में कठुला और वक्षस्थल पर सिंहनख अपनी रुचिरता दिखला रहे हैं। सूरदास जी कहते हैं यदि कृष्ण भगवान का यह बाल-स्वरूप यदि एक पल के लिये भी मन को सुख दे सका, तो जीवन धन्य है, करोड़ों वर्ष जीने से क्या लाभ है?

इस पद में कृष्ण भगवान् के बाल-स्वरूप का बड़ा ही स्वाभाविक चित्रण हुआ है। 'लाल लोचन, गोरोचन' में अनुप्रास, 'लट लटकिनि, मनु मत्त मधुपगन में उत्प्रेक्षा अलंकार है। भाषा प्रसाद गुण पूर्ण है।

मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी?
किती बार मोहि दूध पियत भई, यह अजहूँ है छोटी।
तू जो कहति बल की बैनी ज्यों, ह्वै है लाँबी-मोटी।
काढ़त-गुहत-न्हावत जैहें नागिन सी भुँई लोटी।

काचो दूध पियावति पचि-पचि देती न माखन रोटी।
सूरदास चिरजीवो दोऊ भैया, हरि हलधर की जोटी॥ (आवश्यक)

प्रसंग—प्रस्तुत पद महाकवि सूरदास जी के 'बाललीला वर्णन' से अवतरित किया गया है। इसमें कवि कृष्ण की बाल-लीलाओं का वर्णन करते हुए कहता है—

व्याख्या—कृष्ण जी अपनी माता यशोदा जी से कहते हैं कि मैया मेरी चोटी कब बड़ी होगी। मुझे दूध पीते-पीते कितना समय व्यतीत हो गया, परन्तु यह आज भी छोटी है। तू तो कहती थी कि बलदाऊ की चोटी की तरह यह लम्बी और मोटी हो जाएगी। काढ़ते, गूंथते और नहाते समय यह नागिन की भांति भूमि पर लोटेंगी अर्थात् इतनी बड़ी हो जाएगी कि भूमि को भी छूयेगी। तू हठ करके कच्चा दूध पिलाती है और मक्खन-रोटी खाने को नहीं देती है। सूरदास जी कहते हैं कि कृष्ण और बलदाऊ दोनों भाइयों की जोड़ी दीर्घायु हो।

मैया मोहि दाऊ बहुत खिजायौ।
मोसों कहत मोल को लीन्हौं, तू जसुमति कब जायौ।
कहा करौं इहि रीस के मारे खेलन हौं नहिं जात।
पुनि-पुनि कहत कौन है माता, को है तेरौ तात।
गोरे नंद जसोदा गोरी, तू कत स्यामल गात।
चुटकि दै-दै ग्वाल नचावत हँसत सबै मुसकात।
तू मोही कौं मारन सीखी, दाउहि कबहुँ न खीझै।
मोहन-मुख रिस की ये बातें, जसुमति सुनि-सुनि रीझै।
सुनहु कान्ह, बलभद्र चबाई, जनमत ही कौ धूत।
सूर स्याम मोहि गोधन की सौं, हौं माता तू पूत॥

प्रसंग—पूर्ववत्!

व्याख्या—कृष्ण जी बलदाऊ की शिकायत करते हुए माता यशोदा ज़ी से कहते हैं कि मैया मुझको बलदाऊ ने बहुत चिड़ाया है। वे मुझ से कहते हैं कि तुमको तो मोल का खरीदा है, तुझे माता यशोदा ने कब पैदा किया है? क्या कहूं इसी क्रोध के मारे मैं खेलने भी नहीं जाता हूं। वे बार-बार मुझसे

पूछते हैं कि तुम्हारे माता-पिता कौन हैं ? यशोदा और नन्द दोनों ही गोरे हैं। यदि तुम उनके पुत्र हो तो फिर तुम्हारा वर्ण श्याम क्यों है ? फिर सब ग्वाले चुटकी बजा-बजाकर नाचते है और मुस्कराकर हंसते हैं ? तू भी मुझको ही मारना सीखी है और बलदाऊ से कभी भी कुछ नहीं कहती। कवि कहता है कि कृष्ण के मुख की क्रोध से भरी इन बातों को सुनकर माता यशोदा बहुत प्रसन्न होती हैं और फिर वे कृष्ण को समझाती हुई कहती हैं कि हे कृष्ण सुनो। बलदाऊ जन्म का ही धूर्त है। मैं गायों की शपथ लेकर कहती हूं कि मैं तेरी माता हूं और तू मेरा पुत्र है।

गोस्वामी तुलसीदास

तिमिरु तरुन तरनिहि मकु गिलई। गगन मगन मकु मेघहि मिलई।
गोपद जल बूड़हिं घट जोनी। सहज क्षमा बरु छाड़इ छोनी।
मसक फूंक मकु मेरु उड़ाई। होइ न नृप मद भरतहि भाई।
लखन तुम्हार शपथ पितु आना। सुचि सुबंधु नहिं भरत समाना।।

प्रसंग—ये चौपाइयां भक्तशिरोमणि तुलसीदास जी के रामचरित मानस से उद्धृत की गई हैं श्री रामचन्द्रजी के वनवास चले जाने पर भरतजी सहित-समाज चित्रकूट आते हैं। उड़ती हुई धूल, हाथी, घोड़े सेना को देखकर एकाकी लक्ष्मण के मन मे चिन्ता होती है कि भरत अकण्टक राज्य करने के लिए ही सेना सहित आक्रमण करना चाहते हैं। लक्ष्मणजी का क्षात्र-तेज जाग उठता है, परन्तु गगन-वाणी सुनते ही लक्ष्मण संकुचित हो उठते हैं और राम भरत के प्रति विश्वास प्रकट करते हुए कहते हैं, भरत पर राजमद का प्रभाव नहीं पड़ सकता है, यदि उन्हें ब्रह्मा, विष्णु और महेश का भी पद प्राप्त हो जावे। इन चौपाइयों म रामचन्द्रजी की उक्ति भरत के चरित्र से सम्बन्धित है।

भावार्थ—संभव है, तरुण सूर्य अन्धेरे में लुप्त हो जावे; आकाश बादलों में विलीन हो जावे, अगस्त्य ऋषि (जिन्होंने समुद्रपान कर लिया था) गोखुर में भरे हुए जल में डूब जावे, पृथ्वी भी अपनी स्वाभाविक क्षमा का परित्याग कर दे और संभव है सुमेरु पर्वत भी मच्छरों की फूंक से उड़ जावे, भले ही ये सब असम्भाव्य बातें सम्भव हो जावे, परन्तु भरत में राजमद कदापि नहीं

आ सकता। हे लक्ष्मण ! मैं तुम्हारी शपथ खाकर और पिता की सौगन्ध देकर कहता हूं कि भरत के समान निष्कपट सुभ्राता और कोई नहीं है।

ऐसी मूढ़ता या मन की।
परिहरि रामभगति सुरसरिता, आस करत ओस कन की।
धूम समूह बिरखि चातक ज्यों, तृषित जानि मति घन की।
नहिं तहँ सीतलता, न बारि, पुनि हानि होत लोचन की।
ज्यों गच्च काँच बिलोकि सेन जड़ छाँह अपने तन की।
टूटत अति आतुर अहारबस, छति बिसारि आनन की।

(प्रथमा, सं० २०१५)

प्रसंग—यह पद काव्य-संग्रह में संगृहीत कविकुल-कलाधर तुलसीदास जी की विनयपत्रिका से उद्धृत है, जिसमें मूर्ख मन की भर्त्सना की गई है।

भावार्थ—यह मन कितना मूर्ख है? (देखो तो सही) राम की भक्ति-रूपी गंगा को छोड़कर (वासना-रूपी) ओस-कणों की कामना करता है। जैसे धूम के अन्धकार को देखकर चातक नीरद की कल्पना करके उससे अपनी प्यास बुझाना चाहता है, वास्तव में न तो उसमें शीतलता होती है और न उसमें पानी उपलब्ध होता है, उसका परिणाम केवल आंखों की ही हानि है। इस मन की अवस्था ठीक उस जड़ बाज पक्षी के समान है जो गड़े हुए कांच में अपना प्रतिबिम्ब देखकर बार-बार प्रहार करता है, और अपनी चोंच के टूटने का भी भय नहीं रखता।

विशेष—'रामभगति सुरसरिता' में रूपक अलंकार, धूम समूह में घन का भ्रम उत्पन्न होने से भ्रमालंकार है। सेना तथा चातक के उदाहरण देने से इसमें उदाहरण अलंकार भी है।

हरि तुम बहुत अनुग्रह कीन्हों।
साधन-धाम बिबुध दुरलभ तनु, मोहि कृपा करि दीन्हों।
कोटिहुँ मुख कहि जात न प्रभु के, एक-एक उपकार।
तदपि नाथ कछु और मांगहों दीजै परम उदार।
विषय-बारि मनमीन भिन्न नहिं, होत कबहुँ पल एक।
ताते सहौं विपत्ति अति दारुन, जनमत जोनि अनेक।

कृपा डोरि बन्सी पद अंकुश, परम-प्रेम मृदु चारो।
एहि विधि वेगि हरहु मेरो दुख, कौतुक राम तिहारो।

(प्रथमा, सं० २०१४)

प्रसंग—यह पद कविकुल-कलाधर तुलसीदासजी की विनय-पत्रिका से लिया गया है जिसमें भगवान् की अनन्त कृपाओं का उल्लेख किया गया है।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! आपका अनुग्रह अपार है, आपने अपनी असीम कृपा से मुझे यह दुर्लभ शरीर और विभिन्न सुख-साधन दिये हैं। यदि मैं आपके एक-एक उपकार का वर्णन करना चाहूं तो करोड़ों मुख से भी उसकी अभिव्यक्ति नहीं कर सकता हूं। हे प्रभु ! मैं आपसे कुछ और मांगता हूं, आप परम उदार हैं, कृपा करके उसको भी दीजिए। विषय-वासना के जल से मेरा मन-रूपी मत्स्य एक पल के लिए भी अलग नहीं होता है। इस कारण अनेकों योनियों में जन्म लेकर दारुण विपत्ति को भोग रहा हूं, इसलिये हे राम ! कौतुक ही मेरे मन-रूपी मछली को कृपा की डोरी के कांटे से जिसमें प्रेम का स्वादिष्ट चारा लगा हो, विषय जल से निकाल लें ताकि मेरा (आवागमन का) दुख दूर हो जावे।

विशेष—भाषा प्रसादगुण पूर्ण है। विषय-वारि, मन-मीन, कृपा-डोरि, वंसी पद-अंकुश, परम-प्रेम-मृदु चारों में सांगरूपक अलकार है।

अब लौं नसानी अब ना नसैहों।
रामकृपा भव निसा सिरानी, जागे फिर न डसैहों।
पाएउँ नाम चारु चिन्तामणि, उर कर ते न खसैहों।
स्याम रूप सुचि रुचिर कसौटी, चित कंचनहि न कसैहों।
परवस जानि हँस्यो इन इंद्रिन, निज बस ह्वै न हँसैहों।
मन मधुकर पन कै तुलसी, रघुपति-पद-कमल बसैहों।

(प्रथमा, स० २०१६)

प्रसंग—यह पद तुलसीदास की विनयपत्रिका से लिया गया है, जिसमें आत्म-समर्पण की भावना को चित्रित किया गया है।

भावार्थ—हे परमात्मन् ! अब तक जो कुछ आयु नष्ट हुई सो हुई, परन्तु अब मैं और आगे नष्ट नहीं होने दूँगा। राम की कृपा से सांसारिक (मोह

माया की) रजनी तो समाप्त हो चुकी है, इसलिए अब जागृतावस्था में आकर नहीं सोऊंगा, अर्थात् अज्ञानता के दूर हो जाने पर अपने स्वरूप को विस्मृत नहीं हूंगा। मुझे तो राम-नाम रूपी चिन्तामणि प्राप्त हो चुकी है इसे मैं अपने हृदय-रूपी हाथ से जाने नहीं दूंगा, भाव यह है कि राम-नाम का स्मरण बराबर करता रहूंगा। (भगवान् राम का) श्याम-रूप ही शुद्ध और सुन्दर कसौटी है जिस पर मैं चित्त-रूपी कंचन को उस पर कसता रहूंगा। जब तक मैं इच्छाओं के आधीन था तब तक ये इन्द्रियां मेरा उपहास करती रहीं, परन्तु अब ये उपहास नहीं कर सकेंगी क्योंकि मैंने अपने-आपको निग्रह में कर लिया हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि मेरा मन-रूपी मधुकर श्री रामचन्द्रजी के पद-कमलों में ही निवास करेगा, अर्थात् अहर्निश राम के ध्यान में मग्न रहेगा ।

'मन-मधुकर' में रूपक और 'रघुपति-पद-कमल' में उत्प्रेक्षा और उपमा-लंकार है।

रावरे दोष न पायन को पग धूरि को भूरि प्रभाव महा है,
पाहन ते बन-बाहन काठ को, कोमल है, जल खाइ रहा है।
पावन पाँय पखारि कैं नाव, चढ़ाइहौं, आयसु होत कहा है ?
तुलसी सुन केवट के बर बैन हँसे प्रभु जानकी ओर हहा है ॥

प्रसंग—यह सवैया तुलसीदासजी की कविताओं से लिया गया है। अयोध्या से वनवास मिलने पर रामचन्द्र जी लक्ष्मण-सीता सहित गंगा के तट पर पहुंच गए, उसको पार करने के लिए उनको नौका की आवश्यकता हुई, परन्तु केवट को डर है. कि कहीं राम की चरण-रज से उनकी नौका स्त्री न वन जावे, इसलिए वह राम के चरण-कमलों को पखारने के लिए आग्रह कर रहा हैं ।

भावार्थ—हे राम ! आपके चरणों का दोष नहीं है, वल्कि उसकी धूल में बड़ा प्रभाव है । (पत्थर की शिला राम के चरण-स्पर्श से नारी वन कर बैकुंठ गामिनी हुई थी, अस्तु केवट को भय है) उसकी नौका तो वन की लकड़ी की बनी हुई है, जो पत्थर से कहीं अधिक कोमल है, और साथ ही पानी में पड़े-पड़े और भी नरम हो गई। मैं तो विना आपके पैर को धोये हुए नाव पर नहीं चढ़ाऊंगा, अब आपकी क्या आज्ञा हो रही है ? तुलसीदास जी कहते हैं,

कि केवट के इस श्रेष्ठ एवं मधुर वचन को सुनकर रामचन्द्रजी जानकी की ओर मुख करके जोर से हँस पड़े।

पुर ते निकसी रघुवीर बधू धरि धीर दए मग में डग द्वै।
झलकीं भरि भाल कनी जल की, पुट सूख गए अधराधर द्वै।
फिरि बूझति हैं चलनो अब केतिक पर्नकुटी करिहौं कित ह्वै।
तिय की लखि आतुरता पिय की अँखियाँ अति चारु चलि जल च्वै॥

प्रसंग—यह सवैया भक्तशिरोमणि तुलसीदास जी की कवितावली से लिया गया है। वर्णन उस समय का है, जब रामचन्द्र जी वनवास के उपरांत अयोध्या से अभी थोड़ी ही दूर चले थे कि सीता जी थक गईं और पर्णकुटी बनवाने एवं विश्राम करने के लिए व्यग्रता दिखलाने लगीं। सीता जी की मनोदशा का कितना सुन्दर चित्रण हुआ है।

भावार्थ—सीताजी अयोध्यापुरी से निकलते ही अभी थोड़ी ही दूर धैर्य धारण कर चली थीं कि उनके मस्तक पर श्रम के कारण पसीने की बूँदें झलकने लगीं, उनके मधुर अधर सूख गए। फिर उन्होंने राम से पूछा कि कितना अभी और चलना है तथा पर्णकुटी रहने के लिए कहां बनानी है। सीता जी की यह आकुलता देखकर राम की आंखों में आंसू आ गये। उक्त पद में सीताजी की कोमलता का मर्मस्पर्शी चित्रण हुआ है।

मीरा बाई

सखी री मेरे नैनन बान पड़ी।
चित चढ़ी मेरे माधुरि मूरति उर विच आन अड़ी।
कब की ठाढ़ी पथ निहारूँ, अपने भवन खड़ी॥
कैसे प्रान कान्ह बिन राखूँ, जीवन मूल जड़ी।
मीरा गिरिधर हाथ बिकानी, लोक कहै बिगड़ी॥

(प्रथमा, संवत् २०१५)

प्रसंग—यह पद मीरा का है जिसमे उन्होंने अपनी हृदय-वेदना की अनुभूतियों की जिसमें प्रियतम के प्रति असीम अनुराग है, अभिव्यक्ति की है।

भावार्थ—प्रेम-दीवानी मीरा कहती है कि हे सखि! मेरे नेत्र कृष्ण भगवान् के सुन्दर स्वरूप को देखने के स्वभावी हो गये हैं। मेरे हृदय में कृष्ण

की मधुर मूर्ति वस गई है। वह इसमें इस प्रकार अड़ी हुई है कि निकल नहीं सकती। मैं अपने घर में खड़ी हुई उसका मार्ग देख रही हूं। कृष्ण का दर्शन मेरे लिए संजीवनी बूटी है, उसके बिना मैं अपने प्राण को जीवित नहीं रख सकती हूं। वास्तव में मैं तो गिरधर के हाथ बिक चुकी हूं, परन्तु लोग मुझे कहते हैं कि मैं बिगड़ गई हूं।

भाषा में लालित्य और प्रसाद गुण का माधुर्य है। कला-पक्ष की अपेक्षा भाव-पक्ष प्रधान है।

नरोत्तमदास

कोदो सवाँ जुरतो भरपेट, न चाहति हौं दधि दूध मठौती।
सीत व्यतीत भई सिसियात ही, हौं हठती पै तुम्हें न हठौती।।
जो जनती न हितू हरि सों, मैं काहे को द्वारिका ठेल पठौती।
या घर तें न गयो कबहूं पिय! टूटो तवा अरु फूटी कठौती।।

प्रसंग—प्रस्तुत पद श्री नरोत्तमदास जी के "सुदामाचरित" में से लिया गया है। जब निर्धन ब्राह्मण सुदामा जी ने अपनी पत्नी को अपने मित्र द्वारिकाधीश श्री कृष्णजी के बारे में बताया, तो वह उनसे द्वारिका जाकर अपने मित्र से सहायता प्राप्त करने के लिये हठ करती हुई कहती है—

भावार्थ—हे स्वामी! यदि पेट भर कर सवां चावल भी मिल जाया करता, तो मैं शीत के दिनों को तो ठिठुरते-ठिठुरते ही व्यतीत कर दिया करती और मैं खाने के लिए दूध, दही या मठा तो चाहती ही नहीं हूं, इसलिए मैं स्वयं अपनी बात से पीछे हट जाती और आपसे द्वारिका जाने के लिए हठ नहीं करती। यदि मुझे यह ज्ञात न होता कि कृष्ण जैसा दयालु आपका मित्र है, तो मैं आपसे द्वारिका जाने के लिए हठ क्यों करती? हे स्वामी! इस घर में सदा ही टूटा तवा और फूटा कठौता रहा है अर्थात् इस घर में सदा ही निर्धनता रही है।

प्रीति में चूक न है उनके, हरि मो मिलि हैं उठि कंठ लगाय कैं।
द्वार गए कछु दै हैं भलो हमें द्वारकानाथ जू हैं सब लाय कैं।
या विधि बीत गए पन द्वै, अब तो पहुंचौ बिरधापन आय कैं।
जीवन के तो है जाके लिये, हरि सों अब होहुं कनावड़ो जायकैं।।

प्रसंग—पूर्ववत् ! पत्नी के द्वारिकापुरी जाने के लिए हठ करने पर सुदामा जी उसको समझाते हुए कहते हैं :—

व्याख्या—यह ठीक है कि श्री कृष्ण जी के मेरे प्रति प्रेम में कोई कमी नहीं है। वे उठ करके और मुझको कंठ से लगा करके मिलेंगे। द्वारिकाधीश श्री कृष्ण सब योग्य हैं। मेरे वहां जाने पर वे अवश्य ही कुछ न कुछ हमको दे देंगे। परन्तु इस निर्धनता में मेरे दो पन अर्थात् बचपन और जवानी तो व्यतीत हो चुके हैं और अब तीसरा और अन्तिम पन अर्थात् वृद्धापन आ पहुंचा है। अब जीवन ही थोड़ा सा रह गया है। मेरे विचार से तो अब द्वारिकाधीश कृष्ण का अहसान लेना व्यर्थ ही है।

सीस पगा न झगा तन में, प्रभु ! जाने का आहि बसै केहि ग्रामा।
धोती फटी-सी लटी दुपटी औ, पांव उपानहुं की नहीं सामा।।
द्वार खरो द्विज दुर्बल एक देखि रहो चकि-सो वसुधा अभिरामा।
पूछत दीनदयाल को धाम, बतावत आपनो नाम सुदामा।।

(**आवश्यक**)

प्रसंग—पूर्ववत् ! सुदामा जी के द्वारिकाधीश श्री कृष्ण भगवान् के प्रासाद के द्वार पर पहुंच जाने पर द्वारपाल महाराज को जाकर उनके आने की सूचना देता हुआ कहता है कि—

व्याख्या—हे प्रभो ! द्वार पर एक निर्बल और निर्धन ब्राह्मण आया है। उसके सिर पर पगड़ी नहीं है और शरीर पर कुर्ता नहीं है। वह ऐसा प्रतीत होता है कि किसी ग्राम में रहने वाला है। उसकी धोती फटी हुई है और दुपट्टा पुराना है और पाँवों में जूती पहनने की तो उसमें सामर्थ्य ही नहीं है। वह द्वार पर खड़ा हुआ चकित होकर पृथ्वी के स्वर्ग अर्थात् द्वारिकापुरी को देख रहा है। वह दीनदयालु महाराज के महल को पूछ रहा है और अपना नाम सुदामा बताता है।

ऐसे बेहाल बेवाइन सों पग, कंटक जाल लगे पुनि जोए।
हाय ! महादुख पायो सखा ! तुम आये इतै न कितै दिन खोए।।
देखि सुदामा की दीन दसा, करुना करिकै करुनानिधि रोए।
पानी परात को हाथ छुयो नहिं नैनन के जल सों पग धोए।।

(**आवश्यक**)

प्रसंग—पूर्ववत् ! सुदामाजी को महल में ले जाकर महाराज श्री कृष्ण उनके पैरों को धोने के लिये बैठे, परन्तु उनके पैरों की दशा को देखकर जो उनको दुःख हुआ उसका कवि ने इस प्रकार वर्णन किया है।

व्याख्या—कृष्ण जी सुदामा जी से कहते हैं कि हे मित्र ! पैरों का बिवाइयों से कैसा बुरा हाल है। फिर उन्होंने मित्र के पैरों में लगे हुए काँटों का जाल बिछा हुआ देखा। यह देखकर वे कहने लगे—"हे मित्र ! तुमने इतना कष्ट भोगा है, परन्तु न जाने तुम कहाँ दिन बिताते रहे और मेरे पास नहीं आए।" इस प्रकार सुदामा की दरिद्र दशा को देखकर कृपा करके दया के भंडार श्री कृष्ण जी इतने फूट-फूटकर रोये कि मित्र के पैरों को अपने अश्रुओं से ही धो डाला और परात में रखे हुए जल को हाथ तक भी नहीं लगाया।

हाथ गह्यो प्रभु को कमला कहै नाथ कहा तुमने चित्त धारी।
तंदुल खाय मुठी दुइ, दीन कियो तुमने दुइ लोक बिहारी॥
खाए मुठी तिसरी अब नाथ ! कहाँ निज बास की आस बिचारी।
रंकहि आप समान कियो तुम चाहत आपहि होन भिखारी॥

प्रसंग—प्रस्तुत पंक्तियां नरोत्तमदास द्वारा लिखित 'सुदामा-चरित' शीर्षक कविता में से अवतरित हैं। जब कृष्ण जी ने अपने मित्र सुदामा के प्रेम में तल्लीन होकर और उसकी दीन दशा को देखकर मित्र की सहायता के लिए दो मुट्ठी चावल खा लिए और तीसरी मुट्ठी चावल खाने लगे, तब कमला ने उनका हाथ पकड़कर कहा—

व्याख्या—हे स्वामी ! आपने क्या मन में सोचा है ? आपने दो मुट्ठी चावल खाकर तो इस निर्धन ब्राह्मण को दो लोकों का स्वामी बना दिया और अब तीसरी मुट्ठी चावल खाकर आप इसको तीसरा लोक भी देने के लिए जा रहे हैं। यह तो बताइये कि आपने स्वयं कहां रहने का विचार किया है। आपने इस दरिद्र को तो अपने समान धनवान् बना लिया और आप स्वयं भिखारी बनना चाहते हैं।

टूटी सी मंडैया मेरी परी हुती यही ठौर,
तामें परो दुःख काँटो कहा हेम-धाम री।
जेवर जराऊ तुम साजे प्रति अंग-अंग,
सखी सोहै संग वह छूछी हुती छाम री।

तुम तो पटंबर री ! ओढ़े हो किनारीदार,
सारी जरतारी, वह ओढ़े कारी कामरी।
मेरी व पंडाइन तिहारी अनुहार ही तै,
विपदा सताई वह पाई कहां पामरी ।।

प्रसंग—जब ब्राह्मण सुदामा द्वारिका से लौटकर अपने ाम में आए और पूछते-पूछते उस स्थान पर पहुंचे जहां पर उनकी झोंपड़ी बनी हुई थी; तो उन्होंने वहां पर एक राजप्रासाद बना देखा और जब उनकी पत्नी उनका स्वागत करने के लिए द्वार पर आई, तो उसको भी पहचानने मे उनको संकोच हुआ, क्योंकि भगवान कृष्ण द्वारा की गई कृपा का तो उनको पता ही नहीं था। यह देखकर वे अपनी पत्नी से कहने लगे—

व्याख्या—मेरी टूटी हुई झोंपड़ी इसी स्थान पर थी। मै उसी में पड़ा हुआ अपने दिन बिताता था परन्तु अब तो यहाँ पर स्वर्ण महल बना हुआ है। तुम अपने शरीर के प्रत्येक अंग पर हीरे जवाहरात से जड़े आभूषण पहने हुए शोभित हो रही हो और तुम्हारे साथ तो सखिया भी हैं, परन्तु मेरी पंडिताइन तो बेचारी दुर्बल सी दरिद्रता के वस्त्र पहने रहती थी। तुम तो जरी की साड़ी पहने हुए हो और वह काला कम्बल ओढ़े रहती थी। मेरी वह पंडिताइन तुम्हारी जैसी शक्ल-सूरत की थी, परन्तु वह तो बेचारी विपत्ति की मारी हुई थी उसको यह धन-दौलत कहां से मिल सकता था।

कै वह टूटी-सी छानी हुती, कहं कंचन के सब धाम सुहावत।
कै पग में पनहि न हुती, कहं लै गजराजहु ठाढ़े महावत।।
भूमि कठोर पै रात कटै, कह कोमल सेज पै नींद न आवत।
कै जुरतो नहीं कोदो सवां प्रभु के परताप ते दाख न भावत।।

प्रसग—इस सवैया में नरोत्तमदास जी ने भगवान् कृष्ण के प्रताप से सुदामा के धनाढ्य हो जाने पर उनका दशा का वर्णन किया है।

व्याख्या—कवि कहता है कि कहाँ तो सुदामा उस टूटी हुई झोंपड़ी में रहते थे और कहां अब उनके स्वर्ण के महल शोभायमान हो रहे है। कहां तो उनके पैरों में जूती तक भी न थी और कहा अब महावत हाथियों को लिये उनकी सेवा में खड़े रहते हैं। कहां तो पेट भर कर खाने के लिये सवां का

चावल भी नहीं मिलता था और कहां अब भगवान् कृष्ण की लीला से उनको मेवा भी अच्छी नहीं लगती है।

रसखान

मानुस हौं तो वही रसखान वसौं ब्रज गोकुल गांव के ग्वारन।
जो पशु हौं तौ कहा वस मेरो, चरौं नित नन्द की धेनु मझारन॥
पाहन हौं तौ वही गिरि कौ जो कियो ब्रज-छत्र पुरन्दर धारण।
जौ खग हौं तौ बसेरौं करौं मिलि कालिंदीकूल कदव की डारन॥

प्रसंग—प्रस्तुत पद रसखान के पदों में से लिया गया है। इसमें कवि अपने हृदय में भगवान् कृष्ण के प्रति प्रेम का वर्णन करता है—

व्याख्या—हे भगवान् कृष्ण ! यदि मैं दूसरे जन्म में मनुष्य योनि प्राप्त करूं, तो मेरी इच्छा है कि ब्रज के गोकुल ग्राम के ग्वालों के बीच में मेरा निवास हो। यदि मुझे पशु योनि प्राप्त हो तो इसमें मेरा कोई वस तो है नहीं, परन्तु मेरी इच्छा इतनी अवश्य है कि मुझे प्रतिदिन नन्द जी की गायों के साथ चरने का सौभाग्य मिले। यदि मैं पत्थर वनूं, तो उसी पर्वत का वनूं जिसको आपने इन्द्र के कोप से व्रज की रक्षा करने के लिए धारण किया था। यदि मैं पक्षी वनूं, तो यमुना नदी के तट पर खड़े हुए कदम्ब के वृक्षों पर मेरा बसेरा हो।

या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूं पुर को तजि डारौं।
आठहु सिद्ध नवौं निधि को सुख नन्द की गाइ चराइ बिसारौं॥
रसखानि कवौं इन आंखिन सों ब्रज के वन बाग तडाग निहारौं।
कोटि करौ कलधौत के धाम करील के कुंजन ऊपर वारौं॥
(आवश्यक)

प्रसंग—पूर्ववत् !

व्याख्या—कवि रसखान कहते हैं कि भगवान् कृष्ण के कम्बल और डंडे के लिए तो मैं तीनों लोकों के राज्य को भी त्याग दूंगा। आठों सिद्धियों और नौ निधियों से प्राप्त सुख को मैं नन्द जी की गायों के चराने में भूल जाऊंगा। रसखान कवि कहते हैं कि हे प्रभो ! मैं अपने इन नेत्रों से व्रज के वनों, वागों और तालावों को कब देख सकूंगा। चाहे स्वर्ण के करोड़ों महल भी क्यों न

हों, परन्तु मैं उनको करील के वृक्षों के कुंजों के ऊपर न्योछावर कर दूँगा ।

कवि के कहने का तात्पर्य यह है कि उसके लिए भगवान् कृष्ण, उनकी वस्तुओं और उनके रहने के स्थान से बढ़कर अन्य कोई भी वस्तु नहीं है ।

मोर पखा सिर ऊपर राखिहौं गुंज की माल गरें पहिरौंगी ।
ओढ़ पितम्बर, लै लकुटी, बन गोधन ग्वारन संग फिरौंगी ।।
भावतो वोहि मेरो रसखानि सो तेरे कहे सब स्वांग करौंगी ।
या मुरली मुरलीधर की अधरानि धरी अधरा न धरौंगी ।।

प्रसंग—पूर्ववत् !

व्याख्या—एक सखी दूसरी सखी से कहती है कि मैं कृष्ण का रूप धारण करने के लिए मोर के पंखों को सिर पर बांध लूँगी और गुंजों (लाल रंग के गोल-गोल दाने) की माला अपने गले में पहन लूँगी । पीताम्बर ओढ़कर, डंडा हाथ में लेकर मैं वन में गायों और ग्वालों के साथ घूमूँगी । मुझे कृष्ण का यह रूप बहुत प्रिय लगता है, इसलिये तेरे कहने से मैं यह सब स्वाँग कर लूँगी, परन्तु श्रीकृष्ण के होठों पर रखी इस बाँसुरी को अपने अधरों पर नहीं रखूंगी ।

कवि ने इस पद में गोपियों के बांसुरी के प्रति अपने सौतिया डाह को प्रकट किया है । अन्तिम पंक्ति में गोपी स्पष्ट शब्दों में श्रीकृष्ण के होठों पर रखी हुई बांसुरी को अपने होठों पर रखने के लिए मना कर देती हैं, क्योंकि उनको विश्वास है कि इस बांसुरी ने कृष्ण पर अपना जादू कर दिया है ।

सेस गनेस महेस दिनेस सुरेसहु जाहि निरन्तर गावें ।
जाहि अनादि अनन्त अखंड अछेद अभेद सुभेद बतावें ।।
नारद से सुक व्यास रहैं पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं ।
ताहि अहीर की छोहरिया छछिया भरि छछि पै नाच नचावैं ।।

व्याख्या—कवि रसखान कहते हैं कि वह भगवान् श्रीकृष्ण जिसके यश को बखान शेषनाग, गणेश जी, महेश जी, सूर्य, इन्द्र आदि सभी सदा करते रहते हैं; जिसको वेद भी अनादि, अनन्त, अखण्ड, अछेद्य, अभेद्य आदि बताते हैं; नारद, शुक और व्यास जैसे ऋषि-मुनि भी प्रयत्न करके थक गये, परन्तु

उसका पार न पा सके, उसको ग्वालिनें थोड़ी-सी छाछ के लिए नाच नचाती हैं।

इस प्रकार कवि ने भगवान् कृष्ण की विचित्र और अपरम्पार लीला का वर्णन किया है।

द्रौपदी औ गनिका गज, गीध अजामिल कियो सो न निहारो।
गौतम-गेहनी कैसे तरी प्रहलाद को कैसे हर्यो दुख भारो॥
काहे को सोच करैं रसखानि, कहा करि है रविनन्द विचारो।
ता खन जा खन राखिये माखन चाखन हारो सो राखन हारो॥

व्याख्या—कवि रसखान भगवान् कृष्ण की कृपा-दृष्टि के महत्त्व का वर्णन करते हुए कहते हैं कि द्रौपदी, गनिका, गज, गीध और अजामिल ने जो भी कुछ अच्छा या बुरा किया उस पर भगवान् ने ध्यान न देकर उनका उद्धार कर दिया। द्रौपदी की दुर्योधन की भरी सभा में चीर खींचे जाने के समय रक्षा की। गनिका वेश्या और अजामिल कसाई को भवसागर से पार किया। गज को ग्राह से छुड़ाया और गिद्ध को भी मुक्ति प्रदान की। गौतम की पत्नी अहिल्याबाई को शाप मुक्त कर भवसागर से पार किया और हिरण्यकशिपु को मार कर प्रह्लाद को दु:खों से मुक्त किया। इसलिये हे मन! तू काहे को सोच, विचार या चिन्ता करता है। जब मक्खन खाने वाले भगवान् श्री कृष्ण रक्षा करने वाले हैं, तो फिर बेचारा यमराज भी कुछ नहीं कर सकता।

यह देख धतूरे के पात चबात औ गात सों धूरि लगावत हैं।
चहुं ओर जटा अटकैं लटकैं फनि सें फनी फहरावत हैं॥
रसखान जेई चितवै चित दैं, तिनके दुख-दुंद भजावत हैं।
गज खाल कपाल की माल विसाल सो गाल बजावत आवत हैं॥

व्याख्या—कवि रसखान कहते हैं कि एक सखी दूसरी सखी से कहती है कि देख धतूरे के पत्तों को चबाते हुए और शरीर से धूल लगाये भगवान् शिव हैं। उनके सिर पर चारों ओर जटाये लटकी हुई हैं और गले में सर्प पड़े हुए अपने फनों को लहरा रहे हैं। ये भगवान् शिव अपनी कृपा की दृष्टि-मात्र से मनुष्यों के दु:खों को दूर कर देते हैं। वे भगवान् शिव शेर की खाल ओढ़े हुए और मुण्डों की माला पहने हुए गाल बजाते हुए अर्थात् बातें करते हुए आ रहे हैं।

रहीम

धूर धरत नित सीस पर, कहु रहीम केहि काज।
जिहि रज मुनि पतनी तरी, सो ढूंढत गजराज॥

(प्रथमा, सं० २०१८)

प्रसंग—यह दोहा अब्दर्रहीम खानखाना का है जो उनकी 'रहीम-दोहावली' से उद्धृत किया गया है।

भावार्थ—हे रहीम बताओ, हाथी नित्यप्रति अपने शीश पर किस कारण धूल धारण करता है? (उसके उत्तर मे उन्होंने कहा) जिस धूलि के स्पर्श मात्र से गौतम की स्त्री अहिल्या तर गई है, उसी धूल को वह खोज रहा है अर्थात् वह भी मुक्ति की चिकीर्षा करता है।

विशेष—कहा जाता है कि इस दोहे का प्रथम पद किसी और ने रहीम को समस्यापूर्ति के लिये दिया था, जिसका दूसरा चरण रहीम जी ने पूरा किया हैं।

तब ही लग लग जीवो भलो, दीवो परै न धीम।
विन दीवो जीवो जगत, हमहिं न रुचै रहीम॥

प्रसंग—पूर्ववत् है।

भावार्थ—रहीम कवि कहते हैं कि इस संसार में जीना तभी तक श्रेष्ठ है, जब तक दान देने की क्षमता से क्षीणता न आवे, बिना दान दिये मुझे जीना वांछित नहीं है। इस दोहे का श्लेष से दूसरा अर्थ यह भी है कि जब तक मनुष्य जीवे, उसमें दीप्ति हो, तेज हो, निस्तेज जीवन कोई जीवन नहीं है, इससे तो मर जाना ही उत्तम है।

'दीवो' का अर्थ-दान तथा दीप्ति है इसलिए इसमें श्लेपालंकार है।

गुन तें लेत रहीमजन, सलिल कूपते काढ़ि।
कूपहुं ते कहूँ होत है, मन काहू को वाढ़ि।

(प्रथमा, संवत् २०१८)

प्रसंग—प्रस्तुत दोहा रहीम के दोहों में से लिया गया है। इसमें कवि ने बताया है कि यदि व्यक्ति प्रयत्न करे तो वह दूसरों के मन की वात को भी समझ सकता है।

व्याख्या—कवि कहता है कि मनुष्य रस्सी के द्वारा कूएं से जल निकाल लेता है। क्या किसी का मन कुएं से भी अधिक गहरा हो सकता है! (कवि के कहने का तात्पर्य यह है कि कुआं मन से अधिक गहरा होता है।) जब कुएं के अन्दर का जल गुन (रस्सी) के द्वारा निकाला जा सकता हैं तो फिर व्यक्ति अपने गुणों के द्वारा दूसरे के मन का भेद क्यों नहीं ले सकता? अर्थात् जान सकता है।

बिहारीलाल

मेरी भव बाधा हरौ राधा नागरि सोय।
जा तन की झांई परे श्याम हरित दुति होय॥

प्रसंग—यह दोहा बिहारी सतसई से उद्धृत किया गया है। कवि बिहारी ने सतसई के ग्रन्थारम्भ में राधाजी की स्तुति की है।

भावार्थ—(१) कविवर बिहारी राधाजी की स्तुति करते हुए कहते हैं कि वे ही राधा नागरी मेरी सांसारिक बाधाओं को दूर करें, जिनके शरीर की आभा पड़ने से कृष्ण भगवान् का शरीर हरा दिखाई पड़ने लगता है। राधा जी के गौर वर्ण से कृष्ण का श्याम रंग हरे रंग में परिवर्तित हो जाता है।

(२) कविवर बिहारी कहते हैं कि मेरे सांसारिक कष्टों का वे ही राधा जी जिनके शरीर की परछाई पड़ने से कृष्ण भगवान् (हरित) प्रसन्न हो जाते हैं, निवारण करें।

(इस दोहे का तीसरा अर्थ श्लेप से यह भी किया जाता है) मेरी सांसारिक बाधाओं को वे ही राधा नागरी नष्ट करें जिनके शरीर का प्रतिबिम्ब पड़ते ही श्याम (कालिमा, पाप) हरित (हरण) होकर दुति (पुण्य) उदय हो जाती है।

विशेष—श्लेष से श्याम का अर्थ (१) कृष्ण (२) काला रंग (३) पाप और हरित का अर्थ (१) हरा रंग (२) प्रसन्न (३) नष्ट किया हैं।

अधर धरत हरि के परत, ओठ-दीठि पट जोति।
हरित बाँस की बाँसुरी, इन्द्रधनुष रंग होति॥

प्रसंग—यह दोहा विहारी सतसई से लिया गया है। कोई सखी कृष्ण भगवान् को मुरली बजाता हुआ देखकर अपनी अन्य सखी से कहती है:—

भावार्थ—हे सखि ! जिस समय कृष्ण भगवान् वांसुरी को वजाते हैं तो वह हरे वांस की वांसुरी उनके रक्तिम अधरों, गुलाबी दृष्टि और पीताम्बर के संयोग से इन्द्रधनुष के समान दिखाई पड़ती है।

मकराकृत गोपाल के, सोहत कुंडल कान।
धर्‌यो मनौ हियघर समरु, ड्योढ़ी लसत निसान॥

प्रसंग—पूर्ववत् समझना चाहिए।

भावार्थ—हे सखि ! कृष्ण भगवान् के कानों में मकराकृति के कुण्डल शोभायमान हैं, वे ऐसे प्रतीत होते हैं, मानो कामदेव ने हृदय-गढ़ को जीत लिया है और उसके ये विजय के निशान (चिन्ह) ड्योढ़ी पर फहरा रहे हों। जव कोई राजा किसी दुर्ग को जीत लेता है, तो उसका ध्वज राजद्वार के बाहर फहराया जाता है। विहारी ने 'ड्योढ़ी लसत निसान' की, कामदेव के हृदय-दुर्ग को जीतने की वड़ी सुन्दर और उचित उपमा दी है।

अजौं तर्‌योना ही रह्यौ, श्रुति सेवक इक रंग।
नाक-बास वेसुरि लह्यो, बसि मुकतनु के संग॥

(प्रथमा, संवत् २०१७)

प्रसंग—यह दोहा 'विहारी-सतसई' से लिया गया है, जिसमें बिहारी की अध्यात्मिक विचार-धारा की झलक मिलती है।

भावार्थ—विहारी कवि कर्मकाण्ड की अपेक्षा ज्ञान को अधिक महत्व देते हुए कहते हैं, कि यह कर्णफूल तो आज तक कान की सेवा करता हुआ भी वहीं-का-वहीं लटकता रहा, परन्तु देख, मोतियों के साथ रह कर वेसर (नाक में पहना जाने वाला एक आभूषण) नाक द्वारा ली गई सुगन्ध का लाभ उठा रहा है। यह है अन्योक्ति जिसका अर्थ यह घटित होता है :—

जो व्यक्ति श्रुतियों की आज्ञानुसार कर्मकाण्डी हैं वे आज भी कर्मबन्धन में उलझ गए हैं वे मुक्त नहीं हो सके, परन्तु वे लोग जो मुक्तों के साथ रहते है वे जीते-जी स्वर्ग भोग रहे हैं। निष्काम-भाव से रहना ही वास्तविक जीवन-शक्ति है।

इस दोहे में श्लेष से निम्न शब्दों के दो-दो अर्थ समझने चाहिएँ :—

तर्योना=(१) तरा नहीं (२) कान में पहना जानेवाला विशेष आभूषण।

श्रुति=(१) कान (२) वेद-पुराण।
नाक=(१) नासिका (२) स्वर्ग।
मुकतनु=(१) मोती (२) मुक्त व्यक्ति।

रनित-भृंग घन्टावली, भरित दान मद नीरु।
मन्द मन्द आमतु चल्यो, कुंजरु कुंज-समीप॥

(प्र०, संवत् २०१४)

प्रसंग—यह दोहा विहारी सतसई से उद्धृत है। बिहारी कवि ने इस दोहे में शीतल-मन्द पवन का कितना सुन्दर चित्रण किया है।

भावार्थ—कुंजगामी पवन हाथी के समान मन्थर गति से चला आ रहा है। भ्रमरों की गुन्जार ही मानों ध्वनि है और मनोरम सलिल ही मानो उसके मस्तक से टपकने वाला मद है। इस दोहे में समीर की कुंजर से सदृशता स्थापित करके रूपक अलंकार का प्रयोग किया गया है। कुंजर-कुंज में अनुप्रास है। कोमल-कान्त पदावली की छटा 'समीर' विषय के अनुकूल है। कहीं पर कठोर अथवा कर्कश शब्द जो 'प्रभंजन' के किए उपयुक्त हैं, इस दोहे में नहीं आने पाये हैं। हृदय-पक्ष की अपेक्षा कला प्रधान है।

बैठि रही अति सघन वन, पैठि सदन तन मांही।
देखि दुपहरी जेठ की, छांहौं चाहति छांह॥

(प्र० सम्वत्, २०१४)

प्रसंग—यह दोहा 'विहारी सतसई' का है। जिसमें ज्येष्ठ मास की उष्णता का चित्रण किया गया है। कोई पथिक छाया की खोज में व्यग्र होकर अपनी अनुभूतियों को व्यक्त करता है।

भावार्थ—ज्येष्ठ का महीना है, दोपहर का समय है, तड़ाके की गरमी है। ऐसी भयंकर गरमी को देखकर स्वयं छाया भी किसी वन में, ऐसा प्रतीत होता है, विराम करने लगी है। स्वयं छाया छाया चाह रही है, इससे गरमी की तीव्र उष्णता का परिचय मिलता है।

कहलाने एकत बसत अहि मयूर मृग बाघ।
जगतु तपोवन सौं कियो, दीरघ दाघ निदाघ ।।

प्रसंग—कहा जाता है, एक बार कोई चित्रकार राज-दरबार में सर्प, मोर, मृग तथा बाघ (सिंह) का एकत्र चित्र बनाकर ले आया। बिहारी ने उसे देखकर उक्त दोहा लिखा था।

भावार्थ—विषय प्रकृति वाले जीव जैसे सर्प तथा मोर एवं सिंह तथा मृग अपने वैर-भाव को भूलकर एकत्र बैठे हैं। (सिंह गरमी से अत्यन्त पीड़ित होने के कारण मृग पर आक्रमण न करके चुपचाप बैठा है, सर्प का शत्रु मोर सर्प को देखता हुआ भी अपनी वैमनस्यता को भूल गया है)। ऐसा प्रतीत होता है, कि इस झुलसा देने वाली गरमी की ऋतु ने सम्पूर्ण जगत् को तपोवन में परिवर्तित कर दिया है जहां हिंसा का नाम भी नहीं है।

'दीरघ-दाघ-निदाघ' में अनुप्रास की छटा देखने योग्य है।

करौ कुवतु जग कुटिलता तजौ न दीनदयाल।
दुखी होहुगे सरल हिय, बसत त्रिभंगीलाल ।।

(प्रथमा, संवत् २०१५)

प्रसंग—प्रस्तुत दोहा बिहारी लाल द्वारा लिखित "बिहारी-सतसई" में से उद्धृत है। इसमें कवि ने अपने हृदय में भगवान् कृष्ण के प्रति अगाध प्रेम और भक्ति पर प्रकाश डाला है।

व्याख्या—कवि कहता है कि भगवान् कृष्ण, चाहे संसार मुझे कितना ही बुरा भला क्यों न कहे, परन्तु मैं अपनी कुटिलता अर्थात् तिरछेपन को नहीं त्याग सकता, क्योंकि हे प्रभो! आप त्रिभंगी लाल हैं अर्थात् आपका शरीर तीन स्थान से तिरछा है और यदि मैं सीधा बन गया तो फिर आपको मेरे सीधे हृदय में बसते हुए कष्ट होगा। इसीलिए मैं संसार की बुराई भलाई की परवाह न करके आपके कष्ट की ही परवह कराता हूँ।

या अनुरागी चित्त की गति समझै नहिं कोइ।
ज्यौं-ज्यौं बूड़े स्यामरंग त्यौं-त्यौं उज्ज्वल होइ ।।

(प्रथमा, संवत् २०१५)

प्रसंग—प्रस्तुत दोहा विहारीलाल द्वारा लिखित "विहारी-सतसई" में से उद्धृत है। इस दोहे में कवि ने भगवान् के प्रेम में डूबे हुए अपने मन की विचित्र दशा का वर्णन किया है।

व्याख्या—भगवान् के प्रेम में डूबे हुए इस मन की विचित्र दशा को कोई नहीं समझ सकता। यह मन जितना अधिक स्याम वर्ण में अर्थात् भगवान् कृष्ण के प्रेम में डूबता है, उतना ही अधिक स्वच्छ होता है और चमकता है।

स्वारथ, सुकृत, न श्रम वृथा, देखि विहंग विचार।
बाज! पराए पानि परि, तू पच्छीनु न मारि॥

(प्रथमा संवत् २०१७)

प्रसंग—प्रस्तुत दोहा बिहारी की "बिहारी-सतसई" में से लिया गया है।

व्याख्या—कवि कहता है कि हे वाज, तू दूसरे अर्थात् शिकारी के लिए पक्षियों की हत्या न कर तू तनिक विचार करके देख कि इसमे न तेरा कोई स्वार्थ है, न कोई पुण्य है और तू व्यर्थ ही परिश्रम करता है।

इसमें कवि और वीर राजपूत राजा जयसिंह को बाज के रूप में सम्बोधित करके कहता है कि तू व्यर्थ ही मुगल सम्राट् के लिए हिन्दू राजाओं से युद्ध कर उनको परास्त करता है। इसमें तेरा कोई स्वार्थ नहीं है।

भूषण

इन्द्र जिमि जम्भ पर वाडव सुअम्भ पर,
रावन सदम्भ पर रघुकुल राज है।
पौन वारिवाह पर, सम्भु रतिनाह पर,
ज्यौं सहस्रवाह पर राम द्विजराज हैं।
दावा द्रुम दण्ड पर, चीता मृग झुण्ड पर,
भूषण वितुण्ड पर जैसे मृगराज हैं।
तेज तम अंस पर, कान्ह जिमि कंस पर,
त्यों म्लेच्छ वंस पर शेर शिवराज हैं।

(प्र० संवत् २०१४)

प्रसग—यह कवित्त महाकवि भूषण का है। जिस समय वे शिवाजी से मिले, तो सर्वप्रथम इसी कवित्त को ५२ वार सुनाया था, जिस पर शिवाजी ने प्रसन्न होकर उनको ५२ गाँव दिये थे।

भावार्थ—जिस प्रकार से जम्भासुर पर इन्द्र, समुद्र पर बड़वाग्नि, अभिमानी रावण पर राम, बादलों पर पवन, कामदेव पर शकर जी, सहस्रबाहु पर परशुराम जी, द्रुमदलों (जंगलों) पर दावाग्नि, मृगों के समूह पर चीता तथा हाथियों पर सिंह अपना अधिकार रखते हैं, जिस प्रकार से प्रकाश अन्धकार को नष्ट करता है और कृष्ण भगवान् ने कंस का दलन किया है। उसी प्रकार से शेर शिवराज का अधिकार म्लेच्छ वंश पर है।

इस पद में कितनी सत्यता और स्वाभाविकता है, प्रभाव है, शक्ति और ओज है। पद को सुनते ही मन हर्ष से पुलकित हो उठता है।

निकसत म्यान तें मयूखैं प्रलै भान कैसों,
फारैं तमतोम से गयंदन के जाल को।
लागति लपटि कंठ बैरिनि के नागिन सौं,
रुद्रहि-रिझावैं दै दै मुण्डन के माल को॥
लाल छितिपाल छत्रसाल महाबहु बलि,
कहाँ लौं बखान करौं तेरी करवाल को।
प्रतिभट कटक कटीले केते काटि-काटि,
कालिका-सी किलकि कलेऊ देति काल को॥

प्रसंग—यह पद भूषण कवि के 'छत्रसाल-दशक' से लिया गया है। कवि ने इसमें महाराज छत्रसाल के युद्ध-कौशल का वर्णन बड़े ही प्रभावशाली ढंग से किया है।

भावार्थ—जिस समय महाराज छत्रसाल खड्ग को म्यान से खींचते हैं, उस समय जैसे प्रचण्ड सूर्य की उग्र किरणें अन्धकार के समूह को नष्ट कर देती हैं उसी प्रकार वह काले हाथियों को छिन्न-भिन्न कर देती है। वह नागिन के सदृश शत्रुओं के गले में लिपट जाती है और रुण्ड की माला देकर रुद्र भगवान् को रिझाती है। भूषण कवि कहते हैं हे छत्रसाल महीपाल! आप महाबाहु और बलवान् हैं, आपकी तलवार की बड़ाई मैं कहाँ तक करूं? योद्धाओं की सेना काट-काट करके यह मानो काली के समान काल को कलेवा दे रही हो।

छत्रसाल की तलवार की उपमा प्रलयकालीन भानु की रश्मियों, नागिनों,

काली से दी गई है इसलिये इसमें उल्लेख अलंकार है। तमतोम-गयन्द में उत्प्रेक्षालंकार है भूषण जी की भाषा में ओज और चोज दोनों ही हैं। अनुप्रास और ध्वनियों की ओर विशेष आग्रह है।

निकसत म्यान ते मयूखे प्रलैभान कैसी,
फारे तमतोम से गयन्द के जाल को।
लागति लपटि कंठ वैरिन के नागिन सों,
रुद्र हौं रिझावै दै दै मुंडन के माल को॥
लाल छितिपाल छत्रपाल महावाहु बली,
कहां लौ वखान करौ तेरी करवाल को।
प्रतिभट कटक कटीले केते काटि-काटि,
कालिका सी किलकि कलेऊ देति काल को॥

(प्रथमा, संवत् २०१८)

प्रसंग—प्रस्तुत पंक्तियां महाकवि भूषण द्वारा लिखित "छत्रसाल-दशक" में से उद्धृत हैं। इसमें कवि ने महाराज छत्रसाल के युद्ध कौशल और शौर्य का वर्णन किया है।

व्याख्या—कवि कहता है कि जब महाराज छत्रसाल शत्रुओं से युद्ध करते हैं तो उनकी तलवार इस प्रकार चमकती है जैसे प्रलयकाल के सूर्य की किरणें और तलवार की वे किरण शत्रुओं के हाथियों के समूह रूपी अन्धकार को नष्ट करती हुई चली जाती है। शत्रुओं के गले में लपककर नागिन की तरह लगती है। महाराज छत्रसाल की तलवार शत्रुओं के सिरों को काट-काटकर उनकी माला से शिव को प्रसन्न करती है। कवि कहता है कि हे महान् शक्तिशाली छत्रसाल महाराज मैं आपकी तलवार की प्रशंसा कहाँ तक करूँ! वह प्रत्येक शत्रु वीर को कांटे की तरह काट-काटकर और कालीदेवी की तरह किलकार-किलकार कर महाकाल को कलेऊ दे रही है।

महाकवि देव

सूनौ कै परम पद ऊनों कै अनन्त मद,
दूनौ कै नदीस नद इन्दिरा फुरै परी।

महिमा मुनीसन की, संपति दिगीसन की,
ईसन की सिद्धि ब्रज वीथी विथुरै परी।
भादों की अंधेरी अधराति मथुरा के पथ,
पाइ के संजोग, देव देवकी दुरै परी।
पारावार पूरन, अपार परब्रह्म "रासि,
जसुदा के कोरै एक वार ही कुरै परी।

प्रसंग—यह पद महाकवि 'देव' की 'काव्य-सुधा' से लिया गया है। कृष्ण भगवान् के जन्म से सम्बन्धित इस पद में काव्य-कला का कितना सुन्दर चमत्कार दिखाई पड़ता है।

भावार्थ—वैकुंठ लोक सूना करके, अनन्त के मद को घटा करके, समुद्र की शोभा-श्री को दुगनी करके स्वयं लक्ष्मी एवं मुनियों की महिमा, और दिशाओं की संपत्तियां तथा ईशों की सिद्धियां व्रज की गलियों में विकीर्ण हो गई। भादों की अर्द्धरात्रि के समय मथुरा के मार्ग में संयोग पाकर वसुदेव और देवकी से अलग होकर अपार ब्रह्म की पूर्ण कला की सम्यक् राशि यशोदा की गोद में एक ही वार आ गिरी। अर्थात् कृष्ण भगवान् यशोदा के घर अवतरित हुए जब कि उनका वास्तविक जन्म देवकी की कोख से हुआ था। भाव-पक्ष की अपेक्षा कला-पक्ष प्रधान है। अनुप्रास का सफल प्रयोग देखने योग्य है।

ऐसे जो हौं जानतौ कि जैहै तू विषै के सग,
ऐरे मन मेरे ! हाथ-पाँव तेरे तोरतो।
आजु लौं हौं कत नरनाहन की नाहिं सुनौ,
नेह सों निहारि हारि वदन निहोरतो।
चलन न देतो 'देव' चंचल अचल करि,
चाबुक चितावनीन मारि मुँह मोरतो।
भारी प्रेम पाथर नगारो दै गरे सों वांधि,
राधावर विरद के वारिद में बोरतो।

प्रसंग—यह कवित्त देव की 'देव काव्य-सुधा' से लिया गया है।

भावार्थ—देव कवि अपने मन की भर्त्सना करते हुए कहते हैं कि ऐ मेरे

मन ! यदि मैं समझता कि तू विषय-वासनाओं की ओर जावेगा, तो मैं तेरे हाथ-पैर तोड़ देता। तेरे ही कारण से आज तक कितने राजाओं ने अपने दरबार में मुझे न रखकर मेरा तिरस्कार किया है। मैं क्या उनके मुख की ओर देखकर चापलूसी करता। देव कवि कहते हैं कि ऐ मन ! मैं तुझे चलने नहीं देता, तेरी चंचलता को समाप्त कर तुझे अटल कर देता। चेतन की चाबुक मार-मारकर ऐ मन तुझे मोड़ देता। नगारे की घोषणा के साथ तेरे गले में प्रेम का भारी पत्थर बांधकर कृष्ण के यशस्वी समुद्र में डुबो देता, अर्थात् विषय-वासनाओं से विरक्त करके तुझे कृष्ण की भक्ति में अनुरक्त कर देता।

इस कवित्त से देव की उन परिस्थितियों का पता चलता है, जिनके अन्तर्गत उनको पर्याप्त उदासीनता का अप्रिय अनुभव करना पड़ता था। चाबुक 'चितावनीन', 'भारी प्रेम पत्थर' आदि में रूपक अलंकार है।

प्रेम-पयोधि परो गहिरे, अभिमान कौ फेन रह्यौ गहि रे मन।
कोप तरंगन सो वहि रे, पछितातिं, पुकारत क्यों ? वहि रे मन ॥
'देव' जू लाज-जहाजते कूदि रह्यो मुख मूंदि, अजौं रहिरे मन।
जोहत तोरत घीत तुहीं, अब तेरी अनीत तुहीं सहिरे मन ॥

(प्रथमा सं० २०१६)

प्रसंग—प्रस्तुत पद महाकवि देव द्वारा लिखित 'देव काव्य-सुधा' में से उद्धृत है।

व्याख्या—कवि कहता है कि हे मन ! तू इस संसार में आकर प्रेम के सागर में फंस गया। अभिमान रूपी झागों में तू फँसा हुआ है और क्रोध-रूपी लहरों में तू बहता हुआ जा रहा है। ऐसी अवस्था को प्राप्त कर तू क्यों पश्चाताप करता है और चिल्ला रहा है ? हे मन! तू ही तो लज्जा-रूपी जहाज़ से मुख व नेत्रों को बन्द करके इस भयंकर सागर में कूद पड़ा अर्थात् तूने लज्जा को जानबूझ कर त्याग दिया। तू ही कभी प्रेम का सम्बन्ध जोड़ता है और कभी तोड़ता है, अपनी इस अनीति अर्थात् दुष्कर्मों का फल भोग और उससे प्राप्त कष्टों को सहन कर।

वृन्द

जैसो बन्धन प्रेम को, तैसो बंध न और।
काठहि भेदे कमल को, छेद न मिकरै भौर॥

प्रसंग—यह दोहा वृन्द कवि की 'वृन्द सतसई' से लिया गया है।

भावार्थ—प्रेम-बन्धन सभी बन्धनों से अपूर्व है। मधुप कठिन-से-कठिन काष्ठ को छेद देता है, परन्तु कमल जैसे कोमल पुष्प में स्वयं बन्द होकर भी उसे छेदन में असमर्थ रहता है। ऐसा क्यों है ? क्योंकि भ्रमर कमल का प्रेमी है, उससे विलग नहीं होना चाहता है।

सरसुती के भंडार की, बड़ी अपूरब बात।
ज्यों-ज्यों खरचै त्यौं-त्यों बढ़ै, बिन खरचै घटि जात॥

प्रसंग—पूर्ववत् है।

भावार्थ—सरस्वती के भण्डार की बड़ी विलक्षण बात है। (सभी भंडार खर्च करने से घट जाते हैं), परन्तु विद्या को जितना दिया जावे उतनी ही यह बढ़ती है। यदि इसको न दिया जावे तो यह घटती चली जाती है। विद्या-भ्यास के लिए जब तक विद्या नहीं दी जावेगी, विद्याभ्यास नहीं हो सकता है। बिना अभ्यास के विद्या विस्मृत हो जाती है।

पद्माकर

कूरम पै कोल, कोलहू पै सेष कुंडली है,
कुंडली पै फबी है फैल सुफन हजार की।
कहै पद्माकर त्यों फन पै फबी है भूमि,
भूमि पै फबी है थिति रजत पहार की॥
रजत पहार पर संभु सुरनायक हैं,
सम्भु पर ज्योति जटाजूट है अपार की।
सम्भु-जटाजूटन पै चन्द की छुटी है छटा,
चन्द की छटान पै छटा है गंग-धार की॥

प्रसंग—यह कवित्त पद्माकर की 'गंगा लहरी' से लिया गया है, जिसमें उन्होंने गंगाजी की स्तुति की है।

भावार्थ—पद्‌माकरजी गंगा-महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं, कि कच्छप के ऊपर वराह और वराह पर शेषनाग की कुण्डली है और उस कुंडली पर हजारों फरण सुशोभित हैं, उन फणों के ऊपर भूमि है। भूमि के ऊपर कैलाश पर्वत है, कैलाश पर्वत के ऊपर शंकरजी हैं, शंकरजी के ऊपर उनकी जटा है, उस जटा के ऊपर चन्द्रमा है लौर उस चन्द्रमा की छटा के ऊपर गंगा की धारा शोभित हो रही है। कहने का तात्पर्य यह है कि गंगाजी का माहात्म्य शंकरजी से भी बड़ा है। भाषा में प्रवाह है और अनुप्रास के प्रयोग से ध्वनि में लालित्य आ गया है।

कूलन में केलिन में कछारन में कुंजन में,
क्यारिन में कलित कलीन किलकंत है।
कहै 'पद्‌माकर' परागत में पौन हूं में,
पानन में पिकन में पलासन पगंत है।
द्वार में दिसान में दुनी में देस देसन में
देखौ दीपन में दीपत दिगन्त है।
बीथिन में ब्रज में नवेलिन में बेलिन में,
बनन में बागन में बगरो बसन्त है।

प्रसंग—यह कवित्त 'पदमाकर पद्यावली' से उद्धृत है। उक्त पद में वसन्त की व्यापकता और मनोहरता का ललित चित्रण है।

भावार्थ—पद्‌माकरजी वसन्त की अपार-श्री का वर्णन करते हुए कहते हैं, कि सरिताओं के तटों में, क्रीड़ाओं में, कछारों में, निकुंजों में एवं खेत की क्यारियों में (जहां कहीं देखो) सुन्दर कलियां चटक रही हैं। पद्‌माकर' जी कहते हैं कि पुष्पों के पराग में, समीर में, पान तथा उसकी पीकों में, पलाश के फूलों की लालिमा में सर्वत्र वसंत की बहार छाई हुई है। क्या द्वार, क्या देश और क्या अन्य देश—सभी इनकी दीप्ति से देदीप्यमान हो रहे हैं। नूतन वेलियों और लताओं में, ब्रज की गलियों में, वन तथा बागों में सर्वत्र वसंत फैला हुआ है।

उक्त कवित्त में अनुप्रास की छटा ध्यान देने योग्य हैं।

बाबा दीनदयाल गिरि

टूटे नख रद केहरी, वह बल गयो थकाय।
हाय जरा अब आइकै, यह दुख दियो बढ़ाय॥
यह दुख दियो बढ़ाय, जम्बुक चहुँ दिसि गाजैं।
ससक लोमरी आदि, स्वतन्त्र करैं सब राजैं॥
बरनै 'दीनदयाल' हरिन बिहरैं सुख लूटैं।
पंगु भयो मृगराज आज नख रद के टूटें॥

(प्र० सं० २०१४)

प्रसंग—यह कुण्डली बाबा दीनदयाल गिरि की है। जिसमें उन्होंने अन्योक्ति के माध्यम से बुढ़ापे की भर्त्सना की है।

भावार्थ—सिंह! नख तथा दांत बुढ़ापे की भेंट हो गए, बल भी थक गया है, दिन-प्रतिदिन बुढ़ापे का दुःख बढ़ता जा रहा है। यह कितने दुःख की बात है, कि जो जम्बुक (पिशुन) युवाकाल में निकट नहीं आते थे वे ही अब शक्तिक्षीण देखकर गरज रहे हैं। खरगोश-लोमड़ी (डरपोक तथा चालाक पुरुष) स्वतन्त्र हो मनमानी काम कर रहे है। दीनदयाल जी कहते है कि शेर के दांत और नख के टूट जाने से वह पंगु हो गया है इस कारण से निर्भय हो हरिण भी इधर-उधर सुख और आनन्द ले रहे है। इस अन्योक्ति से तात्पर्य यह है कि शक्तिक्षीण होते ही बलवान् तथा समर्थ व्यक्ति के सम्मुख अनधिकारी व्यक्ति डींगें मारने लगते है, जो कभी उनके लिए ऐसी बाते सुननी भी असह्य थीं।

गिरिधर कविराय

पावै नीर न सरवरी बूंद स्वाति की आस।
केहरि तृण नहिं चरि सकै जो व्रत करै पचास॥
जो व्रत करैं पचास विपुल गज युत्थ विदारै।
सुपुरुष तजै न धीर जीव वरु कोऊ मारै॥
कह गिरिधर कविराय जीव झोझक भरि जावै।
चातक वरु मरि जाय, सरवर नहिं पावै॥

प्रसंग—यह कुण्डली गिरिधर कविराय की है, जिसमें उन्होंने पुरुषत्व और दृढ़ नियमत्व की ओर संकेत किया है।

भावार्थ—(तनिक चातक के दृढ़ नियम को तो देखो) वह स्वाति नक्षत्र के जल की अभिलाषा में सरवर के जल को नहीं पीता है। सिंह पचासों दिन तक निराहार रहता हुआ भी घास नहीं खाता है, अपने वीर स्वभाववश वह अवश्य ही हाथियों के झुण्ड-के-झुण्ड को विदीर्ण करता है। इसी प्रकार से महापुरुष प्राण के संकटापन्न होने पर भी अपने धैर्य का त्याग नहीं करते हैं। गिरिधर कविराय कहते हैं कि मनुष्य को निर्भीक रहना चाहिए। चातक अपने प्राण को त्यागने सरवर के जल पीने की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ समझता है।

यथार्थ कथन होते हुए भी भाषा में सरसता और सरलता है। इनकी कुण्डलियों में लोक-व्यवहार की मात्रा प्रधान है।

गुन के गाहक सहस नर बिनु गुन लहै न कोय।
जैसे कागा कोकिला शब्द सुनै सब कोय॥
शब्द सुनै सब कोय कोकिला सबै सुहावन।
दोऊ का एक रंग काग सब भये अपावन॥
कह गिरधर कविराय, सुनो हो ठाकुर मन के।
बिन गुन लहै न कोय सहस नर गाहक गुन के॥

(प्र० सं० २०१७)

प्रसंग—प्रस्तुत कुण्डली गिरिधर कविराय की कुण्डलियों में से ली गई है।

व्याख्या—कवि कहता है कि इस संसार में गुण के हजारों व्यक्ति ग्राहक होते हैं अर्थात् गुणों का सम्मान तो बहुत लोग कहते हैं, परन्तु गुणहीन व्यक्ति अथवा प्राणी का कोई भी सम्मान नहीं करता है। उदाहरण के लिए हम देखते हैं कि संसार में कौआ और कोयल दोनों ही की आवाज सब सुनते हैं, परन्तु कोयल की आवाज तो सबको अच्छी लगती है। दोनों का रंग भी एक ही है, परन्तु फिर भी कौआ सबके द्वारा अपमानित होता है, उसे सब घृणा की दृष्टि से ही देखते हैं। गिरिधर कवि कहते हैं कि मेरे मन के स्वामी सुनो—इस संसार में विना गुणों के किसी का आदर नहीं होता है और गुणों को चाहने वाले तो सहस्रों व्यक्ति है।

विना विचारे जो करे सो पाछे पछिताय।
काम विगारे आपनो जग में होत हसाय॥
जग में होत हंसाय चित्त में चैन न पावै,
खान पान सम्मान राग रग मनहि न भावै॥
कह गिरधर कविराय दुःख कछु टरत न टारे।
खटकत है जिय मांहि कियो जो विना विचारे॥

प्रसंग—पूर्ववत्! इसमें कवि ने सांसारिक नीति की वात वताई है।

व्याख्या—कवि कहता है कि जो मनुष्य विना सोचे समझे कार्य करता है, वह पछताता है। वह अपना तो कार्य खराव करता है और संसार में हँसी उड़वाता है। संसार में हँसी होती है और मन को चैन नहीं मिलता। उसको खाना, पीना, सम्मान तथा सभी प्रकार के मनोरंजन व क्रीड़ाएँ अच्छी नहीं लगती हैं। कवि कहता है कि दुःख टालने से नहीं टलता है अर्थात् होनी तो होकर ही रहती है, परन्तु जो कार्य विना सोचे समझे किया जाता है, वह मन ही मन खटकता रहता है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

प्यारे, मोहि परखिए नाहीं।
हम न परिच्छा योग तुम्हारे समझु यहै मन माहीं॥
पापहि सो उपज्यौ, पापहि में सिगरो जनम सिरान्यौ।
तव सनमुख सो न्याय तुला पै कैसे कै ठहरान्यौ।
दयानिधान भक्तवत्सल, करुणामय भव भयहारी।
देखि दुखी 'हरिचन्दहि' कर गहि वेगहि लेहु उवारी॥

प्रसंग—यह पद भारतेन्दु वावू हरिश्चन्द्र के "काव्य-स्तवक" से लिया गया है, जिसमें भारतेन्दु जी परमात्मा से अपनी परीक्षा न लिए जाने के सम्बन्ध में प्रार्थना करते हैं और अपने अपराधों के लिए क्षमा-याचना करते हैं।

भावार्थ—हे प्रियतम! मेरी परीक्षा न लीजिए। आप अपने मन में यही विचार कर लें कि आपकी परीक्षा के योग्य नहीं हूं। पाप में मेरा जन्म हुआ है और पाप में जीवन व्यतीत हुआ है। फिर मैं आपके सम्मुख न्याय की तुला पर कैसे ठहर सकता हूं। हे दयानिधान! हे भक्तवत्सल!! हे संसार की यातनाओं से मुक्ति देने वाले करुणामय प्रभो! मुझ हरिश्चन्द्र को दुखी देखकर इस सांसारिक यातनाओं के अविलम्व वचा लो।

उक्त पद में भावों की मनोहरता, पदों का लालित्य, काव्य की सरसता और भाषा की स्वच्छ शैली विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

कूकै लागीं कोइलैं कदंबन वर बैठि फेरि,
धोय धोय पात हिलि हिलि सरसै लगै।
बोले लागे दादुर, मयूर लागे नाचे फेरि,
देखि कै संजोगी जन हिय हरसै लगै॥
भरी भई भूमि सीरी पवन चलन लागी,
लखि 'हरिचन्द' फेरि प्रान तरसै लगे।
फेरि झूमि-झूमि बरषा की ऋतु आइ फेरि,
बादर निगौरे झुकि बरसै लगे।

प्रसंग——यह पद 'काव्य-संग्रह' में संगृहीत भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के 'काव्य-स्तवक' से लिया गया है। वर्षा ऋतु का मादक एवं सरस वर्णन कितना अनुपम है। एक-एक पंक्ति वर्षाकालीन चित्र हमारी आँखों के सम्मुख प्रस्तुत करती है।

भावार्थ—वर्षा काल में कोकिलें कदम्बों की डालियों पर घूम-फिर इधर-उधर कूकने लगी हैं। धुले हुए पत्ते हिल-हिलकर मन में सरसता पैदा कर रहे हैं। मेंढक की टरटराहट और मोरों का नृत्य किसके मन को हर्षित नहीं करता है? पृथ्वी चारों ओर हरी भरी हो गई, शीतल पवन चलने लगी है, ऐसी अवस्था में प्राण अपने प्रियतम से मिलने के लिए तरस रहा है। वर्षा ऋतु में निगोड़े बादल झुक-झुककर बरसने लगे हैं।

काव्य का सरस माधुर्य, भावों की चित्रमयता और कोमल-कान्त-पदावली का समावेश भारतेन्दुजी की भाषा की विशेषता है।

काव्य संग्रह (प्रथम भाग)

काव्य-संग्रह

(द्वितीय भाग)

आलोचना

प्रश्न १—कविता क्या है ? कविता में सामाजिक पक्ष की प्रधानता होती है अथवा वैयक्तिक अनुभूति का चित्रण ? स्पष्ट कीजिए।

अथवा

"कवि के आत्म-विज्ञान और आत्म-संस्कार के साथ उसकी कविता में जीवन की कठोरता और युग की आवश्यकताओं और तकाज़ों का लेखा-जोखा भी होता है।" सिद्ध कीजिए।

अथवा

"कविता में रस तत्व और उसके सामाजिक या जीवनानुमोदित अन्तरस्थ का उपक्षा नहीं की जा सकती।" व्याख्या-सहित सिद्ध कीजिए।

उत्तर—काव्य-शास्त्रियों ने कविता की भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ दी हैं। एक पाश्चात्य विद्वान् ने कविता को जीवन की आलोचना कहा है और एक भारतीय आचार्य ने रसात्मक वाक्य को काव्य की संज्ञा प्रदान की है। अतः कविता जीवन की आलोचना है। इसमें जीवन के सुख-दुःख, मिलन-विरह, स्वभाव-अभाव और आदर्श-यथार्थ का उनके गुण तथा दोषों का निरूपण होता है।

कवि समाज में रहकर जीवन की संस्कारशीलता को अपनाता है। उस जीवन की अभिव्यक्ति और परिष्कृति भी कविता में होती है। जीवन का क्षेत्र अधिकाधिक व्यापक होता जाता है। राष्ट्रीय जीवन में जाकर एक सीमा-रेखा होती है। जीवन की व्यंजना और उसका सारभूत चित्रण कविता का अन्तर्निहित उद्देश्य है। कविता जीवन से पृथक् कुछ नहीं। कविता अपने युग

का प्रतिबिम्ब प्रकाशित करती है। आज के युग की जटिल मानसिकता और नाना प्रकार के द्वन्द्वों, विग्रहों और घात-प्रतिघातों से जड़ित आज की सामाजिकता है, और कविता इन्हीं को आधार-भूमि मानकर बनाई जाती है जिसमें रस की लौकिक कल्पनाओं की ऊंची उड़ानें होती हैं। इस प्रकार कवि कविता द्वारा पाठक तथा श्रोताओं के मन में वैसी ही भावनाओं का उद्रेक कर देता है। इन भावनाओं का सम्बन्ध किसी बाहरी रमणीयता से नहीं होता, अपितु हमारे अन्तःकरण से होता है।

कविता में सामाजिक पक्ष की प्रधानता है या अनुभूति का चित्रण। इस विषय पर सभी साहित्यिकों तथा कवियों में दुविधा होती है। कवि स्वान्तः सुखाय लिखे अथवा लोक-संग्रह की भावना को। एक में आत्म तत्त्व की प्रधानता है और दूसरे में नहीं। तुलसीदास ने स्वान्तःसुखाय लिखा। उनके व्यक्तित्व का सारा आत्मभाव उनके काव्य में मिल गया। सौन्दर्य और प्रेम एवं करुणा की अनुभूति की यथार्थता तभी हो सकती है जब कि जीवन के चिरस्थायी आनन्द रस-योजना की समस्त विशेषताओं को अपने में लय कर ले।

कवि अपने आत्म-विश्वास तथा आत्म-संस्कार के साथ जीवन की कठोरता और युग की आवश्यकताओं और तकादों का लेखा-जोखा भी करता है। जीवन की व्याख्या के भीतर सामाजिक अनुभवों और आवश्यकताओं का स्वर उच्चारता है। इसमें समाज तथा मानव पर उसका विश्वास अगाध होगा और रसपान करेगा जिससे युग-विशेष की रचना युग-युग की रचना बन जावेगी। कविता का लक्ष्य उसका आधारभूत सत्य आनन्द है, पर आनन्द समाज सापेक्ष या समाज निरपेक्ष संज्ञा नहीं। कविता में उसके रस तत्त्व तथा सामाजिक अन्तरस्थ की उपेक्षा नहीं की जा सकती। कवि की कल्पना कविता में रमणीयता लाती है। यदि इसमें बुद्धि तत्त्व का योग हो तो सोने में सुहागा होगा। निराला जी की अधिकांश कविताएं इसी प्रकार की है।

किसी भी देश की कविता उस देश की सांस्कृतिक परिस्थितियों और उपलब्धियों से अछूती नहीं रह सकती। उदाहरणार्थ, भारतीय कवि धैर्य के लिये ध्रुव, शौर्य के लिये अर्जुन और त्याग के लिए राम के प्रतीकों को ह व्यवहार में लाएगा। देश की आत्मा की झलक कवि-हृदय में आनी आवश्यक

है। देश की परम्परा की उल्लंघना कवि नहीं कर सकता। परम्पराओं में कवि नये प्राण फूंककर, उन्हें नया रक्त और नई शक्ति प्रदान कर सकता है। देश की सभ्यता से अप्रभावित रहकर कोई भी अपनी कविता को लोक-विख्यात नहीं कर सकता।

प्रश्न २—"द्विवेदी-युग में कविता की जीवन-भूमि तो बन गई थी, परन्तु आत्मा का संगीत और हृदय का सरस सारमय सृजन अभी फूटने को था।"

(प्रथमा, सं० २०१५)

अथवा

"खड़ी बोली की कविता का पूर्णोदय काल द्विवेदी युग से माना जाता है।" आप इससे कहाँ तक सहमत हैं ?

उत्तर—भारतेन्दु-युग में लगभग सभी कवियों ने ब्रज भाषा में कविताएँ लिखीं। इन कविताओं पर धीरे-धीरे खड़ी बोली का प्रभाव बढ़ने लगा। छन्द के चुनावों में तथा कवियों की विचार-धाराओं में परिवर्तन आने लगा। सरल और प्राकृतिक भाव बढ़े। इसी बीच लावनीबाजों तथा खयालबाजों का काल आया और खड़ी बोली कविता का आरम्भिक रूप कवित्त सवैया प्रणाली, उर्दू छन्दों की प्रणाली और लावनी के ढंग पर पनपने लगा। फिर पण्डित श्रीधर पाठक, नाथूराम शर्मा तथा श्री महावीरप्रसाद द्विवेदी ने युग की नवीन शक्तियों से प्रभावित होकर ब्रजभाषा की कविताओं के स्थान पर खड़ी बोली में कविता करना आरम्भ किया। द्विवेदी जी ने कविताओं में भाषा का मार्जन अत्यधिक किया है। इनकी कविताओं का ऐतिहासिक महत्त्व इसी कारण है। इन्हें पद्य-रचना की एक प्रणाली का प्रवर्त्तक भी कहा जाता है।

खड़ी बोली में कविता का पूर्णोदय काल द्विवेदी-युग को ही माना जाता है। भारतेन्दु-युग की जागृति से लाभ उठाकर इस युग के कवियों ने खड़ी बोली को काव्य-भाषा का रूप देकर कविता में प्रतिष्ठित किया। यदि हम ध्यान से देखें तो हमें पता चलता है कि यह काल नवीन काव्योचित भाषा का निर्माण-काल है। उनके आचार्यत्व का साहित्य अधिक महत्त्वपूर्ण है। श्रीधर पाठक खड़ी बोली के सुकवि तथा समर्थक ही होकर रह गये।

द्विवेदीजी ने खड़ी बोली में कविता करने की दीक्षा देने का कार्य आरम्भ

किया। छन्द-वैचित्र्य तथा भाव-वैचित्र्य का मार्ग अपने शिष्यों को दिखाया। इन्होंने गद्य और पद्य की भाषा की एकता पर बल दिया जिसके कारण इनकी कविता नीरस हो गई।

द्विवेदी-युग में कविता को परिष्कृत रूप देने में अन्य कवियों ने अति सहयोग दिया। नाथूराम शर्मा ने छन्दों को नपा-तुला तथा व्यवस्थित रूप प्रदान किया। इनके सवैये भाषा-सौष्ठव और रस-परिपाक की दृष्टि से उच्च कोटि के हैं। उक्तियों में मौलिकता एवं मनोहरता है। इन्हें कविता-कामिनी-कान्त इसी कारण कहते हैं। राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' की कविताओं में देश-भक्ति तथा राजभक्ति का समन्वय पाया जाता है। प्रकृति-निरीक्षण, धार्मिक प्रवृत्ति और देश-प्रेम आपकी कविताओं प्रमुख विशेषताएँ हैं। कविता में कल्पना का समन्वय होने से अधिक कवित्व दीख पड़ता है। इसके अतिरिक्त हरिऔध, सनेही, गोपालशरण सिंह, मैथिलीशरण गुप्त, त्रिपाठी, सियाराम-शरण इत्यादि की कविताओं में सामाजिक समस्याओं का निरूपण किया गया है। इनकी कविताओं में भावों की मार्मिकता, कल्पना की उड़ान, अनुभूति की अभिव्यंजना तथा वर्णन की रोचकता टपकती है। निम्न पद्यों का अवलोकन कीजिए—

चिंता रस में डूब रहा है ग्राह ग्रसित-सा देश कन्हैया !
गज की भांति इसे भी रख लो, मिटे न गौरव लेश कन्हैया ॥

—हरिऔध

उठो त्याग दो द्वेष एक ही सबका मत हो।
सीख ज्ञान विज्ञान कला-कौशल उन्नत हो॥
सुख सुधार सम्पति शान्ति भारत में भर दें।
अपना जीवन इसे सहर्ष समर्पित कर दें॥
भारत की उन्नति सिद्धि से हम सबका कल्याण है।
दृढ समझो इस सिद्धान्त को हम शरीर यह प्राण है॥

—रामनरेश त्रिपाठी

कवियों ने घनाक्षरी और सवैये की एकरसता कम कर दी थी। कविता दैनिक जीवन तथा सामाजिक अनुभवों के प्राण रस से तुष्ट होने लगी। आगे

चलकर छायावाद, रहस्यवाद तथा हृदयवादी स्वच्छन्दतावाद के उन्नयन में इस भाषा-परिष्कार और नवीन छन्द योजना ने बड़ी सहायता की। द्विवेदी-युग की कविताओं के विषय सीमित रहे। प्रकृति के विराट्-क्षेत्र, मानव जीवन की विभिन्न सुकुमार वृत्तियों के निरूपण तथा आत्मा के सर्वश्रेष्ठ मौलिक सत्य के प्रकाशन के रूप में काव्यानुभूति की ओर इन कवियों का ध्यान नहीं गया। रसों का संघर्ष और मन की शाश्वत प्रवृत्तियों का द्वन्द्व जो कि उच्च काव्य का प्राण है, अभी इस काल के कवियों की कविता में नहीं था। आत्मा का संगीत और हृदय का सरस सारमय गुंजन कविताओं में फूटना अभी शेष था। कल्पना-सौन्दर्य की प्राण-प्रतिष्ठा १९१४ के महायुद्ध के पश्चात् हुई। अत: हम निस्संकोच कह सकते है कि द्विवेदी-युग में कविता की जीवन-भूमि तो बन गई थी, परन्तु आत्मा का संगीत और हृदय का सरस सारमय सृजन फूटने को था।

प्रश्न ३—"महादेवी वर्मा की कविता में दु:ख और निराशा के चित्रण की प्रधानता है। उनका प्रियतम अलख और अव्यक्त रहकर प्रतिक्षण उनकी आत्मा को दग्ध करता रहता है।" व्याख्या कीजिए। (प्रथमा, सं० २०१५)

अथवा

महादेवी वर्मा की काव्य-कला पर प्रकाश डालिए।

उत्तर—महादेवी वर्मा आधुनिक काल की कवियित्री हैं। आपकी गणना छायावाद के कवियों में होती है। लोकप्रियता की दृष्टि से आपकी कविताएं प्रसाद, पन्त, निराला से कम नहीं हैं। इनका काव्य साहित्यिक स्वर्ण-युग से होड़ ले सकता है। आपकी परिष्कृत शैली दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही गई। आप उच्चकोटि की गद्य-लेखिका भी मानी जाती हैं। आपकी कविताओं की कोमलता, प्रतीक-विधायिनी प्रतिभा और करुण अध्यात्म का विकास आपके गद्य में भी सम्मिलित हो गया।

प्रसाद में रहस्यवाद बाल-रूप में आया था। निराला में पहुंच कर वह प्रौढ़ तथा दार्शनिक बन गया। महादेवीजी ने प्रारम्भ से ही पीड़ा का रूप लिया। इसमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं आया। महादेवी तथा पीड़ा

दोनों शब्द साथ ही साथ चलने लगे। "तुम को पीड़ा में ढूँढा, तुम में ढूँढूंगी पीड़ा।"

महादेवीजी हिन्दी के वर्तमान रहस्यवादी कवियों में सर्वश्रेष्ठ स्थान रखती हैं। आपका रहस्यवाद प्रेमानुभूति को लेकर चलता है। उसमें विरह का उन्मादकारी चित्रण मिलता है। शृंगारिक कविता को रूप तथा अरूप दोनों छवियाँ प्रदान कीं। आपकी कविता में असीम को आत्मसात् करने की पिपासा, विराट् के अन्वेषण की तीव्र आकांक्षा मिलती है। संगीतमयता अनोखी है। आपके वाक्यांशों के घुमाव, शब्द-योजना तथा चित्र बनाने की शक्ति ने नवयुवक तथा नवयुवतियों में गेय गीतों का प्रचार किया है। हृदय के सूक्ष्म से सूक्ष्म मनोवेगों को चित्रित करने की असीम शक्ति आप में विद्यमान है। आपके काव्य में एक अनुपम पृष्टभूमि की सृष्टि हुई है। कविताओं में सौन्दर्य है। वस्तु की यथार्थता के स्थान पर कल्पना की रमणीयता और चिन्तन की क्रिया से आप अधिक कार्य लेती हैं।

महादेवीजी कविताओं में दुःख और निराशा के चित्रण की प्रधानता है। उनका प्रियतम अलख और अव्यक्त रहकर प्रतिक्षण उनकी आत्मा को दग्ध करता रहता है।

चुभते ही तेरा अरुण बान।
बहते कान कान से फूट-फूट, मधु के निर्झर से सजल गान।

परन्तु इस विदग्धता में चैतन्य और शीलता का समावेश है—

"बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ।"

आप प्रिय की उपासना करते-करते आत्मार्पण के उल्लास से आत्म-विभोर हो जाती हैं। इनकी व्यञ्जना सरल तथा सरस है।

उनके काव्य की सबसे बड़ी विशेषता है दुःखवाद। आपका दुःख लौकिक नहीं अलौकिक है। वे अपनी पीड़ा रूपी बेल को आंसू-रूपी पानी से सींचना चाहती हैं। वे अपने जीवन में किसी प्रकार का आनन्द तथा सुख नहीं देखना चाहतीं। अपने प्रियतम से मिलना तक नहीं चाहतीं। यदि आप उससे मिल लें तो आपका दुःख—विरह-दुःख नहीं रह सकेगा। इस विरह में आप आत्म-

समर्पण करती हैं। इस पीड़ा से आप करुणा को प्राप्त करती हैं। आपका काव्य पीड़ा, दुःख तथा करुणा का दूसरा रूप है।

आपने प्रकृति-चित्रण अति सुन्दर किया है। परन्तु इस प्रकृति-चित्रण में भी विरह-वेदना तथा दुःख का आधिक्य है। सभी प्रकृति-चित्रण का आप विरह, वियोग तथा दुःखानुभूति का चित्रण करने में प्रयोग करती है। जितना स्थान आपको छायावादी कविताओं में मिलता है उतना ही स्थान रहस्यवादी कविताओं में भी प्राप्त है। आपकी रहस्यमयी कविताओं में चिंतन मिश्रित है।

आपकी शैली अधिकतर अलंकार प्रधान है। आपने अभिधा का आश्रय नहीं लिया। भाषा संस्कृतनिष्ठ है जिसमें कलात्मक सौष्ठव है। आपकी प्रत्येक पंक्ति दार्शनिकता से परिपूर्ण है। कला-पक्ष चरमसीमा को पार कर गया है।

प्रश्न ४—अपनी पाठ्य-पुस्तक में आये हुए आधुनिक कवियों में से जो कवि आपको सर्वप्रिय हो उसके काव्य की समीक्षा भाव, भाषा एवं शैली की दृष्टि से कीजिए। (प्रथमा, सं० २०१२)

उत्तर—आधुनिक कवियों में वैसे तो पन्त, निराला, महादेवी वर्मा का नाम भी श्री जयशंकर प्रसाद से कम नहीं, परन्तु प्रसादजी का स्थान सर्वोच्च है। हिन्दी कवियों में प्रसादजी का स्थान रहस्यवाद की अवतारणा करने वाले कवियों में सदा अमर रहेगा। आप पूर्ण बौद्धिक परिपक्वता के साथ साहित्य के क्षेत्र में आये और साहित्य की चौमुखी प्रतिभा का प्रदर्शन किया। एक ओर आप रहस्यवाद तथा छायावाद को काव्य-क्षेत्र में नवीन रूप प्रदान कर रहे थे और दूसरी ओर नाट्य-क्षेत्र का नेतृत्व कर रहे थे! इसी प्रकार कहानी तथा उपन्यासों में भी अपनी प्रतिभा दिखा रहे थे!

आपने सर्वप्रथम ब्रजभाषा में अपना काव्य आरम्भ किया। उसके पश्चात् इस साहित्य को आपने खड़ी वोली में परिवर्तित किया। कवि के रूप में आपकी प्रसिद्ध सर्वप्रथम 'आंसू' के प्रकाशन से हुई। इसमें प्रेम की वास्त-विकता, साधना, त्याग, आग्रह, निग्रह, आत्म-विसर्जन और अधिकार सभी कुछ बड़े वैदग्ध्य के साथ अभिव्यक्त हुआ है। रूप और विलास, आलस्य तथा

विनोद के हृदय-विदारक तथा सच्चे चित्र 'आंसू' में उतरे हैं। कवि की आन्तरिक अनुभूति की सच्ची झलक इसमें मिलती है। कवि ने अपने हृदय की तीव्र वेदना इसमें व्यक्त की है। श्री वाजपेयी जी ने इसकी आलोचना करते हुए लिखा है कि "आंसू, आँसू है और यहां प्रसाद, प्रसाद हैं।" हिन्दी कविता में 'आँसू' को जितना मान तथा सम्मान प्राप्त हुआ है वह सम्भवतः अन्य किसी काव्य को प्राप्त नहीं हुआ।

'कामायनी' आपका एक सफल महाकाव्य हैं। इसमें शृंगार रस प्रधान है। प्रकृति का छायावादी रूप अति सुन्दर ढंग से व्यक्त किया गया है। इसमें मानव का जो वास्तविक विश्लेपरण तथा काव्यमय निरूपरण है वह हिन्दी के अन्य किसी ग्रंथ में प्राप्त होना दुर्लभ है। भाषा की प्रौढ़ता तथा विपय-प्रतिपादन की मनोरम शैली इस काव्य की विशेषता है। इस महाकाव्य में मानव-हृदय की चिरन्तन मौलिक वृत्तियों के कवित्वमय निरूपरण के साथ इस युग की पीड़ित और विज्ञान के दाह से दग्ध मानवता को बुद्धि और श्रद्धा का सन्देश भी सुनाया है। अन्य किसी महाकाव्य में इस प्रकार का सर्वांगपूर्ण जीवन-दर्शन, नारी और पुरुष का सम्पूर्ण चित्रण और नई परिस्थिति का व्यापक निरूपरण नहीं दिखाई देता। नए ज्ञान का इतना विस्तारित प्रयोग अन्य किसी महाकाव्य में मिलना दुर्लभ तथा असम्भव-सा जान पड़ता है। इस काव्य की तुलना कलिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्, तथा रवीन्द्रनाथ की 'गीतांजलि' से की जा सकती है।

इनके गीतों में सौन्दर्य अपने ढंग का निराला है। स्वच्छन्दता अत्यधिक हैं। शब्द-चयन, उनकी गम्भीरता, साहित्य-सर्जन में नए संस्कारों की सृष्टि तथा विराट् जन्मभूमि की कल्पनाएँ इस बात का प्रमाण हैं कि उनके विचार अति विशाल थे। स्थूल और सूक्ष्म का रहस्यपूर्ण सम्मिलन कविता की विलक्षण मौलिकता तथा चमत्कार सृष्टि करता है।

आप कवि ही नहीं अपितु नाटककार, उपन्यासकार, कहानीकार, इतिहासज्ञ, दार्शनिक इत्यादि सभी कुछ थे। कवि ने नाटकों में चरित्र-चित्रण आदि में अपने कौशल तथा बुद्धिमत्ता का परिचय दिया है। आपको अपनी संस्कृति तथा बौद्ध-संस्कृति का पूर्ण ज्ञान था। यही कारण है कि आपके साहित्य में जीवन की उच्चतम झाँकियों के दर्शन होते हैं।

हम प्रसाद जी को चाहे किसी भी कसौटी पर कसें वे हर कसौटी पर पूर्ण उतरते हैं।

प्रश्न ५—श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की भाषा तथा शैली पर अपने विचार प्रगट कीजिए। (प्रथमा, सं० २०१२)

अथवा

निरालाजी की काव्य-धारा पर अपने विचार प्रकट कीजिए।

(प्रथमा, सं० २००६)

अथवा

"निराला कवि वास्तव मे निराला है।" इनकी काव्य-धारा पर विचार करते हुए सिद्ध कीजिए।

उत्तर—निराला जी हिन्दी के युग-प्रवर्तक कवि माने जाते हैं। आपकी प्रतिभा को देखकर चकित रह जाना पड़ता है। जहाँ आपकी कविता में जटिलता होती है तो वह मेघों के समान घनघमण्ड हो जाती है। जहाँ सरलता का दर्शन कराते हैं वहां रश्मि के समान सरल तथा तरल हो जाती है। आपकी यह एक बड़ी विशेषता है कि सरल भावों तथा गूढ़ भावों को दोनों ही रूपों में सुन्दरता से प्रकट कर सकते हैं। आपकी कविता में चरम विकास और उत्कर्ष है। आप रहस्यवाद के प्रमुख कवि हैं।

निराला जी वास्तव में निराले हैं। आपकी भाषा, शैली तथा अन्य छन्दों में निरालापन टपकता है। बचपन से ही आप स्वतन्त्र प्रकृति के व्यक्ति थे। आपको प्रथम तो बंगला साहित्य से अत्यधिक अभिरुचि थी। इधर अंग्रेजी का प्रभाव बढ़ रहा था। आप राजदरबारों में रहते थे। इसी कारण यहीं से आपको गीतों की अभिलाषा हुई। इनकी अपूर्व अभिरुचि इस ओर थी। पत्नी ने इन्हें हिन्दी सिखाई। तभी से आप हिन्दी साहित्य की सेवा कर रहे हैं।

निरालाजी ने गीतिकाव्य, मुक्तककाव्य, उपन्यास आदि सभी विषयों पर सफलतापूर्वक लिखा। तुलसीदास, गीतिका, परिमल, कुकुरमुत्ता, निरुपमा आदि अनेकों प्रसिद्ध रचनाएँ आपने की हैं। आप महान् दार्शनिक भी हैं। आपका सम्पूर्ण जीवन दार्शनिक तटस्थता और त्याग में डूबा हुआ है। इस प्रकार का आत्मनिस्संग और अनात्मपूर्ण व्यक्तित्व अन्य किसी हिन्दी कवि में

नहीं मिल सकता। यही कारण है कि आपकी 'निराला' की उपाधि शत प्रतिशत ठीक ही जँचती है। आपके शक्तिमान् संघर्षमय जीवन की छाप उनके साहित्य की प्रत्येक पंक्ति में देखने को मिलती है।

निरालाजी के काव्यों में बौद्धिकता का बाहुल्य है। भावुकता है तो परन्तु कम। आप रहस्यवादी कवि बहुत उच्चकोटि के हैं। इनके रहस्यवाद कवि होने का कारण है इनकी पत्नी और पुत्री का विरह। रहस्यवाद का इतना मार्मिक चित्रण किसी भी कवि ने नहीं किया जितना कि निराला जी ने। आपने आत्मा और परमात्मा को सम्बन्धित करने के लिए प्रकृति को प्रतीक माना है। आपकी कविता में वैराग्य और दार्शनिक भावों का अत्यधिक समावेश है।

तुम तुंग हिमालय शृंग और मैं चंचल-गति सुर सरिता।
तुम विमल हृदय उच्छ्वास और मैं कान्त कामिनी कविता॥

यदि वैराग्य की अधिकता के दर्शन करें, तो

देख चुका जो जो आए थे चले गए।
सब भले गए सब बुरे गए॥

यही वैराग्य की भावना मनुष्य को परमात्मा के पास ले जाती है। कवि ने कहा है—

"तुम रघुकुल-गौरव रामचन्द्र, मैं सीता अचला भक्ति"

इस प्रकार हम देखते हैं कि निरालाजी ने एक ओर तो मधुर गीत लिखे हैं और दूसरी ओर राम की शक्ति-पूजा, 'जागो फिर एक बार', तुलसीदास आदि अति ओजमयी तथा प्रभावशाली कविताएँ की हैं। इन्होने मुक्तक छन्दों में 'जुही की कली' और 'शेफाली' आदि रचनाएँ की है तो दूसरी ओर करुणामय कविताओं की कमी नहीं है। 'छत्रपति शिवाजी का पत्र', 'वह तोड़ती पत्थर' आदि रचनाएँ इस प्रकार की हैं। इन सब में कवि ने अपनी मनोवैज्ञानिकता का सुन्दर परिचय दिया है।

निरालाजी का सभी विषयों पर पूर्ण अधिकार है। क्या कहानी, क्या उपन्यास, क्या कविता और क्या मनोवैज्ञानिक विषय—इनमें से एक भी विषय इनसे अछूता नहीं। आधुनिक कवियों में आपको उच्च स्थान प्राप्त है।

कवि में विद्रोह-भावना भी कम नहीं। इनके अधिकांश विषय ऐसे होते हैं जिनसे समाज के प्रति विद्रोह की भावना जागृत हो जाती है। इस विद्रोह से क्रान्ति की भावना उमड़ पड़ती है। कभी तो कवि कहता है:—

एक बार बस और नाच तू श्यामा सामान सभी तय्यार।
कितने तुझको असुर चाहिए, कितने तुझको हार॥

और फिर कहता है—

आज ज़मींदारों की हवेली, किसानों की होगी पाठशाला।

प्रश्न ६—छायावाद का संक्षिप्त परिचय दीजिए। (प्रथमा, सं० २०१४)

उत्तर—रीतिकाल में अधिकांश कविताएँ शृंगारिक लिखी जाती थीं। इसके पश्चात् भारतेन्दु युग में खड़ी बोली की काव्य-धारा का उदय हुआ। द्विवेदी युग में इसकी पूर्ति हुई। यह कविता इतिवृत्तात्मक थी। इसमें भारतीय समाज की आर्थिक, राजनीतिक तथा धार्मिक समस्याओं का चित्रण था। देश-प्रेम की अभिव्यक्ति अधिक थी। समाज-सुधार-भावना-सम्बन्धी विचार भरे पड़े थे। इस कविता की प्रतिक्रिया छायावादी कविता के रूप में प्रकट हुई।

छायावादी कविताओं में जड़ प्रकृति को मानवीय रूप प्रदान किया गया है। इनका मूल समाज की भौतिक तथा स्थूल समस्याएँ हैं। प्रकृति चित्रण करते समय शृंगारिक भावनाओं का चित्रण कवियों ने खूब शान के साथ किया है। कल्पना की ऊँची-ऊंची उड़ानें भरकर भी कवि इसी भूमि पर रहते हैं। कविता में मानवीय संवेदना और सहानुभूति की छाप होती है। पन्तजी ने 'पल्लव' कविता-संग्रह में कल्पनाओं की आश्चर्यजनक उड़ान ली है। इनमें एक कोमल-कान्त तन्मयता है। कवि ने प्रकृति का आत्मा को साक्षात् करके उसका वर्णन किया है। रहस्यवाद का विकसित, काव्यालोकित और विदग्ध रूप उपरोक्त कविता-संग्रह में मिलता है।

छायावाद की कविताओं में कवि की आत्मा के भीतर शाश्वत सुख और शान्ति पाने की प्रेरणा होती है। छायावाद के सम्बन्ध मे भिन्न-भिन्न आलोचकों के भिन्न-भिन्न मत हैं। डा० नगेन्द्र छायावाद को मन की कुण्ठित भावनाओं का आधार बनाते हैं, तो पन्तजी पाश्चात्य साहित्य की रोमांटिक

परम्परा। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी जीवन-मूल्यों की अभिव्यक्ति, विशाल सांस्कृतिक चेतना एवं आध्यत्मिकता की झलक को नवीन शैली में व्यक्त की हुई कविता को ही छायावाद मानते हैं। आचार्य शुक्ल इसे काव्य-शैली मात्र कहते हैं। कुछ इसे स्थूल की सूक्ष्म के प्रति विद्रोह-भावना कहते हैं।

कुछ भी कहें प्रगतिवादी कविता छायावादी कविता की ही प्रतिक्रिया कही जायेगी। कल्पना का प्राधान्य रहने से कविता का रूप तथा अन्तरस्थ दोनों ही बदल जाते हैं। कविता की भाषा, छन्द तथा अलंकार सबमें नवीनता होती है। कवि के भीतर आत्म-विज्ञान की दीप्ति जागती है और वह मुक्त होकर अपनी आत्मानुभूति का प्रकाशन करता है। इस प्रकार छायावादी कवियों ने समाज के अगोचर स्तर में बहने वाले रस स्रोत को तो खूब साधना और निष्ठा के साथ अपनाया परन्तु समाज की गोचर शुष्कता, विभीषिका, वैषम्य और विकृतियों की ओर इन छायावादी कवियों की दृष्टि कम गई।

प्रश्न ७—श्री मैथिलीशरण गुप्त का संक्षिप्त परिचय दीजिए! सिद्ध कीजिए की आप राष्ट्रीय कवि है?

उत्तर—भारतीय मर्यादा और संस्कारशीलता के प्रतिनिधि कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त का जन्म स० १९४३ में चिरगांव में हुआ। आपको हिन्दी, बंगला और संस्कृत का विशाल एवं अपूर्व ज्ञान प्राप्त है। आपकी साहित्य-साधना हिन्दी साहित्य में अविराम गति से चलती रही। आधुनिक युग में कोई भी कवि आपकी समता नहीं कर सकता।

वर्तमान युग के कवियों में आप अति ख्याति प्राप्त तथा लोकप्रिय कवि हैं। आपकी कविताओं में देश-प्रेम और राष्ट्रीयता की भावनाएँ कूट-कूटकर भरी पड़ी हैं। आपने सर्वप्रथम 'भारत-भारती' की रचना कर, अपने काव्य को देशव्यापी तथा सर्वप्रिय बनाया। इसी देशव्यापिनी तथा सर्वप्रियता के कारण आज आप निर्विवाद राष्ट्रीय कवि कहे जाते हैं।

श्री गुप्तजी ने अपने अनेक मौलिक ग्रन्थ लिखे हैं। कुछ ग्रन्थों का अनुवाद भी किया है। इन ग्रन्थों में नाटक और रचनाओं के संग्रह भी हैं। सर्वप्रथम आपने 'भारत-भारती' लिखी। इस काव्य-ग्रन्थ ने बहुत सम्मान तथा आदर पाया। यहां से उनमें जातीय-गौरव का अभिमान जागृत हुआ और

राष्ट्रीयता की भावना की ओर अनुप्राणित हुए। इस काव्य में भाषा का तीव्र प्रवाह था। पदो मे परिष्कृत रूप और शैली में सरलता तथा सुबोधता विद्यमान थी। इसमे हरिगीतिका छन्दो की अधिकता थी। हिन्दुओं के बारे में आपने लिखा है—

हम क्या थे क्या हो गए क्या होंगे अभी,
आओ विचारें बैठकर यह समस्याएँ सभी।

'जयद्रथ वध' कवित्व की रमणीयता और रस-प्लावन की दृष्टि से हिन्दी खंड-काव्यो मे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसमे अत्यन्त ऊँचा स्थान प्राप्त करने के पश्चात् रंग मे भंग, शकुन्तला, पंचवटी आदि खण्ड-काव्यों ने जनता को मोहित कर लिया और आपकी कविता-पुस्तके जनसाधारण को अति प्रिय लगी। भाषा की दृष्टि से आपकी रचनाओं में व्यवस्थित तथा सुन्दर क्रम मिलता है। कवि ने अपनी भाषा आरम्भ से ही व्याकरण-बद्ध की। इस शुद्ध व्याकरण के कारण आपकी रचनाओं में दिन-प्रति-दिन चमक आने लगी। 'साकेत' राम-काव्य की परम्परा में एक युग-प्रवर्त्तक रचना है। इसके कई स्थल अत्यन्त मार्मिक है। कवि ने इस महाकाव्य मे कैकेयी और उर्मिला के चरित्रो को अभिनव एव उज्ज्वल रूप में चित्रित किया है। कवि ने उर्मिला के के लिए लिखा है—

मान करुँगी आज ? मान के दिन तो बीते,
फिर भी पूरे हुए सभी मेरे मन चीते।

कवि ने कुल मिलाकर लगभग ४० ग्रन्थों की रचना की तथा अनुवाद किए। काव्य के अनुवाद के रूप मे कवि को निराला स्थान प्राप्त है। कवि ने जीवन और भारतीय सस्कृति की लोकपावनी धाराओं का ऐसा व्यापक रूप लिया है जो किसी अन्य कवि मे नही पाया जाता। कवि ने सदैव जीवन के नैतिक मूल्यों पर आग्रह किया है। नारी का मातृत्व भरा त्याग रूप उसने आत्मा के मधुरतम स्वरों मे अभिव्यक्त किया है। आपकी कला की ज्योति में किसी प्रकार की कमी नही आई है। इनकी स्फुट कविताए उनकी प्राणवती साधना पर प्रकाश डालती है। कवि ने इतिवृत्तात्मक शैली द्वारा सात्विकता का अपूर्व रस बहाया है जो हमारी भावनाओ को अभिषिक्त करता रहता है।

इनकी प्रायः सभी कृतियों में भारतीय संस्कृति का गौरव चित्रण किया गया है। उनके मर्यादा और शील की मान्यता के विचार इनकी कविताओं में अति पुष्ट होते चले गये हैं। इनकी कविताएं साध्वीपने तथा कठोर चित्रण से वंचित नहीं है। ये हमें तुरन्त ही अभिभूत कर लेती है। आत्मा का आलोक उनमें दमकता है। इनके काव्य में छन्दों की विविधता और अलंकार-योजना की मौलिकता प्रशंसनीय है। 'साकेत' पर कवि को मंगलाप्रसाद पारितोषक भी मिला। आगरा विश्वविद्यालय ने आपको डाक्टर की पदवी देकर अभिनन्दित किया। गुप्तजी निरभिमानी एवं उदार-हृदय व्यक्ति हैं।

प्रश्न ८—"पंतजी हिन्दी के युगान्तरकारी कवि हैं।" सिद्ध कीजिए।

उत्तर—पन्तजी को अंग्रेजी, बंगला और संस्कृत का विशाल ज्ञान था। आपकी प्रकृति अति अध्ययनशील है। आप अति चिन्तनशील तथा तीक्ष्ण आलोचक भी हैं। हिन्दी के प्रमुख विचारकों में आपका महत्त्वपूर्ण स्थान है। आप हिन्दी साहित्य का नेतृत्व करने वाले कवियों में से एक हैं। छायावादी युग के निर्माण करने में आपका महत्त्वपूर्ण हाथ रहा।

पंतजी हिन्दी के युगान्तरकारी कवि हैं। आपने हिन्दी कविता को नए भाव, नई भाषा और नये सौन्दर्य-चित्र प्रदान किये। आपकी कविताओं में कोमलता और भावार्द्रता का प्राधान्य रहा। आप हिन्दी-भाषा और साहित्य के अति प्रमुख कवि हैं। आपने मुक्तक काव्यों का सृजन किया। इसमें कवि ने प्रकृति के साथ सौन्दर्य का उल्लेख अति सुन्दर भाषा में किया है। यदि हम कहें कि पन्तजी ने प्रकृति के वात्सल्य का वर्णन किया, तो अनुचित न होगा। माधुर्य आपकी कविताओं का प्राण है। इनकी कविताओं में मानवीय संवेदना और सहानुभूति मिलती है। वह अंग्रेजी कवि वर्ड्सवर्थ के समान प्रकृति के कण-कण में सौन्दर्य, शिक्षा तथा जीवन का अनुभव करता है।

पन्तजी का व्यक्तित्व हिन्दी में बड़ा शक्तिमान् और प्रेरक रहा है। इनके बाद होनेवाले छायावाद के प्रत्येक कवि की कविताओं में आपकी भाषा और चित्रण-शैली का प्रभाव परिलक्षित होता है। आपने हिन्दी में अन्यान्य सूरों की धारायें बहाईं तथा कविता को नये ढंगों से संवारा। कविता और संगीत को निकट लाने का श्रेय आपको ही है। पन्तजी ने स्वयं कहा कि मैंने अपने

जीवन के अभावों की पूर्ति प्रकृति द्वारा की। प्रकृति में जीवन का आरोप है। वह कवि के हृदय के सुख-दुख के समान ही बन जाती है। जैसे—

फैली खेतों में दूर तलक मखमल की कोमल हरियाली,
लिपटी जिससे रवि की किरणे चांदी की सी उजली जाली।
तिनकी के हरे हरे तन पर हिल हरित रुधिर है रहा झलक,
श्यामल भूतल पर झुका हुआ नभ का चिर निर्मल नील फलक।

आपने सदैव कोमलता तथा सौन्दर्य मे प्रकृति रूप को देखा है और वीभत्स और रौद्र से घृणा की। इनकी प्रकृति के रूप मे अति शान्तिमय हैं। झरनों की कलकल और पक्षियों की चहचहाहट में भी आपको शान्त वातावरण का ही अनुभव होता है। जैसे—

बाँसों का झुरमुट संन्ध्या का झुटपुट, चहक रही चिड़िया।
टी वी टी टुट टुट, टी वी टी टुट टुट॥

इस प्रकार हम देखते है कि कवि की कविताओ में कोमल-कान्त तन्मयता है जिससे प्रकट होता है कि मानो कवि ने प्रकृति की आत्मा को साक्षात् करके उसका वर्णन किया है। हिन्दी कविता में स्वच्छंदतावाद का अधिक विकसित, काव्यालोकित और विविध रूप इनके संग्रह 'पल्लव' की कविताओं में मिलता है।

इस प्रकार "वीणा" में कवि की अधिक आत्मनिष्ठ कवितायें संकलित है तो "गुंजन" म कवि का अधिक व्यापक और मानवीय रूप मिलता है। मानव के यथार्थ सुखमय और दुःखमय जीवन को कवि ने संगीत के स्वरों में गुनगुना दिया है। प्रकृति के आलम्बन का सहारा लेने पर भी उसक अनूभूति का वेग मन्द नहीं पढ़ा। कवि की दृष्टि वैयक्तिक सुख-दुःख से आगे वढ़कर विश्व-वेदना की ओर जाती है। हाहाकार मे भरे उत्पीड़ित संसार की वेदना को वह आवाज़ देता है।

आपके काव्यों में ध्वनि-काव्य अनेक है। इनमें प्रसिद्ध उपमानों को न देकर नवीन-नवीन उपमाएँ और उपमान लिये है। जैसे—

सरलपन ही था उसका मन, निरालापन ही आभूषण।

पन्तजी एक अच्छे दार्शनिक है। दार्शनिक रहस्यवाद आपकी कविताओं

में अति उत्तमता से मिल जाता है । शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठाई जो युग-वाणी बन गई । समाज की विषमता-भीषणता को देखकर आपने मज़दूरों और कृषकों को जागृत करने के लिए क्रान्तिकारी कविताएं लिखी हैं । 'युगान्त' में कवि एकदम क्रान्तिकारी बन बैठा और लिखा :—

जो सोये सपनों के तम में वे जायेंगे यह सत्य बात ।
जो देख चुके जीवन निशीथ, वे देखेंगे जीवन प्रभात ॥

प्रश्न ९—"हरिऔध जी का भाषा पर असाधारण अधिकार था।" इस कथन की पुष्टि कीजिए।

अथवा

हरिऔधजी के काव्य की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए आधुनिक हिन्दी-काव्य में उनका स्थान निर्धारित कीजिए। (प्र० सं० २०१८)

उत्तर—हरिऔधजी हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, फारसी और अंग्रेजी का अच्छा ज्ञान रखते थे । काव्य-क्षेत्र में आपकी प्रतिभा बहुमुखी थी । आपने अतुकान्त छन्दों में सर्वप्रथम महाकाव्य लिखा । इसमें करुणा रस के हृदय-द्रावक स्थल मिलते हैं जिनसे हृदय भर आता है और भावुक पाठकों को अवरुद्ध करके अश्रुधारा बहाने के लिए बाध्य करता है । कृष्ण के वियोग से माता यशोदा, गोप-गोपियां तथा ग्वाल-बाल ही व्यथित नहीं अपितु पशु-पक्षी तथा वृक्ष-लताओं तक का करुण चित्रण खींचा हैं । भाषा की संस्कृतनिष्ठता और कोमलकान्त पदावली पाठकों को रसास्वादन कराती है । संस्कृत के मधुरतम वृत्तों को कवि ने कुशलतापूर्वक प्रयुक्त किया है ।

कवि के वर्णन बड़े निर्दोष हैं । भाषा अपने अति परिष्कृत रूप में प्रकट हुई है । मानवीय भावनाओं का सच्चा एवं स्वाभाविक चित्रण इस काव्य की विशेषता है । खड़ी बोली का पूर्ण ज्ञान इसी से प्राप्त होता है । आप अपनी अधिकांश कविताएं ब्रजभाषा में लिखा करते थे । तत्पश्चात् खड़ी बोली में लिखना आरम्भ किया । महाकवि के रूप में आपकी प्रतिष्ठा अत्यधिक है । "रस कलश" में आपने ब्रजभाषा के पुराने कवियों की प्रणाली पर चलकर नये ढंग से रसों का विवेचन किया है । लक्षण ग्रन्थ के रूप में इसका महत्वपूर्ण स्थान है । परन्तु यह "प्रिय प्रवास" के समान लोकप्रिय और सरस नहीं है ।

आपका भाषा पर असाधारण अधिकार था। कठिन तथा सरल भाषा में भेद न करते हुए एक ही प्रवाह के साथ लिखते चले जाते है। प्रतिदिन की बोल-चाल वाली मुहावरों की भाषा मे आपने 'चोखे चौपदे' और 'चुभते-चौपदे' नामक संकलन किये। इस प्रकार खड़ी बोली की अभिव्यंजना शक्ति बढ़ाने में आपकी काव्य-साधना ने योग दिया है। इनमें कवित्व कम तथा मुहावरों का निर्वाह और चमत्कार अधिक है।

"वैदेही वनवास" कवि का करुण-रस प्रधान मकाहाव्य है। आप करुण रस के प्रमुख कवियों में से है। इस काव्य-ग्रंथ में सामयिकता पर अधिक ध्यान रखा गया है। इस महाकाव्य को कवि ने बुद्धि-संत एवं बोधगम्य बनाने की चेष्टा की है। यही कारण है कि इसमें असम्भव व्यापारों और घटनाओं का वर्णन नहीं मिलता। आपकी साहित्य-साधना अविराम गति से चलती रही जो अब भी असंख्य साहित्य-सेवियों को प्रेरणा दे रही है।

हरिऔधजी करुण और वात्सल्य के कवि होने के साथ-साथ गद्य-लेखक, साहित्य मीमांसक और उच्चकोटि के विचारक भी थे। काव्य-ग्रंथों की भूमिकाएं तथा भाषा और साहित्य सम्बन्धी विचार आपकी शास्त्रीय मर्मज्ञता और विवेचना-शक्ति पर अच्छा प्रकाश डालते हैं। "अधखिला फूल" तथा "ठेठ हिन्दी का ठाठ" गद्य-रचनाएं है। आपका गद्य भाषा और शैली पर भी असाधारण अधिकार दीख पड़ता है। भारतीय संस्कृति की सात्विकता और मर्यादाशीलता आपके काव्यों में पग-पग पर मिलती है।

आप न जाने कितनी साहित्यिक सभाओं और साहित्य सम्मेलनों के सभापति रह चुके हैं। कवि-सम्राट्, साहित्य वाचस्पति आदि कितनी ही उपाधियों से आपको सम्मानित किया जा चुका है।

व्याख्या भाग

श्रीधर पाठक

किधौं नन्दिनी शृंग व्योम-पट में प्रतिबिम्बित।
किधौं कुशंक त्रिशंकु अधर में है अवलम्बित॥

किधौं स्वर्ग फुलवारी के माली को हँसिया।
कै अमृत एकत्र करन को सेत अँकुसिया॥

प्रसंग—यह पद्यांश काव्य-संग्रह (द्वितीय भाग) में संकलित तथा श्रीधर पाठक द्वारा रचित "मयंक के प्रति" शीर्षक से उद्धृत किया गया है।

कवि कहता है कि यह चन्द्र आकृति की हँसिया जैसी रेखा जो इस आकाश के पर्दे पर दिखाई दे रही है, क्या है? यह वशिष्ठ ऋषि की गाय अर्थात् कामधेनु की पुत्री नन्दिनी का सींग है अथवा त्रिशकु राजा है (त्रिशंकु राजा ने वशिष्ठ मुनि पर अनुचित शंका की थी) जो विश्वामित्र की आज्ञावश पृथ्वी तथा स्वर्ग के मध्य लटका हुआ है। यह स्वर्ग की फुलवाडी के माली की दरांती है अथवा अमृत एकत्र करने की करछी अथवा चमचा है। कुछ समझ नहीं आता यह क्या है।

या कौं उपमा याही की मोहि देत सुहावै।
या सम दूजो ठौर सृष्टि में दृष्टि न आवै॥
यही स्वर्ग सुरलोक, यही सुर कानन सुन्दर।
यही अमरन को ओक, यहीं कहुँ बसत पुरन्दर॥

प्रसंग—उपरोक्त।

व्याख्या—कवि कहता है कि मेरी समझ में तो यही आता है कि काश्मीर ही वह स्थान है जहां पर कि देवताओं ने वास किया होगा। क्योंकि मुझे तो इस स्थान से सुन्दर स्थान और कोई कही नही दीख पड़ता। यही स्वर्ग है तथा यही देवताओं का वासस्थान है जहां कि देवराज इन्द्र वास करते है। अतः काश्मीर की उपमा स्वर्ग से ही देनी उचित है।

अयोध्यासिंह उपाध्याय

कुञ्जों कुञ्जों वन-वन जिन्हें चाव से था चराया,
जो प्यारी थीं परम व्रज के लाडले को सदा ही,
खिन्ना, दीना, विकल वन में आज जो घूमती हैं,
ऊधो, कैसे हृदय-धन को हाय वे धेनु भूलीं?

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय द्वारा रचित "यशोदा-उद्धव संवाद" शीर्षक से उद्धृत किया गया है।

व्याख्या—श्रीकृष्ण भगवान् को गोविन्द इसी कारण कहते थे कि उन्हें गौओं से अत्यधिक प्यार था। वे गौओं को बड़े प्रेम से चराने जाते थे। उनके साथ सारा दिन वनों में घूमते थे। कृष्ण उन्हें बहुत प्यार करते थे। आज वही गौएँ खिन्न स्वभाव से वनों में मारी-मारी फिर रही हैं। परन्तु कृष्ण उन्हें नहीं मिलते। वे दुखियारी गाएँ भला उन्हें कैसे भुला सकती हैं। इस प्रकार एक मीठी उलाहना श्रीकृष्ण को मारा गया है।

मैं भी सारा दिवस मुख को देखते ही बिताती।
हो जाती थी व्यथित उसको म्लान जो देखती थी॥
हा! वैसे ही अब वदन को देखती कौन होगी।
ऊधो, माता सदृश ममता अन्य को है न होती॥

प्रसंग—उपरोक्त।

व्याख्या—मां की ममता पुत्र से अति घनिष्ठ होती है। वह किसी भी प्रकार की आपत्ति अपने पुत्र पर आती नहीं देख सकती। श्रीकृष्ण जी मथुरा चले गये। पीछे से यशोदाजी कहती हैं कि मैं अपना सारा दिन उसके सुन्दर मुख को देखकर विताया करती थी। यदि वह तनिक भी अप्रसन्न होता था कौन देखेगी। माता जैसी ममता भला किसी अन्य की किस प्रकार हो सकती है।

वे बैठी पति साथ देखती थीं सरि-लीला।
था वदनांबुज विकच वृत्ति थी संयम शीला॥
सरस मधुर वचनों के मोती कभी पिरोतीं।
कभी प्रभात विभूति विलोक प्रफुल्लित होतीं॥

प्रसंग—यह पद्यांश श्री हरिऔध द्वारा रचित "उपवन" शीर्षक से प्रस्तुत किया गया है।

व्याख्या—सीताजी श्रीरामचन्द्रजी के साथ वनों में थीं। सीताजी नदी के किनारे पर बैठी थीं और अपने पति श्रीरामचन्द्र की शोभा को देख रही थीं। इनका कमल जैसा मुख प्रसन्न तो अवश्य था परन्तु था गम्भीर। कभी तो सरस तथा मीठे एवं प्रिय लगने वाले वचन मुखारविन्द से बोलती थीं। और कभी प्रातःकालीन प्रकृति की आभा को देखकर प्रफुल्लित हो जाती थीं।

गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही'

तू है दिवाकर तो कमल मैं, जलद तू, मैं मोर हूं।
सब भावनाएँ छोड़कर अब कर रहा यह शोर हूं॥
मुझ में समा जा इस तरह तन प्राण का जो तौर है।
जिसमें न फिर कोई कहे मैं और हूं, तू और है॥

प्रसंग—यह पद्यांश श्री गयाप्रसाद शुक्ल द्वारा रचित 'भगवान् और भक्त'' शीर्षक से प्रस्तुत किया गया है।

व्याख्या—भगवान् का भक्त, आराधना करते हुए कहता है कि हे स्वामी यदि तू सूर्य है तो मैं कमल हूं। यदि तू मेघ है तो मैं मोर हूं। अब मैंने तेर गर्जना सुनकर अन्य सब आशाएँ छोड़ दी है और प्रसन्न होकर नाच रहा हूं और यह शोर कर रहा हूं कि हे आराध्य देव ! अब मुझे और अधिक दुःखी न कर। अब शीघ्र ही तू मेरे अन्दर इस प्रकार विलीन हो जा, जिस प्रकार कि शरीर में प्राण है। इस प्रकार विलीन हो जाने के पश्चात् मेरे पृथक्-पृथक् तत्त्व होते हुए भी एक ही कहलाने लग जायेंगे। इस प्रकार भक्त भगवान की आराधना करके पराकाष्ठा को पार कर गया है।

करने चले तंग पतंग जलाकर मिट्टी-मिट्टी मिला चुका हूं।
तमतोम का काम तमाम किया, दुनिया को प्रकाश में ले जा चुका हूं॥
नहीं चाह 'सनेही' सनेह की और, सनेह में जी मैं जला चुका हूं।
बुझने का मुझे कुछ दुःख नहीं, पथ सैकड़ों को दिखा चुका हूं॥

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण श्री 'सनेही' के "बुझा हुआ दीपक" शीर्षक से उद्धृत किया गया है।

व्याख्या—बुझता हुआ दीपक कहता है कि जब मैं प्रकाश दे रहा था तो सैकड़ों कीट मेरे ऊपर आकर गिरते थे और मुझे दुःखी करने का प्रयत्न करते थे। मैंने उन्हें जलाकर भस्म कर दिया और वे अब मिट्टी मे जा मिले। मै अन्धकार की समाप्त कर चुका हूं। संसार को प्रकाश दिया अर्थात् अज्ञान नष्ट करके प्रकाश लाया। 'सनेही' जी कहते हैं कि इस संसार से अब और अधिक प्रेम की अभिलाषा नहीं है। विश्व के प्रति अपने हृदय के प्रेम का पालन कर चुका। मुझे शान्त हो जाने का दुःख उसी प्रकार नहीं जिस प्रकार

कि जलते दीपक को बुझने के पश्चात् । क्योकि मैं भी उसी की भांति सैंकड़ों पंथिकों का पथ-प्रदर्शन कर चुका है ।

श्री मैथिलीशरण गुप्त

"प्रीति-स्वाति का पिया शुक्ति बन-बन कर पानी,
राजहंसिनी, चुनो रीति मुक्ता अब रानी !"
"विरह रुदन मे गया, मिलन मे भी मैं रोऊँ,
मुझे और कुछ नहीं चाहिए, पद-रज धोऊँ ।।"

प्रसग—यह पद्यांश श्री मैथिलीशरण द्वारा रचित "लक्ष्मण-उर्मिला मिलन" शीर्षक से प्रस्तुत किया गया है । इस पद्याश से उर्मिला की सखी शृगार के लिए उसे वाध्य कर रही है परन्तु उर्मिला नहीं मानती । सखी कहती है कि—

हे राजहंसिनी ! इसमे संदेह नहीं कि तुमने अब तक विरहाग्नि में सीपी बनकर प्रेम रूपी स्वाति नक्षत्र मे वरसा हुआ आँखों का पानी पिया । परन्तु तुम उनकी रानी हो तुम्हें वास्तविक मोती चुगने चाहिएँ । अर्थात् तुम्हें अब उनका स्वागत करना चाहिए । तुम्हारे राजा तुम्हें रोती देखकर दु:खी होगे । अतः उचित रीति से तैयारी करो । उर्मिला इससे सहमत नही होती और कहती है कि मैने १४ वर्ष का इतना लम्बा समय रो-रोकर बिताया । अब इस मिलन समय के शेप समय को इसी प्रकार बिताना चाहती हूं । मुझे अन्य किसी प्रकार की आशा नही, मै तो केवल उनके पैरों की धूल को अपने आंसुओं से धो डालना चाहती हूं । इस प्रकार कवि ने स्त्री के आत्म-समर्पण भाव की तीव्रता और महानता पर मार्मिक तथा तीक्ष्ण शब्दों में उल्लेख किया है ।

अति मुग्ध होकर पार्थ ने तब मूंद आँखों को लिया,
पर खोलने पर फिर न वैसा दृश्य दिखलाई दिया ।
सुस्मित-वदन श्रीकृष्ण को सामने देखा खड़ा,
चित्रस्थ से वह रह गए करते हुए विस्मय वड़ा ।।

प्रसंग—यह पद्यांश श्री मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचित "वैकुंठ दर्शन" नामक शीर्षक से प्रस्तुत किया गया है ।

व्याख्या—भगवान् अभिमन्यु पर मुग्ध होकर कहने लगे कि हे अभिमन्यु ! मैं तुम्हारे चरित्र से अत्यन्त सन्तुष्ट हूं जो चाहो माँग लो ! अर्जुन ने प्रसन्न-चित्त होकर अपनी आंखें बन्द कर लीं। आंखें खोलने पर उन्हें कृष्ण का वह रूप दीख पड़ा। इससे वह बड़े आश्चर्य-चकित हुए। अर्जुन को दुःखी देख कर भगवान् श्रीकृष्ण ने इन्हें समझाना चाहा कि तुम्हें पहले की भांति शोक नहीं करना चाहिए। कृष्ण ने अर्जुन के कन्धे पर हाथ रखा और अर्जुन श्रीकृष्ण के साथ वैकुण्ठ जा पहुचे। वहां पहुंचते ही अर्जुन श्री विष्णु भगवान् के महल में पहुंच गए वहां भगवान् को लक्ष्मी के साथ सिंहासनारूढ़ देखा। थोड़ी ही देर में वहां अभिमन्यु भी आ गया। पहले उसने भगवान् को प्रणाम किया फिर अन्य देवताओं को। भगवान् की यह लीला देखकर वह आश्चर्य चकित रह गये।

माखनलाल चतुर्वेदी

'ब्रिटिश राज जब टुकड़े-टुकड़े हुआ कि फिर किसका भय,
उत्तर-दक्षिण पूरब-पश्चिम, लख तेरी ही जय।
मस्तक पर दायित्व भुजा में शस्त्र, दृगों में ज्वाला,
तेरी हुँकारों पर उमड़े कोटि-कोटि जयमाला।
तीस करोड़ धड़ों पर जीवित तीस कोटि के शिर हैं,
तुम संकेत करो कि हथेली पर हँस कर हाजिर हैं।

प्रसंग—यह पद्यांश श्री माखनलाल चतुर्वेदी द्वारा लिखित "तेरे घर पहिले होता विश्व सवेरा" नामक शीर्षक से प्रस्तुत किया गया है। भारतवर्ष के स्वतन्त्र हो जाने के पश्चात् कवि ने अपने हृदय के उद्‌गारों को इस प्रकार प्रकट किया है।

व्याख्या—भारतवर्ष से ब्रिटिश साम्राज्य का पतन हो चुका है। मुझे अब किसका भय है। विश्व में चारों ओर अर्थात् उत्तर, दक्षिण, पूर्व तथा पश्चिम में तेरी ही जय जयकार है। अब तेरी विजय में किसी प्रकार का सन्देह नहीं। अपने कर्त्तव्य का उत्तरदायित्व समझकर, करों में शस्त्र लेकर और नेत्रों में विजय करने की ज्वाला सहित आगे बढ़े। भारत को उन्नत करने के लिए प्रत्येक प्रकार का भार तेरे ही ऊपर है। तेरी प्रत्येक क्रोध भरी गर्जना से

करोड़ों प्राणी जयमाला लेकर उमड़ पड़ें। भारतवर्ष में तीस करोड़ के लगभग जनसंख्या है। ये सभी प्राणी तुम्हारे संकेत मात्र से अपने जीवन को हथेली पर रखकर अपने कर्त्तव्य को निभायेंगे। कवि ने इस प्रकार स्वतन्त्रता का पूरा आलाप आलापा है।

> तुम बढ़ते ही चले मृदुलतर जीवन की घड़ियाँ भूले,
> काठ छेदने लगे सहस्रदल दल की नव-पंखड़िया भूले।
> मन्द पवन सन्देश दे रहा, हृदय कली पथ हेर रही,
> उड़ो मधुप! नन्दन की दिशि में ज्वालाएँ घर घेर रहीं।

प्रसंग—यह पद्यांश श्री माखनलाल चतुर्वेदी द्वारा लिखित "नव स्वागत" नामक शीर्षक से उद्धृत किया गया है। कवि कहता है कि—

हे भ्रमर रूपी नागरिको! तुमने अपने सभी सुख भुलाकर आपत्ति का मार्ग अपनाया अर्थात् स्वतन्त्रता संग्राम के लिए आग बढ़े। जिस प्रकार भ्रमर रात्रि के समय पंखड़ियों में बन्द रहता है उसी प्रकार तुम भी अपने घर में पूर्णरूप से सुख भोगते थे। परन्तु भ्रमर पंखड़ियों को भूलकर काठ छेदने लगता है और आगे बढ़े। मन्द-मन्द वायु चल रही है और बसन्त का आदेश दे रही है। हृदयकली तुम्हारी बाट जोह रही है। अर्थात् तुम्हारी आशाएँ स्वतन्त्रता का सन्देश दे रही हैं और स्वतन्त्रता तुम्हारी बाट जोह रही है। हे भ्रमरों अर्थात् हे ब्रिटिश राज्य से लोहा लेने वाले पुरुषार्थियो! तुम अब स्वतन्त्र वातावरण की ओर चलो। वहीं पर चलकर विश्राम करना क्योंकि यहां पर तो अग्नि की ज्वालाएँ तुम्हें भस्म कर देना चाहती है। इस प्रकार कवि ने भारतीयों के हृदयों में स्वतन्त्रता की भावनाएँ भरने का प्रयत्न किया है।

श्री जयशंकर प्रसाद

> बचा कर बीज रूप में सृष्टि, नाव पर झेल प्रलय का शीत।
> अरुण केतन लेकर निज हाथ, वरुण पथ में हम बढ़े अभीत।

प्रसंग—यह अवतरण श्री जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित "भारतवर्ष" शीर्षक से उद्धृत किया गया है।

व्याख्या—कवि ने भारत में विद्या और कला का सबसे पहले प्रकाश होना दिखाया है। सरस्वती विद्या और कला की अधिष्ठात्री देवी है और उसी से इनका विकास हुआ। भारत की अनेक नदियों का भारतीय संस्कृति से सम्बन्ध है क्योंकि ये भारतवर्ष में फैली हुई हैं। आर्य लोग भी सारे भारतवर्ष में फैले हुए थे। इन नदियों को पवित्र नदियों में गिनते थे। इस प्रकार इन नदियों का प्रान्त-विशेष से सम्बन्ध रहने पर सांस्कृतिक महत्त्व के कारण अखिल आर्य जनता से भी घनिष्ठ सम्बन्ध है।

कवि लिखता है कि बीज रूप में सृष्टि को बचाकर तथा नाव पर प्रलय-रूपी कष्टों को सहन करके संसार की रक्षा की। (बीज रूप में सृष्टि को बचाकर प्रलयकाल में नाव पर घूमने की कथा उपनिषदों और ब्राह्मणों में वर्णित है।) इस प्रकार हम (आर्य) पश्चिम का रक्षा करने के लिए आगे बढ़े। इसका एक और भी अर्थ है कि आर्य लोग प्रलय की हवाओं को झेलते हुए, नाव पर चढ़ कर, हाथ में झण्डा लेकर संसार की रक्षा हेतु, प्रलय रूपी हवाओं की चिन्ता न करते हुए, समुद्री मार्ग में आगे बढ़े। इस प्रकार कवि ने प्राचीन संस्कृति की एक अद्भुत छटा हमारे सामने रखी है।

किस निष्ठुर ठंडे हृत्तल में जमे रहे तुम वर्फ समान।
पिघल रहे किस की गर्मी से हे करुण के जीवन प्रान॥
चपला की व्याकुलता लेकर, चातक का ले करुण विलाप।
तारा-आँसू पोंछ गगन के रोते हो किस दुःख से आप?

प्रसंग—यह अवतरण श्री प्रसाद द्वारा लिखित "मेघों के प्रति" नामक शीर्षक से उद्धृत दिया गया है। कवि ने बादलों को जैसे ही आकाश में उमड़ते हुए देखा वह आनन्द-विभोर हो उठा।

कवि को कालिदास का 'मेघदूत का मेघ' स्मरण हुआ। उसने यह अनुमान लगाया कि विरहिणी ने इसे इतने दिनों के पश्चात् विदा किया है। अब यह कुछ-न-कुछ नया सन्देश अवश्य लाया होगा।

व्याख्या—कवि बादल से कह रहा है कि तुम इतने समय तक वर्फ के समान किस विरहिणी के निर्दय हृदय में शीतल होकर बैठे रहे। वह नायिका इतनी निष्प्राण तथा निर्दय थी कि उसने तुम्हें नहीं आने दिया। उसने अन्य प्राणियों के दुःख का अनुभव नहीं किया। उसका हृदय दुःखी नहीं हुआ जान

पड़ता। यही कारण है कि बादल के हृदय को भी उसने अपने हृदय की शीतलता के आवेगवश शीतल ही कर दिया है और बादल इसी कारण जम गया है। हे मेघ ! तुम स्वयं करुणामय हो। तुम करुणा को जीवन प्रदान करने वाले हो। यह तो बताओ कि तुम जो आज पिघल रहे हो वह किस विरहिणी का तपन है ? यदि ऐसा नहीं होता तो जमे ही रहते। बरसने का नाम ही न लेते। बिजली आकाश में अति व्याकुल दीख पड़ती है। उधर पपीहा बेचैन है तो क्या तुम उनके विलाप के आँसू नहीं देख सकते ? प्रतीत होता है कि तुम उन दोनों का विलाप देखकर आकाश के तारे रूपी आँसुओं को पोंछ कर स्वय रो रहे हो। बिजली अधिक व्याकुलता के कारण ही बार-बार आकाश में चमक रही है। पपीहा बार-बार पीहू-पीहू करता है। यह उनकी अति व्याकुलता सिद्ध करता है। अतः तुम अति करुणामय हो जो उसके दुःख को दूर करके स्वयं रो रहे हो। इस प्रकार कवि ने इन पंक्तियों में बादल को अति करुणामय सिद्ध कर दिया है।

(क) अरे मधुर है कष्टपूर्ण भी जीवन की बीती घडियां।
जब निसिबल होकर कोई जोड़ रहा बिखरी कड़ियां।
वही एक जो सत्य बना था घिर सुन्दरता में अपनी।
छिपा कहीं तब कैसे सुलझे उलझी सुख दुःख की लड़ियां।

(प्रथमा संवत्, २०१८)

प्रसंग—प्रस्तुत पंक्तियां महाकवि जयशंकर प्रसाद जी के महाकाव्य 'कामायनी' में से ली गई है। मनु अपनी पत्नी श्रद्धा को छोड़कर चले जाते है। श्रद्धा अपने नवजात शिशु के साथ धीरतापूर्वक विरह के दिन काटती है श्रद्धा को मनु से ऐसे कठोर व्यवहार की आशा नहीं थी। ऐसी दुखित अवस्था कामायनी (श्रद्धा) को अपने बीते हुये दिनों की याद आती है और वह तरह-तरह की बातें सोचती है।

व्याख्या—कामायनी कहती है कि बीते हुने जीवन की दुख से भरी हुई वे घड़िया भी सुखदायी है, जबकि खाने के लिये भोजन तक भी नहीं मिलता था परन्तु उस समय भी जीवन की बिखरी हुई कड़ियों को जोड़ने का प्रयत्न किया जाता था अर्थात् जीवन के दुखों को दूर करने की कोशिश की जाती थी।

अपने चिर सौन्दर्य जब वहीं एक सत्य छिपा हुआ है तो फिर जीवन के दुखों और सुखों की उलझी हुई गथियों को किस प्रकार सुलझाया जा सकता है।

वे कुछ दिन जो हंसते आए अंतरिक्ष करुणाचल से।
फूलों की भरमार, स्वरों का कूजन लिए कुहुक बल से।।
फैल गई जब स्मिति की माया किरन लाल की क्रीड़ा से।
चिर प्रवाह में चले गए वे आने को कहकर छल के!

प्रसंग—यह अवतरण श्री जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित "कामायनी का विरह" शीर्षक से प्रस्तुत किया गया है।

व्याख्या—विरहणी के विरह का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि कामायनी के सौभाग्य के दिन बहुत थोड़े समय के लिए अंतरिक्ष से आए। वे दिन छल से विकसित तथा अधिक मधुर स्वर लिए हुए थे। काल अति प्रभावशाली होता है। जैसे ही प्रकृति की मुस्कान का जादू भरी किरण फैली वैसे ही वे सुखमय दिन धोखा देकर दुबारा आने के लिए कहकर चले गए और लौटकर नहीं आए। कवि के कहने का आशय यह है कि कामायनी के यौवन के दिन विलासपूर्ण बीत रहे थे। उसे किसी प्रकार की चिन्ता नहीं थी। कालचक्र टलाए नहीं टलता। वह इस सुखमय जीवन को नहीं देख सका। हमारे विलासिता पूर्ण सुखमय जीवन कालचक्र के प्रवाह में बीत गए। हमें आशा थी कि हमारे सुखी दिन सम्भवत: फिर आ जायेंगे। परन्तु वे दिन उसी प्रकार नहीं आए जिस प्रकार कि समय बीत जाने पर वापस नहीं आता। इसमें कवि ने विरहिणी का विरह चरम-सीमा पर पहुंचाकर अपने कवित्व का परिचय कराया है।

प्रणय किरण का कोमल बन्धन मुक्ति बना बढ़ता जाता
दूर किन्तु कितना प्रतिपल वह हृदय समीप हुआ जाता।
मधुर चाँदनी सी तंद्रा जब-जब फैली मूर्च्छित मानस पर,
तब अभिन्न प्रेमास्पद उसमें अपना चित्र बना जाता।

प्रसंग—उपरोक्त।

व्याख्या—कवि इन पंक्तियों में अपनी दार्शनिकता का परिचय कराता हुआ कहता है कि स्त्री तथा पुरुष का यह सुख-दुःख का बन्धन एक अति कोमल बन्धन होता है जो कि मुक्ति के मार्ग पर एक-दूसरे के सामीप्य में आ, दिन-

प्रतिदिन आगे की ओर बढ़ता ही जाता है। निस्सन्देह दोनों हृदय एक-दूसरे से बहुत दूर हैं, परन्तु गठ-बन्धन होने से यह अत्यधिक समीप आता जाता है। यह उसी प्रकार है जिस प्रकार से दो कड़ियां तार से बांध देने पर एक-दूसरे के समीप होती जाती हैं और अति को पार कर अंत तक पहुंच जाती हैं। इसी प्रकार प्रेम के प्रसार से दोनों एक-दूसरे के पास आ जाते हैं। यह अलौकिक बन्धन है। लौकिक बन्धन से इसमें विलक्षणता है। आगे कवि कहता है कि जब मूच्छित मानस में आकर्षक ज्योति के समान जब भाव-मुग्धता फैल जाती है तो हृदय में तल्लीनता आ जाती है। उस पुण्य बन्धन के कारण एकरूप हुआ वह प्रेमी, प्रेमिका के हृदय में एक चित्र खींच जाता है। प्रियतमा अपने प्रिय के प्रेम-बन्धन में पड़कर उसकी मूर्ति अपने हृदय में अंकित कर लेती है जो अमिट होती है। प्रिय के न रहने पर भी आन्तरिक चित्र नहीं मिटता और यही कारण है कि प्रियतमा को अपने प्रिय की याद आती रहती है।

रामनरेश त्रिपाठी

सत पुरुषों के मनोभाव सा सरल विमल निरलस कलरवमय,
अपनी ही गति में निमग्न है धारागत उज्ज्वल फेनिल पय।
पुष्प भार से अवनत पौदों से सुखप्रद सुवास संचय कर,
आती हैं मारुत की लहरें मन्थर गति से मनोव्यथा हर।।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश श्री रामनरेश त्रिपाठी द्वारा रचित "स्वप्न" कविता से उद्धृत किया गया है।

व्याख्या—कवि इन पंक्तियों में नदी के सरल स्वभाव का वर्णन करता है। वह कहता है कि नदियों की धाराओं का स्वभाव सज्जन पुरुष के स्वभाव की भाँति सरल तथा निष्कपट होता है। यह लगातार कलरव करता हुआ अपनी गति से बहता रहता है। इसे किसी के बुरे कार्यों तथा कर्मों से कोई प्रयोजन नहीं। यह अपने इस स्वभाव पर किसी प्रकार का अभिमान नहीं करता। फिर कवि उस मन्द-मन्द चलनेवाली सुगन्धित वायु का वर्णन करता है कि यह वायु खिले हुए फूलों से झुके हुये वृक्षों से सुगन्ध एकत्रित करके मन्द गति से बहती रहती है। यह मानसिक वेदना को दूर करती है। चित्त को प्रसन्न करती है। हृदय की व्यथाओं को दूर करती है। वायु का स्वभाव भी सन्तों जैसा ही है।

ठाकुर गोपालशरण सिंह

सुखद सजीली सस्य श्यामला यहाँ की भूमि,
श्याम के ही रंग में रंगी है प्रेम भाव से।
रज भी पुनीत हुई उनके चरण छू के,
शीश पर उसको चढ़ाते भक्ति भाव से।
पाप-पुंज-नाशी उर-कमल विकासी हुआ,
यमुना सलिल बस उनके प्रभाव से।
कर दिया पूरा उसे वर वृन्दावन ने ही,
जो थी कमी मेदिनी में स्वर्ग के अभाव से।

प्रसंग—ये पंक्तियां श्री गोपालशरण सिंह द्वारा लिखित 'ब्रज वर्णन' शीर्षक से प्रस्तुत की गई हैं।

व्याख्या—कवि ने ब्रजभूमि के विभिन्न स्थानों का वर्णन करके उसके सौन्दर्य पर प्रकाश डाला है। उसे अब भी ब्रज-भूमि में कहीं कृष्ण दिखाई देते हैं तो कहीं बांसुरी की ध्वनि सुनाई पड़ती है। कवि कहता है कि इस ब्रज-भूमि की भूमि अति आनन्द तथा सुख के देने वाली है। ऐसा दीख पड़ता है कि हरी भरी भूमि कृष्ण के प्रेम-स्वभाव के कारण ही उसके रंग में रँगी हुई है। अर्थात् पृथ्वी का श्यामरंग कृष्ण के रंग के प्रतिरूप के अतिरिक्त कुछ नहीं। कृष्ण के चरण छूने से यह भूमि अति पवित्र हो गई है। यही कारण है कि भक्त लोग भक्तिभाव के कारण ब्रज-रज को अपने मस्तक पर धारण करते हैं। यमुना का शीतल, निर्मल एव स्वच्छ जल उन्हीं के प्रताप से सब दुःखों को नष्ट करने वाला है। इसमें स्नान करने से सारे पाप धुल जाते हैं। इसका जल हृदय-रूपी कमल को खिलानेवाला है। पृथ्वी पर स्वर्ग न होने के कारण जिन बातों की कमी थी वह इस वृन्दावन ने पूरी कर दी है। कहने का अभिप्राय यह है कि ब्रजभूमि, विशेपतया वृन्दावन स्वर्ग-समान है। यहाँ पर हर प्रकार का आनन्द है किसी प्रकार का कष्ट नहीं। स्वर्ग के सभी गुण इस भूमि में हैं।

मोह मद मत्सर का होता न प्रवेश वहाँ,
रहता न कोई वहाँ कपटी कुचाली है;
राजा है न कोई वहां, रानी है न कोई वहाँ,
शिशु! सब भाँति तेरी दुनिया निराली है।

प्रसंग—ये पंक्तियां श्री गोपालशरणसिंह द्वारा रचित "शिशु की दुनिया" नामक शीर्षक से प्रस्तुत की गई हैं।

व्याख्या—इन पंक्तियों में कवि भावुकतापूर्ण मनोवैज्ञानिक चित्रण द्वारा शिशु के आनन्दपूर्ण एवं कुत्सित विचारों से मुक्त हृदय का वर्णन करता है। कवि कहता है कि शिशु-हृदय में मोह, चिन्ता, दुःख तथा सुख का प्रवेश नहीं होता। किसी प्रकार का कपट अथवा निकृष्ट प्रवृत्ति उसमें नहीं होती। उसके लिए राजा तथा प्रजा, अमीर-गरीब, ऊँच-नीच इत्यादि का कोई माप-दण्ड नहीं। वे सभी को समान समझते हैं। यही कारण है कि शिशु का संसार बिलकुल निराला है। अन्य जगत् नाना प्रकार के रोगों में ग्रस्त होता है और हर समय कुछ-न-कुछ हेरा-फेरी करने का प्रयत्न करता है। जगत्-स्वभाव में तथा शिशु-स्वभाव में आकाश-पाताल का अन्तर होता है।

नेक भी दया न कभी तुम दिखाते हमें,
किस भाँति दया-धाम तुम्हें हम मानते?
लेते सुधि हम दीनों की कदापि नहीं,
कैसे दीन-बन्धु हम तुम्हें पहचानते?

प्रसंग—यह पद्यांश श्री गोपालशरणसिंह द्वारा रचित "उपालम्भ" शीर्षक से प्रस्तुत किया गया है।

व्याख्या—इस उपालम्भ कविता में कवि भगवान् के प्रेम का उलाहना ... और कहता है कि हे दीनबन्धु अब तुमने अपना स्वभाव सर्वथा बदल लिया है। तुम दीनबन्धु, कृपालु, दयालु, भक्त रक्षक इत्यादि कुछ भी नहीं रहे। हमारे साथ आपने कभी भी दया नहीं दिखाई। पता नहीं संसार आपको दया का धाम, करुणामय आदि नामों से किस प्रकार पुकारता है। तुम हम दीनों की सुधि बिलकुल नहीं लेते। अपने कार्यों में मस्त रहते हो। पता नहीं तुम किस प्रकार दीनबन्धु कहलाते हो। मुझे तो इसमें कुछ भ्रम है कि तुम कृपानिधान हो।

राय कृष्णदास

मैं इस झरने के निर्झर में प्रियवर वह सुनती हूं गान,
कौन गान? जिसकी तानों से परिपूरित हैं मेरे प्राण।
कौन प्राण? जिसको निशिवासर रहता एक तुम्हारा ध्यान,
कौन ध्यान? जीवन सरसिज को जो सदैव रखता अम्लान।

प्रसंग—यह कविता श्री रायकृष्णदास द्वारा लिखित "सम्बन्ध" शीर्षक से प्रस्तुत की गई है। इस कविता में कवि ने प्रिया का प्रियतम के साथ अनुपम सम्बन्ध का वर्णन किया है। निर्झर, प्राण, ध्यान तथा अम्लान का सम्बन्ध दर्शाया है।

व्याख्या—हे प्रियतम! मैं इस झरने के निरन्तर झरते रहने के कलरव से वह गान सुनाती हूं जिसकी तीनों से मेरे प्राण परिपूरित हैं अथवा भरे पड़े हैं। वह ध्यान कौन-सा है? वही प्राण हैं जिन्हें रात-दिन तुम्हारा ही ध्यान रहता है, वह ध्यान कौन-सा है? यह वही ध्यान है जिसे मैं सदैव हृदय में रखती हूं और यह ध्यान मेरे कमलरूपी मन को कभी नहीं मुर्झाने देता। कवि ने प्रियतम का सम्बन्ध इस झरने से क्यों सम्बन्धित किया है। झरना जब झर-झर कलरव करता है तो उससे भी प्रियतम का शब्द ही सुनाई पड़ता है। वह अपनी कथा की राम-कहानी इसी प्रकार सुनाता है। वह गान उसी प्रियतम का है। इसी ध्यान में वह प्राण रत होकर सदा हृदय में वास करता है। इसी प्रकार प्रिया अपने प्रियतम को कहीं भुलाती।

श्री गुरुभक्त सिंह 'भक्त'

अब क्या था प्रसून विटपों ने जब तेरा देखा आना,
तब कुछ कांप उठे, कुछ दहले, चाहा झुक लुक छिप जाना,
नन्हीं नन्हीं कच्ची कलियाँ पा करके पत्तों की आड़,
चिमट चिमट कर लिपट रह गईं डालों से जमघट को फाड़।

प्रसंग—यह अवतरण श्री गुरुभक्तसिंह भक्त द्वारा लिखित "पवन" शीर्षक से उद्धृत किया गया है। इसमें कवि ने ने प्रकृति-वर्णन में अपनी कुशलता का प्रमाण दिया है। यह चित्रण मानवीकरण में किया है। कहीं भी अवास्तविकता के दर्शन नहीं होते।

व्याख्या—कवि कहता है कि जब पवन कुसुम-नगर में पहुंची तो उसके पहुँचते ही इस प्रकार का हाहाकार मचा जिस प्रकार कि लुटेरे के आने पर होता है। फूलों वाले वृक्षों ने सोचा कि लुटेरा आ गया है। उसे देखकर कुछ तो कांप उठे, कुछ डर से भयभीत हुए और कुछ ने इधर-इधर झुक जाना चाहा। कहने का अभिप्राय यह है कि चूंकि पवन इन्हें तंग करती है इसलिये ये उसके कष्टों से बचने के लिए कुछ प्रयत्न करते हैं। जो छोटी-छोटी कलियां थीं उन्होंने पत्तों की आढ़ ली अर्थात् सहारा लिया। वहां पर वे डालियों और

टहनियों के समूह को फाड़कर वृक्षों के तनों के साथ छिपी रहीं जिससे उन्हें किसी प्रकार के कष्ट की सम्भावना न हो। कवि ने यह अति सुन्दर चित्रण किया है। यदि घर में कोई अत्याचारी आ जाता है तो उस घर के लोग भी इसी प्रकार करते हैं। हां कुछ साहसी पुरुष उसका मुकाबला करने का प्रयत्न करते हैं। इसी प्रकार जो टहनियाँ इस योग्य हैं कि पवन का मुकाबला कर सकें, अवश्य करती हैं। कुछ भी हो, हाहाकार अवश्य रहता है।

श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

यह कैसी विक्षिप्तता अरे ! यह कैसा उन्माद भयंकर ?
जला रहे हम अपना ही घर ! काट रहे हैं अपना ही सर !
अरे हमें तो शान्ति सौख्य का देना है वरदान नरों को।
ध्वस्त नहीं, निर्मित करना है हमको गाँवों को नगरों को।
आज खून का नहीं अमिय का वर्णन करने यहाँ पधारो,
आओ इस झंडे के नीचे अहो वीर यह जगत उबारो॥

प्रसंग—यह पद्यांश श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' द्वारा रचित "जगत उबारो" नामक शीर्षक से उद्धृत है। कवि क्रान्ति का आह्वान देश के नवयुवकों को सुनाता है। मानव मानव का रक्त चूसता है जिससे मनुष्य का जीवन अति संकटमय हो गया है।

व्याख्या—कवि कहता है कि यह कैसा पागलपन है कि हम अपने घरों में स्वयं ही आग लगा रहे हैं। शस्त्रों द्वारा हम अपने ही सिरों को काट रहे हैं। मनुष्यों का संहार मनुष्य कर रहे हैं। यह पागलपन की अति है इस प्रकार का युद्ध तो पशुओं में भी नहीं होता। भगवान् ने हमें बुद्धि, ज्ञान, समझ एवं शक्ति प्रदान की है। हमें उनका प्रयोग करना चाहिए। हमें इस मानव जाति को ध्वस्त नहीं करना अपितु इसका निर्माण करके एक आदर्श स्थापित करना है। हमें सुख तथा शान्ति का पाठ मनुष्यों को पढ़ाना है, उनमें मनुष्य जाति के गुणों का उत्पादन करना है। कष्ट के स्थान पर सुख, अशान्ति के स्थान पर शान्ति लानी है। इन नगर और गांवों को ध्वस्त नहीं करना अपितु इन्हें बसाना हमारा कर्त्तव्य है। यदि हम ऐसा नही करेंगे तो दुखियों की संख्या अधिक होगी। हमें इसलिए गिरे हुए मनुष्यों को उठाने का प्रयत्न करना चाहिए। तुम्हें आज इस संसार में खून की वर्षा नहीं करनी अपितु अमृत वर्षा

करनी है। हे वीरो! भारतीय झण्डे के नीचे आकर इस विश्व का उद्धार करो। भारतीय झण्डे में तीन रंग होते हैं। हरा रंग हमारी हरियाली खेतियों के उन्नत होने की निशानी है, केशरिया रंग बल का चिन्ह है तो सफेद हमारी सत्यता का। इस झण्डे में जो चक्र है वह इस बात का चिन्ह है कि हम भारत के शत्रुओं का मुकाबला करने में कभी पीछे नहीं रहेंगे। जब इन चारों गुणों का अनुकरण हम करेंगे तो यह सम्भव ही नहीं अपितु निश्चित है कि हम अपने भारतवर्ष को उन्नति के शिखर पर अवश्य पहुंचा सकेंगे। इस प्रकार कवि राष्ट्रीय भावनाओं की जागृति तथा समष्टिगत उद्धार की भावनाएं भारतीयों में ला देना चाहता है।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

मेरे जीवन का यह है प्रथम चरण
इसमें कहां मृत्यु
है जीवन ही जीवन
अभी पड़ा है आगे सारा यौवन।
स्वर्ण किरण-कल्लोलों पर बहता, रे, बालक मन,
मेरे ही विकसित राग से
विकसित होगा बन्धु दिगन्त—
अभी न होगा मेरा अन्त!

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' द्वारा रचित "अभी न होगा मेरा अन्त" नामक शीर्षक से उद्धृत किया गया है। इस कविता में कवि ने आत्म-विश्वास और पूर्ण आशा का प्रदर्शन किया है। कवि ने अपनी कविताओं को पत्रिकाओं में प्रकाशित करना चाहा परन्तु सम्पादकों ने उन्हें अपनी कुत्सित भावनाओं के कारण नहीं छापा तथा वापस कर दिया। इस भाव में आकर निराला जी ने यह कविता लिखी और बताया कि अभी तो मैंने इस क्षेत्र में पदार्पण किया है।

व्याख्या—कवि ने बताया है कि अभी तो कविता के क्षेत्र में मेरा पहला ही चरण है। अभी मेरा सारा जीवन शेष है। मुझे बहुत कुछ दिखाना है। मेरे इस कोमल हृदय से भावनाओं का समुद्र भरा पड़ा है। मेरा बालक रूपी मन स्वर्ण किरणों की लहरों पर बह रहा है। हे साहित्यिक बन्धुओ! मैं आपको यह बता देना चाहता हूं कि मेरी इस प्रकार की अविकसित कविताएं

ही एक दिन इस हिन्दी साहित्य के कविता-क्षेत्र को अति विकसित कर देंगी। अभी कुछ नहीं हुआ। आगे-आगे देखना क्या होता है। तुम्हारे इस प्रकार से हतोत्साह करने से मुझे अधिक उत्साह मिलता है। मेरी कविता का अन्त तुम्हारी इन कुत्सित भावनाओं द्वारा कदापि नहीं हो सकता।

इस करुणा की सरिता के मलिन पुलिन पर,
लघु टूटी हुई कुटी का मान बढ़ा कर।
अति छिन्न हुए भीगे अंचल में मन को—
मुख रूखे, सूखे अधर, त्रस्त चितवन को,
वह दुनिया की नजरों से दूर बचा कर,
है रोती अस्फुट स्वर में,
सुनता है आकाश धीर, निश्चल समीर—
मृदु सरिता की लहरें भी ठहर-ठहर कर।

प्रसंग—यह पद्यांश श्री निराला द्वारा रचित "भारत की विधवा" नामक शीर्षक से प्रस्तुत किया गया है। कवि ने प्रगतिशील युग की विधवा नारी की हृदय-विदारक स्थिति का चित्र खींचते हुए इष्टदेव के मन्दिर की पूजा के समान पवित्र माना हैं और उसे उच्च स्थान प्रदान किया है।

व्याख्या—कवि कहता है कि विधवा नारी का स्थान, भारतीय समाज में अति निकृष्ट है। वह विधवा नारी करुणाजनक दशा में मलिन हृदय से, उस छोटी सी झोंपड़ी में रहती है जहाँ अति मौनता होती है। वह उस मौनता को और भी अधिक करती है वह वहुत खिन्न होती है। वह अपने भीगे आंचल में मुँह दिये हुए रोती रहती है। उसकी मुखाकृति पर किसी प्रकार का रूप-रंग नहीं होता। उसके ओष्ठ सूखे हुए होते हैं। उसके नेत्र दर्शनों के प्यासे होते हैं। वह इस संसार से अपनी दृष्टि ओझल करके रोती है उसके इस क्रन्दन-स्वर को कोई मनुष्य नहीं सुनता। मनुष्य वेशक न सुने, आकाश तथा निश्चल रूप से चलने वाली पवन उसका रोना सुनते हैं। मन्द गति से वहने वाली सरिता भी उसे सुनती है। इनको अपनी चंचलता का ध्यान न रहकर उस विधवा का ध्यान आता है। जव प्रकृति उसे निरखती है तो वह उच्च है क्योंकि वह इस समाज की असाधारण विधवा है।

श्री उदयशंकर भट्ट

यह सुधा, यह विष, प्रणय के हार में किसने पिरोये ?
यह जलन, यह शान्ति भर, किसके हृदय के घाव धोये ?

यह विरह का यह जलन का दौर यों कब तक चलेगा ?
पुतलियों से छिले दिल को ले जगत कब तक जलेगा ?
आंसुओं के तरल पारावार में मेरा बसेरा।
पंख खोले उड़ रहा है आदि मेरा अन्त मेरा।।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश श्री उदयशंकर भट्ट द्वारारचित "असहाय" नामक शीर्षक से उद्धृत किया गया है। इनमें कवि ने हार्दिक वेदना तथा निराशा का मार्मिक चित्रण किया है। कवि का मन गगन में उड़ते हुए पक्षी के समान है। यही कारण है कि वह उसका पार नहीं पा रहा। इसी निराशा के अन्धकार में वह विश्व-वेदना की ओर भी संकेत करता है।

व्याख्या—कवि कहता है कि विष तथ अमृत दोनों को एक करने वाला वह कौन है ? वेदना की आग से हृदय में जो घाव थे उन्हें किसने धोया है अर्थात् समाप्त किया है ? यह विरहाग्नि का दौर, उससे उत्पन्न हुए सन्ताप का दुःख कब तक चलते रहेंगे ? यह संसार पुतलियों जैसे छिले हुए हृदय को कब तक छिपाए रहेगा ? मेरा निवास आंसुओं की बहती धारा में है। कवि कहता है कि इस प्रेम में विष तथा अमृत दोनों हैं। यदि विरह होता है तो दुःख प्रतीत होता है और जब मिलन होता है तो प्रेमोद्वेग की धारा फूट निकलती है, अति आनन्द की प्राप्ति होती है। कवि जब अपने हृदय का पार पा लेता है तो उसे असीम आनन्द की प्राप्ति होती है, शान्ति मिलती है और विरह में इसके विपरीत।

श्री सुमित्रानन्दन पंत

हँसमुख हरियाली हिम आतप सुख में अलसाए-से सोए,
भीगी अँधियारी में निशि की तारक स्वप्नों में-से खोए,
मरकत डिब्बे सा खुला ग्राम-जिस पर नीलम नभ आच्छादन,
निरुपम हिमांत में स्निग्ध शांत निज शोभा से हरता जनमन।

प्रसंग—यह पद्यांश श्री सुमित्रानन्दन पंत द्वारा रचित "ग्राम-श्री" नामक शीर्षक से प्रस्तुत किया गया गया है। इसमें कवि ने भारतीय ग्रामों की शोभा का वर्णन किया है। बसन्त ऋतु का अति सुन्दर चित्रण किया है। यह कवि का आंखों देखा वर्णन है।

व्याख्या—जहां हँसमुख अर्थात् हरी-हरी हरियाली शीत एवं धूप के सुख में शान्त स्वभाव में सोते रहें। रात्रि के समय ओस की वृष्टि से भीगे अन्धकार में तारों के स्वप्न में खो जाएं। कहने का अभिप्राय यह है कि अंधकार

में हरी-हरी हरियाली दीखनी बन्द हो जाती है। यह कवि ने इसे तारों भरी रात की स्वप्नावस्था में चित्रित किया है। यह ग्राम हीरा, मणि तथा पन्ने के डिब्बों के समान है। उस पर नील गगन छाया हुआ है। यह अपनी अद्भुत शोभा से इस संसार के लोगों का मन हरता है। कवि कहता है कि इन ग्रामों में चारों ओर पूर्ण शान्ति है। गर्मी-सर्दी, धूप तथा सूर्य की किरणें सभी शान्त स्वभाव से खेतियों को अधिक से अधिक सुख पहुँचा रही हैं। वातावरण अति शान्त है। किसी प्रकार का हुल्लड़ नहीं। रात्रि के समय चन्द्रमा तथा तारों की उजियाली में हरियाली नहीं दिखाई पड़ती। ऐसा प्रतीत होता है कि यह हरियाली चांदनी में स्वप्नावस्था में सो रही है।

चित्-शून्य आज जग नव निनाद से हो गुंजित,
मत-जड़ उसमें नव स्थितियों के गुण हों जागृत,
तुम जड़ चेतन की सीमाओं के आर-पार,
झंकृत भविष्य का सत्य कर सको स्वराकार,
वाणी मेरी, चाहिए तुम्हें क्या अलंकार।

प्रसंग—यह पद्यांश पंत द्वारा लिखित "वाणी" शीर्षक से उद्धृत किया गया है। कवि अपनी वाणी द्वारा नवयुग-निर्माण के भावों को जनता तक पहुंचाना चाहता है।

व्याख्या—आज यह सारा विश्व चेतनारहित, ज्ञान रहित होकर स्वार्थ के पचड़ों में अधिक पड़ गया है। वह इसी भावना के कारण इस सारे विश्व को हड़प कर जाना चाहता है। हे वाणी ! तू उनके हृदय में स्वार्थपरता के भावों को मत भरना। तू उन्हें ऐसा संदेश दे जिससे कि यह सारा संसार एकदम बिजली की तरह चमक उठे। तेरी इस नयी ध्वनि से नई स्थिति उत्पन्न हो जावे। मनुष्य विषमता का त्याग कर दे। उनमें गुण तथा शक्ति जागृत हों। तुम जड़ तथा चेतन की सीमाओं से पार होकर भावी भविष्य को उज्ज्वल बनाओ। तुम्हारी इस प्रकार की धारणाएँ हों कि तुम उसे वास्तविक रूप दे सको। हे वाणी ! तुम्हें इसके अतिरिक्त और कौन से अलंकार अथवा आभूषणों की आवश्यकता है। यदि तुम्हारे अन्दर इस प्रकार के भाव जागृत हो जावें तो यही सबसे बड़ा धन है। इसी अलंकार से तुम विश्व का भला करो।

श्री अनूप शर्मा 'अनूप'

सौभाग्यों की अचल महिमा, मित्र, देखो निराली,
प्राणी पाता परम सुख जो दुःख का मूल होता,

तो भी, देखो, मनुज कलि की कामना में लगा है,
माया क्या ही अकथ गति है और चेतोहरा है।

प्रसंग—यह पद्यांश अनूप शर्मा द्वारा रचित "सिद्धार्थ" नामक शीर्षक से उद्धृत किया गया है। इस कविता में कवि ने यह वर्णन किया है कि बुद्ध ने इस संसार के बारे में अपने किस प्रकार के विचार बनाए।

व्याख्या—हे मित्र ! इस संसार में सौभाग्य की महिमा अति निराले ढंग की रही है। इसका स्वरूप अति आश्चर्यजनक है। इस संसार में प्राणियों को सुख मिलता है। परन्तु वह पश्चात् में दुःख बनकर मिलता है। वह दुःख ही दुःख भोगता है। परन्तु देखो फिर भी वह कितना मूर्ख है कि वह यह जानते हुए भी इस कलियुग में सुख की आशा करता है। इस संसार की माया को तो देखो किस प्रकार मन को विचलित करती है, हर लेती है। अपना वर्णन भी तो नहीं करने देती। इसकी महिमा के गीत गाने असम्भव हैं। इस प्रकार कवि ने सिद्धार्थ के विचारों का चित्रण अपनी कविता में किया है।

श्री मोहनलाल महतो 'वियोगी'

अचल सोहाग होगा आज महारानी का,
राज्य हो अचल आर्यपुत्र रैनसी का,
यश दें भवानी कवि जल्ह को, सुखी हुआ,
आज मैं समस्त परिताप मिटा मन का।
सावधान होके शब्द-वेधी वाण मारिए,
मैं हूं खड़ा आपके ही पार्श्व में यह वाण है।

प्रसंग—यह अवतरण श्री मोहनलाल महतो द्वारा रचित पृथ्वीराज की शब्द-वेध विद्या" में से उद्धृत किया गया है। इसमें महारजा के शब्द-वेधी बाण छोड़ने का कौशल वर्णित है। महाकवि चन्द ने पृथ्वीराज के शब्द-वेधी बाण छोड़ने का उल्लेख किया था। उसी घटना का इस कवि ने भी वर्णन किया है कि पृथ्वीराज अपने ऊपर किए गए प्रहार का बदला लेने के लिए गया है।

व्याख्या—पृथ्वीराज बदला लेने गए। अब पृथ्वीराज के वापिस आने की कोई सम्भावना नहीं। पृथ्वीराज की रानी का अचल सुहाग अखण्ड होने चला था। शत्रु की मृत्यु हो जायेगी इससे उनकी प्रसिद्धि और अधिक होगी। आर्य पुत्र रेणुकाराय का साम्राज्य अचल तथा दृढ़ हो जायेगा। दुर्गा माता चन्द कवि

में इस प्रकार की शक्ति दे जिससे कि वह पृथ्वीराज रासो की पूर्ति करने तथा यशोगान गाने में समर्थ हो। आज शत्रु को पराजित करके मेरे हृदय को अति शान्ति मिलेगी क्योंकि पराजय का जो कलंक का टीका मेरे सिर पर लगा हुआ है वह मिट जाएगा। अब शब्दवेधी बाण को सावधानी से चलाइए। मैं आपकी बगल में हूं। कहने का अभिप्राय यह है कि आ अपना कर्म करें उसके परिणाम की इच्छा मत करो। पहले आप बाण फेंक दें बाद में हम दोनों मर जावेंगे। पृथ्वीराज रासो का कुछ अंश चन्द कवि के पुत्र जल्हण ने पूरा किया था। इसलिए उसका नाम यहाँ आया है।

भगवतीचरण वर्मा

उस ओर क्षितिज के कुछ आगे कुछ पाँच कोस की दूरी पर,
भू की छाती पर फोड़ों से हैं उठे हुए कुछ कच्चे घर,
मैं कहता हूँ खंडहर उसको पर वे कहते हैं उसे ग्राम,
जिसमें भर देती निज धुंधलापन असफलता की सुबह शाम,
पशु बनकर पिस रहे जहाँ, नारियां जन रही हैं गुलाम,
पैदा होना, फिर मर जाना, यह है लोगों का काम॥

प्रसंग—यह पद्यांश श्री भगवतीचरण वर्मा द्वारा लिखित "भैंसा गाड़ी" से उद्‌धृत किया गया है। कवि देहाती क्षेत्र के निवासी हैं। आपने प्रगतिशील कविता लिखी है।

व्याख्या—गाड़ी नगर की ओर जा रही है। कवि कहता है कि क्षितिज की ओर (जहाँ से गाड़ी आ रही है) तथा उससे भी पांच कोस और आगे भूमि की छाती पर फोड़े रूपी मकान खड़े हुए हैं। वे मकान पक्के नहीं कच्चे हैं। ग्राम निवासी उसे ग्राम कहते हैं और मैं उन्हें खण्डहर कहता हूं। इन टूटे-फूटे मकानों को हम ग्राम नहीं कह सकते। क्योंकि प्रातः सन्ध्या वहां पर हम असफलता के दृश्य प्रतिदिन देखते हैं। यहां के पुरुष पशुओं के समान पिसते है परन्तु उनके पास इतना अन्त तक नहीं होता कि वे अपना निर्वाह तो कर लें। इतना ही नहीं, यहां की नारियाँ मनुष्य नहीं जनतीं अपितु वे दासों को जन्म दे रहीं हैं। मनुष्य इस संसार में जन्म लेते हैं और अपनी बुद्धि का विकास किए बिना ही परलोक सिधार जाते हैं। वे जब तक इस संसार में रहते हैं गुलाम ही बनकर रहते हैं। कभी स्वतन्त्र नहीं होते। यह आवागमन का चक्र संसार में चलता ही रहता है।

पर प्राण तुम्हारी साँसों में, किस मौन विवशता की सिहरन ?
भर कर मन में अन्धकार, लो सिहर उठा यह सकल गात !

प्रसंग—यह पद्यांश भगवतीचरण वर्मा द्वारा रचित "पावस का यह धुंधला प्रभात" शीर्षक से प्रस्तुत किया गया है। कवि अपने हृदय की वेदना तथा मनोवेगों को प्रकृति में आरोपित करता है।

व्याख्या—कवि कहता है कि मेरे सांस तुम्हारे श्वासों में मिल चुके हैं। फिर इसमें कौन सी विवशता के कारण कम्पन हो रहा है। साँसों में अति व्याकुलता है। इस शरीर में एक विचित्र अन्धकार भर जाने वाली शून्यता के कारण समस्त शरीर कम्पित हो रहा है। श्वासों की स्मृति रोमांच रूप में प्रकट हो रही है। हृदय की चेतना पूर्ण रूप से लुप्त हो चुकी है। किसी भी ओर प्रकाश नहीं दिखाई पड़ता।

श्री गोपालसिंह नेपाली

तू चिनगारी बन कर उड़ री, जाग-जाग मैं ज्वाल वनूँ।
तू बन जा हहराती गंगा, मैं झेलम बेहाल वनूँ;
आज बसन्ती चोला तेरा, मैं भी सज लूँ, लाल वनूँ;
तू भगिनी बन क्रान्ति कराली, मैं भाई विकराल बनूँ;
यहाँ न कोई राधारानी, वृन्दावन वंशी वाला;
तू आंगन की ज्योति बहन री, मैं घर का पहरे वाला।

प्रसंग—यह पद्यांश श्री गोपालसिंह नेपाली द्वारा रचित 'भाई बहन' शीर्षक से उद्धृत किया गया है। इसमें कवि ने भाई-बहनों का सम्मिलित रूप से देश के स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लेने का सुन्दर चित्रण किया है।

व्याख्या—कवि कहता है कि भाई अपनी बहन से यह कहता है कि हे प्रिय बहिन तू तो आग की चिनगारी का रूप धारण कर और मैं सोये हुए मनुष्यों में जागृति पैदा करूँ। तू उनमें चिनगारी बनकर गिर जा और मैं आग की जलती हुई, फैलती हुई लपटें बन जाऊँ। और इस सारे संसार में फैल जाऊं। तू हर-हर कहके बहती हुई गंगा बन जा और मैं एकदम फैलने वाली झेलम नदी बन जाऊं। तूने आज बसन्ती वस्त्र धारण किए हैं अर्थात् केसरिया वस्त्र धारण किए हैं जो कि शक्ति का चिन्ह हैं और मैं भी लाल रंग के वस्त्र पहनकर (रक्तपात के सूचक वस्त्र) शत्रुओं का प्राणघात करूँ। हे बहन ! तू क्रान्ति की देवी का रूप धारण कर और मैं शत्रुओं को दमन

करने वाले भैरव का रूप धारण करूं। इस प्रकार दोनों भाई बहिन स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेना चाहते हैं। यहां पर कोई राधा रानी अथवा राजा रानी नहीं। कोई व्रज नहीं। यहां वंशी वाला भी नहीं। हमीं सब कुछ बन जायेंगे। हे बहिन तू इस घर (देश के) आंगन की ज्योत में और मैं उसका पहरेदार अर्थात् रक्षक हूं।

सुभद्राकुमारी चौहान

मैं उन्मत्त प्रेम की लोभी हृदय दिखाने आई हूँ।
जो कुछ है, बस, यही पास है, इसे चढ़ाने आई हूं॥
चरणों पर अर्पित है, इसको चाहो तो स्वीकार करो।
यह तो वस्तु तुम्हारी ही है—ठुकरा दो या प्यार करो॥

प्रसंग—यह पद्यांश श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान द्वारा रचित "ठुकरा दो या प्यार करो" शीर्षक से उद्धृत किया गया है। इसमें कवयित्री ने भगवान् को आत्म समर्पण का भाव प्रदर्शित किया है।

व्याख्या—कवयित्री अपने उपास्य भगवान् की आराधना करने मन्दिर में गई परन्तु उन धनियों की भांति कोई अमूल्य हार नहीं ले जा सकी। वह कहती है कि हे प्रभु मैं तो उन्मत्त प्रेम की प्यासी हूं। मैं अपने हृदय आपको अर्पण करने आई हूं। मेरे पास इसके अतिरिक्त कुछ और नहीं है। मेरे पास जो कुछ है वह यही है। इसी को अर्पण करने आई हूं। अब यह आपकी इच्छा है। चाहे तो स्वीकार करो चाहे ठुकरा दो। इसके अतिरिक्त मेरे पास और कुछ नहीं है। इस प्रकार कवयित्री ने अपने अनुराग भरे प्रेम को दर्शाया है।

कलेजा मां का, मैं सन्तान, करेगी दोषों पर अभिमान।
मातृवेदी पर घण्टा बजा, चढ़ा दो मुझको हे भगवान्॥
सुनूँगी माता की आवाज, रहूँगी मरने को तैयार।
कभी भी उस वेदी पर देव, न होने दूँगी अत्याचार॥

प्रसंग—यह अवतरण श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान द्वारा लिखित "मातृ-मन्दिर में" शीर्षक कविता से उद्धृत किया गया है। कवयित्री अपने आपको देश पर बलिदान होने की प्रार्थना करती है। मातृभूमि के लिए आत्म-समर्पण से बढ़कर बलिदान और कुछ नहीं है।

व्याख्या—कवयित्री कहती है कि मैं अपनी माँ (मातृभूमि) को किस प्रकार भुला दूँ। यह असम्भव है। मैं उसी के हृदय का तो टुकड़ा हूं वही मेरे

दोषों पर अभिमान करेगी। यदि मेरा दोष है तो यही कि मैं अपनी मां (मातृभूमि) की सेवा करती हूं। अत्याचारी मुझे दण्ड देता है तो दे। हे भगवान्! मातृवेदी के पूजा के स्थान पर घण्टा ध्वनि हो रही है। मुझे वहीं अर्पण कर दो। मैं वहीं दिन-प्रतिदिन माता की आवाज सुनती रहूंगी। मैं वहां हर समय मरने के लिए तैयार रहूंगी। मेरे भगवान्! मैं आपको यह विश्वास दिलाती हूं कि वहां पर कभी भी किसी प्रकार का अत्याचार नहीं होने दूंगी। मुझे तुम अवश्य ही बलिदान कर दो जिससे कि कुछ सेवा करने का अवसर प्राप्त कर सकूं। इस प्रकार कवयित्री ने सफलतापूर्वक आत्म-समर्पण का चित्रण इस कविता में किया है।

श्री जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज'

हृदय विकल जाने न इसी की ओर खिचा क्यों आता है?
है कितना आकर्षण? तन्मय कर देता जब गाता है।
याद दिलाती है इसकी मृदु-स्वर-लहरी 'अपने जन' की,
कौन बतावेगा यह मुझ को क्यों इस भाँति रिझाता है?

प्रसंग—यह पद्यांश श्री जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज' द्वारा रचित 'कौन' शीर्षक से उद्धृत किया गया है। कवि प्रेरणा देने वाली शक्ति से अज्ञात है। वह उसे "कौन" कह कर सम्बोधित कर रहा है।

व्याख्या—मेरी हृदय अति व्याकुल है! वह अज्ञात की ओर न जाने क्यों बढ़ा जा रहा है। जब गाता है तो अपनी आकर्षण शक्ति द्वारा मोहित कर देता है। उसकी यह मृदु लहर, प्रेम भरा गीत उसी की याद मिलाता रहता है। मैं जितना इससे परे भगता हूं वह उतना ही उसके निकट पहुंचता जाता है। क्या कोई मुझे बता सकता है कि इसका कारण क्या है? उसकी मधुर अनुभूति दिन प्रतिदिन मुझे अपनी ओर आकृष्ट करती जाती है।

श्री रामकुमार वर्मा

कितने दुःख, बनकर विकल साँस,
भरते हैं मुझ में बार-बार।
वेदना हृदय बन तड़प रही,
रह रह कर करती प्रहार॥
यह निर्झर मेरे ही समान,
किस व्याकुल की है अश्रुधार॥

प्रसंग—यह पद्यांश श्री रामकुमार वर्मा द्वारा रचित "कठित राह" शीर्षक कविता से उद्धृत किया गया है। कवि ने संसार की नश्वरता के बारे में शोक प्रकट किया है।

व्याख्या—कवि कहता है कि जीवन की राह अति कठिन है। इस संसार में असीम दुःख तथा कष्ट हैं। संसार की नश्वरता से उत्पन्न हुए दुःख मेरे मानस में सांस वन कर बार-बार आ रहे हैं। यह मेरे मानस में वेदना बनकर बार-बार प्रहार कर रहा है। झरने वाले झरने मेरे ही समान दुःखी दीख पड़ते हैं। उनका पानी उनके आंसू ही हैं। वह झरना भी अति दुःखी है। किसी ने उसे बहुत ही सताया है। उसका मार्ग अति कठिन है।

सन्ध्या के अम्बर में मलीन यह कौन हो रहा है उदास ?
मेरे उच्छ्वासों के समीप कर रहा कौन छिप कर निवास ?
अब किसी ओर चीत्कार न हो मैं करूँ न अब दुःख से कराह ॥

प्रसंग—उपरोक्त।

व्याख्या—प्रातःकाल फूलों की पंखड़ियों पर स्थित कौन अदृश्य यह खेल खेल रहा है। कौन उदास हो रहा है। मेरे इन श्वासों पर कौन निवास कर रहा है। मैं यह चाहता हूं कि अब यहां किसी प्रकार की चीत्कार अथवा दुःख की आवाज नही सुनाई पड़नी चाहिए। कवि इस संसार की नश्वरता को अब और अधिक देखना नहीं चाहता।

श्री रमाशंकर शुक्ल 'हृदय'

प्राण ही के साथ अपनी मृत्यु को इसकी सहेली,
इस जरा से अग्नि कण पर ही अमर की शाँति खेली,
यह विमूर्च्छन ही लिए है सृष्टि की सुषमा नवेली,
रवि किरण लिखती सदा ही श्याम पट यह पहेली,
बूझना है भेद तो कुछ सूझ का सम्मान रख ले।
तू न बन मस्ती विमूर्छित ख्यालियों का ज्ञान रख ले।

प्रसंग—यह अवतरण श्री रामशंकर शुक्ल द्वारा लिखित "प्रेम का बन्दी न बन" शीर्षक कविता से उद्धृत किया गया है। कवि ने यह बताने की चेष्टा की है कि मनुष्य को प्रेम तो अवश्य करना चाहिए परन्तु साथ ही उसका बन्दी भी नहीं होना चाहिए।

व्याख्या—कवि कहता है कि जीवन तथा मृत्यु दोनों एक ही वृक्ष की दो

शाखाएं हैं। यदि भगवान् जीवन देता है तो उसके साथ ही मृत्यु भी अवश्य होगी। यह जीवन नाशवान् है। अमर नहीं। इस जीवन की छोटी सी चिंगारी पर ही अमर-शान्ति अपना खेल खेलती है। अभिप्राय यह है कि यह जीवन मृत्यु की चिंगारी में नष्ट हो जाता है। सृष्टि के प्रत्येक प्राणी के साथ इसी प्रकार लगा हुआ है। यदि इसके साथ मृत्यु नहीं लगी हो तो इसकी शोभा ही समाप्त हो गई। सूर्य की किरणें अन्धकार को समाप्त कर देती हैं। यह एक पहेली के समान है। यही कारण है कि सूर्य की किरणें इसे श्याम पट पर लिखा करती हैं। फिर सूर्य की किरणें भी समाप्त हो जाती हैं। इस प्रकार मृत्यु और जीवन का यह आवागमन चलता रहता है। हे मनुष्य यदि तुम इस आवागमन की पहेली को समझना चाहते हो तो कुछ समझ से काम लो। इस पहेली से तुम कुछ पाठ सीखो। इसकी कल्पनाओं का प्रयोग कर प्रतिदिन होने वाले नए विचारों को जानने का प्रयत्न करो।

श्री हरिकृष्ण प्रेमी

अब घर-द्वार नहीं है अपना, अब सुख का अरमान नहीं है;
प्राणों में यौवन मद की अब छिड़ती मादक तान नहीं है।
यदि पथ में मैं भी बाधक हूँ, तो मुझ को भी जहर पिला दो;
ओ विद्रोही, अपने दिल पर ममता का भी भार न लादो।

प्रसंग—यह पद्यांश श्री हरिकृष्ण प्रेमी द्वारा लिखित "चिंगारी" शीर्षक कविता से प्रस्तुत किया है। कवि इस समाज के शोषण करने वालों के विरुद्ध चिनगारी लगा देना चाहता है।

व्याख्या—कवि देश के नवयुवकों से कह रहा है कि यदि तुमने क्रान्ति के लिए एक बार कदम उठा दिया है तो फिर चिन्ता क्यों करते हो। अब अपना घर तथा द्वार कुछ भी नहीं रहा। हमें किसी प्रकार के सुख की चिन्ता नहीं। अब हमारे प्राणों में जवानी की मस्त तान नहीं गूँजती। यौवन का मद वासना की तान नहीं छोड़ता। बलिदान के मार्ग में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न नहीं करता। हे क्रान्तिकारी ! यदि पुण्य तुम्हें रोकता हो तो (चिंगारी) कहती है कि तुम मुझे भी ज़हर पिला दो। परन्तु तुम भी अपने हृदय पर से ममता तथा प्रेम के भार को समाप्त करके हृदय के बोझ को कम कर दो। तुम निर्मोही बन कर समाज में फैली हुई विषमता को बिल्कुल समाप्त कर दो। यदि कोई साथी तुम्हें सहायता नहीं दे तो तुम एकाकी आगे चले जाओ।

श्री सोहनलाल द्विवेदी

आज धूलि-धूसरित कलिका पड़ी है छिन्न।
भिन्न हैं सभी अभिन्न।
खिन्न चित्त को है नहीं पूछता कहीं भी कोई।
उड़ गये मधुप वे, जो कलिका मे मधु देख॥

प्रसंग—यह पद्यांश श्री सोहनलाल द्विवेदी द्वारा रचित "वासवदत्ता" शीर्षक कविता से प्रस्तुत किया गया है। वासवदत्ता सिद्धार्थ के समय की एक वेश्या थी। कवि ने उसकी करुणामई दशा का चित्र खींचा है।

व्याख्या—कवि कहता है कि पहले वासवदत्ता सुन्दर थी। उस पर नवयुवकों की दृष्टि रहती थी। आज वह वृद्धा अवस्था मे है। उसका यौवन ढल चुका है। उसकी अब कोई खबर नही लेता। कवि कहता है कि आज वह सुन्दर कली आश्रयहीन धूलि में सनी हुई पड़ी है। उसकी तड़प में मरने वाला समाज अब उसकी चिन्ता नहीं करता। वह अब अभिन्न नही। पहले उसे युवक अपना समझते थे परन्तु अब नही समझते। उस खिन्न-चिन्ता को कोई भी नही पूछता है कि वह कहाँ है। वे भौरे जो उस वासवदत्ता में सुन्दरता का मधु समझकर मडराते रहते थे अब नहीं आते क्योंकि शहद अर्थात् सुन्दरता का अभाव है। इस प्रकार वह बेचारी इस समाज में अति दीन तथा दुःखी है। उसके वे पुराने दिन अब नही आ सकते।

जड़ सी बनी बैठी वहीं, बोल कुछ पाई नहीं;
अर्चना अचल बनी, वदना सफल बनी,
हो गई मौन, कह पाई कुछ बात नहीं।

प्रसंग—उपरोक्त।

व्याख्या—कवि कहता है कि सिद्धार्थ ने जब उसकी यह दीन दशा देखी तो उनसे न रहा गया और वे वासवदत्ता के पास जाकर उपदेश देने लगे। यह उपचार करना उनका धर्म था। जब गौतम वहाँ पहुंचे तो वह वेश्या मौन होकर बैठी रही। उसने अपने मुख से कुछ नही कहा। उसने अपना माथा सिद्धार्थ के चरणो में रख दिया। अपना हृदय जीवन और प्राण न्यौछावर कर नतमस्तक होकर बैठी रही। कृतज्ञता तथा ग्लानि आदि के भावों ने उसे इतना दबा दिया कि वासवदत्ता, सिद्धार्थ के प्रेम और श्रद्धा के वचन सुनकर कुछ नही बोल सकी। वह नमस्कार कर पूजा की सी अचल, स्थिर मूर्ति बनी रह गई।

उसी समय,
गौतम के गौरव का, वैभव का,
गूँजा था विशद गान;
गृह-गृह आमन्त्रण निमन्त्रण तथागत का था,
होता वह धन्य,
पहुँच जाते थे देव जहां।

प्रसंग—यह अवतरण श्री सोहनलाल द्विवेदी द्वारा रचित '"वासवदत्ता" शीर्षक कविता से प्रस्तुत किया गया है। इस कविता में कवि ने बुद्ध के समय की एक वेश्या, जिसका नाम वासवदत्ता था, की करुण दशा का मार्मिक चित्रण किया है।

व्याख्या—कवि कहता है कि आज से बहुत समय पहले महात्मा बुद्ध के गौरव तथा वैभव का काल था। भारत का इतिहास स्वर्ण अक्षरों में लिखने योग्य था क्योंकि उस समय देश धन धान्य से पूर्ण सम्पन्न था। किसी प्रकार का बन्धन भारतीयों पर न था। घर-घर में इन्हें धर्मोपदेश करने के लिए आमंत्रित किया जाता था। भिक्षा के लिए बुलाया जाता था। जिस घर में भगवान् स्वरूप महात्मा बुद्ध अपने चरण-कमल रख देते थे वह घर अपने आपको अति पवित्र एवं धन्य समझता था।

श्रीमती महादेवी वर्मा

सौरभ का फैला केश जाल, करती समीर परियाँ विहार।
गीली केशर मद झूम झूम, पीते तितली के नव कुमार।
मर्मर का मधु संगीत छेड़।
देते हैं हिल पल्लव अजान॥

प्रसंग—यह पद्यांश श्रीमती महादेवी वर्मा द्वारा रचित "प्रभात" शीर्षक कविता से उद्धृत किया गया है। कवयित्री ने अपनी आलंकारिक भाषा में प्रभात की सुन्दर छवि के विभिन्न रूपों पर प्रकाश डाला है।

व्याख्या—कवयित्री कहती है कि वायुरूपी परियां सुगन्ध रूपी बालों को फैलाकर प्रभात के समय विहार कर रही हैं। शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु चल रही है। तितलियों के छोटे-छोटे बच्चे मद से झुमते हुए फूलों के मधु को (जो कि ओस से भीगी होने के कारण केशर के समान होते हैं) पीकर आनन्द ले रहे हैं। नव विकसित पत्ते वायु से हिल मिलकर अजान मर्मर का शब्द करने लगते हैं। चारों ओर प्रभात काल में अति सुहावना समय होता है।

आग हूँ जिससे ढुलकते बिन्दु हिमजल के;
शून्य हूँ जिसको बिछे हैं पाँवड़े पल के;
पुलक हूँ वह जो पला है कठिन प्रस्तर में;
हूँ वही प्रतिबिम्ब जो आधार युग में;
नील घन भी हूं सुनहली दामिनी भी हूँ।

प्रसंग—यह पद्यांश श्रीमती "वर्मा" द्वारा रचित 'गीत' शीर्षक कविता से उद्धृत किया गया है। इन पंक्तियों में कवयित्री भगवान् से अपना सम्बन्ध बताती हुई कहती है—

व्याख्या—कि मैं वह आग हूं जिससे हिमजल के बिन्दु गिरते हैं। कवयित्री एक विरहिणी की अग्नि के समान है। उसके विरह में गिरने वाले आंसू हिम जल के समान हैं। दोनों (जल तथा अग्नि) एक-दूसरे के शत्रु हैं। इस प्रकार व्रह्माग्नि उसके हृदय में बसा हुआ है। उसका कारण भी वह अपने को ही बताती है। कवयित्री अपने प्रियतम के लिये अपनी आंखों को पांवड़े (वस्त्र) बनाकर बिछाती है जिससे कि वह आराम से चला जाय। उसे किसी प्रकार का दु.ख न हो। अर्थात् वह उसकी बेसब्री से प्रतीक्षा कर रही है। इसका कारण भी वह स्वयं ही है। मैं वह रोमांच हू जो पत्थर समान कठोर है, परन्तु पत्थर में रोमांच नहीं हो सकता। यहाँ भी पत्थर तथा उसमें रोमांच वह स्वयं ही है। मैं वही प्रतिच्छाया हूं जो अपने आधार के हृदय में छिपा है। इस प्रकार कवयित्री ने बताया है कि प्रतिबिम्ब के नाते मैं स्वयं हूं। कवयित्री के भाव बहुत गहरे हैं। इस प्रकार प्रतिबिम्ब के नाते भिन्न और आधार के हृदयस्थ होने से अभिन्न हैं। कवयित्री नीला बादल भी स्वयं को ही बताती है। चमकने वाली सुनहरी बिजली भी वह स्वयं है। इस प्रकार कवयित्री ने प्रियतम के प्रेम का कारण स्वयं को तथा विरह का कारण भी स्वयं को ही बताया है। वह किसी अन्य को इसके लिए दोषी नहीं ठहराती।

क्षण भर ही गाया फूलों ने
दृगों में जल अधरों में स्मित धर।
लघु उर के अनन्त सौरभ से
कर डाला यह पथ नन्दन चिर;
पाया चिर जीवन झर गायक।
गा लेने दो क्षण भर गायक!

प्रसंग—यह पद्यांश श्रीमती महादेवी वर्मा द्वारा रचित "जादूगरनी वीणा" शीर्षक कविता से उद्धृत किया गया है। कवयित्री ने अपने हृदय के श्वासों को तार बताया है और उसके आवागमन को वीणा की झन्कार बताया है।

व्याख्या—प्रातःकाल के समय फूलों की पंखड़ियां खुलने को होती हैं उनमें ओस की बूंदों को कवि ने उनके आंसू माने हैं। उन पंखड़ी रूपी कलियों ने ओस की बूंद रूपी आंसू भरकर, ओष्ठों में विकास की मुसकान लाकर, ऊपर को मुँह करके गाया। इसके परिणाम स्वरूप उस छोटी सी पंखड़ी के हृदय की अनन्त सुगन्ध से यह जगत् का मार्ग सदैव के लिए नन्दन-वन बन गया है। इस प्रकार फूलों ने अमर जीवन का प्रवाह पा लिया है। हे गायक! अब तुम इन्हें क्षण भर तो गाने दो।

हरिवंशराय 'बच्चन'

बोल आशा के विहंगम, किस जगह पर तू छिपा था,
जो गगन पर चढ़ उठाता, गर्व से निज तान फिर-फिर।
नीड़ का निर्माण फिर-फिर, नेह का आह्वान फिर-फिर।

प्रसंग—यह अवतरण श्री 'बच्चन' द्वारा लिखित 'निर्माण' शीर्षक कविता से प्रस्तुत किया गया है। कवि ने आशावाद का सन्देश दिया है और बताया है कि धैर्यकाल में भी धैर्य रखना चाहिए। दुःख के बाद सुख अवश्य आयेगा।

व्याख्या—वायु के झोकों से वृक्ष के ऊपर रहने वाले पक्षियों के घोंसले गिर पड़े हैं। कवि कहता है कि हे आशावादी पक्षी तू इस झकोरे के समय किस स्थान पर छिपा हुआ था। आकाश पर तू ऊँचा उठकर बार-बार अपना स्वर क्यों उच्चार रहा था। तुझे इस बात का गौरव है। बार-बार इसीलिए तू अपना गीत सुनाता है। तुझे अपने घोंसले से गिर जाने का क्या कुछ भी दुःख नहीं। कवि कहता है कि वह वृक्ष का पक्षी आशावादी है। वह यह समझे हुए है कि दुःख के बाद सुख अवश्य होगा। इसलिए वह किसी प्रकार की चिन्ता नहीं करता।

श्री जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द

मेरे कर की तत्परता उस नौका की होती पतवार,
जिसे नये नाविक का साहस भंवरों में खेता मझधार,
मेरे निश्चय की सवदृढ़ता होती यह निविड़ालिंगन,
जिसमें व्यथित, पीड़ित फिर पाते खोया—'अपनापन'।

प्रसंग—यह पद्यांश श्री जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द द्वारा रचित "पछतावा" शीर्षक कविता से उद्धृत किया गया है । इस कविता में कवि अपने इस जीवन पर पछतावा करता है ।

व्याख्या—कवि कहता है कि मेरे हाथों की कार्यतत्परता इस प्रकार होती है कि वह उस नावक का नाविक बनता और एक नवयुवक चतुर मल्लाह की भांति इस नौका को सफलतापूर्वक खेता हुआ चला जाता है । नदी की भंवरों का इस पर कोई प्रवाह नहीं होता । मेरा दृढ़ निश्चय उस असहाय व्यक्ति का आलिंगन करता, जिसका उत्तरदायित्व किसी ने भी न लिया हो । मैं उस पतित, नीच तथा पीड़ित व्यक्ति का उद्धार करता । कवि कहता है कि हे भगवान् ! मुझे उस नैय्या का नाविक बनाया होता जिसका पूर्ण उत्तरदायित्व मेरे ऊपर होता ।

(ग) शोणित से आशा सींच चल रहे चरम लक्ष्य अपना पाने,
कितने दुर्गम पथ पार किये, कितने वन पर्वत हैं छाने;
तुम हठी भगीरथ नव-युग की गंगा के पीछे दिवाने;
इस तप पर जीवन रहे वार । (प्रथम, संवत् २०१८)

प्रसंग—प्रस्तुत पंक्तियां श्री जगननाथ प्रसाद 'मिलिन्द' द्वारा लिखित मेरे किशोर ! मेरे कुमार ! शीर्षक कविता में से लिया गया है मिलिन्द जी की कविता में नवयुवकों के लिये प्राण पोषक तत्व प्रचुर मात्रा मे मिलते हैं ।

व्याख्या—कवि कहता है कि हमारे नवयुवक अपनी आशाओं को अपने रक्त से खीचकर अपने देश को प्राप्त करने के लिये आगे बढ़ते चले जा रहे है। लक्ष्य प्राप्ति के मार्ग में न जाने कितने कठिन रास्ते, भयंकर वन तथा अगम्य पर्वत पार किये हैं अर्थात् लक्ष्य प्राप्ति के मार्ग में बड़ी से बड़ी बाधा न कठिनाई आई है परन्तु हमारे नवयुवक महाराजा भगीरथ की तरह दृढ़ निश्चयी एवं हठी है । जिस प्रकार महाराजा भागीरथ को गंगा नदी को लाने के लिये बहुत कठिन परिश्रम करना पड़ा था ठीक इसी प्रकार हमारे नवयुवक नवीन युग को लाने के लिये अड़े हुये हैं कवि कहता है कि हमारे नवयुवक इस कठिन तप पर अपने जीवन की बलि दे रहे है ।

श्री रामधारीसिंह दिनकर

ओ. मौन तपस्या-लीन यति ! पल-भर को तो कर दृगोन्मेष !
रे ज्वालाओं से दग्ध, विकल है तड़प रहा पद पर स्वदेश ।

प्रसंग—यह पद्यांश श्री रामधारीसिंह 'दिनकर" द्वारा रचित "हिमालय के प्रति" शीर्षक कविता से उद्धृत किया गया है। इस कविता में कवि ने अतीत की ओर संकेत किया है और हिमालय को पुकारा है कि वह भारत की रक्षा करे।

व्याख्या—हे चुपचाप तप करने वाले हिमालय ! तपस्या में लीन, ज़रा एक पल भर के लिए नेत्र तो खोल। जरा देख ! यह भारत जो तेरे पैरों के नीचे बसा हुआ है वड़ी विपत्तियों में फंसा हुआ है। कठिनाइयों के ऊपर कठिनाइयां आ रही हैं। शत्रु इस पर प्रहार कर रहे हैं। भारतवर्ष तड़प रहा है। तू इसकी रक्षा कर।

> **तू मौन त्याग कर सिंहनाद रे तपी ! आज तप का न काल**
> **नवयुग-शंख ध्वनि जगा रही तू जाग, मेरे विशाल !**

प्रसंग—उपरोक्त।

व्याख्या—हे हिमालय तू मौन तपस्वी का रूप त्यागकर सिंहनाद कर। हे तपस्वी आज तप करने का समय नहीं है। आज का नवयुवक मण्डल तुझे शंख ध्वनि द्वारा जगा कर कह रहा है कि हे विशाल हिमालय ! तू जाग जा और इस भारत की सहायता कर।

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

> **ज्योति चंचल आरती-जैसी ध्वनित हो थरथराती।**
> **देर तक सुनती रही मैं वाग्विहीना स्वर तुम्हारा,**
> **था न गाने के लिए मुझ से तनिक आग्रह तुम्हारा,**
> **लग रहा था पर मुझे, मैं एक क्षण भी रुक न सकती,**
> **प्रेरणा से गति-सुयंत्रित था विवश यह गात सारा।**

प्रसंग—यह पद्यांश श्री रामेश्वर शुक्ल द्वारा रचित 'तुम्हारे साथ गाती" शीर्षक कविता से उद्धृत किया गया ह। इसमें प्रेमानुभूति की विकलता की अभिव्यक्ति करायी गयी है।

व्याख्या—कवि कहता है कि हिलते प्रकाश से आरती के समय गूंजकर मेरा हृदय भी गुञ्जायमान हो गया है। मैं कम्पित सी हुई तुम्हारा मधुर स्वर पर्याप्त समय तक सुनती रही। मुझसे तुम्हारा आग्रह गाने के लिए कदापि नहीं था। परन्तु मुझे ऐसा लग रहा था कि मैं एक क्षण भी तुम्हारे गाने के बिना नहीं रह सकती यह मेरा शरीर इसी प्रेरणा को लिए नियंत्रण का

भाव लिए हुए था। यह उसकी विवशता का ही कारण मात्र था। इस प्रकार कवि ने भगवान् के प्रेमानुभूति का दिग्दर्शन कराया है।

है सलिल-प्लावित नदी नव ताल पोखर,
वेग विह्वल झर रहे गिरि स्रोत-निर्झर
दे भरे मन से बिदा कर किरण रन्ध्रों से नमन,
देखते अंकुरित, नूतन फुल्ल खेत।

प्रसंग—यह पद्यांश श्री रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' द्वारा लिखित "वर्षान्त के बादल" शीर्षक कवि से उद्धृत किया गया है। इस कविता में कवि ने वर्षा ऋतु के बीतने पर शरद् ऋतु का आगमन देख, जाते बादलों को विदा दी है। प्रकृति के विभिन्न रूपों से उनका कितना स्नेहमय सम्बन्ध है कि सभी विरह में व्याकुल हो रहे हैं क्योंकि बादल एक वर्ष के लिए उनसे विदा लिए जा रहे हैं। इस प्रकार बादलों का विरह उनके लिए अति व्याकुलता तथा आतुरता प्रदान करने वाला है। कवि कहता है :—

व्याख्या—वर्षा ऋतु के बीतने के समय सभी नदियां, नद, तालाब, जोहड़ जल से भरे हुए हैं। पर्वतों से चश्मे और झरने अति प्रवाह के साथ इस प्रकार बह रहे हैं मानो वे प्रवाह की तीव्रता से अति व्याकुल हों। अंकुरों से सुशोभित खेत, पड़ती किरणों के छिद्रों—उनके अन्तर से नमस्कार करके वेदना से पूर्ण हृदय से उन बादलों को विदाई दे रहे हैं। इस प्रकार कवि वर्षा ऋतु के बादलों का चित्रण करने में सफल हुआ है।

अन्य आवश्यक पदों की व्याख्या

सद्-वस्त्रा सदलंकृता गुणयुता सर्वत्र सम्मानिता।
रोगी वृद्ध जनोपकारनिरता साच्छास्त्रचिन्तापरा।
सद्भावातिरता अनन्य-हृदया सत्प्रेम संपोषिका।
राधा थीं सुमना प्रसन्नवदना स्त्री जाति-रत्नोपमा॥

प्रसंग—यह अवतरण श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय द्वारा रचित 'राधा की शोभा' शीर्षक कविता से प्रस्तुत किया गया है। इस कविता से कवि ने राधा की शोभा का वर्णन अति सुन्दर एवं मार्मिक भाषा में उपस्थित किया है। उपरोक्त अवतरण में कवि ने राधा जी के विशेष गुणों पर प्रकाश डाला है। कवि कहता है—

व्याख्या—राधा जी सुन्दर तथा आकर्षक वस्त्र पहनती थीं। वे सुन्दर २ आभूषणों से युक्त थीं। उनकी सुन्दरता अति शोभनीय होती थी। वे गुणवती प्रतीत होती थीं। उनका सर्वत्र सम्मान होता था। इसका एक मात्र कारण उनकी सुन्दरता के साथ अलंकार तथा वस्त्रों का धारण करना था। राधा जी में अनेकों सम्मान योग्य गुण थे। वे असहाय, रोगी तथा वृद्धों का उपकार सदैव करती रहती थीं। उन्हें अन्य किसी बात की चिन्ता नहीं थी। वे अन्य मूर्ख स्त्रियों की भांति किसी से द्वेष भावना नहीं रखती थीं। किसी से लड़ाई झगड़ा नहीं करती थीं। वे अवकाश के समय सुन्दर २ धर्म ग्रन्थों तथा शास्त्रों का अवलोकन करती रहती थीं। किसी प्रकार की अनुचित बातों से उनका सरोकार नहीं था। उनके हृदय में कुटिल विचारों का स्थान नाममात्र को भी नहीं था। सद्भावना, प्रेम, दया आदि भावों का ध्यान ही सदैव रखती थीं। अन्य स्वर्ण आभूषणों के साथ ये गुण भी प्राकृतिक आभूषणों के रूप में थे। यही कारण है कि राधा जी सदैव प्रसन्न चित्त रहती थीं। मलिन मुख तथा दुर्भाव उनमें कभी देखने मात्र को नहीं मिलते थे। राधा जी तो प्रसन्न चित्त थी जो सुमन की भांति सदैव खिला रहता था। वे स्त्री-जाति में रत्न के समान थीं। जिस प्रकार पैसों में रत्न का मूल्य अत्यधिक होता है उसी का आदर अधिक होता है उसी प्रकार रूप में, राधा जी स्त्री-जाति में अति मूल्यवान अर्थात् शोभनीय, प्रशंसनीय तथा सम्मानित थीं। समाज में उनका आदर सम्मान अधिक होता था। इस प्रकार कवि ने इन चार पंक्तियों में राधा के सुन्दर चरित्र का वर्णन अति सुन्दर संस्कृतमयी शैली में किया है। राधा के सर्वगुणसम्पन्न होने की अभिव्यक्ति इन पंक्तियों में सुन्दर रूप से की गई है।

लोग यों ही हैं झिझकते सोचते, जब कि उनको छोड़ना पड़ता है घर;
किन्तु घर का छोड़ना अक्सर उन्हें, बूँद लो कुछ और ही देता है कर।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्य श्री हरिऔध द्वारा लिखित 'एक बूँद' शीर्षक कविता से उद्धृत किया गया है। इस कविता में कवि ने एक बूँद की वीरता का सुन्दर चित्र खींचकर आज के नवयुवकों को एक सन्देश दिया है कि—

व्याख्या—कवि कहता है कि जब लोगों को अपना घर छोड़ना पड़ता है तो वे यूंही झिझकते रहते हैं। उन्हें डर लगा रहता है कि बाहर न जाने किस-किस प्रकार के कष्टों का सामना करना होगा। पता नहीं हमारे भाग्य

में दुःख है या सुख। कवि कहता है और एक संदेश देता है कि अधिकतर घर का छोड़ना उन्हें लाभदायक सिद्ध होगा। जिस प्रकार वह बूंद एक सीपी में गिर कर मोती बनी उसी प्रकार वे वीर पुरुष जो अपने घर को छोड़ कर बाहर जाते हैं एक मोती के समान ही बन सकते हैं। वे ऐसा कार्य कर सकते हैं जिससे कि उनकी प्रसिद्धि लोक-लोकान्तर में हो। इस प्रकार वे अपना आदर तथा सम्मान बढ़ाकर लोक प्रसिद्धि प्राप्त कर सकते हैं, संसार में उनका नाम उज्ज्वल हो जायेगा। इतिहास में उनके गौरव तथा कविता का वर्णन सुन्दर रूप में लिखा जायगा।

चाह नहीं, मैं सुरबाला के गहनों में गूँथा जाऊँ
चाह नहीं, प्रेमी माला में बिंध, प्यारी को ललचाऊँ,
चाह नहीं, सम्राटों के शव पर हे हरि! डाला जाऊँ,
चाह नहीं, देवों के सिर पर चढ़ूं भाग्य पर इठलाऊँ,
मुझे तोड़ लेना वनमाली! उस पथ पर तुम देना फेंक।
मातृ-भूमि पर शीश चढ़ाने, जिस पथ जावें वीर अनेक।

प्रसंग—प्रस्तुत पंक्तियाँ श्री माखनलाल चतुर्वेदी द्वारा लिखित 'पुष्प की अभिलाषा' नामक कविता से ली गई हैं। इसमें कवि पुष्प की अभिलाषा का वर्णन करता हुआ कहता है—

व्याख्या—मेरी यह इच्छा नहीं कि मैं देवता की कन्या के गहनों में पिरोया जाऊँ। मेरी यह भी इच्छा नहीं कि मैं प्रेमी के हार में गूँथा जाकर प्यारी को लुभाऊँ, हे भगवान्! मेरी यह भी इच्छा नहीं कि मैं महाराजाओं के मरे हुए शरीरों पर बिखेरा जाऊँ, मेरी यह भी इच्छा नहीं कि मैं देवों के सिर पर चढ़ कर अपने भाग्य पर घमण्ड करूं (मेरी इच्छा तो यह है कि) हे वनमाली! तुम मुझे उस रास्ते में डाल देना जिस रास्ते पर अनेक वीर मातृ भूमि पर बलिदान होने के लिये जा रहे हों (ताकि मैं उन वीर श्रेष्ठों के पवित्र चरणों को छूकर पवित्र हो जाऊं।)

हिमालय के आँगन में उसे प्रथम किरणों का दे उपहार।
उषा ने हँस अभिनन्दन किया और पहनाया हीरक हार॥
जगे हम लगे जगाने विश्व लोक में फैला फिर आलोक।
व्योम तम पुंज हुआ तब नाश अखिल संस्कृति हो उठी अशोक॥

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश जयशंकरप्रसाद द्वारा रचित 'भारतवर्ष' शीर्षक कविता से उद्धृत है। इसमें भारत के अतीत गौरवमय इतिहास की झलक

दिखाई गई है। आरम्भ में भारत ने ही समस्त संसार में ज्ञान के प्रकाश को फैलाया था। यहां वे कहते हैं—

व्याख्या—आर्य संस्कृति का आविर्भाव भारतवर्ष में हुआ। इस हमारे प्राचीनतम भारतवर्ष का अनादिकाल से उषा हिमालय की तलहटियों में अपनी सुनहरी किरणों का उपहार देकर और ओस विन्दु रूपी हीरों का हार पहना-कर हँसते हुए स्वागत किया करती थी। हम ऐसे अनादिकाल की पुण्य प्रभात काल की वेला में ज्ञान की ज्योति से जागृत हुए और संसार को भी अपने दिव्य ज्ञान का सदेश देकर जगाने लगे। विश्व के कोने-कोने में उस ज्ञान का प्रकाश फैला। आकाश में व्याप्त समस्त अन्धकार नष्ट हो गया। प्राणी मात्र प्रसन्नता से नाच उठा।

विशेष—भारत का अतीत गौरयमय था।

नर ही स्वयं बना है नर के रक्त माँस का प्यासा भक्षक।
आज पुष्प से मानव हिय में आ बैठा है कोई तक्षक।
मानव ने अपनापन खोया उसने अपनाई दानवता।
भीषण संघर्ष मे पड़कर चकनाचूर हुई मानवता॥

प्रसंग—प्रस्तुत पंक्तियां बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' द्वारा लिखित 'जगत उबारो' नामक कविता से उद्‌धृत की गई हैं। इसमें कवि वैज्ञानिक आवि-ष्कारों के दुष्परिणाम के फलस्वरूप मानव पर अत्याचार का वर्णन करता हुआ कहता है—

व्याख्या—आज की वैज्ञानिक दुनिया में मनुष्य स्वयं ही मनुष्य के खून का प्यासा है, मांस का भूखा है। आज फूल के समान मनुष्य के कोमल हृदय में कोई दुःख देने वाला तक्षक आ बैठा है जो मनुष्य को विभिन्न प्रकार की पीड़ा देता रहता है। आज परिस्थिति कुछ भिन्न हो गई है। मनुष्य ने अपनी मनुष्यता (सज्जनता) का परित्याग कर दानवता (स्वेच्छाचारिता, अत्याचार) को ग्रहण कर लिया है। उसने अपनापन खो दिया है। वह आज अस्तित्वहीन हो गया है। दानवता की इस भीषण चक्की में पड़कर वह पिस गया है। मानवता उसमें चकनाचूर हो गई है। सर्वत्र दानवता और अत्याचार का साम्राज्य ही दिखाई पड़ता है।

नियमों और उप नियमों के ये वन्धन टूक-टूक हो जायें
विश्वंभर की पोषण वीणा के सब तार मूक हो जायें,

शांति-दण्ड टूटे, उस महारुद्र का सिंहासन थर्राए
उसकी श्वासोच्छवास-दाहिका जग के प्रांगण में घहराए,
नाश! नाश!! महानाश!!! की प्रलयंकारी आंख खुल जाए
कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल-पुथल मच जाए!

प्रसंग—प्रस्तुत पंक्तियां श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की 'विप्लव गायन' नामक कविता से ली गई हैं। कवि क्रान्ति की भावना को प्रकट करता हुआ कवि से अनुरोध करता है—

व्याख्या—नियमों और उपनियमों के जो बंधन इस समय संसार को बांधे हुए हैं वे सभी छिन्न-भिन्न हो जाएं और विश्व का पालन करने वाले परमेश्वर की वीणा के तार मूक हो जाएं (अर्थात् वह पालन करना वन्द कर दे)। शान्ति भी नष्ट हो जाय। विश्व के नाशक प्रभु महारुद्र शिव का सिंहासन हिल जाय। उस शिव का पालन करने वाले जो श्वास एवं उच्छ्वास हैं वे विश्व के आंगन में गरजने लगें। चारों ओर नाश! नाश!! नाश!!! की ध्वनि हो और शंकर का तीसरा नेत्र खुल जाय। ऐ कवि! कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे विश्व में सर्वत्र उथल-पुथल मच जाय।

तुम तुंग हिमालय शृंग और मैं चंचल-गति सुर-सरिता।
तुम विमल हृदय उच्छ्वास और मैं कान्त कामिनी कविता॥
तुम प्रेम और मैं शान्ति।
तुम सुरापान घन अंधकार॥
मैं हूँ मतवाली भ्रान्ति॥

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की 'तुम और मैं' शीर्षक कविता से उद्‌धृत है। इसमें आत्मा और परमात्मा की एकता का प्रतिपादन विभिन्न प्राकृतिक उपमानों द्वारा किया गया है।

व्याख्या—हे ईश्वर! तुम ऊँची हिमालय की चोटी हो तो मैं उससे प्रवाहित होने वाली गंगा के समान हूं अर्थात् जिस प्रकार गंगा नदी का मूल उद्‌गम स्थान हिमालय पर्वत है उसी प्रकार मुझ जीवात्मा का आधार भी वह ईश्वर है। हे प्रभु! तुम पवित्र हृदयोद्‌गार हो और मैं सुन्दर कवितारूपी कामिनी हूं। हृदयोच्छ्वास ही कविता का प्राण सोता है। हे ईश्वर! तुम प्रेम हो तो मैं शान्ति हूं। प्रेम के कारण संसार में शान्ति रह सकती है। हे प्रभु! तुम घनान्धकार स्वरूप सुरापान हो तो मैं उससे होने वाली मादकता पूर्ण भ्रान्ति (नशा) के समान हूं।

विशेष—निराला ने वेदान्त के अद्वैत सिद्धान्त का प्रतिपादन अतीव सरल एवं सरस ढंग से किया है।

तुम प्रेममयी के कण्ठहार मैं वेणी काल नागिनी।
तुम कर पल्लव झंकृति सितार मैं व्याकुल विरह रागिनी॥
तुम पथ हो मैं हूँ रेणु।
तुम राधा के मनमोहन,
मैं उन अधरों की वेणु॥

प्रसंग—पूर्ववत्।

व्याख्या—तुम प्रेमिका के गले में हार के सदृश हो तो मैं उसकी काल-सर्पिणी तुल्य वेणी (चोटी) के समान हूं। हे ईश्वर! तुम हाथ रूपी पल्लव से निनादित सितार के सदृश हो तो मैं व्याकुल कर देने वाली विरह की रागिनी हूँ। तुम मार्ग हो तो मैं उस मार्ग की धूलि के सदृश हूँ। तुम राधा के मन को मोहित कर देने वाले कृष्ण हो तो मैं उनके अधरों की बांसुरी के समान हूँ।

यह साँझ उषा का आंगन आलिंगन विरह मिलन का;
चिर हास अश्रुमय आनन रे इस मानस जीवन का। (प्रथमा २०१७)

प्रसंग—प्रस्तुत पंक्तिया 'काव्यसंग्रह' में संगृहीत श्री सुमित्रानन्दन पन्त द्वारा लिखित 'सुख-दुःख' नामक कविता से उद्धृत की गई हैं। यहां कवि पन्त ने जीवन की विशाल परिधि के बीच सुख और दुःख दोनों के अस्तित्व को स्वीकार किया।

व्याख्या—कवि जीवन की वास्तविकता बतलाते हुए कहता है कि यह जीवन संध्या और उषा का अभूतपूर्व मिलन आंगन है। इसमें विरह और मिलन आंख मिचौनी खेलते रहते हैं। जीवन में कभी विरह आता है तो कभी मिलन। इसी रूप मे यह जो मानव-जीवन है कभी आँसुओं से भरता है और कभी मुस्कानों से अंग्रेजी कवि बायरन ने भी कहा है—"Man thou art pendulum betwixt a smile and a tear."

नव कुंद कुसुम से मेघ पुंज बन गये इन्द्र धनुषी वितान।
दे मृदु कलियों की चटक, ताल, हिम विन्दु नचाती तरल प्राण।

धो स्वर्ण प्रात में तिमिर गात।
दुहराते अलि निशि मूक तान॥

(प्रथमा, सं० २०१६)

प्रसंग—प्रस्तुत पंक्तियां 'काव्य-संग्रह' में संगृहीत श्रीमती महादेवी वर्मा द्वारा लिखित 'प्रभात' नाम गीत से ली गई हैं। कवयित्री प्रभात काल का वर्णन करती हुई कहती है—

व्याख्या—नवीन कुन्द के पुष्पों के समान सफेद बादलो के समूह सूर्य की किरणों के सम्पर्क से इन्द्र धनुष जैसे विविध रंगों वाले शामियाने के समान दिखाई दे रहे हैं। कोमल कलियों के चटकने की ध्वनि की ताल पर ओस की बूंदें नृत्य कर रही हैं। प्रातःकालीन स्वर्गीय आलोक में अपने काले शरीरों को धो-धोकर भँवरे रात मे बन्द की हुई गुंजार को फिर से दुहराने लगे है।

विशेष—इस छन्द में नृत्य-गान की महफिल का चित्र अंकित किया गया है। शामियाने के नीचे ही नाच-गाना हुआ करता है।

ले अंगड़ाई उठ, हिले धरा कर निज विराट् स्वर में निनाद,
तू शैलराट् हुंकार भर, फट जाय कुहा, भागे प्रमाद।

(प्रथमा, सं०२०१७)

प्रसंग—प्रस्तुत पंक्तियां श्री रामधारी सिंह दिनकर द्वारा लिखित उनकी सुप्रसिद्ध कविता 'हिमालय के प्रति' से उद्धृत की गई है। कवि हिमालय के प्रति कहता है—

व्याख्या—हे हिमालय ! अब तनिक अंगड़ाई ले, ध्यान से उठने की सूचना देने के लिये अपने अंगों को मोड़ ! जिससे पृथ्वी भी हिल उठे। तू अपने व्यापक स्वर से गर्जन कर। हे पर्वतराज ! तू हुंकार कर जिसे सुनकर सारे हृदयों पर छाई अकर्मण्यता रूपिणी धुंध छिन्न-भिन्न हो जाय, उपेक्षा असावधानता आदि सब दूर हो जायें।

भाव यह है कि जैसी महत्ता है, उसी के अनुरूप गर्जन करो जिससे भारतीयों के हृदयों में व्याप्त अकर्मण्यता, निराशा और सुस्ती का प्रभाव समाप्त हो जाये।

अन्य महत्वपूर्ण व्याख्यार्थ स्थल

(१) प्रकृति यहां......मन वारति। पृ० ७३
(२) सद्य उत्फुल्ल......भाव था। पृ० ७६
(३) रूपोद्यान......सन्मूर्ति थी। पृ० ८२
(४) तू है गगन......आसीन हूं। पृ० ६२
(५) बोले रघुकुल......सुविकसिता। पृ० ८६
(६) तव चरण......कब ओर है। पृ० ६३
(७) जिनके सुधामय......खिले हुए। पृ० १०४
(८) दोनों ओर प्रेम......विह्वलता है। पृ० १०७
(९) उठ पूर्व के......आविष्कारों में। पृ० १११
(१०) दग्धश्वास से......जले यहां। पृ० १२१
(११) मानस का स्मृति......डरे-डरे। पृ० १२३
(१२) अतिशय चपल......नीरद। पृ० १३०
(१३) सावन के......ज्ञान घन। पृ० १३०
(१४) अंकित व्रजेश......दुकूल में। पृ० १३५
(१५) रहती उसी की......पहुनाई है। पृ० १३६
(१६) मैं इस झरने के......अम्लान। पृ० १४४
(१७) किसके स्वागत......पाता है। पृ० १४६
(१८) किंशुक कुसुम......सनावेगा। पृ० १५४
(१९) उद्वेलित कर......अशान्त। पृ० १५७
(२०) कण-कण में......अन्तरतर से। पृ० १६७
(२१) नवरूप की......वसुन्धरा है। पृ० १७१
(२२) वह इष्टदेव......विधवा है। पृ० १७८
(२३) जीवन प्रसून......दृग खोले। पृ० १७८
(२४) प्रथम रश्मि......मुसकाना। पृ० १८७
(२५) तुम वहन......अलंकार। पृ० १६०
(२६) कुमार ने......दूर है। पृ० १६६
(२७) नाश भी हूं......भी हूं। पृ० २४८

काव्यांग-कल्पद्रुम

छन्द-भाग

प्रश्न १—छन्द, लघु तथा गुरु, मात्रा, गण व शुभाक्षर तथा दग्धाक्षर के सम्बन्ध में आप क्या जानते हैं ?

छन्द—वह रचना है जिसमें मात्रा, अक्षर तथा विरामादि का विशेष नियम हो।

लघु—अनुस्वार तथा विसर्गों से रहित एक मात्रा वाले शब्दों को लघु कहते हैं। हिन्दी में इसके लिए 'ल' लिखते हैं और इसका चिन्ह एक (।) है।

गुरु—यदि दीर्घ स्वर और ह्रस्व वर्ण संयुक्त वर्ण से पूर्व अथवा अनुस्वार और विसर्ग से युक्त हो तो उसे गुरु कहते हैं। इसके लिए 'ग' लिखते हैं और इसका चिन्ह (S) हैं।

मात्रा—लघु में एक मात्रा तथा गुरु में दो होती हैं। 'चरण कमल' में सब लघु तथा 'माता खाना' में सब गुरु हैं।

गण—तीन अक्षरों के समूह को गण कहते हैं। ये गिनती में आठ होते हैं। यगण, मगण, तगण, रगण, भगण, जगण, नगण तथा सगण। विद्यार्थियों को इन गणों की मात्रा को याद करने में बड़ी कठिनाई प्रतीत होती है परन्तु यह अति सरल है। आप निम्न ढंग याद रखिए—

।	S	S	S	।	S	।	।	।	S
य	मा	ता	रा	ज	भा	न	स	ल	गा

यदि आपको, मान लो, रगण की मात्राएं निकालनी हैं तो रा ज भा की मात्राएँ अर्थात् S।S होंगी और यदि सगण की निकालनी हैं तो स ल गा ।।S, इसका अर्थ यह है कि जिस गण की मात्राएँ निकालनी हैं उस गण का शब्द तथा दो और आगे के लेकर उनकी मात्राएँ लगा लो। वह उस गण की मात्राएँ होंगी। यमाताराज भानस तक तो आठ गणों के प्रथम शब्द ल गा लघु और गुरु के लिए हैं।

शुभाक्षर—क, ख, ग, घ, च, छ, ज, त, द, ध, न, य, श, स, क्ष वर्णों

को शुभ माना गया है। ये किसी छन्द के आदि में प्रयुक्त हों तो वे छन्द शुभ होंगे।

दग्धाक्षर—उपरोक्त वर्णों को छोड़कर शेष सभी वर्णों को अशुभ माना गया है। यदि कोई छन्द इन वर्णों से आरम्भ होगा तो वह छन्द भी अशुभ माना जायगा। परन्तु दग्धाक्षरों को दीर्घ रूप में अथवा देवतावाची या मंगल वाची रूप में प्रयुक्त किया गया हो तो वह दोष रहित माना जाता है।

प्रश्न २—मात्रिक एव वार्णिक छन्दों का भेद उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—हिन्दी साहित्य में दो प्रकार के छन्द होते हैं। मात्रिक एवं वार्णिक। फिर मात्रिक तथा वार्णिक छन्दों के भी भेद होते हैं। निम्न तालिका से यह भेद स्पष्ट हो जायगा।
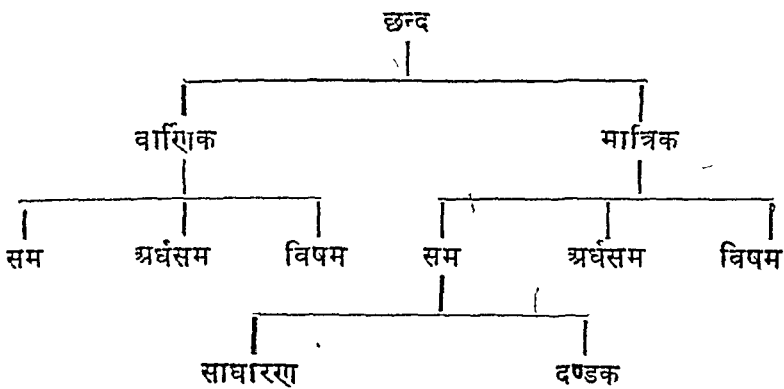
(३२ या ३२ से कम मात्राएँ) (३२ से अधिक मात्राएँ)

अर्थात् मात्रिक छन्दों के तीन भेद सम, अर्धसम तथा विपम होते हैं। मात्रिक सम मे चारों चरणों में मात्राएँ समान होती हैं। जैसे रूपमाला, उल्लाला, हरिगीतिका आदि।

उदाहरण १— झगड़े झांसे उड़ गए, अन्धकार का युग गया।
उदित भानु अब हो गए, मार्ग सभी का दिख गया।।

इस चरण के प्रत्येक छन्द में १३ मात्राएँ हैं।

उदाहरण २— दुर्वृत्त दर्योधन न, जो शठता सहित हट ठानता।
जो प्रेमपूर्वक पाण्डवों की मान्यता को मानता।।

तो डूबता भारत न यों रक्त पारावार में।
ले डूबता है एक पापी नाव को मंझधार में ॥

इस छन्द में प्रत्येक चरण में २८ मात्राएँ हैं। १६ और १२ के पश्चात् विराम रहता है। अत में लघु गुरु होता है।

मात्रिक अर्धसम छन्दों में १ व ३ तथा २, ४ चरण में मात्राओं की संख्या समान होती है। जैसे बरवै, दोहा, सोरठा इत्यादि।

उदाहरण १— जो रहीम गति दीप की, कुल कपूत गति सोय।
बारे उजियारी करैं, बढ़े अन्धेरा होय ॥

२— सुनकर भीष्म निदेश, उठे वीर गण संघ से।
रण उत्साह अशेष, लेकर गए निवेश को ॥

मात्रिक विषम में वे छन्द होते हैं जो न सम हों और न अर्धसम। जैसे—

उदाहरण—कवि निर्धन भी होकर शठ की सेवा कभी न करता है।
रत्नाकर में जाकर, हंस कभी क्या विचरता है ॥

इस छन्द में १ तथा ३ चरण में १२ मात्रा तथा २ व ४ चरण में क्रम से १८ व १५ मात्राएँ हैं।

वार्णिक सम में चारों चरणों के अक्षरों की संख्या तथा लघु गुरु का क्रम समान होता है। जैसे द्रुतविलम्बित, भुजंगप्रयात, दुर्मिल, सवैया, मन्दाक्रान्ता आदि।

उदाहरण—इस छन्द के प्रत्येक चरण में नभ भर गण होते हैं। इसमें १२ अक्षर होते हैं जैसे :—

"मनुज जो दृढ़ निश्चयवान है।"

वार्णिक अर्धसम छन्द के तथा १ व ३ तथा २, ४ चरण के वर्णों की संख्या बराबर होती है। जैसे वियोगिनी छन्द।

वार्णिक विषम के चारों चरणों में प्रत्येक चरण की वर्ण-संख्या और गुरु लघु क्रम समानता नहीं होती।

पाठ्य-पुस्तकों में आये प्रसिद्ध छन्द

(मात्रिक)

चौपाई—इसके प्रत्येक चरण में १६ मात्राएँ होती हैं अंत में गुरु होता है

लघु नहीं होता है । यदि लघु आये तो उसके पूर्व में भी लघु वर्ण होना आवश्यक है जिससे कि लय नहीं बिगड़े ।

रघुकुल रीति सदा चलि आई ।
प्राण जायं पर वचन न जाई ॥

रोला—इसके प्रत्येक चरण में २४ मात्राएँ तथा ११ और १३ के पश्चात् विराम होता है । इसके अन्त में दो लघु अथवा दो गुरु होते हैं । जैसे :—

मदमाता जग भला दीन दुःख क्या पहचाने ।
दीनबन्धु बिन कौन दीन के हिय की जाने ॥
होता जो न अधार शोक में नाथ ! तुम्हारा ।
निराधार यह जीव भटकता फिरता मारा-मारा ॥

उल्लाला—इस छन्द के प्रत्येक चरण में १३ मात्राएं होती हैं ।

झगड़े झाँसे उड़ गये ।
अन्धकार का युग गया ॥

दंडकाल—इस छन्द के प्रत्येक चरण में ३२ मात्राएं होती हैं । १०, ८ तथा १४ मात्राओं पर विराम होता है । प्रत्येक चरण के अन्त में सगण (।। s) अथवा मगण (sss) होता है । जैसे—

वह बात बनाता, गीत सुनाता, कथा बताता लोगों की ।
आँखें मटकाता, कटि लहराता, चाल गिनाता भोगों की ॥
निज लट लटकाता, कर चकराता, गति बतलाता रोगों की ।
आसन दिखलाता, खेल जमाता, विधि समझाता योगों की ॥

दोहा—इस छन्द के पहले और तीसरे चरण में १३ मात्राएं व दूसरे और चौथे में ११ मात्राएं होती हैं । जैसे :—

पाहन पूजे हरि मिले, तो मैं पूजूँ पहार ।
या ते ऊ चक्की भली, जो पीस खाय संसार ॥

सोरठा—इस छन्द के पहले और तीसरे चरण में ११ मात्राएं दूसरे और चौथे में १३ मात्राएं होती हैं । जैसे :—

सुनकर भीष्म निदेश, उठ वीर गण संघ से ।
रण उत्साह अशेष, लेकर गये निवेश को ॥

कुण्डलियां—यदि दोहा रोला को एक ही जगह जोड़ दें तो कुण्डलिया छन्द बन जाता है। दोहे का पहला और दूसरा चरण कुण्डलियों का पहला चरण कहलाता है। दोहे का तीसरा और चौथा चरण मिलकर कुण्डलियों का दूसरा चरण होता है। इसके बाद रोला के चार पद होते हैं। जैसे—

अश्वत्थामा के हृदय में भय का था संचार।
विपिन ओर वह चल पड़ा त्याग लोक व्यापार।
त्याग लोक व्यापार चला अंतिम अरिघाती।
हुई ध्वनित रिपु कुपित उदित जब हुई विभाती।
व्यथित नारियों सहित रुदन करती थी श्यामा।
शब्दित था सब ओर कहाँ है अश्वत्थामा॥

छप्पय—छप्पय में छः पद होते हैं, जिसमें प्रथम चार पद रोला के और शेष दो पद उल्लाला के रहते हैं। इसे षट्पदी भी कहा जाता है।

जहाँ स्वतन्त्र बिचार न बदलें मन में मुख में।
जहाँ न बाधक बने सबल निबलों के सुख में॥
सबको जहाँ समान निजोन्नति का अवसर हो।
शान्तिदायिनी निशा हर्ष-सूचक बासर हो॥

भुजंगप्रयात—इस छन्द के प्रत्येक चरण में चार यगण (। SS) होते हैं। जैसे—

कथा काव्य जिज्ञासु विद्वज्जनों में।
सदा व्यास साहित्य का मान होगा॥

द्रुतविलम्बित—इस छन्द के प्रत्येक चरण में नगण, भगण, भगण और रगण होते हैं। बारह अक्षर का यह छन्द है। जैसे:—

मनुज जो दृढ़ निश्चयवान है,
वह नहीं हटता निज ध्येय से।

शिखरिणी—इसके प्रत्येक चरण में क्रम से यगण, मगण, नगण, सगण, भगण तथा अन्त में लघु और गुरु होते हैं। इस छन्द में सत्रह अक्षर होते हैं। जैसे:—

सदा सच्चे साथी सकल जग के एक तुम हो,
तुम्हीं हो हे स्वामिन् सुकर भय उद्धार करना।

तुम्हीं ने जीता है भव, भय तथा क्रोध भर भी,
करो रक्षा भू की सपशु-खग शाखी मनुज की।

वसन्ततिलका—इसके प्रत्येक चरण में तगण, भगण, २ जगण और अन्त में दो गुरु होते हैं। यह चौदह अक्षरों का छन्द होता है। जैसे—

बन्दी सभी मुदित हो यह सोचते थे,
होगा कुमार यदि तो हम मुक्त होंगे।
क्या जानते कभी वह अल्प भी थे,
संसार वन्दिगृह मुक्तक आ रहे हैं।।

सवैया—बाईस अक्षर से लेकर छब्बीस अक्षर तक के वर्णिक छन्द को सवैया कहते हैं। जैसे :—

हो रहते तुम नाथ जहां, रहता मन साथ सदैव वहीं है।
बिन मेल विरोध महानद, में बोहित से बहते रहते हैं।
कवि शंकर काल कुशासन की फटकार बड़ी सहते रहते हैं।
पर भारत की गत गौरव की अनुभूत कथा कहते रहते हैं।

इन्द्रवज्रा—इस छन्द के प्रत्येक चरण में दो तगण एक अन्त में जगण और दो गुरु होते हैं। ग्यारह अक्षर का यह छन्द है और चरण के अन्त में विराम होता है। जैसे:—

जागो उठो भारत देशवासी,
आलस्य त्यागो न बनो विलासी।
ऊंचे उठो दिव्य कला दिखाओ,
संसार के पूज्य पुनः कहाओ।

उपेन्द्रवज्रा—इसके प्रत्येक चरण में जगण, तगण, जगण और अन्त में दो गुरु होते हैं। यह भी ग्यारेह अक्षर का छन्द है और चरण के अन्त में विराम रहता है। जैसे :—

बड़ा कि छोटा कुछ काम कीजै।
परन्तु पूर्वापर सोच लीजै।
बिना विचारे यदि काम होगा।
कभी न अच्छा परिणाम होगा।।

उपजाति—जिस छन्द में इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा दोनों के लक्षण हों, उसे उपजाति कहते हैं। जैसे :—

परोपकारी बन वीर जाओ।
नीचे पड़े भारत को उठाओ।
हे मित्र! त्यागो मद मोह माया।
नहीं रहेगी यह नित्य काया।।

प्रश्न ३—गीतिका तथा हरिगीतिका छन्दों का भेद उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए। (प्रथमा, सं० २०१५)

उत्तर—गीतिका छन्द के प्रत्येक चरण में २६ मात्राएं होती हैं और १४ व १२ मात्रा पर विराम होता है। अन्त में लघु गुरु होता है। हरिगीतिका छन्द में अट्ठाईस मात्राएँ होती हैं १६ व १२ पर विराम होता है। अन्त में गीतिका छन्द की भांति लघु गुरु होता है। इन दोनों छन्दों में मात्राओं तथा विराम-चिन्हों का अन्तर है।

उदाहरण—(गीतिका छन्द)

SI SS I I I I I S S IS II S I S=२६
कौन नीलो ज्वल युगल दे दो यहां पर खेलते,
S IS I I S I S I I S I S S S I S=२६
है झड़ी मकरन्द की, अरबिन्द में ये झेलते।
S III SS I S S I I I S I I S I S
क्या समय था ये दिखाई पर गए कुछ तो कहो
SI S S I I III S S I I I S I I I S
सत्य क्या जीवन शरद के में प्रथम खञ्जन अहो।

इस छन्द के प्रत्येक चरण की मात्राओं का योग २६ है और अन्त में पहले लघु तथा बाद में गुरु है। पहले तथा दूसरे चरणों से IS, तीसरे में कहो IS और चौथे में अहो।

उदाहरण—(हरिगीतिका)

दुर्वृत्त दुर्योधन न जो शठता सहित हठ ठानता,
जो प्रेमपूर्वक पाँडवों की मान्यता को मानता।

लो डूबता भारत न यों रण रक्त पारावार में,

ले डूबता है एक पापी नाव को मंझधार में ।।

इस छन्द के प्रत्येक चरण में २८ मात्राएं हैं तथा १६ व १२ पर विराम है। अन्त में पहले लघु तथा फिर गुरु है।

अलंकार भाग

प्रश्न १—अलंकार किसे कहते हैं? यह कितने प्रकार के हैं? इनका काव्य में क्या स्थान है?

उत्तर—अलंकार का अर्थ है "शोभा को बढ़ाने वाला।" लोक-व्यवहार में भी शरीर की शोभा बढाने वाले स्वर्ण-हार, कुंडल इत्यादि को अलंकार कहते हैं। काव्य में शब्द और अर्थ की शोभा बढ़ाने वाले धर्मों को अलंकार कहते हैं। अलंकार संख्या में अत्यधिक हैं। इन्हें तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं।

१. शब्दालंकार—जिसमें केवल शब्द की शोभा बढ़े अथवा जिससे केवल शब्द में ही चमत्कार उत्पन्न हो उसे शब्दालंकार कहते हैं। जैसे:—वक्रोक्ति तथा अनुप्रास, यमक इत्यादि।

२. अर्थालंकार—जिससे अर्थ की शोभा बढ़े उसे अर्थालंकार कहते हैं। जैसे—उपमा, रूपक इत्यादि।

३. उभयालंकार—शब्द और अर्थ के आश्रित रहने वाले अलंकार उभयालंकार कहलाते हैं। जैसे—अन्वय इत्यादि।

अलंकारों का काव्य में स्थान—उत्तम काव्य वही कहलायगा जहाँ पर अलंकारों की बहुलता होगी। बिना अलंकार के कोई भी काव्य उसी प्रकार सुन्दर नहीं लग सकता जिस प्रकार की अलंकारहीन स्त्री। जिस प्रकार किसी स्त्री को आभूषण पहना दिए जाते हैं तो वह सुन्दर न होते हुए भी सुन्दर प्रतीत होने लगती है और जो स्त्री सुन्दर होती है उसकी शोभा और कान्ति देखने योग्य होती है उसी प्रकार काव्य में अलंकार-रूपी आभूषणों के प्रयोग करने से अर्थात् काव्यों को अलंकार-युक्त कर देने से वह अति महत्त्वपूर्ण हो जाता है।

काव्य के सौन्दर्य के लिए कुछ विद्वानों ने व्यंजना का महत्त्व अलंकार से

अधिक बताया है। यह विवाद निरर्थक तथा भ्रमपूर्ण है। कुछ भी हो इन दोनों का स्थान काव्य में समान है। यदि अलंकार साधन है तो कविता साध्य। कुछ विद्वानों का कहना है कि अलंकार काव्य के लिये उन पुष्पों के समान है जो कि देवताओं के सिरों पर अति श्रद्धा के साथ चढ़ाये जाते हैं और फिर भगवान् का रूप अति शोभनीय दीख पड़ता है। ठीक उसी प्रकार अलंकारों से काव्य में जान पड़ जाती है। फिर भी इस अलंकार को पूर्ण रूप से काव्य का प्राण नहीं कह सकते। हाँ, इसका स्थान प्रमुख अवश्य है। दूसरे कुछ विद्वानों ने कहा है कि अलंकार काव्य में साधक ही होता है बाधक नहीं। ठीक है जिस प्रकार से भोजन की सही मात्रा शरीर को कष्ट नहीं दे सकती उसी प्रकार अलंकारों का सही प्रयोग काव्य को निकृष्ट नहीं बना सकता। यदि हम मात्रा से अधिक भोजन करते हैं तो हमारे शरीर में कई प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। ठीक उसी प्रकार काव्य में अलंकारों के अत्यधिक प्रयोग से वह काव्य दूषित हो जाता है। उसका महत्त्व अधिक नहीं रहता। वह निकृष्ट काव्य ही कहलायगा। उत्तम काव्य का एक उदाहरण देखिये— **प्रथम वृष्टि की बूंद उमा की बरोनियों पर कुछ ठहरे,**

फिर पीड़ित कर अधर कुचों पर चूर-चूर होकर बिखरें।

तदन्तर सुन्दर त्रिवली का क्रम-क्रम से उल्लंघन कर,

बड़ी देर में पहुंच सके वे उसकी रुचित नाभि भीतर।

प्रश्न २—कुछ प्रमुख अलंकारों को उदाहरण सहित समझाइये।

उपमा—एक-दूसरे से भिन्न उपमान और उपमेय के सुन्दर सादृश्य को उपमा कहते हैं। जिसके रूप-रंग का वर्णन किया जाय उसे उपमेय और जिससे बराबरी की जाय उसे उपमान कहते हैं। जैसे :—

लोचन कुवलय से विशाल,
आनन विधु-सा शोभाकर।

यहां पर आंखों की उपमा कमल से और मुंह की चन्द्र से दी गई है। इसलिये लोचन और आनन उपमेय हैं तथा कुवलय और विधु उपमान हैं। "से और सा" वाचक तथा विशाल व शोभाकर धर्म हैं।

उपमा के दो प्रकार होते हैं

१. पूर्णोपमा—जहां पर उपमान, उपमेय, समान धर्म तथा वाचक शब्द

(चारों) हों वहां पर पूर्णोपमा होती है। जैसे :—

गुण पै रिझवति दोस सों, दूर बचावति जौन।
स्वामि-भक्ति जननी सरिस, प्रनमत नित हम तौन॥

२. लुप्तोपमा—जब उपमेय, उपमान, समान धर्म तथा वाचक शब्द में से कोई सा एक अंग लुप्त हो वहां पर लुप्तोपमा होती है। जैसे :—"मुख चन्द्र के समान है।" इसमें समान धर्म का लोप है। इसके अतिरिक्त :—

३. मालोपमा—जहा पर एक उपमेय के लिए कई उपमानों का प्रयोग हो उसे मालोपमा कहते है। जैसे :—

सफरी से अति चपल हैं, दीरघ मृग सम ऐन।

कमल पत्र से सुघर ये, राधा जी के नैन॥

यहां पर राधा जी के नैन उपमेय हैं और सफरी, मृगनेत्र, कमल-पत्र आदि उनके उपमान हैं।

४. उपमेयोपमा—जहां पर उपमेय की समता उपमान से तथा उपमान की समता उपमेय से की जाय वहां उपमेयोपमा होती है। जैसे :—

वचन सुधा से सन्त के, सुधा वचन सम जान।

वचन खलन के विष सदृश, विष खल वचन समान॥

यहां पर सुधा उपमान है और संत वचन उपमेय है। दूसरे वाक्य में सुधा उपमेय है और वचन उपमान।

रूपक

जहां उपमेय और उपमान की एकता है वहां पर रूपक होता है। यह एकता तभी होती है जब हम सादृश्यता के कारण उपमेय को ही उपमान मान लेते हैं। जैसे—"सोहत है मुखचन्द्र" यहां आह्लादकता आदि सादृश्य के कारण उपमेय 'मुख' में उपमान 'चन्द्र' का आरोप किया है। इसलिये मुख और चन्द्रमा में एकता की प्रतीति होती है। रूपक के तीन भेद होते हैं :—

१. सांगरूपक—जहां पर उपमान के सभी अंगों का आरोप उपमेय में किया जाता है वहां सांगरूपक अलकार होता है। जैसे :—

गगन सरोवर में चुनता है, तारक मुक्ता वह रवि हंस।

यहां पर गगन, रवि और तारक उपमेय हैं। इनमें उपमान के सभी अंगों सरोवर, हंस, मुक्ता का आरोप है।

२. निरंगरूपक—जहां बिना अंगों के केवल उपमान का उपमेय में आरोप होता है वहाँ निरंगरूपक होता है। जैसे :—

दुर्भिक्ष राक्षस जहाँ सबको सताता,
लाखों मनुष्य यह प्लेग कृतान्त खाता।
नाना विपत्ति अभिभूत प्रजा जहाँ है।
कर्त्तव्य क्या न कुछ भी तुझको वहाँ है॥

यहाँ दुर्भिक्ष में राक्षस का और प्लेग में कृतान्त का आरोप किया गया है। दोनों किसी दूसरे की अपेक्षा नहीं रखते इसलिये यह निरंगरूपक अलंकार है।

३. परंपरितरूपक—जहां मुख्य आरोप का कारण कोई दूसरा आरोप हो। जैसे :—

तुम बिन रघुकुल कुमुद विधु, सुरपुर नरक समान।

यहाँ पर रघुकुल में कुमुद का आरोप भगवान् राम में विधु के आरोप का कारण है।

उत्प्रेक्षा

प्रस्तुत वस्तु में अप्रस्तुत की सम्भावना को उत्प्रेक्षा कहते हैं। (जो वर्णनीय हो या जिसके वर्णन का प्रसंग हो उसे प्रस्तुत कहते हैं। जो अवर्णनीय है या जिसके वर्णन का प्रसंग नहीं है उसे अप्रस्तुत कहते हैं। सम्भावना का अर्थ है अनिश्चयात्मक कल्पना) जैसे :—

लखियत राधा वदन मधु, विमल सरत राकेस।

यहां पर राधा वदन प्रस्तुत है और राकेस अप्रस्तुत है। प्रस्तुत राधा वदन में अप्रस्तुत चन्द्रमा की अनिश्चयात्मक कल्पना की गई है। मनु शब्द सम्भावना का बोधक है अत: यह उत्प्रेक्षा अलंकार है। इस अलंकार में मनु, मानो, जनु, जानो, निश्चय, वहुधा, इव, खलु, ननु आदि शब्द इसके वाचक हैं। यह तीन प्रकार का होता है।

१. वस्तूत्प्रेक्षा—जहाँ किसी वस्तु में अप्रस्तुत वस्तु के स्वरूप की सम्भावना हो। जैसे :—

सोहत ओढ़े पीत पट स्याम सलोने गात।
मनो नीलमणि सैल पर, आतप पर्यो प्रभात॥

यहां पीताम्बर धारी कृष्ण के श्याम शरीर में प्रातःकाल के घाम से सुशोभित नीलमणि पर्वत के स्वरूप की सम्भावना की गई है।

२. हेतूत्प्रेक्षा—जहाँ अहेतु को हेतु मानकर उत्प्रेक्षा की जाय वहां पर हेतूत्प्रेक्षा होती है। जैसे :—

अरुण भये कोमल चरण, भुवि चलिवे तें मानु।

यहां पर कवि ने सौकुमार्य का अतिशय वताने के लिए अहेतु में हेतु की कल्पना की है।

३. फलोत्प्रेक्षा—जहां अफल में फल की उत्प्रेक्षा की जाय। जैसे :—

मधुप निकारन के लिए, मानो रुके निहारि।
दिनकर निज कर देत है, सतदल दलन उघारि॥

यहां पर कवि ने फंसे हुए भौंरों को वाहर निकालने के हेतु कमल को खिलाने की सम्भावना की है। परन्तु यह फल नहीं क्योंकि रात्रि के पश्चात् प्रातःकाल सूर्य निकलने पर कमल का खिलना स्वाभाविक है इसलिये यह फलोत्प्रेक्षा है क्योंकि यहां पर अफल में फल की सम्भावना की गई है।

अतिशयोक्ति

जहां किसी वस्तु का वर्णन अति वढ़ा-चढ़ाकर किया जाय वहाँ अतिशयोक्ति अलंकार होता है। यह छः होते हैं।

१. रूपकातिशयोक्ति—जहाँ उपमान उपमेय को अपने ही स्वरूप में ग्रहण कर ले उसे रूपकातिशयोक्ति कहते हैं। जैसे :—

स्थित यमुना तट हरत नित, पथिक गतागत पीर।
कनक लतायुत हरहु वह, तरु तमाल भव भीर॥

यहां पर राधा सहित भगवान् कृष्ण उपमेय हैं। कनकलता सहित तमाल (आवनूस का वृक्ष) उपमान है। उसी का यहाँ वर्णन किया गया है।

२. भेदकातिशयोक्ति—जहां अभेद रहने पर भी भेद का वर्णन हो। जैसे :—

औरे कछु चितवनि चलनि, औरै मृदु मुसकानि।
औरै कछु सुख देति है, सकै न वैठ वखानि।

यहां पर कवि ने औरै पद के द्वारा लोक-प्रसिद्ध चितवनि, मुसकानि आदि मे अनोखापन वताया है इसलिये यह भेदकातिशयोक्ति है।

३. सम्बन्धातिशयोक्ति—जहाँ सम्बन्ध न रहने पर भी सम्बन्ध बताया जाय। जैसे :—

यदि विधुमंडल में इन्दीवर युगल लगायें।
तब मृगनयनी के मुख की उपमा दे पायें॥

यहाँ चन्द्र-मडल में दो कमल लगने का सम्बन्ध न होने पर भी संबन्ध कहा गया है।

४. अक्रमातिशयोक्ति—जहाँ कारण और कार्य एक ही काल में हों। जैसे :—

अजामील के प्रान, इत निकसे हरिनाम-जुत।
उत वह बैठि विमान, तब लगि पहुंच्यो हरिसंदन॥

यहां हरिनामयुत प्राणों का निकलना कारण तथा विमान में बैठकर जाना कार्य है।

५. चपलातिशयोक्ति—जहाँ कारण के ज्ञान मात्र से कार्य की उत्पत्ति बताई जाय। जैसे :—

कैकेयी के कहत ही, रामगमन की बात।
नृप दशरथ के ताहि छिन, सूख गए सब गात॥

यहाँ पर कैकेयी के मुख से रामगमन की बात सुनने मात्र से ही शरीर सूखना बताया है इसलिए यह चपलातिशयोक्ति है।

६. अत्यन्तातिशयोक्ति—जहाँ कारण से पूर्व ही कार्य की उत्पत्ति बताई जाय। जैसे—

बान न पहुंचे अंग लौं अरि पहिले गिरि जाहि।

यहाँ पर शत्रुओं के अंगों पर बाण लगने नहीं पाते कि वे पहले ही गिर जाते हैं इसलिए यह अत्यन्तातिशयोक्ति हैं।

अनुप्रास

स्वरों के भेद होने पर भी व्यंजनों की समानता को अनुप्रास कहते हैं। इसके कई भेद हैं।

१. छेकानुप्रास—एक या अनेक व्यंजनों की एक बार आवृत्ति को छेकानुप्रास कहते हैं। जैसे :—

तुम तुंग हिमालय शृंग
और मैं चंचल गति सुर-सरिता।

इसमें 'त' और 'ङ्ग' की आवृत्ति हुई है।

२. वृत्यनुप्रास—वृत्तियों के अनुकूल एक या अनेक वर्णों की अनेक वार आवृत्ति को वृत्यनुप्रास कहते है। जैसे :—

कलित कुंचित कल काले केश।

इसमें 'क' व्यंजन की अनेक वार आवृत्ति हुई।

३. अन्त्यानुप्रास—जहाँ पद्य के चारों पदों के या कुछ के अन्त्य के सस्वर व्यंजन समान हों। जैसे—

रघुपति राघव राजा राम, पतित पावन सीता राम।

इसमें 'म' की आवृत्ति हुई है।

४. शब्दानुप्रास या लाटानुप्रास—जहाँ भिन्न-भिन्न तात्पर्य वाले एक या अनेक समानार्थक शब्दों की समता हों। जैसे :—

वे घर हैं वन ही सदा, जहं नहिं बन्धु वियोग।
वे घर हैं वन ही सदा, जहं नहिं बन्धु वियोग।।

यहाँ पर 'वे घर हैं वन ही सदा' की आवृत्ति हुई है और केवल अन्वय के भेद के कारण अर्थ में भेद है।

यमक—निरर्थक अथवा भिन्न-भिन्न अर्थों वाले सार्थक, वर्ण समुदाय की उसी क्रम से आवृत्ति का नाम यमक है। जैसे :—

उदाहरण १— तालन पै ताल पै तमालन पै मालन पै,
वृंदावन वीथिन वहार वंसीवट पै।
वीथिन में, व्रज में, नवेलिन में, बेलिन में,
वनन में, वागन में, वगरो वसन्त है।

उपरोक्त पद्यांश में पहिले 'मालन पै' तथा दूसरी पंक्ति में 'वेलिन में' की आवृत्ति होने के कारण यह यमक अलंकार है।

उदाहरण २— मैं न लखी ऐसी दशा, जैसे कीनी मैन।
तब ते लागे नैन नहिं, जब ते लागे नैन।।

यह भी यमक अलंकार है क्योंकि इसमें 'नैन' की आवृत्ति हुई है तथा अर्थ भिन्न-भिन्न हैं।

श्लेष—जहाँ एक ही शब्द अनेक अर्थों का वोधक होता है उसे श्लेष अलंकार कहते हैं।

दोय तीन अरु भांति बहु, आवत जग में अर्थ।
श्लेष नाम ताको कहत, जिनकी बुद्धि समर्थ॥

उदाहरण— जो पूतना मारण में सुदक्ष, विपक्ष काकोदर के विलक्ष।
किया जिन्होंने वह तापहारी, हरे हमारी प्रभु पीर सारी॥

यह भगवान् राम और कृष्ण का श्लिष्ट वर्णन है। यहां पूतना मारण में भगवान् राम के पक्ष में पूतमामा-पवित्र नाम वाले, रण मे, संग्राम में सुदक्ष यह अर्थ किया जाता है। श्रीकृष्ण पक्ष में पूतना मारण, पूतना नाम की राक्षसी को मारने में सुदक्ष यह अर्थ किया जाता है। 'कोकोदर' शब्द 'जयन्त (इन्द्र का पुत्र) और कालिय नाग' इन दोनों अर्थों का बोधक है। इस प्रकार यह श्लेष अलंकार है। राम पक्ष में 'काकोदर' का अर्थ जयन्त होता है। भगवान् राम ने वनवास के समय काकरूप-धारी इन्द्र के पुत्र जयन्त का मान-मर्दन करके उसको लज्जित किया था। यह कथा रामायण में प्रसिद्ध है। कृष्ण पक्ष में 'काकोदर' का अर्थ कालिय नाग है। श्रीकृष्ण जी के द्वारा कालिय-दमन की कथा भागवतादि पुराणों में प्रसिद्ध है।

इन दोनों शब्दों को बदला नहीं जा सकता। इन्हीं शब्दों के रहने पर दो अर्थ प्रतीत होने से विशेष चमत्कार का अनुभव होता है।

अपह्नुति—अपन्हुति शब्द का अर्थ है छिपाना। जहाँ किसी वस्तु को छिपाया जाय और उसके बदले कोई दूसरी वस्तु—जो वास्तव मे नहीं है—बताई जाय, वहां अपन्हुति अलंकार होता है।

उदाहरण—नहि सखि! राधावदन यह, है पूनो को चाँद।

यहां 'राधावदन' उपमेय को असत्य ठहराकर उपमा 'पूनो को चाँद' की स्थापना की गई है। और देखिये।

आली तो कुच सैलते, नाभि कुण्ड को जाय।
रोमाली न, सिंगार की, परनाली दरसाय॥

यहां भी रोमावली का निषेध करके उसे सिंगार की प्रणाली बताया है।

ये ग्रह ये नक्षत्र कुछ नहीं, नभ में हंसती है कुछ धूल।

यहां पर आकाश के तारों को हँसती हुई धूल बताया है। वास्तविक वस्तु को छिपाया है। अतः अपन्हुति अलंकार है।

अर्थान्तरन्यास :—जहां सामान्य से विशेष का या विशेष से सामान्य का समर्थन हो वहां 'अर्थान्तरन्यास होता है'। जैसे—

बड़े न हूजे गुनन बिन, विरद बढ़ाई पाय।
कहत धतूरे सों कनक गहनो गढ़्यो न जाय॥

यहां पूर्वार्ध में सामान्य बात कही गई है। उत्तरार्ध में विशेष के द्वारा उसका समर्थन किया गया है।

निर्वासित थे राम राज्य था कानन में भी,
सच ही है—श्रीमान भोगते सुख वन में भी।

इस पद्य के प्रथम चरण में कही गई विशेष बात का समर्थन दूसरे चरण के सामान्य कथन से किया है। अतः अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

विभावना—जहां कारण के अभाव में ही कार्य की उत्पत्ति का वर्णन हो वहां विभावना अलंकार होता है।

दर्शनशास्त्र के नियमानुसार कारण सामग्री से ही कार्य की उत्पत्ति होती है। परन्तु विभावना में लोक-प्रसिद्ध कारण के अभाव में भी किसी अप्रसिद्ध कारण से कार्य की उत्पत्ति बताई जाती है। यही विभावना शब्द का अर्थ है। परन्तु प्रसिद्ध कारण का निर्देश अवश्य करना पड़ता है। कहीं कारण का निषेध करके और कहीं कारण को कम करके अप्रसिद्ध कारण का लोप किया जा सकता है।

उदाहरण— किन्तु आज आकुल है व्रज में जैसी वह व्रजरानी।
दासी ने घर बैठे उसकी मर्म वेदना जानी॥

यहां पर घर बैठे राधा की मर्म-वेदना जानने में कारण के अभाव में कार्य की उत्पत्ति हुई है। यह शाब्दी विभावना का उदाहरण है।

कारे कारे घन आकर अगारे बरसाते हैं॥

इसमें मेघों द्वारा आग बरसाने का कार्य-विरुद्ध कारण द्वारा वर्णन किया गया है। यहां कारण के अभाव की शब्द से कथन न होने से आर्थी विभावना है।

द्वितीय-पत्र

तैयार करने की विधि

इस पत्र में पठित गद्य और नाटक का विषय है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की ओर से इसमें निम्नलिखित पुस्तकें निश्चित की गई हैं—

(१) साहित्य प्रवेश (हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग)।

(२) हिन्दी-भाषा-सार (हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग)।

अंक-विभाजन

पठित गद्य	६० अंक
नाटक	४० अंक
	कुल योग १०० अंक

साहित्य प्रवेश

इस पुस्तक में तीन भाग हैं—(१) नाटक (२) कहानी भाग (३) निबंध भाग। प्रथम भाग में एक नाटक सत्यहरिश्चन्द्र, दूसरे में नौ-दस कहानियाँ और तीसरे में दस निबन्ध दिए हुए हैं। विद्यार्थियों को सत्यहरिश्चन्द्र-नाटक की कथा, तत्वों के आधार पर आलोचना तथा पात्रों (हरिश्चन्द्र, इन्द्र, विश्वामित्र शैव्या का चरित्र-चित्रण) का अध्ययन अच्छी तरह कर लेना चाहिए। सभी कहानियों का सार तथा उनका उद्देश्य और निबन्धों का सार अच्छी प्रकार तैयार करना चाहिए। इसके अतिरिक्त गद्य लेखकों का जीवन तथा साहित्यिक परिचय का भी अध्ययन कर लेना चाहिए। इस पत्र में हिन्दी गद्य (नाटक, कहानी, निबन्ध) के विकास के विषय में भी प्रश्न पूछे जाते हैं। प्रस्तुत गाइड में इस प्रकार के सभी प्रश्न, कहानियों तथा निबन्धों का सार तथा उनका आलोचनात्मक परिचय दिया गया है। सभी प्रमुख गद्य लेखकों का परिचय भी दिया गया है। 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक के भी सभी सम्भावित प्रश्नों का उत्तर समझाकर सरल भाषा में दिया गया है। अतः विद्यार्थियों को प्रस्तुत गाइड में दिए गए इन प्रश्नों को अच्छी तरह तैयार करना चाहिए।

इस पुस्तक में से व्याख्या के लिए अवतरण भी आते हैं। व्याख्या करते समय परीक्षार्थियों को यह स्पष्ट बता देना चाहिए कि प्रस्तुत अवतरण किस पुस्तक में से और कौन से पाठ (नाटक, कहानी या निबन्ध जो भी हो उसका

नाम) में से लिया गया है। यदि हो सके तो लेखक का नाम भी दे देना चाहिए। इसके पश्चात् केवलमात्र कठिन शब्दों के अर्थ लिखकर ही उस अवतरण को ज्यों का त्यों नकल कर देने से परीक्षक अंक नहीं देता है। परीक्षार्थियों को उस अवतरण को समझाकर भावार्थ लिखना चाहिए। तभी अच्छे अंक प्राप्त होते हैं।

प्रश्नों का प्रकार :—

१. 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक के आधार पर हरिश्चन्द्र तथा विश्वामित्र का चरित्र-चित्रण कीजिए। (प्रथमा सं० २०१५)

२. निम्नलिखित लेखकों में से किन्हीं दो के संक्षिप्त जीवन परिचय के साथ उनकी साहित्यिक विशेषताओं पर प्रकाश डालिए :—

श्री पद्मसिंह शर्मा, श्री सुदर्शन, श्री प्रेमचन्द, श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान तथा श्री महावीरप्रसाद द्विवेदी। (प्रथमा सं० २०१५)

३. 'हंस का नीर क्षीर विवेक अथवा 'धोखा' के वर्णित विषय के आधार पर एक सुन्दर निबन्ध लिखिए।

४. 'साहित्य सेवा', 'प्रायश्चित्त', 'गोरा' और 'हार की जीत' शीर्षक कहानियों में से दो कहानियों की मुख्य घटनाओं का उल्लेख कर उनके उद्देश्य का स्पष्टीकरण कीजिए। (प्रथमा, सं० २०१५)

५. हिन्दी साहित्य में नाटक, निबन्ध और कहानी के क्रमिक विकास का संक्षिप्त विवरण दीजिए। (प्रथमा, सं० २०१५)

हिन्दी-भाषा-सार

पाठ्य-क्रम—रानी केतकी की कहानी, स्यमन्तकमणि की कथा, नासिकेतोपाख्यान, एक अद्भुत स्वप्न, चन्द्रोदय, आंसू, आभूषण का श्लेष, पान का श्लेष, वस्त्र का श्लेष, चौसर का श्लेष, अखबार, हिन्दी क्या है।

'हिन्दी भाषा सार' में दी गई कहानियों तथा निबन्धों का सार अच्छी तरह याद कर लेना चाहिए। प्रस्तुत गाइड में इन सबका सार दिया गया है। उन्हें याद कर लेने पर परीक्षार्थी को प्रथम श्रेणी के अंक अवश्य प्राप्त हो जायेंगे। इस पुस्तक के आधार पर गद्य लेखकों के साहित्यिक परिचय का प्रश्न

भी पूछा जाता है। इन प्रश्नों के अतिरिक्त इस पुस्तक में से व्याख्या के लिए भी अवतरण दिये होते हैं। व्याख्या करते समय उन्हें सभी बातों का ध्यान रखना चाहिए जो कि साहित्य-प्रवेश के अन्तर्गत व्याख्या के लिए बताई गई हैं।

प्रश्नों का प्रकार :—

१. 'हिन्दी भाषा सार' के आधार पर एक हिन्दी गद्य के आरम्भिक लेखकों के वर्णित विषय, शैली तथा भाषा के विवेचन द्वारा हिन्दी गद्य के विकास की समीक्षा कीजिए। (प्रथमा, सं० २०१५)

२. 'एक अद्‌भुत स्वप्न', 'अखबार' में से किसी एक के वर्णित विषय के आधार पर एक सुन्दर निबन्ध लिखिए। (प्रथमा, सं० २०१५)

हिन्दी-भाषा-सार (गद्य सार)

प्रश्न १—मुन्शी सदासुखलाल का जीवन परिचय देते हुए 'सुरासुर-र्णय' निबन्ध का सार अपने शब्दों में वर्णन कीजिए।

लेखक परिचय—मुन्शी सदासुखलाल जी का जन्म दिल्ली में संवत् ०३ में हुआ। इसके पिता एक मंसबदार थे। मुगल राज्य के पतन के रण आपके पिता दिल्ली छोड़ कर प्रयाग आ बसे। प्रयाग में अंग्रेजों ने इन्हें सीलदार के पद से सम्मानित किया। इन्होंने सर्वप्रथम फारसी, उर्दू की वताएं करने में 'सौदा' जी को अपना गुरु बनाया। इन्होंने वेदान्त में कई तकें लिखीं। भागवत, रामायण तथा विष्णु पुराण आदि कई ग्रंथ लिखे। कट्टर वैष्णव थे परन्तु फिर भी इनके विचार अति उदार थे।

इनकी भाषा खड़ी बोली है। भाषा में तत्सम तथा तद्भव शब्दों का ावेश है। उन्होंने भाषा को संस्कृतमयी बनाने की चेष्टा नहीं की। इनकी यु उर्दू साहित्य के जन्म होने से पूर्व ही हो चुकी थी।

सार—मुन्शी सदासुखलाल ने अपने निबन्ध 'सुरासुर निर्णय' में सुर तथा र अर्थात् देवता तथा पिशाच के सम्बन्ध में अपना मत प्रकट किया है। इनके सार कोई भी दैत्य तथा देवता जन्म से नहीं होते। हमारे कर्म ही हमें ता अथवा दैत्य बनाते हैं। यदि हमारे कर्म अच्छे हैं तो हम दैत्य नहीं कहला ते, हम देवता कहलाने के अधिकारी हैं। इन्होंने अपने निबन्ध में यह बताया के देवता, सत्त्व-गुणों से भरपूर होता है तो दैत्य तमोगुणों से और मानव रजोगुणों का आधिक्य पाया जाता है। यह भी आवश्यक नहीं है कि कोई ष्य यदि ब्राह्मण कुल में जन्म लेता है तो वह अवश्य ब्राह्मण ही होगा। मनुष्य अपने कर्मानुसार ब्राह्मण अथवा गैर ब्राह्मण हो सकता है। क्या रण है कि प्रह्लाद भक्त का नाम संसार भर में प्रसिद्ध है? यही कि उसका

जन्म तो दैत्य कुल में हुआ और कर्म देवताओं जैसे थे। उसका नाम इसी कारण इस संसार में चिरस्मरणीय रहेगा। इसी प्रकार के और कितने ही उदाहरण हैं। दुर्वासा ने अम्वरीप को बहुत सताया। अम्बरीप ने साल भर तक खाना नहीं खाया। दुर्वासा हार मान कर उनके पास नहीं आया। अतः वह ब्रह्म ऋषि होते हुए भी असुर कहलाता है। क्यों ? उसका स्वभाव तमोगुणी था। सनीचर, मंगल, कंस आदि कितने ही उदाहरण इस पक्ष में दिए-जा सकते है। इन उदाहरणों से हमें यही निष्कर्ष निकालना चाहिए कि देव तथा दैत्य एक ही हैं परन्तु उनके अपने कर्म भिन्न हैं जिनके कारण एक को हम देवता कहते है और दूसरे को दैत्य।

अधिकांश प्रजा असुरों को राक्षस कह कर पुकारती है। परन्तु मुन्शी जी के विचारानुसार ये दैत्य, देवताओं से श्रेष्ठ तथा उच्च हैं। कैसे-कैसे देवता लोग भगवान् से वार-वार वन्दना करते हैं और उन्हें रिझाने का प्रयत्न करते है। सफलता प्राप्त हो जाने पर भगवान् उन्हें दर्शन देते हैं। असुरों के व्यभिचार तथा अत्याचारों से भगवान् तंग आ जाते हैं और उन्हें मारने के लिए स्थयं इस पृथ्वी पर अवतार लेते हैं। इस प्रकार दैत्य भगवान् के हाथों मारा जाता है और अपते पराक्रम तथा बल से मुक्ति प्राप्त करने में सफल होता है। इस प्रकार दैत्य, देवताओं से उच्च है।

संस्कारों में भिन्नता होने के कारण ही मनुष्य ब्राह्मण अथवा चाण्डाल होता है। कोई भी मनुष्य ब्राह्मण अथवा चाण्डाल होने का पत्र लिखवा कर नहीं लाता। यदि मनुष्य सद्वृत्ति वाला, अचल तथा निर्मल है, यज्ञ तथा वेद पाठ करता है, सन्तोपी है, लोभ तथा अहंकार उसके पास तक नहीं फटकते, पाखण्ड नहीं करता तो वह संस्कारों से ब्राह्मण है चाहे उसने ब्राह्मण कुल मे जन्म न लिया हो। जो मनुष्य जीवों को दु:ख देता है, बुरी बातें सुनता है, सज्जनों से दूर रहता है। व्यभिचारी तथा पाखण्डी है, पराये धन पर निगाह रखता है तो चाण्डाल है। यही इनके स्वभाव में अंतर है। इसी अन्तर के कारण एक ब्राह्मण तथा दूसरा चांडाल कहलाता है। यही कारण है कि व्यास जी धीमरी (नीची जाति) के गर्भ से जन्म लेने पर भी नारायण का अवतार

कहलाते हैं। नारद जी एक दासी के पुत्र थे और वाल्मीकि जी पूर्व चाण्डाल थे परन्तु ये संत कहलाते हैं। ब्रह्मा, विष्णु महेश, लक्ष्मी, सप्त-ऋषि इत्यादि कितने ही हैं जिन्होंने देवपद प्राप्त किया। परन्तु यदि मनुष्य सौ वर्ष पश्चात् चाण्डाल के स्वभाव को छोड़ कर ब्राह्मण स्वभाव का बन जाता है तो वह ब्राह्मण कहलायेगा। ब्राह्मण चाण्डाल का स्वभाव अपनाया कि तुरन्त ही वह चाण्डाल कहलाने लगता है।

हमें विद्या सतोगुण लाने के लिए तथा अपने स्वभाव को ब्राह्मण रूपी बनाने के लिए लेनी चाहिए न कि तमोगुण के लिए और लोगों को धोखा देने के लिए अथवा धन एकत्रित करने के लिए।

ऐसे कितने ही मनुष्य हुए हैं जिन्होंने अपने बलिदान तथा तप द्वारा मुक्ति तथा ख्याति प्राप्त की। राजा दधीचि ने नारायण की आज्ञा से अपने हाड़ एक अहंकारी को दिए जिसने वृत्रासुर को मारा और विजय प्राप्त की। भागीरथ राजसुख त्याग करके परायी मुक्ति के लिए गंगा जी को भू लोक में लाए। इसीलिए गंगा जी भागीरथी कहलाती हैं। राजा पृथु ने पृथ्वी मंथन करके अन्न उपजाया। ग्राम और नगर बसाए और किसी से सहायता नहीं मांगी। ये सब क्षत्रिय हैं। उनकी सेवा के हेतु ही बुद्धिमानों ने वेद पुराण आदि लिखे जिनके पठन-पाठन से निस्सन्देह मुक्ति प्राप्त होती है। परन्तु अभाग्यवश इस प्रकार के पुरुष इस संसार में नहीं रहे। हां ! बहकाने वाले अवश्य हैं। आजकल तो आसरा केवल उस भगवान् का है। वही हम अपाहिजों का उद्धार कर सकते हैं।

प्रश्न २—मुन्शी सदासुखलाल द्वारा लिखित 'अर्थवार्त्तिक' शीर्षक का आशय अपने शब्दों में व्यक्त कीजिए।

उत्तर—हरि गुरु सन्तन को अमल, चरन कमल मकरन्द।
मस्तक धरि कछु कहत हौं, नमो सच्चिदानन्द॥

यह अंश बाबा दयालुदास के ध्रुव पदों की व्याख्या में लिखा मिला। प्रथम ध्रुपद में बाबा साहिब ने परमाणु से लेकर कल्प तक नारायण को काल रूप कहकर व्याख्या की। यह वैशेषिक मतानुसार है। इसके अतिरिक्त और भी मत हैं जैसे मीमांसक नारायण को कर्मरूप, पातंजल पवनरूप, शून्यवादी, आकाशरूप, बौद्ध पंज रूप भूत कहकर पुकारते हैं। ये सभी शास्त्र पानी में

दीखने वाले प्रतिविम्ब के समान सत्य हैं। परन्तु इन्हें उत्तम, मध्यम और निकृष्ट स्थान देने का कार्य बुद्धि का है।

निम्न उदाहरण से यह स्पष्ट हो जावेगा ?

किसी गांव में कुछ अंधे रहते थे। एक दिन एक हाथी की कथा सुनकर सभी अंधे बहुत प्रसन्न हुए और उसे देखने की अभिलाषा से गांव के वाहर आये। जिस अंधे ने उसकी सूंड पकड़ी उसने हाथी को सांप जैसा कहा, जिसने पैर पकड़ा उसने स्तम्भ के समान, जिसने कान पकड़े उसने छाज के समान, जिसने दांत पकडे उसने खूंटयों के समान हाथी को वताया। परन्तु यह उनका प्रत्यक्ष न दिखाई देने वाला हाथी था। सच्चिदानन्द भगवान् किसी से छिपा हुआ नहीं। परन्तु यह साक्षात् तथा प्रत्यक्ष दिखाई देने वाला उन्हीं को दिखाई देगा, जिनके हृदय की आंखें खुली हुई हों। जिस प्रकार सूत के, मंज ढाका, चन्देलू आदि अनेक नाम हैं, उसी प्रकार भगवान् के भी अनेक नाम हैं। यह स्थूल भी है और सूक्ष्म भी।

दूसरे ध्रुवपद में उन्होंने वताया है कि हम जिसे ब्रह्म कहते है वह निर्वाण पद है, चेतन है, निरुपाधि है तथा चित्त अहंकार से परे है। यह पद मोक्ष, वन्धन रहित केवल अवाच्य पद है। ब्रह्म पद मे समाई हुई अन्य वस्तु नहीं।

इसके ऊपर कई आशंकाए हैं, यदि भगवान् निरुपाधि और चेतन है तो यह जगत् असत्य, उसकी सत्ता से स्थित है। विना चिद् के प्रवृत्ति असम्भव है।

इस आशंका को दूर करते हुए उन्होंने तुलसीदास जी का एक दोहा कहा है—

वह तू है सो तैं, ताहि तोहि नहि भेदा।
वारि वीचि इव गावहि वेदा॥

प्रश्न ३—सैयद इंशाअल्ला खां का संक्षिप्त परिचय देकर रानी केतकी' की कहानी अपने शब्दों में व्यक्त करें।

अथवा

उदयभान का विवाह रानी केतकी के साथ किस प्रकार हुआ ? सैयद

साहिब इसे शुद्ध हिन्दी (खड़ी बोली) का रूप देने में कहाँ तक सफल हुए हैं ?

उत्तर—इनका पूरा नाम सैयद इंशाअल्ला खां तथा "इंशा" उपनाम था। मुसलमान कवियों में इन्होंने अत्यन्त ख्याति प्राप्त की। शाह आलम के समय ये दिल्ली आए। इन्हें अत्यन्त सम्मान मिला और अन्य राजकवियों से अच्छा समझा गया। इतने सम्मान तथा सत्कार पर भी आप संतुष्ट नहीं हुए। इस लिए लखनऊ गए। नवाब सआदतअली खाँ के यहां सम्मान प्राप्त हुआ। दुर्भाग्यवश अनुचित शब्द मुंह से निकला और नवाब साहिब की निगाहों में इनका सम्मान न रहा। इनकी मृत्यु १८७४ में हुई।

रानी केतकी की कहानी लिखने से पूर्व सैयद इंशा अपने परम पिता भगवान् को सिर झुकाकर नाक रगड़ कर प्रणाम करते हैं और कहते हैं कि हम भगवान् की कृपा के बिना जीवित नहीं रह सकते। हमें सांस लेना दुर्लभ हो जाता है। यदि हम उस भगवान् को न भूलें तो हम किसी प्रकार की कठिनाइयों में न पड़ें। मिट्टी के बर्तनों को कुम्हार बनाता है। मनुष्य को भगवान्। जिस प्रकार मिट्टी का वर्तन कुम्हार के गुणों को नहीं जानता उसी प्रकार हम भगवान् के गुणों को नहीं जानते। उस सच्चिदानन्द भगवान् ने हमें आंख, कान, हाथ, पैर तथा मस्तिष्क दान दिए हैं। जीवन प्रदान किया है। परन्तु हम अपने बनाने वाले की सराहना नहीं कर सकते उसे नहीं समझ सकते। वैसे वुद्धिहीन कितनी ही उचित अथवा अनुचित वातें उसके सम्बन्ध में कहें परन्तु यह भ्रमपूर्ण हो

एक दिन इंशा साहिब को बैठे-बैठे अचानक यह बात सूझी कि ऐसी कहानी लिखी जाय जिसमें शुद्ध हिन्दी (इस समय खड़ी भाषा कहलाने वाली) के अतिरिक्त अन्य भाषा का प्रयोग न हो। उसमें गंवारी भाषा की पुट नाममात्र को न हो। उनके मित्रों में से एक ने नाक भौं चढ़ाकर, दांत निकाल कर और सिर हिला कर कहा कि ऐसा होना असम्भव सा है कि हिन्दी भाषा ही हो और किसी प्रकार से अन्य पुट भी न हो। इस पर इंशा उस पर बिगड़ कर बोले कि मैं कोई शब्द ऐसा नहीं कहता जो मुझ से न हो सके। कहने का तात्पर्य

यह है कि वे अपने आप को इस योग्य समझते थे। उन्होंने अपने मुंह पर हाथ फेरते हुए कहा कि यदि भगवान् ने चाहा तो ऐसी कहानी कहूंगा कि हिरण भी अपनी चौकड़ी भूल जाय। उन्होंने निम्न चौकड़ा कहा—

'घोड़े पै अपने चढ़त जो आता हूं मैं,
करतब जो है सो सब दिखाता हूं मैं।
उस चाहने वाले ने जो चाहा तो अभी,
कहता हूं जो कर दिखाता हूं मैं।।

और कहनी कहानी आरम्भ की—

जोगी महिन्दरगिरि का कैलाश पर्वत से आना और कुंवर उदयभान और उसके मां बाप को हिरण हिरणी कर डालना—जब कुंवर उदयसिंह तथा केतकी की आंखें चार हुई तो उनमें स्वयमेव ही प्रेम की अगाध भावना उमड़ पड़ी और एक दूसरे से विवाह करने का विचार करने लगे। उदयसिंह ने यह बात अपने पिता राजा सूरजभान से कहीं। इस पर राजा सूरजभान ने केतकी के पिता जगतप्रकाश के पास विवाह का प्रस्ताव भेजा। जगतप्रकाश अपने को सूरजभान से बड़ा समझता था। इसलिए प्रस्ताव अस्वीकृत कर दिया। सूरजभान ने जगतप्रकाश पर आक्रमण कर दिया। जगतप्रकाश ने युद्ध में सफलता की आशा न देखते हुए अपने गुरु—जो कैलाश पर्वत पर रहते थे—को सहायता के लिए पत्र लिखा। इस पुस्तक मे पिछले अंश को जोड़ कर यहीं से कहानी आरम्भ की है।

पत्र में लिखा—"हे गुरु हमारी सहायता कीजिए। हमें कठिन विपदा सता रही है।" जगतप्रकाश के गुरु ९० लाख अतीतों के साथ ठाकुर जी का भजन किया करते थे। वे बहुत आश्चर्यजनक कार्य कर सकते थे। सोना चांदी बनाना तो उनके बाएं हाथ का खेल था। गाने बजाने में इतने योग्य थे कि महादेव के अतिरिक्त सभी उनके सामने कान पकड़ते थे। सरस्वती ने उन्हीं से विद्या प्राप्त की थी। छहों राग, छत्तीस रागनियां आठों पहर उनके सामने रहती थीं। अतीतों को मोरगिरि, मेघनाथ, दीपकसेन आदि तथा अतीतनों, (स्त्रीलिंग) को गुजरी, टोडी, असवारी, गौरी आदि कह कर

पुकारते थे। इन्हें इच्छानुसार गुरु सिंहासन पर बैठाए फिरता था। अतीत गेरुए कपड़े पहने, जटा बखेरे इनके साथ होते थे। बगला, जगतप्रकाश की चिट्ठी गुरु जी को देता है। गुरुजी उसी समय एक चिंघाड़ मार कर आकाश में काले बादल फैला देते हैं। अपने रूप में, अतीतों सहित "गोरख जागा" कहा और युद्ध स्थल पर पहुंच गए। पहले काली आंधी आई। फिर टिड्डी आई। किसी को अपनी सुध बुध न रही कि कहां है। सूरजभान को पता नहीं लगा कि उसकी सेना कहां गई। राजा जगतप्रकाश तथा केतकी पर केवड़े की बूंदें पड़ने लगीं। बाद में गुरु जी ने अपने अतीतों को आज्ञा दी कि वे सूरजभान, उदयभान तथा लक्ष्मीवासें तीनों को हिरण तथा हिरणी बनाकर किसी जंगल में छोड़ दें। इनके साथियों को मार दें। अतीतों ने ऐसा ही किया। उदयभान तथा उसके माता-पिता वर्षों जंगलों में हिरण के रूप में घास चरते रहे। भीड़ भाड़ (सेना) का कुछ पता नहीं कहाँ गई।

राजा जगतप्रकाश तथा उसके कुटुम्बी सभी गुरु जी के पैरों पड़े और उनकी सहायता की सराहना करते हुए कहा कि आप जिसे चाहें यह राज्य दे दीजिए। हमें आप अतीत बना लें और अपने साथ ले चलें। यदि आप न आते तो हम नष्ट हो गये होते। आपके बाद फिर सूरजभान के मामा चन्द्रभान ने चढ़ाई कर दी तो हमारा बचना असम्भव है। हम आपको प्रतिदिन कष्ट देना नहीं चाहते।

महिन्दरगिरि ने कहा तुम सब मेरे पुत्र तथा पुत्रियों के समान हो। तुम चैन से रहो। उन्होंने कुछ भभूत बाघम्बर देकर कहा कि कोई भी विपत्ति आने पर बाघम्बर में से एक रोंगटा लेकर आग पर फूंक दीजिये। हम तुरन्त ही क्षण भर में आ पहुंचेंगे। भभूत का अंजन करने से तुम सबको देख सकते हो पर तुम्हें कोई नहीं देखेगा। महाराज जगतप्रकाश मोरछल करते हुए गुरुजी को रानियों के पास ले गये। रानियों ने हीरे, मोती न्योछावर किये, चरण स्पर्श किया केतकी ने भी दण्डवत् की परन्तु गुरु जी को मन ही मन में कोसा। सात दिन के पश्चात् गुरु जी कैलाश चले गए।

हिरण और हिरणियों का खेल बिगड़ना और नए सिरे से कुंवर उदयभान का रूप पकड़ना—केतकी उदयभान की तलाश में जंगलों में चली गई। राजा

जगतप्रकाश की प्रार्थना पर गुरु जी ने उदयभान और केतकी की तलाश की। एक दिन वे चांदनी पर वैठे कथा सुन रहे थे। बहुत से हिरण भी वहां थे। गुरु जी ने जैसे ही उन पर पानी के छींटे मारे त्यों ही तीनों मनुष्य रूप में आ गए। उन्हें अगाध प्रसन्नता हुई। तीनों उड़न खटोले पर वैठ कर अपनी राजधानी आये। खुशियां मनाई गईं। दान दिए गए। अविवाहितों की शादी के लिये राजा की ओर से खर्चे की घोषणा हुई। उदयभान और केतकी के विवाह की तैयारी होने लगी।

राजा इन्द्र के ठाठ करना उदयभान के विवाह के लिए—राजा इन्द्र ने उदयभान के विवाह की तैयारी में अप्सराओं को सोलह सिंगार करने, सुन्दरतम नाच नाचने, शाही वाजे वजाने, आतिशबाजी छोड़ने और हीरे-जवाहरातों की वर्षा करने की आज्ञा दी। और कहा कि आज का दिन अति पावन है। किसी प्रकार की कमी न आने पावे। कहने की देर ही थी ऐसा ही हुआ। चारों ओर रंग-रलियां होने लगीं। इन्द्र के कहने के अनुसार सभी कार्य वैसे ही हुए। इस विवाह की फैलावट, सजावट, जमावट और रचावट एक जमघटे के साथ सभी मनुष्यों तथा दर्शकों को प्रफुल्लित कर रही थी।

ठाठ करना गुसाईं महिन्दरगिरि का—राजा जगतप्रकाश ने उस ब्राह्मण को जेल में वंद कर दिया था जो कि उदयभान के विवाह का संदेश लाया था। उसे मुक्त कर दिया गया। विवाह की रीतियाँ उसी से पूछीं और उसी के वताए अनुसार सभी कार्य किये गये। गुरु महिन्दरगिरि को भी वड़ी प्रसन्नता हो रही थी। वे भी अपने अतीतों की सेना सहित विवाह स्थल पर आ पहुंचे। विवाह स्थल पर और भी चार चाँद लगे। कहीं राम लक्ष्मण का रूप दिखाई दिया तो कहीं शिव-पार्वती का। कहीं जोगी जयपाल खड़े थे तो कहीं हरनाकुश और नरसिंह और कहीं कृष्ण का साक्षात् अवतार दीख पड रहा था। ऐसा दिन सम्भवत: कभी आया हो। रानी केतकी की शादी जिस गौरव तथा शान के साथ हुई सम्भवत: किसी अन्य की न हुई हो जिसमें कि महिन्दरगिरि जैसे गुरुओं ने भाग लिया हो। कृष्ण की पुरानी लीलाएं याद आईं। और एक गोपिका कह उठी—

जब छाँड़ करील की कुञ्जन को हरि द्वारकाजीव मां जाय बसे।
कलधौत के धाम बनाए घने महाराजन के महाराज बने॥
तज मोर मुकुट और कामरिया कछु औरहि नाते जोड़ लये।
धरि रूप नये किये नेह नये और गैयां चरायबो भूल गये॥

सैयद इंशा ने यह कहानी यह प्रतिज्ञा करके लिखी थी कि इसमें विदेशी शब्द एक भी न आएगा, व्रजभापपन भी न हो। परन्तु मुहावरे सभी जितने प्रयोग हुए हैं ये अनेक स्थलों पर विदेशी हैं। अनुप्रासों को ठूंसने के लिये अनावश्यक शब्दों का प्रयोग किया गया है। अनुप्रासों का ढंग फारसी, उर्दू और तुर्की का है। विदेशी शब्दों से बचने के प्रयत्न ने कहानी में कुछ अस्वाभाविकता ला दी है। शुद्ध हिन्दी उनकी अपनी भाषा नहीं थी।

प्रश्न ४—पंडित लल्लूलाल जी द्वारा लिखित "स्यमंतक मणि की कथा" का सार अपने शब्दों में दीजिए। उनका जीवन परिचय भी संक्षिप्त रूप में दें।

जीवन परिचय—इनका पूरा नाम लल्लूलाल तथा उपनाम 'लाल' था। उन के जन्म मरण का कोई निश्चित काल नहीं परन्तु मिश्रबन्धुओं के अनुमानानुसार इनका जीवन काल १८२०-१८८१-८२ है। ये गुजराती ब्राह्मण थे। आगरे के रहने वाले थे। इन्होंने मुर्शिदाबाद और कलकत्ते में नौकरी की। श्री गिल क्राइस्ट के आदेशानुसार इन्होंने खड़ी बोली में प्रेमसागर, सिंहासन बत्तीसी तथा बैताल पच्चीसी लिखीं। इनकी भाषा में व्रजभाषापन का पुट दीख पड़ता है। विदेशी शब्दों को न आने देने की इन्होंने अत्यन्त चेष्टा की है।

इन्हें हिन्दी गद्य का जन्म-दाता कहा जाता है। खड़ी बोली का गद्य इनसे पहले लिखा जाने लगा था। परन्तु इनकी भाषा पहले लेखकों से अधिक पुष्ट हो चुकी थी। वाक्य रचना के नियम वर्तमान रूप धारण कर चुके थे।

कथा का सार—स्यमंतक मणि की कथा प्रेमसागर से उद्धृत की गई है। सत्राजित यादव ने बहुत दिनों तक सूर्य की कठोरतम तपस्या की। इस पर सूर्य देव ने प्रसन्न होकर उसे एक मणि दी जिसका नाम स्यमंतक मणि था। इस मणि में तेज और बल सूर्य के समान था। इसको जप, तप, संयम तथा

व्रत से पूजा करके रखने से लक्ष्मी की कमी नहीं रहेगी। सत्राजित इसे पाकर अति प्रसन्न हुआ। वह धूप, पुष्प, अक्षत, दीप, नैवेद्य से प्रतिदिन प्रातः इसकी पूजा करने लगा।

पूजा करते समय, एक दिन सत्राजित ने मणि की शोभा को देखा और मन में विचार किया कि क्यों न यह श्रीकृष्ण को दिखाई जावे। यह सोच वह उसे गले में बाँध कर यदुवंशियों की सभा में गया। मणि का प्रकाश दूर तक फैला। यदुवंशियों ने कृष्ण भगवान् से कहा कि आपके दर्शनों को साक्षात् सूर्य भगवान् आ रहे हैं। परन्तु कृष्ण जी तो वास्तविकता से परिचित थे। उन्होंने वास्तविकता बताई ही थी कि इतनी ही देर में सत्राजित आ पहुंचा। सभी यदुवंशी उसके आदर सत्कार के लिये खड़े हो गये। मणि को देख उनका मन मोहित हो उठा। कृष्ण जी भी देख रहे थे। सत्राजित वहाँ ने कुछ मन में विचार के चल दिया। अब सत्राजित प्रतिदिन यदुवंशियों की सभा में आता। एक दिन यदुवंशियों ने कहा कि महाराज यह मणि आप सत्राजित से क्यों नहीं मांग लेते। यह तो राजा को ही अच्छी लगती है। कृष्ण ने सत्राजित से कहा कि यह मणि तुम राजा को क्यों नहीं दे देते। वह चुपचाप, मणि दिए बिना वहां से उठ खड़ा हुआ और अपने भाई प्रसेन को यह कथा सुनाई। प्रसेन को यह बात सुनकर बहुत क्रोध आया और सत्राजित से मणि लेकर घोड़े पर सवार होकर आखेट करने को चला। महावन में जाकर उसने एक हिरण का शिकार करना चाहा। हिरण उस पर झपटा। प्रसेन को गुस्सा आया और उसके पीछे घोड़ा दौड़ाता हुआ एक अति प्राचीन गुफा के पास पहुंचा। वहां उस गुफा में से एक सिंह निकला और वह हिरण, प्रसेन तथा घोड़े को मार कर मणि ले गया। उस गुफा में मणि पहुंचते ही प्रकाश हो गया। जामवन्त भी उसी गुफा में रहता था। वह सिंह के पास आया और उसे मार कर मणि ले अपनी स्त्री को दिखाई। उसकी स्त्री ने मणि अपनी पुत्री के पालने में बांध दी। वह इसे देख बड़ी प्रसन्न रहती।

प्रसेन के साथियों ने उसके दूर जाने की सूचना सत्राजित को सुनाई। सत्राजित ने इस दुखद समाचार को सुनते ही खाना पीना छोड़ दिया और सोचने लगा कि कृष्ण ही इतना चालाक हो सकता है। उसी ने मेरे भाई को मार

कर मणि ली है। एक दिन रात्रि के समय वह मलिन मन से बैठा कुछ सोच रहा था। उसकी स्त्री ने मलिनता का कारण पूछा। सत्राजित ने यह बात बताने से इन्कार किया क्योंकि स्त्री के मन में कोई बात नहीं पचती। उसकी स्त्री के आग्रह करने पर उसने यह बात उसे बता दी और कहा कि यह बात किसी को न बताना। सत्राजित की स्त्री को रात को नींद नहीं आई। प्रातः-काल उठते ही उसने यह बात अपनी सखियों से कही। सखियां इस बात की चर्चा कर रही थीं कि श्रीकृष्ण की एक दासी ने यह बात सुन ली और उसने यह बात श्रीकृष्ण के रनवास में जाकर कही। सब ने यह सत्य ही समझा और कहा कि कृष्ण ने अवश्य ही ऐसा किया होगा। सभी रनवास श्रीकृष्ण को बुरा भला कहने लगा। यह बात श्रीकृष्ण को मालूम हुई।

यह बात सुनते ही कृष्ण भगवान् घबराये परन्तु कुछ सोच समझ कर वे उग्रसेन की सभा में आए और सारा वृत्तान्त सुना कर प्रसेन और मणि को ढूँढ़ने के लिए जाने की आज्ञा प्राप्त की। श्रीकृष्ण कुछ यदुवंशियों और प्रसेन के साथियों को लेकर वन को चले। कुछ दूर जाकर घोड़े के पद चिन्ह मिले। इन्हीं पद चिन्हों को देख वह वहाँ पहुंचे जहाँ सिंह ने प्रसेन, घोड़े तथा हिरण को मार मणि ली थी। यह बात सभी की समझ न आ गई। फिर कृष्णचन्द्र जी मणि की तलाश में उस गुफा के पास गये। वहां देखते हैं कि सिंह भी मरा पड़ा है। मणि वहां भी नहीं थी। कृष्ण उस गुफा में चलने का आग्रह करने लगे परन्तु उनके साथियों ने इन्कार कर दिया। श्रीकृष्ण अकेले ही उस गुफा में गये और दस दिन बाद लौट आने के लिए कह गये। उनके साथियों ने दस दिन तक वहां उनकी प्रतीक्षा की। बाद में वे घर आ गये। यह सूचना उन्होंने महाराज को कह सुनाई।

श्रीकृष्ण ने गुफा में जाकर देखा कि जामवन्त सोया हुआ था और उसकी स्त्री अपनी पुत्री को, खड़ी हो, पालने में झुला रही थी। जैसे ही उसने कृष्ण भगवान् को देखा, वह चीखी। जामवन्त जागा और कृष्ण से आ लिपटा। युद्ध हुआ। जामवन्त का कोई दाव कृष्ण पर नहीं चला। वह सोचने लगा मेरे से बलवान् भगवान् के अतिरिक्त कोई और नहीं हो सकता। वह भगवान् के पैरों में पड़कर याचना करने लगा—कृष्ण भगवान्

ने जामवन्त की भक्ति भावना को देख धनुर्धारी रामचन्द्र भगवान् का रूप धारण कर उसे साक्षात् दर्शन दिये। जामवन्त ने भगवान् से अपनी मनोरथ कामना कह सुनाने की आज्ञा मांगी। आज्ञा पाकर उसने कहा कि भगवान् मैं अपनी पुत्री का विवाह आपके साथ कर देना चाहता हूं। कृष्ण भगवान् इस पर राजी हो गए। जामवन्त ने श्रीकृष्ण भगवान् की चन्दन, अक्षत, धूप, नैवेद्य से पूजा कर वेद विधि से अपनी पुत्री का विवाह श्रीकृष्ण के साथ कर दिया। वह मणि भी उसने उसके साथ बांध दी।

श्री शुकदेव मुनि बोले कि कृष्ण जामवन्ती को लेकर गुफा से चले और बाहर प्रसेन और कृष्णचन्द्र के साथी वहाँ से दुःखित होकर २८ दिन बाद चले। उन्होंने यह समाचार द्वारिका आकर कह सुनाया। चारों ओर सन्नाटा छा गया। महाशोक होने लगा। रनिवास में कुहराम छा गया। सब रानियाँ व्याकुल हो वहां से चलीं और नगर के बाहर देवी के मन्दिर में आईं और भगवान् की आराधना कर श्री कृष्णचन्द्र का पता पूछने लगीं कि वह कब आवेगा। उधर यादव तथा उग्रसेन चिन्ता में बैठे थे। इसी बीच कृष्ण भगवान् हंसते-हंसते जामवन्ती को ले द्वारिकापुरी आए। चारों ओर खुशियां मनाई गईं। सभा में आते ही श्री कृष्णचन्द्र ने सत्राजित को बुलाकर उसकी मणि उसे दे दी।

सत्राजित मणि लेकर घर गया और अपने जी का सारा समाचार अपनी पत्नी को कह सुनाया। उसकी स्त्री सत्यभामा की शादी कृष्ण के साथ करने को तैयार हो गई। सत्राजित ने ब्राह्मण को बुलाकर, अक्षत, फूल, नारियल इत्यादि दे श्री कृष्ण के यहां टीका भेज दिया। कृष्ण जी कन्या को ब्याहने बड़ी धूमधाम से आये। सत्राजित ने वह मणि भी सत्यभामा के साथ रख दी। श्री कृष्ण ने उसे निकाल कर वापिस करके कहा कि यह मणि तुम्हारी है इसे तुमने बड़े प्रयत्न से पाया है। सत्राजित इस पर बड़ा लज्जित हुआ और अपने कहे पर बारम्बार पछतावा करने लगा।

प्रश्न ५—मुनि नासिकेत ने यमपुरी में जो अनुभव प्राप्त किये उनका वर्णन नासिकेतोपाख्यान के आधार पर कीजिये।

उत्तर—नासिकेत मुनि यमपुरी गये। यमपुरी में उन्होंने जो अनुभव प्राप्त किये उन्हें वे एक दिन सभा में बैठे हुए साधु-सन्तों को सुनाने लगे। उन्होंने

साधु सन्तों से यह कथा दत्तचित होकर सुनने के लिए कहा। वे कहने लगे कि धर्मराज के लोक में चार सौ कोस लम्बी चौड़ी एक यमपुरी है जिसमें चार द्वार हैं। वहां धर्मराज ऋषि, गंधर्व तथा योगियों के बीच बैठे धर्म का विचार किया करते हैं। उस यम की पुरी जाने का क्या साधन है वह मैं तुम्हें बताता हूं।

पूर्व द्वार से केवल दयालु, देवता, पितृ गुरु के भक्त, क्रोध-लोभ को जीतनहारे, प्यासों को पानी पिलाने वाले जाते है और खूब भोग विलास करते हैं। उत्तर द्वार से गौ-रक्षक, हरिहर दुर्गा के भक्त, तीर्थ करने वाले, सत्संग प्रेमी। पश्चिमी द्वार से सत्य रक्षक, दूसरों की निन्दा न करने वाले तथा सच्चरित्र एवं ज्ञानी पुरुष विष्णु के भक्त तथा महापुरुष लोग जाते हैं। ये विमानों पर चढ़ अपनी इच्छानुसार जा सकते हैं और विहार कर सकते हैं। निर्दयी, पापी, कुटिल, दुश्चरित्र, क्रूर, वेद शास्त्रों के निन्दक, गुरु का अपमान करने वाले, असत्य बोलने वाले तथा अधम लोग दक्षिण द्वार से जाते हैं। ये धर्मराज की आज्ञा से तुरन्त यमदूतों को सौंप दिए जाते है जहाँ उन्हें अति दुःख सहन करने पड़ते हैं। इन्हें नरक में डाल दिया जाता है। वहां कीड़े, बाघ, शेर, बिच्छू, साप, गिद्ध, कौए आदि इन पापियों को देखते ही इन पर टूट पड़ते हैं। इन्हें वे इतना सताते है, कि इन्हें नोच-नोच कर टुकड़े-टुकड़े करके समाप्त कर देते हैं। इन्हें इतना दुःख होता है कि सदा सहायता के लिए पुकारते रहते हैं। इस प्रकार यमपुरी का दक्षिणी द्वार अत्यन्त डरावना है। पापी लोग महानरक मे पड़ते है।

इसके अतिरिक्त सहस्रों कुम्भीपाक आदि नरक है जहां पर बड़े-बड़े विषधर कीड़ों का हाहाकार सुनाई पड़ता है। असिपत्र नाम का एक ऐसा वन है जहां खड्ग की धारा जैसे पत्ते वाले वृक्ष हैं। उनके नीचे अति विषैले तथा दुर्गन्ध वाले कीड़ो से आकुल पीप की नदी बहती है। अधर्मियों के लिए कड़ाहों में तेल कड़कड़ाता रहता है। बहुतों को पहाड़ों से गिराया जाता है।

इसके पश्चात् नासिकेत मुनि कर्म तथा उनका फल बताते हैं। वे कहते हैं कि गौ, ब्राह्मण, माता-पिता, मित्र, बालक, स्त्री, स्वामी, वृद्ध, गुरु का वध करने वाले, झूठ के साक्षी, झूठे कर्म करने वाले, दुश्चरित्र, दूसरों के दुःख को

देख प्रसन्न होने वाले, सभी पापी जन दक्षिण द्वार से जाते हैं। इन्हें खूब ही कष्ट दिया जाता है।

धर्मराज के सम्मुख पाप पुण्य का कैसे विचार होता है यह बात नासिकेत मुनि ने सन्तों को बताई। उन्होंने बताया कि यमराज की सभा में वेदव्यास, विश्वामित्र, याज्ञवल्क्य, मार्त्तण्ड आदि अच्छे-अच्छे वस्त्र तथा आभूषण पहने अपने-अपने आसनों पर विराजमान थे। ये नाना प्रकार के प्राणियों के धर्म अधर्म का विचार किया करते थे। यम एक मनुष्य को पकड़ कर धर्मराज के सामने खड़ा करके पूछने लगे कि बताओ तुमने कैसा पाप किया है। धर्मराज के सामने सत्य-सत्य बताओ।

इसी बीच में उचित कहने वाले ऋषि लोग शास्त्र विचार करके बोलने लगे कि इसने तो महाराज ब्राह्मण वध किया है। कुम्भीपाक में अपने किये का कष्ट भोगेगा। यम की आज्ञा पाकर दास लाठियों से मारते-पीटते उसे उसी भयानक स्थान पर ले गये जहां एक क्षण भी जीवित रहना कठिन होता है।

फिर उन्होंने गो-हत्या का दण्ड, जो स्वयं देखा था, का वर्णन किया। गो हत्यारे तथा पराई स्त्री से भोग विलास करने वालों को खौलते हुए तेल के कड़ाहे में डाल दिया जाता है या उन्हें शूली पर चढ़ाया जाता है। इस प्रकार यम के दूत उन्हें सीकचों में बांध कर ले जाते हैं और वहां सूर्य समान चित्र-गुप्त उन प्राणियों के पुण्य पाप को लिख ले जाते हैं और समझाते हैं।

चोर और गुरु का अपमान करने वाले, माता-पिता से व्यर्थ शत्रुता करने वाले उसी स्थान पर जाते हैं जहां ब्राह्मणों के वध करने वाले जाते हैं। कांसी, पीतल, तांबा, लोहा चुराने वाले, मुनियों की तपस्या में बाधा डालने वाले, निर्दयी तथा हिंसक आदियों को असिपत्र वन में डाल दिया जाता है।

बालक, स्त्री, वृद्ध, साधु, सन्त को छलने वालों और मीठी वस्तुओं को चुराकर खाने वालों को विष कूप में डालते हैं। निर्दोष स्त्री के त्यागने वालों को असिवन में डाल दिया जाता है। इसके अतिरिक्त और भी नरक हैं जिनमें पापियों को अन्य प्रकार के कष्ट दिये जाते हैं।

पुरुषों को ही नहीं, स्त्रियों को भी दण्डित होते देखा। जो स्त्री अपना

धर्म दूसरे पुरुष द्वारा नष्ट कराती है उन्हें पहाड़ों से गिराया जाता है। स्वामी की निन्दा करने वाली स्त्री को शाल्मली के भभकते हुए अंगारों में डालते हैं। विधवा स्त्री यदि किसी से मिलती है तो लोग उसकी जिह्वा काट ली जाती है। पतिव्रता स्त्री की निन्दा करने वालों को अनेक कष्ट दिए जाते हैं।

प्रश्न ६—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जीवन परिचय देते हुये "एक अद्भुत, अपूर्व स्वप्न" शीर्षक का सारांश अपने शब्दों में दो। (प्रथमा सं० २०१६)

उत्तर—जन्मकाल—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र सेठ अमीचन्द के वंशज थे। इनके पिता अपूर्व प्रतिभाशाली कवि थे। भारतेन्दु का जन्म सं० १९०७ ई० में हुआ। से काशी के रईसों में से एक थे और साथ ही साथ उच्च कोटि के साहित्य सेवी तथा काव्य रसिक भी थे। उन्होंने अपना अधिकांश धन साहित्य सेवा में समाप्त कर दिया। इनकी मृत्यु सं० १९४१ में हुई जब ये सात वर्ष के ही थे तो इन्होंने कविता करनी आरम्भ कर दी और अठारह वर्ष की अवस्था तक इन्होंने उन्नीस नाटक लिखे। इसके अतिरिक्त इन्होंने कई पत्रों का संपादन किया तथा अनेक महत्वपूर्ण गद्य ग्रंथ लिखे। इनकी भाषा-शैली बड़ी मधुर, भावपूर्ण और रसीली होती थी। इनमें देश भक्ति कूट-कूट कर भरी हुई थी। इनके पहिले बहुत सारे नाटक लिखे जा चुके थे। परन्तु आलोचक साहित्यिक दृष्टि से उन्हें नाटक कहने में संकोच करते थे। यही कारण है कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को हिन्दी नाटक तथा गद्य का जन्मदाता कहा जाता है। इन्होंने तत्सम तथा तद्भव शब्दों का प्रयोग अधिक किया और विदेशी शब्दों का बहिष्कार किया। परन्तु इनकी हिन्दी को पंडिताऊपन के लांछन से मुक्त नहीं किया जा सकता।

लेख का सार—एक रात्रि को पलंग पर जाते ही भारतेन्दु जी को नींद आ गई। निद्रावस्था में सोचा कि इस चलायमान शरीर का कुछ पता नहीं। इसलिए कोई ऐसा साधन ढूँढना चाहिए जिससे कि मेरा नाम इस संसार में स्थिर रहे। बहुत देर विचार-मग्न रहते के पश्चात् उन्होंने विचार किया कि एक मन्दिर बनवा दूँ। फिर स्वयं ही कहने लगे कि इस समय की सभ्यता के अनुसार मन्दिर बनवाना मूर्खपन होगा क्योंकि अंग्रेजी शासन में मन्दिर का सम्मान कोई न करेगा। इस विचार का परित्याग कर पुस्तक रचने की सूझी

परन्तु इसमें उन्हें यश के स्थान पर अपयश मिलने का विचार हुआ क्योंकि पुस्तक को कीड़े मकोड़े काट देंगे और वह पढ़ने योग्य न रहेगी। इस प्रकार वे अत्यन्त विचारमग्न रहे। कई वर्ष इसमें बीत गये। फिर स्वप्नावस्था में ही उन्हें पाठशाला बनाने की सूझी परन्तु उनके पास केवल ग्यारह मोहरें थीं, जिनसे पाठशाला का एक भी कोना नहीं बन सकता था। मित्रों की सहायता से कई रेलवे गाड़ियां धन से भर कर मंगाई गईं और भगवान् की कृपा से पाठशाला बन खड़ी हुई। यह पाठशाला स्वप्नावस्था में एक क्षण के अंदर तैयार हो गई परन्तु उसके काम जोड़ने में पूरे पैंतीस वर्ष लगे। उनके मुन्शी के कथनानुसार इस पाठशाला का व्यय एक अंक पर तीन सौ सत्तोसी शून्य थीं।

पाठशाला तैयार हो जाने पर हिमालय की कंदराओं से सुयोग्य तथा अनुभवी अनेक उद्दंड पंडित बुलवाये गए जिनकी संख्या पौन दशमलव से अधिक नहीं है। इस पाठशाला में असंख्य अध्यापक नियुक्त किये गये परन्तु उनमें से पंडित मुग्धमनि शास्त्री, तर्क वाचस्पति प्रथम अध्यापक। पाखंड प्रिय धर्माधिकारी—अध्यापक धर्म शास्त्र। प्राणांतक वैद्य राज—अध्यापक वैद्यकशास्त्र। लुप्त लोचन ज्योतिशोभरण-अध्यापक ज्योतिष शास्त्र। शाल दावानल नीतिदर्पण—अध्यापक नीतिशास्त्र और आत्म विद्या।

इन पंडितों के आ जाने पर आधी रात के समय पाठशाला खोली गई। सभी इष्ट मित्रों के सम्मुख उस परमपिता परमात्मा को धन्यवाद दिया गया जिसकी कृपा से यह कार्य सम्पूर्ण हुआ।

इस पाठशाला के बनाने के लिए कितने धन की आवश्यकता होगी और यह कैसे एकत्रित होगा यह कोई नहीं जानता था। पाठशाला के कार्य को चलाने के अतिरिक्त इतना धन बच रहेगा कि कई पीढ़ियों तक समाप्त न हो सकेगा, हमारे पुत्र परिवार के लोग चैन के वशी बजाएंगे। हे मित्रों, इस कार्य के पूर्ण होने में आपने जो तन-मन-धन से सेवा की है वह भलाई नही जा सकती। मैं अकेला इस कार्य को कदाचित् पूर्ण नहीं कर सकता था। मैं इस दिन को अपनी मित्रता का प्रथम दिन मानता हूं जो संभवतः किसी अन्य को मिलना दुर्लभ है। उन्होंने आगे कहा कि आपने पाठशाला तो बहुत देखी होंगी परंतु ऐसी पाठशाला

संभवतः न देखी हो और न सुनी हो । यह हमारा सौभाग्य है कि मग्धमुनि शास्त्री हमें बिना प्रयास मिल गये जिन्हें इन्द्रवन और जंगलों में ढूँढते फिरते थे । इनकी वृद्धि और विद्या की प्रशंसा करते सरस्वती भी लजाती है। पाखण्डप्रिय पंडित ते सब स्त्री-पुरुषों को मोह रखा था । परन्तु अंग्रेजी पढ़े भारतीयों ने इनकी दुर्दशा कर दी । इनके राज्य के समय लोग दृष्टि बचाकर इनका भोग लगाया करते थे और कहां अब श्वान शृंगाल के साथ दिन काटने पड़े। परन्तु फिर भी इनकी बुद्धि पर पूर्ण विश्वास है। एक मास में ही समस्त नवीन धर्मों पर पानी फेर देंगे । पंडित प्राणांतक प्रसाद अति प्रशंसनीय पुरुष हैं और महावैद्य के नाम से प्रसिद्ध हैं । चिकित्सा-शास्त्र में इन्हें अति सम्मान प्राप्त हैं । इनकी औषधि देने में देर होती है, परन्तु रोगी के अच्छा होने में देर नहीं लगती ।

लुप्तलोचन ज्योतिषाभरण ज्योतिष विद्या के उद्दण्ड तथा कुशल पंडित हैं। इन्होंने "तामिसमकरालय" आदि कितने ही प्रशंसनीय ग्रंथों की रचना की है । इनकी दिव्य दृष्टि निस्सन्देह कमजोर है परन्तु सम्पूर्ण तारों का पूर्ण ज्ञान इन्हें है ।

पंडित शीलदावानल-नीति दर्पण के गुण अपार हैं। ये बाल ब्रह्मचारी हैं। नीति शास्त्र का पठन पाठन करते रहे हैं। वेणु-वीणासुर, रावण, दुर्योधन, कंस आदि इनके शिष्य थे । इस समय अंग्रेजी न्यायकर्त्ता इनकी अनुमति के विना कोई कार्य नहीं करते ।

अतः अब आप सभी सज्जनों से यही विनती है कि अपने बच्चों को व्यय की चिन्ता किए बिना भेजा करें । अध्यापकों को मासिक वेतन या तो दिया नहीं जाएगा यदि दिया भी गया तो नाम मात्र के लिये। अन्य खर्च इसी प्रकार चलते रहेंगे ।

इसके पश्चात् उन्होंने पाठशाला के नियम बताए ।

(१) इस पाठशाला का नाम गगनगत अविद्या-वरुणालय होगा ।

(२) इसमें केवल वंध्या और विधवा के पुत्र पढ़ेंगे ।

(३) डेढ़ दिन से अधिक और पौने अठ्ठानवे से कम आयु के विद्यार्थी इसमें नहीं आयेंगे ।

(४) सेर तीन सेर तक कक्षानुसार हुलास देनी होगी ।

(५) रात को बारह बजकर दो मिनटसे पूरे पाँच बजे तक पाठशाला होगी ।

(६) प्रत्येक उजाली अमावस्या को भरती हुआ करेगी ।

(७) कृष्ण पक्ष में युवा, स्त्री और शुक्ल पक्ष में बालक शिक्षा पावेंगे ।

(८) परीक्षा प्रति मास होगी, परन्तु द्वितीय द्वादशी की संधि में हुआ करेगी ।

(९) वार्षिक परीक्षा ग्रीष्म ऋतु में माघ मास में होगी । सफल विद्यार्थी उच्च पद के भागी होंगे । प्रथम आने वाली स्त्री तथा बच्चों को काम की तथा खेल की वस्तुएं पारितोषिक में मिलेगी ।

(१०) दो स्त्रियों की और तीन पुरुषों की, कुल पांच कक्षाएं होंगी ।

(११) किसी को काम की छुट्टी नहीं मिलेगी और अनुपस्थित होने पर पांच मिनट में दो बार नाम कटेगा ।

(१२) अपराध करने पर ताजीराते हिन्द के अनुसार दण्ड मिलेगा ।

(१३) मल मास अनाध्याय के कारण नृत्य और संगीत की शिक्षा दी जायेगी ।

(१४) छल, निन्दा, द्रोह, मोह आदि के भवसागर के चतुर्दश कोटि रत्न घोलकर पिलाए जाएंगे ।

(१५) इसका प्रबन्ध धूर्तवंशावतंस नाम जगत् विदित करेंगे ।

पाठशाला में व्याकरण, धर्मशास्त्र, वैदिक, ज्योतिप, नीतिशास्त्र, कोष, नवीन नाटक आदि से सम्बन्धित पुस्तकें पढ़ाई जाएंगी । जो इस पाठशाला में पढ़ना चाहे वह तार से खबर दे जिससे उसका नाम लिख लिया जावे ।

प्रश्न ७—राजा लक्ष्मणसिंह का जीवन परिचय दीजिए । उनके 'शकुन्तला नाटक'' के पाँचवे अंक का सार अपनी भाषा में व्यक्त कीजिये ।

उत्तर—जीवन परिचय—इनका जन्म १८८३ वि० में आगरे में हुआ । १९१३ में ये डिप्टी कलक्टर के पद पर नियुक्त हुये और १९४६ में पैन्शन मिली । १९५१ में राजा की पदवी मिली तथा १९५३ में इनकी मृत्यु हो गई । १९१६ में इन्होंने कविता लिखनी आरम्भ की और मृत्यु समय तक करते ही रहे । शकुन्तला नाटक १९१६ में प्रकाशित हुआ । बाद में पद्य रचना करने करने लगे ।

इनकी भाषा मधुर खड़ी भाषा था। फारसी तथा अरबी के शब्द नहीं आने देते थे। वाक्यों में अनावश्यक शब्दों को स्थान नहीं था। सर्वनामों का प्रयोग इनकी भाषा में अधिक मिलता था। कभी-कभी तो कर्त्ता और कर्म में अन्तर मालूम करना कठिन हो जाता था।

सार—शकुन्तला नाटक महाकवि कालिदास की रचना है। इन्होंने उसका भाषानुवाद किया। इस नाटक में राजा दुष्यन्त की शादी शकुन्तला के साथ तथा दुष्यन्त का शकुन्तला को भूल जाने और मुनि द्वारा दिए गए शाप को इसका कारण बताया है।

कहते हैं कि शकुन्तला का पालन कण्व मुनि ने किया। शकुन्तला युवावस्था को प्राप्त कर चुकी थी। एक दिन जब कण्व मुनि तीर्थ यात्रा पर गए हुए थे, राजा दुष्यन्त मुनि की कुटिया में आए और शकुन्तला से विचारों का आदान-प्रदान किया। बातों ही बातों में दोनों में प्रेम हो गया और फिर गान्धर्व विवाह भी। शकुन्तला गर्भवती भी हो चुकी थी। राजा दुष्यन्त ने अँगूठी देकर कहा कि मैं तुम्हें शीघ्र ही बुला लूंगा।

दुर्वासा मुनि वहाँ पर आए। कई बार आवाज़ों पर आवाज़ें दीं। शकुन्तला दुष्यन्त के प्रेम में ध्यान मग्न थी। उसने मुनि की आवाज नहीं सुनी। मुनि ने क्रोधित होकर उसे शाप दिया "तू जिसके ध्यान में मग्न है वह तुझे भूल जायगा।" शकुन्तला को इस बात का कुछ पता नहीं था। उसकी सखियों के बार-बार प्रार्थना करने पर भी दुर्वासा मुनि ने अपना शाप वापस नहीं लिया। हां इतना अवश्य कह दिया कि कोई निशानी दिखाने पर उसको सारी बातें याद आ जायेंगी।

कण्व मुनि के आने पर शकुन्तला ने राजा दुष्यन्त के साथ विवाह करने का प्रस्ताव किया। कण्व मुनि ने उसे स्वीकार किया। परन्तु राजा दुष्यन्त उन्हें भूल चुका था। गर्भावस्था के दिन बढ़ते जा रहे थे। मुनि ने शिष्यों के साथ शकुन्तला को राजा दुष्यन्त के पास भेज दिया। मार्ग में पानी पीते समय उसकी अँगूठी नदी में गिर पड़ी। दुर्भाग्यवश वह अंगूठी मछली के मुंह में जा पड़ी। शकुन्तला ने अगूठी को बहुत ढूंढा परन्तु मिल न सकी। अपने भाग्य को कोसती हुई वह राजा दुष्यन्त के दरबार में पहुँची। वहाँ पर उसके साथ जो बीता उसका वर्णन इस अंक में दिया गया है।

कण्व के शिष्यों ने द्वारपाल से राजा को उनके वहाँ आने का सन्देशा देने की प्रार्थना की। समयानुसार द्वारपाल ने उचित न समझकर राजा के पास सन्देशा भेजने से इन्कार किया और कहा कि इस समय सन्देशा भेजने से, राजा साहिब विश्राम करने से रुक जायेगे शिष्यों ने कार्य की आवश्यकता प्रकट की, परन्तु निरर्थक। राजा दुष्यन्त तो माढव्य के साथ सगीत शाला से आने वाले सगीत की आवाज को ध्यान से सुन रहे थे। उन्होने समझा कि हसमती उन्हें प्रेम प्लावित करने के लिए किसी नए गीत का अभ्यास कर रही है। उन्होंने माढव्य को कहा कि कह दो कि राजा तेरी चेतावनी को समझ गए है। उसने इन्कार किया। परन्तु दुष्यन्त ने उसकी चतुराई की प्रशंसा की। वह सन्देशा देने चला गया।

द्वारपाल ने राजा को कण्व मुनि के शिष्यों का सन्देश दिया कि वे कुछ स्त्रियों के साथ आए हैं। दुष्यन्त ने आश्चर्य चकित होकर पूछा कि द्वारपाल क्या कह रहे हो? द्वारपाल ने कहा कि यह सत्य है महाराज। राजा की आज्ञा पाकर वह उन्हें बुलाने गया। उधर, राजा दुष्यन्त यज्ञ स्थान पर पहुँचकर सोचने लगे कि मुनि का क्या सन्देश हो सकता है। अनेक प्रकार के सन्देह उसके मन में उत्पन्न होने लगे। द्वारपाल, शारंगरव और गौतमी, शकुन्तला के साथ आये।

शारंगरव तथा शारद्वत राजा के प्रेम की सराहना करते है। शकुन्तला की दाहिनी आँख फड़कने लगी। राजा दुष्यन्त ने शकुन्तला के रूप को देखा और प्रशंसा की। विधि पूर्वक आदर सत्कार के पश्चात् पुरोहित ने मुनि का सन्देश सुनाने की प्रार्थना की। दोनों शिष्यों ने कहा कि महाराज! आपका विवाह जो इस कन्या के साथ हुआ है उसे कण्व मुनि अंगीकार करते है। आप इसे रनवास मे लो और शास्त्रानुसार व्यवहार करो। गौतमी ने दोनों के इच्छानुसार विवाह पर बात कही। राजा ने पूछा यह क्या वृत्तान्त है। शारंगरव ने पुत्री के श्वसुराल में ही रहने की महत्ता बताई। दुष्यन्त ने आश्चर्य से पूछा कि क्या कभी मेरा इसके साथ विवाह हुआ? शारंगरव और दुष्यन्त मे कुछ बहस हो रही थी कि गौतमी ने शकुन्तला का घूंघट उठा दिया। दुष्यन्त ने देखा-सोचा, विचारा, परंतु यह याद नहीं आया कि कभी पाणि-ग्रहण संस्कार हुआ था या नहीं। शकुन्तला ने तपोवन की प्रीति की याद दिलाई परंतु दुष्यन्त ने

अपने को निर्दोषी बताया और कहा कि तुम मुझे कलंकित मत करो। गौतमी ने शकुन्तला को अंगूठी देने के लिए कहा जो राजा ने उसे दी थी। परंतु वह जल में गिर चुकी थी। दुष्यन्त ने उसे त्रिया चरित्र कहा। फिर शकुन्तला ने माधवी कुंज में कमल के पत्ते से जल लिया था उसकी याद दिलाई। परंतु दुष्यन्त इससे भी मुकर गया और उसने तिरस्कार पूर्ण शब्द स्त्री जाति के लिए प्रयोग किए। शकुन्तला क्रोधित हुई। राजा को सचाई में फिर कुछ संदेह हुआ। शारंगरव और दुष्यन्त ने एक दूसरे पर लांछन लगाए और उनका स्पष्टीकरण किया। गौतमी, शारद्वत तथा शारंगरव शकुन्तला को छोड़ कर चल दिए। तीनों ने शकुन्तला के रोने पर विश्वास दिलाया और कहा कि तुम पति के ही घर रह सकती हो पिता के नहीं। परंतु दुष्यन्त ने अपने को जितेन्द्रिय पुरुष कहा और उसे अंगीकार करने से इंकार किया।

पुरोहित ने पुत्रोत्पादन तक उसे अपने घर में रहने का प्रस्ताव रखा। यदि इसका पुत्र चक्रवर्ती हुआ तो यह तुम्हारी स्त्री है अथवा नहीं। राजा दुष्यन्त इससे सहमत हो गए। शकुन्तला पुरोहित के पीछे रोती-रोती जा रही थी कि एक बिजली सी आई और शकुन्तला को उठाकर ले गई। पुरोहित ने यह आश्चर्यजनक बात दुष्यन्त को बताई। महाराज ने इसे छल-कपट कहा और विश्राम करने की आज्ञा दी। स्वयं भी शयन स्थान में चले गये। राजा बहुत याद करते हैं परंतु शापवश कुछ याद नहीं आता। यहीं पर यह अंक समाप्त हो जाता है।

प्रश्न ८—बाबू तोताराम का संक्षिप्त जीवन परिचय देते हुये उनके "कीर्तिकेतु" नाटक का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

उत्तर—जीवन परिचय—बाबू तोताराम जी का जन्म संवत् १९०४ वि० में हुआ। कुछ दिन सरकारी नौकरी करने के पश्चात् इन्होंने अलीगढ में वकालत करनी आरम्भ की तथा ख्याति प्राप्त की। ये हिन्दी के परम हितैषी और भक्त थे। इन्होंने केठी वृत्तान्त नामक नाटक, वाल्मीकि रामायण का दोहा-चौपाइयों में अनुवाद किया तथा भारतेन्दु नामक साप्ताहिक पत्र निकाला। १९५९ वि० में इनकी मृत्यु हुई।

ये शुद्ध हिन्दी के पक्षपाती थे। इन्होंने गद्य खड़ी बोली में तथा पद्य व्रज-भाषा में लिखी। खड़ी बोली में व्रजभाषा के कुछ शब्द आ गए हैं। इनकी शैली पण्डिताऊपन से मिलती-जुलती है।

सार—कीर्तिकेतु रमावती नगरी का राजा था। यह एक महान् धर्मात्मा था। राजा कीर्तिकेतु के दो पुत्र मकरध्वज और प्रेमभाव थे। एक दिन की बात है कि सूत्रधार तथा नटी ने राजा को कीर्ति फैलाने के लिए एक धर्म की चर्चा का नाटक रचने का शुभ विचार दिया। नेपथ्य में घोर अरुणोदय हुआ।

कीर्तिकेतु के पुत्रों ने मलिन सुख से आकर यह सूचना दी कि राजधानी पर शिशुमार नाम के राजा ने आक्रमण कर दिया है और साथ ही नवपुर को विजय भी कर लिया है। यह दिन हमारे जनक और जन्मभूमि के लिए अभाग्य का प्रथम दिन है। यदि यह पापी लड़ाई करने के लिए उद्यत रहा तो नवीन लड़ाई को और पाप के बीज बोने को बीज कहाँ से आयंगे। वह दुःख-दायी दुष्ट रुधिर पूरित मृतक रमावती निवासियों से भरी रणभूमि मे भ्रमण करता फिर रहा है। उसके घोड़े के सुम महाजनों के रक्त से रंजित दीख पड़ते हैं।

प्रेमभाव, मकरध्वज से कहता है कि देखो धर्म के कारण ही कुछ उपाय समझ नहीं आता। हमारे पिता ने कभी निरपराधी को दण्ड नहीं दिया। दुष्ट और अपराधियों को ही दण्ड मिलता रहा। अब वह अत्रिपुर में बैठा हुआ है। उस वेचारे की इस नीच संसार में क्या चलती है। उन्होंने रमावती नगरी की झूठी प्रशंसा बनाई हुई है।

प्रेमभाव, मकरध्वज को अपने पिता की बात को बारम्बार याद दिलाते हैं परंतु उसकी समझ में कुछ नहीं आता। मकरध्वज के प्रेम फन्दे में (मधुमति) फसा हुआ है। यह जानते हुए भी इन गुप्त रखता है।

मकरध्वज, प्रेमभाव की नीति से असहमत है। वह शत्रुओं के वारों के प्रभाव को बताता है। परतु प्रेमभाव नवपुर के राजकुमार की याद दिलाता है जिससे कि रमावती नगरी के लोगों का नाम इस संसार में उज्ज्वल हो जाय। मकरध्वज अपने दुःख को दर्शाता है और प्रेमभाव से सहानुभूति की आशा करता है जो वास्तव में प्रेमभाव के साथ पहले से ही है। प्रेमभाव

उसके क्रोधित होन के दुःख का भी वखान करता है। शकुनि को आते देख मकरध्वज वहां से चल देता है।

शकुनि अपने मन के भावों को प्रेमभाव के समान गुप्त रखता है और दोनों अंक भर मिलते हैं। प्रेमभाव फाल्गुनपुरी के लोगों से राय लेने का प्रस्ताव रखता है। शकुनि कीर्तिकेतु की उदार भावना की प्रशंसा करता है और मधुमति से प्रेम के विचार प्रकट करता है। प्रेमभाव इस पर आपत्ति प्रकट करता है। शकुनि इस पर क्षमा याचना करता है और अपनी दशा पर सहानुभूति पूर्ण विचार करने का आग्रह करता है।

प्रेमभाव उसकी वातों से सहमत हो जाता है और शिशुमार का मुकाबिला करने के लिये सभासदों को तैयार करता है। प्रेमभाव के जाने पर शकुनि उसे अभिमानी और नीति-निपुण वताता है और वह कहता है कि उसके साथ दुर्व्यवहार हुआ है। वह प्रेमभाव का साथ छोड़ कर शिशुमार का साथ देने को तैयार होता है जिससे कि शिशुमार पकड़ी हुई मधुमती राजकुमारी को उसे पारितोषिक रूप में दे दे। इससे उसकी अभिलाषा पूर्ण हो जायगी।

प्रश्न ९—लाला श्रीनिवासदास का जीवन परिचय दीजिए तथा उनके "परीक्षा गुरु" निवन्ध का सार अपने शब्दों में लिखिये।

उत्तर—जीवन परिचय—लाला श्रीनिवासदास जी दिल्ली के मारवाड़ी रईस थे। राजा लक्ष्मणदास जी की कोठी के संचालक थे। स्वाध्याय से इन्होंने अंग्रेजी सीख ली थी। स्वभाव से शास्त्र व्यसनी ने। इनका जन्म १९०८ वि० में हुआ। ३६ वर्ष के पश्चात् ही इनकी मृत्यु हो गई। ये भारतेन्दु के समकालीन थे।

इन्होंने तप्तासंवरण, संयोगिता स्वयंवर तथा रणधीर प्रेम मोहनी उच्च कोटि के नाटक लिखे। परीक्षा गुरु उच्च कोटि की प्रवन्ध कल्पना है। इनकी कविताए वड़ी सरस हैं परन्तु अनुवाद में शिथिलता है तथा प्रसादगुण की कमी है। इनकी गद्य टकसाली है। भिन्न-भिन्न शैलियों पर इनका पूर्ण अधिकार है।

परीक्षा गुरु में अंग्रेजी की शैली का स्पष्ट अनुकरण है। उदाहरण "अमुक बोले", "मदन मोहन ने तर्क की" इत्यादि। ठेठ दिल्ली वाले 'ओ',

'औ', 'ए' 'ऐ' के स्थान पर एक ही शब्द 'ऐ' का प्रयोग किया गया है। दिल्ली के मुहावरों का प्रयोग है। इनकी भाषा में उर्दू के शब्दों जैसे लायक, जरूरत, मूजिब, सवाल इत्यादि शब्दों का प्रयोग मिलता है। इनकी दोनों शैलियों में संस्कृत तथा फारसी, हिन्दू तथा मुसलमान इन दो सभ्यताओं का ही अन्तर है। भारतेन्दु तथा श्रीनिवासदास समकालीन थे परन्तु दोनों के परिचय का कोई प्रमाण नहीं मिलता। दोनों समकालीन थे और दोनों पर ही अंग्रेजी का प्रभाव था।

सार—लाला श्रीनिवासदास जी ने अपने इस लेख में यह स्पष्ट करने का भरसक प्रयत्न किया है कि मनुष्य का स्वभाव उसके कर्मों से जाना जाता है, बातों से नहीं।

मनुष्य के मन में अनेक प्रकार की वत्तियां हैं जैसे परोपकार की इच्छा, भक्ति और न्यायप्रियता, बुद्धि वृत्ति तथा आनुषंगिक प्रवृत्ति इत्यादि। इसके अतिरिक्त कुछ निकृष्ट प्रवृत्तियां भी मनुष्य के अन्दर कार्य करती हैं जिनमें काम, सन्तान स्नेह, धन संग्रह करने की लालसा, हत्या करने व बदला लेने का स्वभाव आदि प्रमुख हैं। इन प्रवृत्तियों के अविरोध में जो कार्य किया जाता है वह ईश्वर के नियमानुसार किया समझा जाता है। दो वृत्तियों के विरोध होने पर गौण प्रवृत्ति, निकृष्ट वृत्ति को धर्म और बुद्धि वृत्ति से दबा देना चाहिए। यह सब कुछ लाला श्रीनिवासदास ने श्री मदन मोहन के प्रश्नोत्तर पर कहा था। परन्तु मदनमोहन जी इससे सन्तुष्ट नहीं थे क्योंकि प्रश्नोत्तर प्रश्नानुकूल नहीं था।

लाला श्रीनिवास ने कहा कि इसी से आगे चलकर मनुष्य के स्वभाव पहचानने की रीति का पता चलेगा जो कि आपका वास्तविक प्रश्न है। पंडित पुरुषोत्तमदास जी ने उनके विचारों को शास्त्र विरोधी कहा। इस पर श्रीनिवासदास जी ने कहा कि निकृष्ट प्रवृत्ति को धर्म और बुद्धि प्रवृत्ति से त्याग करने का प्रयत्न करना चाहिए। परन्तु मनुष्य निकृष्ट प्रवृत्ति के इतना आधीन होता है कि वह उसे रोकने में असमर्थ होता है। यदि धर्म वृत्ति और बुद्धि को मुख्यता प्रदान करने के बाद निकृष्ट वृत्ति का उचित रीति से आचरण किया जाय तो गृहस्थ के लिये हानिकारक नहीं हो सकता। धर्म वृति सबसे मुख्य है। इस वृत्ति से अन्य वृत्तियों के हक की रक्षा करनी आवश्यक है।

परोपकारादि शुभ कर्मों का परिणाम भी बुरा हो सकता है। उदाहरण के लिए उन्होंने कहा कि अन्न प्राणाधार है। परन्तु अधिक भोजन करने से वह रोग उत्पन्न कर देता है। यदि परोपकार वश आलसी और अधर्मियों की रक्षा की तो संसार में आलस्य और अधर्म फैलेगा। न्याय प्रवृत्ति की अधिकता से मिलनहारी समाप्त हो जाती है। वुद्धि वृत्ति की अधिकता से अन्य पदार्थों के जानने की अज्ञानता वनी रहेगी। मन को अत्यन्त परिश्रम कराने से वह निर्वल हो जायगा। यदि शरीर से अधिक परिश्रम न कराया जाय तो उसका वलहीन होना आवश्यक है। आनुषंगिक प्रवृत्ति की अति से संग अनुसार रंग चढ़ जायगा। काम की अति प्रवृत्ति से स्वस्त्री तथा पर-स्त्री का ध्यान नहीं रहेगा। संग्रह करने की लालसा चोरी, छल, कपट आदि सिखा देगी। हिंसा करने की प्रवृत्ति से छोटे-छोटे अपराधों पर हिंसा करने लगेंगे। आत्मसुख की प्रवृत्ति हमें हर समय गाने बजाने के लिये आवृत्त करेगी, नशेवाजी करायेगी। द्रव्य की अति से विना धर्म किये धर्मात्मा वनना चाहेंगे। जुआ खेलेंगे और धरी ढकी दौलत ढूंढते फिरेंगे।

लाला मदनमोहन इसे मन की वृत्तियां कहने लगे। आगे उन्होंने समझाया कि हमें वृत्तियों का सम्वन्ध मिलाकर अपना कर्त्तव्य कर्म निश्चित करना चाहिए। फिर उन्होंने वाल्मीकि रामायण, विष्णुपुराण, चाणक्य नीति आदि का उदाहरण दिया। यवन देश के फ्रिजिया के मशहूर हकीम एपिक्टस की नीति का "धैर्य से सहना और मध्यम भाव से रहने" का दृष्टान्त दिया। कुरान का उदाहरण दिया। उन्होंने बताया कि पाईसिस्ट्रेटस का नाम उसकी उदारता ही था। वह अपने नाम की प्रसिद्धि भी नहीं चाहता था परन्तु सव की वृत्ति एक जैसी नहीं हो सकती। जिसकी जो वृत्ति प्रवल होगी वह उसे वहीं खींच कर ले जायगी। जैसे यदि किसी जंगल में किसी को रुपये की थैली मिले तो वह अपनी प्रवृत्ति अनुसार ही उसे घर लायेगा, या खर्च करेगा, या दान देगा या उसके धनी को ढूंढेगा। इस प्रकार मनुष्यों की परीक्षा समय पाकर स्वयं ही हो जाती है। राज-पाट, धन-दौलत, विद्या, स्वरूप, वंश मर्यादा आदि से भले बुरे की पहिचान नहीं हो सकती। विदुर जी ने भी कहा है।

उत्तम कुल आचार बिन, करे प्रमाण न कोइ।
कुल हीनों आचार युत, लहै बड़ाई सोय॥

प्रश्न १०—बाबू राधाकृष्णदास का जीवन परिचय देकर उनके लेख "हिन्दी क्या है" का सारांश लिखिये !

उत्तर—जीवनकाल—बाबू राधाकृष्णदास जी बाबू हरिश्चन्द्र जी के फुफेरे भाई थे। इनका जन्म वि० सं० १९२२ में हुआ। १९६४ वि० में इनका स्वर्गवास हो गया। हिन्दी लिखने का प्रोत्साहन इन्हें भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने दिया। इन्होंने भारतेन्दु जी के कई अधूरे ग्रंथों को पूरा किया जिनके नाम कालचक्र, प्रशस्ति संग्रह, सतीप्रताप, राजसिंह है। इसके अतिरिक्त इन्होंने आर्य चरितामृत, धर्मालाप, मरता क्या न करता, स्वर्णलता, बापारावल, दुःखिनी बाला, निःसहाय, हिन्दु सामयिक पत्रों का इतिहास आदि अनेक रचनाएं कीं। इसके अतिरिक्त भारतेन्दु, सूरदास, नागरीदास तथा बिहारी लाल की संक्षिप्त जीवनियां लिखीं। राजस्थान केसरी इनका प्रसिद्ध नाटक है। नहुष-नाटक, सूरसागर और भक्त नामावली का सम्पादन बड़ी चतुरता तथा योग्यता के साथ किया। इनकी भाषा उत्कृष्ट एवं उच्च कोटि की थी। ये उर्दू में कविताएँ करते थे।

सार—भारतवर्ष की जनसाधारण की भाषा को हिन्दी कहते हैं। भारतवर्ष की जलवायु, भिन्न-भिन्न खण्डों के अनुसार भिन्न-भिन्न है। यहाँ सभी ऋतुओं और सभी प्रकार की जलवायु का आनन्द प्राप्त किया जा सकता है। हर प्रकार के पदार्थ यहां मिलते हैं। यहाँ हर प्रकार के मनुष्य वीर, धर्मात्मा, लोभी, काले, गोरे मिलते हैं। इसी कारण यहां की भाषा के भी अनेकों भेद हैं। दूसरे देशों में एक ही जलवायु, एक ही वातावरण, एक ही भाषा, एक सा आकार तथा स्वभाव मिलता है। इस प्रकार दूसरे देशों की अपेक्षा इस देश की भाषा का उचित अनुमान लगाना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है।

यदि हम ध्यानपूर्वक देखें तो सब में एक मूल ही पायेंगे। सभी भेदान्तर एक ही सूत्र में बँधे हैं। वह सूत्र कौन सा है? हिन्दी में हम चाहे जिसका भेद देखें, तनिक भी विचार पूर्वक ध्यान करने से यह ज्ञान हो जाता है कि यह तो हिन्दी है। यदि निदान भारत की एक ही भाषा हो तो वह भी हिन्दी ही होगी।

हिन्दी और उर्दू का झगड़ा सदैव से चला आ रहा है। वास्तव में हिन्दी और उर्दू में कुछ अंतर नहीं है। यह हिन्दी ही है। उर्दू में फारसी के शब्दों को लादा जाता है और वह कठिन उर्दू बन जाता है। या कहें कि वह फारसी भाषा होती है। इसी प्रकार हिन्दी में संस्कृत के शब्दों को लादा जाता है वह संस्कृतमयी भाषा हो जाती है। परन्तु इनमें बहुत सारे शब्द ऐसे मिलेंगे जो हिन्दी से निकले होते हैं। इन शब्दों का पारस्परिक इतना सम्बन्ध हो गया है कि हिन्दी के लेखक बेधड़क होकर उनका प्रयोग करते हैं। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि जब अंग्रेजी शासन केवल १५० वर्ष रहा तो हम इस भाषा में अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग कर सकते हैं तो उर्दू शब्दों का क्यों नहीं जबकि मुसलमानों ने १५०० वर्ष राज्य किया।

कुछ लोगों के मतानुसार अधिकांश ग्रामीण संस्कृतमयी हिन्दी को समझने की अपेक्षा उर्दूमयी हिन्दी को शीघ्र समझ लेते हैं। परन्तु यह धारणा अनुचित है। ऐसा कोई हिन्दू नहीं जो रामायण को नहीं समझता हो। जिस प्रकार वे संस्कृत के शब्दों को नहीं समझ सकते उसी प्रकार वे उर्दू के शब्दों को भी नहीं समझ सकते। उनके लिये महाशय, महोदय तथा हजूर और जनाब एक ही जैसे शब्द हैं। यदि उन्हें राउर अथवा राउरे कह कर पुकारें तो शीघ्र ही समझ सकेंगे। यह शब्द संस्कृत शब्द रावल का अपभ्रंश ही तो है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जनसाधारण का भाषा में अधिकतर हिन्दी के शब्द अथवा संस्कृत के बिगड़े हुए शब्द ही दिखाई पड़ेंगे चिट्ठी-पत्री तथा बही-खातों में हिन्दी की लिखावट ही मुख्य होती है। यदि हम मुसलमानी मुहल्ले में जाएं तो हम देखेंगे कि अधिकांश लोग हिन्दी में हस्ताक्षर करेंगे। हिन्दी में ही पत्रों के ऊपर पता लिखेंगे। रामायण की अधिक बिक्री होगी। उर्दू में छपी अलिफ लैला से अधिक बिक्री हिन्दी में छपी पुस्तक की होगी।

भारतवर्ष में प्रत्येक १२ कोस पर भाषा में थोड़ा-थोड़ा अन्तर होता चला जाता है। यहाँ तक कि यह गुजरात मे गुजराती और बंगाल में बंगाली बन जाती है। यदि हम क्रमवार चलें और भाषा का मिलान करें तो हमें पता चलेगा कि यह भाषा आगे चलते-चलते अपना रूप बदलती जाती है। निदान

हिन्दी को हिन्दुस्तान की भाषा होने में कोई सन्देह नहीं परन्तु इसके पूर्वी, कन्नौजी, व्रजभाषा और खड़ी बोली चार भेद हो गए हैं।

यह भेद तो बोलचाल और प्रादेशिक भाषा के हुए। वर्तमान समय में हिन्दी, उर्दू ही खड़ी बोली है। यही भाषाए राजदरबार तथा सभ्य समाज में बोली जाती है।

सारे संसार में जनसाधारण और साहित्य की भाषा में अंतर अवश्य मिलेगा। साहित्य की भाषा ऊंचे दर्जे की होती है और जनसाधारण की भाषा अशुद्ध होती है। परन्तु हम हिन्दी भाषा उसी को कहेंगे जिसमें शुद्ध हिन्दी हो। जिस प्रकार अंग्रेजी जानने के लिए अग्रेजी व्याकरण की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार हिन्दी जानने के लिए हिन्दी ग्रंथों की जानकारी आवश्यक है। इतना होते हुए भी कचहरी की भाषा ऐसी होनी चाहिए जिसे जनसाधारण आसानी से समझ सकें। चाहे उसमें उर्दू के शब्दों की मिलावट ही क्यों न हो।

प्रश्न ११—बाबू बालमुकन्द गुप्त का जीवन परिचय दीजिए तथा उनके "अखबार" शीर्षक का सार अपने शब्दों में दीजिए।

(प्रथमा, संवत २०१७)

उत्तर—जन्मकाल—बाबू बालमुकन्द गुप्त जी का जन्म संवत् १९२२ में रोहतक में हुआ। १९६४ मे इनकी मृत्यु हो गई। आप उर्दू तथा फारसी के विद्वान् थे। सर्वप्रथम इन्होंने कोहनूर नामक अखबार का सम्पादन किया। अवधपच के आप खास नामानिगारों में से एक थे। मजाक करने के उस्ताद थे। प्रतापनारायण मिश्र के प्रभाव से आपको हिन्दी का अनुराग मिला। हिन्दी सीख कर 'हिन्दुस्तान" के सम्पादक बने। बाद में "हिन्दी बगवासी" तथा "भारतमित्र" का सम्पादन किया।

आपने रत्नावली नाटिका, शिवशम्भु का चिट्ठा, हरिदास, समाचार पत्रों के इतिहासादि की रचनाएं कीं जो लोक प्रसिद्ध है। इनकी समालोचनाओं से गद्य को अत्यधिक लाभ हुआ है। परन्तु असमय मृत्यु हो जाने के कारण आप हिन्दी जगत् की अधिक सेवा नहीं कर सके।

सार—इस समय हिन्दी और उर्दू में बड़ा झगड़ा पड़ा हुआ है। हिन्दी के

अनुयायी उर्दू को और उर्दू के अनुयायी हिन्दी को तिरस्कार की दृष्टि से देखते हैं। परन्तु इनमें अंतर कुछ नहीं है। फारसी शब्द रूपी वस्त्र धारण करने वाली भाषा उर्दू और देवनागरी वाली हिन्दी कहलाती है।

अंग्रेजी सरकार भारतीय भाषा को ईरानी आवरण पहनाकर अदालतों मे लाई। पंजाब और पश्चिमोत्तर देश में अदालती भाषा उर्दू हुई। उर्दू की पुस्तकें लिखने का ढंग जारी हो चुका था। सर्वप्रथम पुस्तक १८५५ में बनी। १८५९ में बागोबहार नाम की पुस्तक निकली। १८६० में प्रेम सागर छपा। सरकारी कार्य १८९२ में उर्दू में होने आरम्भ हुए। १८९३ में उर्दू को पूर्ण स्वतन्त्रता मिली।

१८८० में उर्दू का एक अखबार मुहम्मद हुसैन के पिता ने निकाला। इस पत्र में आजकल की भाँति राजनैतिक लेख नहीं निकलते थे। उसमें केवल शब्दानुवाद तथा कविता सम्बन्धी बातें ही निकलती थीं। इसका वार्षिक चन्दा ४८ रु० था। इसके पश्चात् आगरे से एक "मुफीदे खलक" नाम का अखबार निकला। इसमें खबरें होती थीं और दो पृष्ठों पर भारत का इतिहास होता था। कवियों की गजलें छपती थीं ये दोनों अखबार, अखबार कहलाने के अधिकारी नहीं थे।

सं० १९०७ ई० में लाहौर से कोहेनूर नामक पत्र निकला जो वास्तव मे अखबार कहा जा सकता था। श्री राधाकृष्णदास ने लिखा है कि राजा शिव-प्रसाद की सहायता से १९०२ ई० में "बनारस अखबार" निकला। इनके सम्पादक श्री रघुनाथ थत्ते थे। मुन्शी शीतलसिंह ने इस अखबार की दिल्लगी की। परन्तु यह समझ नही आता कि यह मजाक किस बात का था। विशुद्ध हिन्दी न लिखने का अथवा लिंग ज्ञान न होने का अथवा संस्कृतमयी होने का। परन्तु इनको दक्षिणी होने और कोई नमूना मौजूद न होने के कारण हम निर्दोष कहेंगे।

लल्लूलाल जी के प्रेम सागर की ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया। उर्दू की दिन प्रतिदिन उन्नति होती गई। यदि प्रेम सागर की भांति कुछ अन्य पुस्तकें हिन्दी में लिखी हुई होतीं तो सम्भवतः बनारस अखबार में परिवर्तन हो जाता। बाद में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने मरी हुई हिन्दी में फिर से प्राण डाले।

वैसे तो हिन्दी अखबारों का उदय भी उर्दू अखबारों के कुछ दिन बाद ही

हो गया था, परन्तु हिन्दी अख़बारों की ओर किसी ने उचित ध्यान नहीं दिया और वे पनप नहीं सके। कोहेनूर के साथ सुधारक चालू हुआ था परन्तु कोहेनूर चलता रहा और सुधारक न चल सका। जोतिर्विद महामहोपाध्याय पण्डित सुधारक द्विवेदी के हाथ में जिस दिन पहला अंक पहुंचा उसी दिन उनके घर पुत्र उत्पन्न हुआ। उन्होंने अपने भतीजे का नाम भी सुधाकर रखा। इसकी भाषा का कोई नमूना नहीं मिला।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय में हिन्दी के भाग्य ने पलटा खाया। राजा लक्ष्मणसिंह ने जो बांध लगाया था उस में कुछ सूराख रह गए थे। भारतेन्दु ने कई एक अच्छी अच्छी पुस्तकें लिखकर हिन्दी भाषा को सुन्दर रूप दिया। या यूं कहें कि मृत हिन्दी को उन्होंने जन्म दिया। इन्हें इसीलिए हिन्दी भाषा का जन्मदाता कहा जाता है।

हिन्दी का उत्तम रूप खड़ा होते ही भारतेन्दु ने हिन्दी में 'कवि-वचन-सुधा' नामक पत्रिका निकाली जिसमें प्राचीन कवियों का काव्य प्रकाशित होता था'। पद्मावत, कबीर की साखी, चन्द्र का रासो, बिहारी के दोहे आदि इस पत्रिका मे छपने लगे। अब इनका ध्यान गद्य की ओर आकर्षित हुआ। इन्होंने कवि वचन सुधा को पाक्षिक और फिर साप्ताहिक कर दिया। राजनीतिक, समाजनीति आदि के लेख इसमें प्रकाशित होने लगे। धर्मनीति की बातें भी इसमें प्रकाशित हुई।

जब उक्तपत्र पाक्षिक होकर निकला तो उसमे राजनीति तथा समाजनीति के लेख भारतेन्दुजी स्वतन्त्रतापूर्वक लिखने लगे। बड़ा आन्दोलन मचा। भारतेन्दु जी अवैतनिक न्यायाधीश थे। अतः उच्च अधिकारियों मे इनकी प्रतिष्ठा थी। इनके लेखों ने पाठकों के हृदय में वह सम्मान तथा स्थान ग्रहण कर लिया था कि प्रत्येक अंक के लिए लोगों की टकटकी लगी रहती थी। राजनैतिक लोग जो उसे बुरा कहते थे, प्रशंसा करने लगे। कई भोली चुकों ने कवि वचन सुधा के कई लेखों को देशद्रोहपूरित बताया। मरसिया नामक लेख को सर विलियम मयोर के विरुद्ध बताया। सरकार इसकी १०० प्रतियां खरीदती थी यह बन्द कर दी गई। शिक्षा संचालक के प्रश्नोत्तर में भारतेन्दु जी ने उन्हें समझाने की अति चेष्टा की परन्तु उनके शत्रुओं ने उन्हें सफल नहीं होने

दिया । क्या बात ! हरिश्चन्द्र चन्द्रिका और बाल बोधिनी की १००, १०० प्रतियां खरीदी जानी भी बन्द हो गईं ।

एडवर्ड सप्तम ने भारत में पदार्पण किया । उनके सम्मान में एक "पादार्घ्य" (शिष्टता का बर्ताव) नामक शीर्षक की कविता लिखी । यार लोगों ने उन्हें समझाया कि इसका अर्थ जूतियों से पीटना भी है । इस प्रकार के दुर्व्यवहार पर भारतेन्दु जी ने अवैतनिक न्यायाधीषी का पद छोड़ दिया और उन हाकिमों से मिलना तक पसन्द नहीं किया । इसके बाद कवि वचन सुधा का नाम जन साधारण में खूब बढ़ा ।

कुछ अन्य अच्छे लेखकों ने भारतेन्दु का हाथ बटाया । जिनमें राधाचरण गोस्वामी, बिहारीलाल, सरयूप्रसाद, दामोदर शास्त्री, मुन्शी कमला प्रसाद आदि का नाम प्रसिद्ध है । पर निकालने का अभ्यास न होने के कारण कुछ देर से निकलता था इसीलिए भारतेन्दु जी ने उक्त पत्र पंडित चिन्तामणि राव को सौंप दिया और यह समय पर प्रकाशित होने लगा । सं० १६४२ ई० में लार्ड रिपन के समय में इसका पतन आरम्भ हुआ । इलबटेविल का आंदोलन हुआ जिसमें कविवचन सुधा ने राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद का साथ दिया । शिवप्रसाद के साथ ही साथ यह पत्र भी लोगों की निगाहों से गिरा । १६४२ में यह पत्र बिल्कुल बंद हो गया । उसी वर्ष भारतेन्दु जी का देहांत हो गया । गया । यह पत्र उनके पश्चात् नहीं देखा गया ।

प्रश्न १२—डा० नजीर अहमद का संक्षिप्त जीवन परिचय देकर "मिरा-तुल-उरूस" शीर्षक का सार अपने शब्दों में लिखिये ।

उत्तर—जीवन परिचय—डा० नजीर अहमद का जन्म जिला बिजनौर के नगीना नामक ग्राम में सं० १८९३ में हुआ । बड़े होकर ये दिल्ली रहने लगे और वहीं के निवासी बन गये । घरेलू शिक्षा के पश्चात् १६०२ में दिल्ली कालिज में प्रविष्ट हुये । ये कानपुर और प्रयाग के शिक्षा विभाग के डिप्टी इन्सपैक्टर बने । राजाज्ञा से प्रयाग में कई कानूनी ग्रंथों का उर्दू अनुवाद किया । पुरस्कार रूप में इन्हें डिप्टी कलक्टर बना दिया गया । १६३४ में हैदराबाद गए और उन्होंने वहां पर तैलांगी भाषा सीखी । रिटायर होने पर दिल्ली आये और फिर संस्कृत सीखी । सं० १६६६ वि० में इनका देहान्त हो गया ।

ये उर्दू के बहुत बड़े लेखक थे। भाषा में दृष्टांत और मुहावरों का प्रयोग आपने खूब किया है। अरबी शब्दों के साथ हिंदी के शब्दों का प्रयोग बड़ी विद्वता के साथ करते थे। भाषा शुद्ध दिल्ली की थी। इनकी भाषा में अरबी और फारसीपन कम है।

सार—मनुष्य का लड़कपन जीवन का सबसे अच्छा समय होता है जबकि उसे किसी प्रकार की चिन्ता नहीं होती। माता-पिता उसकी इच्छाओं को पूरा करने के लिये हर प्रकार का भरसक प्रयत्न करते हैं और अपने बच्चे को किसी प्रकार भी दु:खी नहीं देखना चाहते। उसकी प्रसन्नता में ही उनकी अपनी प्रसन्नता होती है। माता-पिता उचित तथा अनुचित परिश्रम करके परिश्रमिक रूप में प्राप्त धन द्वारा अपने परिवार का पालन पोषण करते हैं। माता रसोइये तक का कार्य करना उचित समझती है, परन्तु अपने बच्चे को दु:खी नहीं देखना चाहती। भगवान् ने यह ममता प्रत्येक के साथ लगा दी है। यदि ऐसा न हो तो बच्चों को कपड़ा, रोटी शिक्षा तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं की प्राप्ति कठिन हो जाय और उनका जीना इस संसार में असम्भव सा हो जाय।

मनुष्य ही नहीं जीव जन्तु भी अपने बच्चों से प्रेम करते हैं और उनका लालन-पालन करते हैं। मुर्गी अपने बच्चे की बिल्लों कुत्तों से रक्षा हेतु अपनी जान पर खेल जाती है। भगवान् ने यह मोह इसी कारण दिया है कि प्रत्येक आवश्यकता समय-समय पर पूरी होती रहे।

जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होता जाता है वैसे-वैसे ही माँ की ममता भी बदलती जाती है। उसे योग्य बनाने के प्रयत्न में उसे झिड़कती है और पढ़ने के लिए मारती तक है। परन्तु ममता समाप्त नहीं होती। माता-पिता यही चाहते हैं कि हमारी सन्तान हमारे जीते जी पढ़ लिख कर योग्य बने। उसका आदर सम्मान बढ़े, फले फूले। दूधों नहाये पूतों फले। उन्हें किसी प्रकार का कष्ट न हो। बच्चों के जवान होने पर माता-पिता वृद्ध होते हैं और इन्हें किसी प्रकार की सहायता देने में असमर्थ होते हैं।

स्त्री और पुरुष संसार रूपी गाड़ी के दो पहिये होते हैं। पुरुष सुनार, लुहार, बढ़ई, दुकानदारी, नौकरी, मजदूरी आदि करके रुपये कमाते हैं। स्त्रियाँ घर में खाना इत्यादि बनाती है और पुरुष द्वारा कमाए धन को इस प्रकार

खर्च करती है जिससे जीवन भी आराम से बीते और अपने आदर तथा सम्मान में भी कोई अन्तर न आए।

पुरुष तो काम सीखते ही हैं। स्त्रियों को भी कुछ न कुछ विशेषतया काढ़ना पिरोना, सीना तथा थोड़ा सा लिखना पढ़ना भी अवश्य सीख लेना चाहिए जिससे कि वे अपने घर का हिसाब किताब ठीक रख सकें। यदि आवश्यकता पड़े तो उस हुनर से लाभ उठायें। ऐसा करने से वे आश्रित नहीं रहेंगी। बड़े-बड़े बादशाहों की बेगमों ने हुनर सीखे हुए थे क्योंकि उन्हें पता नहीं कि कब कौन आपत्ति आवे। बड़े-बड़े लखपति कुछ ही दिनों में खाकपति हो जाते हैं। अतः स्त्रियों को भी कुछ न कुछ सीखना तथा थोड़ा बहुत लिखना चाहिए।

प्रश्न १३—पण्डित रमाशंकर व्यास जी का जीवन परिचय देकर उनके शीर्षक "आभूषण का श्लेष", "पान का श्लेष", "वस्त्र का श्लेष", "फलों का श्लेष' तथा "चौसर का श्लेष" की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए।

उत्तर—जीवन परिचय—पण्डित रमाशंकर व्यास जी जन्म संवत् १९१७ में तथा मृत्यु १९७३ में हुई। आप भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के अन्तरंग मित्रों में से थे। इन्होंने 'कविवचन सुधा' तथा 'आर्य्य मित्र' का सम्पादन किया। हिन्दी गद्य के मार्मिक लेखक थे। इन्होंने बात की करामात, बेसिन का बाँका, चन्द्रास्त, नैपोलियन की जीविनी आदि कितने ही ग्रंथ लिखे। इनकी भाषा अलंकार युक्त थी।

सार—(i) **आभूषण का श्लेष**—धनी पुरुष का ससार में सम्मान तथा आदर होता है। धन को आकृष्ट आभूषण माना गया है, परन्तु विद्या, धन से भी उत्कृष्ट धन है। जिसके पास यह आभूषण है वह संसार में कहीं भी धोका नही खा सकता। अन्य सभी इसके आगे नतमस्तक हो जाते है। विद्या के कारण ही लोगों की कीर्ति देश देशान्तरों में होती है। इस सरस्वती आभूषण को कोई छीन नहीं सकता, चोर चुरा नही सकता। इसे जितना अधिक प्रयोग करते है इनमें उतनी ही अधिक वृद्धि होती है। यह औरों के अवगुण माप कर देता है। विद्वान के आगे मूर्खो की गुदगुदी बैठ जाती है।

(ii) **पान का श्लेष**—काव्य रस अन्य सभी रसों से अधिक आनन्दित करने वाला है। इसके पान करने से जो आनन्द आता है वह किसी अन्य से नहीं। सभी चूर्ण इसके सामने धूल समान है। इसके सामने स्वर्गानन्द भी तुच्छ है, संसार के सभी सौदे रस हीन जान पड़ते हैं।

(iii) वस्त्र-का श्लेष—(प्रथमा, सं० २०१७)—हमारा सनातन धर्म शास्त्रानुसार सर्वोत्कृष्ट है। इसके ऊपर किसी प्रकार का मिथ्यारोपण पाप है। बड़े-बड़े मतावलम्बी इसका विरोध करने आए परन्तु इसके सामने कोई नहीं ठहर सका। अन्य धर्म ५० प्रतिशत भी इसकी समानता नहीं कर सकते। इससे जो नयन सुख प्राप्ति होती है वह अन्य किसी-धर्म से नहीं होती। अधिक यत्न किये बिना कोई इसका विस्तार नहीं पा सकता।

(iv) **फलों का श्लेष**—यदि हम एक-दूसरे से प्रेम, मित्रता, सहानुभूति तथा समानता का व्यवहार करेंगे तो एक दूसरे के अधिक निकट आ जायेंगे और हमारे घनिष्ट सम्बन्ध होंगे। ऐसा न करने पर हमें हानि उठानी होती है। दूसरे लोग इससे अनुचित लाभ उठाते हैं। यदि भारतवर्ष में ऐसा न होता तो उर्दू शरीफा के स्थान पर संस्कृत का अधिक बोल बाला होता। हमें किशमिश से पाठ लेना चाहिए।

(v) **चौसर का श्लेष**—हमें वेश्याओं की बातों पर कदाचित विश्वास नहीं करना चाहिए। जो इनके जाल में, मीठी-मीठी बातों में फंस जाता है वह जीवन भर पछताता है। बस इनका दाव लगा नहीं कि तुम्हारा जीवन समाप्त हुआ। इस संसार में उसी की विजय होती है जो इनसे दूर रहते हैं। इनका प्रेमजाल अत्यन्त दुखदायी होता है।

प्रश्न १४—पण्डित बालकृष्ण भट्ट का जीवन परिचय दीजिए। उनके "चन्द्रोदय" तथा "आंसू" शीर्षकों का सारांश लिखिए।

(प्रथमा सं० २०१६)

उत्तर—जीवन परिचय—पंडित बालकृष्ण भट्ट का जन्म संवत् १९०१ वि० में आषाढ़ कृष्ण द्वितीया, रविवार को हुआ था। १९७१ वि० में आपका देहान्त हो गया। १२ वर्ष की अवस्था में आपने संस्कृत पढ़ी। माता के आग्रह पर ननिहाल में ही मैट्रिक तक की शिक्षा प्राप्त की। फिर आप प्रयाग के मिशन स्कूल में अध्यापक लगे। विधर्मियों से मतभेद के कारण नौकरी छोड़-कर संस्कृत अध्ययन आरम्भ कर दिया। आप कायस्थ पाठशाला के प्रधान अध्यापक रहे। कालेज बनने पर आप हिन्दी के प्रोफेसर बन गए।

आप "सम्राट्" तथा "शब्द सागर" के सम्पादक बने। आप भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के अनुयायी थे। उनकी लेखन शैली पण्डित प्रतापनारायण मिश्र, राधाचरण गोस्वामी, बालमुकुन्द तथा श्रीधर पाठक जैसी ही थी। स्वभाव भी शील था। इन्होंने कविवचन सुधा में लेख देने आरम्भ किए। इन्होंने

"हिन्दी प्रदीप" का सम्पादन कार्य किया। इसमें इनके अपने मौलिक लेख अधिक होते थे। प्रयाग की प्रान्तीयता ने इनके लेखकों में लचक उत्पन्न करदी। इनकी तेजस्विता, सत्य-प्रियता, निष्पापता, धैर्यशीलता, मधुरभाषिता तथा विनयमय नम्रता हिन्दी प्रदीप में सम्पादित लेखों से टपकती है। इनकी "सौ अनजान और एक सुजान," नूतन ब्रह्मचारी, साहित्य सुमन, शिक्षा दान प्रकाशित हो चुके हैं।

सार—चन्द्रोदय—कृष्ण पक्ष के पश्चात् शुक्ल पक्ष आगा। सूर्य संध्या के समय डूबने जा रहा था और उधर हंसिया (दरांती) के रूप में चन्द्रोदय हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि पश्चिम दिशा कर्कशा के समान दुखी तथा क्रोधित होकर सूर्य की ओर दौड़ रही है और सूर्य भयभीत होकर पाताल में छिपने को जा रहा है। आकाश संध्या समय रक्त हो गया। क्यों? इस्लाम धर्म के अनुयायी इसकी अत्यधिक मान्यता करते हैं। क्यों? सम्भवतः इसी-लिए कि चन्द्रमा रमजान के दिनों में दिन प्रतिदिन क्षीणकाय होने का आदेश देता है और फिर उसके पश्चात् तुम्हारी उत्तरोत्तर बढ़ोत्तरी होगी। इसके अतिरिक्त यह अंधकार को हटाने वाले यन्त्र भी हैं तथा विरहणियों के प्राण कतरने की कैंची भी। यह क्या है? कुछ समझ नहीं आता।

यह अनंग, भुजंग के फन की चमकती हुई मणि भी हो सकती है। अथवा निशा नायिका के चेहरे की मुस्कराहट अथवा संध्या नारी की छाती नखक्षत, अथवा उग्रजेता कामदेव की धन्वा या तारा मोतियों की सीपियों में से एक।

इस प्रकार यह दूज का चांद शनैःशनैः बढ़ता है और पूर्णिमा के दिन पूर्ण चन्द्रमा होता है। इसे देखकर हृदय में अनेकानेक सन्देह होते हैं कि यह क्या है? दिशा अभिसारिका की आरसी अथवा कुण्डल!

चन्द्रमा सीढ़ी दर सीढ़ी चढ़ता है। सभी दिशाओं को चांदनी से ध्वलित करता है, कलियों को खिलाता है। आकाश के महासरोवर में यह खिले हुए कमल के समान प्रतीत होता है। बीच की कालिमा भौरों के समान दिखाई पड़ती है। यह क्या है? अमृत कुण्ड अथवा सफेद गोल पत्थर अथवा संध्या नायिका की खेल करने की गेंद।

सूर्यास्त होने पर जो लालिमा गगन में दिखाई पड़ती है वह ऐसी लगती है जैसे चन्द्र ने दिगंनाओं के साथ फाग में खेलने में अबीर उड़ा रखी हो। यह क्या है? कामदेव का छत्र, काल महागणक का घटी यन्त्र, कामाग्नि को झुलसाने वाली दिनमणि, समयराज के रथ का पहिया, लोगों के नेत्रों को

शीतल करने वाला कुण्ड, मोतीचूर के दानों का लड्डू, लोगों के शुभाशुभ कर्म का लेखा लिखने के लिए बिल्लौर की दवात, काल खिलाड़ी की जेबीघड़ी का डायल या संगमरमर का गोल शिखर है। कुछ समझ में नहीं आता। शिशिर और हेमन्त में हिम से इसकी जो द्युति दब जाती है सो मानो यह तपस्या कर रहा है जिसका फल यह चित्रा के संयोग से शोभित चैत्र के पूनों के दिन पावेगा और इसकी द्युति फिर चमकेगी।

आंसू—हर्ष, शोक, प्रेम, भय इत्यादि समय पर मनुष्य का गड़ा हुआ खजाना "आंसू" ही उन भावों को प्रकट करता है जिन्हें इंद्रियां करने में असमर्थ होती हैं। किसी बिछड़े हुए साथी से यदि हम बहुत दिन पश्चात् मिलें तो प्रेमभाव में हमारा शरीर ढीला, जिह्वा शिथिल हो जाती है और कण्ठ वाष्प गद्‌गद् होकर रुक जाता है। आनन्द की भावना को शब्दों में प्रकट करने से पूर्व ही आंसू गिर पड़ते हैं।

सच्चे भक्त और उपासक की कसौटी भी इससे हो सकती है। उपास्य देव के नाम संकीर्तन में जिसे अश्रुपात न हुआ हो उस दाम्भिक को भक्ति के आभास मात्र से कोई लाभ नहीं।

अश्रुपात भाव गोपन की सब चेष्टाओं को निरर्थक कर देता है। और सरल कोमल चित्तवालों के दुःख सुख के भाव प्रकट हो जाते हैं। इनको गिरने से रोकना अति गम्भीर मनुष्यों की शक्ति से बाहर है। यदि सृष्टिकर्त्ता अश्रुपात नहीं देता तो शोक के वज्रपात सम दारुण दुःख के वेग को कोई सहन नहीं कर सका होता। यही इस समय मनुष्य हृदय को विदीर्ण होने से बचाने का साधन होता है। वीर पुरुष भी युद्धस्थल पर जाते समय अपने गृह-सम्बंधियों के सामने जो एक आंसू बहाता है। यह बहुत अमूल्य होता है और करुणा रसों की उस समय कुश्ती होती है।

आँख चित्तवृत्ति को बहुत शीघ्र पहचानती है। मृतक की कबर पर यदि हज़ारों, लाखों, करोड़ों रुपये लगाकर भी उतनी राहत नहीं पहुंचा सकते जितने कि मित्रों के आँसू।

स्त्रियों को अबला और अधीर कहते है क्योंकि उनके आँसू बहुत शीघ्र ही निकल पड़ते हैं। बात पीछे कहती हैं कि पहले रोना शुरू कर देती हैं। सत्य-शाली धीरज वालों के आंसू कभी नही आते। बड़ी से बड़ी मुसीबत में भी कठिनता से दो चार आंसू एक बड़ी देन होती है। सिकन्दर अपनी मां के आंसू को राज्य से भी अधिक मूल्यवान समझता था। रेणुका के अश्रुपात के कारण

परशुराम ने २१ बार क्षत्रियों का संहार किया। यदि किसी को आँसू न आते हों तो प्याज़ आंख को छुआने से आ जायेंगे।

"किसी को बैंगन बावले किसी को बैंगन पत्थ"।

प्रश्न १५—पण्डित प्रतापनारायण मिश्र का संक्षिप्त जीवन परिचय दीजिए तथा "मनोयोग" शीर्षक का सारांश लिखिए।

उत्तर—जीवन काल—मिश्र जी कानपुर के कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनका जन्म सं० १९१३ में हुआ। इन्होंने संस्कृत की शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् हिन्दी अंग्रेजी की शिक्षा प्राप्त की। उर्दू, फारसी का कुछ अभ्यास किया। कविता करना इन्होंने पं० ललिताप्रसाद से सीखी। संवत् १९४० में ब्राह्मण नाम का पत्र निकाला। १९५१ में इनकी मृत्यु हो गई।

इनकी हास्यमयी कविताएँ बड़ी चुटकीली थीं। गद्य पर इनका अधिकार था। इनकी शैली पंडिताऊ तथा मिश्रित है।

सार—जो कार्य हमारी इच्छानुकूल होते हैं उन्हें हम उत्तमता के साथ करते हैं। यदि हमारा मन किसी कार्य को करने को नही करता, तो वह उत्तम कार्य होते हुए भी निकृष्ट है। हमें अपने मन को सदैव किसी न किसी कार्य में लगाए रखना चाहिए। इसे स्वच्छन्द रखने से हानि अधिक होने की सम्भावना है। क्यों? मन शरीर रूपी नगरी का राजा है और इसका स्वभाव चंचल है। इसलिए हमें यत्नपूर्वक इसे दबाये रखना चाहिए। जिस बात की इच्छा करे उसके विपरीत कार्य करना चाहिए जिससे कि यह स्वेच्छाचारी होने के स्थान पर वशवर्तिता का अभ्यासी हो। यह साधन केवल संन्यासी, महात्माओं के लिए ही ठीक हो सकता है। अन्य पुरुषों के ऐसा करने से उनके शरीर में स्फूर्ति नहीं रह सकती।

हमें चाहिए कि इसे दया रहित और क्लेशित न रहने दें। आवश्यक कार्य समाप्त कर लेने के पश्चात् किसी सद्ग्रंथ के अध्ययन में लगा दें जिसमें सोचे बिना काम न चले जैसे काव्य शास्त्र तथा गर्भित शास्त्र। इस प्रकार का सोच-विचार हमारे शरीर को क्षीण तथा मलिन नहीं करेगा अपितु हृष्ट पुष्ट करने में सहायक होगा। यदि इससे मन उचटने लगे तो किसी बुद्धिमान् की सत्संति करनी चाहिए। इससे हृदय की सन्तुष्टि तथा विचारों की पुष्टि होगी। यदि इससे भी मन उकताए तो प्रकृति के किसी पूर्व कार्य कारणादि की आलोचना करनी चाहिए।

इस प्रकार हृदय को आनन्द की प्राप्ति होगी। जो लोग कहते हैं कि

हमारा किसी कार्य में जी नहीं लगता, वे अपना मन लगाना जानते ही नहीं। उपरोक्त सभी साधन सरलता से उपलब्ध हो सकते हैं। अकबर बादशाह प्रत्येक व्यक्ति की बात ध्यान से इसीलिए सुनता था कि कब किस मनुष्य के मुख से कोई अच्छी बात निकल पड़े। इसी कारण उन्होंने अनुभवशीलता प्राप्त की।

सरलता और साधुता के साथ मनुष्य मात्र को शिक्षा दी जा सकती है। इससे उसके मन को आनन्द तथा प्रसन्नता प्राप्त होती है। यदि हम एक तिनके को ही उठा लें और विचार मग्न हो उसके ऊपर मनन करें तो ज्ञात होगा कि यह कभी किसी वन वाटिका की शोभा रहा होगा। कितने ही साधारण तथा असाधारण व्यक्तियों ने इसे देखा होगा। कितने ही कीट तथा पुरुष रत्नों ने इस पर विहार किया होगा। और आज यह दुःख सहन करता हुआ इस दशा को प्राप्त हुआ है। परन्तु क्या पता कि यह अब भी किसी की आंख में पड़ कर दुखदायी हो अथवा आग में जाकर भस्म हो जावे। ऐसे साधन होते हुए भी यदि कोई पुरुष कोई शिक्षा ग्रहण नहीं करता तो उसे हम बुद्धिहीन ही कहेंगे।

मन को पहिले तो पीड़ित अवश्य करना होता है परन्तु बाद में यही पीड़ा आनन्द में परिवर्तित हो जाती है। विशेष खेद के समय भी बुद्धि हमें अवश्य समझा देगी इस प्रकार के सुख/दुःख आया ही करते हैं। इस प्रकार के विचार उत्पन्न करने के लिए हमें अभ्यास की आवश्यकता हैं। हमें बाधाओं और कठिनाइयों की चिन्ता न करते हुए इस कार्य को करते रहना ही चाहिए। यह अभ्यास असम्भव को सम्भव बना देता है। सत्कर्मों में आने वाली बाधाएँ हमारी परीक्षा होती है।

प्रश्न १६—पण्डित रत्ननाथ दर (सरसार) का जीवन परिचय देकर बेगमों की बोली" शीर्षक का सार दीजिए।

उत्तर—जीवन काल—पण्डित रत्ननाथ दर काश्मीरी ब्राह्मण थे। इनका जन्म लखनऊ में हुआ। बाल्यकाल में ही इनके पिता का देहान्त हो गया। आप अरबी फारसी के विद्वान् थे। उर्दू और अंग्रेजी भी जानते थे। आप असीर के शिष्य थे। १९३४ में अवध अखबार का सम्पादन किया। बाद में एक और अखबार निकाला। १९५४ में हैदराबाद गए और १९६० में इनका वहीं देहान्त हो गया।

इन्होंने उर्दू में नावल (उपन्यास) लिखे। लखनवी भाषा के बहुत माहिर

थे। लखनऊ की उस समय की सामाजिक दशा का जीता-जागता चित्र खींचा फिसाना आजाद में इन्होंने सब तरह के विषयों पर निबन्ध लिखे। फारसी अरबी के अलंकारों का प्रयोग अच्छा किया है। भाषा सरल तथा स्वाभाविक है। दिल्लगी और मजाक के मजामीं अति सुन्दर लिखते थे। "अवध-पंच" के सहायकों में से एक थे। बाद में धीरे-धीरे इससे वैमनस्य हो गया।

बेगमों की बोली—एक दिन की बात है कि हुस्नारा, नाजुक अदा, जानी बहारून्निसा आदि बेगमें बैठी हुई फारसी में बातें कर रही थीं बातों ही बातों में वे हुस्नारा बेगम का मज़ाक उड़ा रही थीं। इन बेगमों को हिन्दी भाषा का ज्ञान नहीं था। नाजुक अदा ने कहा कि हुस्नारा किस भाषा में बोले जो करीमन की समझ में आ जावे और फिर नाजुक अदा बेगम ने हुस्नारा बेगम से यह शर्त लगा ली कि वह हिन्दी की जितनी लाइनें लिखे उसके दुगुने रुपये ले ले। हुस्नारा बेगम ने शर्त पक्की करके "लड़कों को गहना पहनाना' के ऊपर लिखा, जिसका सार है—

लोग लड़कों का गहना इसलिए पहनाते हैं कि लोग उन्हें धनी समझें। कुछ के अनुसार लड़का सुन्दर दीख पड़ता है। निर्धन लोग इसलिए पहनाते हैं कि उनके सम्बन्धी उन्हें कंगाल न कहें। बहुत विद्वानों ने इस रीति को छुड़ाने का प्रयत्न किया परन्तु असफल रहे।

हुस्नारा ने इसकी बुराइयां बताते हुए कहा कि गहने से न लड़का सुन्दर दीख पड़ता है और न ही लोगों के कहने से कंगाल हो सकते हैं और न ही धनी हो सकते हैं। हम जैसे ही हैं वैसे ही रहेंगे। गहना पहनाने से बच्चों की जानें चली जाती हैं। जब उन्हें पहनाते हैं तो उन्हें अति कष्ट होता है। नौकर भी गहनों को उतार कर चम्पत हो जाते हैं।

गहने पहनाने के स्थान पर हमें रुपया बच्चों के लालन पालन पर तथा शिक्षा में लगाना चाहिए। उनके लिए हर प्रकार की आवश्यक वस्तुओं का प्रबन्ध करना चाहिए। अंग्रेज़ों ने अपने बच्चों को कभी गहना नहीं पहनाया। उनकी शिक्षा तथा नौकरी इत्यादि का प्रबन्ध करके उन्हें योग्य बनाया। क्या वे इसमें भूल करते थे? नहीं।

इतना लिखकर हुस्नारा बेगम ने रुपया मांगा परन्तु यह कह कर कि, "कि" शब्द फारसी है, देने से इन्कार कर दिया। फिर भी उन्हें यह मानना पड़ा कि यह शुद्ध हिन्दी है और उर्दू फारसी से भिन्न शुद्ध हिन्दी लिखना सम्भव है।

प्रश्न १७—स्वामी दयानन्द सरस्वती का जीवन परिचय देकर उनके पत्रों का सार दीजिए।

जीवन काल—स्वामी दयानन्द सरस्वती गुजराती ब्राह्मण थे। आप का १८८१ वि० सं० में और मृत्यु सं० १९४० में हुई। आप संस्कृत के ख्याति प्राप्त विद्वान थे। आपने हिन्दी भाषा का प्रचार अत्यधिक किया। इन्होंने आर्य समाज तथा हिन्दी का प्रचार ही अपना लक्ष्य बनाया। इन्होंने अपने सभी ग्रन्थ हिन्दी भाषा में लिखे। हिन्दी की इन्होंने अत्यन्त सेवा की। इनकी हिन्दी खड़ी बोली थी। तत्सम शब्दों की आधिकता है। इन-की भाषा को अन्य पापी होने से मुक्त नहीं कहा जा सकता। कहीं-कहीं गुजराती शब्दों का प्रयोग भी हुआ है। कहते हैं कि आरम्भ में हिन्दी के पण्डितों ने इनकी भापा का संशोधन करके पुस्तकों को छापा और कुछ पुस्तकों पर वैसे ही स्वामी जी का नाम डाल दिया। ये बातें असम्भव नहीं जान पड़ती क्योंकि इतना कार्य अकेले स्वामी जी नहीं कर सकते थे। आपका नाम तब तक अमर रहेगा जब तक आर्य समाज है। इनके पत्र साहित्य की दृष्टि से नहीं लिखे गये थे। इसलिए वाक्यों के परस्पर संबंध तथा अर्थ पूर्ति में शिथिलता दीख पड़ती है।

सार :—यह पत्र शिवप्रसाद जी को उनके प्रश्नोत्तर में स्वामीजी ने लिखा जिसमें उन्हें यह बताया है कि अभी तक आप किसी भी धार्मिक पुस्तक का अर्थ तथा शब्दार्थ नहीं समझ पाये हो। यदि आप स्वयं आते तो समझा सकता। अब आप स्वामी विशुद्धानन्द जी तथा बाल शास्त्री से समझने का प्रयत्न करें। आप ब्राह्मण पुस्तकों का आपस में सम्बन्ध, ब्राह्मण पुस्तकों से क्या २ सिद्धान्त सिद्ध होते हैं इन सिद्धान्तों के न होने से क्या हानियां हैं आदि को समझें तभी आप उन पुस्तकों को समझ सकेंगे।

दूसरा पत्र जीवनदास जी के पत्रोत्तर में लिखा गया है। इसमें स्वामीजी ने आदेश दिया है कि वे पत्र नागरी अथवा अंग्रेजी में लिखा करें। सूद तथा सूद्र शब्दों का अर्थ समझाया है। बाबू नवीन चन्द्रराय के विधवा विवाह में प्रयत्न करने के अभ्यासों की प्रशंसा करके उन्हें यह बताया है कि जिस स्त्री का पुरुष के साथ कभी संयोग न हुआ हो उस कन्या के पुनर्विवाह में कोई दोष नहीं और जिसका पुरुष सम्मिलन हुआ हो उसका नियोग करने में अपराध नहीं। इससे विपरीत करने से शास्त्रानुकुल कष्ट भोगना पड़ता है।

प्रश्न १८—राय देवीप्रसाद जी का जीवन चरित्र दीजिये तथा 'चन्द्र-

कला भानुकुमार" नाटक का सार लिखिये।

उत्तर—जीवनकाल—रायजी का जन्म सं० १६२५ वि० में जबलपुर में हुआ। इनके पिता राय वंशीधर जी की मृत्यु इनकी ४ वर्ष की आयु में हो गई थी। इनकी माता ने इन्हें बी० ए० कराकर बी० एल० कराई। कानपुर में इन्होंने वकालत आरम्भ की। छात्रावस्था से ही इन्हें कविता करने का चाव था। फारसी और संस्कृत की शिक्षा इन्होंने प्राप्त की थी। बी० ए० परीक्षा पास करने के पश्चात् ही इस नाटक का अधिकांश भाग लिख डाला था। सं० १६६१ में यह छपा। प्रतिभाशाली, काव्यानुरागी ने रसिक समाज की स्थापना की। आप साहित्य और संगीतविद्या में प्रवीण थे। उदारता भी थी। कानपुर में इन्होंने वकालत में बड़ी ख्याति प्राप्त की। देश हित के सभी कार्यों में आप हाथ बटाते थे। सनातन धर्म के आप स्तम्भ थे। इनकी वक्ता शक्ति अति ओजस्वनी थी। आप गोरखपुर के प्रान्तीय साहित्य सम्मेलन के सभापति बने। सं० १६७२ में आपका देहान्त हो गया। आप काव्य रीति के आचार्य थे। खड़ी बोली तथा व्रजभाषा मे कविता करते थे। इनके गद्य, पद्य अति आनंद दायक होते थे। पण्डिताऊ भाषा के अनुयायी थे। विदेशी शब्दों को अपनी रचनाओं में न आने देने का भरसक प्रयत्न करते थे। तत्सममयी भाषा इन्हें अधिक रुचिकर थी। इन्होंने काव्य के सभी अंगों को निभाने का प्रयत्न किया है। इनके बहुत से ग्रन्थ अप्रकाशित पड़े हैं। साहित्य हत्या में महत्त्वपूर्ण समालोचनाएं हैं। रामरावण तथा भ्रमोच्छेदन इनकी अन्य पुस्तकें हैं। राम-रावण तो गद्य का एक उत्तम नमूना है।

चन्द्रकला भानुकुमार नाटक का सारांश—कंचनपुर नरेश की एक पुत्री थी जिसका नाम चन्द्रकला था। नरेश चन्द्रकला की शादी अमरावती नरेश महीपाल सिंह से करना चाहता था परन्तु जब चन्द्रकला की आयु सात वर्ष की थी कि कंचनपुर नरेश का देहान्त हो गया।

चन्द्रकला ने भानुकुमार की कीर्ति तथा यश के सम्बन्ध में बहुत कुछ सुन रखा था। उसने अपने हृदय में निश्चय किया था कि यदि मेरी शादी भानुकुमार के साथ हो तो अच्छा है। यह विचारकर उसने भानुकुमार को पत्र लिख दिया।

तीन मास व्यतीत हो गए। चन्द्रकला के स्वयंबर की कोई सूचना भानु-कुमार को नहीं मिली। वसन्त ऋतु में वह प्रेमाग्नि में विह्वल था। वह इस ऋतु को कोस रहा था।

अमरावती नरेश महिपालसिंह की मृत्यु हो गई और उसके पश्चात् उसका भाई दिक्पालसिंह सिंहासनारूढ़ हुआ। वह कुमति, निर्लज्ज, कलिभक्त, पापी क्रूर तथा अविवेक था। उसने कचनपुर नरेश को चिट्ठी लिखी कि महिपाल-सिंह के पश्चात् मैं राज्याधिकारी हूं। अब उसके स्थान पर चन्द्रकला का विवाह मेरे साथ किया जाये अन्यथा मैं चढ़ाई कर दूंगा।

चन्द्रकला दिन प्रतिदिन प्रेम विरह में व्याकुल रहने लगी। एक दिन उसने अपने हृदय का हाल एक नौकरानी को बता दिया। धीरे-धीरे यह बात रानी तथा नरेश तक पहुंची। दोनों इस प्रस्ताव से सहमत हो गये परन्तु नरेश ने दिक्पाल सिंह के पत्र का हाल रानी को बताया। यह बात चन्द्रकला को भी पता लगी। उसने गोल मोल शब्दों में यह बात भानुकुमार को लिख भेजी। रानी तथा नरेश ने दिक्पाल को युद्ध स्वीकार करने का सन्देशा भेज दिया। उधर भानुकुमार को भी सहायता का निमन्त्रण भेजा।

भानुकुमार को चन्द्रकला का पत्र मिला। पत्र को पढ़कर उसने यह निश्चय किया कि वह चन्द्रकला की जीते जी रक्षा करेगा और अपने प्रण को निभाएगा दिक्पाल के व्यभिचार में सदा इन्द्रबलि का हाथ रहता है। परन्तु मैं (भानु-कुमार) सत्यव्रत कुमारी का हाथ छोड़ने को तैयार नहीं। फिर कुछ देर पश्चात् लोकसिंह का पत्र भानुकुमार को मिला। भानुकुमार के क्रोध का पारावार न रहा। उसने अपने सेनापति को बुलाकर युद्ध की तैयारी करने का आदेश दिया।

लोकसिंह को भी इन्द्रबलि पर अति क्रोध आ रहा था। उसने गंगासिंह से कहा कि तुम इन्द्रबलि को पकड़कर लाओ।

महामन्त्री ने उसका पीछा किया और सोचा कि शीघ्र ही उसे पकड़ लिया जायेगा। परन्तु वह झाड़िया फांदता हुआ बहुत दूर निकल गया। उसने दो बाण मारे जिनसे उसकी पीठ घायल हो गई। परन्तु फिर भी उसने हिम्मत न हारी और नदी में कूदकर दिक्पालसिंह की सीमा से बाहर चला गया। यह सारा वृत्तान्त राजा को सुनाया। साथ ही यह भी बताया कि दिक्पालसिंह ने ललकार कर मुझसे कहा है कि लोकसिंह १० दिन के अन्दर अन्दर चन्द्रकला को मेरे पास भेज दे नहीं तो युद्ध के लिए तैयार रहे।

लोकसिंह ने क्रोधित होकर दिक्पालसिंह को पत्र लिखवाया कि वह इन्द्रबलि को हमारी शरण भेजे। वह अपनी धृष्टता की क्षमा याचना करे और धर्म वर्जित हठ का परित्याग करे। ऐसे दुर्बुद्धि राजाके साथ इस कुल

की कन्या का विवाह नहीं किया जायेगा ।

युद्ध की तैयारी का आदेश दिया गया । मालती युद्ध की सूचना चन्द्रकला को देती है । उसने यह भी बताया कि राजा तथा रानी ने विजयनगर के राजकुमार भानुकुमार को तुम्हारे लिए एक योग्य वर बताया है और वे इससे सहमत हैं और भानुकुमार के विचारों से अति प्रभावित हैं । अमरावती पर बड़े कोप से चढ़ाई होगी ।

भानुकुमार की सेना युद्ध स्थल पर पहुंचने को तैयार थी । उसने महाबली, युद्ध विद्या में प्रवीण, राजभक्त और देश हितकारी योद्धाओं को सभी बातों से परिचित कराके यश बढ़ाने का आदेश दिया और अधर्मी दिक्पाल का उत्पात दबाने पर जोर दिया ।

लोकसिंह तथा भानुकुमार की सेना ने दिक्पाल सिंह को हरा दिया । रानी चन्द्रकला का विवाह भानुकुमार के साथ हो गया ।

प्रश्न १६—"साहित्य हत्या" शीर्षक का सारांश अपने शब्दों में दीजिये ।

उत्तर—पूर्णजी द्विवेदी युग के एक प्रसिद्ध साहित्यकार तथा आलोचक हुए हैं । हिन्दी साहित्य में होने वाली गड़बड़ झालाओं को वे नहीं देख सके । व्यास जी की मृत्यु होने पर 'रसिक मित्र' नामक अखबार में उनके संबंध में "वियोग वज्राघात" शीर्षक के अन्तर्गत कुछ लिखा गया । पूर्णजी ने जब उसे पढ़ा तो उनके आश्चर्य का पारावार नहीं रहा । उन्होंने देखा कि इसमें न तो कोई भाव है और न अर्थ । व्याकरण का गड़बड़ झाला है । व्यास जी साहित्य-निपुणता, काव्य-दक्षता, उपदेश परायणता के गुणों से भरपूर थे । इनका कोई उल्लेख इसमे नहीं किया गया । मिथ्या समाध्यक्षों ने, निर्भयता, निर्दयता तथा प्रचंडता से साहित्य का संहार किया ।

पूर्णजी ने कहा कि इस प्रकार के छन्दों को हम साहित्यिक छन्द तो नहीं कह सकते । हाँ रबर छन्द, केंचुआ छन्द, भाड़ छन्द, गड़बड़ छन्द, कनखजूरा छन्द, टिड्डी छन्द, अंख पुड़वा छन्द, आदि का नाम अवश्य दे सकते हैं । निष्प्राण साहित्य में रसिकप्रिय ही प्राण डालेगे । जिस प्रकार व्यापार का नाश करके नगरी उन्नति नहीं पा सकती । उसी प्रकार साहित्य के गले पर अकविता की छुरी का रगड़ना और साहित्य की उन्नति की आशा असम्भव है । बाद में उन्होंने देश की विद्वान् मंडली से प्रार्थनापूर्वक निवेदन किया कि साहित्य को अयोग्य व्यक्तियों के हाथों में न जाने दें ।

प्रश्न २०—राजा शिवप्रसाद का जीवन परिचय देकर "भाषा का

इतिहास" शीर्षक का सारांश दीजिये।

उत्तर—जीवन परिचय—राजा शिवप्रसाद जी का जन्म सं० १८८० वि० में तथा मृत्यु १९५२ वि० में हुई। फोर्ट विलियम की खड़ी बोली लिखने वालों के बाद संवत् १९०१ में इन्होंने गद्य साहित्य लिखना आरम्भ किया। आप लार्ड क्लाइव के समय के इतिहास प्रसिद्ध कलकत्ते के सेठ के पुत्र थे। आपकी शिक्षा अच्छी हुई। इन्होंने पहले रियासतों में ऊँचे-ऊँचे पद पाए। सिक्ख युद्ध में ब्रिटिश सरकार की सहायता की। इन्हें स्कूलों का इन्सपेक्टर बना दिया गया। कुछ दिनों बाद आई० सी० एस० तथा सितारे हिन्द की उपाधि भी आपको दी गई। आप भारतेन्दु के गुरु भी थे।

आपके समय में हिन्दी और उर्दू में बड़ा झगड़ा था। आपने इस बात पर जोर दिया कि भाषा प्रतिदिन की बोल-चाल की हो और लिपि नागरी हो। इस उद्देश्य से इन्होंने मिश्रित हिन्दी लिखनी आरम्भ की। इन्होंने विद्यार्थियों के लाभ हेतु सैंकड़ों पुस्तकें लिखीं। इन्होंने भाषा में फारसी, उर्दू तथा अरबी तुरकी खंडजे बहुत प्रयोग किए हैं। विरोधियों ने संस्कृत शब्दों को भी उसी प्रकार ठूंसा परन्तु उनका प्रयत्न असफल रहा।

सार—आर्यों से पूर्व इस देश में कौन रहते थे, उनकी क्या भाषा थी, इसे कोई नहीं जानता। हाँ इतना अवश्य है कि उनसे पहले संस्कृत भाषा नहीं थी। यह आर्यों के साथ ही हिमालय पार उत्तर कुरुक्षेत्र से आई। यहाँ के निवासी भिन्न-भिन्न प्रान्तों में भिन्न-भिन्न भाषा बोलते थे। आर्य धीरे-धीरे सारे देश में फैल गए और उन्होंने कुछ लोगों को अपना दास बनाया जो शूद्र कहलाते थे। आर्यों ने शूद्रों की स्त्रियों से विवाह आदि करना आरम्भ कर दिया। इससे उनकी भाषा में कुछ व्याकरण सम्बन्धी त्रुटियाँ पाई जाने लगीं। पाणिनि ने व्याकरण लिखी जिसमें आर्यों की भाषा को शुद्ध रूप में लिखने तथा बोले जाने के नियम बताये। ब्राह्मणों ने प्रथम प्रयास मे ही भाषा को सुधारने तथा व्याकरण बद्ध करने में असीम सफलता प्राप्त की।

शूद्रों के लिये यह भाषा आसान नहीं थी। वे शब्दों को बिगाड़-बिगाड़ कर बोलते होंगे। उसी भाषा का नाम प्राकृत पड़ा। प्राकृत, प्रकृत का पर्याय-वाची है हेमचन्द्र ने प्राकृत शब्द को संस्कृत कहा है और जो कुछ संस्कृत से निकले उसे ही प्राकृत कहा जा सकता है। इस प्राकृत भाषा को जन-साधारण प्रयोग में लाते थे। प्रान्तीयता की छाप इस पर होती थी। व्याकरण कुछ बदल सदल करके व्याकरण बद्ध कर देता था। मागधी, अर्धमागधी,

शौर सेनी, महाराष्ट्री, शावरी, आभीरी, पैशाची आदि सभी प्राकृत भाषाएँ हैं। कचहरियों की भाषा संस्कृत थी। बुद्ध ने मागधी भाषा को स्थान दिया और एक बार यह भाषा सरकारी भाषा बन गई। वररुचि ने उसे व्याकरण बद्ध कर दिया। यहां तक कि इन्होंने संस्कृत को प्राकृत भाषा से निकला बता दिया।

आठवीं या नवीं शताब्दी के लगभग शंकराचार्य ने प्राकृत-भाषा के स्थान पर संस्कृत की स्थापना का भरसक प्रयत्न किया परन्तु असफल रहे। फिर भारतवर्ष में मुसलमानों का राज्य हुआ। वे उर्दू तथा फारसी बोलते थे। अब प्राकृत की टक्कर फारसी से हुई। अब लोगों ने प्राकृत को हिन्दी कह कर पुकारना आरम्भ किया। इस समय बहुत से शब्दों में उलट फेर हो गया था। यह बौद्ध की भाषा नहीं रही थी। एक हजार वर्ष के पश्चात् प्रत्येक भाषा बदल जाया करती है। यह सर चार्ल्स का कथन था। मुसलमानी राज्य मे प्राकृत भाषा फारसी के शब्दों से लड गई। फारसी भाषा तथा सस्कृत भाषा बहुत हद तक मिलती है। दोनों भाषाएँ एक ही वृक्ष की दो टहनियों के समान है।

यह फारसी भाषा अरबी भाषा से भरी हुई थी। प्राकृत भाषा ने फारसी के साथ अरबी भाषा को भी स्थान दिया। मुसलमानों ने 'आइन कानून' अरबी भाषा में छापा। परिणाम स्वरूप अरबी भाषा का प्रचार साधारण जनता में होने लगा। इसी अरबमयी प्राकृत भाषा को ही हिन्दी, खड़ी बोली, हिन्दस्तानी, उर्दू, व्रजभाषा जो चाहो कहो यह महमूद गजनवी के आक्रमण से इस देश में प्रचलित हुई।

कन्नौज और मथुरा बहुत प्रसिद्ध नगर थे। कहते है कि यहां संस्कृत भाषा बोली जाती थी परन्तु 'पृथ्वीराज रासो'' के अतिरिक्त कोई अन्य पुस्तक इसके प्रमाण स्वरूप उपलब्ध नही है। चन्द्रबरदाई कांगड़े का निवासी था। जाति का भाट था। रासो की भाषा को हम निश्चित रूप में कन्नौजी, मथुरा की, कांगड़ा या दिल्ली अथवा अजमेर की नहीं कह सकते परन्तु यह सत्य है कि उसमें फारसी शब्दों का मिश्रण काफी मात्रा मे था।

भारत में मुसलमान शासक हिन्दुओं पर राज्य करने लगे। दरबारी भाषा उर्दू हुई। इसी को संसार भर में मान्यता प्राप्त होने लगी। हिन्दुओं ने फारसी को इस प्रकार अपना लिया था कि भाषा के आधार पर हिन्दू और मुसलमान में अन्तर समझना अति कठिन था। हिन्दुओं ने मुसलमानो तथा उनकी भाषा के ही गीत अलापने आरम्भ किए।

सिकन्दर लोदी के समय में कबीर का जन्म हुआ। इन्होने कबीर पन्थियों

का मत चलाया। अकबर के समय में तुलसीदास जी हुए उन्होंने प्रसिद्ध पुस्तक रामायण लिखी जो अद्वितीय है। यह संस्कृत शब्दों से भरी पड़ी है। सूरदास जी ने कृष्ण के पद लिखे। दादू नामक, नाभा आदि भी इसी समय में हुए। हम कह सकते हैं कि हिन्दुओं ने अपनी भाषा को स्थिर रखा परन्तु उसमें उर्दू फारसी के शब्दों का प्रयोग खूब हुआ।

मुसलमानों को हिन्दुओं से दिन प्रतिदिन कार्य पड़ता रहता था। हिन्दुओं की भाषा ठेठ फारसी नहीं थी। अतः फारसी भाषा में अन्तर आना आरम्भ हुआ। खाजा अबुलहसर खुसरो ने हिन्दी मिश्रित गजलें लिखनी आरम्भ कीं। इसी समय जायसी हुए। उन्होंने फारसी मसनवी (बनावटी) ढंग पर पद्मावत की रचना की। अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ के राज्यकाल में शान्ति थी। अब अनेक हिन्दी कवि मैदान में आये। इन्होने अधिकांश कविताएँ प्रेममयी लिखी, परन्तु इनमे हिन्दी के शब्द कुछ खटकते थे। इसलिए उन्होने फारसी और उर्दू के अच्छे लगने वाले शब्द प्रयोग किये। यह दिल्ली की भाषा कहलाने लगी। यह प्रामाणित भाषा भी कहलाई। राजा की बोली, सभी बोलियों में सरताज समझी जाने लगी।

डाक्टर गिलक्रस्ट ने मीरअमन तथा लल्लूलाल जी को ऐसा गद्य लिखने के लिए कहा जिसे जनसाधारण समझ सकें। लल्लूलाल जी ने अपने ग्रन्थ प्रेम सागर से फारसी तथा उर्दू के शब्द उड़ा दिए परन्तु मीर अमन ने हिन्दी के कुछ ही शब्द प्रयोग किए। धीरे-धीरे मुसलमानी राज्य समाप्त होता गया। दिल्ली की भाषा प्रामाणित भाषा न रही।

भारत में अंग्रेजी साम्राज्य हुआ। उन्होने आज्ञा दी कि राज्य कार्य जनसाधारण की भाषा मे किया जाव। कर्मचारी वही रहे। उन्होंने टूटी-टूटी भाषा में जनसाधारण के लिए हिन्दी, उर्दू, फारसी मिश्रित भाषा प्रयोग की। यह कचहरी की भाषा कहलाई।

क्रान्ति के पश्चात् हिन्दी और उर्दू में अत्याधिक मतभेद होता चला गया। हिन्दी विद्वान् पुस्तकों मे संस्कृत शब्दों का अधिक प्रयोग करने में बुद्धिमानी समझते थे तो मौलवी अरबी शब्द। हिन्दुओं ने अपनी भाषा का नाम ब्रजभाषा रखा। परन्तु वह ब्रजभाषा नहीं थी क्योंकि इसमें प्राकृत भाषा के शब्दों का बाहुल्य होता है। भाषा सरल तथा जनसाधारण की होती है। यह भाषा मथुरा के आस-पास ही बोली जाती है। राजा जयसिंह ने इसे अति प्रोत्साहन दिया। परन्तु जब तक कचहरी की भाषा नहीं बदली जाती यह प्रभाव रहित है। सर चार्ल्स लाईम ने कहा था कि कोई भी मरी हुई भाषा दुबारा अपना पुराना रूप कदाचित् प्राप्त नही कर सकती।

अब यह प्रश्न उठता है कि भाषा जनसाधारण की कौन सी होनी

चाहिए। भाषा का व्याकरण किस प्रकार बनाया जाय। निस्सन्देह इस भाषा में उर्दू, फारसी तथा अंग्रेजी के शब्द मिलते रहेंगे। यदि हम इस मिलावट को रोकें तो यह भाषा के साथ अन्याय करना है। जनसाधारण की भाषा वही है जो सब की समझ में आये। कोई कुछ कहे उर्दू, फारसी तथा हिन्दी, परन्तु यह असम्भव है। किसी साहिब ने एक कोष जिसमें शब्दों के अर्थ तथा सम्बन्धित भाषा का नाम तथा ऐसे शब्दों के चिन्ह जिन्हें सभी भाषाओं में प्रयोग किया जाता है लिखने का प्रयत्न किया। परन्तु वह किन्हीं कारणों से नहीं लिख सका।

कुछ भी हो जनसाधारण की भाषा हिन्दुस्तानी हो, जिसमें प्रत्येक भाषा के शब्द आवश्यकतानुसार प्रयोग हों।

प्रमुख अवतरणों की व्याख्या

महाराज गुण ग्राहक हैं। उनकी शूरता और उदारता से प्रसन्न होकर कृपा कर देते हैं। प्रहलाद भक्ति करके उस पद को प्राप्त हुए। हिरण्यकश्यप विरोध करके प्राप्त हुआ। मोक्ष पद के अधिकारी दोनों हुए।

प्रसंग—यह गद्यांश हिन्दी भाषा सार पुस्तक में संकलित "सुरासुर निर्णय" से लिया गया है। इसके लेखक श्री सदासुखलाल हैं। लेखक ने सुर तथा असुर के मोक्ष प्राप्त करने का ढंग बताया है।

उनका कथन है कि देवता भगवान् की आराधना करते हैं और अपनी भक्ति द्वारा उन्हें प्रसन्न करके दर्शन पाते है पिशाच दुष्ट कार्य करके भगवान् को रुष्ट करते हैं। भगवान् उन्हें मारने के लिये स्वयं अवतार लेते हैं और उन्हें मारते हैं। पिशाच उनके पैर पकड़ लेते हैं। भगवान् उन पर दया कर देते हैं और वे मोक्ष को प्राप्त होते हैं। हिरण्यकश्यप ने पिशाच रूप तथा प्रह्लाद ने देवता रूप में मुक्ति पाई।

(२) रे निर्लज्ज, तू अपना सा कुटिल हृदय सब को जानता है। तुझ सा पाखण्डी और कपटी राजा न कोई पृथ्वी पर हुआ, है, न आगे होगा। तूने धर्म के वेप में कपट ऐसे दुराया है मानों गहरे कुएं का मुख घास फूस से ढका है।

प्रसंग—यह गद्यांश राजा लक्ष्मणसिंह द्वारा अनुवादित तथा भाषासार पुस्तक में संकलित "शकुन्तला नाटक" से प्रस्तुत किया गया है।

व्याख्या—जब शकुन्तला राजा दुष्यन्त के पास जाती है और वह उसे अपनी पत्नी होने से इन्कार करता है तो शकुन्तला की क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो जाती है। वह दुष्यन्त को निर्लज्ज, नीच, पाखण्डी उपनाम देकर कहती है कि तेरे जैसा राजा इस भूमि पर आज तक नहीं हुआ न इस समय है और न ही होने की सम्भावना है। तू टट्टी की आड़ में शिकार खेलता है। धर्म के वेष में तूने पाप, छल तथा कपट छिपाए हुए हैं।

(३) मनुष्य निकृष्ट वृद्धि के वश होकर धर्म, प्रकृति और बुद्धि प्रकृति को रोक नहीं मानता, इसी से शास्त्र में बार-बार उसका निषेध किया है, परन्तु धर्म प्रवृत्ति और वुद्धि को मुख्य मान पीछे, उचित रीति से निकृष्ट प्रवृत्ति का आचरण किया तो गृहस्थ के लिए दूषित नहीं हो सकता।

प्रसंग—यह गद्यांश लाला श्रीनिवासदास द्वारा लिखित "परीक्षा गुरु" (भले बुरे की पहिचान) शीर्षक से उद्धृत किया गया है। आपने बताया है कि धर्म, बुद्धि और निकृष्ट वृद्धि में धर्म बुद्धि को ही मान्यता तथा प्राथमिकता दी जानी चाहिए। परन्तु धर्म वृत्ति तथा बुद्धि वृत्ति के पश्चात् भी निकृष्ट बुद्धि का त्याग करना ठीक नहीं है।

व्याख्या—लेखक का कथन है कि साधारणतया यह देखा गया है कि मनुष्य की निकृष्ट प्रवृत्ति इतनी प्रबल होती है कि वह अच्छे तथा बुरे, धर्म तथा अधर्म का भेद नहीं कर सकती। निकृष्ट बुद्धि के आधीन वह धार्मिक तथा बौद्धिक क्रियाएं करता ही नहीं। परन्तु प्रत्येक मनुष्य को इस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि वह बौद्धिक तथा धार्मिक प्रकृति को सम्मुख रख कर गृहस्थ के उपकार के हेतु निकृष्ट प्रवृत्ति का प्रयोग करे। इससे वह हानिकारक नहीं हो सकेगी।

(४) प्रकृति ने चित्त का आंख के साथ कुछ ऐसा सीधा सम्बन्ध रच दिया है कि आंख चित्त वृत्तियों को झट पहचान लेती है और तत्काल तदाकार अपने को प्रकट करने में देर नहीं करती।

प्रसंग—यह गद्यांश श्री बालकृष्ण भट्ट द्वारा लिखित "आंसू" शीर्षक से लिया गया है। भट्ट जी ने आंसुओं की विशेषता बताई है कि जिस भाव को मनुष्य की बुद्धि प्रकट नहीं कर सकती उसे मनुष्य की आंखें आंसुओं के रूप में अतिशीघ्र प्रकट कर देती हैं।

व्याख्या—भट्ट जी ने लिखा है कि भाग्यविधाता ने आँख तथा चित्त का कितना सीधा सम्पर्क रखा है। जहां भी प्रेम, दया, शोक, प्रसन्नता तथा डर आदि भावों को मन स्थिर होन के कारण प्रकट नहीं कर सकता उन भावों को आंख क्षण भर में पहचान कर आंसू टपका देती है। इन आंसुओं का मूल्य अत्याधिक है।

कुछ अन्य आवश्यक सन्दर्भ

साहित्य-प्रवेश

प्रश्न १—भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी के नाटकों पर प्रकाश डालिये और बताइये कि भारतेन्दु ही हिन्दी नाटकों के जन्मदाता हैं।

उत्तर—हम हिन्दी नाटक साहित्य के क्रमिक विकास को देखते हुए यह कह सकते हैं कि भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी हिन्दी नाटकों के जन्मदाता हैं। भारतेन्दु जी ने निम्नलिखित नाटक लिखे हैं—

विद्यासुन्दर, सत्यहरिश्चन्द्र, चन्द्रावली, दुर्लभबन्धु, अंधेर नगरी, भारत जननी, कर्पूरमंजरी, नीलदेवी, पाखण्ड विडम्बन, मुद्राराक्षस, धनंजय विजय, वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, विषस्य विषमौषधम्, भारतदुर्दशा, रत्नावली, सतीप्रताप, प्रेम योगिनी।

(१) विद्या सुन्दर—यह बंगला के नाटक का हिन्दी अनुवाद है। इसमें विद्या और सुन्दर की प्रेम कहानी का वर्णन किया गया है।

(२) सत्य हरिश्चन्द्र—यह लेखक की श्रेष्ठ रचनाओं में से एक है। इसका आधार संस्कृत का 'चण्डकौशिक' नाटक है। इस रचना में मौलिक रचना का सा आनन्द प्राप्त होता है। इस रचना से सत्य पालन की शिक्षा प्राप्त होती है।

(३) चन्द्रावली—यह विप्रलम्भ शृंगार की सुन्दर रचना है। इसमें चन्द्रावली के प्रेम, विवाह और मिलन की कहानी का बड़े ही सुन्दर ढंग से वर्णन है।

(४) दुर्लभबंधु—यह अंग्रेजी के महान् नाटककार शेक्सपीयर कृत नाटक 'मर्चेन्ट आफ वेनिस' का हिन्दी में अनुवाद है।

(५) अंधेर नगरी—यह एक प्रहसन है। इसमें एक मूर्ख राजा के शासन का चित्रण किया गया है।

(६) कर्पूर मंजरी—यह शृंगार और हास्य रस का नाटक है। इसमें एक लम्पटी राजा की कहानी का वर्णन है।

(७) मुद्रा राक्षस—यह संस्कृत नाटक का अनुवाद है। इसमें चाणक्य की नीतिनिपुणता पर प्रकाश पड़ता है।

(८) धनंजय विजय—यद्यपि यह संस्कृत नाटक का अनुवाद है परन्तु फिर भी यह मौलिक रचना ही प्रतीत होती है। यह गद्य-पद्यमय शैली में लिखा गया है।

(९) वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति—यह एक प्रहसन है। इसमें तत्कालीन अत्याचारों का वर्णन किया गया है।

(१०) भारत दुर्दशा—यह हरिश्चन्द्र जी की सर्वश्रेष्ठ नाट्य रचना है। इसमें अंग्रेजी शासन पर व्यंग्य और भारत की दुर्दशा का चित्र खींचा गया है। भाषा ओजपूर्ण है। पात्र प्रतीक-शैली के हैं।

भारतेन्दु जी से पूर्व हिन्दी नाटक साहित्य ना के ही बराबर था। जो थोड़े बहुत नाटक लिखे गये थे, वे रंगमंचीय नहीं थे। सर्वप्रथम भारतेन्दु जी ने ही हिन्दी को इतना विशाल नाटक-साहित्य प्रदान किया। उन्होंने ही सर्वप्रथम अपने नाटकों को अभिनय के योग्य बनाया। इतना ही नहीं उन्होंने अभिनयशालाओं का भी निर्माण किया और एक शिष्टमंडल तैयार किया जिसने उनके इस महान् कार्य को आगे बढ़ाया। इसलिये भारतेन्दु जी को ही हिन्दी नाट्य-साहित्य का जन्मदाता मानना उचित है।

प्रश्न २—सिद्ध कीजिए कि भारतेन्दु जी ने 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक का आधार संस्कृत ग्रंथों को बनाया है।

उत्तर—'सत्य हरिश्चन्द्र' भारतेन्दु जी की उच्च कोटि की रचना है। इसको पढ़ने पर ऐसा प्रतीत होता है कि यह रचना मौलिक है, परन्तु निम्नलिखित प्रमाणों से इसकी अमौलिकता सिद्ध होती है :—

(१) महाकवि क्षेमेश्वर के 'चण्डकौशिक' में सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र के विषय में जो कुछ लिखा गया है, वही 'सत्य हरिश्चन्द्र' में भी लिखा गया है। दोनों के पात्र भी परस्पर मिलते है। दोनों में अन्तर केवल यही है कि 'सत्य हरिश्चन्द्र' का नायक महाराज हरिश्चन्द्र 'चण्डकौशिक' के नायक महाराजा हरिश्चन्द्र की अपेक्षा अधिक उदार तथा दानी है।

(२) 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक की सभी घटनाएं 'शिवपुराण' से भी मिलती हैं।

(३) 'सत्य हरिश्चन्द्र' में वशिष्ठ से कामधेनु छीनने के लिये विश्वामित्र का उनसे युद्ध करना और पराजित होकर ब्रह्मत्व को प्राप्त करने के लिए घोर तपस्या करने की कहानी 'वाल्मीकि रामायण' से ली गई है।

(४) महाभारत के १४१ वें अध्याय में वर्णित विश्वामित्र के द्वारा मास यज्ञ किया जाना और इन्द्र का प्रसन्न होकर वर्षा करने की कहानी 'सत्य-हरिश्चन्द्र' में भी वर्णित है।

(५) विश्वामित्र के आड़ी और वशिष्ठ के वगुले के रूप में वर्णित संघर्ष की घटना 'मार्कण्डेय पुराण' से ली गई है।

(६) परशुराम जी के आविर्भाव की कथा 'कल्कि पुराण' के ८५ वें अध्याय से ली गयी है।

उपर्युक्त प्रमाणों से यह स्पस्ट है कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी की रचना 'सत्य हरिश्चन्द्र' मौलिक न होकर संस्कृत के ग्रथो पर आधारित है।

प्रश्न ३—'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक की कहानी का सार अपने शब्दों में लिखिए।

कथासार—अयोध्या के सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र के सत्यपालन तथा दानशीलता की कहानी समस्त ससार में प्रसिद्ध हो गई। देवेश इन्द्र ने भी उनकी कहानी को सुना। इन्द्र के हृदय में द्वेष और भय उत्पन्न हो गया। एक दिन नारद जी उनके पास आ पहुचे और उन्होंने भी देवराज की आशंका की पुष्टि कर दी। विश्वामित्र ने भी राजा हरिश्चन्द्र को नीचा दिखाने का निश्चय कर लिया। इन्द्र और विश्वामित्र ने मिलकर हरिश्चन्द्र से बदला लेने के लिये कार्य आरम्भ कर दिया। एक रात्रि को स्वप्न में विश्वामित्र ने राजा हरिश्चन्द्र से सारा राज्य दान में ले लिया। अब राजा को इस बात की चिन्ता रहने लगी कि किस प्रकार वह स्वप्न की घटना को पूरा करे। उन्होंने राज-सभा में इस स्वप्न को बताया और यह शपथ ली कि वह उस दिन से राज्य को ब्राह्मण देव (जो स्वप्न में दिखाई दिया था) की अमानत समझेंगे और स्वयं उसके प्रतिनिधि बनकर राज्य कार्य करेंगे।

इसी समय क्रोध में आग-बबूला हुए विश्वामित्र भी राज-सभा से आ पहुंचे। राजा ने उन्हें सम्मुख देख कर पहचान लिया कि यह वही ब्राह्मण है जिसको उन्होंने स्वप्न में अपना राज्य दान दिया था और वे अपना राज-पाट सब कुछ उन्हें दे देते हैं। राज-पाट लेने के पश्चात् दक्षिणा में एक हजार स्वर्ण मुद्रा माँगते हैं। राजा प्रधान मन्त्री को एक हजार मुद्रा देने की आज्ञा देते है, परन्तु महर्षि विश्वामित्र उनसे कहते है कि इस राज्य पर अब तुम्हारा कोई अधिकार नहीं है। इस पर राजा उनसे दक्षिणा देने के लिए एक महीने का समय मांगते है। फिर राजा अपनी स्त्री, पुत्र तथा अपने आपको काशी में वेचकर महर्षि की दक्षिणा देता है।

एक दिन एक विषैला सर्प हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहतास को डस लेता है और उसके प्राण-पखेरू उड़ जाते हैं। उसकी माता शैव्या उसे लेकर श्मशान भूमि में जाती है। उसी श्मशान भूमि में राजा हरिश्चन्द्र डोम की नौकरी करते थे। वे मृतकों को फूंकने से पहले उनसे कर वसूल करते थे। शैव्या पुत्र के मृतक शरीर को अपनी गोदी में रखकर हृदय विदारक विलाप करती है। उसके विलाप को सुनकर राजा समझ जाते है कि यह उन्हीं का पुत्र है। परन्तु वे अपने कर्त्तव्य को नहीं भूलते है और पुत्र का अन्तिम संस्कार करने से पहले वे रानी से कर माँगते है। रानी के पास तो पुत्र का दाह-संस्कार करने के लिए भी पर्याप्त कफन नहीं होता है। इसलिए हरिश्चन्द्र शैव्या को पुत्र का दाह-संस्कार करने से रोक देते है। अन्त में शैव्या अपना वस्त्र फाड़ कर राजा को देने लगती है। इसी समय भगवान् प्रकट हो जाते है और वे रोहतास को जीवित कर देते हैं। राजा अपनी परीक्षा में सफल होते है और भगवान प्रसन्न होकर उनका राज्य भी उन्हें लौटा देना चाहते हैं और विश्वामित्र राजा से क्षमा-याचना करते है, परन्तु राजा भगवान् से प्रार्थना करते है कि उनकी प्रजा उनके साथ स्वर्ग को जाये।

प्रश्न ४—नाटकीय तत्त्वों के आधार पर 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक की आलोचना कीजिये। **(प्रथमा स० २०१६)**

उत्तर—नाटक के निम्नलिखित तत्त्व होते हैं :—

(१) कथावस्तु, (२) कथोपकथन, (३) पात्र चरित्र चित्रण, (४) देश-काल और वातावरण, (५) अभिनय, (६) भाषा तथा शैली, (७) उद्देश्य।

कथावस्तु—'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक की कथा बहुत प्राचीन है। परन्तु इसकी भावना नित-नवीन तथा युग के लिये स्फूर्तिदायक है। कथा का आधार पुराण हैं। प्रथम अंक में नाटककार ने राजा हरिश्चन्द्र के सत्य की प्रतिष्ठा इतनी अधिक बढ़ा दी है कि वह धीरे-धीरे सुरलोक तक पहुंच जाती है। द्वितीय अंक में राजा स्वप्न में अपना सर्वस्व ब्राह्मण को दे देते हैं। स्वप्न के द्वारा कथा को चरमावस्था तक पहुंचाने में राजा के सत्य की दृढ़ता और भी अधिक हो जाती है। तृतीय अंक में गंगा आदि तथा राजा के द्वारा अपने आपको अपनी स्त्री तथा पुत्र को बेचने का वर्णन है। चतुर्थ अंक में समस्त नाटक का प्राण है। कथा में क्रमिक विकास तथा प्रवाह है। घटनाओं का विकास मनोवैज्ञानिक है।

कथोपकथन—संवाद लम्बे हैं, परन्तु फिर भी विषय की विशदता के आधार पर वे गतिशील हैं। संवाद प्रभावशाली हैं। स्वगत कथनों की भरमार है, यह इस नाटक का सबसे बड़ा दोष है। कहीं-कहीं पर तो संवाद बहुत ही लम्बे हो गये हैं इसलिए इस तत्व की दृष्टि से यह नाटक असफल है।

पात्र-चरित्र चित्रण—राजा हरिश्चन्द्र, रानी शैव्या, इन्द्र तथा विश्वामित्र इस नाटक के प्रमुख पात्र हैं। इनका चरित्र-चित्रण बहुत सुन्दर हुआ है। कथोपकथनों के द्वारा पात्रों के चरित्र का विकास हुआ है। पात्रों की भरमार भी नहीं है। नाटककार ने पात्रों के चरित्र-चित्रण में मनोवैज्ञानिक प्रणाली का आश्रय लिया है। लेखक को पात्रों के चरित्र-चित्रण में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

देशकाल तथा वातावरण—'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक में तत्कालीन देश-काल तथा वातावरण के चित्रण के साथ साथ आधुनिक युग की पुकार भी सुनाई पड़ती है।

भाषा तथा शैली—शैली पात्रों के उपयुक्त तथा अनुकूल है। दर्शकों को पात्रों के कथोपकथनों तथा हावभावों की शैली में कृत्रिमता दृष्टिगोचर नहीं होती है। भाषा सरल है।

अभिनय—'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक सर्वप्रिय है। इसका भारतवर्ष के कोने-कोने में प्राचीनकाल से अभिनय होता चला आ रहा है, परन्तु संवादों के लम्बे होने तथा स्वगत कथोपकथनों के कारण दर्शकगण कुछ उकता जाते हैं। स्वयं नाटककार ने इसका अनेक बार अभिनय किया था।

रस—इस नाटक का प्रमुख रस करुण है। इसमें वीर तथा भयानक रस का भी परिपाक बहुत ही प्रभावपूर्ण बन पड़ा है। हास्य रस का पूर्ण अभाव है।

उद्देश्य—इस नाटक में नाटककार का उद्देश्य राजा हरिश्चन्द्र की सत्य-वादिता तथा दानशीलता पर प्रकाश डालना है। लेखक को अपने इस उद्देश्य में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

उपर्युक्त नाटकीय तत्वों का विवेचन करने के पश्चात् हम कह सकते हैं कि 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक इस दृष्टि से एक सफल रचना है।

प्रश्न ५—निम्नलिखित पात्रों का चरित्र चित्रण कीजिये :—

राजा हरिश्चन्द्र, इन्द्र, विश्वामित्र, रानी शैव्या।

अथवा

नाटक के प्रधान पात्रों का चरित्र चित्रण कीजिए। (प्रथमा, २०१७)

राजा हरिश्चन्द्र (प्रथमा, सं० २०१५)

उत्तर—राजा हरिश्चन्द्र 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक के नायक (प्रमुख पात्र) हैं। वे सत्यवादिता, दानशीलता, विनम्रता, सहनशीलता कर्त्तव्यपरायणता आदि गुणों के कारण विश्व-विख्यात हैं।

नायक—राजा हरिश्चन्द्र 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक के धीरोदात्त नायक है। उनमें धीरोदात्त नायक के सभी गुण हैं। आरम्भ से लेकर अन्त तक वे कथा के साथ चलते हैं। सभी घटनाएं उनसे सम्बन्धित हैं। फलप्राप्ति भी उन्हीं को होती है।

सत्यवादी तथा दानशील-स्वप्न में दिये गये दान को भी यथार्थ रूप देना उनकी सत्यवादिता तथा दानशीलता का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। स्त्री, पुत्र तथा स्वयं को बेचकर विश्वामित्र को दक्षिणा देना उनकी दानशीलता को बहुत ऊंचा उठाता है।

कर्त्तव्यपरायण—श्मशान-भूमि में पुत्र का भी कफन-कर दिए विना दाह-संस्कार न होने देना उनकी कर्त्तव्यपरायणता तथा स्वामी-भक्ति पर प्रकाश डालते हैं। संसार में अन्यत्र ऐसा कर्त्तव्यपरायणता का उदाहरण मिलना बहुत कठिन ही नहीं बल्कि असम्भव ही है।

सहनशील—सहनशीलता ही ऐसा गुण है जो कि राजा हरिश्चन्द्र के अन्य गुणों की रक्षा करता है। पुत्र के मृतक शरीर को श्मशान-भूमि में पड़ा देख कर और पत्नी के फूट-फूट कर रोने पर भी वे उस वज्रपात को चुपचाप सहन कर लेते हैं और अपने कर्त्तव्य पथ से भ्रष्ट नहीं होते हैं। महर्षि विश्वामित्र जब क्रोध में आग-बबूला होकर उनके दरबार मे आते हैं, तब भी वे चुपचाप रहकर अपनी सहनशीलता का परिचय देते हैं। इस प्रकार घोर कष्टों को भी हंसकर सहन कर लेते हैं।

प्रजा हितैषी—राजा हरिश्चन्द्र अपनी प्रजा को भी पुत्रवत् समझते हैं। नाटक के अन्त में राजा भगवान् विष्णु से यही प्रार्थना करते हैं कि मुझे और मेरी प्रजा को आप अपनी शरण में ले लीजिए।

आदर्श-चरित्र—राजा हरिश्चन्द्र का चरित्र एक महान् तथा आदर्श चरित्र है। राजा हरिश्चन्द्र के चरित्र से महात्मा गांधी ने भी सत्यवादिता की शिक्षा ग्रहण की जिसके कारण वे इतने बड़े महापुरुष बन गये कि समस्त विश्व के वन्दनीय हो गये।

इन्द्र

(प्रथमा, सं २०१४)

देवराज इन्द्र इस नाटक में प्रतिनायक है। वह द्वेष की साक्षात् मूर्ति है। वह वाक्यपटु तथा चापलूस हैं।

प्रतिनायक—इन्द्र 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक का प्रतिनायक है। वह राजा हरिश्चन्द्र (नायक) का विरोधी है। उसमें प्रतिनायक के अवगुण विद्यमान हैं। वह राजा हरिश्चन्द्र की ख्याति को सुनकर भयभीत हो जाता है और उसके सत्य व्रत को डिगाने के लिए महर्षि विश्वामित्र के साथ मिलकर षड्यन्त्र रचता है। वह दूसरे के कन्धे पर बन्दूक चलाने वाला है। हरिश्चन्द्र को कर्त्तव्य-भ्रष्ट करने के लिए वह विश्वामित्र को उकसाकर उन्हीं से सब कार्य कराता है।

द्वेष-भाव से पूर्ण :—इन्द्र के चरित्र में सबसे बड़ा अवगुण उसका द्वेष-भाव से पूर्ण होना है। जब वह राजा हरिश्चन्द्र की सत्यवादिता, दानशीलता, कर्त्तव्यपरायणता की ख्याति सुनता है, तो द्वेष भर जाता है। उसके हृदय में अनेक आशंकाएं उत्पन्न हो जाती हैं। वह विश्वामित्र को हरिश्चन्द्र के प्रतिकूल पाकर उसे और अधिक उकसाता है। इतना ही नहीं, नारद से तो वह यहाँ तक पूछता है, "यदि हरिश्चन्द्र इतने बड़े दानी हैं, तो क्या उसकी लक्ष्मी स्थिर रहती है ?"

चापलूस एवं वाक्पटु—महर्षि विश्वामित्र को राजा हरिश्चन्द्र के प्रतिकूल पाकर इन्द्र उसकी चापलूसी करता है। चापलूसी करते हुए वह कहता है :—

"भला सत्य धर्म पालन करना क्या हँसी-खेल है। यह आप जैसा महात्माओं का ही काम है, जिन्होंने अपना घर-बार छोड़ दिया है।"

स्वार्थी एवं अवसरवादी—पहले तो इन्द्र राजा हरिश्चन्द्र को गिराने, उनको नीचा दिखाने तथा कर्त्तव्य-पथ-भ्रष्ट करने का पूर्ण प्रयत्न करता है, परन्तु जब उसे अपने इस दुष्कर्म में सफलता नहीं मिलती है, तो वह राजा हरिश्चन्द्र से कहता है, "यह सभी कुछ तो आपकी कीर्ति को अचल रखने के लिए ही किया गया है।"

विश्वामित्र (प्रथमा, सं० २०१५)

विश्वामित्र 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक के एक प्रमुख पात्र हैं। यद्यपि वे प्रतिनायक नहीं है, परन्तु फिर भी उनके सभी कार्य प्रतिनायक होने के कारण वे प्रतिनायक ही प्रतीत होते हैं। उनकी गति तो इस कहावत से मेल खाती है "मान न मान मैं तेरा महमान।" यह तो ठीक है ही कि महाविद्याओं को छुड़ा लेने में विश्वामित्र का वैर स्वाभाविक ही था, परन्तु जिस रूप में वे उसे निभाने का प्रयत्न करते हैं, उसमें ब्राह्म तथा क्षात्र तेज दोनों को धव्वा लगता है। उदारता तो उनमें नाम मात्र को भी नहीं है। अवसर पाकर बात का बतंगड़ बनाने में बड़े ही सिद्धहस्त हैं। विश्वामित्र राजा हरिश्चन्द्र द्वारा दी गई आधी दक्षिणा को स्वीकार नहीं करते है और उन्हें दास बनाने के लिए विवश करते हैं और तक्षक के द्वारा रोहतास को डसवाते हैं। उनके इन सभी दुष्कर्मो में यह जानते हुए भी कि राजा

हरिश्चन्द्र की अन्त में विजय होगी, उनकी परीक्षा लेने के लिए चले जाते हैं। यही उनकी हठधर्मी है। इस नाटक में विश्वामित्र के मिथ्याभिमान का सुन्दर चित्रण किया गया है।

रानी शैव्या (प्रथमा, सं० २०१४)

रानी शैव्या राजा हरिश्चन्द्र की पत्नी तथा नाटक की नायिका है। वह भी अपने पति के समान सत्य धर्म का पालन करती है। शैव्या भारतीय नारी का एक महान् आदर्श है। पति के साथ कष्टों में कूदने में वह तनिक भी पीछे नहीं हटती है। पति के द्वारा विश्वामित्र को दक्षिणा देने के लिए किए गये वायदे को पूर्ण करने के लिए वह प्रसन्नतापूर्वक अपने आपको बेचने के लिए तैयार हो जाती है। वह अपने पतिव्रत धर्म के पालन का निर्वाह करती हुई कहती है :—

"तुम दास होगे, तो मै स्वाधीन रहकर क्या करूँगी। स्त्री को अर्धांगिनी भी कहते हैं। इससे पहले बांया अंग बेच दो, तब दांया बेचो।"

कितनी महान् कर्त्तव्यपरायणता है शैव्या के चरित्र में ! जब वह अपने पुत्र के मृतक देह को श्मसान भूमि में ले जाती है, तो थोड़ी देर के लिए तो पुत्र-प्रेम में पागल होकर वह पति को भी कर्त्तव्य पथ से विचलित करने का प्रयत्न करती है, परन्तु पति के कहने पर वह संभल जाती है और आधा कफन फाड़ कर दे देती है और इस प्रकार अपने कर्त्तव्य का पालन करती है।

वास्तव में शैव्या का चरित्र एक सच्ची वीर पत्नी, पुत्री और माता का चरित्र है।

कहानी

प्रश्न ६—मुंशी प्रेमचन्द द्वारा लिखित 'आत्माराम' कहानी का सार स्पष्ट करते हुये उसका आलोचनात्मक परिचय दीजिये। प्रथमा, सं(२०१४, २०१७)

कथासार—'आत्माराम' कहानी के नायक स्वर्णकार महादेव का सपूर्ण जीवन अशांतिपूर्ण था। यदि उसको कुछ शान्ति मिलती थी तो केवल उसके पालतू तोते के द्वारा ही मिल पाती थी। उसके एकमात्र आनन्द का कारण 'सन्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता' मन्त्र का जाप था। उसे तोते से विशेष प्रेम

था। एक दिन किसी व्यक्ति ने पिंजड़े का द्वार खोल दिया जिसके कारण वह तोता उड गया तथा अत्यन्त ऊँचाई पर जा वैठा। जब महादेव को पता चला तो वह अधीर हो उठा और पिंजडा लेकर तोते को पकड़ने को भागा किन्तु सब प्रयत्न व्यर्थ रहे। शरारती बच्चों ने वहां से भी तोते को भगा दिया। तत्पश्चात् वह तोता गाँव के बाहर एक पेड पर जा बैठा। वहाँ भी महादेव ने उसका पीछा किया, परन्तु वहाँ से भी लोगों ने तोते को उड़ा दिया। अब तोते ने एक बाग में आश्रय लिया। महादेव को तोते से विशेष प्रेम था। अतः वह नगे पांव ही जलती रेती को पारकर वहां भी जा पहुंचा।

वहां भी महादेव तोते को पकड़ने के लिए भरसक प्रयत्न करता रहा और इसी तत्परता में दिवस का भी अवसान हो गया। महादेव को अब चिन्ता थी तो केवल उस तोते की। महादेव जमीन पर खड़ा उस तोते की ओर एक टक देख रहा था। निद्रा के आ जाने पर भी बार बार वह उस मंत्र का जाप कर तोते को पाने की चिन्ता मे था। इसी प्रयत्न में अर्ध रात्रि व्यतीत हो चुकी थी। सहसा महादेव को कुछ ध्वनि सुनाई पड़ी जिसे सुनकर वह चौंक उठा और एक वृक्ष के नीचे मंद-मंद गति से टिमटिमाते दीपक के प्रकाश मे कुछ चोरों को देखा जो कि बैठे-बैठे हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे। हुक्का देखकर वह भी कुछ धूम्रपान करने के लिए उनकी ओर दौड़ा। उसको आता हुआ देख कर चोर भाग खड़े हुए। महादेव ने उन्हें रोकने के लिए कई आवाजें दीं, परन्तु चोर दीपक के मंद प्रकाश में एक अशरफियों से भरा कलश छोड़ कर नौ-दो ग्यारह हो गये।

अब महादेव को अमूल्य निधि की प्राप्ति हो गई। किन्तु उसे चारों ओर से चिन्ताओं ने आ घेरा कि कहीं चोर उस एकांत में आकर उससे धनराशि को छीन न लें। अतः वह तेजी से घर की ओर भागा और उसकी कल्पना अब ऊँची-ऊँची उड़ान भरने लगी।

दूसरे दिन तोता स्वयं ही पिंजरे में आ बैठा। महादेव ने इसे भगवान् की कृपा माना। अपनी अमूल्य निधि तोते को पाकर वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ। और वह उसे अब 'आत्माराम' के नाम से पुकारने लगा।

महादेव ने घर आकर सम्पूर्ण धन को छुपा दिया। पुजारी जी से सत्य-

नारायण की कथा कराई और सारे गांव को भोजन के लिए निमन्त्रण दिया। महादेव ने ऊँचे स्वर में घोषणा की कि मुझ पर जिसका भी कर्जा आदि हो आकर ले जायें। केवल पंडित जी ने अपने ५० रु० बताये, बाकी सब मौन रहे। फिर भी एक मास तक महादेव ने लोगों की प्रतीक्षा की।

अब महादेव के जीवन में बिल्कुल परिवर्तन आ गया। उसे चोरों का भय रहने लगा। चारों ओर उसका सुयश फैल गया। गाँव के मन्दिर में आज भी वह कलश दिखाई देता है और आज भी महादेव तथा तोते के विषय में अनेक मत प्रचलित हैं।

आलोचनात्मक परिचय—मुन्शी प्रेमचन्द की 'आत्माराम' कहानी एक श्रेष्ठ कृति है। यह कहानी मानव जीवन का स्पष्ट चित्र प्रस्तुत करती है। चारों ओर की अशांतियों से परेशान महादेव तोते से ही शान्ति प्राप्त करता है। जब वह तोता उड़ जाता है तो वह उसे पकड़ने के लिए अनेक प्रयत्न करता है। इसी समय उसे एक धन राशि की प्राप्ति होती है। अन्त में तोता भी आ जाता है।

इस कहानी की भाषा सरल तथा प्रवाहपूर्ण है। इसका कथोपकथन अति सुन्दर है। भाषा की सरलता तथा स्वाभाविकता इसके विशेष गुण हैं। प्रेमचन्द ने एक व्यक्ति के जीवन को बड़ी सुगमता के साथ परिवर्तित किया है।

प्रश्न ७—श्री विश्वम्भर नाथ कौशिक की 'साहित्य सेवा' कहानी का भाव स्पष्ट करते हुए उसका आलोचनात्मक परिचय दीजिये।

(प्रथमा, संवत् २०१५, २०१६)

उत्तर कथासार—पं० शारदाप्रसाद त्रिपाठी हिन्दी, संस्कृत तथा बंगला के प्रगाढ़ पंडित थे किन्तु आंगल भाषा में उनका ज्ञान शून्य था। इसी कारण उनकी जीविका का प्रश्न जटिल बना हुआ था। त्रिपाठी जी ने अनेक नाटक लिखे किन्तु दुर्भाग्यवश वे प्रकाशन में नहीं आ सके फिर भी एक और नाटक लिख कर प्रकाशक के पास भेजा। प्रकाशक इस नाटक को इस शर्त पर छापने के लिए तैयार हुए कि त्रिपाठी जी उसका कुछ भी पैसा न लें। त्रिपाठी जी ने इसे अस्वीकार किया और भविष्य में साहित्य-सेवा का विचार ही त्याग

दिया। त्रिपाठी जी दिन पर दिन निर्धन होते गये और उनकी पैतृक सम्पत्ति भी घट कर नहीं के बराबर हो गयी।

त्रिपाठी जी की पत्नी बड़ी धैर्यवान् थी। वह पति-देव की परेशानियों को अच्छी तरह समझती थी और सदैव उन्हें प्रोत्साहन दिया करती थी। त्रिपाठी जी जब संध्या समय प्रकाशकों पर क्रोधित होकर वापिस लौटे तो उनकी पत्नी ने उनकी 'साहित्य-सेवा' के त्यागने का कारण पूछा। त्रिपाठी जी ने उत्तर देते हुए कहा कि मैं ऐसी साहित्य सेवा को व्यर्थ समझता हूं। पत्नी ने एक नाटक और लिखने का आग्रह किया। त्रिपाठी जी इस शर्त पर तैयार हो गये कि वह अन्तिम नाटक मैं तुम्हारे लिये लिख सकता हूं, 'साहित्य-सेवा' के लिये नहीं। मैं इस नाटक को प्रकाशित नहीं कराऊंगा।

त्रिपाठी जी ने एक महीने के परिश्रम करने के उपरान्त वह नाटक पूर्ण किया। लक्ष्मी जो कि उनकी पत्नी थी, उसने फिर अनुनय-विनय की कि वह इस नाटक को शहर में आई हुई नाटक कम्पनी के पास ले जायें। मैनेजर ने इस शर्त पर नाटक को ले लिया कि यदि उसका अभिनय सफल हो गया तो वे इसके बदले में ५०० रु० की राशि दे देंगे।

नाटक का अभिनय भी आरम्भ हो गया। असंख्य दर्शक वहाँ एकत्रित थे त्रिपाठी जी भी एकाग्रचित्त होकर अभिनय देख रहे थे। पहला दृश्य समाप्त हुआ। जनता ने उसे पसन्द नहीं किया। त्रिपाठी जी के धैर्य का बांध टूट गया और वे वापिस घर लौट आये। किन्तु लक्ष्मी को अभी भी भरोसा था! कुछ समय के बाद त्रिपाठी जी को एक पत्र मिला कि अंतिम दो अकों को जनता ने बहुत पसन्द किया है। अतः वह ५०० रु० ले जाइये तथा १०० रु० महीने के लगभग हमसे और लेकर हमारी कंपनी के स्थायी नाटककार बन जाइये। त्रिपाठी जी को अत्यन्त हर्ष हुआ और इस पारितोषिक का श्रेय लक्ष्मी को ही दिया।

आलोचनात्मक परिचय—श्री कौशिक जी की 'साहित्य सेवा' कहानी एक साहित्यकार के जीवन को पूर्णतया प्रकाशित करती है। अनेक भारतीय भाषाओं के प्रगाढ़ पंडित होने पर भी त्रिपाठी जी को जीविका के लिये भटकना पड़ता है। इस कहानी में "कौशिक" का आदर्शवाद झलकता है। सेवा का फल अवश्य मिलता है, यही इस कहानी के द्वारा पता चलता है।

लक्ष्मी धैर्य की मूर्ति तथा प्रेरक स्रोत के रूप में हमारे सामने आ उपस्थित होती है।

प्रश्न ८—'हार की जीत' कहानी का सार स्पष्ट करते हुए उसके आलोचनात्मक अध्ययन पर प्रकाश डालिये। (प्रथमा, सं० २०१५, २०१७)

उत्तर—बाबा भारती ने एक घोड़ा पाल रखा था, जिसका नाम सुल्तान था। वह उसे बड़ा प्यार करते थे। भजन के अतिरिक्त जो समय मिलता था वह घोड़े के साथ बीतता था। इस घोड़े के साथ का घोड़ा इलाके भर में न था। सुल्तान घोड़ा चारों ओर प्रसिद्ध हो चुका था। खड्गसिंह इलाके का प्रसिद्ध डाकू था। जब उसने सुल्तान का नाम सुना तो वह भी उसे देखने के लिये अधीर हो उठा। दोपहर के समय वह बाबा भारती के पास पहुंचा और घोड़े को देखने की इच्छा प्रगट की। बाबा ने अस्तबल में ले जाकर खड्गसिंह को घोड़े के दर्शन कराये। फिर खड्गसिंह ने बाबा से कहा कि यदि घोड़े की चाल न देखी तो क्या देखी। बाबा ने घोड़े की तेज़ चाल भी दिखा दी। खड्गसिंह यह देख कर स्तब्ध रह गया और कहा कि बाबा जी में इस घोड़े को यहाँ न छोड़ूंगा।

समय बीतता गया और बाबा जी के मन से घोड़े का भय भी निकल गया। एक दिन बाबा जी सन्ध्या समय घोड़े पर घूमने जा रहे थे कि किसी अपाहिज ने कराहते हुए कहा—ओ बाबा मैं चलने में असमर्थ हूं, मुझे वैद्य जी के पास पहुंचा दो। बाबा भारती को दया आ गई और उस अपाहिज को घोड़े पर चढ़ा लिया तथा स्वयं पैदल लगाम पकड़कर चलने लगे। कुछ ही देर में वह अपाहिज घोड़े को लेकर भाग गया। बाबा जी ने देखा कि वही व्यक्ति घोड़े पर तनकर बैठा है। बाबा जी ने कहा कि खड्गसिंह ज़रा रुक तो जाओ। खड्गसिंह रुक गया। बाबा ने कहा कि देखना किसी दूसरे व्यक्ति से यह घटना न कहना, नहीं तो अपाहिजों की कोई मदद भी नहीं करेगा। खड्गसिंह के मन में बार-बार ये शब्द गूंज रहे थे। उसने सोचा कि बाबा जी तो साक्षात् देवता हैं।

रात्रि के अन्तिम पहर बाबा जी ने स्नान से निवृत्त होकर अस्तबल की ओर पदार्पण किया। अपने मालिक के आने की आवाज सुनकर घोड़ा हिन-

हिनाने लगा। वावा भारती अपने घोड़े को पाकर फूट-फूट कर रोने लगे, किन्तु कुछ समय उपरान्त वावा जी प्रसन्न-चित्त वापिस लौटे।

आलोचनात्मक अध्ययन—'हार की जीत' नामक कहानी श्री सुदर्शन जी की श्रेष्ठ कहानियों में से एक है। इस कहानी में श्री सुदर्शन जी ने त्याग की ओर संकेत दिया है। इस कहानी में रोचकता और कौतूहल स्वतः बढ़ता जाता है। इस कहानी के द्वारा लेखक ने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि अच्छे चरित्र का प्रभाव अवश्य पड़ता है और यह ठीक भी है। इसी कहानी में आगे आने वाली घटना का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। इसका अनुमान किसी को न था कि खडगसिंह फिर से उस घोड़े को वाँध जायगा। श्री सुदर्शन जी की इन्हीं घटनाओं को पाठक जब देखता है तो उसे अचम्भा होता है। कहानी की सबसे बड़ी विशेषता उसकी कौतूहलता है।

प्रश्न ६—'काकी' शीर्षक कहानी का सार तथा उसका आलोचनात्मक परिचय दीजिये। (प्रथमा, सं० २०१४, २०१६)

उत्तर कथासार—दिवस के आरम्भ होने पर जब श्यामू सोकर उठा तो क्या देखता है कि 'काकी' लम्बे पैर किये एक चादर ओढ़े पृथ्वी पर सो रही है। घर में अपार भीड़ थी। सभी रो रहे थे। लोग जब उमा को श्मशान भूमि ले जाने लगे तो श्यामू रो पड़ा और उसने उमा के ऊपर गिर कर पछाड़ खाई और कहा कि आप मेरी काकी को क्यों ले जा रहे हैं? मैं यह न होने दूंगा।

एक दासी ने श्यामू को रोका। लोगों ने उसे बताया कि उसकी काकी मामा के घर गयी है किन्तु साथियों ने श्यामू को बता दिया कि उसकी काकी राम के यहाँ पहुंच चुकी है। काकी के विदा हो जाने के कारण वह अत्यन्त दुःखी था।

एक बार आकाश में पतंग को उड़ता देखकर श्यामू ने विश्वेश्वर से कहा कि मुझे एक पतंग मंगा दो। वह पतंग के मंगा देने का झूठा वायदा कर दुःखित मन से घर से बाहर चले गये। श्यामू की इच्छा ने और भी बल पकड़ा वह अपने आपको वश में न रख सका। उसने काका की जेब से एक चवन्नी निकाली और अपने साथी भोला से चुपचाप पतंग ले आने को कह।।

पतंग मंगा ली गयी। एक अंधेरे घर में डोर बांधी जा रही थी। श्यामू ने भोला को बताया कि काकी पतंग के सहारे राम के घर से नीचे उतर आयेगी। श्यामू अशिक्षित था इसलिए वह काकी का नाम न लिख सका। इसी समय भोला के मन में विचार आया कि यह डोर पतली है अतः 'काकी' के बोझ से टूट जायेगी। अब मोटी रस्सी के लिये काका की जेब से एक रुपया और निकाला गया। पतंग में उसी स्थान पर मोटी रस्सी बाँधी जा रही थी। इसी समय विश्वेश्वर जी ने वहां पदार्पण किया और श्यामू से पूछा—'तुमने मेरे कोट से कुछ निकाला है?' भोला का साहस टूट गया और उसने अपराध भी स्वीकार कर लिया। विश्वेश्वर ने श्यामू को बहुत पीटा और पतंग फाड़ डाली। फिर रस्सियों की ओर देखकर कहा कि ये किसने मंगाई हैं। भोला ने बता दिया कि ये श्यामू ने काकी को बुलाने के लिए मंगाई हैं।

विश्वेश्वर यह सुन कर आश्चर्यान्वित रह गया। उसने फटी पतंग उठा कर देखा जिस पर लिखा था 'काकी'।

आलोचनात्मक परिचय—'काकी' कहानी सियाराम शरणगुप्त की श्रेष्ठ कहानियों में से एक है। कथानक के संक्षिप्त होने पर भी कहानिकार ने बड़े सुन्दर ढग से प्रकट किया है कि जब किसी छोटे बच्चे की मां परलोक वासी हो जाती है तो वह किस प्रकार उसे पाने के लिए लालायित रहता है इसका ठीक वैसा ही चित्र हम इस कहानी में मिलता है। सखा भोला तथा पिता का चित्र भी साकार है। कहानी मर्मस्पर्शी तथा सदैव के लिये प्रभाव डालने वाली है।

प्रश्न १०—'प्रायश्चित्त' शीर्षक कहानी का सार तथा आलोचनात्मक परिचय दीजिए। (प्रथमा, संवत् २०१५)

उत्तर—रामू की बहू अभी कुछ दिन हुए मायके से ससुराल आई थी तथा सास घर का सब काम उसे सुपुर्द कर स्वयं पाठ-पूजा में लीन रहने लगी। रामू की बहू कबरी बिल्ली से अत्यन्त दुःखी थी, वैसे अभी थी भी केवल १४ वर्ष की बालिका। घर में जो भी सामान बनाती, बिल्ली उसे समाप्त कर के चली जाती। एक दिन बहू रानी ने अति स्वादिष्ट खीर बनाई और बिल्ली

से बचाने के लिए उसे ऊँचे स्थान पर रख दिया किन्तु बिल्ली ने उसे भी नहीं छोड़ा और कटोरा भी गिरा दिया जो कि टूक-टूक हो गया। रामू की बहू क्रोधित हुई और कबरी बिल्ली को समाप्त करने का निश्चय कर लिया तथा एक पाटा लेकर छिपकर बैठ गयी। बिल्ली आयी और उसके आते ही बहू रानी ने पाटा दे मारा। बिल्ली लौट गयी। सारे घर में कुहराम मच गया। अपार भीड़ एकत्रित हो गयी। रामू की मां के तो प्राण ही सूख गये और बहू रानी के तो कहने ही क्या! इस पाप-कर्म से उद्धार के लिए पंडित जी को बुलाया गया पंडित जी आ गये और पत्रा खोला तथा बताया कि इस पाप की सजा तो नरक है। सास ने उसका उपाय पूछा। पंडित जी ने उत्तर दिया कि इसका उपाय केवल प्रायश्चित है। इससे पाप नहीं लगता। अतः सास को कुछ चैन मिला। अब पंडित जी ने प्रायश्चित की सामग्री बतायी कि केवल दान के लिए १ मन चावल, मन भर तिल, एक मन दाल, पांच मन जौ २५ सेर घी और मन भर नमक लगेगा। इसके अतिरिक्त एक बराबर की सोने की बिल्ली और बनवानी पड़ेगी। रामू की माँ ने कुछ कम सामग्री के लिये प्रार्थना की किन्तु पंडित जी तैयार न हुए। बातचीत चल ही रही थी कि महरी ने आकर कहा, मां जी बिल्ली तो भाग गयी। पंडित जी को निराश ही लौट जाना पडा और प्रायश्चित का अवसर तक न आया।

आलोचनात्मक परिचय—यह कहानी श्रीयुत भगवतीचरण वर्मा की है। आप उच्च कोटि के कहानीकार तथा उपन्यासकार है। प्रस्तुत कहानी 'प्रायश्चित्त' में परिवारिक जीवन की समस्याए है। इस कहानी में पुरोहित तथा रामू की मां का चित्र अत्यन्त सुन्दर है। पुरोहित जी की ढकोसले बाजी एवं मा का चरित्र प्राचीन विचारों वाली धर्म भीरू भारतीय महिला वर्ग पर प्रकाश डालता है। वर्मा जी ने इस चित्र के द्वारा हिन्दू जाति का भंडाफोड़ किया है। रामू की बहू का चित्रण भी अत्यन्त मार्मिक है वर्मा जी की भाषा सरल, सरस तथा चुटीली है। भाषा की मधुरता मन को मोह लेती है। वर्मा जी सदैव सामाजिक समस्याओं को लेकर चलते हैं।

प्रश्न ११—'कदम्ब के फूल' शीर्षक कहानी का सार अपने शब्दों में लिखिये तथा उसका आलोचनात्मक परिचय भी दीजिये। (प्रथमा, सं० २०१४, २०१६)

उत्तर—मोहन ने घर आकर "भौजी" से कहा कि मैं तुम्हारी मन चाही

वस्तु ले आया हूं जो कि अत्यन्त परिश्रम के बाद मिल सकी है। भौजी कहती है मजदूरी क्या लोगे। मोहन ने कहा कि समय आने दो तब मांग लूँगा।

जब मोहन भाभी को कुछ दे रहा था तो भाभी की सास ने कहा क्यों री बहू मोहन दोने में क्या लाया था। भाभी मुस्करा गयी और सास से कहा वह मिठाई का दोना लाया था। इस सीधे उत्तर को सुनकर बुढ़िया के क्रोध की सीमा न रही और कहने लगी कि इस घर में मुझे तो भर पेट खाना भी नहीं मिल पाता और तू मिठाई के दोने उड़ाती है। कोई बात नहीं है बहू! भगवान् न्याय करेगा। बहू अभी भी मज़ाक में टालती रही और कहा कि मां जी क्या हो गया एक ही दिन तो मंगाई थी। कुछ मिठाई अभी भी बची रखी है यदि चाहो तो तुम भी चख लो। इसने बुढिया के जले पर नमक का काम किया। अब तो बुढ़िया अत्यन्त तीक्ष्ण स्वर में चिल्ला-चिल्ला कर कहने लगी। भाभी से भी न रहा गया और कहा कि मैं इस प्रकार चुपचाप मार किसी की भी सहन नहीं करूंगी। मैंने मायके में भी किसी की आज तक नहीं सुनी। इस पर सास तड़क उठी और कहा कि तो तू मेरा भी मुकाबिला करेगी। तू जो इस प्रकार लगी लिपटी बातें कर रही है मैं सब समझती हूं।

बुढ़िया एक कोनेमें बैठ गई और फूट-फुट कर रोने लगी। उसकी आवाज सुनकर पड़ौस की स्त्रियां एकत्रित हो गयीं। कुछ ने बहू का पक्ष लिया किन्तु अधिकांश स्त्रियों ने भाभी की सास का ही पक्ष लिया। अब तो सास ने उन स्त्रियों को इधर-उधर की बातें लगाकर बताई।

गंगाराम गांव की पाठशाला में साढ़े सत्रह रुपया मासिक वेतन पर सहायक अध्यापक का काम कर रहा था। वह काफी दिन से बेकार रहा था। घर में धन का बड़ा अभाव था और भाभी के गहने पेटों की भेंट हो चुके थे। अतः भाभी बड़ी देखभाल कर पैसा खर्च करती थी। पति और सास का पहले ध्यान रखती थी और स्वयं कभी भूखी रहकर तथा दाल आदि पीकर अपने शरीर को चला रही थी।

सारे दिन की परेशानियों के बाद जब गंगाराम घर लौटा तो मां को उदास देखा। उसने मां से इसका कारण पूछा। मां ने पहले तो कहा कि बेटा! मैं तुम दोनों में झगड़ा कराना नहीं चाहती किन्तु एक बात अवश्य है कि मुझ से अब तेरी बहू की नहीं सुनी जाती। मुझे तो एक अलग झोंपड़ी बनवा दे, वहीं रह लूंगी और यदि तेरे बस की हो तो खाने-पहनने को दे देना वरना नहीं। माँ ने गंगाराम के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा कि आज तेरी बहु ने मोहन से मिठाई का दोना मंगाया। जब मैंने इस प्रकार के मिष्ठान के लिये मना किया तो बोली, चुप रह बुढ़िया! अन्यथा मैं तुझे मारूंगी। मैं तेरा तो नहीं खाती। अतः बेटा अब इस घर में निर्वाह होना असम्भव है। बुढ़िया ने कहा मैं बहू की मार न खाऊँगी। यह सुनकर गंगाराम के क्रोध ने वेग धारण किया और बोला वह कौन होती है मां तुझे मारने वाली मैं उसकी हड्डियाँ तोड़ दूंगा। गंगाराम ने एक मोटा डंडा ले लिया और तड़क कर बहू से बोला कि तूने क्या मंगाया था मोहन से मोहन भी वहाँ मौजूद था उसने चिल्लाकर कहा "कदम्ब के फूल थे भैया"। भाभी ने भी कहा कि देख लो यह दोना। दोना देखकर गंगाराम जोर से हंस पड़ा।

आलोचनात्मक परिचय—'कदम्ब का फूल श्रीमती सुभद्रा कुमारी की एक सुन्दर रचना है। इसका कथानक रुचिकर है तथा उसमें सुन्दरता का भी समावेश है। भाषा साधारणतया प्रवाहमयी और जिज्ञासा उत्पन्न करने वाली है। इसमें एक ओर तो लेखिका ने रूढ़िवादी सासुओं का चरित्र दिखाया है कि वे किस प्रकार बहुओं को कुचल देना चाहती हैं और दूसरी ओर आधुनिक बहू के रूप मे भाभी का चित्र स्पष्ट किया है कि वे किसी की बिना बात सुनने को तैयार नहीं भामा का मजाकिया चरित्र एक आदर्श उपस्थित करता है। वह धैर्य की साक्षात् मूर्ति है।

प्रश्न १२—श्री जैनेन्द्र कुमार की कहानी 'बाहुबली' का सार अपने शब्दों में लिखकर उसका आलोचनात्मक परिचय भी दीजिए।

उत्तर—कथासार—प्राचीन बात है जबकि दो युगों का संधिकाल चल रहा था। अभी पाप-पुण्य का उदय न हुआ था। मनुष्य पूर्णरूप से प्रकृति पर आश्रित था। पेड़ों से ही उसे वस्त्र, भोजन आदि मिलता था मानों पेड़ तो

कल्प वृक्ष थे। मानव मात्र में भी रिश्ते न थे । स्त्रियाँ मादा थीं और पुरुष नर। ये दो ही सम्बन्ध थे।

किन्तु आवश्यकतानुसार नवीन युग का आगमन हुआ । विवाह होने लगे, विवाहों से परिवार और परिवारों से समाज की सृष्टि हुई । अब मनुष्य को कृषि तथा सत्य आदि का भी ज्ञान हुआ । आवश्यकता के अनुसार राजा बने तथा नगर भी बसा लिए गये। प्रथम राजा का नाम श्री आदिनाथ था। उसके दो पुत्र भरत और बाहुवली थे तथा पुत्रियां भी दो ही थीं जिनका नाम था बाली और सुन्दरी । अवस्था के चौथे खण्ड में महाराज ने भरत को राज्य सौंप कर दीक्षा ली । भरत ने राज्य चलाया । पिता ने भरत को संकेत दिया कि सादा रहकर राज्य करना और प्रजा का हित करना । भरत ने खब विजय प्रसार किया । अभी अजेय बाहुबली को भी विजय करना था अन्यथा यह विजय अधूरी थी । भरत को मजबूर होकर राजगुरु की आज्ञा के अनुसार बाहुवली से युद्ध करना पड़ा । दोनों वीर मैदान में आ गये । बाहुवली ने विशेप वीरता का प्रदर्शन किया और अन्त में भरत के सामने वह नतमस्तक हो गया । भरत ने भी वाहुबली की वीरता की मुक्त कंठ से प्रशंसा की और वाहुवली को राज्य पाट संभालने को कहा । किन्तु वाहुवली की राजपाट में रुचि न थी अतः वह वन की ओर चले गये । भरत ने ही राज्य संभाला ।

बाहुवली ने घोर तप किया। उसका यश दूर-दूर तक फैल गया । संत लोग उसके दर्शन के लिए जाते रहते थे । बाहुवली ने अब एकान्त में समाधि लगाई। अनेक वर्षों तक वे समाधि लगाये रहे । उनके सहारे बाल्मीकि जम गये जहां कि कीड़ों आदि ने भी घर बना लिए थे । बाहुवली की सोने जैसी काया मिट्टी बनी जा रही । लोगों को उनके हाल पर दया आती थी । स्त्रियाँ उनके चरणामृत को आंखों में लगाती थीं और उनके समीप की मिट्टी औषधि समझी जाती थी । किन्तु अभी वाहुवली को सिद्धी की प्राप्ति नहीं हुई। जनता ने आदिनाथ से इसका कारण पूछा । आदिनाथ ने कहा कि मैं इसका कारण आगे बताऊंगा।

दूसरी ओर चक्रवर्ती महाराज भरत शासन चला रहे थे। उनके लिए सभी ऐश्वर्य विराजमान थे एक दिन भरत ने भी महाराज आदिनाथ के पास जाकर कहा—भगवान् भाई बाहुबली ने राज्य का त्याग कर दिया है और स्वयं दीक्षा ले रहे हैं क्या मैं भी दीक्षा ले सकता हूं ? महाराज आदिनाथ ने उत्तर दिया कि यदि दीक्षा राज्य में अगम्य है तो तुम राज्य का त्याग कर दीक्षा ले सकते हो । अगले दिन महाराज भरत ने घोषणा की और राज्य का त्याग कर दिया। राज्य का भार एक प्रतिनिधि सभा को सौंप दिया गया । कुछ दिनों के उपरान्त लोग भगवान् आदिनाथ के पास गये और कहा कि क्या कारण है, जो बाहुबली को अभी तक दीक्षा की प्राप्ति नहीं हुई है और महाराज भरत ने इतनी शीघ्रता के साथ दीक्षा पा ली है । भगवान् ने कहा कि बाहुबली अविजित है शायद वह यह न भूल सका है। भगवान् ने कहा कि यह विचार मुक्ति में कांटा है। बाहुबली के कानों में जब यह आवाज गई तो उसके मन का एक कांटा दम निकल गया। वे प्रसन्न चित्त तथा सफल हुए।

बाहुबली के चारों ओर नर नारियों का मेला सा लगा रहता । बाहुबली ने किसी को भी अस्वीकार नहीं किया । लोगों को और भी प्रसन्नता हुई । बाहुबली ने लोगों से कहा कि तुमने मेरे काया कष्टों की पूजा की है अतः अब मेरी आराधना समाप्त कीजिए।

बाहुबली ने निर्मल कैवल्य पाया और वे सभी में घुल मिल गये । बाहुबली के पास भीड़ समाप्त होने लगी । अतः अब शान्ति की खोज करने वाले व्यक्ति ही उनके पास आते थे ।

आलोचनात्मक अध्ययन—श्री जैनेन्द्रकुमार जी की प्रस्तुत कहानी 'बाहुबली' ऐतिहासिक और प्राचीन घटना को लेकर लिखी गई है । कहानी में सुन्दरता और स्वाभाविकता है । इस कहानी में गम्भीर भावनाओं को अति ऊंचा स्थान दिया गया है। भाषा भी भावनाओं के अनुकूल ही है । कथानक के साथ ही लेखक की विचार-धारा का भी पर्याप्त ज्ञान होता है । इसमें भरत का चरित्र चित्रण भी अनुकूल हा है । इस कहानी ने 'जैनेन्द्र' जी की श्रेष्ठ कहानियों में स्थान प्राप्त किया है ।

प्रश्न १३—'गोरा' शीर्षक कहानी का सार अपनी भाषा में देते हुए उसका आलोचनात्मक परिचय दीजिये। (प्रथमा, सं० २०१५)

उत्तर—कथासार—इसमें जीवन नाम के गरीब किसान की कथा है। जीवन के पास थोड़ी सी भूमि है जिसके द्वारा वह अपने परिवार का पालन करता है। जीवन को किसी से जलन नहीं होती थी।

जीवन अपनी झोंपड़ी में सो रहा था। वैशाख मास की चाँदनी से परिपूर्ण रजनी थी जिसमें आधी रात तो लगभग बीत चुकी थी। जीवन को एक पास के वन से किसी बछड़े का करुण स्वर सुनाई पड़ गया। आवाज तीक्ष्ण थी। जीवन की निद्रा भग्न हो गई। बहुत कुछ सोचने के पश्चात् जीवन के मन में बछड़े को बचाने की इच्छा पैदा हो गई। जीवन ने अपना मोटा डंडा लिया और पुरानी लालटेन ली तथा वन की ओर प्रस्थान किया। लालटेन के प्रकाश के भय से गीदड़ उस किशोर बछड़े को छोड़कर नौ-दो-ग्यारह हो गये। जीवन उस घायल बछड़े को अपनी झोंपड़ी में ले आया।

प्रातःकाल होने पर दिवाकर के उदय होने के बाद जीवन ने बछड़े को देखा तो पता चला कि वह एक अच्छी नसल का बछड़ा है। पति पत्नी ने उसे अच्छी तरह से पाला। फलस्वरूप वह स्वस्थ हो गया। अब उसके जोड़ का बैल सारे गांव में न था। जीवन ने बैल का नाम 'गोरा' रख दिया और संतान की भांति उसे पाला।

प्रत्येक वर्ष गांव के निकट शरद ऋतु में पशुओं की प्रदर्शिनी लगा करती थी। साथियों के अधिक आग्रह करने पर जीवन भी 'गोरा' को प्रदर्शिनी में ले गया और वहां गोरा को प्रथम पुरस्कार मिला। जीवन के 'गोरा' ने सेठ लखपत राय के बैलों को भी मात दे दी जो कि कई वर्षों से पुरस्कार ले रहे थे। जीवन की प्रसन्नता का ठिकाना न था किन्तु लखपत राय को भी यह बर्दाश्त न था कि इतने छोटे व्यक्ति के पास ऐसा बैल रहे। उन्होंने जीवन को मुंह मांगा रुपया देने का वायदा किया और 'गोरा' को मांगा। जीवन ने इंकार कर दिया। अभागे जीवन को लखपत राय के कोप का भाजन बनना पड़ा किन्तु जीवन ने भी अपने को भगवान् नाम पर छोड़ दिया।

सारा गांव लखपत राय की आज्ञा का पालन करता था। लखपत राय का हुक्म बजाने के लिए जीवन जंगल से लकड़ी काटने गया। उसी दिन संध्या समय जोर से वर्षा आरम्भ हो गई। जीवन उस समय जंगल में नाले से दूर खड़ा था। वर्षा का वेग तेज न होने के कारण जीवन ने 'गोरा' को हरी-भरी घास में चरने को छोड़ दिया। कुछ समय के बाद वर्षा बंद हुई। नाले का वेग भी कम हुआ। जीवन ने फिर से 'गोरा' को गाड़ी में जोत दिया और स्वयं लकड़ियों की खोह में बैठ कर हांकता रहा। कुछ ही दूर पहुंचा था कि सामने से एक शेर आ गया और 'गोरा' ने चलना बन्द कर दिया। वह स्तब्ध सा रह गया। जीवन भा अपार संकट में था। उसने 'गोरा' की रक्षा की किन्तु स्वयं बुरी तरह से घायल हो गया। अन्त में शेर ने जीवन को ही पर्याप्त भोजन समझकर उसे उठा जंगलों की ओर प्रस्थान किया। जीवन मर तो गया किन्तु अपना नाम अमर कर गया। लोग बड़े आदर के साथ उसका नाम लेते हैं। लखपत राय को भी अपने बुरे व्यवहार से घृणा हो गई और अब उसने 'गोरा' को लेने का विचार सर्वथा त्याग दिया।

आलोचना—श्रीयुत चन्द्रगुप्त विद्यालंकार की कहानी 'गोरा' अत्यन्त मधुर तथा हृदय पर प्रभाव डालने वाली है। इसकी घटनाएं कतार बन्द हो सामने आती जाती हैं। इस कहानी में अंतर्द्वन्द्व का चित्रण भी सुन्दर बन पड़ा है। इस कहानी के द्वारा लेखक ने आधुनिक समाज की परिस्थितियों का स्पष्ट चित्र खींचा है। 'गोरा' और जीवन की सृष्टि करके तो लेखक ने इसे और मनोहर बना दिया है। इस कहानी मे लेखक ने करुणा और बलिदान को मुख्य स्थान दिया है। इस कहानी में लेखक ने समाज का सम्पूर्ण चित्र प्रस्तुत किया है। लखपत राय जैसे कुटिल व्यक्ति की ओर भी संकेत किया है। यह अच्छा खासा व्यंग्य भी है। इस कहानी मे प्रकृति वर्णन भी उच्च कोटि का है। अतः यह सभी प्रकार से श्रेष्ठ है।

प्रश्न १४—अज्ञेय जी की 'शत्रु' शीर्षक कहानी का सार देकर उसका आलोचनात्मक परिचय दीजिये। (प्रथमा सं० २०१६)

कथासार—एक बार भगवान ने ज्ञान से कहा कि तुम मेरे प्रतिनिधि बनकर नये सिरे से संसार का निर्माण करो। अब ज्ञान ने सोचा कि संसार को

ठीक मार्ग पर लाने के लिए उसके प्रबल शत्रु से लड़ना होगा। वह चौराहे पर गया आवाज लगाई कि मैं तुम्हारे लिए शुभ संदेश लाया हूं। लोगों ने उसे धर्म का शत्रु समझकर उसका पीछा किया। अब उसे पता चला कि मनुष्य का प्रबल शत्रु धर्म है। उसे और भी विश्वास हो गया जबकि उसने एक स्त्री को पुत्र सहित रोते देखा। लोगों ने उसे मारा था क्योंकि उसने एक विधर्मी से विवाह कर लिया था। अब ज्ञान ने धर्म के विरुद्ध आवाज उठाई। ज्ञान ने धर्म को मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु बताया और पंडित आदि का उसने विरोध किया। वह देश-द्रोही ठहराया गया और विदेशी सिपाही उसे पकड़ ले गये।

जेल से अवकाश प्राप्त हो जाने पर उसने विदेशी सरकार से युद्ध करने की ठान ली। किन्तु फिर विचार किया कि जनता का प्रबल शत्रु विदेश में नहीं है भूख है। देशी विदेशी का प्रश्न भूख ही लाती है। भूखे विदेशी के आत्मीय बन जाने पर उसके मन में यह विचार आया। अब ज्ञान ने भूखे लड़ाकों का एक संगठन बनाया। इस संगठन का उद्देश्य अमीरों से धन ले कर गरीबों को बांटना था। अब अमीरों ने उसको अपने गुप्तचरों के द्वारा पकड़वा कर किले में बन्द कर दिया।

जेल के जीवन से तंग आकर उसका मन उचट गया। उसने ऐसे जीवन को व्यर्थ बताया और अब वह आत्म-हत्या करने को तैयार हो गया। वह कूदने वाला हीं था कि उसे अपनी परछाईं दिखाई दी। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो वह प्रतिबिंब कह रहा था—"बस अपने से लड़ चुके।"

अब ज्ञान ने आत्म-हत्या का विचार त्याग दिया। उसने जाना कि मनुष्य जीवन का सबसे बड़ा शत्रु यही है कि मनुष्य कठिनता से सरलता दुर्गमता से सुगमता की ओर बढ़ता है।

आलोचनात्मक परिचय—अज्ञेय जी की 'शत्रु' कहानी सुन्दर है। कथानक अत्यन्त सुन्दर और सरल है। भाषा पर अज्ञेय जी को पूरा अधिकार है। इनकी भाषा प्रवाह परिपूर्ण है। मनुष्य का असली शत्रु ही इस कहानी का मुख्य उद्देश्य है। इस कहानी का नायक ज्ञान समाज का फिर से निर्माण करना चाहता है किन्तु वह उसका विरोध ही करने लग जाता है। यह कहानी

हमें बताती है कि विरोधी तत्वों से जूझता हुआ मनुष्य आत्महत्या तक करने को तैयार हो जाता है।

प्रश्न १५—श्री राम शर्मा द्वारा लिखित "अपमान जनक मृत्यु" का सार अपने शब्दों में लिखो और उसका उत्तर आलोचनात्मक परिचय प्रस्तुत कीजिए। (प्रथमा, संवत् २०१७)

उत्तर—जो संसार में आया है जायगा भी। कुछ लोग जल-जल मरते है कुछ लोग सहर्ष फाँसी को स्वीकार कर लेते है। कुछ लोग युद्ध-स्थल में वीर गति को प्राप्त होते हैं। मुक्ति तो कुछ ही व्यक्तियों की होती है ठीक यही दशा पशुओं की भी है। यदि आप उन्हें लाठी से मार दें दो यह तो उनके लिए कायरता का विषय है। शेर आदि को यदि गोली का शिकार होना पड़े तो इसमे उसकी वीरता है, उसका नाम है।

मैं पेचिश से पीड़ित था तथा अस्पताल में पहुंचा हुआ था। साथ ही कुछ मित्र मेरे विषय में बातचीत कर रहे थे। किन्तु मैंने ध्यान न दिया। कुछ समय उपरान्त मुझे समाचार मिला कि आज लोगों ने वाल्टीगढ़ गांव के शेर का काम तमाम कर दिया है। मुझे विश्वास नहीं हुआ। मैंने इसको स्वप्न के समान घटना समझा और विचार करता रहा कि शेर बबर कैसे मार दिया गया। किन्तु केसरी उस शेर को लादकर कलक्टर साहब के पास लाया। इसने मुझे कुछ भरोसा सा दिला दिया। फिर भी मैंने पूछा कि इस जंगल में तो शेर होते भी नहीं फिर यह कहां से आया। केसरी ने उसकी पहिचान बता दी। जो काली धारी उसकी पीठ पर होती है तथा उसके पीले रंग ने तो उसका नकशा ही बना दिया। शेर की आकृति खिचती आई। पर मुझे फिर भी अविश्वास की धुंधली रेखाएं दीख पड़ती थीं और आश्चर्य होता था कि शेर लाठी आदि मारने का जानवर तो नहीं फिर कैसे मारा गया। अब केसरी ने मुझे उत्तर देते हुए कहा—सूखा पड़ने के कारण अनेकों कृषक अपने खेती को रवी के लिए तैयार कर रहे थे और खरीफ में भी कुछ न हुआ क्योंकि टिड्डी ने हानि पहुंचा दी थी अतः अवशेष चारे को जानसे लगाकर रखना पड़ता था। दिन भर खेतों की भराई होती। एक दिन चारा काटते समय घोड़े की आकृति का जानवर दिखाई दिया। किसान ने सोचा कि आज तो

इसने खूब माल मारा है अतः उसे भजाने के लिए कुछ पत्थर के टुकड़े फेंके। उन पत्थरों के टुकड़ों में से एक उसके लग गया। वह दहाड़ कर उठा। किसान ने सोचा कि यह कोई भयानक जानवर है। कुछ ही क्षणों में वह उसकी ओर भाग कर आया और किसान को परलोक पहुंचा दिया तब लोगों को कुछ निश्चय हो गया कि यह सिंह था।

पृथ्वी पर उस किसान की लाश खून में रंगी पड़ी थी। उसके सम्बन्धी रुदन कर रहे थे। पत्नी की आवाज तो हृदय चीर रही थी। कुछ ही क्षणों में वहाँ अनेकों व्यक्ति आ पहुंचे और इसी बात पर विचार कर रहे थे कि किस भयंकर जनवर ने इसे धराशायी किया है। बात भी बड़े चक्कर की थी। कुछ भी हो, था वह शेर ही। पास के गांव से समाचार मिला कि जुआर के खेत के समीप एक शेर बैठा है। लोगों ने उसका नाम ही सुना है। सब उसे देखने को लालायित थे। उन्हें यह भी ठीक-ठीक पता न था कि उसमें शक्ति होती है। लोग लाठी, बल्लम और फरसा आदि ले उसी स्थान पर पहुंच गये। किसानों की इस सेना में केवल एक छोटी सी बन्दूक थी जो कि विशेष काम की न थी। गोली का वार हुआ और छर्रा शेर की नाक में लगा। लेकिन शेर ने सर्कस के चाबुक की आवाज ही समझी किन्तु थी गोली। अब गोली ने कुछ पीड़ा पहुंचाई। शेर ने खेत में प्रवेश किया। समूह ने हमला बोल दिया। लाठी-बल्लम आदि के प्रहार से शेर को धराशायी बना दिया। उस शेर की लाश को कलक्टर साहब के यहाँ पहुंचाया गया किन्तु कलक्टर साहब बाहर गये थे। कई दिन शेर को पड़े-पड़े हो गये क्योंकि लोगों को आशा थी कि कलक्टर साहब कुछ पारितोषिक अवश्य देंगे। हमें रक्षा के लिये हथियार मिलेंगे। शेर से दुर्गन्ध आ रही थी। कुछ समय के पश्चात् अब उसका सिर वृक्ष पर लटका दिया गया।

किन्तु इस शेर से यहीं पता चलता था कि शेर हो सकता है सर्कस का हों। वहाँ से किसी प्रकार भाग आया है तभी तो स्वयं उसने लोगों पर आक्रमण नहीं किया। किन्तु आधे लोग तो उसे सर्कस का मान ही नहीं रहे थे। उन्हें अपने बल पर घमंड हो गया किन्तु कुछ भी हो एक शेर के लिये यह मृत्यु बुरी थी। उसमें इसकी शक्ति का अपमान था।

आलोचनात्मक परिचय :—'अपमान जनक मृत्यु' नामक कहानी पंडित श्री राम शर्मा की श्रेष्ठ रचनाओं में से है। शेर की मृत्यु तो हुई किन्तु मृत्यु में शेर का अपमान था। इसमें शेर की कायरता है। पंडित जी ने इस कहानी के द्वारा ग्राम का स्पष्ट चित्र खींचा है। भाषा सरल कथानक अत्यन्त सुन्दर तथा स्वाभाविक है। ग्रामीण भावनाओं का स्वाभाविक अंकन इसकी अपनी विशेषता है।

प्रश्न १६—मुन्शी प्रेमचन्द और श्री जैनेन्द्र कुमार जी के साहित्य का परिचय देते हुए उनकी कहानी कला पर प्रकाश डालिए।

(प्रथमा, सं० २०१५)

मुन्शी प्रेमचन्द

उत्तर—मुन्शी प्रेमचन्द जी को विद्यार्थी जीवन से ही पठन-पाठन में रुचि थी। आपने शिक्षा विभाग में नौकरी करते समय से ही लिखना आरम्भ कर दिया था। आरम्भ में आपने उर्दू में लिखना प्रारम्भ किया था। बाद में आप हिन्दी में लिखने लगे।। आपका प्रथम उपन्यास संवत् १९५९ में और दूसरा सं० १९६१ में प्रकाशित हुआ। आपने ११ उपन्यास लिखे। आपके उपन्यासों में समाज का यथार्थ चित्रण है। आपके उपन्यासों की गणना विश्व साहित्य के उच्च कोटि के उपन्यासों में है और हिन्दी साहित्य के तो आप उपन्यास-सम्राट कहलाते हैं। उपन्यासों के अतिरिक्त आपने लगभग ३०० कहानियाँ भी लिखीं। आपकी इन कहानियों में भी समाज का यथार्थ चित्र खींचा गया है।

आपकी प्रथम मौलिक कहानी कानपुर से निकलने वाले प्रसिद्ध मासिक पत्र 'जमाना' में 'संसार का 'अनमोल रत्न' नाम से प्रकाशित हुई। आपकी कहानियाँ राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत हैं। पहले तो आपकी कहानियां "जमाना' में प्रकाशित होती रहीं, परन्तु बाद में 'सरस्वती' में प्रकाशित होने लगीं। मुन्शी जी के सप्तसरोज, नवनिधि प्रेम पच्चीसी, प्रेम पूर्णिमा, मान-सरोवर कहानी संग्रह है।

मुन्शी जी की रचनायें बहुत ही लोकप्रिय हैं। राजनीतिक तथा सामाजिक उथल-पुथल का जीता-जागता चित्रण आपने अपने उपन्यासों तथा कहानियों

में किया है। आपको राष्ट्र तथा समाज की समस्याओं का चित्रण करने में बहुत सफलता मिली है।

मुन्शी जी की भाषा शैली प्रवाहपूर्ण सरल तथा आकर्षक है। आपने सरल शब्दों का प्रयोग किया है। उर्दू के लेखक होने के नाते हिन्दी लेखन शैली पर उर्दू का प्रभाव बहुत पड़ा है जिससे हिन्दी शैली लोकप्रिय, सुन्दर तथा प्रवाहपूर्ण हो गयी है।

अन्त में यह कहना उचित ही है कि मुन्शी प्रेमचन्द जी जितने बड़े उपन्यासकार थे उतने ही बड़े कहानीकार थे। उनकी सभी कहानियां हिन्दी-साहित्य में बेजोड़ हैं।

श्री जैनेन्द्रकुमार

श्री जैनेन्द्रकुमार जी एक महान् कहानीकार हैं। आपने सन् १९२८ ई० में सर्वप्रथम कहानी 'खेल' लिखी, जो कि विशाल भारत में प्रकाशित हुई। उस समय आपका प्रथम मौलिक उपन्यास 'परख' प्रकाशित हुआ जिस पर आपको हिन्दुस्तानी एकेडेमी प्रयाग ने ५००) रुपए का पुरस्कार दिया। इससे आपकी ख्याति समस्त हिन्दी-जगत् में फैल गई और आप बड़े वेग से हिन्दी क्षेत्र में अग्रसर हुये। शीघ्र ही वर्तमान हिन्दी कहानीकारों में आपका एक विशिष्ट तथा उच्च स्थान हो गया।

श्री जैनेन्द्र जी ने केवल कहानियां तथा उपन्यास ही नहीं लिखे, अपितु उन्होंने गद्य लेख भी लिखे हैं जो गम्भीरता तथा अध्ययन की दृष्टि से हिन्दी साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। आपकी प्रमुख रचनाएं निम्नलिखित हैं :—

उपन्यास—कल्याणी, परख, सुनीता, त्यागपत्र, अनाम स्वामी।

कहानी-संग्रह—एक रात, स्पर्द्धा, जय-संधि, ध्रुवतारा, नीलम, देश की राजकन्या, दो चिड़िया।

निबन्ध-संग्रह—जड़ की बात, गांधी नीति, जैनेन्द्र के विचार, संस्मरण।

आपकी भाषा हिन्दी खड़ी बोली है। आपकी भाषा सर्व साधारण की न होकर चिंतन की है। वह विषयानुसार परिवर्तित होती रहती है। कथा साहित्य

और निबन्धों की भाषा में बहुत अन्तर है। आपने अंग्रेजी, फारसी तथा संस्कृत के शब्दों का स्थान-स्थान पर प्रयोग किया है। भाषा में व्यापकता तथा बोधगम्यता है भावों का अनुगमन करने के कारण भाषा चुटीली, प्रभावपूर्ण तथा मार्मिक है। शैली प्राय: बातचीत करने की शैली के अनुरूप है। कहानी तथा उपन्यासों में इसी शैली का प्रभाव सर्वत्र दिखाई देता है। आपकी शैली में सहृदयता, स्वाभाविकता, सरसता तथा प्रभाव है।

निबन्ध

प्रश्न १७—निम्नलिखित निबन्धों का सार लिखकर उनका आलोचनात्मक परिचय दीजिए :—

धोखा, बातचीत, हंस का नीर-क्षीर विवेक, बुढ़िया और नौशेरवां।

(प्रथमा, संवत् २०१७)

धोखा

(पंडित प्रतापनारायण मिश्र)

सार—छोटे से शब्द 'धोखा' में अपार शक्ति है। इससे बचना किसी के लिए भी कठिन है। स्वयं भगवान् रामचन्द्र जी मारीच को स्वर्ण का हिरन समझ कर धोखा खा गये, फिर एक साधारण व्यक्ति का तो कहना ही क्या। ईश्वर निर्विकार होते हुए भी इससे नहीं बच सकता, क्योंकि वह समस्त संसार की रचना करता है और इस संसार में माया का काम होता है और माया ही धोखे का दूसरा नाम है। यद्यपि भगवान् को भ्रम रहित कहा जाता है, परन्तु जिसके विषय में हमें कुछ भी पता नहीं, उसे भ्रमरहित कैसे कहा जा सकता है।

वेदान्ती लोग संसार को मिथ्या कहते हैं एक महात्मा ने एक जिज्ञासु को समझाया कि यह समस्त संसार भ्रम है। कुछ समय के पश्चात् उसके किसी प्रिय की मृत्यु हो गयी और वह रोने लगा। तब जिज्ञासु ने उससे कहा कि—"यह संसार तो भ्रम है फिर तुम क्यों रोते हो ?" इस पर महात्मा ने उसे बताया कि यह रोना भी भ्रम है। वास्तविकता तो यह है कि वह समस्त संसार ही भ्रम रूप है और जब एक भ्रम है तभी तक यह संसार भी है। जो व्यक्ति इस संसार को माया मानते हैं, वे अवश्य ही धोखा खाते हैं। वे न

अपने काम के रहते हैं और न किसी और के। वे अपना ही नहीं बल्कि दूसरे का भी अहित करते हैं क्योंकि इस साँसारिक जीवन का आनन्द तो धोखे में पड़े रहने पर ही मिलता है। यह सोच कर कि धन-जन सदा हमारे साथ रहने वाले नहीं हैं, यदि हम इसमें अपना सम्बन्ध तोड़ दें तो हम निरे मूर्ख ही कहलायेंगे।

जब बड़े-बड़े विद्वान् भी इस संसार को माया मानते हैं, तो फिर धोखे को इतना बुरा क्यों समझा जाता है ' धोखा खाने वाला व्यक्ति मूर्ख और धोखा देने वाला व्यक्ति ठग क्यों कहा जाता है ? क्योंकि धोखे वाले का भेद एक न एक दिन खुल ही जाता है, इसलिए जन साधारण धोखे को अच्छा नहीं समझते, परन्तु इससे बचना भी बहुत कठिन है।

संसर का यह अटल नियम है कि मनुष्य यहां पर कुछ खोकर ही सीखता है। इसलिए दो-तीन बार धोखा खाकर धोखेबाजी की कला सीख लेना कोई बुरी बात तो नहीं है। यदि तुम 'उसी की जूती और उसी के सिर पर मारो' के सिद्धान्त को अपनाओगे, तो सब से अनुभवशील कहलाओगे। जिसको धोखा देना हो उसे इस प्रकार दो कि वह समझ ही न सके। यही बेईमानी तथा नीतिकुशलता का अन्तर है कि प्रकट हो जाये तो बेईमानी और छिपी रहे तो बुद्धिमानी कहलायेगी। धोखा खाकर भी धोखे को केवल समझदार व्यक्ति पहचान सकता है।

आलोचनात्मक परिचय—'धोखा' पंडित प्रतापनारायण मिश्र का उच्च कोटि का निबन्ध है। इसकी भाषा सशक्त, परिमार्जित और मुहावरेदार है। संस्कृत के क्लिष्ट शब्दों का इसमें प्रयोग किया गया है। इस निबन्ध में धोखे का मनोवैज्ञानिक चित्रण है। लोकोक्तियों के प्रयोग ने भाषा के सौंदर्य को और अधिक बढ़ा दिया है।

बातचीत

(पंडित बालकृष्ण भट्ट)

(प्रथमा, संवत् २०१६)

सार—भगवान् ने मनुष्य को अनेक प्रकार की शक्तियां वरदान के रूप में दी हैं, परन्तु उनमें वाक्शक्ति सबसे महत्त्वपूर्ण है। इसके द्वारा हम

अपने हृदय की भावनाओं को दूसरों पर व्यक्त करते हैं। यदि यह शक्ति हमें भगवान् ने न दी होती, तो समस्त संसार गूंगों की भांति एक दूसरे पर अपने विचारों को प्रकट नहीं कर पाता। 'वक्तृता' और 'बातचीत' ये दोनों वाक्‌शक्ति के ही भेद हैं। प्रथम का सम्बन्ध सभामंच से है। इसमें वक्ता अपने विचारों को सुन्दर और प्रभावशाली बनाने के लिए चटपट शब्दों का प्रयोग करता है जिससे श्रोता गण बार-बार ताली बजाकर उसके भावों का समर्थन करते हैं। वक्तृता (स्पीच) का उद्देश्य जहाँ मन में जोश और उत्साह उत्पन्न करना है, वहां घरेलू बातचीत का ढंग ही निराला है। वह तो मन रमाने का एक साधन है।

जिस प्रकार एक इंजन में भाप अधिक बढ़ जाने से उसके फट जाने का भय रहता है और उसे निकाल कर उसे फटने से बचा लिया जाता है, उसी प्रकार बातचीत हृदयके विचारों को अन्दर एकत्रित हुई भाप की भांति निकाल कर बाहर फेंक देती है। अफीम, शराब आदि के समान बातचीत का भी एक नशा होता है और इस आदत का शिकार कोई व्यक्ति जब तक किसी से बातचीत नहीं कर लेता, तब तक उसे तो भोजन भी हजम नहीं होता है। इससे हृदय स्वच्छ और हल्का होता है।

यह किसी के गुण-दोषों को पहिचानने की भी कसौटी है। जब तक मनुष्य बोलता नहीं, उसके दोष भी गुण बने रहते हैं। यह बातचीत दो से लेकर अनेकों में हो सकती है। परन्तु एडीसन का तो यह मत है कि वास्तविक बातचीत तो केवल दो व्यक्तियों में ही होती है।

बातचीत का प्रभाव भी बहुत ही व्यापक होता है। एक गिलास में गर्म और दूसरे में ठण्डी वस्तु डालकर यदि उन्हें एक दूसरे से हटाकर रख दिया जाय, तो दोनों आपस में छूने मात्र से ही एक दूसरे को ठण्डा तथा गर्म कर देती हैं। इसी प्रकार बातचीत का भी एक दूसरे पर गहरा प्रभाव पाया जाता है। परन्तु जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है वास्तविक बातचीत तो केवल दो व्यक्तियों में ही हो सकती है। यही कारण है कि ज्यों-ज्यों बातचीत का घेरा चार पांच, सात, दस और अधिक होता

जायेगा, उसकी मनोरंजकता और रोचकता का स्थान गम्भीरता लेती जायेगी।

आपस की बातचीत भी कई प्रकार की होती है बूढ़ों की बातचीत जमाने के शिकवा-शिकायत से चलकर जमीन आसमान तक की बातों तक फैल जाती है। नवयुवकों की चर्चा का विषय अंग्रेजी विद्वान् ही होते हैं। दो सहेलियाँ तो मानो रस की गागर ही छलकाती हैं। इसी प्रकार बुढ़ियों, लड़कों, रोजगार, व्यापार सम्बन्धी और चन्डूखाने की बातचीत के भिन्न-भिन्न स्वरूप पाये जाते हैं। परन्तु जहाँ तक यूरोप में इस बातचीत की कला का सम्बन्ध है आज वह बहुत आगे बढ़ चुकी है। उसे वे सुहृदय गोष्ठी के नाम से पुकारते हैं। वहाँ का प्रत्येक कार्य दो से प्रारम्भ होकर धीरे-धीरे कार्य व्यापार को बढ़ाने में अनेक तक फैल जाता है। आज यूरोप के सभी उत्तम व्यापार इसी बातचीत के परिणाम हैं।

अन्त में बातचीत ही सुख और दुःख की उत्पत्ति का कारण है। जिस प्रकार शरीर की अन्य इन्द्रियाँ भी अपने काबू से बाहर निकलकर कष्ट का कारण बनती हैं, उसी प्रकार वाक्-इन्द्रिय भी चंचल होकर दुःख का कारण बनती है। यदि मानव इसे आधीन कर ले, तो वही शान्ति का मन्दिर और मुक्ति का द्वार बन जाती है।

आलोचनात्मक परिचय—भट्ट जी का यह एक उच्च कोटि का निबन्ध है। यह निबन्ध उनकी गद्य-शैली का परिचायक है। भाषा सरल तथा चुस्त है, परन्तु कहीं-कहीं अंग्रेजी, उर्दू और संस्कृत के शब्दों का प्रयोग हुआ है। विषय प्रतिपादन बहुत ही सुन्दर तथा रोचक है। भाषा मुहावरेदार तथा सशक्त है शैली में अनूठापन है। इस निबन्ध में लेखक ने बातचीत के सभी पहलुओं पर प्रकाश डाला है। लेखक ने यह भी स्पष्ट किया है कि बातचीत एक कला है और हमारे यहां इसका अभी समुचित विकास नहीं हुआ है।

हंस का नीर-क्षीर विवेक

(पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी)

(प्रथमा, सं० २०१५)

सार—शताब्दियों से कोयल, भ्रमर, कमल और हंस के विषय में संस्कृत साहित्य में अनेक मिथ्या धारणाय चली आ रही हैं। प्रत्येक ग्रन्थ में इनका उल्लेख है। हंस के विषय में यह मिथ्या धारणा प्रचलित है कि वह दूध और पानी को अलग-अलग कर देता है। जब यह भारतीय विचार अमेरिका में पहुंचा तो उन्हें यह बात बहुत ही विचित्र प्रतीत हुई और उन्होंने इस बात की सचाई जानने का निश्चय कर लिया। सबसे पहले अमेरिका में अध्यापक लांगमैन ने अनेक हंस पाले, परन्तु परीक्षा करने पर वे इस परिणाम पर पहुंचे कि हंस दूध और पानी को पृथक् नहीं कर सकता। यह धारणा मिथ्या है। इसके पश्चात् डा० व्यास ने भी इस बात की परीक्षा की, परन्तु वे भी इसमें कोई सचाई प्राप्त न कर सके।

लेखक कहता है कि वास्तव में सबसे अधिक हंस हमारे देश में होते हैं और वे मानसरोवर झील पर रहते हैं। वहां पर जल बिल्कुल निर्मल होता है। प्रश्न तो यह उठता है कि वहां पर दूध कहा से आता है। वहां पर उन्होंने गाये भैसे तो पाली हुई नहीं हैं। संस्कृत तथा हिन्दी के अनेक कवियों ने लिखा है कि हंस मोती चुगता है, परन्तु एक तो मोती मानसरोवर झील में होते ही नहीं हैं और फिर यदि यह भी मान लिया जाय कि झील में मोती होते हैं तो क्या हंस झील को छोड़कर अन्य कहीं नहीं जाते हैं? इन बातों पर विचार करने से तो यह स्पष्ट है कि न तो हंस मोती चुगता है और न ही जल और क्षीर को पृथक् कर सकता है।

जब ऐसी बात है तो फिर संस्कृत साहित्य में हंस के मोती चुगने और नीर-क्षीर को पृथक् करने की बात कहां से आ गई। वास्तविकता तो यह है कि मानसरोवर का जल मोती के समान ही निर्मल होता है और हंस उस निर्मल जल को ही पीता है। इसलिए कवियों ने उस जल को ही मोती कहा है। दूसरी बात की सचाई इस प्रकार है कि हंस जल में होने वाले

कमल-नाल को तोड़कर उसमें से सफेद-सफेद निकलने वाले रस को पीता है। इसमें मीठापन भी होता है। यह रस भी संस्कृत में क्षीर ही कहलाता है। वास्तव में विद्वानों ने इसी हंस को "नीर-क्षीर विवेक" कहा होगा, परन्तु समय के बीतने पर सब लोग इस बात को तो भूल गये और उन्होंने इसके अन्य अर्थ लगा लिए।

आलोचनात्मक परिचय—द्विवेदी जी ने अपने इस निबन्ध में हंस के विषय में साहित्यिक क्षेत्र में फैली हुई मिथ्या धारणाओं का खण्डन किया है और वास्तविकता की खोज की है। इस निबन्ध में नवीन मतों को अत्यन्त तर्क संगत रूप से रखा गया है। इसमें रोचकता तथा सहज बोध गम्यता है। इस निबन्ध की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि लेखक ने इतने जटिल विषय को सरल शैली में रखकर इसे पाठकों के लिए आकर्षक बना दिया है। यह रचना द्विवेदी जी की प्रचलित शैली का एक श्रेष्ठ उदाहरण है।

बुढ़िया और नौशेरवां

(पं० पद्मसिंह शर्मा)

सार—विश्व में प्रचलित सभी शासन प्रणालियों में प्रजातन्त्र प्रणाली ही सर्वोत्तम है। सभी लोग समझते हैं कि यह प्रणाली यूरोप की देन है, परन्तु बात ऐसी नहीं है। संभवतः आज मनुष्य ऐसा इसलिए सोचते हैं कि वर्तमान प्रजातन्त्र में जो पार्लियामेंट की प्रणाली है, वह प्राचीन काल में नहीं थी। परन्तु हमें यह बात अवश्य ध्यान में रखनी चाहिए कि उस समय (प्राचीन काल में) जितना ध्यान प्रजा के हित का रखा जाता था, उतना और किसी बात का नहीं। इस निबन्ध में पं० पद्मसिंह शर्मा ने इसी का एक सुन्दर उदाहरण दिया है। इसको पढ़कर हमें यह पता चलता है कि आज के शासक जो कि प्रजा के हितैषी तथा सेवक होने का दावा करते हैं, उनका मुकाबला नहीं कर सकते हैं। यह घटना ईरान के बादशाह नौशेरवां से सम्बन्धित है।

बादशाह नौशेरवां शाही महल बनवा रहा था। परन्तु उस महल के लिए जो भूमि ली गई थी, उसके एक कोने पर एक बुढ़िया [illegible] की झोंपड़ी थी। उस झोंपड़ी के उठाये बिना यह महल सीधा नहीं [illegible] था।

सकता था। इसलिए राजा ने उससे वह झोंपड़ी मांगी, परन्तु बुढ़िया ने उसे बेचने के लिए मना कर दिया। राजकर्मचारियों ने उसे बहुत कुछ समझाया, परन्तु वह बुढ़िया अपनी बात पर अटल रही। अन्त में राजा ने विवश होकर वह महल तिरछा ही बनवा लिया, परन्तु बुढ़िया से कुछ नहीं कहा। यदि बादशाह चाहता, तो उसकी झोंपड़ी को वहां से हटवा सकता था, परन्तु नहीं वह प्रजा-पालक तथा प्रजा हितैषी था। वह अपने स्वार्थ के लिए बुढ़िया को किसी प्रकार का दुःख नहीं दे सकता था।

राजमहल बनकर तैयार हो गया। बुढ़िया की झोंपड़ी का धुआं राजमहल की दीवारों को काला करने लगा। बादशाह ने बुढ़िया से कहा कि उसे शाही महल के लंगर से भोजन मिल जाया करेगा। उसे झोंपड़ी में अपने लिए भोजन बनाने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि ऐसा करने से महल की दीवारें काली होती हैं। यह सुनकर वह बुढ़िया गरज कर बोली—"मैं कोई भिखारिन या अपाहिज नहीं हूं कि जो शाही महल के लंगर से अपना पेट भरूं।" यह सुनकर बादशाह चुप हो गया और उसने बुढ़िया को इस कार्य के लिए फिर कभी नहीं कहा।

यदि बादशाह चाहता, तो बुढ़िया की झोंपड़ी को क्षण भर में नष्ट करवा देता, परन्तु उसने अपने न्याय के सामने अपने स्वार्थ को भी त्याग दिया। जब तक वह वृद्धा जीवित रही, तब तक शाही महल की दीवारों पर धूम्र मेघ जमा होते रहे, परन्तु साथ ही राजा का यश भी समस्त संसार में फैलता गया। आज का यह स्वार्थी संसार चाहे इस घटना के महत्व को समझे या न समझे, परन्तु विश्व इतिहास की विमल यशोगाथा युग-युग तक नौशेरवां के नाम को संसार में फैलाती रहेगी।

आलोचनात्मक परिचय—इस निबन्ध में शर्मा जी ने एक साधारण घटना को बड़े मनोरंजक ढंग से चित्रित किया है। इस निबन्ध में शर्मा जी की व्यंग्यात्मक तथा मनोरंजक शैली का एक चित्र उपस्थित होता है, साथ ही भाषा के पाण्डित्य का भी परिचय प्राप्त होता है। भाषा बड़ी परिमार्जित तथा शुद्ध है। व्यंग्यात्मक शब्दों तथा मुहावरों के प्रयोगों से शैली में प्रवाह, आकर्षण तथा ओज का पूर्ण प्रादुर्भाव हुआ है।

प्रश्न १७—साहित्याचार्य पंडित अम्बिकादत्त व्यास के जीवन चरित्र पर प्रकाश डालते हुए गद्य साहित्य में उनका स्थान निर्धारित कीजिए।

उत्तर—जीवन चरित्र—पं० अम्बिकादत्त का जन्म सं० १६१५ में जयपुर में हुआ था। आप मारवाड़ी गौड़ ब्राह्मण थे। जब इनकी अवस्था केवल एक वर्ष की ही थी, उसी समय इनके पिता पं० दुर्गादत्त जी परिवार सहित काशी चले गये। इसीलिए इनकी शिक्षा काशी में ही हुई। ये खेलने-कूदने के बहुत शौकीन थे। ये अपनी अलौकिक प्रतिभा के बल पर ११ वर्ष की आयु में ही सुन्दर से सुन्दर कवितायें बनाते समय समस्या पूर्तियां भी कर लेते थे। इनकी कविता-शक्ति पर भारतेन्दु जी बहुत मुग्ध थे। संवत् १६३७ में इन्हें काशी गवर्नमेंट कालेज से साहित्याचार्य की पदवी प्राप्त हुई और पूज्य पिता जी के स्वर्गवास हो जाने के कारण इन्हें गृहस्थी का सभी कार्य संभालना पड़ा। किन्तु इससे उनका विद्यानुराग कम नहीं हुआ। पंडित जी की कविता-प्रेम और अभ्यास इतना अधिक था कि एक घड़ी में १०० श्लोक लिख डाले और 'घटिका शतक' की उपाधि प्राप्त की।

पंडित अम्बिकादत्त एक उच्चकोटि के वक्ता भी थे। अपने मधुर वक्तव्यों के लिए समस्त बिहार प्रदेश मे प्रसिद्ध थे। अनेक राजा-महाराजाओं ने इन्हें विभिन्न उपाधियो से विभूषित किया। इन्होने अपने अल्प जीवन काल में ७८ पुस्तकें लिखीं। इनमें से 'मूर्तिपूजा' तथा 'विहारी-बिहार' का तो बहुत ही अधिक आदर हुआ। पंडित जी ने काव्य, नाटक, साहित्य इतिहास, दर्शन, दिल्लगी इत्यादि सभी विषयों पर पुस्तके लिखी है। आपकी रचनाओं का हिन्दी साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है।

पंडित अम्बिकादत्त व्यास ४२ वर्ष की आयु मे इस नश्वर संसार को त्याग कर सदा के लिए विदा हो गये। उनकी अकाल मृत्यु से हिन्दी जगत को भारी धक्का लगा और सभी हिन्दी प्रेमी उनके निधन के समाचार को पाकर दु:खी हो उठे। उनके गो-लोकवास से तो मानो हिन्दी साहित्य की फूली फुलवारी पर ओले पड़ गये।

आलोचनात्मक परिचय—इस निबन्ध मे श्री बालमुकुन्द गुप्त ने हिन्दी साहित्य के एक महान् सेवी पंडित अम्बिकादत्त व्यास के पारिवारिक जीवन

तथा उनकी साहित्यिक महत्ता पर प्रकाश डाला है। इसे हम निवन्ध न कह कर यदि उनका जीवन चरित्र कहें, तो अधिक उपयुक्त होगा। इसमें गुप्त जी की व्यावहारिक अलंकृत शैली, छोटे-छोटे वाक्य, भाषा का प्रवाह तथा उर्दू शैली की चुलबुलाहट सभी के दर्शन होते हैं। उर्दू शब्दों, मुहावरों तथा वाक्यों का प्रयोग भी गुप्त जी ने अपने इस निवन्ध में किया है। इससे भापा में प्रवाह तथा लोच उत्पन्न हो गया है। इस चरित्र से जहां व्यास जी के जीवन पर प्रकाश पड़ता है, वहां गुप्त जी की भापा तथा लेखन शैली पर भी प्रकाश पड़ता है।

प्रश्न १८—बाबू गुलाबराय जी के निबन्ध 'समाज और साहित्य का प्रभाव' सार लिखकर उसका आलोचनात्मक परिचय दीजिए।

(प्रथमा, सं० २०१४, २०१५)

अथवा

बाबू गुलाबराय जी के निवन्ध 'समाज और साहित्य का प्रभाव' के आधार पर सिद्ध कीजिये कि साहित्य पर समाज का बहुत प्रभाव पड़ता है और समाज साहित्य के अनुसार प्रचलित होता है।

उत्तर—सार—मानव की विचारशीलता उसे उन्नति के पथ पर अग्रसर करती है। मानव निरन्तर उन्नति करता चला आ रहा है। उसने प्रकृति पर विजय प्राप्त करके उसके रहस्यों का उद्घाटन किया है। आधुनिक युग में ज्ञान सर्व साधारण के लिए सुलभ है। मानव के मन के विचार प्रकट होना चाहते हैं और वे भाषा का वस्त्र पहिन कर आ जाते हैं। यहीं से साहित्य का उदय होता है। भापा में प्रकट किए हुए मानव समाज के श्रेष्ठ विचारों का संग्रह ही साहित्य कहलाता है।

विचारों का समूह साहित्य कहलाता है और मानव के विचार ही समाज में कार्य करते है। विचारों में गति और संक्रामकता होती है और विचार भापा पर निर्भर होते हैं। साहित्य विचारों को वनाये रखता है। साहित्य के अभाव में हमारे विचार पानी के वुलवुले के समान क्षण भर में नप्ट हो जाते। साहित्य के द्वारा विचार स्थायी और गतिशील वनते हैं। साहित्य के द्वारा हमारे ज्ञान का विस्तार होता है और मानव की हीन भावना को दूर करके उसमें शक्ति का संचार करता है। मार्क्स के साहित्यिक विचारों ने रूस में

महान् राज्य-क्रान्ति करवाई। वोलटेयर और रूसो के साहित्यिक विचारों का परिणाम फ्रांस की राज्य क्रान्ति है। नीत्से तथा अन्य दार्शनिकों के विचार का परिणाम विश्व युद्ध के रूप में हम देख चुके हैं।

जहां साहित्य क्रान्ति तथा विप्लवों के लिए उत्तरदायी है, वहां वह दूसरी ओर सुख-शान्ति और स्वतन्त्रता के भाव भी उत्पन्न करता है। जहां वह विध्वंस करता है वहां पर उसके द्वारा निर्माण भी होता है। महाकवि गोस्वामी तुलसीदास तथा ज्ञान मार्ग के प्रतिनिधि कवि कबीर के साहित्य ने कितने ही व्यक्तियों के हृदय को आलोकित किया और उन्हें शान्ति व सन्तोष का सन्देश दिया है। भारतीय साहित्य में आध्यात्मिक संस्कृति, धर्म भीरुता और अहिंसावाद के सिद्धांत मिलते हैं। वीर गाथाओं ने अपने युग में वीर भावों को भरा।

वर्तमान भारत में परिवर्तन पाश्चात्य साहित्य के सम्पर्क में आने से हुए हैं। इस प्रकार साहित्य मानव को प्रभावित करता है। जो कार्य बड़े-बड़े योद्धा अपनी तलवार तथा तोप से नहीं कर सकते, उस कार्य को एक महान् साहित्य-कार अपनी लेखनी से कर सकता है। एक वीर रस का कवि अपनी कविता से सहस्त्रों वीर सैनिक उत्पन्न कर सकता है। वह भीरु को साहसी और निर्बल को वीर बना सकता है। साहित्य मानव जीवन को सुधारता तथा पथ प्रदर्शन करता है। साहित्य मानव के मनोरंजन का भी एक अच्छा साधन है।

साहित्य के द्वारा सामाजिक संगठन होता है तथा जातीय जीवन अच्छा बनता है। साहित्य हम तो संस्कृति और जातीयता के सूत्र में बांधता है और हमारी मनोवृत्तियों को प्रभावित करता है और हमारी मनोवत्तियां साहित्य पर निर्भर करती हैं और हमारे सब कार्य मनोवृत्तियों के अनुकूल होते हैं। इस प्रकार साहित्य समाज पर बहुत प्रभाव डालता है।

आलोचनात्मक परिचय—यह निबन्ध बाबू गुलाबराय की उत्कृष्ट परिमार्जित शैली का उत्कृष्ट उदाहरण हैं। इसमें लेखक ने विषय का संक्षेप में अच्छा विवेचन किया है। इसकी भाषा विषय के अनुसार है और शुद्ध शब्दों से वाक्यों का तथा छोटे-छोटे वाक्यों से अनुच्छेदों का बहुत ही सुन्दर तथा अच्छा गठन किया है। लेखक ने इस निबन्ध में समाज में साहित्य के

प्रभाव की विशेष स्थिति का चित्रण किया है। साहित्य एक सांस्कृतिक वस्तु है इसलिये साहित्य का प्रभाव समाज पर पड़ना अनिवार्य है। किसी भी देश का साहित्य उसके समाज का दर्पण है। ऐसे गंभीर तथा सुन्दर विषय को भी लेखक ने सरल तथा रोचक भाषा में प्रकट करके विद्यार्थियों के सम्मुख निवन्ध लेखन का मार्ग प्रशस्त किया है।

प्रश्न १९—अमर लेखिका स्टो का संक्षिप्त जीवन परिचाय देते हुए उन की सेवाओं का उल्लेख कीजिए।

उत्तर—मां ने अपने छठे बच्चे के जन्म होने पर अपनी भाभी को तार दिया—"जब तक बच्चा रात को मेरे पास सोता है तब तक मैं कोई काम नहीं कर सकती, पर मैं करूंगी जरूर। अगर जिन्दी रही तो दासत्व प्रथा के खिलाफ जरूर लिखूंगी।"

अमेरिका में उन दिनों दास प्रथा बहुत जोरों पर थी। नीग्रो लोगों को अमेरिका निवासी अपना दास (क्रय की हुई सम्पत्ति) समझते थे। वे उन पर बहुत अत्याचार करते थे। उनकी दशा जानवरों से भी खराब थी। जानवरों की भांति उनका क्रय-विक्रय होता था। उन्हें दिन रात कठिन परिश्रम करना पड़ता था और आराम तो बहुत ही कम मिलता था। इस पर भी पेट भर भोजन तो कभी मिलता ही नहीं था। जब उनके स्वामी की इच्छा होती उन्हें वे भोजन दे देते वर्ना वे बेचारे भूखे ही काम करते। उन्हें निर्दयता के साथ कोड़ो से पीटा जाता था। उनकी इस दुर्दशा को देखकर श्रीमती हैरियट एलिजबेथ स्टो के हृदय में दया आ गई और उन्होंने दासत्व प्रथा के विरोध में लिखने की प्रतिज्ञा की।

रविवार का दिन था। श्रीमती स्टो गिरजाघर में धर्मोपदेश सुन रही थीं। वहीं पर उन्हें पुस्तक लिखने की प्रेरणा प्राप्त हुई। वहीं पर उन्होंने अपनी पुस्तक का प्रथम अध्याय लिख डाला। उनके बच्चों ने जब यह अध्याय अपनी माता के मुख से सुना तो उनके नेत्रों से आंसू बह निकले। श्रीमती स्टो के पति भी उस अध्याय को सुन कर रोने लगे। इस प्रकार श्रीमती स्टो के ग्रंथ का श्री गणेश हुआ। आज उनके इस ग्रंथ का विश्व की २३ भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। उनकी इस पुस्तक का नाम है—"अंकल टाम्स केबिन"

(टाम काका की कुटिया)। इस पुस्तक को पढ़कर सहस्त्रों व्यक्ति रोये और सहस्त्रों दास प्रथा के कट्टर विरोधी बन गए। प्रत्येक घर में ही नहीं बल्कि बाजारों में, सड़कों पर, और होटलों में छोटे बड़े सभी इस पुस्तक की चर्चा करते हैं। इसी पुस्तक ने उत्तरी अमेरिका वालों की दास प्रथा को समाप्त करने के लिए उत्साहित कर दिया, परन्तु दक्षिणी रियासतों ने इस बात का विरोध किया। परिणाम यह हुआ कि उत्तरी और दक्षिणी रियासतों में युद्ध छिड़ गया और अन्त में दास प्रथा समूल नष्ट हो गई। संसद भवन में श्रीमती स्टो से परिचय होने पर राष्ट्रपति लिंकन ने कहा, "क्या इसी छोटी सी महिला ने यह महान् युद्ध करा दिया ?"

श्रीमती स्टो का जन्म लियोफील्ड (अमेरिका) में १४ जून सन् १८११ ई० को हुआ था। चार वर्ष की अवस्था में ही इनकी माता की मृत्यु हो गई और इनका पालन पोषण कैथराइन (स्टो की बड़ी बहिन) ने किया। हैरियट ने स्कूल में शिक्षा प्राप्त की। सन् १८२३ ई० में दोनों बहनें पिता जी के पास सिनसिनाती नामक ग्राम में चली गयीं। हैरियट कला महाविद्यालय में कैथराइन की सहायक बन गयीं। इन्हें साहित्यिक कार्यों में बहुत रुचि थी। पत्र-पत्रिकाओं में इनके लेख छपते रहते थे। इन्होंने कहानियां भी लिखीं और बाद में एक भूगोल की तुस्तक भी लिखी। सन् १८३६ ई० में इनका विवाह मि० स्टो के साथ हो गया। पति का स्वास्थ्य खराब रहने के कारण श्रीमती स्टो लेख लिखकर धनोपार्जन करती थीं। सन् १८४३ ई० में उन्होंने अपनी कहानियों और स्केचों का संग्रह 'मेफ्लावर' के नाम से प्रकाशित करवाया और सन् १८५२ ई० में उन्होंने अपनी अमर पुस्तक 'टाम काका की कुटिया' प्रकाशित कराई।

श्रीमती स्टो घर का भी सारा काम स्वयं ही करती थीं। बच्चों की सेवा शुश्रूषा करतीं और उनका दाम्पत्य जीवन भी बड़ा मधुर था। पति-पत्नी में एक दूसरे के प्रति अगाध प्रेम था।

सन् १८५९ ई० में हैजे के प्रकोप से सनसनाती ग्राम में एक ही दिन में २५० व्यक्ति मर गए। उनमें स्टो का भी एक बच्चा था। मि० स्टो तो स्वास्थ्य सुधार के लिए बाहर गए हुए थे। श्रीमती स्टो ने अपनी अमर

पुस्तक की रचना इन्हीं दिनों में की। इस पुस्तक के प्रकाशित होते ही इसकी तीन लाख प्रतियां बिक गयीं और अमेरिका के प्रसिद्ध लेखक तथा कवियों के नित्य प्रति बधाई के तार श्रीमती स्टो के पास आते थे। इंग्लैंड, फ्रांस तथा अन्य देशों में भी इस पुस्तक का बहुत आदर किया गया। पेरिस मे तो इस पुस्तक के आधार पर एक ड्रामा खेला गया। पुस्तक के छपने के चार महीने के पश्चात् ही श्रीमती स्टो को दस हजार डालर मिले। इस धन को पाकर उन्होंने यूरोप की यात्रा की और वहां से लौटने पर एक दूसरी पुस्तक लिखी जिसका नाम—"टाम काका की कुटिया की कुन्जी" है। इनके अतिरिक्त श्रीमती स्टो ने और भी कई ग्रंथ लिखे।

सन् १८९६ ई० में श्रीमती स्टो का ८५ वर्ष की आयु में स्वर्गवास हो गया। उनके पति की मृत्यु उनसे दस वर्ष पूर्व हो चुकी थी। श्रीमती स्टो को उनके पति की समाधि के पास ही अंडोवर नामक स्थान में दफना दिया गया।

प्रश्न २०—श्रीमती महादेवी वर्मा के निबन्ध 'जीने की कला' का सार लिखकर उसका आलोचनात्मक परिचय दीजिए। (प्रथमा, सं० २०१४)

उत्तर—सार—किसी भी कार्य को करने के लिए दो बातों की बहुत अधिक आवश्यकता होती है। उनमें एक तो है उसका पूर्ण ज्ञान होना और दूसरा उसका क्रियात्मक प्रयोग है। इन दोनों में से एक के अभाव में भी कार्य सिद्ध नहीं हो पाता है। उदाहरण के लिए हम चित्रकला को लेते हैं। यदि हमें रंग, उसके मिश्रण, तूलिका आदि का तो ज्ञान है परन्तु अभी हमने उसे प्रयोगात्मक रूप में करके नहीं देखा है, तो हमारा चित्रकला विषयक ज्ञान अपूर्ण ही है। यही बात अन्य कलाओं के साथ भी है।

संसार में जीवित रहना भी एक कला है और इस कला में सफलता प्राप्त करने के लिए भी उपरोक्त दोनों बातों का ज्ञान होना आवश्यक है। यदि हम 'सत्य बोलो' के सिद्धान्त को अपना लें, परन्तु उसको प्रयोगात्मक रूप न दें, तो हम समाज तथा व्यक्ति किसी का भी भला नहीं कर सकेंगे, क्योंकि सत्य भी सदा समान नहीं रहता है। वह भी समय और परिस्थिति के अनुसार परिवर्तित होता रहता है। कहने का तात्पर्य यह है

कि जीने की कला के लिए भी ज्ञान तथा तद्विषयक प्रयोग का जानना अति आवश्यक है।

आज निरक्षरता के कारण हमारे देश में बहुत ही कम व्यक्ति जीने की कला को जानते हैं। विशेषकर अशिक्षित स्त्रियां तो प्राचीन रूढ़ियों तथा सिद्धान्तों में कोई भी परिवर्तन करने को तैयार नहीं। वे तो उनका पालन उसी प्रकार करती चली आ रही हैं। इसी कारण उनका जीवन दुःखी है और उन्हें पति का दास बनकर रहना पड़ता है। ऐसी बात नहीं है कि उनके पास जीवन को विकसित करने वाले सिद्धान्तों का अभाव है; परन्तु वे उन सिद्धांतों को प्रयोगात्मक रूप में लाना नहीं जानती हैं। जो नारी पुरुप के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर चुकी हैं यदि फिर भी पुरुष पर उसका कोई अधिकार नहीं, तो यह स्पष्ट है कि वह जीने की कला को पूरी तरह से समझ नहीं पाई है। जिन सिद्धान्तों को वह जानती है वे उसके लिए वरदान न होकर अभिशाप सिद्ध होते हैं।

यदि हम जीवन को सुन्दर और उपयोगी बनाना चाहते हैं तो हमें अपने सिद्धान्तों से सम्बन्ध रखने वाली आन्तरिक भावनाओं तथा वाह्य परिस्थितियों का भी विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए। जब तक बाह्य तथा आन्तरिक भावनाएं एक दूसरे की सहायक नहीं बनेंगी, तब तक हम जीने की कला नहीं सीख सकते। जीने की कला सीखने के लिए बाह्य तथा आन्तरिक भावनाओं का मेल होना अति आवश्यक है।

आलोचनात्मक परिचय :—श्रीमती महादेवी वर्मा का यह निबन्ध उच्च-कोटि का है। इसका केवल उच्च श्रेणी का विद्यार्थी तथा साहित्यकार ही रसास्वादन कर सकते हैं, अन्य नहीं। इसका विपय बहुत गम्भीर है। इसमें वर्मा जी ने 'जीने की कला' का बहुत ही सूक्ष्म रूप से विवेचन किया है। भावों तथा विचारों के सुन्दर गठन ने तो इसे और भी प्रभावशाली बना दिया है। शैली गम्भीर, विचारपूर्ण तथ सुसंस्कृत है। भाषा परमशुद्ध, संस्कृत-मयी, मधुर तथा आकर्षक है।

प्रश्न २१—'स्वदेशी साम्यवाद' का संक्षिप्त सार अपने शब्दों में लिखिए।

(प्रथमा, सं० २०१६

अथवा

'स्वदेशी साम्यवाद के मूल सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए और बताइए कि भारतवर्ष के लिये कौन सी ठीक है—स्वदेशी साम्यवाद तथा विदेशी साम्यवाद ।

उत्तर—हमारे देश में आजकल विदेशी वस्तुओं की भांति विदेशी विचारों का दौर दौरा है। अच्छी बात तो हमें अपने शत्रु से भी सीख लेनी चाहिए। मुसलमानी युग में नवाबी का जोर था, उसके बाद प्रजातन्त्र का और अब तो प्रत्येक रोग की औषधि विदेसी साम्यवाद समझा जाने लगा है। ऐसी बात नहीं है कि हमारे देश में साम्यवाद की भावना नहीं रही है, परन्तु विदेशी मुलम्मे के मुकाबले में स्वदेशी कुन्दन की परख होना कठिन है। स्वदेशी साम्यवाद के प्रमुख मूल सिद्धान्त निम्नलिखित हैं :—

(१) **अहिंसा** :—अपने देश में तो साम्यवाद का प्रथम सिद्धान्त अहिंसा है हिंसा नहीं । यही कारण है कि किसी भी परिस्थिति में राजा साहूकार या जमींदार को मारकर, डाका डालकर या छीनकर दूसरे के माल को हथियाने की शिक्षा हमारे यहां कभी भी नहीं दी गई। जब कोई जाति एक बार हिंसा को अपना लेती है, तो फिर उन्हें परस्पर एक दूसरे के प्रति हिंसात्मक कार्यो के करने से नहीं रोका जा सकता है। भस्मासुर के समान वह सर्वसाधारण को भस्म किए बिना नहीं रह सकता।

(२) **त्याग**—स्वदेशी साम्यवाद का द्वितीय मूल सिद्धान्त है—त्याग। सब मनुष्य शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक शक्तियों में समान नहीं होते हैं और न इनके पास धन ही बराबर होता है। परन्तु हमारे यहाँ यह धर्म समझा जाता है कि जिसके पास जो वस्तु अधिक है वह उसे उस व्यक्ति को दे जिसको उसकी आवश्यकता है जैसे धनवानों को चाहिए कि वे धर्मशालायें कुंए खुदवायें सदाव्रत बांटें आदि ।

(३) **दान**—तृतीय मूल सिद्धान्त दान का है। यह दान छिनवाकर नहीं बल्कि दिलवाकर अपने यहां समाज में समानता उपस्थित की जा सकती है। प्राचीनकाल में सम्राट् हर्षवर्द्धन इसके उदाहरण हैं ।

(४) **प्राणिमात्र तथा भूतमात्र की एकता**—स्वदेशी साम्यवाद का चौथा मूल सिद्धान्त मनुष्य का प्राणिमात्र तथा भूतमात्र की एकता की भावना

में सन्निहित है। धन तथा समाज सम्बन्धी अतर रहते हुए भी हमे मनुष्यमात्र को ही नहीं बल्कि प्राणिमात्र को सम्मान की दृष्टि से देखना चाहिए और उसे उचित आदर देना चाहिए।

प्राचीन काल में हमारे देश मे सभी लोग इन सिद्धान्तों का पालन करते थे और यही उनके फलने-फलने तथा सुखी रहने का एकमात्र कारण था। परन्तु आज तो परिस्थितियों के कारण अपने देश की प्राय: संस्थाये नष्ट-भ्रष्ट हो गई हैं और यही अवस्था अपने स्वदेशी साम्यवाद की भी है। यदि हमारे देश के साम्यवादी स्वदेशी साम्यवाद के सिद्धान्तो का एक बार अध्ययन करें और उसे समझने का यत्न करे, तो यह निश्चय है कि वे उसे विदेशी साम्यवाद की अपेक्षा कहीं ऊंचा समझेगे। परन्तु स्वदेशी साम्यवाद को हम उसी समय जीवित कर सकते है जिस समय हम नकलची न होकर अपने मस्तिष्क से सोचना आरम्भ करेगे तथा स्वदेश और अपनी संस्कृति मे हमारी आस्था होगी। विदेशी शिक्षा तथा विदेशी अनुकरण ने हमें विचारों के क्षेत्र में दास बना दिया है। स्वदेशी शिक्षा और स्वदेश का अनुकरण हमें इस दासता से मुक्त करा सकता है।

प्रश्न २२—निम्नलिखित का जीवन परिचय देते हुए उनकी साहित्य सेवा तथा विशेषकर निबन्ध कला पर प्रकाश डालिए:—

महावीर प्रसाद विद्वेदी, बाबू गुलाबराय, पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी, पंडित बालकृष्ण भट्ट, पंडित प्रतापनारायण मिश्र।

महारीर प्रसाद द्विवेदी (प्रथमा सं०२०१५)

उत्तर—द्विवेदी जी का जन्म संवत् १९२१ विक्रमी में दौलतपुर राय-बरेली में हुआ। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा गाव की पाठशाला में प्रारम्भ हुई। पढ़ने की व्यवस्था ठीक न होने के कारण आपने बम्बई जाकर तार का काम सीखा और फिर जी० आई० पी० रेलवे में तार बाबू हो गए।

अध्ययन की ओर भी आपकी विशेष रुचि थी। इसलिए आपने धीरे-धीरे बंगला गुजराती तथा मराठी भाषाएँ भी सीख लीं और साथ ही संस्कृत का भी अध्ययन किया। कई वर्ष तक सरकारी नौकर करने के पश्चात् आप

'सरस्वती' मासिक पत्रिका के सम्पादक हो गए और पूरे वेग से साहित्यिक क्षेत्र में आ गए।

द्विवेदी जी की हिन्दी सेवा अभूतपूर्व है। आपने हिन्दी भाषा के परिमार्जन तथा परिवर्द्धन की ओर विशेष ध्यान दिया। खड़ी बोली की रचनाओं के तो आप जन्मदाता हैं। आपने भाषा सुधार का बीड़ा उठाया और व्याकरण सम्मत भाषा लिखने की ओर लेखकों का ध्यान ही आकर्षित नहीं किया, वरन् मार्ग भी प्रशस्त किया। आपने हिन्दी भाषा को विविध विषयों के योग्य बनाने का पूर्ण प्रयत्न किया। आपने प्रयत्न करके लेखन शैली में स्थिरता उत्पन्न की। नये-नये लेखकों को प्रोत्साहन दिया। मौलिक साहित्य की वृद्धि में योग दिया। आपकी रचनाओं के द्वारा हिन्दी प्रचार में पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ।

द्विवेदी जी ने कई ग्रंथों की रचना की। इनमें अनूदित ग्रंथों की संख्या मौलिक ग्रंथों की संख्या से अधिक है। आपकी प्रसिद्ध रचनायें निम्नलिखित हैं—

काव्य मंजूषा, कविताकलाप, सुमन, नैषध चरति चर्चा, शिक्षा, स्वाधीनता, हिन्दी भाषा की उत्पत्ति, हिन्दी महाभारत, संपत्तिशास्त्र, विदेशी विद्वान्, रसज्ञरंजन, सुकवि संकीर्तन, साहित्य संदर्भ, साहित्य सीकर।

द्विवेदी जी ने प्रायः तीन प्रकार के लेख लिखे हैं। पहले तो ऐसे विषयों पर हैं जिनका हिन्दी में बिल्कुल भी प्रचार नहीं था। दूसरे प्रकार के लेख आलोचनात्मक हैं और तीसरे प्रकार के खोज, गवेषणा, नाट्यशास्त्र तथा हिन्दी भाषा की उत्पत्ति सम्बन्धी विषयों को लेकर। द्विवेदी जी की रचना-शैली भी तीन प्रकार की है—परिचयात्मक, आलोचनात्मक, गवेषणात्मक।

आपकी भाषा बहुत सरल होती है। आप विषय के अनुरूप भाषा का सृजन करना ही उपादेय मानते थे। संस्कृत के प्रचलित शब्दों के साथ-साथ उर्दू फारसी के प्रचलित शब्दों का भी आपने प्रयोग किया है। उनका विचार था कि हिन्दी को शक्तिशाली बनाने के लिए भाषाओं के शब्दों को अपनाना जरूरी है।

बाबू गुलाबराय (प्रथमा, सं० २०१४)

आपका जन्म संवत् १९४४ में इटावा में हुआ था। आपके पिता धार्मिक विचारों तथा अद्वैत वेदान्त के अनुयायी थे। आपकी माता को सूरदास जी के

पदों से बहुत प्रेम था । इस प्रकार बाल्यकाल में ही आपके दार्शनिक तथा साहित्यिक संस्कार बन गये । पिता की सत्यता तथा ईमानदारी का भी आप पर प्रभाव पड़ा । आपने आगरे से एम० ए० तथा एल० एल० बी० की परीक्षाएं पास की । विद्याध्ययन समाप्त करने के पश्चात् आप सेन्ट जान्स कालेज में तर्कशास्त्र के अध्यापक हो गये । इसके पश्चात् आपने महाराज छतरपुर के दार्शनिक तथा साहित्यिक सलाहकार के पद पर कार्य किया।

छतरपुर में आप कई पुराने साहित्य सेवियों के सम्पर्क में आये । तभी से आपकी रुचि खेल आदि लिखने की ओर अग्रसर हो गई । मित्र बन्धुओं ने भी आपको प्रोत्साहित किया । आपने नवरस, कर्त्तकशास्त्र, तर्कशास्त्र, प्रबन्ध प्रभाकर, हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास, विज्ञानवार्ता, हिन्दी नाट्य विमर्ष, बौद्ध धर्म तथा मेरी असफलताएं आदि अनेक ग्रंथ लिखे हैं। आपने साहित्यिक विषयों पर कई निबन्ध तथा आलोचनात्मक लेख लिखे हैं । पिछले कुछ दिन हुए इनके देहावसान से हिन्दी जगत अनाथ हो गया।

आपकी गणना हिन्दी के उच्चकोटि के निबन्धकारों तथा आलोचकों में थी। आपकी भाषा शैली परिमार्जित गम्भीर, विवेचनापूर्ण तथा आकर्षक है। आप अपनी आलोचना में दोषों को प्रकट करने का प्रयत्न नहीं करते हैं । अपितु गुणों और विशेषताओं की ओर ध्यान देते हैं । आपके निबन्धों में गुरु गंभीरता के साथ-साथ मीटी तया मधुर चुटकियों के द्वारा भी भाषा तथा विचारों में प्रवाह तथा मनोरंजन का प्रादुर्भाव हुआ है । आप सरल भाषा लिखते थे ।

पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी - (प्र० सं० २०१४)

आपका जन्म दुबे का छपरा (वलिया) गांव में संवत् १९६४ में हुआ था। आपके पूर्वज संस्कृत तथा ज्योतिष विद्या के विद्वान् थे । आपकी माता भी विदुषी थी। माता-पिता की विद्वता का प्रभाव बाल्यावस्था में ही आप पर पड़ा। आपने काशी में रहकर संस्कृत में आचार्य की परीक्षा पास की । साथ ही अंग्रेजी का अध्ययन करते रहे । विद्याध्ययन समाप्त करके आप कवीन्द्र रवीन्द्र द्वारा स्थापित शान्ति निकेतन में हिन्दी के अध्यापक हो गये । आपने हिन्दी लेखन कार्य यहीं प्रारम्भ किया। शांति निकेतन में आपने संत साहित्य का विशेष अध्ययन किया । आपकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर लखनऊ

विश्वविद्यालय ने आपको डी० लिट० की उपाधि से विभूषित किया । 'कबीर' तथा सूर साहित्य' नामक ग्रंथों पर आपको पुरस्कार प्राप्त हुये । आजकल आप पंजाब विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष हैं ।

इस समय द्विवेदी जी बहुत तेजी से साहित्य निर्माण करने में लगे हुए हैं । आपके ग्रन्थों ने इस समय हिन्दी साहित्य के कई अभावों की पूर्ति की है । आलोचना, निबन्ध तथा संत साहित्य की आपकी रचनाओं में प्रधानता है । अन्वेशण तथा सांस्कृतिक विषयों पर भी आपकी लेखनी अबाधगति से चल रही है।

द्विवेदी जी की भाषा-शैली संस्कृत से प्रभावित सुन्दर तथा बोधगम्य है । विषय के अनुकूल आप भाषा लिखते हैं । शुक्ल जी के पश्चात् द्विवेदी जी ही ठोस साहित्य सृजन की ओर अग्रसर हो रहे हैं ।

प्रमुख रचनाएं--कबीर, सूरसाहित्य, हिन्दी साहित्य की भूमिका, अशोक के फूल, बाणभट्ट की आत्मकथा, प्राचीन भारत का कला-विकास, हमारी साहित्यिक समस्याएं, विचार और वितर्क, नखदर्पण में हिन्दी कविता, सूर की कविता, नाथ संप्रदाय, कबीर पन्थी साहित्य आदि ।

पंडित बालकृष्ण भट्ट

भट्ट जी का जन्म प्रयाग में संवत् १६०१ में हुआ । घर पर रहकर संस्कृत का अध्ययन किया । फिर अंग्रेजी पढ़ने के लिए स्कूल में भर्ती हो गये, परन्तु शीघ्र ही स्कूल छोड़कर फिर संस्कृत के अध्ययन में लग गए । आरम्भ से ही हिन्दी गद्य-रचना की ओर आपकी विशेष रुचि थी । शीघ्र ही आपकी गणना हिन्दी के प्रमुख गद्य लेखकों में होने लगी ।

सन् १८७६ ई० में भट्ट जी 'हिन्दी प्रदीप' नामक मासिक पत्र के संपादक हो गये । आपने ३२ वर्ष तक इस पत्र को बड़े परिश्रम तथा त्याग से चलाया । इस पत्र के द्वारा आपने साहित्य की बहुत सेवा की ।

भट्ट जी उच्च कोटि के निबन्धकार तथा साहित्य निर्माता हैं आपकी लेखन शैली दो प्रकार की है —(१) परिचयात्मक (२) भावात्मक । प्रथम प्रकार की शैली की भाषा चलती हुई है । उसमें प्रवाह तथा सरलता है । कहीं पर छोटे वाक्य हैं और कहीं पर उन्हें 'कि' अथवा 'और' से मिला कर लम्बा बनाया गया है । दूसरे प्रकार की शैली प्रायः साहित्यिक निबन्धों की है । इस शैली की सबसे बड़ी विशेषता है भाषा की विशुद्धता । भट्ट जी

साहित्यिक रचना में आलंकारिक शैली के पक्षपाती थे। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का प्रयोग आपके साहित्यिक निबन्धों में प्राय: मिलता है। चुटीला व्यंग्य, मुहावरों का प्रयोग, कहीं-कहीं उर्दू, फारसी तथा अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग भी आपकी गद्य शैली की विशेषता है।

प्रमुख रचनायें—उपन्यास—सौ अजान एक सुजान, नूतन ब्रह्मचारी।
साहित्यिक लेखों का संग्रह—साहित्य सुमन।
नाटक—रेल का विकट खेल, बाल विवाह आदि।
निबन्ध—बातचीत आदि।

पं० प्रताप नारायण मिश्र (प्रथमा, सं० २०१५)

मिश्र जी का जन्म सन् १८५६ ई० में जिला उन्नाव के बैजे ग्राम में हुआ था। अभी मिश्र जी बाल्यावस्था में ही थे कि उनके पिता जी का स्वर्गवास हो गया, इसलिए स्कूल छोड़ देना पड़ा। आपने घर पर ही रह कर विद्याध्ययन किया। शीघ्र ही मिश्र जी ने हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, फारसी तथा अंग्रेजी की पर्याप्त जानकारी कर ली। धीरे-धीरे आपकी रुचि हिन्दी गद्य तथा कविता लिखने की ओर हुई। आपको समाचार पत्र पढ़ने का बहुत शौक था। सन् १८८९ ई० में आप 'हिन्दी हिन्दुस्तान' के सहकारी सम्पादक नियुक्त हो गये। इस पत्र में आपने अपनी लेखनी का चमत्कार दिखाया जिससे आपकी ख्याति बढ़ने लगी। धीरे-धीरे आप एक महान् कवि तथा गद्य लेखक बन गये।

मिश्र जी के लेखों में विनोद तथा व्यंग्य प्रणाली है। अपने अपने लेखों में चलती देहाती कहावतों का प्रयोग बड़ी कुशलता से किया है। आप भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी के सहयोगियों तथा अनुयायियों में थे। आपने अपने जीवन के अन्तिम दिनों में 'ब्राह्मण' नामक पत्र निकाला। अन्त में रोगग्रस्त रहने के कारण संवत् १९५१ ई० में आपका स्वर्गवास हो गया।

रचनायें—रामसिंह, इन्दिरा, राधारानी, युगलाँगुलीय, पंचामृत, नीति रत्नावली, कथामाला, संगति, शाकुन्तल, कलि कौतुक रूपक, कलि प्रभाव नाटक, हठीहम्मीर नाटक, गो संकट नाटक, मन की लहर, भारत दुर्दशा, प्रताप संग्रह, रसखान शतक, मानस विनोद आदि।

व्याख्या भाग

(१) आपके दर्शन से······स्थिर रहे। (पृष्ठ ७०)

प्रसंग—प्रस्तुत गद्यांश श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कृत 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक से लिया गया है। जब राजा हरिश्चन्द्र अपनी परीक्षा में सफल हो जाते हैं और इन्द्र तथा महर्षि विश्वामित्र अपनी कुचेष्टा में असफल होते हैं, तब भगवान् राजा को दर्शन देते हैं और उसके पुत्र रोहतास को जीवित कर देते हैं। इन्द्र भी उस समय वहाँ आ पहुंचता है। भगवान् प्रसन्न होकर राजा से कोई वरदान माँगने के लिए कहते हैं और इन्द्र राजा हरिश्चन्द्र को स्पष्ट शब्दों में सारे षड्यन्त्र का भेद बता देता है। तब राजा गद्गद् होकर भगवान् से विनती करते हैं कि :—

व्याख्या—हे प्रभु ! आपके दर्शन करके मेरी सभी कामनायें पूरी हो गई हैं, परन्तु फिर भी आपकी आज्ञा का पालन करता हुआ मैं आपसे यही वरदान मांगता हूं कि मेरी प्रजा को भी आप मेरे साथ स्वर्ग भेज दीजिये और भूमण्डल पर से कभी भी सत्य का लोप न हो, वह सदैव स्थिर रहे। यही मेरी इच्छा है।

(२) खड्गसिंह का मुंह······विश्वास न करेंगे। (पृष्ठ ६१)

प्रसंग—प्रस्तुत गद्यांश श्री सुदर्शन द्वारा लिखित 'हार की जीत' शीर्षक कहानी में से उद्धृत किया गया है जब खड्गसिंह एक गरीब दुःखी बीमार का छद्मवेश बनाकर बाबा भारती से घोड़ा ठग लेता है और भागता है तो बाबा भारती उसे रोक कर कहते हैं कि मैं अब तुम से घोड़ा लौटाने के लिए नहीं कहूंगा, परन्तु इस घटना के विषय में किसी से कुछ न कहना।

व्याख्या—बाबा भारती के मुंह से उपर्युक्त शब्द सुनकर खड्गसिंह को बहुत आश्चर्य होता है। वह तो सोच रहा था कि बाबा भारती से घोड़ा छलकर उसे वहाँ से भागना पड़ेगा, परन्तु बाबा ने तो स्वयं ही उससे कह दिया कि इस घटना के बारे में किसी से कुछ न कहना। वह सोचता है कि बाबा भारती का यह कहने का मतलब क्या है। बहुत सोच विचार करने पर भी जब वह किसी परिणाम पर न पहुंच पाया, तो उसने बाबा भारती के सामने अपनी पराजय स्वीकार करके अपने नेत्र नीचे कर लिए और उनसे पूछा कि इसके कहने में क्या भय है। इस पर बाबा भारती ने उत्तर दिया कि यदि तुमने इस घटना को लोगों में प्रकट कर दिया, तो फिर गरीबों और दुःखियों का लोग विश्वास करना ही छोड़ देंगे। उनके साथ फिर कोई सहानुभूति नहीं रखेगा। इससे निर्धन मनुष्यों को और अधिक कष्ट होगा।

—:०:—

हिन्दी साहित्य का इतिहास

प्रश्न १—हिन्दी-साहित्य का आरम्भ कब हुआ? इसके विकास की मूल प्रेरणाओं के कारण का स्पष्ट निर्देश करते हुए उसमें जैन-साहित्य और नाथ-सम्प्रदाय का योग एवं स्थान निर्धारित कीजिए।

उत्तर—हिन्दी-साहित्य का प्रारम्भ कब हुआ, यह प्रश्न काफी दिनों से विवाद का विषय बना हुआ है और आज भी इसका कोई सर्वमान्य समाधान नहीं मिल सका है। इस प्रश्न की गम्भीरतम समस्या यह है कि अपभ्रंश को हिन्दी का पूर्वरूप माना जाय अथवा नहीं? इसी प्रश्न के उत्तर में हिन्दी-साहित्य की प्रारम्भिक सीमा छिपी हुई है। कुछ विद्वान अपभ्रंश को हिन्दी का स्वरूप मानते हैं और कुछ नहीं। अतः सुविधा के लिए इन्हें पहला वर्ग और दूसरा वर्ग कह सकते हैं।

पहला-वर्ग—इस वर्ग के विद्वान् अपभ्रंश को हिन्दी का पूर्वरूप मानकर हिन्दी साहित्य की प्रारम्भिक सीमा का निर्धारण करते हैं। मिश्रबन्धु, शिवसिंह सगर, राहुल सांस्कृत्यायन, कालीप्रसाद जायसवाल, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' और डा० रामकुमार वर्मा इनमें प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं। हिन्दी साहित्य के उद्भव से पूर्व अपभ्रंश का बोलबाला था, इसमें कोई सन्देह नहीं और इसे दोनों वर्गों के विद्वानों ने अपने-अपने इतिहासों में लिखा भी है, यह बात दूसरी है कि किसी ने इसे अपभ्रंश काल कहा, किसी ने संधिकाल और किसी ने इसे प्रस्तावना।

अपभ्रंश भाषा का साहित्यिक भाषा के रूप में सर्व-प्रथम उल्लेख बल्लभी के राजा धीरसेन (द्वितीय) के शिलालेखों में मिलता है जिसमें उसके पिता गृहसेन को, जिसका काल सं० ६५० है, संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं का कवि कहा गया है। इससे सिद्ध होता है कि छठी या सातवीं शताब्दी में अपभ्रंश भाषा साहित्यिक भाषा के रूप में काफी प्रसिद्ध प्राप्त कर चुकी थी। स्वयंभू, सरहपा और पुष्प अपभ्रंश भाषा के श्रेष्ठ कवि गिने जाते हैं। अतः इन्हीं कवियों के काल को लेकर हिन्दी-साहित्य का आरम्भ माना जाता है।

स्वयंभू का काल आठवीं शताब्दी माना जाता है। 'पउम चरिउ' (पद्म-चरित) इसकी सर्वश्रेष्ठ कृति है। राहुल जी इसी कवि से हिन्दी साहित्य का आरम्भ मानते हैं और 'पउम चरिउ' को हिन्दी की सर्वप्रथम रचना। काशी-प्रसाद जायसवाल सिद्ध कवि सरहपा को हिन्दी का आदि कवि मानते हैं जिन

का काल ७६० ई० के लगभग है। डॉ० रामकुमार वर्मा भी सिद्ध-साहित्य को हिन्दी-साहित्य में सम्मिलित करते हुए उसका प्रारम्भ सं० ७०० से मानते हैं।

हिन्दी-साहित्य के इतिहास के प्रथम भारती लेखक शिवसिंह सेंगर पुष्प कवि को हिन्दी का आदि कवि मानकर हिन्दी-साहित्य का आरम्भ सं० ७७० से मानते हैं और पुष्प के अलंकार ग्रंथ को हिन्दी की सर्वप्रथम रचना। यह पुष्प कवि कौन था, इसके विषय में अभी तक असंदिग्ध रूप से कुछ भी निर्णय नहीं हो पाया। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी का अनुमान है कि यह पुष्प कवि अपभ्रंश का पुष्पदन्त कवि ही है। यदि यह अनुमान ठीक है, तब तो हिन्दी-साहित्य का आरम्भ १०वीं शताब्दी में आ पड़ता है, क्योंकि यही इसका काल है।

दूसरा-वर्ग—दूसरा वर्ग उन विद्वानों का है जो अपभ्रंश को हिन्दी का पूर्वरूप स्वीकार नहीं करते। इन विद्वानों में आचार्य शुक्ल, डॉ० श्यामसुन्दर दास, पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी और डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी प्रमुख हैं। पहले आचार्य शुक्ल ने अपभ्रंश को 'प्राकृताभास-हिन्दी' माना था, किन्तु बाद में उनकी यह मान्यता बदल गई। पं० गुलेरी ने तो स्पष्ट शब्दों में कहा है कि अपभ्रंश को पुरानी हिन्दी नहीं कहा जा सकता। डॉ० द्विवेदी का कथन है कि यद्यपि अपभ्रंश से ही हिन्दी का विकास हुआ है, किन्तु अपभ्रंश को हिन्दी का ही पूर्वरूप मानना उचित नहीं।

इस वर्ग के विद्वानों ने कुछ वर्षो के हेरफेर के साथ हिन्दी-साहित्य का प्रारम्भ विक्रमी अठारहवीं शताब्दी माना है। यही काल सीमा उचित भी जान पड़ती है, क्योंकि अपभ्रंश से न केवल हिन्दी, अपितु समूची भारतीय भाषाओं का विकास हुआ है, अतः केवल मात्र हिन्दी का आधिपत्य नहीं थोपा जा सकता।

प्रेरणा-स्रोत—सामान्यतः साहित्य की प्रेरणाओं का उल्लेख करते समय पूर्ववर्ती और तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों का दिग्दर्शन कराया जाता है। कुछ सीमा तक यह दिग्दर्शन ठीक है, क्योंकि साहित्य उस दया हृदय का प्रतिरूप है जो सभी परिस्थितियों से थोड़ा-बहुत प्रभावित होता है; किन्तु यहाँ यह भी स्मरण रखना आवश्यक है कि हृदय बाह्य परिस्थितियों की अपेक्षा—अर्थात् राजनीतिक और सामाजिक उथल-पुथलों की अपेक्षा—आन्तरिक परिस्थितियों—साहित्यिक कृतियों से अधिक प्रभावित होता है अतः साहित्य का मूल प्रेरक पूर्ववर्ती साहित्य ही होता है।

इस दृष्टि से विचार करने के लिए हमें आदिकाल के पूर्व की साहित्यिक परिस्थितियों पर एक विहंगम दृष्टि डालना आवश्यक है। उस काल में बज्र-यानी और सहजयानी सिद्धों, नाथ-पन्थी योगियों जैन धर्म के अनुयायी विरक्तों मुनियों एवं गृहस्थ उपासकों और वीरता तथा शृंगार का चित्रण करने वाले चारण तथा भाटों आदि की रचनाएँ विशेष रूप से हुईं और इन सबका प्रभाव हिन्दी के आदिकाल पर स्पष्टतः देखा जा सकता है। इन प्रेरणाओं में से दो साहित्यकारों ने अधिक प्रभाव डाला। वे हैं जैन-साहित्य और नाथ-साहित्य। अतः इनका कुछ विस्तार से वर्णन करना अनुचित न होगा।

१. **जैन-साहित्य**—जैन-साहित्यकारों का यद्यपि प्रधान ध्येय अपने मत के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करना था, तथापि इनकी कृतियों में साहित्य-तत्त्वों का भी अभाव नहीं है। इन कवियों ने पुराणों से, जनश्रुतियों से और लोक-कथाओं से आख्यान लेकर अपने काव्यों की रचना की। स्वयंभ् और पुष्पदन्त इस धारा के गण्यमान कवि हैं। स्वयंभू की सर्वोत्कृष्ट रचना 'पउम चरिउ' है जिसमें कथा-प्रसंगों की मार्मिकता, चरित्र-चित्रण की पटुता, प्रकृति-वर्णन की उत्कृष्टता और अलंकारिक तथा हृदयस्पर्शी उक्तियों की प्रचूरता है। इनकी राज-स्तुतियाँ तो ज्यों की त्यों आदिकाल की प्रमुखतम प्रवृत्ति ही वन गई।

भाव पक्ष के अतिरिक्त इसके कला-पक्ष ने भी आदिकाल के कवियों को प्रभावित किया। अपभ्रंश साहित्य में सामान्यतः तीन प्रकार की रचना-शैलियाँ प्रचलित थीं—दोहा शैली, पद्धरिया शैली और गेय शैली। इन तीन शैलियों के दर्शन हिन्दी-साहित्य में होते है। चन्द ने इन सभी शैलियों का खुलकर और सजीवता से प्रयोग किया है। 'संदेश रासक' की गेय पद्धति अत्यन्त ही भावपूर्ण है।

२. **नाथ-साहित्य**—जैन साहित्य की भाँति नाथ-साहित्य का प्रभाव भी हिन्दी साहित्य पर कम नहीं है। इस साहित्य के प्रमुखतम कवि सरहपा हैं। यह नाथ और सिद्ध संसार से विरक्त होते थे और लोगों को परमार्थ एवं वैराग्य का उपदेश देते थे। कबीर में तो नाथ और सिद्ध साहित्य का प्रभाव वहुत ही गहरा बनकर प्रकट हुआ है। इनकी दार्शनिक पदावली, प्रतीक, उपमा आदि सभी बातें हिन्दी की निर्गुणधारा में देखी जा सकती है। हिन्दी साहित्य के मध्यकाल और उत्तर मध्यकाल में जो गोपी-लीला एवं अभिसार के वर्णन मिलते हैं, उनका पूर्वरूप इस साहित्य में देखा जा सकता है। उपदेशात्मकता की प्रधानता के कारण इस साहित्य में रागात्मकता का अभाव सा ही है, फिर भी

उसकी प्रभावोत्पादकता में किसी प्रकार का संदेह नहीं किया जा सकता।

योगदान एवं स्थान—इस प्रकार यह स्पष्ट रूप में कहा जा सकता है कि जैन साहित्य और नाथ-साहित्य का हिन्दी-साहित्य में अपूर्व योगदान है विशेषतः निर्गुणपन्थी सन्तों पर। यदि ये साहित्य न होते तो क्या तब भी हिन्दी में निर्गुण सन्तों का आविर्भाव होता, कबीर जैसे महत्त्वपूर्ण कवि हिन्दी के रंगमंच पर अवतीर्ण हो सकते थे, निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। अतः हिन्दी के स्थान में इन दोनों साहित्यों का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है।

प्रश्न २—हिन्दी साहित्य के इतिहास के काल-विभाजन तथा नामकरण पर प्रकाश डालिए।

उत्तर—साहित्य मानसी सृष्टि है और मन अपने वातावरण से सदैव प्रभावित होता रहता है, इसलिए साहित्य की प्रवृत्तियाँ भी बदलती रहती हैं। कभी किसी प्रवृत्ति का प्राधान्य होता है और कभी किसी का। इन्हीं प्रवृत्तियों के आधार पर आचार्य शुक्ल ने हिन्दी-साहित्य के कालों का विभाजन इस प्रकार किया था—

१. वीरगाथा काल	सं० १०५० से १३७५ तक
२. भक्ति काल	सं० १३७५ से १७०० तक
३. रीति काल	सं० १७०० से १६०० तक
४. आधुनिक काल	सं० १६०० से आज तक

किन्तु परवर्ती इतिहासकारों को यह विभाजन कुछ उचित नहीं जान पड़ा, यहाँ तक कि इनकी सीमायें और नाम भी ठीक नहीं जँचे। अतः आधुनिक विद्वान् प्रायः इन कालों का विभाजन इस प्रकार करते हैं—

१. आदिकाल	सन् १८०० से १३०० तक
२. मध्यकाल	सन् १३०० से १८५० तक
३. आधुनिक काल	सन् १८५० से आज तक

अब संक्षेप में इस विभाजन और उसकी विशेषताओं पर प्रकाश डाला जाता है—

१. आदिकाल—इसका समय प्रायः सन् ८०० से १३०० ई० तक माना जाता है। इस काल में अपभ्रंश भाषा के साहित्य का विशेष रूप से प्राधान्य रहा। साथ ही 'रासो' परम्परा भी खूब प्रचलित रही। कुछ भक्त और शृंगारी कवियों की रचनायें भी उपलब्ध होती हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इसका समय सन् १००० से १४०० तक माना है।

२. मध्यकाल—इसका समय सन् १३०० से १८५० तक है। इसके दो भाग हैं—पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध। पूर्वार्द्ध भाग में भक्ति काल आता है जिसका समय सन् १३०० से १६५० है। इस काल में भक्ति-विषयक रचनाओं की ही धूम रही। भाव और कला दोनों ही दृष्टियों में यह काल अत्यन्त महत्व का है। इसलिए इसे हिन्दी-साहित्य का 'स्वर्णकाल' कहा जाता है। आचार्य शुक्ल ने इस काल की रचनाओं को दो धाराओं में विभक्त किया है—निर्गुण-धारा और सगुण-धारा। फिर क्रमशः इनके ज्ञानश्रयी और प्रेममार्गी धारा; तथा राम काव्य-धारा और कृष्ण काव्य-धारा के दो-दो उपभेद किये हैं। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इस काल को चार शीर्षकों में विभाजित किया है—निर्गुण भक्ति का साहित्य, कृष्ण भक्ति का साहित्य, राम भक्ति का साहित्य और प्रेम कथाओं का साहित्य।

उत्तरार्द्ध को आचार्य शुक्ल ने रीतिकाल कहा है और परवर्ती विद्वानों ने शृंगार काल। इसका समय सन् १६५० से १८५० तक माना गया है। आचार्य शुक्ल ने इसके प्रमुखतः दो भेद किए हैं—रीति-कवि और रीति-मुक्त कवि। इसमें एक स्वच्छन्दधारा के कवियों का भी वर्ग है। डॉ० द्विवेदी इस काल का समय १६वीं शताब्दी के मध्य भाग से १८वीं शताब्दी के मध्य भाग तक ही मानते हैं, जबकि आचार्य शुक्ल द्वारा इसकी सीमायें सं० १७०० से १६०० तक हैं। डॉ० द्विवेदी ने इस काल के कुछ उप-विभाग भी किये हैं।

आधुनिक काल—इसका प्रारम्भ सन् १८५० से माना जाता है। आचार्य शुक्ल ने इसका नाम गद्य-काल रखकर इसके दो भाग किये—गद्य-खण्ड तथा पद्य-खण्ड। डॉ० द्विवेदी ने ऐसे कोई विभाग नहीं किये, बल्कि समूचे काल का एक साथ ही वर्णन किया है।

इन कालों के अतिरिक्त एक और काल भी है जो इन सबसे पहले आता है। आचार्य शुक्ल ने उसे अपभ्रंश काल, डॉ० रामकुमार वर्मा ने 'सन्धिकाल' कहा है तथा डॉ० द्विवेदी ने उसे 'प्रस्तावना' का रूप दिया है।

नामकरण—अब इन कालों के नामकरण पर भी तनिक विचार कर लें। उपर्युक्त कालों में केवल दो ही काल ऐसे हैं जो नामकरण के विषय में विवाद का विषय बने हुए हैं—एक है आदिकाल और दूसरा है रीतिकाल। इसमें भी आदिकाल का विवाद अभी ज्यों-का-त्यों है।

१. आदिकाल—हिन्दी साहित्य के सर्वप्रथम भारतीय लेखक शिवसिंह सेंगर ने इस काल को 'आदिकाल' का ही नाम दिया था, किन्तु आचार्य शुक्ल

को यह जँचा नहीं। उन्होंने इसे 'वीरगाथा काल' कहा, परन्तु परवर्ती विद्वानों को यह भी स्वीकार्य न हो सका। फलतः डॉ० रामकुमार वर्मा इसे चारण-'काल' और डॉ० द्विवेदी 'आदिकाल' कहते हैं। आजकल 'आदिकाल' ही अधिक प्रचलित होता जा रहा है, यद्यपि स्वयं डॉ० द्विवेदी ने यह स्वीकार किया है कि यह नामकरण भी सर्वांगतः पूर्ण नहीं है, तथापि किसी उपयुक्त नाम के अभाव में यही उचित भी है।

२ रीतिकाल—यह नाम आचार्य शुक्ल का दिया हुआ है, पर परवर्ती विद्वानों ने, विशेषतः पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने, इसे अनुचित सिद्ध किया और इसे श्रृंगार काल कहना ही उचित समझा। आजकल ये दोनों नाम प्रचलित हैं। इस पर अधिक विवाद के लिए इसलिए गुंजायश न हो सकी कि स्वयं आचार्य शुक्ल भी इस नाम के पक्ष में थे।

प्रश्न ३—हिन्दी के आदिकाल को वीरगाथा काल नाम देना कहाँ तक उपयुक्त है? विवेचना कीजिए।

उत्तर—हिन्दी-साहित्य के आदिकाल से सम्बन्धित दो समस्यायें हैं—एक तो उसकी आरम्भिक सीमा निर्धारण करने की और दूसरी उसके नामकरण की। इन दोनों में पहली समस्या अपेक्षाकृत अधिक गम्भीर है, परन्तु दूसरी यदि बहुत गम्भीर नहीं तो महत्वपूर्ण अवश्य है।

श्री शिवसिंह सेंगर ने इस काल का नाम आदिकाल रक्खा था, किन्तु आचार्य शुक्ल को जंचा नहीं। उन्होंने इसका नाम वीरगाथा काल रख दिया। अपने इस नामकरण का आधार बताते हुए उन्होंने लिखा है कि जिस काल-खण्ड के भीतर किसी विशेष ढंग की रचनाओं की अधिकता दिखलाई पड़ी है, वह एक पृथक् काल माना गया है। उसका नामकरण उन्हीं रचनाओं के स्वरूप के अनुसार किया गया है। इसका अर्थ यह है कि इस काल में शुक्ल जी ने वीर-रस-प्रधान रचना का आधिक्य देखा है, उसी के अनुसार इसका नाम वीरगाथाकाल रख दिया है। शुक्ल जी के अनुसार इस काल की रचनायें ये हैं—

१. खुमान रासो
२. वीसलदेव रासो
३. पृथ्वीराज रासो
४. हम्मीर रासो
५. जयचन्द प्रकाश
६. जयमयंक जस चन्द्रिका
७. परमाल रासो
८. विजयपाल रासो
९. कीर्तिलता
१०. कीर्तिपताका

११. विद्यापति की पदावली   १२. खुसरो की पहेलियाँ

वीरगाथाकाल नाम ठीक नहीं—इसमें सन्देह नहीं कि इन काव्यों में अधिकांश काव्य वीररस से परिपूर्ण हैं, किन्तु प्रश्न यह है कि क्या यह सूची प्रामाणिक है ? इनमें चार पुस्तकें—विजयपाल रासो, हम्मीर रासो, कीर्तिलता और कीर्तिपता का तो अपभ्रंश की हैं, अतः इन्हें इस काल में सम्मिलित नहीं किया जा सकता। विद्यापति की पदावली और खुसरो की पहेलियों का वर्ण्य विषय वीररस नहीं। जयचन्द-प्रकाश और जयमयंक जस चन्द्रिका केवल नोटिस मात्र हैं, आज तक ये उपलब्ध नहीं हुईं। अब केवल रह जाती हैं ये पुस्तकें—खुमान रासो, पृथ्वीराज रासो, बीसलदेव रासो और परमाल रासो परवर्ती खोजो ने यह सिद्ध कर दिया है कि ये पुस्तकें प्रामाणिक नहीं मानी जा सकतीं। क्योंकि ये रचनायें काफी बाद की लिखी हुई प्रतीत होती हैं। पृथ्वीराज रासो की प्रमाणिकता का द्वन्द्व तो हिन्दी-साहित्य की एक महत्वपूर्ण घटना ही बन गया है। कहने का भाव यह है कि जिन काव्य-कृतियों को आधार मानकर शुक्ल जी ने इस काल का नामकरण किया था, वे इतिहास की कसौटी पर सही नहीं उतरतीं। इसलिए जब आधार ही समाप्त हो गया तो नामकरण अपने-आप गलत सिद्ध हो जाता है।

जहाँ तक प्रवृत्ति का सम्बन्ध हैं डॉ० मोतीलाल मेनारिया रासो रचना को किसी काल की प्रवृत्ति ही नहीं मानते। उनका कहना है कि रासो-ग्रन्थि जिसके आधार पर वीरगाथा काल नाम दिया गया है, राजस्थान के किसी समय-विशेष की साहित्यिक प्रवृत्ति को सूचित नहीं करते, केवल चारण और भाट आदि कुछ वर्ग के लोगों की जन्म-जात मनोवृत्ति को प्रकट करते हैं। यदि इनकी रचनाओं के आधार पर कोई निर्णय किया जाय तो आज भी राजस्थान में वीरगाथा काल ही चल रहा है, क्योंकि चारण और भाट अपने आश्रयदाताओं के कीर्ति-ग्रंथ आज भी उसी उत्साह से लिख रहे हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि रासो के आधार पर वीररस की प्रवृत्ति को किसी काल विशेष की सीमाओं में बांध देना उचित नहीं है।

आदिकाल ही ठीक है—इन तर्कों के आधार पर आधुनिक विद्वानों ने इस काल का वीरगाथा काल नाम अनुचित ठहराया है और इसका फिर से 'आदिकाल, नाम रक्खा है। यद्यपि यह नाम किसी प्रवृत्ति विशेष से सम्बन्धित न होकर काल की सीमाओं का ही सूचक है, तथापि यह अपेक्षाकृत ठीक है, इसमें अधिक विवाद या भ्रम में पड़ने की गुंजायश नहीं है, किन्तु यह नामकरण

बिलकुल ही शुद्ध हो, ऐसी बात नहीं है। इसमें प्रमुख नामवर्त्ता डॉ० हजारी-प्रसाद द्विवेदी भी इस मत से सहमत हैं कि जब तक किसी अन्य उचित एवं पूर्णांग नाम की खोज नहीं हो जाती, तब तक के लिए यह नाम बुरा नहीं है। स्वयं उन्हीं के शब्दों में—वस्तुतः हिन्दी का 'आदिकाल' शब्द एक प्रकार की भ्रामक धारणा की सृष्टि करता है और स्रोता के चित्त में यह भाव पैदा करता है कि यह काल कोई आदिम मनोभावनापन्न, परम्परा-विनमुक्त, काव्य रूढ़ियों से अछूत साहित्य का काल है। यह ठीक नहीं है। यह काल बहुत अधिक परम्परा-प्रेमी, रूढ़-ग्रस्त और सजग-सचेत कवियों का काल है।...यदि पाठक इस धारणा से सावधान रहें तो यह नाम बुरा नहीं है।"

प्रश्न ४—हिन्दी प्रदेश की राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों का हिन्दी साहित्य के आदिकाल पर क्या प्रभाव पड़ा ?

अथवा

'समाज की परिस्थितियों के अनुसार साहित्य सदा अपना रूप परिवर्तित करता रहता है।' यह उक्ति हिन्दी साहित्य के आदिकाल पर कहाँ तक चरितार्थ होती है ?

उत्तर—हिन्दी में यह वाक्य बहुत ही प्रचलित है कि 'साहित्य समाज का दर्पण है।' इसका अर्थ यह है कि साहित्य और समाज का आपस में गहरा सम्बन्ध है। यदि समाज साहित्य को जीवन देता है तो साहित्य उस जीवन में समाज की छाया अंकित कर देता है। इस प्रकार कोई भी प्रगतिशील साहित्य समाज के प्रभाव से नहीं बच सकता। उस पर काल की राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों का अवश्य प्रभाव पड़ता है। आदिकाल के विषय में भी यह बात ठीक है। अब देखना यह है कि उस काल की राज-नीतिक और सामाजिक परिस्थितियाँ क्या थीं तथा आदिकाल उससे कहां तक प्रभावित हुआ ?

राजनीतिक परिस्थितियां—हर्ष की मृत्यु के बाद कोई ऐसा शक्तिशाली राजवंश न रह गया था जो कि समूचे देश को अखंडता के सूत्र में बाँध सकता फलतः देश छोटे-छोटे टुकड़ों में बँट गया था। इस समय के प्रसिद्ध कुल तथा राज्य थे—कन्नौज के गाहड़वाल, गुजरात के सोलंकी, मालवा के पंवार, सांभर दिल्ली के चौहान और कालिंजर के चन्देले और मेवाड़ के गहलौत। ये राज-कुल बिना किसी विशेष बात के परस्पर लड़ते रहते थे, बल्कि युद्ध करना

क्षत्रिय का धर्म था, उनकी मान और प्रतिष्ठा का सूचक था। जिस प्रकार ठाली बंधा हुआ घोड़ा बेकार हो जाता है, उसी प्रकार युद्ध के अभाव में ये राजा अपने जीवन को बेकार और भार-स्वरूप समझते थे। इसीलिए किसी न किसी बात का बहाना लेकर युद्ध की पृष्ठ-भूमि तैयार कर ली जाती थी और इन बातों में सबसे प्रमुख था कन्याओं का अपहरण। जिसकी कन्या सुन्दर होती, अन्य राजा उसी के द्वारा पर जा अड़ते और या तो कन्या का डोला माँगते या युद्ध की चुनौती देती। यही कारण था कि इस काल में रात-दिन युद्धों की भरमार रहती।

इस फूट का लाभ मुसलमानों ने भी खूब उठाया और वे बराबर भारत में प्रवेश करते गए। जिसका परिणाम यह हुआ कि सिन्धु पर मुसलमानों का आधिपत्य हो गया। हिन्दू और मुसलमानों के बीच गहरी खाई बनी हुई थी जो मिटने के बजाय और गहरी ही होती जा रही थी। कहने का भाव यह है कि राजनीतिक दृष्टि से यह काल झूठी वीरता का, अनवरत युद्धों का और मुस्लिम-हिन्दू विद्वेष का काल था।

सामाजिक परिस्थितियाँ—राजनीतिक परिस्थितियों का प्रभाव सामाजिक परिस्थितियों पर भी पड़ता है। जब राजनीतिक के क्षेत्र में ही शान्ति नहीं थी तो समाज में शान्ति की व्यवस्था कैसे होती? यह स्वाभाविक है कि मनुष्य का अशान्त मन धर्म की छाया की ओर दौड़ता है, किन्तु धार्मिक क्षेत्र भी अस्त-व्यवस्ता की पराकाष्ठा पर पहुँच चुका था। वैदिक और पौराणिक धर्म के विविध रूपों के साथ ही साथ बौद्ध और जैनधर्म भी अपने आदर्शों और सिद्धान्तों से भटक गये थे। बौद्ध धर्म अनेक सम्प्रदायों में बंट गया जिनमें से वज्रयान सम्प्रदाय उल्लेखनीय है। कालान्तर में इसके सहजयान और मन्त्रयान दो भेद हो गये। इनका दार्शनिक विवेचन साधारण जनता के लिए पहेली ही रहा। इसका व्यावहारिक पक्ष भी कल्याणकारी न था। इन सम्प्रदायों के लोग अलौकिक शक्तियों की प्राप्ति के लिए धार्मिक आडम्बरों का प्रदर्शन करने लगे। नारी को योगिनी के रूप में भोग्य बनाया गया। अपने साहित्य में ने लोग इन्हीं आडम्बरों को प्रतीक का रूप देकर प्रकट करने लगे।

आदिकाल पर प्रभाव—इन दोनों परिस्थितियों का आदिकाल के साहित्य पर प्रभाव पड़ा। उन दिनों कवि अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा में तो आकाश-पाताल एक कर ही देते थे, किसी भी राजकुमारी के सौन्दर्य-वर्णन में

भी अपनी काल की इति-श्री कर देते थे। इसका फल यह हुआ कि काव्य में शृंगार रस का प्रधान्य हो गया। साथ ही राजाओं को एवं उनकी सेनाओं को युद्ध के लिए भी तैयार करते थे। इस कारण वीर रस का आना भी स्वाभाविक था। अतः इस काल में वीर रस और शृंगार रस दोनों कन्धे से कन्धा मिलाकर चले हैं। राजाओं की वीरताओं का अत्युक्तिपूर्ण वर्णन किया गया है। राजा को चैन से न बैठने देने में भी कवि-धर्म समझा जाता। कवि किसी भी राजा की राजकुमारी के सौन्दर्य का वर्णन करता और राजा तुरन्त युद्ध के बाजे बजवा देता। इस काल के कवियों की प्रमुखतम विशेषता यह है कि ये लेखनियों के ही धनी नहीं होते थे, बल्कि तलवार चलाने में भी उतने ही निपुण होते थे। चन्दवरदाई तो सदैव छाया की भांति पृथ्वीराज केसा थ ही रहा करते थे।

मुसलमानों के सम्पर्क के कारण इस काल की काव्य-कृतियों की भाषा में अरबी और फारसी के शब्दों का प्रयोग भी देखा जाता है। धार्मिक परि-स्थितियों का प्रभाव कला-पक्ष पर स्पष्ट है, क्योंकि इन सम्प्रदायों की दोहा पद्धतियाँ और गेय पद्धति इस काल के काव्यों में परिलक्षित होतीं है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि आदिकाल पर उनकी राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों का प्रभाव है। उस काल की स्पष्ट छाया आदिकाल की काव्य-कृतियों में देखने को मिलती है।

प्रश्न ५—आदिकाल की उपलब्ध रचनाओं तथा प्रमुख कवियों का रिपचय दीजिये।

उत्तर—आदिकाल में दो प्रकार का साहित्य उपलब्ध होता है—रासो साहित्य और प्रकीर्ण साहित्य। इन दोनों के विषय में यहाँ संक्षेप में प्रकाश डाला जाता है।

रासो साहित्य—यह काल अपनी रासो रचनाओं के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसलिए कतिपय हिन्दी के विद्वान् इसका नामकरण 'रासो काल' भी करते हैं इनकी विशेषता है वीररस और शृंगार रस का सांगोपांग वर्णन। राजाश्रित कवियों अथवा चारणों के द्वारा रचित होने से इसमें अत्युक्तिपूर्ण वर्णनों की प्रचुरता है। काव्य रूढ़ियों का सर्वत्र प्रयोग किया गया है। इस काल के 'रासो साहित्य का तथा उनके रचयिताओं का परिचय इस प्रकार है

१. खुमान रासो—इसका रचियता दलपत (दौलत विजय) माना जाता है। जिसका रचनाकाल १६७३ और १७०३ ई० के बीच स्थिर किया गया है।

इस काव्य में बप्पा रावल (७३४ ई०) से लेकर राजसिंह (१६५२-१६८०) तक के राजाओं का वर्णन मिलता है। यह काव्य ऐतिहासिक दृष्टि से संदिग्ध है।

२. **विजयपाल रासो**—नल्लसिंह इनके रचियता हैं। इसमें बरौली के महाराज विजयपाल की दिग्विजय और १०३६ ई० के पंग के युद्ध का वर्णन है। इसका समय १२९८ ई० के लगभग माना गया है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह ग्रंथ भी प्रामाणित नहीं माना जाता।

३. **परमाल रासो**—इसके रचियता जगनिक हैं जिनका समय ११७३ ई० माना जाता है। इसमें जघौती (बुन्देलखंड) के चन्देल राजा पमर्रदिदेव परमाल की वीरता का अत्युक्तिपूर्ण ढंग से वर्णन किया गया है। इसके सेना के नायक आल्हा और ऊदल बड़े ही वीर थे। आजकल यह काव्य 'आल्हा' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इसको इतनी लोक-प्रियता प्राप्त हुई कि आज इसके प्रारम्भिक रूप का पता लगाना बिल्कुल असम्भव बन गया है।

४. **बीसलदेव रासो**—इसके रचियता नरपनि नाल्ह हैं। इसमें शाकम्बरी (सांभर) के नरेश बीसलदेव (विग्रहराज चतुर्थ) की उड़ीसा यात्रा का वर्णन प्रमुख रूप से किया गया है जिससे राजवती की विरह-वेदना को व्यक्त करने के लिये अधिक अवकाश मिल सका है। यह वीररस की अपेक्षा शृंगार रस का ही काव्य है। इस काव्य की रचना तिथि स्वयं कवि ने इस प्रकार बताई है।

बारह सै बहोत्तराहां मझारि, जेठ बदी नवमी बुधवारि।
नाल्हा रसाइण आरम्भइ, सारदा तठि ब्रह्मकुमारि ॥

ऐतिहासिक दृष्टि से यह काव्य भी विवादास्पद बना हुआ है।

५. **पृथ्वीराज रासो**—आदि काल के रासो ग्रंथ में यह सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इसके रचियता पृथ्वीराज के राजकवि और सखा चन्दवरवाई हैं। कहते हैं उनका और पृथ्वीराज का जन्म एक दिन हुआ था और मृत्यु भी एक दिन। इतिहास में पृथ्वीराज का जन्म काल ११६३ ई० और मृत्युकाल ११९२ ई० में माना गया है। अतः यही जन्म और मरण काल चन्दवरवाई का भी है। हिन्दी साहित्य में इस काव्य को लेकर सबसे अधिक ऐतिहासिक दृष्टि से विचार किया गया है। कुछ विद्वान इसे प्रामाणिक हैं, कुछ अप्रामाणिक कुछ और अर्द्ध-प्रामाणिक। इसमें पृथ्वीराज के जन्म से लेकर मरण तक का वर्णन मिलता हैं। जनश्रुति है कि जब चन्दवरवाई पृथ्वीराज के पास जो,

महमूद गौरी की जेल में था, गये तो इसका भार अपसे पुत्र जल्हण को दे गये 'पुस्तक जल्हण हत्थि दे चलि गज्जन नृप काज।' इस काव्य में इतना अधिक प्रक्षेप हुआ है कि घटनाओं को इतिहास को कसौटी पर कसना मुश्किल बन गया है। साथ ही कुछ विद्वान तो यहाँ तक कह डालते हैं कि यह महाकाव्य चन्दवरबाई का लिखा हुआ ही नहीं है। ऐतिहासिक दृष्टि से खरा न उतरने पर भी इसका काव्य पक्ष उपेक्षणीय नहीं है। भावपक्ष और कलापक्ष दोनों कही दृष्टियों से यह अनुपम और अनैतिहासिकता में ही उलझे रहे हैं, इसके काव्य पक्ष पर 'नहीं' के बराबर दिया है।

प्रकीर्ण काव्य—रासो और उकके रचियताओं का संप में पक्षिरचय देने के बाद थोड़ा सा प्रकीर्ण काव्यों पर भी विचार कर लिया जाय। जहाँ एक ओर रासो परम्परा इस बात को सिद्ध करती है कि कवि राजाश्रित थे, और अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न करने के लिये सब कुछ करने को तैयार थे, वहाँ दूसरी ओर एक परम्परा ऐसे कवियों की भी थी जो इन लकीरों से दूर हटकर स्वतन्त्र रूप से चल रहे थे। ये कवि ने—अब्दुर्मान, विद्यापति और अमीर खुसरो।

१. अब्दुर्हमान—इनका अपभ्रंश का नाम अद्धहमाण। संनेह रासय (सन्देश रासक) इनकी प्रसिद्ध रचना है। इनका समय १२वीं शताब्दी माना जाता है सन्देश रासक बोल-चाल की भाषा में लिखा गया है। इसके विषय में कवि स्वयं कहता है कि 'मेरे इस कुकवित्त को बुधजन सुनेंगे नहीं और न अबुधजन अपनी अबुधता के कारण इसमें प्रवेश करेंगे। जो न मूर्ख हैं ओर न पंडित मध्य के हैं उनके सम्मुख यह कविता सर्वदा पढ़ी जाय।' इससे प्रकट होता है इस काव्य की रचना साधारण पाठकों के लिये की गयी थी। इसमें विप्रलम्भ शृंगार का वर्णन बहुत ही सफल, प्रभावोत्पादक और उच्चकोटि का है। साथ ही प्रकृति का भी सुन्दर वर्णन हैं।

२. विद्यापति—हिन्दी साहित्य में विद्यापति का महत्वपूर्ण स्थान है। हिन्दी की गीति परम्परा के तो ये आदि कवि ही हैं। इनके गीतों का हिन्दी साहित्य पर अभूतपूर्व प्रभाव पड़ा है। इनका जन्म सन १३६० के लगभग हुआ। 'कीर्तिलता' और 'कीर्तिपताका' उनके दो ऐतिहासिक काव्य हैं। 'कीर्ति-लता' में तिरहुत के राजा कीर्तिसिंह की वीरता का वर्णन है। इन्हें अपनी भाषा की सुघड़ता और सजीवता पर पूर्ण विश्वास था। इसलिये तो इन्होंने यहाँ तक कह डाला—

बालचंद विज्जावइ भासा, दुउ नहि लग्गइ दुज्जन हासा ।
ओ परमेश्वर हर सिर सोहइ, ई णिच्चइ नाअर मन सोहइ ॥

इनके गीतों का संग्रह 'विद्यापति की पदावली' के नाम से हुआ है। इसके विषय में यह विषाद है कि ये भक्ति कवि थे अथवा शृंगारी। यह आज तक हिन्दी विद्वानों के लिए सिर दर्द बना हुआ है।

३. **अमीर खुसरो**—इनका समय १२५३-१३१५ ई० में माना जाता है ये अरबी, फारसी, अपभ्रंश और संस्कृत के प्रकांड पंडित थे। इनकी मुकरिया अत्यन्त प्रचलित और लोक-प्रिय है। इनकी भाषा खड़ी बोली के बहुत निकट है। एक मुकरी, देखिये—

खा गया पी गया दे गया बुत्ता,
क्यौं सखि साजन ? ना सखि कुत्ता ।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में अमीर खुसरो का अत्यन्त उच्च स्थान है। इनका आविर्भाव आदि काल में हुआ, किन्तु इनकी भाषा को देखकर ऐसा लगता है जैसे वे आधुनिक काल के ही कवि हैं।

प्रश्न ६—रासो परम्परा का परिचय देते हुए आदिकाल के साहित्य का विशषताओं पर प्रकाश डालिये।

अथवा

वीरगाथा युग से आप क्या समझते हैं ? किसी रासो ग्रन्थ के आधार पर वीरगाथा युग की विशेषताओं का वर्णन कीजिये।

उत्तर—आदिकाल रासो प्रधान काल है, इसीलिये किसी-किसी आलोचक ने इसे 'रासो काल' नाम दिया है। रासो की परम्परा के आधार पर ही आचार्य शुक्ल ने इसे वीरगाथा काल कहा है। इस काल में उपलब्ध रासो काव्यों के नाम इस प्रकार हैं।

खुमान रासो, परमाल रासो, बीसलदेव रासो, पृथ्वीराज रासो, हम्मीर रासो, इसमें पृथ्वीराज रासो सर्वोत्कष्ट कृति है और अपने युग का पूर्णरूप से प्रतिनिधित्व करती है। अतः इनकी विशेषताएँ आदिकाल की विशेषताएँ हैं, इसमें कोई सन्देह नही।

'रासो शब्द की व्युत्पत्ति किस शब्द से हुई इसके विषय में विद्वानों में मतभेद रहा है। कोई 'राजसूय' से कोई रसायन से और कोइ 'रासो शब्द में इसकी व्युत्पत्ति मानते हैं। चाहे इसकी व्युत्पत्ति किसी शब्द से हुई हो, किन्तु इतना तो निश्चित है कि आदिकाल में प्रयुक्त 'रासो शब्द एक काव्य

परम्परा का सूचक है जिसका अर्थ है वीरता से परिपूर्ण काव्य ।

'पृथ्वीराज रासो' भी ऐसा ही काव्य है। इसकी प्रमुख विशेषताएँ निम्न लिखित हैं।

१. इतिहास और कल्पना का अपूर्व गठबन्धन है ।

२. इसमें वीररस और शृंगार रस की अभिव्यक्ति साथ २ हुई है।

३ भाषा 'षट भाषा' है अर्थात और देशी और विदेशी सभी शब्दों का खुल कर प्रयोग हुआ हैं ।

४ अनेक प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है ।

५. यों तो प्रायः सभी शब्दालंकार और अर्थालंकार ढूंढे जा सकते हैं। किन्तु प्रमुख रूप से अत्युक्ति और और अतिशयोक्ति अलंकार दिखाई देते हैं। एक राजश्रित कवि के लिए इन अलंकारों का प्रयोग आवश्यक भी था।

६. काव्य-रूढ़ियों का भी प्रयोग मिलता है ।

अब इन विशेषताओं पर तनिक संक्षेप में विचार कर लिया जाय ।

१. **इतिहास और कल्पना**—जिस प्रकार पृथ्वीराज रासो नायक का एक इतिहास प्रसिद्ध राजा है। उसी प्रकार अन्य रासो का सम्बन्ध भी इतिहास प्रसिद्ध राजकुलों से हैं। विजय पाल रासो में महाराज विजय पाल की वीरता का वर्णन हैं, वीसलदेव रासो में वीसलदेव की उड़ीसा की यात्रा का वर्णन अत्यन्त मार्मिक शब्दों में किया गया है और खुमान रासो में विग्रहराज द्वितीय के वीर कार्यो का उल्लेख है। इतिहास के साथ कल्पना का प्रयोग इतनी अधिकता से किया गया है कि इनका इतिहास पक्ष बहुत ही दुर्बल हो गया है अतः इनकी प्रामाणिकता पर सन्देह किया जाने लगा हैं।

२. **वीररस और शृंगार रस**—पृथ्वीरासो में जहाँ पृथ्वीराज के वीरता पूर्ण कार्यो का उल्वेख है वहाँ अनेक राजकुमारियों—इच्छिनी पद्मावती आदि ने रूप में सौन्दर्य का वर्णन है। यह राजकुमारियों तो ही उनकी वीरता को प्रकट करने का अवसर प्रदान करती थीं। सभी रासो काव्यों में इन लोगों रसों का वर्णन मिलता है।

३. **भाषा**—यह दुख का विषय है कि विद्वातों का अधिकांश ध्यान इन कायों की ऐतिहासिकता और अनैतिहासिकता की ओर ही लगा रहा है। भाषा अथवा पक्ष काव्य-सौष्ठव के प्रति वे उदासीन ही वने रहे हैं। परन्तु जहाँ तक भाषा का प्रश्न है इनकी भाषा बड़ी सजीव और प्रभावोत्पादक है।

देशी और विदेशी शब्दों का प्रयोग खुल कर किया गया है

४. छन्द—यद्यपि अनेक प्रकार के छन्द इस काल में प्रयुक्त हुये किन्तु प्रधानता दोहा, पद्धरिया, कवित्त, सवैया आदि छन्दों की ही रही। इनके छन्दों का प्रयोग भावानुकूल है किसो पांडित्य का प्रदर्शन की लालसा उनके पीछे नहीं है।

५. अलंकार—भावों को सशक्त बनाने के लिये यथायोग्य अलंकारों का भी प्रयोग है. किन्तु प्रधानता अत्युक्ति अलकारों की है। इन अलंकारों की अतिशयप्रियता भी इनकी ऐतिहासिकता में बाधक हुई। क्योंकि अत्युक्ति वर्णन में इतिहास बहुत पीछे रह गया।

६. काव्य-रूढ़ियों—जो बातें में काव्यों में निरन्तर प्रयुक्त होती रहती है वे काव्य रूढ़ियाँ बन जाती हैं। जैसे मुख कमल कहना काव्य रूढ़ि है। पृथ्वीराज रासो में अनेक काव्य रूढ़ियां मिलती है। बल्कि यों कहना अधिक उपयुक्त रहेगा कि इस काल के कवि अधिकाँशतः काव्य-रूढ़ियों को ही लेकर चले हैं, स्वच्छन्द मार्ग अपनाने का प्रयास उनमें दिखाई नहीं देता।

रासो काव्यों के आधार पर ये ही आदिकाल की विशेषतायें हैं किन्तु परम्परा के अतिरिक्त एक दूसरी काव्य परम्परा भी आदिकाल में दिखाई देती है और पह प्रकीर्ण काव्य की। अब्दुर रहमान का 'सन्देश रासक' खुसरो की पहेलियाँ और मुकरियाँ तथा विद्यापति के गीत प्रकीर्ण काव्यों के ही अंतर्गत आते हैं, पर ये उस काल की काव्यगत विशेषताओं का प्रतिनिधित्व नहीं करते।

प्रश्न७—चन्दबरदाई और उनकी रचना और पृथ्वीराज रासो का परिचय दीजिये।

अथवा

क्या पृथ्वीराज रासो चन्द कृत है और बारहवीं शताब्दी की रचना है ? अपने मत की पुष्टि में कारण सहित उत्तर दीजिये। क्या इसे अर्द्ध प्रामाणिक रचना कह सकते हैं ?

उत्तर—पृथ्वीराज रासो आदिकाल जितनी महत्त्वपूर्ण कृति है, उतना ही अधिक उसके विषय में विवाद है। मुख्यतः दो शकाएँ उसके लिये काफी दिनों से उठाई जा रही हैं। एक तो यह है कि क्या इस महाकाव्य का लेखक चन्दबरदाई है ? और दूसरी यह है कि क्या वह कृति ऐतिहासिक दृष्टि से प्रमाणिक है ? अर्थात इसे बारहवीं शताब्दी की रचना मान जा सकता है !

इन दोनों शंकाओं का यहाँ विश्लेषण और समाधान करना अनिवार्य ।

चन्दबरदाई—चन्दबरदाई का जन्म लाहौर में सन ११६३ ई० को हुआ था । अनुश्रुत है कि इनका और पृथ्वीराज का जन्म भी एक ही दिन हुआ और मृत्यु भी एक ही दिन । ये पृथ्वीराज के केवल राजकवि ही नहीं थे, वल्कि उनके अनन्य मित्र और अतरंग सखा भी थे । सदा छाया की भाँति उनके साथ रहते थे । पृथ्वीराज रासो में वर्णित अनेक घटनाएँ इन तथ्यों का समर्थन करती हैं । कुछ आलोचकों का कहना है कि अपने विषय में चन्द ने जो कुछ पृथ्वीराज रासो में लिखा है, वह उनका न होकर किसी परवर्ती कवि का है जिसने सुनी-सुनाई बातों के आधार पर वे बातें लिख दी ।

चन्द पृथ्वीराज रासो का रचियता नहीं है, इस विवाद का सूत्रपात डॉ० ह्वूलर ने कया । डॉ० ह्वूलर जब कश्मीर गया तो वहाँ उन्हें काश्मीरी कवि जयानक एक रचना मिली जिसका नाम 'पृथ्वीराज विजय' है । इसमें वर्णित समस्त घटनायें इतिहास से मेल खाती हैं । इसे पढ़कर डॉ० ह्वूलर ने न केवल पृथ्वीराज रासो को ही अनैतिहासिक सिद्ध करने का प्रयास किया है । वल्कि चन्द नाम के किसी कवि का पृथ्वीराज के दरबार में होना भी उन्होंने अस्वीकार कर दिया । तब से यह विवाद आज तक बराबर चला आ रहा है । इस बात को सिद्ध करने के लिये प्रमुख रूप से निम्नलिखित तर्क दिये जाते हैं

१. 'पृथ्वीरा जविजय' सन् ११९१-९३ ई० की रचना है । यदि चन्द ने पृथ्वीराज रासो की रचना की होती तो इस कृति में उसका उल्लेख अवश्य होता ।

२. पन्द्रहवीं शताब्दी के नयनचन्द सूरि ने संस्कृत में हम्मीर महाकाव्य और 'रम्भामंजरी' नामक लिखे थे । पहले का नायक रणथम्भौर का अंतिम चौहान राजा हम्मीर है । उसमें चौहान वंश का भी वर्णन है । दूसरे नायक का कन्नौज का राजा जयचन्द (जयचन्द) है । रासो के वर्णनानुसार पृथ्वीराज ने उससे युद्ध किया था । इन ग्रंथों में कहीं भी चन्द और उसके रासो का संकेत नहीं मिलता ।

३. सोलहवीं शताब्दी में बूँदी के चौहान राव सुर्जन के सम्बन्ध में लिखे गये 'सुर्जन चरित' काव्य में भी इसको चर्चा नहीं । इसलिये चन्द्रकृत पृथ्वीराज रासो सिद्ध नहीं होती ।

ये ही तर्क यह सिद्ध करने के लिये प्रयुक्त किये गये हैं कि पृथ्वीराज रासो की रचना १२वीं शताब्दी में नहीं हुई । यह बहुत बाद की रचना है ।

इन सब शंकाओं का कारण यह है कि पृथ्वीराज रासो इतिहास की कसौटी पर खरा नहीं उतरता। इसमें वर्णित अधिकांश घटनाएँ इतिहास से मेल नहीं खातीं। इसकी ऐतिहासिकता और अनैतिहासिकता का विवाद हिन्दी साहित्य में इतना पनपा कि विद्वान् इसके काव्य सौष्ठव की ओर यथोचित ध्यान न दे सके। एक वर्ग इसे ऐतिहासिक सिद्ध करने में जुट गया और दूसरा अनैतिहासिक। दोनों वर्गों के अपने-अपने प्रमाण हैं और अपने-अपने तर्क; परन्तु आधुनिक खोजों ने इस विवाद का रुख ही बदल दिया है। आजकल रासो की चार प्रकार की प्रतियां उपलब्ध हैं। एक वे हैं जो विशालकाय हैं; दूसरी वे हैं जो उनसे कुछ छोटी हैं; तीसरी दूसरी प्रकार से भी छोटी हैं और चौथी सबसे ही छोटी हैं। आज तो अन्वेषकों के सम्मुख यह समस्या है कि इनमें से किसको मूल प्रति समझा जाय।

पृथ्वीराज रासो चन्द कृत है—मुनिजिनविजय ने 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' का सम्पादन किया है और उसमें कवि चन्दबरदाई के भी चार छप्पय सम्मिलित किये हैं। इन छप्पयों को देखकर यह मानने में शंका ही नहीं रह जाती कि इनका रचयिता चन्द कवि ही है? ये ही छप्पय पृथ्वीराज रासो में भी प्राप्त होते हैं। जिस पुरानी पुस्तक में ये छप्पय मिलते हैं उसका संग्रह काल १४७१ ई० है। अतः यह मानने में कोई आपत्ति नहीं कि इनकी रचना १४७१ ई० से पूर्व ही हुई होगी। इस प्रकार इन छप्पयों से यह सिद्ध हो जाता है कि चन्दबरदाई नाम का कोई कवि था और यह कवि और कोई नहीं, पृथ्वीराज रासो का ही रचयिता था।

दूसरी बात यह है कि 'पृथ्वीराज विजय' के पाँचवें सर्ग में चन्द्रराज कवि का संकेत है जिसे ओझा जी ने क्षेमेन्द्र-कथित चंद्रक माना है। यह चंद्रक चंदबरदाई के अतिरिक्त और कौन हो सकता है।

तीसरी और अन्तिम बात है कि 'पृथ्वीराज रासो' में पृथ्वीराज से सम्बन्धित जो वर्णन मिलते हैं, केवल सुने-सुनाये नहीं हो सकते। ऐसे वर्णन वही कवि कर सकता है जो पृथ्वीराज का अंतरंग सखा रहा हो। अतः यह मानने में आपत्ति के लिये स्थान नहीं कि पृथ्वीराज रासो के रचयिता चंदबरदाई ही हैं, और यह रचना बारहवीं शताब्दी की है। यह बात दूसरी है कि कालान्तर में प्रक्षेपक जुड़ने से इसका मूल रूप छिप गया है।

अर्द्ध प्रामाणिक—डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी पृथ्वीराज रासो को न तो पूर्णतः ऐतिहासिक मानते हैं और न अनैतिहासिक। वे इसे अर्द्ध प्रामाणिक

मानते हैं। वास्तव में इसमें इतिहास और कल्पना का अपूर्व गठबन्धन है, अतः कुछ घटनाएँ इतिहास-सम्मत हैं और कुछ असम्मत। इस दृष्टि से इसे अर्द्ध प्रामाणिक कहा जा सकता है।

काव्य सौष्ठव—जहाँ तक काव्य-सौष्ठव का प्रश्न है, पृथ्वीराज रासो, इस विषय में बिल्कुल खरा उतरता है। उसमें अनेक प्रकार के शब्दालंकार और अर्थालंकारों का भावपूर्ण प्रयोग है। भावानुकूल विविध छन्दों का प्रयोग भी उपलब्ध होता है। 'षट्-भाषा' होते हुए भी भाषा में प्रकार और सजीवता है। कहने का तात्पर्य यह है कि भावपक्ष और कलापक्ष दोनों ही दृष्टियों से पृथ्वीराज एक सफल सप्राण विकसनशील महाकाव्य है।

प्रश्न ८—पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता अथवा अप्रामाणिकता पर अपने विचार प्रकट करें।

अथवा

पृथ्वीराज रासो को अर्द्ध प्रामाणिक रचना किस आधार पर कहा गया है; विस्तार से स्पष्ट करें।

उत्तर—सन् १८८३ में डॉ० ब्लूलर के संरक्षण में बंगाल की 'रायल एशियाटिक सोसाइटी' ने पृथ्वीराज रासो का प्रकाशन प्रारम्भ किया था। उन्हीं दिनों काश्मीर में डॉ० ब्लूलर को जयानक कवि का लिखा पृथ्वीराज विजय' नामक काव्य मिल गया। उसको पढ़कर डॉ० साहब ने यह निष्कर्ष निकाला कि पृथ्वीराज रासो अनैतिहासिक है। फलतः इसका प्रकाशन बन्द करवा दिया गया। तभी से इसकी ऐतिहासिकता और अनैतिहासिकता को लेकर बराबर विवाद चलता रहा है। प्रमुखतः विद्वानों के दो वर्ग बन गये हैं। एक वर्ग अपने तर्कों के आधार पर इसे सिद्ध करने का प्रयत्न करता है और दूसरा अप्रामाणिक। यहाँ संक्षेप में इन दोनों वर्गों के तर्कों का उल्लेख किया जाता है।

अनैतिहासिकता—

१. मुरारीदास और श्यामलदास ने अपने तर्कों के आधार पर इसे अप्रामाणिक और परवर्ती काल की रचना बताया।

२. मुन्शी देवीप्रसाद पूर्ण ने सिद्ध किया कि रासो में अनेक राजाओं का वर्णन है जो पृथ्वीराज से १०० वर्ष पूर्व या बाद में उत्पन्न हुए। रासो में पृथ्वीराज की पुत्री पृथा का विवाह चित्तौड़ के राजा समरसिंह के साथ बताया गया है जबकि शिलालेखों के आधार पर समरसिंह का समय १४वीं शताब्दी

है। इसी प्रकार गौरी की मृत्यु पृथ्वीराज के हाथों से न होकर नमाज पढ़ते समय गक्खड़ों द्वारा हुई।

३. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने इसकी अप्रामाणिकता में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये हैं :—

(अ —रासो में चौहानों, प्रतिहारों, सोलंकियों की वंशावली, राजपूतों की उत्पत्ति, पृथ्वीराज सम्बन्धी आदि सभी घटनाएँ ऐतिहासिक दृष्टि से गलत है। यहाँ तक कि पृथ्वीराज की माता का नाम—कमला भी अशुद्ध है।

(आ)—रासो की भाषा में फारसी और अरबी के शब्दों की बहुलता इस वात को सिद्ध करती है कि यह ग्रंथ प्राचीनकाल में नहीं लिखा गया। इससे यह ज्ञात होता है कि इसकी रचना १७वीं शताब्दी के आसपास हुई होगी, क्योंकि १५१७ की राज-प्रशस्ति में पृथ्वीराज रासो का उल्लेख न होकर १७३२ की राजप्रशस्ति में है।

(इ) रासो में दिए गए संवत् इतिहास से मेल नहीं खाने, अतः यह रचना पृथ्वीराज के समय की नहीं हो सकती। 'पृथ्वीराज-विजय' में भी कहीं पृथ्वीराज रासो का उल्लेख नहीं मिलता।

ऐतिहासिकता—

दूसरे वर्ग ने पृथ्वीराज रासो को ऐतिहासिक सिद्ध किया है। अपने मत के प्रतिपादन में मिश्र-बन्धुओं ने ये तर्क उपस्थित किये हैं :—

१. रासो में जो घटनाएँ सही नहीं हैं, वे क्षेपक हो सकती हैं, क्योंकि चन्द इस ग्रन्थ को स्वयं पूरा नहीं कर सका था।

२. दूसरी, भाषा में केवल १० प्रतिशत शब्द अरबी और फारसी के हैं जो लाहौर के निवासी चन्दबरदाई के लिए आश्चर्य का कारण नहीं। वैसे भी पृथ्वीराज के समय से ३०० वर्ष पूर्व ही पंजाब पर यवनों के आक्रमण का प्रारम्भ हो गया था अतः यहाँ की भाषा पर उनकी भाषा का प्रभाव पड़ना सहज स्वाभाविक ही था।

शक-संवतों की अशुद्धि को मिटाने के लिए पं० मोहनलाल विष्णुलाल पाण्ड्या ने एक 'आनन्द संवत्' की कल्पना की है। उनकी कल्पना का आधार रासो की यह पंक्ति है—

एकादस से पंचदह विक्रम साक अनन्द।

अनंद का अर्थ है नंद आदि शूद्र राजाओं के ९० वर्ष का राज्य काल, कवि ने आत्म-गौरव के कारण विक्रम संवत् से निकाल दिया था। पाण्ड्या जी का

यह तर्क रासो में कुछ ही कालों में चरितार्थ होता है।

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' का मत है कि रासो में 'गाथा' जैसा प्राचीन छन्द इसकी प्राचीनता का सूचक है। इन विद्वानों के अतिरिक्त डॉ० श्यामसुन्दरदास और आचार्य शुक्ल भी रासो को प्रामाणिक मानते हैं।

अर्द्ध प्रामाणिक—इन सब तर्क-वितर्क से यह निष्कर्ष निकलता है कि रासो की कुछ बातें तो उसे ऐतिहासिक सिद्ध करती हैं और कुछ अनैतिहासिक, अतः इसे न तो पूर्णतः प्रामाणिक ही कहा जा सकता है और न अप्रामाणिक ही। इसे अर्द्ध प्रामाणिक कहना ही उचित जान पडता है। इस दृष्टि से निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते है—

१. किसी भी काव्य की इतनी ख्याति और लोक-प्रियता निर्मूल और निराधार नहीं हो सकती।

२. पृथ्वीराज की माता के दो नाम—कर्पूरदेवी और कमला—भी संभव हैं, क्योंकि विवाह के बाद स्त्री का नाम बदल भी दिया जाता है। संभव है कि उसका दूसरा नाम ससुराल का हो जिसका ज्ञान किसी अंतरंग मित्र को ही हो सकता है।

३. जयानक ने ईर्ष्यावश पृथ्वीराज रासो और चन्द का नाम न लिया हो।

४. रासो सत्रहवी शताब्दी की रचना नहीं हो सकती, क्योंकि यह काल पूर्णरूप से शृंगार काल था।

५. इसमें युद्धों के सजीव वर्णन कवि की उनमें उपस्थिति को सिद्ध करते है।

६. कालान्तर के क्षेपकों ने रासों का रूप विकृत कर दिया है।

इन निष्कर्षों के आधार पर डॉ० ग्रियर्सन का मत पूर्णरूप से मान्य है कि रासो की रचना चन्द ने पृथ्वीराज के समय में ही की थी जो कालांतर में लुप्त हो गई। १७वीं शताब्दी में राणा अमरसिंह ने चन्द के बिखरे छन्दों का संग्रह और संपादन कराया। उसी समय इसमें क्षेपक अंश भी मिल गए जिससे इसका वर्तमान रूप संदिग्ध बन गया।

प्रश्न ६—अपभ्रंश साहित्य का परिचय दीजिये तथा हिन्दी-साहित्य में इसका योग तथा स्थान निर्धारित कीजिये।

अथवा

सिद्धों, नाथों और जैनियों के अपभ्रंश साहित्य का संक्षिप्त परिचय दीजिये तथा इनका परवर्ती हिन्दी-साहित्य के साथ सम्बन्ध स्पष्ट कीजिये।

उत्तर—अपभ्रंश साहित्य का हिन्दी से इतना घनिष्ट सम्बन्ध है कि बिना इसकी पृष्ठभूमि लिए हिन्दी-साहित्य का पूर्ण अध्ययन ही नहीं हो सकता, बल्कि हिन्दी के कतिपय विद्वान् तो अपभ्रंश-साहित्य को भी 'पुरानी हिन्दी' या 'प्राकृताभास हिन्दी' कह कर हिन्दी-साहित्य में सम्मिलित कर लेते हैं।

लगभग छठी शताब्दी में ही अपभ्रंश भाषा का साहित्यिक भाषा के रूप में व्यवहार होने लगा था। साहित्य-सृजन की दृष्टि से यह भाषा बहुत ही समृद्ध है। इसके साहित्य को मुख्यतः चार धाराओं में विभाजित किया जा सकता है :—

१. जैन साहित्य
२. बौद्ध सिद्धों का साहित्य
३. नाथ-पंथियों का साहित्य, और
४. लोक रस का साहित्य

इसमें से प्रथम तीन धाराओं में, यद्यपि काव्यत्व का अभाव नहीं है, किन्तु धार्मिकता की प्रधानता है। लोक-रस का साहित्य इन साम्प्रदायिक सम्प्रदायों में नितांत मुक्त हृदय का सहज स्वाभाविक प्रवाह है।

१. जैन साहित्य—आठवीं शताब्दी से ही जैन-साहित्य की उपलब्धि होने लगती है। स्वयंभू इस धारा के सर्वप्रथम कवि माने जाते हैं। डॉ॰ हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'धर्म परीक्षा' के आधार पर चतुर्मुख को इस धारा का सबसे प्राचीन और प्रथम कवि माना है। इस धारा के साहित्य में जैन-सिद्धान्तों का काव्यमय शैली में प्रतिपादन किया गया है। इस धारा के प्रमुख कवियों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

(अ) स्वयंभू—ये इस धारा के सर्वप्रथम कवि माने जाते हैं। इनकी चार रचनाएँ बताई जाती हैं—रिट्ठणेमि चरिउ, पंचमी चरिउ, पउम चरिउ या जैन रामायण और स्वयंभू छन्द। इनमें अन्तिम दो कृतियाँ अधिक प्रसिद्ध हैं।

(आ) पुष्पदन्त—ये बड़े स्वाभिमानी कवि थे। इन्हें अपने पाण्डित्य और प्रतिभा पर इतना गर्व था कि इन्होंने यह घोषित कर दिया कि जो इनके अलंकार-ग्रंथ में सामग्री दी गई है, वह अन्यत्र नहीं मिल सकती। इनकी चार कृतियाँ उपलब्ध हैं—णायकुमार चरिउ, जसहर चरिउ, महापुराण और तिसट्ठि महापुरिस गुणालंकार।

(इ) धनपाल—इनकी 'यदिसमत कहा' अत्यन्त प्रसिद्ध कृति है। इसमें ही काव्यमय ढंग जैन-सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। याकोबी

इनका समय दसवीं शताब्दी मानते हैं ।

(ई) **मोर्गान्दु**—इनकी अभी तक केवल दो रचनाएँ उपलब्ध हुई हैं—परपात्य प्रकाश और योग-सार। अपनी कृतियों में इन्होंने जैन मत के सिद्धान्तों और साधनापद्धति का ऐसे सामान्य ढंग से वर्णन किया है कि ये अन्य मत वालों को कम ही खटकते हैं ।

(उ) **हेमचन्द**—इनका समय १०१३-११४२ ई० माना जाता है। ये प्रसिद्ध जैन-आचार्य थे और गुजरात के सोलंकी राजा जयसिंह तथा उसके भतीजे कुमारपाल के यहाँ इनका बड़ा सम्मान था। यद्यपि प्राकृत में भी इनकी कई रचनाएँ मिलती हैं, तथापि अपभ्रंश-भाषा में रचित 'हेमचन्द शब्दानुशासन' इनकी महत्त्वपूर्ण कृति है ।

(ऊ) **मेरुतुंग**— 'प्रबन्ध चिन्तामणि' इनकी सबसे अधिक प्रसिद्ध रचना है। इसमें पुराने राजाओं की कहानियाँ संगृहीत हैं। इनके पद्यों के विषय धर्म के अतिरिक्त शृंगार, नीति और दान आदि भी हैं ।

इन कवियों के अतिरिक्त कुछ अन्य कवियों के नाम ये हैं—सोमप्रभ सूरी, नयनन्द, लक्खमदेव, देवसेन, शिवदत्त आदि ।

२. **बौद्ध सिद्धों का साहित्य**—बुद्ध भगवान ने सामाजिक सुधार के लिए अनेक प्रशंसनीय प्रयत्न किये और इसमें कोई सन्देह नहीं कि वे अपने प्रयत्नों में बहुत सीमा तक सफल भी हुए। किन्तु उनकी मृत्यु के बाद बौद्ध धर्म में अनेक विकृतियां आ गईं जिनके कारण वह अनेक समुदायों में बँट गया। इनमें दो सम्प्रदाय प्रमुख हैं—वज्रयान और सहजयान। वज्रयान शाखा में ८४ सिद्धों का उल्लेख मिलता है। इन सिद्धों ने तान्त्रिक क्रियाओं को प्रमुखता दी। जिससे त्याग और संयम का स्थान भोग और सुख ने ले लिया। निवृत्त-परायण धर्म को अधिक मान्यता दी गई। इन्होंने नारी को पूज्य न मानकर भोग्या माना और भोगिनी के रूप में उसका खुलकर उपयोग भी किया। अपनी इन भोग-विलासों की अभिव्यक्ति को इन्होंने अनेक प्रतीकों के द्वारा धार्मिक रूप देने के प्रयत्न किये। प्रतीकों की अधिकता होने के कारण इनकी भाषा 'सन्ध्या भाषा' कहलाती है। इनके साहित्य में दो प्रकार की रचनाएँ मिलती हैं—चर्यागीत और दोहाकोष। सिद्धों की रचनाओं का प्रमुख विषय धर्म ही रहा है। मोक्ष के लिए इन्होंने हठयोग की क्रियाओं को महत्ता प्रदान की है।

सरहपा इस धारा के प्रमुखतम कवि हैं। इनका समय ७६० ई० के

लगभग माना जाता है। साहित्यिक दृष्टि में इनका महत्त्व इतना ऊंचा है कि हिन्दी-साहित्य के कतिपय विद्वान् इन्हें ही आदिकवि मानते हैं। इनके अतिरिक्त शबरपा, भूसक (शांति) पा, लुईपा, जिन्पा, गेम्लिपा, कुक्कुरिया, कमरिपा, कण्हपा और धाय पा आदि भी ऊँचे कवियों में गिने जाते हैं।

जैन-साहित्य की अपेक्षा परवर्ती हिन्दी-साहित्य पर इस धारा का प्रभाव अधिक है। हिन्दी के पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल) और उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल) में जो गोपी-लीला एवं अभिसार में वर्णन मिलते हैं, उनका पूर्वरूप सिद्ध-साहित्य में स्पष्ट रूप से प्राप्त होता है। इस धारा में अनेक सम्प्रदाय में सिद्धान्तों के प्रतिपादन पर हो विशेष बल दिया है, फलतः उसमें मानव हृदय की रागात्मक अभिव्यक्ति नहीं मिलती। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि उसमें कवित्य का एकदम अभाव है।

३. नाथपंथियों का साहित्य—बौद्ध सिद्धों में जब लगातार भ्रष्टाचार बढ़ता चला गया तो उसके विरुद्ध नाथ-सम्प्रदाय का जन्म हुआ। सहजयानी सम्प्रदाय ने स्त्री को जोग्या बनाया। इसके विरद्ध इस सम्प्रदाय ने ब्रह्मचर्य और वैराग्य को प्रधानता दी। इन्होंने शिव को अपना आराध्य माना और मेखला, सिंगी, सेली, गूदरी, खप्पर, कर्णमुद्रा, वधबर और झोला धारण किया। इनके नाम के अंत में 'नाथ' शब्द जुड़ने के कारण ही इस सम्प्रदाय को 'नाथ सम्प्रदाय' कहा गया। इनमें नौ नाथ अत्यन्त प्रसिद्ध हुए हैं जिनमें मत्स्येन्द्र याथ (मच्छरनाथ) सर्वोक्च कोटि के नाथ माने जाते हैं। जालंधर-नाथ तथा गोरखनाथ की गणना भी की जाती है।

साहित्य दृष्टि से गोरखनाथ सबसे प्रसिद्ध हैं। यद्यपि इनके विषय में अभी तक कुछ ज्ञात नहीं हो सका है। इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ ये हैं—सिष्या दरसन, प्राण सकली, नरवैबोध, आत्मबोध, प्रमैमान्या जोग, पन्द्रह तिथि, सप्तवार, मछेन्द्र गोरख बोध, रोमावली, ग्यानतिलक और पंचमात्रा। इनके अतिरिक्त महादेव गोरख गुष्ठि, सिष्टि पुराण, दया बोध कृतियां भी इन्हीं की रचानाएँ मानी जाती हैं।

नाथ-पंथियों के साहित्य में भी धर्म की प्रधानता है और उसकी अभिव्यक्ति प्रायः प्रतिकों द्वारा हुई है। हठयोग को ये भी मानते हैं और नाद, विंदु, चक्र, सुरति, निरति आदि पर पूर्ण विवेचन प्राप्त होता है। इनके साहित्य में सदाचार पर विशेप बल दिया गया। वैराग्य इनकी प्रधान साधना है। अतः जीवन और जगत् के प्रति उदासीन भाव रखने के कारण इनके काव्य में

भावमयता का अभाव है।

४. **लोक रस का साहित्य**—यह साहित्य दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। पहले भाग में सैद्धांतिक साहित्य है—जैसे भोज का 'सरस्वती कण्ठाभरण' हेमचन्द, का 'प्राकृत वैगलम्' और 'पुरातन प्रवन्ध संग्रह' आदि। दूसरे भाग में शृंगार रस का साहित्य आता है—जैसे अब्दुर्रहमान का संदेश रासक, विद्यापति की कीर्तिलता और कीर्तिपताका। यह साहित्य अपने काव्य-गत गुणों से ओत-प्रोत है। इसमें न तो उपर्युक्त धाराओं की भांति धार्मिक विश्लेषण को प्रधानता देकर भावमयता का गला घोटा गया है और न किसी बंधी हुई परम्परा पर चलने का आग्रह किया गया है।

योगदान और स्थान—अपभ्रंश साहित्य की इन धाराओं का परवर्ती हिन्दी-साहित्य पर गहरा प्रभाव पड़ा। यह प्रभाव निम्नलिखित शीर्षक में रक्खा जा सकता है।

१ **कथानकों का प्रभाव**—अपभ्रंश में दो प्रकार के कथानक मिलते है—पौराणिक तथा लोक-प्रचलित। हिन्दी साहित्य पर इसके लोक-प्रचलित कथानकों का प्रभाव पड़ा। जैसे पद्मावत। इसमें प्रयुक्त काव्य-रूढ़ियां भी अपभ्रंश के साहित्य की तरह हैं।

२. **काव्य रूपों का प्रभाव**—अपभ्रंश में दो काव्यरूप मिलते हैं—प्रवन्ध और मुक्तक। हिन्दी-साहित्य में भी ये दोनों रूप उपलब्ध होते हैं।

३. **विषयो का प्रभाव**—हिन्दी-साहित्य के मध्यकाल में मुख्य विषय थे राजस्तुति, शृंगार-भावना, नीति-विषयक फुटकर रचनाएँ। इन पर पश्चिमी अपभ्रंश का प्रभाव है। पूर्वी अपभ्रंश का प्रभाव निर्गुण सन्तों की वाणियों में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी का यह मत युक्तियुक्त ही है कि डिंगल की वीरगाथाएँ, निर्गुणिया संतों की वाणियों, भक्तिमार्गी साधकों के पद, रामभक्ति की कविताएँ, सूफी कवियों के रोमांस आदि सभी विषय अपभ्रंश की ही देन हैं।

४. **शब्दों का प्रभाव**—अपभ्रंश के छन्दों को भी हिन्दी में खुलकर अपनाया गया। यथा—मात्रिका छन्द, दोहा, पद्धरियां, छप्पय, कुण्डलियां आदि।

अतः यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान है। अपभ्रंश ने हिन्दी को जन्म ही नहीं दिया बल्कि उसे अपने प्रभाव से प्रभावित करके पल्लवित और पुष्पित भी किया है। इहीलिए हिन्दी और अपभ्रंश का पारस्परिक संबन्ध घनिष्ठ और अटूट है।

भक्तिकाल

प्रश्न १०—भक्तिकाल का आविर्भाव कैसे हुआ? इनकी प्रमुख काव्य-धाराओं का संक्षिप्त परिचय दीजिये।

उत्तर—साहित्यिक इतिहास में किसी भी काल का आविर्भाव एक निश्चित सीमा और तिथि में नहीं बांधा जा सकता। साहित्य मन की सृष्टि है और मन पर पड़ते हुए संस्कार फलने-फूलने में काफी दिन ले जाते हैं। यही बात भक्तिकाल के विषय में भी कही जा सकती है।

आविर्भाव के कारण—यह सच है कि जब हिन्दी-साहित्य में भक्तिकाल का आरम्भ होता है, तब देश में शांति और व्यवस्था न थी। राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक सभी क्षेत्रों में उथल-पुथल मची हुई थी देश पर मुसलमानों का अधिकार तो हो गया था और वे यहां के शासक बन बैठे थे। किन्तु अभी तक वे देश को सुव्यवस्थित नहीं कर पाये थे। हिन्दू मुसलमानों को अपना शत्रु समझ रहे थे और मुसलमान हिन्दुओं को अपने आश्रित। फलतः दोनों जातियों के बीच भेद-भाव और वैमनस्य की गहरी खाई बनती जा रही थी। मुसलमान दिल खोककर हिन्दुओं पर अत्याचार कर रहे थे और असहाय हिन्दुओं को सिवाय भगवान की शरण के और कहीं आश्रय नहीं दिखाई देता था। भगवान की कृपा के सम्बन्ध में उनका विश्वास दृढ़तर हो रहा था और वे सौचते थे कि जिसने ग्राह से गज की रक्षा की, वह अवश्य हमारे करुण क्रंदनों को सुनेगा। आचार्य शुक्ल का मत है कि इसी प्रतिक्रिया के फलस्वरूप भक्तिकाल का आविर्भाव हुआ। वे लिखते हैं—"इतने भारी राजनीतिक उलट-फेर के पीछे हिन्दू जन-समूदाय पर बहुत दिनों तक उदासी सी छाई रही। अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था?"

बहुत दिनों तक हिन्दी साहित्य में यही मान्यता प्रचलित रही, किन्तु आज के विद्वान् इस मत से सहमत नहीं। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इस मत का प्रबल तर्कों के साथ खण्डन करके यह सिद्ध किया है कि भक्तिकाल का आविर्भाव असहाय जनता की भावनाओं की प्रतिक्रिया मात्र नहीं, बल्कि भक्ति का जो दक्षिण में अबाध स्रोत बह रहा था, वही अवसर पाकर उत्तर भारत में एकदम पल्लवित और पुष्पित हो गया। उनका यह भी कहना है कि अगर भक्ति निराश और असहाय जनता के मन की प्रतिक्रिया होती तो पहले उसे उत्तरी भारत में उत्पन्न होना चाहिये था किन्तु हुई वह दक्षिण में।

अतः यह निर्भ्रांत कहा जा सकता है कि भक्ति आन्दोलन परिस्थितियों की अचानक बिजली की चमक के समान फैल जाने वाली प्रतिक्रिया नहीं, वरन् इसके लिये तो सैकड़ों वर्षों से मेघखण्ड एकत्र हो रहे थे और वे एकाएक चौदहवीं-पन्द्रहवीं शताब्दी में आकर शास्त्रसिद्ध आचार्यों का आधार पा गये। उत्तर भारत में जन-साधारण में पौराणिक विश्वासों के रूप में धर्म-भावना विद्यमान थी जो इस काल में अनायास वैष्णव आचार्यों के द्वारा प्रसारित हुई और देखते-देखते उत्तरी भारत में फैल गई। कबीर ने भी इसी बात का समर्थन किया है।

'भक्ति द्राविड़ उपजी लाए रामानन्द।
परगट किया कबीर ने सप्तदीप नव खण्ड।

अन्त में कहा जा सकता है कि भक्ति की जो भावना दक्षिण में चिरकाल से विद्यमान थी, वही परिस्थितियों का सहारा पाकर उत्तर भारत में फैली।

प्रमुख काव्यधाराएँ—भक्तिकाल में प्रमुख रूप से चार काव्य धाराएँ प्रवाहित हुई—

१. निर्गुण संतों की काव्यधारा।
२. सूफी कवियों की काव्यधारा।
३. कृष्ण-भक्तों की काव्यधारा।
४. राम-भक्तों की काव्यधारा।

१. निर्गुण सन्तों की काव्यधारा—यह धारा भगवान का निराकार रूप मानती है। भारतीय वेदान्त दर्शन का इस पर गहरा प्रभाव है। इसीलिए आत्मा और परमात्मा में अद्वैत-सम्बन्ध देखती है। इन भक्तों का कहना है कि जिस प्रकार घट का आवरण होने से पानी में घड़े का पानी पृथक् रहता है और उस आवरण की समाप्ति पर पुनः एकाकार हो जाता है, उसी प्रकार शरीर आवरण हट जाने पर आत्मा परमात्मा में ही विलय हो जाती है। नाथ और सिद्धों का प्रभाव भी इस धारा पर स्पष्ट दिखाई देता है। साथ ही सूफियों की प्रेम की पीर और माधुर्य भावना का भी प्रभाव है। कबीर इस धारा के प्रवर्त्तक माने जाते हैं।

२. सूफी कवियों की काव्यधारा—इस धारा में माधुर्य भावना की प्रधानता है। सूफी की काव्यमय अभिव्यक्ति ही इसका ध्येय है। प्रेम की पीर को जगा कर ही परमात्मा से मिलन हो सकता है, यही इनके मत का आधार है। इन्होंने हिन्दू-कथानकों को लेकर काव्यबद्ध किया है। जायसी इस

धारा के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं।

३. **कृष्ण भक्तों की काव्यधारा**—यह सगुण धारा है। इसमें भगवान् के साकार रूप को ही ग्रहण किया गया है, निराकार निरालम्ब होने के कारण इसमें ग्राह्य नहीं। उन्होंने कृष्ण के केवल माधुर्य रूप को ही लिया है, इसीलिए वात्सल्य और विशेषतः शृंगार रस का ही वर्णन इस काव्यधारा में उपलब्ध होता है। इसका सम्बन्ध अपने आराध्य के प्रति केवल स्वामी और सेवक का ही नहीं, सखा का भी है। सूरदास इस धारा के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं।

४. **राम भक्तों की काव्यधारा**—इस धारा में राम को आराध्य माना गया है और उसकी सगुण रूप में उपासना की गई है। इस धारा के कवि मर्यादावादी और आदर्शवादी हैं। कृष्ण-भक्त लोक-कल्याण से आँखें मूद कर केवल अपने आप में ही केन्द्रित हैं, उनके आगे भक्त और भगवान् के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, यह भावना इस धारा के कवियों में नहीं मिलती। इनका काव्य 'स्वान्तः सुखाय' होकर भी 'लोक-हिताय' है। धार्मिक उदारता और समन्वय भावना इस काव्यधारा की प्रमुखतम विशेषता है। लोकनायक गोस्वामी तुलसीदास इस धारा के मूर्धन्य कवि है।

प्रश्न ११—भक्तिकाल की धार्मिक परिस्थिति का परिचय दीजिये। इसमें भिन्न-भिन्न धार्मिक विचारधाराओं, प्रवर्त्तक आचार्यों का नामोल्लेख तथा समाज के भिन्न-भिन्न स्तरों पर इनका प्रभाव कैसा था यह सब बताइये।

उत्तर—जिस समय भारत के भक्तिकाल का आविर्भाव हुआ, उस समय देश का वातावरण बड़ा ही विक्षुब्ध था। राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और साहित्यिक सभी परिस्थितियों में हलचल मची हुई थी। संक्षेप में भक्तिकाल की धार्मिक परिस्थितियाँ इस प्रकार थीं—

धार्मिक परिस्थितियाँ—मुसलमान देश के शासक तो बन गये थे, किन्तु जनता का हृदय जीतकर उनमें व्यवस्था कायम कर देना उनके लिए बड़ा मुश्किल हो रहा था। एक तो पहले ही सिद्धों के भ्रष्ट चारणों के कारण भारतीय जनता की धार्मिक भावना को ठेस लग रही थी, दूसरे मुसलमानों के प्रवेश ने तो जले पर नमक छिड़क दिया। वे हिन्दुओं को वलात् धर्म-परिवर्तन के लिये विवश करने लगे। इससे यहाँ का धर्म विल्कुल पंगु वन गया। वह सजीवता के स्थान पर आडम्बरों का घर हो गया। फलतः धर्म के अनेक टुकड़े हो गये। विभिन्न सम्प्रदाय अपनी-अपनी ढपली लेकर अपना-अपना राग गाने लगे। कहीं कर्म-काण्ड का पाखण्ड था तो कहीं हठयोग का चमत्कार। कहीं

अद्वैतवाद की धूम थी तो कहीं शैव, शाक्त और वैष्णवों का संघर्ष। इस प्रकार धार्मिक वातावरण बिल्कुल अस्त-व्यस्त था और भोली-भाली जनता के लिए यह निश्चय करना अत्यन्त कठिन हो गया था कि वे किस सम्प्रदाय की बातों को मानें ? किसकी बातों में सचाई का अंश है अथवा कौन-सी धार्मिक पद्धति सही है ? इन सम्प्रदायों में से प्रमुख सम्प्रदाय निम्नलिखित हैं—

१. अद्वैतवाद, २. विशिष्टाद्वैतवाद, ३. द्वैतवाद, ४. द्वैताद्वैतवाद, ५. शुद्धाद्वैतवाद, ६. चिन्त्याचिन्त्यवाद।

१. अद्वैतवाद—इस वाद के प्रवर्त्तक स्वामी शंकराचार्य हैं। वेदान्त इसका मूलाधार है। इसे विवर्तवाद, प्रतिविम्ववाद और मायावाद भी कहा जाता है। इस वाद के अनुसार धर्म के दो पक्ष हैं—ज्ञान और आचरण। ज्ञान पक्ष में ब्रह्म के स्वरूप की, जीव और प्रकृति के सम्बन्ध की चर्चा है तथा आचरण पक्ष में स्मृति आदि शास्त्रों के अनुसार आचरण करने के आदेश हैं। इस वाद की प्रमुखतम विशेषताएं ये हैं—

(अ) जीव और ब्रह्म एक है—'जीवो ब्रह्मैव केवलम्।' ब्रह्म और जीव में नाम रूप में माया के कारण भेद प्रतीत होता है। यदि ज्ञान के द्वारा इस माया को नष्ट कर दिया जाये तो यह भेद मिट जाता है।

(आ) जगत् असत्य और ब्रह्म सत्य है—'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या।'

(इ) ब्रह्म ही सर्वव्यापक, सर्व शक्तिमान और सब कुछ है—'सर्व खल्विदं ब्रह्म।'

(ई) सृष्टि का आविर्भाव तभी होता है जब ब्रह्म अपने अनेक रूपों में प्रकट होने की इच्छा करता है—'एकोऽहं बहु स्याम्।'

२. विशिष्टाद्वैतवाद—शंकर के अद्वैतवाद के विरोध में स्वामी रामानुजाचार्य ने इस वाद की स्थापना की। इसकी विशेषताएं ये हैं—

(अ) इस वाद में शंकर के अद्वैतवाद के विरुद्ध विशिष्टाद्वैत की स्थापना की गई है, अर्थात् जीव, जगत् और ब्रह्म ये तीनों तत्व भिन्न-भिन्न हैं और एक विशिष्ट सम्बन्ध में परस्पर जुड़े हुए हैं।

जीव (चित्) और जगत् (अचित्) ये दोनों ब्रह्म के शरीर हैं।

(आ) इसमें विष्णु के विभिन्न अवतारों को मान्यता दी गई।

३. द्वैतवाद—इसके संस्थापक मध्वाचार्य हैं। इन्होंने अद्वैतवाद और विशिष्टाद्वैतवाद दोनों का खंडन करके द्वैतवाद की नींव डाली। इसके अनुसार—

(अ) जीव और ब्रह्म एक नहीं और न वे किसी विशिष्टता के साथ जुड़े हुए हैं, बल्कि दोनों भिन्न-भिन्न तत्त्व हैं।

(आ) भगवान् की भक्ति ही मोक्ष का कारण है। भक्ति के कारण माया का आवरण स्वयं हट जाता है, अर्थात् माया को नष्ट करने के लिए ज्ञान की नहीं, भक्ति की आवश्यकता है।

४. द्वैताद्वैतवाद—इस वाद के प्रवर्त्तक निम्बाकाचार्य हैं। इस वाद की विशेषताएं ये हैं—

(अ) इसमें मूल रूप से ब्रह्म; जीव और जगत् की अद्वैतता तो स्वीकार की गई है, किन्तु प्रकाश रूप में द्वैतता का ही समर्थन किया गया है।

(आ) इसमें उपासना के दो रूप माने गये हैं—शास्त्रनुशीलन और ध्यान।

(इ) जीव मोक्ष के लिए सर्वतः ईश्वर के अधीन है। संसार का कोई भी कार्य भगवान् के अनुग्रह के बिना नहीं चल सकता।

५. शुद्धाद्वैतवाद—स्वामी बल्लभाचार्य इस वाद के प्रवर्त्तक है। शंकराचार्य अद्वैतमत के प्रवर्त्तक थे और जीव तथा ब्रह्म में अद्वैत-भाव मानते थे। रामानुजाचार्य ने विशिष्ट ईश्वर का प्रतिपादन किया, किन्तु वल्लभाचार्य ने माया के कारण अशुद्ध ब्रह्म से माया को अलग करके उसे शुद्ध किया। इसीलिए इसका नाम 'शुद्धाद्वैत' पड़ा। इस वाद के अनुसार—

(अ) यद्यपि ब्रह्म तथा जीव में अद्वैतता है, किन्तु ब्रह्म कृष्ण रूप में अवतरित होकर भी विकार को प्राप्त नहीं होता। वह सदैव शुद्ध ही रहता है।

(अ) जगत् सत्य है, परन्तु जीव के द्वारा निर्मित संसार मिथ्या है।

(इ) माया के दो भेद हैं—विद्या और अविद्या। विद्या भागवत्-प्राप्ति में सहायक होती है और अविद्या बाधक।

(ई) ईश्वर के तीन रूप हैं—रसेश्वर, अक्षर और अन्तर्यामी। कृष्ण का बाल रूप ही ईश्वर रूप है।

(उ) जीव के भी तीन भेद हैं—पुष्टिजीव, मर्यादाजीव और प्रकारी जीव।

६. चिन्त्याचिन्त्यवाद—महाप्रभु चैतन्य इस वाद के प्रवर्त्तक हैं। इस वाद को गौड़ीय सम्प्रदाय भी कहते हैं। इस वाद की प्रमुख विशेषतएं ये हैं—

(अ) ब्रह्म अखिल गुणों का आधार है। गुण व गुणी में भेद नहीं होता

अतः भगवान् में अनन्त गुणों का निवास है। इसमें ब्रह्म की चार शक्तियाँ मानी गई हैं—सन्धिनी, संवित्, ह्लादिनी और जीव (तटस्था) शक्ति। ईश्वर के दो रूप हैं—ऐश्वर्य और माधुर्य।

(आ) जगत् मिथ्या नहीं, बल्कि ब्रह्म की ब्रह्म शक्ति का विकास है।

(इ) जीव अणु रूप है ईश्वर जीव में व्याप्त है। जीव नित्य और अनेक है।

(ई) भक्ति की प्रधानता है। ज्ञान और वैराग्य भक्ति के साधन है। के दो भेद माने गये हैं—विधि भक्ति और रुचि भक्ति।

प्रभाव—इन विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों पर एक विहंगम दृष्टि डालने के उपरान्त अब यह देखना है कि हिन्दी साहित्य पर इसका क्या प्रभाव पड़ा।

निर्गुण सन्त कवियों पर अद्वैतवाद का गहरा प्रभाव है। इस वाद में माया को जीव और ब्रह्म की द्वैत-भावना का कारण बताया है। इसी भाव को कबीर इस प्रकार व्यक्त करते हैं—

'जल में कुम्भ कुम्भ में जल, बाहिर भीतर पानी।
फूटा कुम्भ जल जलहि समाना, यह तथ्य कथ्यौ गियानी।'

विशिष्टाद्वैतवाद का प्रभाव राम-भक्ति-शाखा पर प्रमुख रूप में पड़ा। मध्वाचार्य के अद्वैतवाद का कोई विशिष्ट प्रभाव नहीं पड़ा। बल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैतवाद ने हिन्दी साहित्य को सबसे अधिक प्रभावित किया। कृष्ण-भक्ति शाखा इसी वाद की देन है। इसी शाखा पर निम्बार्काचार्य के द्वैतावाद का प्रभाव भी पर्याप्त मात्रा में पड़ा है। चैतन्य के चिन्त्याचिन्त्यवाद का अपेक्षाकृत कम ही प्रभाव पड़ा है और वह भी प्रत्यक्ष नहीं, बल्कि परोक्ष रूप में।

इन वादों के अतिरिक्त सिद्धों और योगियों की विचारधारा का भी हिन्दी साहित्य पर काफी प्रभाव पड़ा है।

प्रश्न १२—भक्तिकाल के साहित्य का वर्गीकरण करते हुए सिद्ध कीजिए कि भक्ति-साहित्य महान् आदर्श का वास्तविक लोक-साहित्य है, हिन्दी-साहित्य का स्वर्ण युग है।

उत्तर—भक्तिकाल हिन्दी-साहित्य का सबसे अधिक समृद्ध काल है। इसमें अनेक धार्मिक सम्प्रदायों का प्रचार और प्रसार हुआ, तथा अनेक भक्ति-शाखाओं का उन्नयन। इस काल के साहित्य का वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है।

वर्गीकरण—सबसे पहले आचार्य शुक्ल ने इस काल के साहित्य का

वर्गीकरण किया। उन्होंने पहले समूचे भक्तिकालीन साहित्य को दो भागों में बाँटा—निर्गुण तथा सगुण। फिर इनके दो-दो उपभेद किए। निर्गुण के दो उपभेद हैं—ज्ञानाश्रयी शाखा और प्रेममार्गी शाखा। ज्ञानाश्रयी शाखा के अन्तर्गत निर्गुणिये सन्त कवि आते हैं जैसे कबीर, दादू, रैदास आदि। प्रेम-मार्गी शाखा में सूफी कवि आते हैं। सगुणधारा के भी उन्होंने दो भेद किए—कृष्णभक्ति शाखा और रामभक्ति शाखा। कृष्णभक्ति शाखा में सूरदास नन्ददास, मीरा बाई आदि हैं और रामभक्ति शाखा में तुलसी आदि। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इस काल के इस प्रकार के भेदोपभेद न करके समूचे काल को चार काव्यधाराओं में बाँट दिया है—संत-काव्यधारा, सूफी-काव्यधारा, कृष्णभक्ति-काव्यधारा और रामभक्ति-काव्यधारा। इन दोनों प्रकार के वर्गीकरण में कोई तात्विक भेद नहीं है, बल्कि एक ही बात है।

स्वर्ण युग—किसी भी साहित्य को परखने के लिए प्रमुख रूप से दो कसौटीयाँ होती हैं—काव्य तत्त्व और लोक तत्त्व। काव्य तत्त्व से तात्पर्य काव्य के भावपक्ष और कलापक्ष से है और लोक-तत्त्व से तात्पर्य लोकहित की भावना से है। जिस साहित्य में ये दोनों तत्त्व समान रूप से ग्रंथित होंगे, वह साहित्य अवश्य ही सर्वोत्कृष्ट होगा, इसमें तनिक भी संन्देह के लिए स्थान नहीं। इन्हीं तत्त्वों के आधार पर भक्तिकाल के साहित्य की संक्षिप्त समीक्षा की जाएगी।

१. **काव्य तत्त्व**—जैसा कि कहा जा चुका है काव्य-तत्त्व का अर्थ है काव्य का भाव और कलापक्ष। जहाँ तक भक्तिकाल के भावपक्ष का सम्बन्ध है, यह निर्भ्रांत शब्दों में कहा जा सकता है कि इस काल के कवियों में भावपक्ष की प्रधानता रही है। कलापक्ष तो सदैव भावों का अनुचर रहा है। कबीर न तो शिक्षित थे और न उन्हें काव्य-शास्त्र का ही ज्ञान था। उन्होंने अपने दोहे और पद कहते समय न तो छंदों की मात्राओं को गिना और न अलंकारों का प्रदर्शन करने का प्रयास किया। उनके भाव अबाध गति से वह निकले और उनमें जो काव्यपक्ष आ गया तो आ गया, नहीं आया तो न सही। भावों की अभिव्यक्त उनका मुख्य ध्येय था और इसीलिए वे गूढ़तम विषयों को भी सीधी-सादी भाषा में सजीवता के साथ कह गए। उदाहरण के लिए यह दोहा लीजिए—

> कबिरा यह जग कछु नहीं खिन खारा खिन मीठ।
> काल्हि जो बैठा मँडपै आज मसाने दीठ॥'

इसमें जीवन की नश्वरता का बड़े ही मार्मिक ढंग से वर्णन किया गया है।

सूरदास भाव और कला दोनों ही दृष्टियों से आँके जा सकते हैं। इनके पदों में एक सच्चे भक्ति की सहज वाणी को आकार मिला है, किन्तु इनका कलापक्ष भी समद्ध है। कहीं कहीं तो इनके भाव उपमा और उत्प्रेक्षा आदि अर्थालंकारों का साथ लेकर इस प्रकार फूट पड़ते हैं कि यह निर्णय करना ही कठिन हो जाता है कि इस पद में भाव पक्ष प्रधान है अथवा कलापक्ष ?

तुलसीदास में केवल भक्त का सहज हृदय ही नहीं था, बल्कि पंडितों का गम्भीर मस्तिष्क भी था। यद्यपि उन्होंने यह कहकर कि

'का भाषा का संस्कृत भाव चाहिये सांच'

भावपक्ष का स्पष्ट रूप से प्राधान्य स्वीकार किया है, किन्तु कलापक्ष का भी इनके काव्य में अभाव नहीं है। यह कहना अनुचित न होगा कि तुलसी के काव्य में भाव और कला दूध-पानी की भाँति परस्पर मिल गए हैं।

मीरा को जिस प्रकार अपनी प्रणयानुभूति के सामने और कोई वस्तु दिखाई नहीं देती थी, उसी प्रकार भावों की अभिव्यक्ति ही उनका मुख्य ध्येय था। 'प्रेम दीवानी' को कला पक्ष से करना भी क्या था। सूफी कवियों में भाव और कला दोनों का अपूर्व गठबंधन है। उनके प्रेमाख्यानक काव्य जहाँ एक ओर प्रेम की पीर से भावाकुल हैं, वहां दूसरी ओर कला की दृष्टि से भी समृद्ध हैं।

२. लोक तत्त्व—काव्य-तत्त्व का विहंगावलोकन करने के बाद अब यह देखना है कि इस काल के साहित्य में लोक-तत्त्व का क्या स्थान है। भक्ति-कालीन साहित्य का वर्गीकरण करते समय जिन चार काव्यधाराओं का उल्लेख किया गया है, उनमें केवल कृष्ण-काव्यधारा ही ऐसी है, जिसमें लोक तत्त्व का अभाव देखा जाता है। यदि अधिक गहराई से सोचा जाय तो इसमें भी यह अभाव दिखाई नहीं देता क्योंकि भक्ति के प्रचार और प्रसार की भावना में लोकहित की भावना होती ही है जब सूरदास अपने अपराध को सम्बोधित करके कहते हैं कि तुम्हारे बिना मुझे और कहीं आश्रय नहीं मिल सकता तो इसका अभिप्राय: यह भी तो है कि संसार के मनुष्यों को भी वे चेतावनी देते हैं कि भगवान की शरण में आ जाये बिना मनुष्य का कल्याण नहीं हो सकता हाँ लोकहित की जितनी स्पष्ट अभिव्यक्ति अन्य तीनों धाराओं में हुई हैं, वह इस धारा में नहीं है।

जहां तक निर्गुणिये सन्त कवियों का प्रश्न है, वे तो लोक-कल्याण की

भावना को लेकर ही पैदा हुए थे। उन्हें समाज में जो गलत दिखाई दिया, उसका डटकर विरोध किया। उनमें लोक-कल्याण की भावना इतनी प्रबल थी कि वे किसी भी धर्म की परिधियों में बंधे हुए नहीं थे। उनकी दृष्टि इस लोक पर भी थी और पर लोक पर भी। एक ओर जहाँ वे सामाजिक आडम्बरों का खण्डन करते थे, वहाँ दूसरी ओर भक्ति के पद भी गाते थे।

राम काव्यधारा तो लोकहित को लेकर चलती ही है। तुलसी ने यद्यपि अपने रामचरितमानस का उद्देश्य 'स्वान्तःसुखाय' बताया है। तथापि इसमें 'लोकहिताय' की कितनी अदम्य और प्रबल भावना है, यह आज किसी से भी छिपी हुई नहीं है। आज हिन्दी-साहित्य में यह सर्वसम्मति से माना जाता है कि तुलसी जैसा लोकनायक कवि आज तक हिन्दी में कोई दूसरा नहीं हुआ।

सूफी कवियों में भी लोक हित की विशाल भावन है। यह बात दूसरी है कि वे सूफी सिद्धान्तों में ही लोकहित देखते थे। उन्होंने अपने प्रेमाख्यानक महाकवियों में प्रतीकों द्वारा सूफी सिद्धान्तों का प्रतिपादन करके अपनी लोक-कल्याण की भावना की ही अभिव्यक्ति दी है। जायसी के पद्मावत में प्रायः प्रत्येक पद में इस भावना को देखा जा सकता है।

निष्कर्ष—इन दोनों तत्त्वों पर भक्तिकालीन साहित्य की समीक्षा करने के उपरान्त यह निर्विरोध रूप से कहा जा सकता है कि यह साहित्य सर्वोत्कृष्ट साहित्य है। यहाँ कला केवल कला के लिए न होकर जीवन के लिए है और जो साहित्य जीवन के साथ कन्धा मिलाकर चलता है, आज की नवीनतम कसौटी पर भी वह ऊंचा ही उतरता है। इस साहित्य में महान् आदर्शों का समावेश है। अतः यहे कहना युक्तियुक्त ही है कि भक्तिकाल हिन्दी-साहित्य का स्वर्णकाल है।

प्रश्न १३—सन्त काव्यों की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए इस धारा के गुण दोषों को प्रकट कीजिये।

उत्तर—कोई भी मत, वाद या सम्प्रदाय तभी पनप सकता है जब उसकी पाचन क्रिया प्रबल हो, अर्थात् वह अपनी संकीर्ण सीमा को छोड़कर जहाँ भी इसे अच्छाई दिखाई दे, वह उसे वहीं से ग्रहण कर ले। हिन्दी साहित्य का संत मत इसी प्रकार का है। उसे जहाँ भी अच्छाई मिली अथवा अपने सिद्धांतों के अनुकूल बातें दिखाई दीं, वहीं से उन्हें अपना लिया। इस प्रकार सन्त मत किसी एक परम्परा की लकीर का फकीर नहीं, बल्कि अनेक सम्प्रदायों का

समन्वित रूप है। यही इसकी प्रमुखतम विशेषता है। इस विशेषता का विश्लेषण करने पर सन्त मत का निम्नलिखित स्वरूप उपलब्ध होता है—

१. **वेदान्त का प्रभाव**—वेदान्त में आत्मा और ब्रह्म को एक मानकर अद्वैतवाद का प्रतिपादन किया गया है। 'एकोऽहं द्वितीयो नास्ति' इसका मूल आधार है। माया का आवरण बीच में आ जाने से आत्मा और परमात्मा में द्वैत प्रतिभासित होता है। इस आवरण के हट जाने पर फिर वही अद्वैत स्थित आ जाती है। सन्त मत मे वेदान्त के इसी मूल तत्त्व को ग्रहण किया गया है। इसी स्थिति का वर्णन कबीर इस प्रकार करते हैं—

'जल में कुंभ कुंभ में जल है, बाहर भीतर पानी।
फूटा कुंभ जल जलहि समाना, यह तथ्य कथ्यौ गियानी॥'

२. **सूफी काव्य का प्रभाव**—सूफी-काव्य का प्रमुख तत्त्व है प्रेम की पीर। इनका विश्वास है जब तक प्रेम की पीर नहीं जगती, तब तक प्रियतमा का साक्षात्कार नहीं हो सकता और न प्रेम का स्वरूप ही पावन एवं विशुद्ध बन सकता है। अतः ये अपनी प्रियतमा के लिए अत्यधिक व्याकुल होते हैं, मूर्छा खा-खाकर गिरते हैं और अपने शरीर को मिटाने के लिए ही तत्पर हो जाते हैं, ताकि उसके हृदय में इनके लिए करुणा का भाव उत्पन्न हो। कबीर भी इसी भाव को लेकर कहते है—

'यह तन जारों मसि करूँ धुपा जाय सरग्गि।
मति वै राम दया करि बरसि बुझावै अग्गि॥'

सूफी-मत की दूसरी विशेषता है परमात्मा को प्रियतमा का रूप देना। यह इनकी माधुर्य भावना कही जाती है। किन्तु सन्तों ने इस विशेषता को भारतीय वातावरण के अनुकूल ही ग्रहण किया है, अर्थात् उन्होंने परमात्मा को प्रियतमा न मानकर प्रियतम ही माना हैं। कबीर जी कहते है—

'हरि मोरा पीव में हरि की बहुरिया।
राम बड़े मैं छुटक लुहरिया।'

३. **सिद्धों और नाथ पंथियों का प्रभाव**—सन्त-मत पर सिद्धों और नाथ-पंथियों का भी पर्याप्त प्रभाव है। ये लोग हठयोग की क्रियाओं में अपार विश्वास रखते हैं और इन्हीं के द्वारा मुक्ति मानते हैं। कबीर के पदों में भी इन क्रियाओं के अनेक वर्णन मिलते हैं। इन्होंने इंगला, पिंगला और सुषुम्ना को गंगा, यमुना और सरस्वती कहा है। साथ ही इन लोगों जैसी 'संध्या-भाषा और उलटवासियों का प्रयोग भी कबीर में मिलता है। सिद्धों और

नाथ पंथियों के अनेक प्रतीक भी कबीर में उपलब्ध होते हैं । इन सम्प्रदायों में गुरु को अत्यधिक महत्व दिया गया है। कबीर भी गुरु की असीम महत्ता का इस दोहे में वर्णन करते हैं:—

'गुर गोविन्द दोऊ खड़े काके लागूं पाय।
बलिहारी गुरु आपने गोविंद दियो बताय।'

किन्तु साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिये कि सिद्धों और नाथों की आडम्बरपूर्णता का कबीर ने खुले शब्दों में निर्भीक होकर खंडन किया है। इस प्रकार यह कहना उचित ही है कि सन्त-मत का आधार भारतीय वेदान्त, सूफीवाद, सिद्धों का सम्प्रदाय और नाथों का मत है।

संत काव्य की विशेषताएं—उपर्युक्त पंक्तियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि सन्त-मत अनेक मतों का समन्वय है, किन्तु इसकी अपनी भी कुछ विशेषताएँ हैं। इनमें से प्रमुख विशेषतायें ये हैं—

१. खंडन की प्रवृत्ति—सन्तों को जो बातें सही नहीं लगती थीं उनका वे निर्भीकता से खुले आम खंडन करते थे। ऐसी खडन की प्रवृत्ति अन्य मतों में दिखाई नहीं देती। कबीर तो इसी प्रवृत्ति के कारण 'अक्खड़' कहे जाते हैं। वे न मुसलमान को छोड़ते हैं न हिन्दू को। न योगी को बख्शते हैं न भोगी को! वे तो सबको खरी-खरी सुनाते हैं। निम्नलिखित पंक्तियों में कबीर की स्पष्टभाषिता और अक्खड़पन देखिये—

'जो तू ब्राह्मण ब्राह्मणी जाया, और बाट काहे न आया?
जो तू तुरक तुरकिनी जाया, पेटै काहे न सुनति कराया?'

२. प्रेम और भक्ति—इस अक्खड़ प्रवृत्ति के बावजूद भी इन सन्तों में प्रेम और भक्ति का सरस रूप मिलता है। प्रेम इनकी दृष्टि में कोई मामूली चीज नहीं, बल्कि एक ऐसी दुर्लभ वस्तु है जिसे प्राप्त करने के लिए परम त्याग की आवश्यकता है। कबीर के शब्दों में—

'यह तो घर है प्रेम का खाला का घर नांहि।
सीस उतारैं भुईं धरैं तब पैठे घर मांहि।'

इनकी भक्ति की बाह्य और आन्तरिक दोनों आडम्बरों से रहित है। उसमें केवल हृदय का सहज समर्पण चाहिए, तभी मालिक का दीदार हो सकता है। भक्ति की इसी सहज सरलता को कबीर इन शब्दों में प्रकट करते हैं—

'संतो! सहज समाधि भली।'

३. सामाजिक पक्ष का प्राधान्य—सन्त कवि केवल अपनी ही समाधि में खो जाने वाले कवि नहीं थे, समाज कल्याण का भी उन्हें वरावर ध्यान वना रहता था। उन्हें समाज के आडम्बर फूटी आँख भी न सुहाते थे। इसीलिए इनके मत में खंडन-प्रवृत्ति का प्राधान्य मिलता है। इनका विश्वास था कि सामाजिक व्यवस्था को सवसे अधिक हानि पहुंचाने वाली ऊंच-नीच की भावना और जातियाँ हैं इसलिए इन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है कि—

'साईं के सव जीव हैं कीड़ी कुंजर दोय।

यही नहीं, भगवान् के दरवार में सभी समान हैं और सभी को समान रूप से भक्ति करने का अधिकार है। ईश्वर उसी का है जो उसकी भक्ति करे—

'जाति पांति पूछै नहि कोई।
हरि को भजै सो हरि का होई।'

४. धार्मिक सिद्धान्त—जैसा कि कहा जा चुका है, सन्त-मत अनेक मतों का समन्वय था। वह किसी पिटी-पिटाई लकीर पर चलने वाला नहीं था, इसलिए उसकी धार्मिक भावना भी एकदम नई थी। ये निर्गुण ब्रह्म की उपासना करते थे, फिर भी इनमें सूफियों की सी प्रेम की पीर और माधुर्य भावना थी। इसीलिए यह मत हिन्दू और मुसलमान दोनों के लिए ग्राह्य वन सका। इनके धार्मिक विधानों में किसी भी प्रकार के आडम्वर या दिखावे के लिये स्थान नहीं है। व्यक्तिगत सुधार पर ये विशेष वल देते थे। इसलिए इन्होंने साधुओं को काम, क्रोध, मद, लोभ और मोह आदि दुर्गुणों से वचकर सहज जीवन विताने का उपदेश दिया, साथ ही रोजा, नमाज, पूजा-पाठ, व्रत, मन्दिर, मस्जिद आदि धार्मिक आडम्वरों का विरोध किया। इनका धर्म हृदय की अपेक्षा मस्तिष्क पर अधिक टिका हुआ है, उसमें भक्ति की अपेक्षा ज्ञान का प्राधान्य है। तर्क भावुकता पर अंकुश लगाये हुए है।

दोष—इन विशेषताओं अथवा गुणों के रहते हुए भी सन्त-मत में कुछ दोष भी हैं, जो इस प्रकार हैं—

१. ये सन्त ईश्वर का कोई प्रभावशाली स्वरूप स्थिर नहीं कर पाये, फलतः इनका ईश्वर ज्ञान-स्वरूप और प्रेम-स्वरूप ही वनकर रह गया। वह धर्म-स्वरूप न हो पाया।

२. इनकी भक्ति पद्धति में ज्ञान का प्राधान्य होने के कारण सरसता का संचार न हो सका। इसीलिए वह अधिक ग्राह्य भी नहीं वनी और न उसका स्थिर प्रभाव ही पड़ सका।

३. इनकी खंडनात्मक प्रवृत्ति में व्यंग्यों की प्रबलता है।

४. इनकी वाणियों में कोई नवीनता नहीं, बल्कि कुछ ही बातें विविध ढंगों से बार-बार दोहराई गई हैं।

५. समन्वयात्मकता के बावजूद भी ये हिन्दू-मुसलमानों में ऐक्य स्थापित करने में असमर्थ ही रहे।

६. इनकी रचनाओं को विशुद्ध रूप से साहित्यिक कृतियाँ नहीं कहा जा सकता।

७. भाषा का कोई व्यवस्थित रूप इन सन्तों में नहीं मिलता। इसका कारण यह है कि केवल सुन्दरदास को छोड़कर इनमें कोई भी सन्त पढ़ा-लिखा नहीं था।

प्रश्न १४—प्रेम-कथानकों की परम्परा पर प्रकाश डालते हुए हिन्दी-साहित्य की प्रारम्भिक दशा में उनका स्थान निर्धारित कीजिये।

उत्तर—भक्तिकाल की निर्गुण धारा को दो वर्गों में बाँटा गया है—ज्ञानाश्रयी शाखा और प्रेममार्गी शाखा। ज्ञानाश्रयी शाखा के अन्तर्गत सन्त-काव्य आता है और प्रेममार्गी शाखा में सूफी काव्य। सूफी-काव्य ही हिन्दी का प्रेमाख्यानक-काव्य कहलाता है।

परम्परा—प्रेम-कथानकों की परम्परा काफी पुरानी है। संभवतः जब व्यक्ति के मन में अपनी प्रेम-भावना को अभिव्यक्त करने की प्रबल लालसा जगी होगी तभी प्रेम-कथाओं का जन्म हुआ होगा। लिखित रूप में अब तक सबसे पुरानी और प्रथम कथा गुणाढय कवि की 'वृहत कथा' मानी जाती है जो पैशाची प्राकृत भाषा में लिखी हुई है। इसकी मूल प्रति तो अभी तक उपलब्ध नहीं हुई, किन्तु परवर्ती ग्रंथों में इसके यत्र-तत्र संकेत एवं उद्धरण मिलते हैं।

नवीं और दसवीं शताब्दी में भी अपभ्रंश काव्य में प्रेम-कथानकों की परम्परा दिखाई देती है, जैसे कौतूहल कवि की 'लीलावती', और दसवीं शताब्दी में मयूर कवि की 'पद्मावती'। पृथ्वीराज रासो में भी पद्मावती, हंसावती, इंछिनी, इन्द्रावती आदि की कथाएँ एक प्रकार से प्रेम-कथाएँ ही हैं, किन्तु उन्हें प्रेम-कथानकों की विशुद्ध परम्परा में नहीं माना जा सकता। १५वीं शताब्दी में ईश्वरदास की दोहा-चौपाइयों में लिखी अवधी भाषा में 'सत्यवती' प्रेम-कथा मिलती है। सूफी कवि तो इस परम्परा को श्रृंखलाबद्ध करके ही चले हैं।

हिन्दी-साहित्य में उपलब्ध प्रेमाख्यानकों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है'—

१—आध्यात्मिक प्रेम-काव्य।

२—शुद्ध लौकिक प्रेम-काव्य।

१. आध्यात्मिक प्रेम-काव्य—इस वर्ग के अन्तर्गत दो धाराओं के प्रेम-काव्य आते है—सूफियों के प्रेम काव्य और भक्त-कवियों के प्रेम-काव्य।

सूफियों ने अधिकांश प्रेम-काव्य ही लिखे जिनमें प्रतीकों के द्वारा आध्यात्मिक प्रेम का निरूपण किया गया है। जायसी इस धारा के प्रमुख कवि हैं। यद्यपि इन्होंने अपने 'पद्मावत' मे सपनावती, मुंग्धावती, प्रेमावती, खण्डरावती आदि कई प्रेम-काव्यों की ओर सकेत किया है, किंतु सूफी-काव्य धारा में निम्नलिखित काव्य ही प्रायः उल्लिखित किये जाते हैं—

१. मुल्ला दाऊद की चन्द्रावती, २. कुतुबन की मृगावती, ३. मंझन की मधु-मालती, ४. जायसी का पद्मावत, ५ उसमान की चित्रावली, ६. जान कवि की कनकावती, कामलता, मधुकरमालती, रत्नावती और घीता, ७. कासिमशाह का हस जवाहर, ८. नूरमुहम्मद की इन्द्रावती तथा अनुराग-बांसुरी, ९. शेख की युसुफ जुलेखां, १० ख्वाजा अहमद की नूरजहां और ११. नसीर का प्रेम दर्पण।

इन प्रेम-काव्यों में हिन्दुओं की लोक-कथाओं को आधार मानकर रचना की गई है। इसमें कुछ ऐतिहासिक हैं और कुछ जनश्रुति-सम्मत।

भक्त कवियों ने प्रायः पौराणिक कथानकों का आधार लेकर अपने प्रेम-काव्यों की रचनाएँ की हैं। इनमें नल-दमयन्ती, कृष्णारुक्मिणी, ऊषा-अनिरुद्ध, प्रेम प्रकाश और रूप मंजरी आदि कथाएं विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

२. शुद्ध लौकिक प्रेम काव्य—इन काव्यों में यद्यपि ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम जुड़े हुए हैं, तथापि ये शुद्ध लौकिक प्रेम-काव्य ही हैं। इन काव्यों में 'ढोला मारू की कहानी', 'सारंगा सदैवछरा इटा', 'सोरठरा इटा' 'मदन शतक', 'पंच सहेली' आदि कथाएं विशेष प्रसिद्ध हैं। कुछ काव्य दोहे और चौपाइयों की शैली में हैं। यथा—'विनोद रस', 'नल दमन', 'मधुमालती' आदि। इन काव्यों में किसी प्रकार की आध्यात्मिकता का आरोप नहीं है, बल्कि स्पष्ट रूप से प्रेम की प्रबलता प्रकट की गई है।

स्थान– इन काव्यों में हिन्दी साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है। सूफी-धारा ने तो इस क्षेत्र में परवर्ती हिन्दी साहित्य को अत्यंत प्रभावित किया है।

इसके अतिरिक्त हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक दिनों में तो यह काव्य इतने मनोयोग से पढ़े जाते थे कि पाठक अपना दैनिक कार्य-क्रम भूलकर इनमें उलझे रहते थे। इस बात को सिद्ध करने के लिए कवि बनारसीदास का यह दोहा उद्धृत किया जा सकता है—

अब घर में रहैं जाहि न हाट बजार।
मधुमालती मृगावती पोथी दोई उपचार।"

शैली की दृष्टि से भी इनका परवर्ती साहित्य पर काफी प्रभाव पड़ा है। इनकी चौपाई दोहे वाली शैली तो इतनी प्रसिद्ध और जनप्रिय हो गई थी कि लोकनायक तुलसीदास ने अपनी सर्वोत्कृष्ट कृति 'रामचरित मानस' की रचना इस शैली में की।

अतः यह निभ्रान्त रूप से कहा जा सकता है कि इन प्रेम कथानकों का हिन्दी साहित्य में भाव, कला और प्रभाव की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थान है।

प्रश्न १५—सूफी साहित्य की विशेषतायें बताइये।

उत्तर—सूफी साहित्य का हिन्दी में अति ऊंचा स्थान और अपार महत्त्व हैं। यह कहना अत्युक्ति न होगा कि यदि हिन्दी-साहित्य से सूफी-साहित्य को निकाल दिया जाये तो वह पंगु हो जायगा। इसकी विशेषताओं का विश्लेषण करने के लिए इसे तीन दृष्टियों से देखा जा सकता है—

१. काव्य रूप और अभिव्यंजना शैली, २. उद्देश्य, ३. प्रभाव।

१. काव्य रूप और अभिव्यंजना शैली—प्रमुखतया काव्य के दो रूप होते हैं—महाकाव्य और खंडकाव्य। महाकाव्य जीवन की सर्वांगीण अभिव्यक्ति करता है और खंडकाव्य जीवन के किसी एक पहलू की। सूफियों ने महाकाव्य ही लिखे हैं। अपने प्रतिपाद्य को ये महाकाव्य के कलेवर में ही समेट सकते थे, खंडकाव्य या अन्य किसी काव्य-रूप में नहीं। इनके महाकाव्य की शैली पर फारसी-शैली का प्रभाव है। इनका कथानक अर्द्ध-ऐतिहासिक कहा जा सकता है, क्योंकि प्रायः ऐतिहासिक नायक-नायिकाओं को लेकर ही इन्होंने अपने महाकाव्यों की रचनाएं की है और उन पर कल्पना का भी गहरा आवरण डाल रक्खा है।

इनकी अभिव्यंजना-शैली बड़ी ही सजीव और प्रभावोत्पादक है। भाषा अवधी है, जिसे आलोचकों ने 'ठेठ अवधी' का नाम दिया है। शैली चौपाई और दोहों की है। इनकी भाषा सदैव भावों के पीछे चलती है। इनमें कलापक्ष को दिखाने का प्रयास दिखाई नहीं देता, केवल भावों को अच्छे से अच्छे

प्रभावपूर्ण ढंग से अभिव्यक्त करने की धुन लक्षित होती है। भावपक्ष की दृष्टि से सूफियों के काव्य अत्यन्त समृद्ध हैं, किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि इनका कलापक्ष अशक्त है। इनके महाकाव्यों में शब्दालंकार, अर्थालंकार, शब्द-शक्तियाँ आदि सभी कला-गुणों का पर्याप्त विकास हुआ है। कलापक्ष से अलंकृत होकर भावों का प्रभाव और भी गहरा बन गया है। सूफी सिद्धान्तों का प्रचार व प्रसार करने के कारण इनकी भाषा प्रतीक-प्रधान है। इसलिए ये महाकाव्य समासोक्ति अथवा अन्योक्ति शैली के अनुपम उदाहरण हैं। इनमें भारतीय और ईरानी पद्धतियों का सुन्दर समन्वय है। कहानी का ढाँचा ईरानी होते हुए भी उसमें भारतीय हृदय की मार्मिकता है।

२. उद्देश्य—किसी भी महान् रचना के लिए महान् उद्देश्य होना आवश्यक है। सूफी काव्यों के दो उद्देश्य स्पष्ट हैं—एक तो सूफी सिद्धान्तों का प्रचार और दूसरा हिन्दू-मुस्लिम एकता। काव्य से अच्छा प्रचार का और कोई साधन नहीं हो सकता, इसे सूफी कवि अच्छी तरह जानते थे, इसलिए उन्होंने अपने सिद्धान्तों को काव्य के द्वारा ही प्रचारित करने का प्रयत्न किया और वे इसमें बहुत अधिक सीमा तक सफल भी हुए। जायसी के पद्मावत में सूफी सिद्धान्तों की स्पष्ट अभिव्यक्ति देखी जा सकती है और अन्त में वे अपनी बात को इन पंक्तियों के द्वारा पूर्णतः स्पष्ट भी कर देते हैं।

"तन चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिंहल बुधि पदमिनी चीन्हा॥
गुरु सुआ जेइ पन्थ दिखावा। बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा॥
नागमति यह दुनिया धन्धा। बाँचा सोई न एहि चित बन्धा॥
राघव दूत सोई सैतानू। माया अलाउदीन सुलतानू।"

इसका उद्देश्य है हिन्दू-मुस्लिम एकता। यद्यपि इन कवियों से पहले निर्गुण सन्त कवि भी इस दिशा में काफी प्रयत्न कर चुके थे, किन्तु अपनी अक्खड़ता के कारण वे असफल ही रहे। सूफियों में यह अक्खड़ता कहीं दिखाई नहीं देती। उनमें विनम्रता है और हृदय पर चोट करने की अनुपम कला। यही कारण है कि उन्होंने हिन्दू कहानियों को अपने महाकाव्यों के कथानक के लिए चुना जिससे हिन्दुओं के मन में उसके प्रति लगाव पैदा हुआ। अतः यह कहना अनुपयुक्त नहीं कि सन्त कवि जिस समस्या को सुलझाने के स्थान पर और अधिक उलझा गये, उसे सूफी-कवियों ने बहुत हद तक सुलझाया। इस प्रकार कह सकते हैं कि इन कवियों की महान् रचनाओं के अनुरूप ही इनके उद्देश्य भी महान् थे।

३. प्रभाव—जहाँ तक प्रभाव का सम्बन्ध है, सूफी काव्यधारा का जितना प्रबल प्रभाव हिन्दी साहित्य में दृष्टिगोचर होता है, उतना कृष्ण-काव्यधारा को छोड़कर और किसी का दिखाई नहीं देता। इनकी प्रेम की पीर तो अत्यन्त ही प्रसिद्ध है, जो मीरा जैसी सरल भक्तिनियों में स्पष्ट परिलक्षित होती है। इनके रहस्यवाद का माधुर्य आधुनिक छायावाद के रहस्यवाद में देखा जा सकता है। इनका रहस्यवाद लौकिक-सा दिखाई देता है, परन्तु वस्तुतः वह अलौकिक है। शृंगार रस का कितना सजीव वर्णन इनके काव्यों में है। वही सजीवता सूर आदि भक्त कवियों में दिखाई देती है। इनकी दोहा-चौपाई वाली शैली तो इतनी लोकप्रिय हुई कि तुलसी जैसे लोकनायक को अपने सर्वोत्कृष्ट काव्य 'रामचरितमानस' की उसी शैली में रचना करनी पड़ी। कहने का अभिप्राय यह है कि सूफी-काव्य का परवर्ती हिन्दी-साहित्य पर विशेष रूप से गहरा प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

अतः यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि सूफी-काव्य अनेक विशेषताओं से परिपूर्ण है। हिन्दी-साहित्य में इसका अद्वितीय स्थान है।

प्रश्न—१६—कृष्णभक्ति काव्य की विशेषताएँ बताते हुए इसका हिन्दी-साहित्य में स्थान निर्धारित कीजिये।

उत्तर—कृष्ण भक्ति काव्य का हिन्दी-साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। जितनी लम्बी परम्परा इस धारा की है, उतनी और किसी धारा की नहीं। इसकी प्रमुखतम विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

१. कृष्ण-लीलाओं का वर्णन—इस धारा के कवि कृष्ण को अपना आराध्य मानते हैं और अन्य देव की पूजा करना पाप समझते हैं। इन्होंने कृष्ण के मोहक रूप को ही लिया है, शिव-तत्त्व को नहीं। यही कारण है कि इनका कृष्ण या तो अपनी बाल-लीलाओं से नन्द और यशोदा को आनन्दित करता है, या गोपियों के मध्य रास-लीला करता है। इसलिए कृष्ण काव्य वात्सल्य और शृङ्गार रस तक ही सीमित है। कहीं-कहीं कृष्ण के अलौकिक रूप के भी दर्शन हो जाते हैं, किन्तु ये वर्णन मुख्य नहीं, प्रासंगिक हैं।

कृष्ण के साथ ही राधा के रूप का भी वर्णन हुआ है। प्रतीकात्मक अर्थ में राधा भगवान् की शक्ति मानी गई है। राधा का रूप अपार है। वह कृष्ण की प्रेमिका के रूप में अवतरित हुई है। कुछ कृष्ण-भक्तों ने राधा का चित्रण स्वकीया के रूप में किया है और कुछ ने परकीया के रूप में।

२. मुक्तक-काव्य रूप—कृष्ण-भक्त कवियों ने काव्य रूप की दृष्टि से

मुक्तक रूप को ही अपनाया है, इसीलिए इसमें खंडकाव्य या महाकाव्य, आधुनिक काल को छोड़कर, नहीं लिखे गये। मुक्तक काव्य इस धारा में चरम कोटि पर पहुँचा हुआ दिखाई देता है। इसका कारण यह है कि इस धारा में कई सफल संगीताचार्य थे, उदाहरण के लिए सूरदास, गोविन्ददास और हरिदास का नाम लिया जा सकता है। इन लोगों के लिखे हुए गीतों में गीत-काव्य के सभी तत्व उपलब्ध होते हैं और सबसे अधिक भाव-प्रवणता और संगीतात्मकता जो गीत के प्राण-तत्व कहे गये हैं। मीरा के गीतों में यह हृदय की सहज अनुभूतियाँ फूट पड़ी हैं तो सूर के गीतों में संगीतों में संगीत का अंकुश भी है। इस प्रकार यह कहना अत्युक्ति नहीं कि इस धारा का मुक्तक काव्य अपनी प्रगति की चरम कोटि पर पहुँच गया है।

३. **रस**—कृष्ण-भक्तों ने कृष्ण को रसेश्वर के रूप में ही अंकित किया है, इसलिए इनमें वात्सल्य और शृंगार रस के दर्शन होते हैं, यों अन्य रस भी ढूँढने पर मिल जाते हैं, किन्तु वे प्रासंगिक ही कहे जा सकते हैं, मुख्य नहीं। वात्सल्य रस में सूर ने अपनी प्रतिभा का असाधारण चमत्कार दिखाया है। वे रस का कोना-कोना झाँक गये हैं। बालक की जितनी भी क्रीड़ाएं हो सकती हैं, वे सब अन्धे सूर की आँखों से ओझल नहीं रह सकी हैं। उदाहरण के लिए बाल-सुलभ जिज्ञासा का यह उदाहरण देखिए—

"मैया कबहु बढ़ैगी चोटी।
कितनी बार मोहि दूध पियत भई यह अजहूँ छोटी॥"

बच्चे जब देखते हैं तो किसी बात में उनमें ऊँच-नीच की भावना आ ही जाती है। इसी घटना को लेकर सूर ने कितना मार्मिक वर्णन किया है—

'खेलत में को काको गुसैंया।
× × ×
अति अधिकार जनावत जाते अधिक तिहारे हैं कछु गैया॥

कितना स्वाभाविक और मार्मिक चित्रण है बाल-सुलभ स्वभाव का। इसके अतिरिक्त शृंगार रस का भी पूर्ण वर्णन इन कवियों में मिलता है। शृंगार के दो भेद होते हैं—संयोग और वियोग। इन दोनों भेदों का ही इन कवियों ने सांगोपांग वर्णन किया है जिसमें विरही भक्तों का हृदय अपनी सहज आकुलता लेकर फूट पड़ा है। यह कहना अनुचित नहीं कि इन भक्तों ने इन दोनों रसों का इतना परिपूर्ण वर्णन किया है कि परवर्ती कवियों के लिए वह केवल जूठन मात्र रह गया है।

४. **भाषा**—इन कवियों ने ब्रजभाषा को अपनाया है इसके दो कारण है। एक तो यह कि अपने आराध्य की जन्म-भूमि की भाषा होने के कारण इसके प्रति इन लोगों का अटुट लगाव था और दूसरा यह कि उस समय साहित्यिक क्षेत्र में इस भाषा की तूती बोल रही थी। इन कवियों ने बहुत सीमा तक इस भाषा का संस्कार और परिष्कार भी किया है, फलतः इसमें जितना माधुर्य इन कवियों ने भरा, उतनी मधुरता और किसी भाषा में न आ सकी। इसलिए यह कहना और समझना सामान्य बात हो गई थी कि माधुर्य की दृष्टि से ब्रजभाषा ही सर्वोत्तम है। इनके अलंकार सहज और स्वाभाविक ढंग से प्रयुक्त हुए हैं जो भावों को दबोचते नहीं, बल्कि उन्हें अधिक भावमय और प्रभावपूर्ण बनाते हैं। यों तो इन कवियों ने शब्दालंकारों का भी काफी प्रयोग किया है, किन्तु आधिक्य अर्थालंकारों का ही है। कहीं-कहीं सूर जैसे भाव-प्रवण कवि भाषा के साथ खिलवाड़ करने से भी नही चुके है। उनके दृष्टिकूट इसी खिलवाड़ के परिणाम है।

५. **भक्ति** इन भक्तों की भक्ति के दो रूप मिलते हैं—सख्य रूप और कांता रूप। सूरदास की सख्य भक्ति तो प्रसिद्ध ही है जहाँ वे स्वामी और सेवक का भाव छोड़कर सखा-भाव की समतल धारा पर उतर आते हैं और अपने आराध्य से ठीक उसी प्रकार व्यवहार करते है जैसे एक सखा अपने सखा के साथ करता है। मीरा आदि कवयित्रियों की भक्ति कांता-भाव की है। नारी होने के नाते उन्हें इस इस रूप को अपनाना उचित भी था और स्वाभाविक भी भी। इन कृष्ण-भक्तों की भक्ति को 'रामानुराग भक्ति' कहा गया है।

६. **तन्मयता**—अपने आराध्य के प्रति तन्मयता भी इन भक्तों की प्रमुख विशेषता है। ये लोग अपने एकमात्र आराध्य कृष्ण को छोड़कर अन्य देव की ओर झुकना पाप समझते हैं। अपना तन-मन संजोकर ये उसी में लीन रहते हैं। इसी भाव को सूरदास ने इस पद में व्यक्त किया है-

'मेरे मन अनत कहाँ सुख पावै

जैसे उड़ि जहाज को पंछी फिर जहाज पर आवै।'

मीरा भी—**'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई'**—कहकर इसी तन्मयता की अभिव्यक्ति करती है। जैसी गहरी तन्मयता इन भक्तों में मिलती है, वैसी अन्य धाराओं में नहीं मिलती।

इन विशेषताओं के बावजूद भी कृष्ण-काव्य में कुछ दोष भी आ गए हैं।

जैसे—लोकपक्ष का अभाव, एकांकी साहित्य, भावों की कीर्णता आदि किन्तु ये दोष इसकी विशेताओं में इसी प्रकार छिप जाते हैं जैसे चन्द्रमा का कलंक उसकी उज्ज्वल चांदनी में दिखाई नहीं देता।

हिन्दी-साहित्य में स्थान—कृष्णभक्ति साहित्य की हिन्दी-साहित्य को बड़ी ही अनुपम देन है। इसने हिन्दी को अपूर्व गीतिकाव्य दिया, जिसकी स्वर-लहरियां आज भी श्रोताओं को भाव-विभोर कर देती हैं। इसी धारा में सूर, नन्ददास जैसे भाषा-मर्मज्ञ, रसखान और घनानंद जैसे दीवाने और मीरा जैसी विरहिणी हुई हैं। जिनके काव्य हृदय के सहज स्फुरण हैं। इस काव्य ने शृंगार और वात्सल्य रस को पूर्णता प्रदान की। भाव, भाषा, शैली सभी दृष्टियों से यह साहित्य बेजोड़ है। इसका प्रभाव परवर्ती साहित्य पर जितना पड़ा, उतना और किसी धारा का न तो पड़ा और पड़ने की आशा है। अतः कहा जा सकता है कि हिन्द-साहित्य में इसका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। क्या भावपक्ष और क्या कलापक्ष, सभी दृष्टियों से इसने हिन्दी-साहित्य के भण्डार को भरा है।

प्रश्न १७—रामभक्ति शाखा के साहित्य की विशेषतायें बताते हुये हिन्दी-साहित्य में उसका स्थान निश्चित कीजिये।

उत्तर—कृष्ण भक्ति शाखा की भाँति राम भक्ति शाखा का भी हिन्दी साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है। यदि प्रचार और प्रसार को किसी शाखा का साहित्य में मानदंड न मानकर उसे लोकपक्ष की कसोटी पर कसा जाए तो यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि इस दृष्टि से कृष्णभक्ति शाखा ही क्या, हिन्दी-साहित्य की सभी भक्ति शाखाओं में रामभक्ति शाखा है सर्वोच्च स्थान है। दूसरी कुछ प्रमुखतम विशेषायें निम्नलिखित हैं—

१. समन्वय भावना—यह प्रवृत्ति रामभक्ति शाखा की अत्यन्त महस्वपूर्ण विशेषता है। इसके कवियों ने जन-जीवन और साहित्य की संकीर्णता को छोड़कर हृदय की व्यापकता और विशालता का उज्ज्वल उदाहरण प्रस्तुत किया है। तुलसीदास तो अपनी समन्वय भावना के कारण ही लोकनायक पद पर प्रतिष्ठित हो सके हैं, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। तुलसी अपने आराध्य राम के अनन्य भक्त थे, किन्तु उन्होंने अन्य देवी-देवताओं की भी उपेक्षा नहीं की है, बल्कि बड़ी ही श्रद्धा से उनके आगे भी अपना सिर झुकाया है।

भक्ति क्षेत्र में भी उन्होंने इसी भावना का परिचय दिया। उन्होंने

सूर की भांति निराकार ब्रह्म को 'निराधार मन चकृत धावें' कहकर नहीं छोड़ दिया, बल्कि उसके सगुण और निर्गुण दोनों रूपों की समान रूप के महत्ता स्वीकार की है, तथा तत्कालीन साहित्य में प्रचलित अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैत वाद आदि सिद्धांतों का अपने काव्य में समावेश किया है। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने तुलसी की समन्वय भावना के विषय में उचित ही कहा है—'तुलसी का सारा काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है—लोक और शास्त्र का समन्वय, गार्गस्थ्य और विराग का समन्वय, भक्ति और ज्ञान का समन्वय, भाषा और संस्कृत का समन्वय, निर्गुण तथा सगुण का समन्वय, कथा और तत्त्व का समन्वय। इस प्रकार रामचरित मातस शुरू से आखिर तक समन्वय का काव्य हैं।'

२. **लोक-कल्याण की भावना**—भक्ति शाखाएँ प्राय: लोक-कल्याण की भावना से विमुख रहती हैं या अपने सिद्धांतों के प्रचार तक ही उनका लोक-पक्ष सीमित रहता है, किन्तु राम-भक्ति शाखा में लोक-कल्याण की वास्तविक भावना निहित है। तुलसी का काव्य 'स्वान्त सुखाय' होते हुए भी 'परहिताय है, इसमें किसी को भी शक नहीं हो सकता। इसी भावना से प्रेरित होकर तुलसी ने अपने महाकाव्य 'रामचरित मानस' में तत्कालीन भारतीय जीवन तथा समाज के चित्र अंकित किये हैं, जनता की निराशा को दूर करने के लिये भांति-भाति के आश्वासन दिये हैं। इसी भावना के कारण हिन्दू घरों में तुलसी और 'मानस' का अत्यधिक आदर है।

३. **भक्ति का स्वरूप**—कृष्णभक्ति शाखा में भक्ति के अन्य प्रकारों के साथ-साथ सख्यभाव की भक्ति को भी अपनाया गया था किन्तु इन भक्तों ने केवल सेव्य-सेवक का रूप ही ग्रहण किया। इसका प्रेमादर्श चातक के प्रेम के समान और उच्च और अटूट है। ये ज्ञान और 'भक्ति' में कुछ भेद नहीं मानते फिर भी भक्ति उनके मन से सहज और सुलभ है तथा ज्ञान कष्ट साध्य। सीता-राम इनके आराध्य देव हैं। इनकी भक्ति पद्धति अत्यन्त मर्यादित है।

४. **भगवान का रूप**—राम इनके लिये भगवान हैं जो साकार भी है और निराकार भी, सगुण भी और निर्गुण भी। वे मनुष्य को अपनी अलौकिक लीलाओं का दर्शन कराने के लिये इस भूमि पर अवतार लेते हैं। उनका भगवान लोक-रंजन की अपेक्षा लोक-रक्षक अधिक है।

५. **मर्यादा**—रामभक्ति-शाखा अपनी मर्यादाओं में सदा बंधी रहती है। अन्य शाखाओं के लोग भाव विभोर होकर यत्र-तत्र मर्यादाओं का उल्लंघन कर गये हैं, किन्तु इस शाखा के भक्त अपनी भक्ति में आकंठ निमग्न होकर

भी मर्यादाओं के प्रति सदैव जागरूक रहे हैं, इसलिए इनके भगवान भी मर्यादा पुरुषोत्तम हैं।

६. काव्यपक्ष— काव्य के दो पक्ष होते हैं—भावपक्ष और कलापक्ष तुलसी ने इस दोनों में ही अपनी समन्वय भावना का परिचय दिया हैं। ऊपर भावपक्ष के समन्वय की बात कही जा चुकी है। कलापक्ष के अंतर्गत मुख्य तीन बातें आती हैं—भाषा, छन्द और शैली। तुलसी के समय व्रज और अवधी दोनों भाषाएँ प्रयुक्त की जाती थीं। कृष्ण भक्त व्रज का प्रयोग कर रहे थे और सूफी कवि अवधी का। तुलसी ने इन दोनों का ही सफल प्रयोग किया है। तुलसी की भाषा का विश्लेषण करते हुये डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते— "जहाँ भाषा साधारण तथा लौकिक होती है वहाँ तुलसीदास की उक्तियाँ तीर की तरह चुभ जाती हैं और जहाँ शास्त्रीय तथा गम्भीर होती है वहाँ पाठक का मन चील की तरह मंडराकर प्रतिपादित सिद्धांत को ग्रहण कर लेता है।"

तुलसी ने तत्कालीन प्रचलित सभी छन्दों का सफलतापूर्वक प्रयोग किया है। जैसे—दोहा, चौपाई, छप्पय, गीत सवैया आदि। इनका यह प्रयोग न तो पाँडित्य-प्रदर्शन के लिये जान पड़ता हैं और न छंद प्रकरण के लिये ही, वल्कि इसमें सहज और सरल समन्वय-भावना परिलक्षित होती है।

छंदों की भाँति तुलसी ने शैली के भी प्रचलित सभी रूपों को अपनाया है। प्रबंध, मुक्तक, गीतिकाव्य, मंगल आदि सभी काव्य-रूपों का पूर्ण सफलता के साथ निर्माण किया है। अलंकारों का प्रयोग भी बहुत सी स्वावाविक रीति से हुआ है।

हिन्दी-साहित्य में स्थान—राम-काव्य की इन प्रमुख विशेषताओं पर दृष्टिपात करने के उपरांत यह निःसंकोच रूप में कहा जा सकता है कि उसका हिन्दी-साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। कृष्ण-काव्य की परंपरा राम-काव्य की अपेक्षा काफी लम्बी अवश्य हैं, किन्तु जहाँ तक लोक-पक्ष का संबंध है, यह काव्य अपना उपमान नहीं रखता। साहित्यिक दृष्टि से भी हिन्दी साहित्य को राम-काव्य की देन अद्वितीय और अतुलनीय है। इसीलिये तो हिन्दी तुलसी साहित्य के आकाश के सूर्य का चन्द्रमा कहे जाते हैं।

प्रश्न १८—हिन्दी काव्य की सब प्रकार की रचना-शैली के ऊपर गोस्वामी जी ने अपना ऊचा स्थान प्रतिष्ठित किया है।' सिद्ध कीजिए।

उत्तर—जो कवि अपने युग की और पूर्व युग की समस्त परम्पराओं को समेट कर चलता है, वह प्रतिनिधि कवि कहलाता है। इस दृष्टि से देखने पर

यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि गोस्वामी तुलसीदास अपने युग के प्रतिनिधि महाकवि थे। उन्होंने काव्य की सब प्रकार की प्रचलित शैलियों को अपनाया और उन्हें अपनी रचनाओं में सफलता के साथ प्रस्तुत किया तुलसी के समय में निम्नलिखित काव्य शैलियां प्रचलित थीं—

१. कृष्ण-प्रेम और भक्ति के कवियों तथा भक्ति-मार्गी संतों के द्वारा गृहीत लीला तथा विनय के पदों की शैली।

२. सिद्धान्त, अर्थ, नीति लोक-व्यवहार आदि के उपयोग उपदेश आदि के लिये दोहा सोरठा की शैली।

३. वीर, उत्साह आदि की व्यंजक छप्पय, तोमर, नाराच आदि छंदो की शैली।

४. सरस और ओजपूर्ण प्रसंग की परिचायिका सवैया-कवित्त की शैली।

५. स्त्रियों में चल रही सोहर छंद की लोक प्रिय शैली।

६. वरवै जैसे जनकंठ में वसे छंदों की शैली।

७. माँगलिक अवसरों पर गाये जाने वाले मंगल काव्य की शैली।

८. दोहा-चौपाई प्रधान चरित्र तथा आख्यान काव्यों की शैली

इन सभी शैलियों का तुलसी ने अपनी विभिन्न रचनाओं में सफलता के साथ प्रयोग किया है। अब इन सब पर एक विहंगम-दृष्टि डालना अनिवार्य है।

१. लीला तथा विनय पदों की शैली—भक्तिकाक में भक्ति का जोर प्रबल था। भक्त अपने भगवान की लीलाओं को दिखाने के लिये उन्हें पदों में गाते थे, साथ ही अपनी प्रार्थना के रूप में विनय के पद भी सुनाते थे। गोस्वामी जी ने भी इस शैली को अपना कर अपने आराध्य की लीलाओं के वर्णन भी किये हैं और विनय प्रदर्शित की है। उदाहरण के लिये ''मानस' का बालकाँड और विनय पत्रिका भी ली जा सकती है यथा—

केसव कहि न जाय का कहिए।
देखत तब रचना विभिन्न अति समुझि समुझि मन रहिए।

२. दोहा-सोरठा की शैली—भक्तिकाल में और उससे पूर्ववर्ती कालों में भी सिद्धांतों का प्रतिपादन करने के लिये, धर्म-नीति और लोक-व्यवहार की शिक्षा देने के लिये दोहों और सोरठों का प्रयोग किया जाता था। तुलसी ने भी इन्हीं उद्देश्यों की अभिव्यक्ति के लिए तथा अपने प्रेम के उच्चादर्शो को व्यक्ति करने के लिए दोहा सोरठा शैली का उपयोग किया है। यथा—

तुलसी मीठे वचन तें सुख उपज चहु ओर।
वशीकरण यही मन्त्र है तज दे वचन कठोर ॥

३. **तोमर नाराच शैली**—कौन छंद किस भाव की अभिव्यक्ति के लिये उपयुक्त है, इसका चुनाव महाकवि ही कर पाते हैं। तोमर और नाराच छंद वार रस की अभिव्यंजना के लिए अति प्रसिद्ध और चिर-प्रचलित हैं। 'मानस में जहां कहीं भी वीर भावों नी अभिव्यक्ति का अवसर आया है, वहाँ तुलसी ने इन्हीं छंदों का प्रयोग किया है।

४. **सवैया-कवित्त शैली**—यह शैली मधुर भावना की अभिव्यक्ति के लिये प्रचलित है। यही कारण है कि रीतिकाल में इस शैली का सबसे अधिक प्रयोग हुआ है। तुलसीदास ने भी माधुर्य भावना को प्रकट करने के लिये सवैया और कवित्त रचे हैं।

५. **सोहर छंद की शैली**—सोहर छंद लोक-गीतों का सबसे अधिक प्रिय छंद है, विशेषरूप से स्त्रियाँ अपने गीतों को इसी छंद के बंधान में बांधती है, उनके गीत स्वयं बंध जाते हैं। यह शैली अन्यत्त लोक-प्रिय है। तुलसी ने इसका उपयोग किया है।

६. **बरवै छन्द की शैली**—तुलसी की बरवै रामायण इसी छंद में लिखी गई है ।

७. **मंगल काव्यों की शैली**—मांगलिक और शुभ अवसरों पर शब्दों का चयन भी तदनुकूल ही होता है। तुलसी में शब्द चयन की यह प्रतिभा भी देखने को मिलती है ।

८. **दोहा-चौपाई की शैली**—सूफी कवियों ने अपने सिद्धांतों का प्रचार और प्रसार करने के लिये तथा अपने महाकाव्यों के आख्यानों को वर्णित करने के लिए दोहा-चौपाई शैली का ही प्रयोग किया था। तुलसी ने भी अपने महाकाव्य 'रामचरितमानस' को प्रमुख रूप से इस शैली में रचा है। ऐसा जान पड़ता है कि साधारण पाठकों तक अपना मन्तव्य पहुँचाने के लिए यह शैली बहुत ही उपयुक्त है। तुलसी के 'मानस' के भारतीय कंठहार बनने के जहाँ अनेक कारण हैं वहाँ यह शैली भी है।

अतः यह कहने में संकोच नहीं कि तुलसी का इन उपर्युक्त शैलियों पर समान अधिकार था और उन्होंने इन सबका प्रयोग बड़ी ही सफलता के साथ किया है। श्री रामबहोरी शुक्ल के शब्दों में—"तुलसी के समान अधिकार के साथ इन सब शैलियों को राम-चरित से अलंकृत किया है। उन दिनों काव्य

की रचना अवधी और ब्रज से होती थी। जायसी आदि सूफियों ने अवधी में तथा सूर आदि कृष्णभक्तों ने ब्रज भाषा में कविता करके उन पर असाधारण अधिकार प्रदर्शित किया था, परन्तु ऐसा कवि कोई नहीं था जिसने इन दोनों भाषाओं की रचना की हो। तुलसी ने ऐसा ही किया। साथ ही अवधी के पूर्वी और पश्चिमी दोनों रूपों में भी उन्होंने उच्च कोटि की रचना की है। कहना न होगा कि काव्य शैलियों और काव्य भाषाओं का इतना बड़ा अधिकारी कवि उस काल में नहीं था। अब तक हिन्दी साहित्य में उनका समकक्ष नहीं देखा गया।' इस दृष्टि से तुलसी ही सबसे श्रेष्ठ कवि हैं और उनका *काव्य सबसे श्रेष्ठ काव्य है। सूर केवल गीतिकार हैं प्रबंधात्मकता का उनमें* अभाव है। कबीर दोहों के सम्राट हैं तुलसी की सी विविधता उनमें नहीं। सूफी कवि विशेषत: जायसी एक ही शैली और एक ही भाषा के पंडित हैं। अतः कहा जा सकता है कि हिन्दी काव्य की सब प्रकार की रचना शैली के ऊपर गोस्वामी जी ने अपना ऊँचा स्थान प्रतिष्ठित किया है।

प्रश्न १६—गोस्वामी तुलसीदास का हिन्दी साहित्य में क्या स्थान है और क्यों ?

उत्तर—गोस्वामी तुलसीदास का हिन्दी साहित्य में अद्वितीय स्थान है इनकी समता में केवल महाकवि सूर आते हैं। तुलसी और सूर में कौन बड़ा है और कौन छोटा, यह विवाद हिन्दी साहित्य के लिये नया नहीं है। जो आलोचक सूर को बड़ा मानते हैं वे इस पंक्ति को उदधृत करते हैं—

'सूर-सूर तुलसी ससि उडुगन केशवदास'

और जो आलोचक तुलसी को बडा मानते हैं वे इस पंक्ति को किंचित परिवर्तन के साथ इस प्रकार लिखते हैं—

'सूर ससि तुलसी रवि उडुगन केशवदास'

तुलसी हिन्दी साहित्य के आकाश के चाहे सूर्य हों अथवा चन्द्रमा परन्तु इतना तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि ये अपने युग के प्रतिनिधि महाकवि थे। इन्होंने न केवल राम शाखा पर ही अपना अनुपम प्रभाव डाला बल्कि समस्त हिन्दी साहित्य को पूर्णतया प्रवाभित किया। इनकी महत्ता का प्रतिपादन करते हुए श्री रामबहोरी शुक्ल लिखते हैं—इनके समान दूसरा व्यक्ति मध्ययुग में तो हुआ ही नहीं, लोक तथा प्रभाव व साहित्य के उत्कर्ष की दृष्टि से आज तक भी हिन्दी क्या, अन्य किसी भारतीय भाषा में नहीं हुआ। यदि मानव जीवन पर स्थायी और व्यापक लौकिक तथा

आध्यात्मिक प्रभाव की दृष्टि देखा जाय तो कदाचित संसार का कोई भी कवि उनके समकक्ष नही कहा जा सकता ।'

तुलसी की इस महत्ता का विश्लेषण दो दृष्टियों से किया जा सकता है और ये दोनों दृष्टियाँ ही किसी कवि की महत्ता मापने के दंड है—पहली दृष्टि में यह विचार करना चाहिए कि कवि का काव्य पक्ष कैसा है ? और दूसरी दृष्टि में यह देखना चाहिए कि उसके काव्य में सामाजिक पक्ष कितना है ? इन्ही दो कसौटियों पर किसी भी कवि की परीक्षा की जा सकती है ।

तुलसी का काव्यपक्ष—काव्य के दो पक्ष होते हैं—भावपक्ष और कलापक्ष । भावपक्ष से तात्पर्य भावों की महानता से अथवा कवि के उद्देश्य से है, और कलापक्ष का अभिप्राय अभिव्यंजना की शैली से है ।

जहाँ तक भावपक्ष का सम्बन्ध है यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि तुलसी का उद्देश्य अत्यन्त महान था । वे भक्त कवि थे और राम की भक्ति का प्रचार और प्रसार करना ही उनका उद्देश्य था । जो जनता निराशा के गहनतम अंधकार में भटक कर अपना पथ भूल चुकी थी, उसे तुलसी ने राम-नाम का दिव्य प्रकाश दिखाकर उसका भूला पथ दिया । जो हृदय निराशा में अपनी जीवन शक्ति खो चुका था उसे फिर से अबोध आशा से सराबोर किया । साथ ही धर्म की भूखी भावनाओं को एक स्वस्थ और विशुद्ध धर्म दिया जिसमें खडन-मंडन की प्रवृत्ति नही थी, बल्कि सभी प्रचलित धर्मो का सुन्दर समन्वय था । इस प्रकार कहा जा सकता है कि तुलसी का उद्देश्य महान ही नही, महानतम था ।

भावपक्ष और कलापक्ष का चोली दामन का सम्बन्ध है । यदि प्रमुखता की कसौटी पर कसा जाय तो हमें भावपक्ष को ही कलापक्ष के सामने महत्ता देनी होगी, किन्तु यह भी अस्वीकार नही किया जा सकता कि उत्तम भावों की अभिव्यंजना के लिये यदि उत्तम कलापक्ष हो तो भावाभिव्यक्ति में चार चाँद लगे होते हैं । कलापक्ष के कई अंग होते हैं । यथा—भाषा, रस, अलंकार छंद और शैली । तुलसी के समय में दो भाषाओं का प्रयोग होता था—अवधी भाषा और ब्रजभाषा । सूफी कवियों ने अवधी भाषा में अपने प्रेमाख्यानों को रचकर यह सिद्ध कर दिया था कि यह भाषा अपनी काव्यमयता के लिये बहुत ही उपयुक्त है । कृष्णभक्त कवियों ने ब्रजभाषा में इतना माधुर्य भर दिया था कि कई शताब्दियों तक कोई भी भाषा इसके समक्ष न ठहर सकी । तुलसी ने इन दोनों भाषाओं का प्रयोग समान अधिकार के साथ

किया । इनकी अवधी में सूफियों की-सी काव्यमयता है और ब्रज में सूर की-सी मधुरता । रसों की दृष्टि से यदि तुलसी की रचनाओं का अध्ययन किया जाय तो उनमें सभी रसों को ढूँढ़ा जा सकता है, किन्तु, इसमें भक्ति रस की ही प्रधानता है । तुलसी का अलंकार-प्रयोग भी बहुत ही सहज और स्वाभाविक है । इनके प्रयोग में किसी भी प्रकार के पांडित्य-प्रदर्शन की बू नहीं आती बल्कि वे अपनी सहज स्वाभाविकता से भावों को और भी अधिक प्रभावोत्पादक बना देते हैं और यह बात भी सही है कि तुलसी की दृष्टि में अलंकारों की उपयोगिता इसके अतिरिक्त थी भी नहीं । तब ही तो उन्होंने स्पष्ट शब्दों में उद्घोषणा कर दी—

'का भाषा का संस्कृत भाव चाहिए सांच ।'

भावानुकूल छन्दों का चयन भी महाकवि की प्रमुखतम विशेषता होती है । तुलसी ने अनेक छन्दों का भावों के अनुसार प्रयोग किया है । तुलसी की शैली में तत्कालीन प्रचलित समस्त शैलियों का समन्वय है । इसी समन्वय के कारण इनका हिन्दी साहित्य में अत्यन्त उन्नत स्थान है ।

तुलसी और सूर—यहाँ पर संक्षेप में सूर और तुलसी की तुलना करना भी आवश्यक प्रतीत होता है । सूर का क्षेत्र यद्यपि बहुत छोटा है, किन्तु अपने क्षेत्र में सूर उसका कोना-कोना झाँक आए हैं । वात्सल्य और शृंगार रस में तो सूर अपनी प्रतिभा का चरम उत्कर्ष दिखाने में सफल हुए हैं । तुलसी का क्षेत्र व्यापक था, अतः निश्चय ही उन्हें अपनी काव्य-प्रतिभा को प्रदर्शित करने के अधिक अवसर मिले । जिस प्रकार सूर अपने सीमित क्षेत्र में सफल हैं उसी प्रकार तुलसी अपने विस्तृत क्षेत्र में सफल हैं । भावपक्ष और कलापक्ष दोनों ही दृष्टियों से दोनों कवि इतने सफल हुए हैं कि उनके लिए 'महाकवि' का विशेषण अचानक ही मुँह से निकल पड़ता है ।

सामाजिक पक्ष—तुलसी के काव्य की सबसे महान् विशेषता है उसका सामाजिक पक्ष । जो कवि सामाजिक पक्ष को भुलाकर चलता है, भाव और कला की दृष्टि से उसका काव्य चाहे जितना समृद्ध हो, किन्तु वह पंगु ही कहा जायगा क्योंकि समाज और काव्य का अविच्छिन्न सम्बन्ध है । सूर ने सामाजिक पक्ष की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया है । वे आत्म-केन्द्रित भक्त थे और उनका मन कृष्ण से पृथक् हट कर कहीं जाता ही नहीं था । तुलसी लोकनायक कवि थे । यद्यपि उन्होंने स्वयं यह घोषणा की है कि उनका काव्य 'स्वान्तः सुखाय' है, किन्तु वस्तुतः उनका काव्य 'पर हिताय' है । जिस प्रकार

तुलसी की दृष्टि में उनके आराध्य राम सदैव घूमते रहते थे, उसी प्रकार उनकी नस-नस में लोक-कल्याण की भावना निहित थी। उनके काव्य का ध्येय ही लोक की अति व्याप्त निराशा को मिटाकर उसमें आशा का अबाध संचार करना था। तभी तो उनके राम लोक-रंजन न होकर लोकरक्षक के रूप में अवतरित हुए हैं और तो और, तुलसी को कृष्ण के सामने भी माथा नवाने में संकोच नहीं, वशर्ते मुरली की जगह उनके हाथों में धनुष-बाण हों—

कहा कहौं छवि आप की, भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक तब नवै, धनुष बाण लो हाथ॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपर्युक्त दोनों—काव्यपक्ष और सामाजिक पक्ष—कसौटियों पर तुलसी का काव्य खरा उतरता है। अतः वे अपने युग के लोकनायक कवि बन जाते हैं। इसलिए निस्संकोच कहा जा सकता है कि इन्हीं आधारों के आधार पर तुलसी का हिन्दी साहित्य में स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण, अद्वितीय और उत्कृष्ट है।

प्रश्न २०—भाषा, विषय तथा शैली के आधार पर प्रेममार्गी (प्रेम-आख्यान) काव्य और ज्ञानमार्गी (निर्गुण साहित्य) साहित्य की तुलनात्मक समालोचना कीजिए। इसमें से हिन्दी साहित्य पर किसका प्रभाव अधिक पड़ा?

उत्तर—प्रेममार्गी और ज्ञानमार्गी साहित्य का आपस में वही सम्बन्ध है जो शरीर में हृदय और मस्तिष्क का होता है। हृदय में भावना का आधिक्य होने के कारण भावुकता का प्राधान्य होता है और मस्तिष्क में चिन्तन का प्रभुत्व होने के कारण तर्क-वितर्क की अधिकता होती है। इसलिए प्रेममार्गी कवियों का साहित्य सरस और अधिक प्रभावजनक है तथा निर्गुण कवियों का साहित्य नीरस और उपदेश-प्रधान है। इन दोनों शाखाओं में यही मूल भेद है। इसी भेद के कारण इनकी भाषा में, इनके विषय में और इनकी शैली में पर्याप्त अन्तर आ गया है।

भाषा—प्रेममार्गी कवि जनता के कवि थे। उनका मूल उद्देश्य यद्यपि सूफी-सिद्धांतों का प्रचार एवं प्रसार करना था, तथापि उन्होंने अपने इस उद्देश्य की अभिव्यक्ति में अत्यन्त संयम से काम लिया है। उन्होंने इसे काव्य के आवरण में छिपाकर बहुत ही मधुर और प्रभावोत्पादक बना दिया है। उन दिनों अवधी भाषा साधारण जनता के अधिक निकट थी, इसलिए उन्होंने अवधी भाषा को ही अपनाया है। जनता के ठेठ प्रचलित शब्दों का

प्रयोग करने के कारण, इनकी भाषा को कुछ आलोचक 'ठेठ अवधी' भी मानते हैं। इनकी भाषा में काव्य-भाषा के समस्त गुण मिल जाते हैं। रहस्यात्मक उक्तियों को भी अत्यन्त सरल शब्दों में कहने की इन कवियों की विशेषता है। जायसी सूफी-दर्शन के सिद्धांतों का प्रतिपादन अत्यन्त ही सरल ढंग से कर जाते हैं जिन्हें पाठक समझ जाता है, किन्तु उनके मस्तिष्क पर चिन्तन का भारी बोझ नहीं पड़ता। अपने 'पद्मावत' के आख्यान को इन्होंने समासोक्ति अथवा अन्योक्ति के रूप में सरलता से प्रस्तुत कर दिया है और अन्त में—

'तन चितउर मन राजा कीन्हा, हिय सिंघल बुधि पद्मिनी चीन्हा।
गुरु सुआ जेहि पंथ दिखावा, बिन गुरु जगत को निरगुन पावा॥

इत्यादि पंक्तियों को कहकर अपने रूपक को स्पष्ट भी कर दिया है। इनकी भाषा भावपक्ष से भी पूर्णतया समृद्ध है और कलापक्ष से भी। अलंकारों का बड़ा ही सहज और स्वाभाविक प्रयोग हुआ है। यह प्रयोग कहीं भी भावों को नहीं कुचलता, बल्कि उनके पीछे-पीछे चलता है।

निर्गुण-कवियों में केवल सुन्दरदास ही ऐसे हुए हैं जो शिक्षित और विद्वान् थे, अन्यथा सभी कवि सुनी-सुनाई बातों को ही किसी प्रकार कविता में बांध देते थे। घूमना उनका पेशा था, इसलिए उनकी भाषा का कोई स्थिर रूप नहीं मिलता। जहां भी वे गये, वहीं की भाषा में, अथवा वहाँ के शब्दों को प्रयोग करके अपने सिद्धांतों का प्रचार करने लगे। इसलिए आचार्य शुक्ल ने कबीर की भाषा को 'सधुक्कड़ी भाषा' कहा है। वस्तु-स्थिति भी यही है। भाषा का संजोना-संवारना इन कवियों का प्रयोजन न था। इनका मूल प्रयोजन था अपने सिद्धान्तों का प्रचार करना। यही कारण है कि निर्गुण साहित्य भाषा के कलापक्ष की दृष्टि से बहुत ही दरिद्र है। जिनमें जो थोड़े-बहुत कलापक्ष के दर्शन होते हैं, वह तो अपने आप ही आ गया जिसे नगण्य ही कहा जायेगा। इनकी भाषा में खण्डन-मण्डन की प्रवृत्ति की अधिकता होने के कारण सरसता और माधुर्य का अभाव है, तथा कर्कशता की प्रचुरता है। हठयोग आदि की शब्दावलियों को ज्यों-का-त्यों रख दिया गया है। अतः यह कहना अनुचित नहीं कि निर्गुण सन्तों की अपनी कोई भाषा नहीं है।

विषय—जहाँ तक विषय का सम्बन्ध है, दोनों शाखाओं का विषय प्रायः एक ही है। दोनों ही भगवान् की महिमा का वर्णन करते हैं और उसकी प्राप्ति के उपाय बताते हैं। भगवान् का स्वरूप भी विशेष भिन्न नहीं है।

दोनों ही भगवान् को सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान्, अरूप, सच्चिदानन्द और दयालु मानते हैं। यदि कबीर इस संसार में सर्वत्र अपने 'लाल' की ही लाली देखते हैं—

लाली मेरे लाल की जित देखूँ तित लाल।
लाली देखन मैं चली मैं भी हो गई लाल॥

तो जायसी भी इसी सर्वव्यापकता का इन शब्दों में प्रतिपादन करते हैं—

हँसत जो देखा हँस भा, दसन ज्योति नग हीर।
नयन जो देखा कंवल भा निरमल नीर सरीर॥

दोनों ही शाखाओं को यह भी मान्य है कि यह संसार रूपी माया आत्मा और परमात्मा के बीच ऊँची दीवार है जो इन्हें परस्पर मिलने नहीं देती। यह संसार माया का देश है जहाँ पग-पग पर काम, क्रोध आदि बटमार बैठे हुए हैं। जायसी के शब्दों में—

है आगे परबत के बाटा। बिसम पहार अगम सुठि घाटा।
बिच-बिच नदी खोह औ नारा। ठांवहि ठांव बैठि बटवारा॥

कबीर भी माया को महा ठगिनि मानते हैं और कहते हैं कि यह विविध रूप धारण करके लोगों को अपने फन्दों में फँसाती रहती है—

माया महा ठगिनी हम जानी।
निरगुण फांसि लिये कर डोलै, बोलै मधुरी बानी॥
केसव से कमला होइ बैठि सिव के भवन भवानी।
पंडा के मूरति होइ बैठि, तीरथ हूँ में पानी॥

कहने का भाव यह है कि इन दोनों शाखाओं का विषय प्रायः समान ही है। अन्तर है प्रतिपादन का। जहाँ सूफी-कवियों ने अपने सिद्धांतों को काव्यमय बनाकर सरस और सर्वग्राही बना दिया है, वहाँ निर्गुणिये अपनी खंडन-मंडन की प्रवृत्ति के कारण अपने सिद्धांतों को नीरस और कर्कश बना कर ग्राह्य न बना सके। वे अपने मस्तिष्क का रूखा तर्क-वितर्क तो अवश्य प्रस्तुत कर गये, किन्तु उसमें हृदय का माधुर्य न उँडेल सके। इसलिए आचार्य शुक्ल का यह मत युक्तियुक्त ही प्रतीत होता है कि जो काम कबीर अपनी अक्खड़ प्रवृत्ति के कारण पूरा न कर सके, वह जायसी आदि सूफी कवियों ने अपनी विनम्र प्रवृत्ति से पूरा कर दिया।

शैली—दोनों शाखाओं की शैली बिलकुल भिन्न-भिन्न है। प्रेममार्गी कवियों की शैली चौपाई और दोहों की है, किन्तु निर्गुण कवियों ने तत्कालीन

सभी शैलियों को अपनाया है। ऐसा प्रतीत होता है कि जिस प्रकार उनकी भाषा का कोई स्थिर स्वरूप नही था, उसी प्रकार उनके सामने कोई निश्चित शैली भी नहीं थी। उन्हें अपनी बात कहनी थी वह कह गये—कभी दोहों में, कभी पदों में, कभी गीतों में और कभी सोरठों में। जो भाव जिस ढंग से बहा, उसे उसी ढंग से बहने दिया, निश्चित काव्य रूप के बन्धन में उसे नहीं बांधा। अतः कहा जा सकता है कि प्रेममार्गी साहित्य की एक सुनिश्चित शैली है और निर्गुण-साहित्य की कोई शैली नहीं है।

हिन्दी साहित्य पर प्रभाव—अब केवल यह प्रश्न रह जाता है कि इन दोनों में किस शाखा का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव पड़ा। वैसे तो निर्गुण साहित्य का प्रभाव भी कम नहीं है क्योंकि कबीर ने मन के 'बेगम देस' में भाव-विभोर होकर जो पद गाये थे, यही पद-शैली कृष्ण-काव्य की प्रमुख शैली बनीं, किन्तु इनका अक्खड़पन इनके बाद साहित्य में न चल सका। उसका स्थान ले लिया माधुर्य ने और प्रेम की पीर ने। इन दोनों भावों को लेकर यदि भक्तिकाल पर दृष्टि डाली जाये तो सूफी काव्य का अगाध प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। भाव ही क्या इनकी शैली का भी अनुकरण किया गया और तुलसी जैसे महाकवि ने अपने अमर महाकाव्य 'रामचरित-मानस' की रचना दोहा, चौपाई शैली में ही की। इस प्रकार प्रेममार्गी शाखा का ही प्रभाव हिन्दी साहित्य पर अपेक्षाकृत अधिक दिखाई देता है।

प्रश्न २१—राम साहित्य और कृष्ण साहित्य की तुलनात्मक आलोचना कीजिए।

उत्तर—राम साहित्य और कृष्ण साहित्य दोनों ही हिन्दी साहित्य के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग हैं, बल्कि यों कहना चाहिए कि ये दो ही वे विशाल आधार स्तम्भ हैं जिन पर हिन्दी-साहित्य का भव्य प्रासाद खड़ा हुआ है। इन दोनों साहित्यों में बहुत कुछ समानतायें हैं और अनेक विषमतायें। इन दोनों दृष्टियों से इन साहित्यों की तुलना इस प्रकार की जा सकती है—

समानताएं—इन दोनों साहित्यों की प्रमुख समानतायें हैं—

१. दोनों साहित्यों में भक्ति-भाव का प्राधान्य है।

२. दोनों में ही लोक-भाषा तथा देश-भाषा का प्रयोग हुआ है।

३. दोनों साहित्यों में उदात्त भावनाओं की अभिव्यक्ति हुई है, अतः ये दोनों ही जीवन में नवीन जागृति का संचार करते हैं।

४. दोनों ही भारतीय जन-जीवन के अलंकार हैं।

५. भावपक्ष और कलापक्ष की दृष्टि से दोनों ही साहित्य अत्यन्त समृद्ध हैं। हिन्दी साहित्य में दोनों का ही अभूतपूर्व योगदान है।

इन प्रमुख समानताओं के होते हुए भी इन दोनों शाखाओं में अनेक असमानतायें भी है जिनमें मुख्य-मुख्य ये है—

असमानताएं—यह सच है कि दोनों धारायें अपनी-अपनी भक्ति पद्धतियों का प्रतिनिधित्व करती है किन्तु दोनों धाराओं में भक्तों का अपना-अपना क्षेत्र और अपने-अपने कार्य-क्षेत्र है। इसीलिए इनमें अनेक विशेषताएं भी हैं। यथा—

१. राम भक्तों का क्षेत्र व्यापक है और कृष्ण-भक्तों का संकुचित। यही कारण है कि कृष्ण-भक्त महाकाव्यकारों की अपेक्षा गीतिकार ही बने रहे। राम साहित्य मे अनेक शैलियों और काव्यरूपों का समन्वय मिलता है और कृष्ण-साहित्य अपनी सीमित परिधि में ही फलता-फूलता रहा है।

२. भक्ति पद्धति में भी दोनों धारायें विभिन्न रहीं। राम-भक्त अपने आराध्य के समक्ष केवल दास्य-भाव से ही उपस्थित हो सके, जबकि कृष्ण-भक्त दास्य, सख्य और कान्तभाव की भक्ति को भी अपनाकर चले।

३. राम-साहित्य जन जीवन का साहित्य है। वह 'स्वान्तः सुखाय' होते हुए भी 'पर हिताय' है। उसमें समाज के लोक-कल्याण की भावना भी सन्निहित है, अर्थात् उसमें सामाजिक पक्ष भी है, किन्तु कृष्ण साहित्य में सामाजिक पक्ष का प्रायः अभाव ही बना हुआ है। कृष्ण-भक्त तो आत्म-केन्द्रित थे, इसलिए उनका साहित्य समाजिकता से दूर हृदय के भोले और स्वाभाविक स्वरों की वाणी है। यही कारण है कि रामभक्तों ने राम के लोकरक्षक रूप को ग्रहण किया और कृष्णभक्तों ने कृष्ण के लोक-रंजक रूप को।

४. इसी विस्तृत और संकुचित दृष्टिकोण के कारण उनके काव्य-रूपों में भी अंतर आ गया है। राम साहित्य में सभी काव्य-रूपों के दर्शन होते हैं और कृष्ण-साहित्य में केवल रीति-काव्य ही अधिकांश रूप से उपलब्ध होता है।

५. कृष्ण-भक्तों के लिए कृष्ण ही एकमात्र आराध्य देव हैं। उनकी पूजा छोड़कर किसी अन्य की शरण में जाना उस मूर्ख व्यक्ति के समान है जो अपनी प्यास बुझाने के लिए गंगाजल छोड़कर अलग ही कुआँ खोदता है, अथवा कामधेनु को छोड़कर छेरी को दोहने का प्रयत्न करता है। राम-

भक्तों में यह हठपूर्ण संकीर्णता नहीं मिलती। वे तो अन्य देव का स्तुति करने के लिए भी सदैव तत्पर रहते हैं। इसीलिए तुलसी ने राम के अनन्य भक्त होते हुए भी अन्य देवी-देवताओं की परम भक्ति एवं श्रद्धा के साथ स्तुति की है।

६. दोनों के आराध्यों के अवतार लेने के कारण भी भिन्न-भिन्न हैं। कृष्ण-साहित्य में भगवान् का रूप केवल लीलामय और आनन्दमय है, इसीलिए उनके कृष्ण अपने बाल और युवक रूप में ही प्रकट होते है। वे अपनी बाल-लीलाओं से अपने माँ-बाप का ही नहीं, समस्त जग का मनोरंजन करते हैं और जो सुख ब्रह्मा और विष्णु को भी अलभ्य है, वही सुख सहज ही नन्द-यशोदा और कृष्ण-भक्तों को मिल जाता है। राम दुष्टों का हनन करने के लिए और दलितों की रक्षा करने के लिए ही इस भूतल पर अवतरित होते हैं। जब-जब धर्म की हानि होती है, असुरों का जोर बढ़ जाता है और सज्जनों पर अत्याचार होने लगते हैं, तभी पाप लीला मिटाने के लिए राम इस पृथ्वी पर आते हैं। इसीलिए राम की भक्ति ने परलोक सुधारने, पापों से मुक्ति पाने तथा धर्म के विजयी होने की भावना ही नहीं, लोक-संग्रह तथा लोक मंगल का लक्ष्य भी है। इस प्रकार कृष्ण का रूप रसेश्वर है और राम का रक्षेश्वर।

७. यद्यपि भावपक्ष दोनों ही धाराओं का उत्कृष्ट है किन्तु दोनों की अपनी-अपनी सीमायें हैं। कृष्ण-साहित्य की सीमा सीमित है, इसलिए उसमें केवल दो रस ही पूर्णतया प्रतिपादित हो सके हैं—वात्सल्य और शृंगार। सूरदास ने इन दोनों रसों का इतनी पूर्णता के साथ वर्णन किया है कि परवर्ती कवियों के लिए ये केवल जूठन मात्र ही रह गये हैं। राम-साहित्य की सीमा विस्तृत है, अतः उसमें सभी रसों का समावेश भली-भांति हो सका है।

८. कृष्ण-साहित्य अपने गीति-तत्वों में बेजोड़ है। यह कहना अनुचित न होगा कि इस साहित्य में गीति-रूप अपनी चरम सीमा पर पहुंच गया है, किन्तु राम-साहित्य में गीति के अतिरिक्त काव्य के और भी अनेक रूप मिलते हैं। तुलसी के काव्य में उस समय की समस्त प्रचलित शैलियों के सफल प्रयोग हुए हैं, किन्तु कृष्ण-भक्त प्रायः एक ही लकीर के फकीर रहे।

९. कृष्ण-कवियों का मोह केवल ब्रजभाषा तक ही सीमित रहा, अतः उन्होंने ब्रजभाषा में काफी सुधार किया, उसका संस्कार और परिष्कार किया और उसमें अपूर्व माधुर्य भर दिया किन्तु दूसरी भाषाओं को उन्होंने छुआ

तक भी नहीं। राम-साहित्य में तत्कालीन दोनों भाषाओं—व्रज और अवधी—का प्रयोग हुआ है और यह प्रयोग केवल प्रयोग नहीं वरन् उनकी अपूर्व काव्य प्रतिभा का परिचायक है। तुलसी का व्रज और अवधी दोनों भाषाओं पर समान अधिकार है, यह मानने में किसी को भी आपत्ति नहीं है।

१०. प्रभाव की दृष्टि से कृष्ण-साहित्य का प्रभाव भी अपेक्षाकृत अधिक रहा है क्योंकि उसमें मन को आह्लादित करने के अधिक तत्त्व मौजूद हैं। अपनी सीमा की लघुता में बँधा रहने पर भी कृष्ण-साहित्य इसीलिये अविच्छिन्न धारा में प्रवाहित होता रहा है और यह धारा आधुनिक काल में 'रत्नाकर' तक आ गई है। रस-साहित्य का इतना अधिक व्यापक प्रभाव नहीं रहा। इसका सभवतः कारण यही है कि राम-साहित्य में तुलसी के पश्चात् और कोई ऐसा प्रतिभाशाली कवि नहीं हो सका, जबकि कृष्ण-साहित्य में बराबर सुविज्ञ कवि होते है।

इन असमानताओं के बावजूद भी दोनों धाराओं का हिन्दी में महत्त्वपूर्ण स्थान है। हिन्दी-गगन के सूर्य चाहे सूर हों अथवा तुलसी, हिन्दी-साहित्य के लिए दोनों की महत्ता ही स्वीकार्य है। इन्हीं दोनों धाराओं के कारण ही तो भक्तिकाल हिन्दी-साहित्य का 'स्वर्णकाल' कहलाता है।

प्रश्न २२—भक्तिकाल की चारों शाखाओं में विरह का क्या स्थान है? किस शाखा के काव्य में विरह का सर्वोत्कृष्ट रूप मिलता है? उत्तर में विरह का स्वरूप (अत्यन्त संक्षिप्त), कवि तथा ग्रन्थ का नामोल्लेख अवश्य चाहिए।

उत्तर—भक्ति काल को चार शाखाओं में विभाजित किया गया है—निर्गुणिये संतों की शाखा, सूफी काव्य धारा की शाखा, रामभक्ति शाखा और कृष्ण-भक्ति शाखा। इन चारों शाखाओं में विरह का पर्याप्त वर्णन मिलता है। इसका कारण यह है कि अपने आराध्य की अनुपस्थिति में इन्होंने विरह की अत्यन्त मार्मिक अनुभूतियों का अनुभव किया है और उन अनुभवों को अपनी वाणी के द्वारा अभिव्यक्ति दी है। यहाँ संक्षेप में इन शाखाओं के विरह-वर्णन पर दृष्टि डालना अनिवार्य है।

१. **निर्गुणिये सन्त**—यह शाखा ईश्वर को निर्गुण और निराकार मानकर चली है, फिर भी इसमें विरह के मार्मिक वर्णन मिलते हैं। कबीर इस शाखा के प्रतिनिधि कवि हैं, अतः यहाँ उनके काव्य में वर्णित विरह की व्याख्या ही पर्याप्त होगी।

कबीर का ब्रह्म 'पुहुप बास तैं पातरा' है। उसका न कोई रूप है और न गुण, अर्थात् वह निराकार और निर्गुण है, फिर भी कबीर को उसका अभाव खटकता है। वह आँखों पर पलकों का पर्दा डालकर और पुतलियों की सेज बिछाकर अपने प्रियतम के आने की बाट जोहता रहता है और अपनी विरह-व्यथा को चिल्ला-चिल्लाकर कहता है—

'बालम आयो हमारे गेह रे। तुम बिन दुखिया देह रे'।
अन्न न भावै नींद न आवै। गृह बन धरै न धीर रे।
है कोई ऐसा उपकारी। पिय से कहै सुनाय रे।
अब तो बेहाल कबीर भयो है। बिन देखे जिव जाय रे।

किन्तु कौन उसके प्रियतम को उसका दुखद संदेश दे और वह भी तो कानों में तेल डाले हुए है। कबीर अपनी विरह-व्यथा को कहते-कहते थक जाते हैं, परन्तु उनका अपने प्रिय से सान्निध्य नहीं हो पाता। अन्त में एक ही उपाय रह जाता है, और वह है स्वयं मिट कर उस निष्ठुर प्रियतम के हृदय में दया उपजाना। कबीर को विश्वास है कि इस कार्य से तो उसका पत्थर दिल पिघल ही जायेगा। अतः वे घोषणा कर देते हैं—

यह तन जारौं मसि करौं धुंआ जाय सरग्गि।
मति वै राम दया करि बरसि बुझावै अग्नि॥

इस प्रकार कबीर का विरह बहुत ही मर्मस्पर्शी है। संयोग के चित्रों के साथ तो यह मर्मस्पर्शिता और भी गहरी हो गई है।

२. सूफी काव्य धारा—सूफी कवियों में विरह का विशेष महत्त्व रहा, क्योंकि 'प्रेम की पीर' इनके काव्य की आधारशिला थी। इन्होंने जो प्रेमाख्यान काव्य लिखे, उनके द्वारा इसी प्रेम की पीर को अभिव्यक्ति देना इनका उद्देश्य था। यही कारण है कि 'पद्मावत' में 'नागमती का विरह-वर्णन' इतना उत्कृष्टतम बन सका है कि वह विश्व-साहित्य के किसी भी उत्कृष्ट-विरह-वर्णन के समक्ष रखा जा सकता है। इनके काव्य में विरह के दो रूप मिलते हैं लौकिक और अलौकिक। लौकिक विरह द्वारा अलौकिक विरह की अभिव्यक्ति करना इन्हें अभीष्ट था। इन्होंने आत्मा को प्रियतम और परमात्मा को प्रियतम माना है, इसीलिए इनके विरह में माधुर्य भाव का मधुर समावेश हो गया है। प्रेमी जब अपने प्रियतम से मिलने की कोई आशा नहीं देखता तो वह स्वयं मिट जाना चाहता है। ध्वंस में मिलने के सपने देखना प्रेमियों का पुराना स्वभाव बन गया है। नागमती भी इसी ध्वंस की ओर संकेत करती

हुई कहती है—

'यह तन जारौं छार कै, कहौं कि पवन उड़ाव।
शकु तेहि मारग उड़ि परै कन्त धरै जहँ पाव।'

जैसे कि कहा जा चुका है, इन सूफी कवियों की काव्य रचना का उद्देश्य ही अपनी विरह-व्यथा को प्रकट करना था। इसी उद्देश्य को बताते हुए इस धारा के प्रतिनिधि कवि जायसी कहते हैं—

मुहमद कवि यह जोरि सुनावा। सुना सो पीर प्रेम का लावा।
जोरि लाइ रकत कै लेई। गाढ़ि प्रीत नयनन जल भेई।

३. राम काव्यधारा—इस धारा का विरह बहुत ही संयत है। तुलसी स्वयं मर्यादावादी कवि थे, इसलिए उनके विरह-वर्णन पर मर्यादा का अंकुश सर्वत्र लगा हुआ है। फिर भी कहीं-कहीं यह अंकुश कुछ शिथिल पड़ गया है और विरह अपनी स्वाभाविक गति से बढ़ निकला है। उदाहरण के लिए ये पंक्तियाँ ली जा सकती हैं—

हे खग मृग हे मधुकर स्रेनी।
तुम्ह देखी सीता मृग नैनी।

विरह की चरम सीमा पर पहुंच कर व्यक्ति जड़-चेतन का भेद भूल जाता है। वह समस्त सृष्टि के उपकरणों के सामने अपना अंचल फैलाने लगता है, इसी आशा से कि न जाने कौन उसके विरह को कम कर दे उपर्युक्त पंक्तियों में राम की भी यही भावना मुखरित हुई है—

४. कृष्ण-काव्यधारा—कृष्ण-काव्यधारा में विरह का विशद और व्यापक वर्णन हुआ। इस धारा के प्रतिनिधि कवि सूरदास ने शृंगार रस के दोनों पक्षों को लेकर इतनी सूक्ष्मता से इनका वर्णन किया है कि आगे आने वाले कवियों के लिए जैसे कुछ बचा ही नहीं। इसलिए सूर के विषय में आचार्य शुक्ल का यह मत युक्तियुक्त ही है कि वे शृंगार रस का कोना-कोना झांक आये हैं। यद्यपि इस धारा में गोपियों और राधा के माध्यम से ही विरह की अधिक अभिव्यक्ति हुई, किन्तु नन्द, यशोदा, गोप और कृष्ण के विरह-वर्णन भी कम मार्मिक नहीं हैं। कृष्ण के मथुरा चले जाने पर समूचे व्रज पर विरह का विशाल पर्वत टूट पड़ता है और सर्वत्र विरह दिखलाई देने लगता है। गोपियाँ तो अपने विरह में इतनी व्याकुल हो जाती हैं कि लोक-लाज का बंधन तो वे तोड़ ही देती हैं, साथ ही जड़ और चेतन का भेद भी मिटा देती हैं। यमुना का जल काला है, इसलिए नहीं कि वह सदैव से ही काला रहा है, बल्कि

इसलिए कि वह कृष्ण की विरह ज्वाला में जलकर काली हो गई हैं। जिन कुंजों में वह कृष्ण के साथ रास केलि किया करती थीं, वे ही अब उन्हें काटने दौड़ती हैं और आक्रोश में आकर कह उठती हैं—

मधुवन तुम कत रहत हरे।'

उन्हें इस मधुवन का हरा रहना बहुत ही अखरता है और वे चाहती हैं कि जिस प्रकार विरह में वे अस्त-व्यस्त हो गई हैं, उसी प्रकार मधुवन भी उखड़कर नष्ट-भ्रष्ट हो जाए। कहने का भाव यह है गोपियों के माध्यम से कृष्ण-कवियों ने जिस विरह को वाणी दी है, वह बहुत ही मार्मिक और प्रभावपूर्ण है।

इस शाखा की मीरा तो प्रेम-दीवानी ही है। वह अपने प्रियतम की प्राप्ति के लिए जग के बन्धनों को ठुकरा देती है और लोक-लाज को तिलांजलि दे देती है। नारी होने के नाते मीरा के विरह में अत्यन्त करुणा और स्वाभाविकता का प्रवाह उमड़ पड़ा है। यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि कृष्ण-कवियों ने अपने विरह-वर्णन में केवल परम्पराओं का ही पालन नहीं किया, बल्कि उन्हें तोड़कर अपनी भावनाओं को स्वतन्त्र और स्वाभाविक गति दी है। यही कारण है कि इस धारा के कवियों का विरह-वर्णन बेजोड़ और अद्वितीय है।

विरह का सर्वोत्कृष्ट रूप—यों तो चारों शाखाओं में ही विरह का उत्कृष्ट रूप मिलता है किन्तु यदि तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाये तो कृष्ण-शाखा का विरह ही सर्वोत्कृष्ट सिद्ध होता है। कबीर के विरह में तड़प तो है, पर उस पर बौद्धिकता का अंकुश लगा हुआ है। जायसी का विरह स्वाभाविक होते हुए भी कहीं कहीं भारतीय परम्परा का उल्लंघन करके और फारसी-पद्धति से प्रभावित होने के कारण वीभत्स बन गया है। खून और मांस की बातें हिंदी साहित्य की प्रकृति के विरुद्ध हैं। तुलसी के विरह पर मर्यादा का अंकुश लगा हुआ है। यद्यपि कहीं-कहीं यह अंकुश शिथिल अवश्य हो गया है, किन्तु फिर भी इसने विरह-वर्णन के स्वाभाविक प्रवाह में वहने में बाधा पहुँचाई है। अतः यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि कृष्ण-कवियों में ही विरह का सर्वोत्कृष्ट रूप मिलता है। इसमें शृंगार के दोनों पक्षों—संयोग और वियोग का सांगोपांग वर्णन मिलता है। कृष्ण-कवियों के सम्मुख न तो मर्यादा का प्रश्न था और न किसी परम्परा का अंकुश। इसलिए उनकी वाणी हृदय की सहज गति लेकर अबाध प्रवाह में बही है। कृष्ण-कवियों के विरह में रंगीनी, मार्मिकता, मनो-

वैज्ञानिकता, स्वाभाविकता और स्वच्छन्दता आदि समस्त गुणों का एक ही स्थान पर आकर समावेश हो गया है।

रीतिकाल

प्रश्न २३—किस काल को रीतिकाल कहते हैं और क्यों ? इस काल की परिस्थितियों तथा उनके प्रभाव को स्पष्ट कीजिये ?

अथवा

रीतिकाल को श्रृंगार युग या कला-प्रधान युग कहा जाता है। इनका क्या कारण है ? तुलना द्वारा स्पष्ट कीजिये कि इस युग में श्रृंगार भावना तथा कलात्मकता अन्य युगों की अपेक्षा अधिक थी।

उत्तर—रीतिकाल का युग हिन्दी साहित्य में भक्तिकाल के पश्चात् आता है और इस काल को विद्वान् दो रूपों में देखते हैं। पहला तो रीति युग तथा दूसरा श्रृंगार युग। आचार्य रामचन्द्र जी शुक्ल इसको श्रृंगारिक युग के नाम से अधिक महत्व देते है अथवा उनका मत इस ओर अधिक झुका है। इस युग में दो विषय रहे हैं प्रथम श्रृंगार और दूसरा वीर। परन्तु जहाँ वीर भाव का समावेश हुआ है; उसका भी कारण श्रृंगार है। आगे अधिक गहराई से देखने पर ऐसा दिखाई देता है कि इस युग में रीति परम्परा भी विकसित हुई है, चाहे वह विकास पर न पहुँच सकी, परन्तु उसका प्रयत्न पूर्णरूपेण हुआ है। श्रृंगार रस का परिपाक तो पहले भी हुआ है परन्तु इस रस में श्रृंगार की परम्परा अश्लीलतम रूप में समाज के सामने आई और सारा समाज इससे प्रभावित हुआ। यह सारा काव्य लक्षण ग्रंथों के रूप में लिखा गया। इस प्रकार इस युग को हम रीतिकाल की ही संज्ञा दे सकते हैं।

दूसरे, यह युग भावपक्ष की ओर न जाकर काव्य के बाह्य सौन्दर्य का ही पोषण करता रहा है। इस कारण कविता का कलापक्ष अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचा तथा उसका सारा विवरण भी शास्त्रीय-पद्धति पर हुआ। अतएव यह युग कला प्रधान युग ठहरा, और रीति का विश्लेषण हुआ और युग का नाम भी रीति युग पड़ा।

काल-क्रम—रीतिकाल के बारे में विद्वानों के अलग-अलग मत हैं। जैसे—शुक्ल जी ने इस काल को १७०० से १९०० तक माना है। द्विवेदी जी इस काल को १६वी शती से लेकर १९वी शती के मध्य तक मानते है।

इस प्रकार दोनों विद्वानों के मत में कोई विशेष अन्तर नही दिखाई देता क्योंकि हम यदि इतिहास को देखे तो हमें दिखाई पड़ता है कि जहाँ द्विवेदी

जी १७वीं शती का मध्य मानते हैं और शुक्ल जी १७वीं शती मानते हैं, वहाँ यदि रीतिकालीन ग्रंथों की रचना के अनुसार तो कुछ साहित्य ऐसा भी मिलता है जो हमें १५वीं शती में भी दिखाई देता है। जैसे केशव, रहीम, नन्ददास, कृपाराम इत्यादि। परन्तु काव्य का जो अन्तर आया, वह 'भावना प्रधान' है और वह १७वीं शती में ही आया और रीतिकाल वहाँ से आरम्भ हो गया।

रीति से अभिप्राय यही है कि इस काल में जो भी काव्य रचा गया उसमें रस, नायिका-भेद तथा अलंकार प्रधान हो गए और काव्य इन सारी बातों में रूढ़ होकर तथा इनकी धुरी पर ही चक्कर काटना रहा, जहाँ काव्य में समाज को आगे ले जाने की क्षमता चाहिए वह नहीं रही और सारा काव्य लक्षणों में ही बँध गया। कवि अपनी इच्छानुसार जैसा भी जिसको लक्षण ठीक लगा, लिखता चला गया। जैसे 'देव' ने कहा—

'अपनी-अपनी रीति के कवि और कवि रीति"

इस प्रकार इस समय की सारी रचना को जो ग्रंथों के रूप में थी, रीति ग्रंथ तथा जो काव्य के रूप में थी उसको रीति काव्य कहा गया।

रीतिकाल की परिस्थितियाँ—प्रत्येक काल की परिस्थिति पर समाज का प्रभाव होता है। जैसे—

राजनीतिक परिस्थिति—यह काल सुख तथा वैभव का काल रहा है। इस समय शाहजहाँ राज्य करता था तथा अंत में अंग्रेज शासक आए। यदि ध्यानपूर्वक देखें तो शाहजहाँ के समय में सारे समाज में पूर्ण शान्ति थी और सारा समाज पूर्ण रूप से भोग-विलास में लिप्त था। बादशाह आनन्द की रंग-रलियों में मस्त था। उससे अपने पुत्र भी न संभल सके तथा मुगल-साम्राज्य का ह्रास भी प्रारम्भ हो गया था। औरंगजेब इन सबमें चतुर था परन्तु इसकी हठवादिता तथा धर्मान्धता ने इसको गिरा दिया था। चारों तरफ से विद्रोह हो रहा था जैसे मराठे, सिख, राजपूत तथा जाट मुगल-साम्राज्य को चुनौती दे चुके थे। फौज में भी सुरा और सुन्दरी का आधिपत्य था। मुगल साम्राज्य पूर्णरूपेण भीरू हो गया और नवाबों और अंग्रेजों ने इसका खूब लाभ उठाया।

सामाजिक परिस्थिति—इस समय सारा समाज ही विलासिता में डूबा हुआ था। डॉ० नगेन्द्र लिखते है कि इसके दो वर्ग थे—उत्पादक वर्ग तथा भोक्ता व बीच का कविगण।

उत्पादक में तो किसान और मजदूर जिनकी अवस्था खराब थी और आए दिन झगड़ों में मिट रहे थे और दु:खी थे। दूसरे भोक्ता वर्ग जिसमें राजा, नवाब तथा इनके नौकर-चाकर थे जो भोग वृत्ति को ही अपना कर अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे। तीसरे इनके बीच में कविगण थे जो राजाओं तथा बादशाहों के आश्रय में रहकर अपना जीवन चलाते थे और उनको प्रसन्न करने में ही अपने को धन्य समझते थे। इस प्रकार भोक्ता वर्ग रंग-रलियाँ मना कर रत्नजटित वस्त्रों को पहन कर तथा नृत्य का आनन्द लेकर मदिरा का पान करके अपने राज्य, अपने व्यक्तियों को तथा अपने को खो रहे थे और परिणाम था श्रृंगारिक काव्य।

धार्मिक परिस्थिति—इस काल में सन्त थे पर इतने प्रभावी नहीं। विद्वानों का अपना ढर्रा अलग था। धर्म का वास्तविक विकास रुक गया था। कृष्ण भक्ति की परम्परा चल रही थी परन्तु यह भी विलासिता प्रधान थी। संत-महंत भी राजसी ठाठ से रहते थे।

साहित्यिक परिस्थिति—साहित्य का सुन्दर स्वरूप किसी को दिखाई नहीं देता था क्योंकि बुद्धि विपथगामिनी ही रह गई थी, विलासिता में डूब गई थी। भक्तिकाल के साहित्य के कारण अधिक सुन्दर लिखने की क्षमता किसी में नहीं थी। विकास की भावना रुक गई थी, शुद्ध स्रोत दिखाई नहीं पड़ता था। राम व कृष्ण का आदर्श भी नहीं था। सूर तथा नन्ददास जैसी प्रतिभा भी दिखाई नहीं पड़ती थी। पिछले कवियों ने भी इस लोक-धर्म में कुछ लिखने के लिए नहीं छोड़ा था। इस प्रकार ऐसा दिखाई पड़ता है कि समय के प्रभाव अथवा हमारे जीवन की दशा ने समाज को बिल्कुल ही बदल दिया था।

प्रभाव—इन सारी बातों का प्रभाव समाज पर यह आया कि कवि जो कि समाज का द्रष्टा होता है गुलाम हो गया है और कवि भी गुलामी करने लगा। कहा भी है "जैसा खाये अन्न वैसा बने मन" इस प्रकार काव्य श्रृंगार काव्य के रूप में आया जिससे रंजन हुआ परन्तु विकास रुक गया।

कविता राज्य दरबारों की हो गई तथा नित्य नई होती थी। इस कारण 'मुक्तक' हुई। महाकाव्य के विचार से शून्य थी।

राज्य का दरबार वैभवपूर्ण था तो कविता भी वैभवपूर्ण हुई। उसमें आन्तरिक वेदना न थी, बाह्य सौन्दर्य था, वह अलंकृत थी, उक्ति-वैचित्र्य का समावेश था, पोषाक सुन्दर थी परन्तु शरीर में रोग था जिस रोग ने समाज को भ्रष्ट किया।

काव्य समाज का पथ-प्रदर्शक न होकर भ्रष्टता की ओर ले गया, जीवन से सम्बन्धित न रहा, केवल भोक्ता वर्ग की वासना को उत्तेजित करने का सामर्थ्य उसमें था। कृष्ण और राधा का स्वरूप भी लोगों ने बिगाड़ दिया। साहित्य में लक्षण ग्रन्थ बने। भक्तिकाल के अन्त तक ब्रजभाषा काव्य का रूप धारण कर चुकी थी। इस प्रकार रीतिकाल में भी ब्रजभाषा को काव्य-भाषा के रूप में स्वीकार करके सारे कवियों ने ब्रजभाषा में लिखा।

इस प्रकार यह काल रीति तथा शृंगार में डूब कर अपने आपको अश्लीलता, विलासिता और आडम्बर की ओर ले गया।

प्रश्न २४—बिहारी का काव्य-परिचय देते हुए सिद्ध कीजिये कि वे रीति-परम्परा के कवि कैसे कहे जा सकते हैं ?

उत्तर—प्रत्येक युग की अपनी-अपनी विशेषताएँ होती हैं। वीर गाथा-काल में वीररस की प्रधानता रही। यों तो अन्य रस भी उसके साहित्य में मिलते हैं, किन्तु वे वीररस के सहायक होकर ही आये हैं। भक्ति काल में भक्ति का अजस्र स्रोत बहा। इसी प्रकार रीतिकाल में शृंगार रस का ही प्राधान्य रहा। यहाँ पर यह कहना भी आवश्यक है कि किसी भी काल को किसी एक ही धारा के अन्तर्गत नहीं बांधा जा सका। उसमें अन्य धाराएँ भी प्रवाहित होती रहती हैं, जैसे वीरगाथा काल में शृंगार की रचनाएँ भी मिलती हैं और भक्ति अथवा रीतिकाल में वीररस की। हाँ जो प्रवृत्ति प्रमुख होती है, उसी के आधार पर उसका नामकरण होता है। संक्षेप में रीतिकाल की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं—

१. **शृंगार रस और कलापक्ष की प्रधानता**—इस काल में प्रमुखतः शृंगार रस का ही बोलबाला रहा। यों तो भक्तिकाल में भी इसके वर्णन मिलते हैं किन्तु वे वर्णन लौकिक न होकर अलौकिक हैं, इसलिए उनकी अश्लीलता पर भक्ति का पर्दा पड़ा हुआ है, किन्तु रीतिकाल में यह परदा उठ जाता है। यद्यपि इस काल के कवियों ने भी कृष्ण और राधा को नायक नायिका के रूप में अंकित किया है, किन्तु यह तो केवल बहाना मात्र है। कवि का साध्य लौकिक शृंगार की अभिव्यक्ति करना ही है। शृंगार के दोनों पक्षों का—संयोग और वियोग का—सांगोपांग वर्णन किया गया है। संयोग के वर्णनों में स्थूलता एवं मांसलता का अधिक समावेश है और वियोग वर्णनों में प्रायः ऊहात्मकता आ गई है जिस पर फारसी का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। नायक और नायिकाओं की मिलन-सम्बन्धी जितनी

भी क्रीड़ाएँ हो सकती हैं। सबका वर्णन बिहारी की सतसई में मिल जाता है। यथा—

'कहत, नटत, रीझत, खिजत, मिलत, खिलत, लजियात।
भरे भौन में करत हैं, नैनन ही सौं बात॥'

वियोग में ऊहात्मकता का प्रयोग किया गया है। बिहारी का यह वियोग वर्णन देखिए—

इत आवत चलि जात उत, चली छ सातक हाथ।
चढ़ी हिंडौले सी रहे, लगी उसासन साथ॥'

प्रकृति का उद्दीपन रूप में वर्णन किया गया है। जो प्रकृति संयोग में सुख का कारण बनती है, वही वियोग में अत्यन्त दुखद बन जाती है। प्रकृति के उपादान वासना को भड़काते हैं। रीतिकालीन कवियो ने प्रकृति के इसी उद्दीपन रूप को ग्रहण किया है। यथा—

'रनत भृंग घंटावली झरत दान मद नीर।
मंद मद आवत चल्यौ कुंजर कुंज समीर॥'

इस काल में चमत्कारवाद का प्राधान्य था। कवि कोई न कोई ऐसी चमत्कारपूर्ण बात कह देना चाहता था जिससे श्रोता एकदम चमत्कृत हो उठें। यही कारण है कि इस काल के काव्यों में कला-पक्ष का ही प्राधान्य है।

२. **मुक्तक काव्य की प्रधानता**—स्थूल रूप से काव्य के दो भेद होते हैं—महाकाव्य और मुक्तक काव्य। महाकाव्य में जीवन की सम्पूर्णता का चित्र अंकित किया जाता है और मुक्तक में उसको किसी एक घटना विशेष का। रीतिकालीन साहित्य विलासी राजाओं के दरबारों में पला था, अतः अपने आश्रयदाता को प्रसन्न करना ही कवि का मुख्य उद्देश्य था। ऐसी परिस्थिति में मुक्तक काव्य की रचना हो सकती थी, महाकाव्य की नहीं। मुक्तक के लिए दोहे, कवित्त और सवैयों का अधिकांश-रूप से प्रयोग किया गया। बिहारी ने दोहों की ही रचना की है।

३. **ब्रजभाषा का प्रयोग**—भक्तिकाल में ब्रजभाषा का इतना अधिक प्रयोग हुआ था कि वह पूर्णरूप से परिष्कृत हो गई और इसमें इतना माधुर्य आ गया कि साहित्य-क्षेत्र में इसका एकमात्र आधिपत्य जम गया। यही कारण है कि इस काल में ब्रजभाषा का ही प्रयोग प्रधान रूप से हुआ। बिहारी ने ब्रजभाषा का प्रयोग करके उसे बहुत ही संयत और अर्थ-गभीर बना दिया है। इसीलिए बिहारी के दोहों के विषय में यह उक्ति अत्यन्त ही प्रसिद्ध हो

गई है कि उन्होंने गागर में सागर भर दिया है। उनके दोहे देखने में भले ही छोटे लगें, किन्तु भाव की गम्भीरता से पूर्ण होते हैं।

४. **विरक्ति भावना**—यह मन की स्वाभाविक प्रतिक्रिया है कि वह शृंगार में आकंठ डूब कर विरक्ति की ओर बढ़ चलता है, भले ही यह विरक्ति क्षणिक हो। रीतिकाल के कवियों में भी इसी विरक्ति भावना के दर्शन होते हैं। महाकवि देव तो इसी भावना के वशीभूत होकर यहाँ तक कह डालते हैं कि हे मेरे मन ! अगर मुझे पता होता कि तू विषयों के संग जायेगा तो मैं तेरे हाथ-पैर तोड़ डालता। बिहारी में भी यही विरक्ति-भावना यत्र तत्र दिखाई देती है। उनके भक्ति-भाव से भरे हुए दोहे इसी भावना की अभिव्यक्ति करते हैं।

५. **ऊहात्मक उक्तियाँ**—कल्पना का आधिक्य करके जो उक्तियां कही जाती हैं उन्हें ऊहात्मक उक्तियां कहते हैं। ये उक्तियां चमत्कार-प्रधान होती हैं, अतः विशुद्ध रूप से काव्य की कोटि में नही आ सकती। बिहारी ने वियोग-वर्णन में प्रायः इन्हीं उक्तियों का आश्रय लिया है। यथा—

'आड़े दहलाले बसन जाड़ेहू की राति।
साहस कैक सनेह बसि, सकल सखि ढिग जाति।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि बिहारी के काव्य में प्रायः सभी रीतिकाल की साहित्यिक विशेषतायें उपलब्ध होती हैं। अतः यह कहना कि बिहारी रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि हैं, अनुचित नही है।

प्रश्न २५—**"यद्यपि समय विभाग के अनुसार केशवदास भक्तिकाल में पड़ते हैं परन्तु अपने काल को हिन्दी काव्यधारा से पृथक् होकर वे चमत्कारवादी कवि हो गये और हिन्दी में रीति-ग्रन्थों की परम्परा के आदि आचार्य कहलाए।" क्या यह मत सर्वसम्मत है ? अन्य आलोचकों का उल्लेख करते हुए अपनी सहमति या असहमति युक्ति-युक्त रूप में दीजिए।**

उत्तर—आचार्य केशव को किस काल मे रखा जाये इस बारे में आज के आलोचक भिन्न-भिन्न विचार रखते हैं। शुक्ल जी इनको भक्तिकाल में मानते हैं और डॉ॰ श्यामसुन्दर दास रीतिकाल में रखना चाहते हैं। डॉ॰ हजारीप्रसाद द्विवेदी उनके कालक्रम को उनके ग्रन्थों के आधार पर मानते है। उन्होंने उनकी रामचन्द्रिका को भक्तिकाल के अन्तर्गत माना है, 'कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया' की चर्चा रीतिकाल के अन्तर्गत की है।

आचार्य केशव १६१२ से १६७४ ई॰ तक जीवित रहे थे इस कारण

भक्तिकाल में भी ठहरते हैं।

आचार्य केशव को ध्यान से देखने पर यह दिखता है कि वे भक्तिकाल में हुए थे पर उनमें भक्ति भावों का प्रतिपादन नहीं दिखाई पड़ता है। वे स्वछन्द रूप से प्रकृति के साथ गीत गाते रहे हैं। बाद में इस बात को देख कर उन्होंने भी भक्ति-भाव भरे गान गाने का निश्चय किया है और उसका ही फल यह है कि उन्होंने रामचन्द्रिका को लिखा। लेकिन वे भावों की सुन्दर भावनाओं को अभिव्यक्त करने में असमर्थ रहे हैं।

रामचन्द्रिका में भी प्रकृति तथा चमत्कारवादी मनोवृत्ति का दर्शन होता है क्योंकि वे राजदरबारी कवि थे। इनमें सूर व तुलसी जैसी तल्लीनता नहीं आ सकी। उन जैसा व्यक्तित्व इनमें नहीं था। वे भक्त थे तथा स्वछन्द कवि थे, ये फिर भी राजदरबारी कवि थे। इनका कार्य था कि शब्दों में पांडित्य का प्रदर्शन करना। इस प्रकार परिस्थितियों के कारण केशव भक्तिकाल में रह कर भी उधर न जा सके और इनकी कवि प्रकृति भिन्न प्रकार की बनी। आगे चलकर कवि कई राज दरबारों में सीमित हो गया और केशव प्रकृति व स्वभाव के कवि दृष्टिगोचर होने लगे।

इस प्रकार केशव भक्तिकाल में होते हुए भी भिन्न रूप में दिखाई पड़ते हैं और इनकी कविता चमत्कारवादी हो गई है। उन्होंने अपनी रामचन्द्रिका में राम का जो वर्णन किया है उसमें उनकी भक्ति-भावना नहीं दिखाई पड़ती है लेकिन व्यर्थ के चमत्कार का प्रदर्शन होता है।

यदि रामचन्द्रिका को देखें तो ऐसा लगता है कि आज शुक्ल से लेकर अब तक जितने भी आलोचक हैं सबने यह माना है कि इन सारे रीति ग्रन्थ कारों ने जैसा अधूरा, भ्रामक, मौलिकता रहित तथा विवेचना-हीन ज्ञान उपस्थित किया है, उसे देखते हुए किसी को भी आचार्य कोटि के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता।

आचार्य केशव से पहिले कृपाराम, करनेस आदि काव्य अंगों पर प्रकाश डालने वाले लेखक हुए, उन सबसे बढ़कर कुछ ढंग का यदि शास्त्रीय पद्धति पर काव्य रीतियों का निरूपण किसी में मिलता है तो आचार्य केशव में। इस प्रकार केशव जी का स्थान ऊंचा हो जाता है और वे सम्मान के पात्र हैं।

परन्तु केशव के बाद यह धारा न चल सकी और इनके पचास वर्ष बाद एक नया ढंग आया जो इनसे भिन्न था। इसका कहना था कि अलंकार ही काव्य की आत्मा है और कहा भी था—

जदपि सुजात सुलच्छनी, सुवरन सरस सुवृत्त।
भूषण बिनु न बिराजई, कविता, वनिता, मित्त॥

परन्तु रीतिकाल के अन्य ग्रंथकारों ने रस को काव्य की आत्मा माना। जहाँ केशव ने भामह, उद्भट, दण्डी का अनुसरण किया वहाँ रीतिकालीन परम्परा ने आनन्दवर्धन, मम्मट तथा विश्वनाथ जैसे आचार्यों का आधार लिया। केशव ने अलंकारों और अलंकार्य में भेद नहीं माना पर आगे आने वाले रीतिकारों ने इस भेद को माना। इस प्रकार केशव के अलंकार सम्बन्धी लक्षण भी मान्य न हो सके।

इस प्रकार केशव की कविता का निष्कर्ष देखते हैं। साथ ही साथ उनसे पहले तो भक्तिकाल पूर्ण रूपेण रहा है, अपनी शास्त्रीय पद्धति के कवि और आचार्य वे अकेले ही दिखाई पड़ते हैं क्योंकि उनकी पद्धति पुरानी थी तथा जो बाद के लोगों को मान्य न हो सकी और काव्य की आत्मा के बारे में जहाँ केशव अलंकारों का महत्त्व मानते थे वहां अन्य लोग रस का प्रतिपादन करते थे। इस प्रकार उन ग्रंथकारों में कोई भी आचार्य नहीं, यदि कहा जा सकता है तो उसमें केशव जी का ही स्थान है। क्योंकि उन्होंने ही पुरानी शास्त्रीय पद्धति को अपनाकर और आचार्य के रूप में कार्य किया तथा उनके द्वारा ही काव्य शास्त्र का निरूपण हुआ।

यदि रीति ग्रंथकारों में पहला स्थान मानें तो पहले हमें चिन्तामणि ही दिखाई देते हैं। जिन्होंने रीति ग्रंथों की रचना की तथा उसके बाद उसी प्रकार से बाकी रचनाएं हुईं। इसलिए इस बात का श्रेय चिन्तामणि को ही है।

रीतिकाल के सब ग्रंथकार जिन्होंने रीति काव्य लिखा, कवि ही रह गये। यदि हम आचार्य कहते हैं तो वे हैं 'श्री केशव' जिन्होंने अपने परिश्रम से हिन्दी साहित्य में रीति ग्रंथों का सूत्रपात किया।

आधुनिक काल

प्रश्न २६—हिन्दी गद्य के विकास में ईसाइयों ने किस प्रकार सहयोग किया और क्यों?

उत्तर—हिन्दी साहित्य में गद्य का विकास आधुनिक युग की देन है। हिन्दी साहित्य में गद्य का विकास सुष्ठु रूप से उन्नीसवीं शताब्दी से ही होता है। इस काल में प्रेस का आविर्भाव तथा यातायात के समुन्नत साधन एवं देश में शान्तिपूर्ण व्यवस्था गद्य के विकास में पूर्ण रूप से सहायक हुए। हिन्दी गद्य के विकास में जहाँ मुंशी सदासुखलाल, इंशाअल्ला खाँ, लल्लूलाल तथा

सदल मिश्र का महत्वपूर्ण स्थान है वहां ईसाई मिशनरियों का योग भी कोई कम न था। यूँ तो लल्लूलाल जी और सदल मिश्र ने भी सर जान गिलक्राइस्ट की प्रेरणा से ही हिन्दी गद्य में रचना लिखनी आरम्भ की थी फिर भी ईसाई मिशनरियों ने हिंदी भाषा को आधुनिक रूप देने में महत्वपूर्ण योग दिया।

सन् १७९९ ई० में कलकत्ते के समीप श्री रामपुर में विलियम केरे, मार्शमैन और वार्ड ने डैनिश मिशन की स्थापना की। उसी समय से ईसाई धर्म की पुस्तकों का भारतीय भाषाओं में अनुवाद होना आरम्भ हुआ। ईसाई मिशनरी भारत में ईसाई धर्म को फैलाना चाहते थे और इसी कारण से उन्होंने कटिवद्ध होकर बड़े ही शान्तिपूर्ण ढंग से भारत की नीच जातियों में ईसाई धर्म का प्रचार करना आरम्भ कर दिया। भारतीय नीच जातियाँ उच्च जातियों के अनुचित व्यवहार एवं दमन नीति से ऊबी हुई थीं। ईसाइयों ने इसे अपने लिए एक स्वर्ण अवसर समझा और उन्होने प्रेम और सद्भावना पूर्ण व्यवहार से निम्न श्रेणी की जातियों को ईसाई धर्म में सम्मिलित करने के लिए भरसक प्रयत्न किया। इस कार्य के लिए वह अत्यन्त आवश्यक था कि वे जन-साधारण की भाषा को अपनायें अतः उन्होंने खड़ी बोली गद्य को इसके लिए उपयुक्त समझा और इसके माध्यम से ईसाई धर्म का प्रचार किया।

बाइबिल का प्रथम अनुवाद विलियम केरे ने किया। वर्ड ने अपनी 'हिन्दूज' नामक पुस्तक में हिन्दू समाज के सभी पहलुओं पर समुचित प्रकाश डाला। मार्शमैन तो बहुत ही योग्य विद्वान् थे। उन्होंने ईसाई धर्म की अनेक पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद किया तथा साथ ही ज्ञान-विज्ञान की अनेक शाखाओं पर भी पुस्तके लिखते रहे।

ईसाइयों ने अपने धर्म के प्रसार एवं प्रचार के हेतु बड़ी लगन से कार्य किया। देश की विभिन्न भाषाओं का अध्ययन कर उनकी लिपियों के लिए टाइप ढलवाये, देश के विभिन्न भागो में स्कूल, कालेज, विश्वविद्यालय तथा अन्य लोकोपकारी संस्थाओं की स्थापना की। कार्य तो बड़ा उपकार का था, परन्तु धर्म-प्राण भारतीय जनता इनके सारे कार्य को संदेह की दृष्टि से देखती रही, परिणामस्वरूप भारत में नव-चेतना का प्रादुर्भाव हुआ और देश तथा समाज के प्रति एक सच्ची निष्ठा एवं कर्तव्य-परायणता की भावना का संचार हुआ। वास्तव मे इनका बड़ा भारी विरोध हुआ। सन् १८२८ ई० में कलकत्ते मे ब्रह्मसमाज की स्थापना हुई।

ईसाई मिशनरियों द्वारा संचालित स्कूल तथा कालिजों में बाइबिल का

पाठ अनिवार्य था। एक ओर तो अंग्रेजों का देशी राज्यों पर अनुचित अधिकार तथा दूसरी ओर ईसाई मिशनरियों का उत्साह सहित प्रचार भारतीयों के चित्त में सन्देह का कारण बने। अतः ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज तथा सनातन धर्म सभा ने धर्म प्रचार हेतु हिन्दी गद्य के विकास में महान् योग दिया। राजा लक्ष्मणसिंह ने हिन्दी भाषा की समृद्धि के लिए 'प्रजा हितैषी' पत्र निकाला। जिसमें कालीदास के "अभिज्ञान शाकुन्तलम्" तथा "रघुवंश" नामक मुख्य कृतियों का हिन्दी में अनुवाद किया गया। उधर पंजाब में नवीनचन्द्र राय और श्रद्धाराम फिल्लौरी ने हिन्दी प्रचार में बडा योग दिया। महर्षि स्वामी दयानन्द ने 'सत्यार्थ प्रकाश' आदि संस्कृतनिष्ठ ग्रंथों का प्रणयन किया। इस प्रकार ईसाइयों की धर्म-नीति के प्रतिक्रिया-स्वरूप भारत में हिन्दुओं ने भी हिन्दी भाषा के विकास में महान् योग दिया।

प्रश्न २७—खड़ी बोली हिन्दी गद्य का सूत्रपात कब हुआ। आधुनिक गद्य-शैली के निर्माण में फोर्ट विलियम कालेज से कहाँ तक सहायता मिली। यह कहना कहाँ तक उचित है कि मुसलमानों के द्वारा ही खड़ी बोली अस्तित्व में आई। युक्ति-युक्त उत्तर दीजिए।

उत्तर—सूत्रपात—आधुनिक काल में खड़ी बोली के जिस गद्य का विकास हुआ उसका सूत्रपात चौदहवी शताब्दी में ही हो चुका था। आरंभ में मुसलमान औलियाओं ने खड़ी बोली में गद्य लिखना प्रारम्भ किया। वे लोग इसे 'हिन्दवा' भाषा कहते थे। शाह बुरहानखान, शाह मीरान जी बीजापुरी तथा सैयद मुहम्मद गैसूदराज आदि ने चौदहवी शताब्दी में खड़ी बोली गद्य से मिलती-जुलती भाषा में लिखा। अकबर के दरबारी कवि गंग ने अपनी पुस्तक 'चन्द छन्द बरनन की महिमा' में खड़ी बोली गद्य का ही प्रयोग किया। इस प्रकार चौदहवीं शती से ही खड़ी बोली के गद्य का यत्र-तत्र व्यवहार होता रहा परन्तु इसका समुचित रूप से सुन्दर प्रयोग अठारहवीं शताब्दी में ही हुआ। संवत् १७९८ में रामप्रसाद निरंजनी ने 'भाषा योगवासिष्ठ' और संवत् १८१८ में पं० दौलतराम ने जैन 'पद्मपुराण' का भावानुवाद किया। इनमें भाषा की दृष्टि से 'भाषा योगवासिष्ठ' उत्कृष्ट है। परिमार्जित एवं शुद्ध खड़ी बोली के गद्य की दृष्टि से 'भाषा योगवासिष्ठ' को प्रथम गद्य ग्रंथ तथा इसके लेखक श्री रामप्रसाद निरंजनी को प्रथम गद्य लेखक मान सकते है।

फोर्ट विलियम कालेज की सहायता—इसके पश्चात् देश में कुछ काल तक अव्यवस्था एवं अशांति रही। जिससे हिन्दी गद्य का क्षेत्र प्रायः शून्य ही रहा।

सन् १८०० में अंग्रेजों ने इस देश की भाषाओं का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन किया। इस कालेज में हिन्दी-उर्दू के अध्यापक सर जान गिलक्राइस्ट ने हिन्दी और उर्दू में पुस्तकें लिखवाना आरम्भ किया। इस कार्य के लिए उन्होंने दो भाषा मुंशियों श्री लल्लूलाल और सदल मिश्र की नियुक्ति की। इन दोनों की सहायता से 'हिन्दी इंगलिश डिक्शनरी' की रचना की गई। लल्लूलाल ने भागवत कथा के आधार पर 'प्रेमसागर' नामक ग्रंथ का प्रणयन किया, जिसकी भाषा में व्रजभाषा का प्रभाव है। विदेशी भाषा का भी प्रभाव इन की भाषा में मिलता है। पं० सदल मिश्र ने 'नासिकेतोपाख्यान' नामक ग्रंथ में व्यवहारोपयोगी भाषा का प्रयोग किया है। इनकी भाषा में पूर्वीपन अधिक है। इस प्रकार फोर्ट विलियम कालेज की गतिविधियों से हिन्दी गद्य को पर्याप्त योग मिला। परन्तु यह समझ लेना नितान्त भूल होगी कि इस कालेज की नीति हिन्दी के अनुकूल थी। डॉ० लक्ष्मीसागर जी वार्ष्णेय फोर्ट विलियम कालेज की कार्यवाहियों के विवरण के अध्ययन से इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि कालेज की नीति हिन्दी के बहुत अनुकूल नहीं थी। सर जान गिलक्राइस्ट के पश्चात् प्राइस की इस कालेज में नियुक्ति हुई। यद्यपि उनकी नीति हिन्दी के अनुकूल थी, तथापि हिन्दी की उन्नति उनके कार्य-काल में भी भली-भाँति नही हो सकी। हिन्दी गद्य की वास्तविक उन्नति उन दिनों अपने भीतरी प्राण बल पर ही अधिक हुई। मुंशी सदासुख लाल जी नियाज ईस्ट इण्डिया कम्पनी में एक अच्छे पद पर कार्य कर रहे थे। ये उर्दू और फारसी के अच्छे लेखक और सुकवि थे। 'सुखसागर' नामक ग्रंथ की रचना इन्हीं के कर-कमलों द्वारा हुई। इनकी भाषा में सहज प्रवाह और स्वाभाविकता का समावेश है। मुंशी इन्शा अल्ला खाँ की भाषा में सहज प्रवाह नहीं, इन्होंने 'उदयभान चरित' या 'रानी केतकी की कहानी' लिखी। वे नितान्त सरल हिन्दी में ही लिखना अधिक पसन्द करते थे। किसी अन्य भाषा के प्रभाव को ग्रहण न करके संस्कृत मिश्रित हिन्दी से बचना चाहते थे। फिर भी उनकी इच्छा थी कि "जैसे भले लोग—अच्छे से अच्छे—आपस में बोलते-चालते हैं, ज्यों-का-त्यों उसी का डौल रहे, और छाँव किसी की न हो।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी गद्य के विकास में फोर्ट विलियम कालेज का ही हाथ नहीं था वरन् इसके बाहर भी खड़ी बोली गद्य का सुष्ठु रूप से प्रयोग किया जा रहा था।

मुसलमान का योग—खड़ी बोली के आविर्भाव में निस्सन्देह मुसलमान

लेखकों का हाथ माना जा सकता है। जैसा कि प्रारम्भ में ही चर्चा की जा चुकी है कि शुरू-शुरू में मुसलमान औलियाओं ने ही ऐसा गद्य लिखना प्रारम्भ किया था जिसमें खड़ी बोली का स्वरूप भली-भाँति दृष्टिगोचर होता है। ये मुसलमान लेखक इस भाषा को 'हिन्दवी' कहते थे। शाह मीरान जी बीजापुर, जिनकी मृत्यु सन् १३४३ ई० में कही जाती है, शाह बुरहान खान (मृत्यु सन् १३८२ ई०) और सैयद मुहम्मद गैसूदराज (१३९८ ई०) के लिखे पुराने गद्य प्राप्त हुए हैं। इस आधार पर यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि मुसलमान लेखकों द्वारा खड़ी बोली गद्य का सूत्रपात हुआ। यद्यपि लगभग उसी समय की 'चन्द छन्द वरनन की महिमा' आदि अन्य पुस्तकें भी उपलब्ध हुई हैं। मुसलमानों का गद्य अधिक उत्कृष्ट एवं सुगठित नहीं, फिर भी वह अपनी प्रारम्भिक अवस्था में पर्याप्त रूप से भावी भाषा के लिए मार्ग प्रशस्त करने में समर्थ है। यद्यपि खड़ी बोली गद्य की भाँति अठारवीं शताब्दी में ही अस्तित्व में आयी तथापि मुसलमान लेखकों द्वारा लिखा गया साहित्य इसके प्रादुर्भाव में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है, इसे कदापि भुलाया नहीं जा सकता।

प्रश्न २८—भारतेन्दु से पहले खड़ी बोली तथा उसके गद्य के विकास का संक्षिप्त परिचय देते हुए बताइये कि हिन्दी के परिमार्जित रूप का सूत्रपात कब हुआ तथा इसे राष्ट्रभाषा के पद पर पहुँचाने के लिए गत डेढ़ शती से किन-किन हिन्दी-सेवी महारथियों और संस्थाओं ने किस-किस रूप में योग दिया?

उत्तर—भारतेन्दु के आविर्भाव से कई शताब्दी पूर्व खड़ी बोली गद्य का सूत्रपात हो चुका था। सर्वप्रथम खड़ी बोली गद्य का स्वरूप मुसलमान औलियाओं की रचनाओं में तथा शाह मीरान जी बीजापुरी, शाह बुरहानखान तथा सैयद मुहम्मद गैसूदराज आदि की रचनाओं में प्राप्त होता है। अकबरी दरबार के सुप्रसिद्ध लेखक एवं कवि गंग द्वारा रचित 'चन्द छन्द वरनन की महिमा' नामक ग्रंथ में आधुनिक गद्य से मिलती-जुलती भाषा का गद्य प्राप्त होता है। सन् १७४१ ई० में पटियाला दरबार के कथावाचक श्री रामप्रसाद निरंजनी ने "भाषा योगवासिष्ठ' का प्रणयन किया। इस ग्रंथ की भाषा बहुत ही सुन्दर और परिमार्जित है। इसके २० वर्ष के पश्चात् सन् १७६१ में मध्य प्रदेश के निवासी पंडित दौलतराम ने रविषेणाचार्य के जैन पद्मपुराण का भाषानुवाद किया। इनकी भाषा रामप्रसाद निरंजनी की भाषा के समान सुन्दर, व्यवस्थित एवं परिमार्जित नहीं। अतः यह कहा जा सकता है कि परि-

मार्जित खड़ी बोली गद्य का प्रथम ग्रंथ 'भाषा योगवासिष्ठ' एवं प्रथम लेखक रामप्रसाद निरंजनी है। इस प्रकार हम परिमार्जित खड़ी बोली गद्य का विकास सन् १७४१ ई० से ही मानते है।

इसके पश्चात् इसके विकास में कलकत्ते के विलियम फोर्ट कालेज का भी महान् योग है। इसकी प्रेरणा से मुंशी लल्लूलाल जी तथा सदल मिश्र ने खड़ी बोली गद्य में कई ग्रथ लिखे तथा 'हिन्दी इंगलिश डिक्शनरी' के निर्माण में भी इन्होने पूर्ण सहायता की।

कालेज के बाहर मुंशी सदासुखलाल तथा इंशाअल्ला खां ने भी हिन्दी गद्य में रचनाएँ कीं। सदासुखलाल ने 'प्रेमसागर' तथा इंशा अल्ला खाँ ने 'रानी केतकी की कहानी' लिखी। इस प्रकार इन चारो लेखकों ने हिन्दी गद्य के विकास में पर्याप्त सहयोग दिया। इसके साथ ही ईसाई मिशनरियों ने भी अपने धर्म प्रचार हेतु खड़ी बोली गद्य का प्रयोग किया जिससे गद्य का स्वरूप पर्याप्त सुष्ठु बना। इन ईसाई मिशनरियों ने हिन्दू धर्म पर बड़ा ही कुठाराघात किया तथा हिन्दुओं के अन्धविश्वासों, कुरीतियों एवं कुप्रथाओं की कटु आलोचना की। परिणामस्वरूप हिन्दू जनता जहाँ इनके व्यवहार से क्षुब्ध हुई वहाँ उसने अपनी दुर्बलताओं को भी दूर करने का प्रयत्न किया। भारतीय जनता में नव चेतना का प्रादुर्भाव हुआ। कलकत्ता में ब्रह्म समाज, बम्बई-गुजरात में आर्यसमाज तथा पंजाब में आर्यसमाज तथा सनातन धर्म सभा की स्थापना हुई। इन संस्थाओं ने अपनी संस्कृति एवं धर्म प्रचार के लिये खड़ी बोली गद्य को अपना माध्यम बनाया। इस प्रकार खड़ी बोली गद्य की असाधारण उन्नति हुई।

यद्यपि सरकार की नीति हिन्दी के प्रतिकूल थी और अदालत तथा अन्यान्य शासन के क्षेत्रों में उसने इसकी प्रगति को रोका भी, फिर भी नवीन शिक्षा के पाठ्यक्रम में इसे स्थान मिला। ऐसे ही समय में राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द ने हिन्दी की रक्षा के लिए उसके 'आम फहम' और 'खास पसंद' शब्दों को स्थान दिया। उधर राजा लक्ष्मण सिंह ने इनकी फारसी से युक्त भाषा का विरोध किया तथा उर्दू और हिन्दी को अलग-अलग भाषा घोषित करके फारसी का विरोध किया। ये विशुद्ध हिन्दी के पक्षपाती थे। पंजाब में नवीनचन्द्र, पं० श्रद्धाराम फिल्लौरी तथा महर्षि दयानन्द ने हिन्दी के उत्कृष्ट रूप का प्रयोग किया।

इस प्रकार हिन्दी गद्य की उन्नति के लिए तथा इसे समर्थ एवं सशक्त

बनाने के लिये आर्यसमाज, ब्रह्मसमाज, सनातन धर्म सभा, विलियम फोर्ट कालेज, आगरा कालेज आगरा, कलकत्ता स्कूल बुक सोसायटी आदि संस्थाओं ने अपने-अपने रूप में खड़ी बोली गद्य को समुन्नत बनाने का भरसक प्रयत्न किया तथा लल्लूलाल, सदल मिश्र, सदासुखलाल तथा इंशा अल्लाखां, राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द, राजा लक्ष्मणसिंह, नवीनचन्द्र, स्वामी दयानन्द, श्रद्धाराम फिल्लौरी आदि व्यक्तियों ने हिन्दी गद्य को प्रौढ़ बनाने में महान् योग दिया।

भारतेन्दु काल में तो हिन्दी गद्य तथा पद्य दोनों ने ही सराहनीय उन्नति की। इस काल में अनेक नाटककार, उपन्यासकार तथा निबन्धकार हुए जिनके महान् प्रयासों से खड़ी बोली गद्य बहुत ही लोकप्रिय होता गया। उसके पश्चात् महावीरप्रसाद द्विवेदी ने अपना सारा जीवन खड़ी बोली को परिमार्जित एवं शुद्ध परिष्कृत करने में ही लगा दिया। उन्होंने 'सरस्वती' नामक पत्रिका का सम्पादन किया। इसमें भाषा सुधार सम्बन्धी अनेक आलोचनाएँ एवं निबन्ध प्रकाशित हुए। निस्संदेह द्विवेदी जी युग प्रवर्त्तक थे। उन्होंने अपने अतुल प्रयास से खड़ी बोली गद्य को इतना सुष्ठु बना दिया कि यह उनके समय में ही मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद आदि महाकवियों की कण्ठहार बनी। द्विवेदी जी ने न केवल भाषा का सुधार ही किया वरन् उन्होंने अनेक लेखक उत्पन्न किए। पाठकों की रुचि को बदला तथा तत्कालीन सभी लेखकों के लिये सुन्दर एवं भव्य मार्ग प्रशस्त किया जिस पर अग्रसर होते हुए हिन्दी खड़ी बोली राष्ट्रभाषा के पुनीत पद पर विराजमान हुई। निस्संदेह राष्ट्रभाषा पद पर सुशोभित करने का श्रेय महामनीषी आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी तथा उनके समकालीन अन्य हिन्दी लेखकों एवं कवियों को ही है। आगे चल कर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, मुन्शी प्रेमचन्द, बाबू श्यामसुन्दर दास, बाबू गुलाबराय, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ० नगेन्द्र, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी आदि ने हिन्दी भाषा को सप्राण बनाने में महान् योग दिया है जिससे हिन्दी भाषा दिन दूनी तथा रात चौगुनी उन्नति करती जा रही है।

प्रश्न २९—आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का संक्षिप्त जीवन वृत्त लिख कर उनकी साहित्य सेवाओं का परिचय दीजिए।

उत्तर—जिस व्यक्ति के सतत प्रयत्नों से हिन्दी भाषा एवं साहित्य ने प्रौढ़ावस्था प्राप्त की, उस महान् विभूति का उदय सन् १८६४ ई० में अवध प्रान्त के दौलतपुर नामक ग्राम में कान्यकुब्ज कुल में हुआ। इनके पितामह

संस्कृत के भारी विद्वान् थे पर असमय में देहावसान हो जाने से वे अपने पुत्रों को सुशिक्षित न बना सके। इस प्रकार द्विवेदी जी के पिताजी को फौज में नौकरी करनी पड़ी। परन्तु उन्होंने वहाँ से तंग आकर नौकरी को छोड़ दिया और बम्बई में वल्लभ के गोस्वामियों के यहाँ नौकर हो गए।

पिताजी की विपन्नावस्था के कारण उन्हें शिक्षा ग्रहण करने के लिए अनेक कष्ट उठाने पड़े। 'शीघ्र बोध', 'दुर्गा सप्तशती' और 'अमर कोष' आदि ग्रंथों को तो उन्होंने घर पर ही पढ़ लिया था। गाँव के स्कूल में गणित तथा उर्दू-हिन्दी का अध्ययन किया। इसके पश्चात् अंग्रेजी भाषा पढ़ने के लिए इन्हें कई स्कूलों में भटकना पड़ा असुविधाओं के कारण व्यवस्थित रूप से वह कहीं भी नहीं पढ़ सके। इसके बाद वे अपने पिताजी के साथ चले गये और वहाँ पर अंग्रेजी, मराठी, गुजराती और कुछ तारवर्की का काम सीखते रहे। कुशाग्र बुद्धि होने के कारण शीघ्र ही इन भाषाओं के अच्छे जानकार बन गए। कुछ दिनों के बाद इन्हें जी. आई. पी. रेलवे में २२) मासिक पर तार बाबू की नौकरी मिल गई। हरदा, खंडवा, होशंगाबाद और इटारसी में क्रमशः इनकी पदोन्नति होती रही। प्रवीणता के कारण तत्कालीन आई. एम. आर. के ट्रैफिक मैनेजर श्री डब्ल्यु० बी० राइट ने उन्हें टेलीग्राफ इन्सपेक्टर बना कर झाँसी भेज दिया। यहाँ इन्होंने बंगालियों के साथ रहते हुए बंगला भाषा को सीखा। इस प्रकार वे कई भाषाओं के ज्ञाता हो गये।

द्विवेदी जी बाल्यकाल से ही अध्ययनशील थे। धीरे-धीरे उनका अध्ययन गम्भीर होता गया। हिन्दी तथा संस्कृत में कविताएँ लिखने लगे जो कि ससम्मान 'श्री वेंकटेश्वर-समाचार', 'भारत मित्र', 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका', 'हिन्दोस्तान' और 'संस्कृत चन्द्रिका' में स्थान पाने लगीं।

सन् १८९६ में 'श्री वेंकटेश्वर-समाचार' में उनका प्रथम गद्य लेख प्रकाशित हुआ। उन्होंने उसी समय 'बेकन विचार रत्नावली', 'भामिनीविलास का भाषानुवाद' आदि पुस्तकें लिखीं, 'हिन्दी कालिदास' और 'नैषध चरित्र चर्चा' से उनकी समालोचक के रूप में ख्याति हुई। इस समय तक रेलवे में भी उन्नति करते हुए उन्हें १५०) रुपये मासिक मिलने लगे।

सन् १९०४ में वे 'सरस्वती' पत्रिका के सम्पादक नियुक्त हुए और बड़े ही कठिन परिश्रम से उसका सम्पादन करने लगे। इन्हीं दिनों एक ऐसी घटना हुई जिसने द्विवेदी जी को पूर्णतया साहित्य क्षेत्र में अवतरित कर दिया उनकी अपने साहब से कहा-सुनी हो गई। स्वाभिमानी होने के कारण रेलवे की

१५०) की नौकरी पर लात मार दी। कानपुर के पास जुही में रहने लगे और वहीं से 'सरस्वती' का सम्पादन करने लगे।

'सरस्वती' का सम्पादन करते हुए द्विवेदी जी ने जो साहित्य साधना की वह नितान्त अप्रतिम एवं प्रशंसनीय है। उन्होंने साहित्य एवं भाषा को नया मोड़ दिया। यद्यपि स्थायी साहित्य की दृष्टि से उनका कार्य इतने महान का नहीं जितना भाषा एवं साहित्य में स्थायित्व प्रदान करने का। उन्होंने खड़ी बोली का परिष्कार किया, इसे व्याकरण-बद्ध बनाया, गद्य तथा पद्य दोनों में प्रयुक्त होने के उपयुक्त बनाया तथा अनेक प्रतिभाशाली लेखकों एवं कवियों का निर्माण किया। पाठकों की अभिरुचि को परिवर्तित किया। योग साहित्यिकों को प्रोत्साहन दिया तथा साहित्य क्षेत्र में फैली हुई धाँधले-बाज़ी को समाप्त किया।

उन्होंने 'सरस्वती' के माध्यम से अनेक मुखी साहित्य की सृष्टि की, जिसमें समालोचनात्मक निबन्धों एवं लेखकों का विशेष महत्व है। ज्ञान-विज्ञान से भरे हुए निबन्धों सरस्वतीके पाठकों की अभिरुचि का भी पूर्ण ध्यान दिया जाता था। द्विदेदी जी के निबन्धों को मुख्यतया पाँच भागों में विभक्त किया जाता है—साहित्यिक, जीवनियाँ, आविष्कार और विज्ञान सम्बन्धी, पुरातत्व और इतिहास सम्बन्धी, आश्चर्यजनक और कौतूहल-वर्द्धक। द्विवेदीजी के साहित्यिक निबन्ध ५० के ऊपर हैं जिनमें व्याकरण, साहित्य शास्त्र, आलोचनात्मक परिचय, भाषा संशोधन आदि विषयों का समावेश है। जीवनियों में अनेक लेखकों, कवियों, राजा-महाराजाओं और महापुरुषों के संक्षिप्त जीवन का समावेश है।

द्विवेदी जी की साहित्यिक साधना महान थी। श्री शिवपूजन सहाय और पं० यज्ञदत्त जी शुक्ल ने स्थूल रूप से इनके कार्य का अनुमान लगाया है कि उन्होंने लगभग २५ वर्ष के अन्दर लगभग २५ हजार पृष्ठ लिखे हैं। उनकी पुस्तकों की सूची इस प्रकार है—

पद्य—विनय-विनोद, विहार वाटिका, स्नेह माला, ऋतु तरंगिणी, गंगा लहरी, देवी स्तुति शतक, महिम्न-स्तोत्र, कुमार सम्भव सार, काव्य मंजूषा, कविता कलाप, सुमन, अमृत लहरी इत्यादि।

गद्य—बेकन विचार रत्नावली, भागिनी विलास, नैषध चरित चर्चा, हिंदी कालिदास की समालोचना, वैज्ञानिक कोष, नाट्य शास्त्र, जल चिकित्सा, स्वाधीनता आदि लगभग ६० पुस्तकें हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि द्विवेदी जी की साहित्यिक साधना महानतम थी। उन्ही के सतत प्रयत्न से अनेक सुधी कवि एवं लेखकों का आविर्भाव हुआ। खड़ी बोली गद्य एवं पद्य में प्रौढ़ावस्था को प्राप्त हुई और उन्ही के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप हिन्दी राष्ट्रभाषा का पद प्राप्त कर शोभायमान हुई।

प्रश्न ३०—आधुनिक हिन्दी साहित्य में भाषा के दृष्टिकोण से नवीन युग लाने का श्रेय किन कवियों को प्राप्त है ? उनका तथा उनकी रचनाओं का सयुक्तिक परिचय दीजिये।

उत्तर—आधुनिक हिन्दी साहित्य में भाषा के दृष्टिकोण से जितना कार्य आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने किया है, उतना अन्य किसी भी व्यक्ति ने नही। खडी बोली गद्य का परिष्कार करके उन्होने उसे गद्य तथा पद्य दोनों के योग्य बनाकर उसे राष्ट्रभाषा के पद पर सुशोभित किया। इन्हीं का प्रभाव ग्रहण करके हिन्दी साहित्य में अन्य अनेक कवि खड़ी बोली को सुन्दर रूप में कविता क्षेत्र में प्रयुक्त करने लगे। जिनमें श्रीधर पाठक, अयोध्यासिंह उपाध्याय, नाथूराम शंकर, पं० रामचन्द्र शुक्ल, मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, जयशंकर प्रसाद, माखनलाल चतुर्वेदी, सुमित्रानन्दन पंत, महादेवी वर्मा और सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला आदि ऐसे कवि है जिनकी महान साधना का बल पाकर खड़ी बोली दिन प्रतिदिन सशक्त, समर्थ और ओजपूर्ण होती चली गई। भव्यता एवं नव्यता के साथ-साथ भाषा अत्यधिक समृद्धशालिनी होती चली गई।

उपर्युक्त सभी कवियों में भी अधिक भव्यता प्रदान करने वाले मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला एवं महादेवी वर्मा है जिन्होंने अत्यंत विपुल साहित्य की सृष्टि कर इसे अत्यंत समृद्धिशाली बना दिया। अब हम इन सबका संक्षिप्त परिचय देते हैं।

मैथिलीशरण गुप्त ने सर्वप्रथम खड़ी बोली में कविता लिखना आरम्भ किया। उनकी सफल लेखनी ने भारत-भारती, जयद्रथ वध, साकेत, यशोधरा, पंचवटी आदि सुन्दर एवं उत्कृष्ट काव्यों को जन्म दिया। उनके काव्य शुरू से अंत तक प्रेरणा देने वाले काव्य है। उन्होंने अपने काव्यों में सम्पूर्ण भारतीय पारिवारिक वातावरण में उदात्त चरित्रों का निर्माण किया है। खड़ी बोली का इन्होने साधिकार प्रयोग किया है जिसमें 'अनेक छन्दों तथा स्वाभाविक अलकारों का प्रयोग किया है तथा भाषा को सुव्यवस्थित एवं सुनियंत्रित रखने

का प्रयास किया गया है ।

जयशंकरप्रसाद तो सर्वतोमुखी प्रतिभा सम्पन्न थे । उन्होंने नाटक, काव्य, उपन्यास, कहानी, निबंध आदि लिखकर हिन्दी साहित्य को जो गौरवान्वित किया और भाषा का सुन्दर, प्रौढ़ एवं मोहक रूप जो प्रयुक्त किया उससे हिंदी साहित्य चमत्कृत हो उठा । उन्होंने उर्वशी, प्रेमराज्य, छाया, कानन कुसुम, प्रेम पथिक, महाराणा का महत्व, चित्राधार, प्रतिध्वनि, आंसू, झरना, लहर, कामायनी आदि काव्य लिखकर हिन्दी साहित्य को अमूल्य निधि प्रदान की है, कामायनी तो एक उच्चकोटि का महाकाव्य है, जो उनके गहन, चिंतन, मनन और अनुभूति का फल है । उनमें विचारों की स्पष्टता और भावों का सलज्ज प्रकाशन बिना किसी संकोच के हुआ है । कामायनी में कवि अपने भावावेगों पर कम से कम पर्दा डालता है ।

सुमित्रानन्दन पंत सच्चे अर्थों में एक छायावादी कवि हैं । उनकी भाषा में नए-नए प्रतीकों, अलंकारों एवं सुन्दर अनुप्रासों का प्रयोग हुआ है । 'उच्छ्वास' पल्लव, वीणा, ग्रंथि, गुंजन, युगान्त, युगवाणी, ग्राम्या, स्वर्ण किरण आदि उच्चकोटि के काव्यों का सर्जन कर हिन्दी साहित्य को गौरवान्वित किया हैं । उसका दृष्टिकोण सांस्कृतिक सामूहिक उत्थान कार रहा है । वे क्रमशः छायावादी, समाजवादी और अध्यात्मवादी कवि हैं । इनके काव्यों में सुकुमार भावनाओं का प्रकाशन एवं कोमल कान्त पदावली का प्रयोग है ।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' आरम्भ से ही विद्रोही रूप में हिन्दी साहित्य में अवतरित हुए हैं । अनामिका, परिमल, गीतिका, अपरा आदि उनके मुख्य काव्य हैं । गतानुगतिका के प्रति तीव्र विद्रोह उनकी कविताओं में आरम्भ से अन्त तक बना रहा । व्यंग्य और कटाक्ष का सबल प्रयोग इनके काव्य की प्रमुख विशेषता है । भाषा पर इनका पूर्ण अधिकार है ।

इनके अतिरिक्त महादेवी वर्मा, रामधारीसिंह दिनकर, बालकृष्ण शर्मा नवीन, सियाराम शरण गुप्त, गुरु भक्तसिंह भक्त आदि अन्य महान् विभूतियाँ हैं जो हिन्दी भाषा में नया मोड लाकर उसको सदैव समर्थ एवं समृद्धशाली बनाने का अथक प्रयत्न करते हैं ।

प्रश्न ३१—हिन्दी-साहित्य में समालोचना की प्रगति दिखाते हुए, यह बताइए कि आप किसको सर्वश्रेष्ठ समालोचक मानते हैं । अपने उत्तर की सप्रमाण पुष्टि कीजिये ।

उत्तर—यों तो साहित्य शास्त्र उतना ही प्राचीन है जितनी साहित्यिक

रचना। परन्तु हिन्दी आलोचना का जो विकास आधुनिक काल में हुआ है इसमें प्राचीन भारतीय आलोचना की परम्परा के साथ ही पाश्चात्य आलोचना का भी पर्याप्त प्रभाव है। 'सूर-सूर तुलसी ससी, उडुगन केशवदास' की भांति कवि प्रशस्ति एवं गुणों के एक ही छन्द में वर्णन की पद्धति मध्य युग से चली आ रही है।

भारतेन्दु युग में प्रेस का आविर्भाव हो चुका था। उस काल में जितनी भी पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होती थीं, सभी में कवियों के गुण-दोष संबंधी आलोचनात्मक लेखों का संयोजन होता था। पं० बद्रीनारायण चौधरी ने 'आनन्द-कादम्बिनी' में लाला श्रीनिवासदास के 'संयोगिता स्वयंवर' की विस्तृत आलोचना की। इस काल में पुस्तक रूप में कोई आलोचना नहीं की गई।

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' नामक पत्रिका का संपादन किया। इस पत्रिका में इन्होंने अनेक आलोचनात्मक लेख लिखे और कवियों के गुण-दोषों की विशद विवेचना की। इन्होंने 'हिन्दी कालीदास की आलोचना' पुस्तक रूप में की। इन्होंने भाषा परिमार्जन का एक महत्त्वपूर्ण कार्य किया तथा नव युग की नई भावनाओं से साहित्यिकों तथा पाठकों को अनुप्राणित किया। उन्होंने निर्णयात्मक तथा व्याख्यात्मक शैली में अधिकतर अपनी आलोचना की। इन्होंने तुलनात्मक पद्धति का अनुसरण किया परन्तु इसका सुष्ठु रूप में मिश्र बन्धुओं ने देव और बिहारी के ऊँच-नीच के जिस विवाद का श्रीगणेश किया उससे आलोचना साहित्य बहुत समृद्ध हुआ।

आधुनिक युग की समीक्षा के प्रधान लक्ष्य को प्रकाश में लाने वाले पं० रामचन्द्र शुक्ल हैं। इन्होंने रस और अलंकार शास्त्र को नई मनोवैज्ञानिक दीप्ति प्रदान की और उन्हें ऊंची मानसिक भूमि पर प्रतिष्ठित किया। उन्होंने उच्चतर जीवन सौन्दर्य का पर्याय बना कर रस और अलंकार पद्धति का व्यवहार किया। प्रयोगात्मक आलोचना के लिए सूर, तुलसी और जायसी जैसे उच्चतर कवियों को चुना और ऊँचे काव्य सौन्दर्य के साथ रस और अलंकार का विन्यास करके रस पद्धति को अपूर्व गौरव प्रदान किया। शुक्ल जी ने आलोचना साहित्य की बहुमुखी अभिवृद्धि को, उसे दिशा दी। उसमें आधुनिकता का समावेश कराया। उनके समीक्षादर्शो को कुछ परिष्कार के साथ अपनाने वाले बहुत से समालोचक हुए हैं।

शुक्ल जी की रसवाद की भूमिका पर चलने वाली व्यावहारिक समीक्षा पद्धति को अपनाने वाले दो प्रमुख आलोचक कृष्णशंकर शुक्ल और पं० विश्व-

नाथ प्रसाद मिश्र हैं। इनके पश्चात् डॉ० रामकुमार वर्मा, हजारी प्रसाद द्विवेदी, नन्ददुलारे वाजपेयी आदि ने इसकी समीक्षा पद्धति का प्रभाव ग्रहण किया है।

आज की समीक्षा पद्धति अनेक रूपों को ग्रहण कर अग्रसर हो रही है। मुख्य रूप से आज की समीक्षा पद्धति चार प्रकार की है—परम्परावादी, स्वच्छन्तावादी या सौन्दर्यवादी, अन्तर्वादी अथवा मनोविश्लेषणात्मक और समाजवादी अथवा प्रगतिवादी।

परम्परावादी आलोचना के प्रमुख आलोचक पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र व बाबू गुलाबराय प्रभृति विद्वान् हैं। सौन्दर्यवादी आलोचना का सूत्रपात जयशंकर प्रसाद ने किया। पं० नन्ददुलारे वाजपेयी का इस पद्धति में महत्त्वपूर्ण स्थान है। अंतर्वादी अथवा मनोविश्लेषणात्मक समीक्षा पद्धति के प्रतिनिधि आलोचकों में डॉ० नगेन्द्र तथा इलाचन्द्र जोशी का नाम उल्लेखनीय है प्रगतिवादी समीक्षा पद्धति पूर्णरूप से मार्क्सवादी है। इसको संयत पदावली में समाजवादी यथार्थवाद कह सकते हैं। डॉ० रामविलास शर्मा, शिवदानसिंह चौहान, प्रकाशचन्द्र गुप्त, डॉ० रागेय रांघव इस धारा के प्रतिनिधि आलोचक हैं।

हमारी दृष्टि में हिन्दी आलोचना साहित्य के सर्वश्रेष्ठ समालोचक आचार्यप्रवर पं० रामचंद्र शुक्ल हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में, "आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी के गौरव थे। समीक्षा क्षेत्र में उनका कोई प्रतिद्वन्द्वी न उनके जीवन काल में था, न अब (उनके स्वर्गवास के अनन्तर) कोई उनके समकक्ष आलोचक है।" डॉ० विजयेन्द्र स्नातक के शब्दों में—"यथार्थ में शुक्ल जी प्रवृत्ति, परिचय और विश्लेषण में आज भी सानी नहीं रखते" शुक्ल जी की समीक्षा पद्धति की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी लिखते हैं—"शुक्ल जी की सबसे बड़ी विशेषता है समीक्षा के सब अंगों का समान रूप से विन्यास। अन्य प्रान्तीय भाषाओं में समीक्षा के किसी एक अंग को लेकर शुक्ल जी से टक्कर लेने वाले अथवा उनसे विशेषता रखने वाले समीक्षक मिल सकते हैं पर सब अंगों का समान विकास उनका सा कोई कर सका है, मैं नहीं जानता।"

निस्संदेह आचार्य रामचन्द्र शुक्ल युग प्रवर्तक थे और साहित्य के अत्यन्त कुशल निर्माता थे। आज सभी आलोचना पद्धतियां उनसे किसी न किसी रूप में अवश्य प्रभावित हैं। अधिकतर समालोचक तो उन्हीं के पदचिन्हों पर

अग्रसर हो रहे हैं। वे अपने थोड़े समय में, अत्यन्त कठिन परिस्थिति में अनेक असुविधाओं के होते भी जितना अधिक प्रौढ़, शक्तिसम्पन्न समीक्षात्मक कार्य कर पाए है, उतना शान्ति एवं सुविधाजनक वातावरण में भी आज के विद्वान् कार्य नहीं कर सके हैं। अतः यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ आलोचक हैं।

प्रश्न ३—कविता जगत में छायावाद से क्या अभिप्रेत है? उनका आरम्भ कब से माना जाता है? प्रमुख छायावादी कवियों का परिचयात्मक विवेचन कीजिये।

उत्तर—द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता, स्थूल दृष्टि एवं साहित्यिक मान रूढ़िग्रस्त हो जाने पर नवीन सूक्ष्म सौन्दर्यदर्शिनी दृष्टि का विकास हुआ। इन विशेषताओं को लक्ष्य कर कुछ आलोचकों ने निम्न प्रकार से छायावाद की परिभाषा करने का प्रयास किया।

"छायावाद भारतीय सांस्कृतिक चेतना का फल है जो युगानुरूपिणी है और अपनी अभिव्यक्ति में भी नवीनता रखती है। इसमें एक स्वतन्त्र मानवीय और सांस्कृतिक प्रेरणा से उद्भूत आध्यात्मिकता की भावना है।"

—आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी।

"बदलते हुए जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति विशाल साँस्कृतिक चेतना एवं आध्यात्मिकता की झलक को नवीन शैली में व्यक्त करने वाली कविता ही छायावाद है।" —आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी।

"छायावाद एक शाश्वत सौन्दर्य की प्रवृत्ति है जो युगानुरूप भाषा शैली एवं विचारधारा को लेकर प्रकट हुई है। यह भारतीय परम्परा में उद्भूत हुई है।" —जयशंकर प्रसाद

इस प्रकार हम देखते हैं कि छायावाद एक नवीन साँस्कृतिक भावना का प्रतिफलन है जो कि एक नवीन भाषा शैली में व्यक्त हुआ है।

प्रमुख कवि—छायावाद युग में अनेक प्राणवन्त कवियों का आविर्भाव हुआ जिनमें आगे चल कर जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पन्त, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' और महादेवी वर्मा अत्यधिक ख्याति-प्राप्त हुए। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में—'चारों की कविताओं में चित्तगत उन्मुक्तता वर्तमान है, चारों में वैयक्तिक आवेगों की आयासहीन अभिव्यक्ति है, चारों की कविताओं में कल्पना के अविरल प्रवाह से घन संश्लिष्ट आवेगों की उमड़ती हुई भावधारा का प्राबल्य है। चारों ही मूलतः छायावादी है। फिर भी

चारों की प्रकृति में भेद है ।"

जयशंकर प्रसाद—इन कवियों में श्री जयशंकर प्रसाद साहित्य-क्षेत्र में सबसे पहले अवतरित हुए । उनकी आरम्भिक रचनाओं में अतीत के प्रति मोहकता एवं मादकता से भरी हुई आसक्ति मिलती है । उनकी कविताओं में जो 'आंसू' से पूर्व तक लिखी हैं, एक प्रकार की झिझक एवं संकोच का भाव अन्तर्निहित है । उन्हें भय है कि पाठक उनके भावों को हृदयंगम कर भी सकेंगे अथवा नहीं ।

आरम्भ से ही भावों की ससज्ज, सलज्ज संस्थापना में प्रसाद का सचेत व्यक्तित्व प्रकट हुआ है, उसमें धीरे-धीरे आगे बढ़ने का भाव अन्तस्स्यूत है । 'झरना' तक की रचनाओं में यही सलज्ज भाव रहता है । प्रसाद ने प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ-साथ मान सौन्दर्य को पूर्ण रूप से उपभोग्य बनाने का प्रयत्न किया है । 'कामायनी' में आरम्भ का दबा हुआ सलज्ज भाव विभिन्न सर्गो में स्पष्ट और प्रौढ़ अभिव्यक्ति पाता है । प्रसाद के समान सौन्दर्य के प्रेमी कवि बहुत ही विरले हैं और पार्थिव सौन्दर्य को स्वर्गीय महिमा से मण्डित करके प्रकट करने का सामर्थ्य तो इतना और किसी में है ही नहीं ।

सुमित्रानन्दन पन्त—पन्त जी की प्रारम्भिक रचनायें सच्चे अर्थों में छायावादी हैं । इनका प्रथम काव्य संग्रह 'पल्लव' बिल्कुल नवीन गुणों को लेकर हिन्दी साहित्य जगत में आया । इस पुस्तक में प्रकृति और मानव के सौन्दर्य के प्रति आदिम मनोभाव के से औत्सुक्य आश्चर्य और कौतूहल के भाव हैं । इस संग्रह की कविताओं के साथ-साथ इसकी भूमिका का भी विशेष महत्व है जिसमें पन्त जी ने छायावादी कविता के लिये मार्ग प्रशस्त किया है ।

पन्त जी बराबर आगे बढ़ते रहे है । उनका दृष्टिकोण साँस्कृतिक सामूहिक उत्थान का रहा है । उनका विकास क्रमशः, छायावादी, समाजवादी और अध्यात्मवादी रूप में हुआ है । ग्राम्या में वे समाजवादी विचारधारा को ले कर अग्रसर हुये हैं । उनके मत में समाजवाद कोई राजनीतिक मत नही वरन साँस्कृतिक अभ्युत्थान का साधन मात्र है उन्होने कहा है—

> "राजनीति का प्रश्न नहीं रे आ जगत के सम्मुख—
> एक बृहत् सांस्कृतिक समस्या जग के निकट उपस्थित ।"

इस दूसरे उत्थान में भी पन्त जी ने कोमल भावनाओं से मुख नही मोड़ा । इसके पश्चात कवि अरविन्द के आध्यात्मिक तत्त्व दर्शन से प्रभावित हुआ ।

और उनकी कविताओं में अध्यात्मवाद सप्राण हो उठा।

तीनों ही अवस्थाओं में पन्त जी व्यक्ति प्रधान हैं। समाजवाद से प्रभावित होने पर भी वे अपने आप को अलग ही समझते रहे।

प्रश्न ३३—अंग्रेजी भाषा और साहित्य का हिन्दी साहित्य पर क्या प्रभाव दिखाई देता है ? आप इस प्रभाव को कहां तक हितकर अथवा अहित-कर मानते हैं और क्यों ?

उत्तर—सन १८३५ ई० में सरकार ने अंग्रेजी भाषा के माध्यम से नये ढंग की शिक्षा देने का आयोजन किया और सन १८४४ में लार्ड हार्डिग ने यह घोषणा की कि सरकारी नौकरियों के योग्य वही व्यक्ति समझे जायेंगे जिन्होंने अंग्रेजी शिक्षा ग्रहण की होगी। अतः समस्त देश में अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार एवं प्रसार तीव्रगति से होने लगा। परिणामस्वरूप अंग्रेजी साहित्य का अध्ययन होने लगा। अंग्रेजी साहित्य का बंगला साहित्य पर प्रभाव पहले पड़ा। प्रसिद्ध साहित्यकार श्री बंकिमचन्द्र जी तथा रवीन्द्रनाथ टैगोर आदि पर अंग्रेजी भाषा एवं साहित्य का प्रभाव पड़ा तथा उन दोनों ही महानुभावों का प्रभाव हिन्दी साहित्य पर स्पष्ट रूप से अंकित है। इस प्रकार हिन्दी-साहित्य पर अंग्रेजी का सीधा प्रभाव न पड़कर बंगला भाषा के माध्यम से पड़ा। परन्तु बाद में सीधे रूप में भी इसका प्रभाव स्पष्टतः लक्षित होता है। भारतेन्दु काल से ही हिन्दी-साहित्य पर अंग्रेजी साहित्य का प्रभाव पड़ना आरम्भ हो गया था। द्विवेदी काल में यह प्रभाव भी अधिक हो गया था। अंग्रेजी कविताओं, नाटकों तथा उपन्यासों में हिन्दी का अनुवाद किया गया। महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा सम्पादित 'सरस्वती' में अनेक अंग्रेजी कविताओं का हिन्दी में अनुवाद किया गया। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इस प्रवृत्ति को प्रोत्साहन दिया। श्रीधर पाठक ने गोल्डस्मिथ के 'हरमिट' का 'एकांत वासी योगी' ट्रैवलर का 'श्रांत पथिक', 'डैजर्टेड विलेज' का 'ऊजड़ ग्राम' में पद्यानुवाद किया। इसी प्रकार वायरन की 'फेयर दि वैल' का गौरी दत्त वाजपेयी ने 'आशीर्वाद' जेम्स टेलर की 'माई मदर' का जैनेन्द्र किशोर ने 'मेरी मैया' के रूप में अनुवाद किया। इसी प्रकार अनेक कविताओं का अनु-वाद होता रहा।

ज्यों-ज्यों अंग्रेजों तथा भारतीयों का सम्पर्क बढ़ता गया, त्यों-त्यों यह प्रभाव अधिक होता चला गया। यह प्रभाव भावपक्ष और कलापक्ष दोनों पर ही पड़ा। भावपक्ष की दृष्टि से यह प्रभाव मुख्य रूप से गद्य क्षेत्र में दृष्टि-

गोचर होता है। गद्य के विविध रूपों का जैसा पाश्चात्य साहित्य में विविध-मुखी विकास हुआ है, उस प्रकार से हिन्दी साहित्य ने भी इसका अनुकरण किया है। नाटक, उपन्यास, कहानी, निबन्ध, समालोचना आदि सभी गद्यांगों पर इसका प्रभाव स्पष्ट रूप से लक्षित होता है। काव्य में मुख्य रूप से रहस्य-वाद और छायावाद पर इसका प्रभाव पड़ा। काव्य के रूप और शैली पर भी अंग्रेजी प्रभाव बड़ा व्यापक पड़ा है। हिन्दी के काव्य रूप में सबसे महत्व-पूर्ण परिवर्तन अतुकांत छन्द का है। अंग्रेजी 'सानेट' का रूप भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग और छायावाद युग में स्पष्ट ही परिलक्षित होता है। प्रयोगवाद युग और प्रयोगशील कविता में तो पाश्चात्य काव्य शैलियों को लक्ष्य करके नवीन-नवीन प्रयोग हो रहे हैं। हिन्दी-साहित्य के आधुनिक काल के विविध वादों—छायावाद, रहस्यवाद, अभिव्यंजना वाद, स्वच्छन्दतावाद, पलायनवाद प्रतीकवाद और प्रयोगवाद इत्यादि—पर आँग्ल प्रभाव स्पष्ट ही है।

इस प्रभाव को हम अधिकतर हित की दृष्टि से ही देखते हैं। आंग्ल प्रभाव को ग्रहण कर रूढ़िवाद से युक्त होकर हिन्दी-साहित्य प्रगति पथ पर अग्रसर हुआ। इसमें नवीन दृष्टिकोण का प्राचुर्य हुआ, नव चेतना और नव-ज्योत्स्ना के प्रकाश से हिन्दी-साहित्य देदीप्यमान हो उठा मानवतावादी दृष्टि-कोण होने से हिन्दी-साहित्य जन गणना का कंठहार बन गया। भाव तथा कलापक्ष दोनों में ही हिन्दी साहित्य ने महान उन्नति की है। मानव एवं प्राकृ-तिक सौन्दर्य का नया रूप उदघाटित हुआ। देश प्रेम तथा राष्ट्र-प्रेम की भावना सर्वत्र व्याप्त हुई सामाजिक दृष्टि से भी जनता की संकुचित एवं रूढ़ि ग्रस्त भावनाओं का निराकरण हुआ।

मुख्य विशेषता यह है कि मनोविज्ञान को हिन्दी-साहित्य में प्रश्रय मिला, जिसके कारण मानव की सूक्ष्मातिसूक्ष्म अन्तर्वृत्तियों का भी विश्लेषण काव्य के माध्यम से होने लगा। वैयक्तिकता तथा आत्माभिव्यंजना को साहित्य में स्थान मिला जिसके कारण गीतिकाव्य का पूर्ण रूप से विकास हुआ।

इतना होते हुए भी हम यह नहीं मान सकते कि हिन्दी साहित्य की सर्वतोमुखी उन्नति अंग्रेजी भाषा तथा साहित्य के प्रभाव का ही परिणाम है, हिन्दी-साहित्य की आत्मा भारतीय है और वह आज भारतीय तथा, पाश्चात्य दोनों शैलियों का समन्वित रूप लेकर ही अग्रसर हो रहा है। इस प्रकार उसने जो कुछ भी अंग्रेजी साहित्य में ग्रहण किया यह लाभ की दृष्टि से ही किया, अहित की सम्भावना उसमें लेशमात्र भी नहीं।

परिशिष्ट

प्रश्न—निम्नलिखित में से किसी एक की भाषा शैली का विवेचन कीजिए—कबीर, मलिक मुहम्मद जायसी, सूरदास, गोस्वामी तुलसीदास, भूषण, बिहारी, श्री मैथिलीशरण गुप्त, श्री सुमित्रानन्दन 'पंत'।

कबीर

ज्ञानमार्गी शाखा के प्रमुख कवि कबीर भाषा को प्रायः सधुक्कड़ी या खिचड़ी भाषा कहा जाता है। वास्तव में कबीर की सर्वग्राही प्रतिभा ने किसी एक प्रकार की भाषा के बन्धन में अपने को बाँधना उचित नहीं समझा। कहीं पूर्वी का ठाठ है तो कहीं खड़ी बोली का कहीं ब्रजभाषा है तो कहीं राजस्थानी, कहीं पंजाबी है तो कहीं अरबी फारसी के शब्दों का मिश्रण।

यद्यपि कबीर अपनी भाषा को परिमार्जित करने तथा शुद्ध साहित्यिक रूप देने के लिये कभी सचेष्ट नहीं थे, परन्तु उनके कुछ हृदयोदगार ऐसे पदों में व्यक्त हो गये हैं, जिनमें भाव-सौन्दर्य और भाषा लालित्य दोनों का अपूर्व समन्वय हो गया है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में—"भाषा पर कबीर का जबर्दस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे। जिस बात को जिस रूप में प्रकट करना चाहा है, उसे उसी रूप में भाषा से कहला लिया है। भाषा कुछ कबीर के सामने लाचार-सी नजर सी आती है। इसमें मानो इतना साहस नहीं कि इस लापरवाह फक्कड़ की किसी फरमाइस को मना कर सके और अकथ कहानी को रूप देकर मनोग्राही बना देने की तो जैसी शक्ति कबीर की भाषा में है, वैसी बहुत कम लेखकों में पाई जाती है। व्यंग्य करने और चुटकी लेने में कबीर अपना प्रतिद्वंद्वी नहीं रखते। अत्यन्त सीधी भाषा में वे इतनी गहरी चोट करते हैं कि देखते ही बनता है।"

कबीर की छंद योजना उक्ति-वैचित्र्य और अलंकार-विधान पूर्ण रूप से स्वाभाविक हैं। यद्यपि कबीर ने पिंगल और अलंकार के आधार पर काव्य-रचना नहीं की तथापि उनकी काव्यानुभूति इतनी उत्कृष्ट थी कि वे सरलता से महाकवि कहे जा सकते हैं। आपकी कविता में छंद और अलंकार गौण हैं, सन्देश प्रधान है। उस संदेश को प्रकट करने का ढंग अलंकार से युक्त न होते हुए भी काव्यमय है।

कबीर की कविता में कला का अभाव है, उनकी रचना में पद-विन्यास का चातुर्य नहीं है, उलटवासियों में क्लिष्ट कल्पना है. भाषा भी बे ठिकाने है, परन्तु अपनी अलौकिक प्रतिभा के संयोग से अपने सन्देश को भावनात्मक रूप देकर हृदयग्राही बना दिया है। कबीर की कला उनकी स्पष्टवादिता और स्वाभाविकता में है। स्वाभाविकता और स्पष्टता ही उनकी साहित्य साधना की सबसे बड़ी निधि है। कबीर के विरह-पद साहित्य के किसी भी कवि के पदों से हीन नहीं हैं। उनकी विरहिणी आत्मा की पुकार काव्य-जगत् में अद्वितीय है।

मलिक मुहम्मद जायसी

जायसी की सर्वश्रेष्ठ रचना 'पदमावत' दोहा-चौपाई की शैली पर अवधी भाषा में हुई है। भाषा ठेठ अवधी है।

सरवर तीर पदमिनी आई। खोंप छोरि केस मुकलाई।।
ससिमुख, अंग मलयागिरि बासा। नागिनि झाँपि लीन्ह चहुँ पासा।
ओनई घटा परी जग छाँहा। ससि कै सरन लीन्ह जनु राहा।
भलि चकोर दीठ मुख लावा। मेघ घटा महँ चन्द देखावा।।

'पद्मावत' की रचना फारसी की मसनवी शैली पर हुई है। जिस प्रकार फारसी की मसनवियों में ईश्वर वंदना, मुहम्मद साहब की स्तुति, तत्कालीन राजा की प्रशंसा आदि का उल्लेख कथारम्भ के पहले होता था, उसी प्रकार इसमें भी है। अलंकारों का सुन्दर प्रयोग है। 'पद्मावत' में शब्दालंकारों का कम और अर्थालंकारों का अधिक प्रयोग हुआ है। अलंकार विधान में जायसी ने परम्परा का ही पालन किया है, फिर भी उनके रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि में कहीं-कहीं अद्भुत मौलिकता देखने को मिलती है। उपमान तो आपने प्रायः प्रकृति से एकत्र किए हैं। सभी अलंकार स्वाभाविक और सफल रूप में प्रयुक्त हुए हैं।

सूरदास

कृष्ण-भक्ति शाखा के प्रमुख कवि सूरदास की भाषा साहित्यिक ब्रजभाषा है, जिसमें कहीं-कहीं संस्कृत का भी पुट है। साहित्यिक होते हुए भी वह बोलचाल की भाषा के अधिक निकट है और उसमें उसका चलतापन भी है। तत्सम, अर्द्धतत्सम, तद्भव, देशी और विदेशी सभी प्रकार के शब्द आपकी भाषा में पाए जाते हैं। अरबी-फारसी के शब्दों के प्रति सूर का इतना आग्रह

दिखाई देता है कि सूरसागर में कई पद तो पूर्णतया अरबी-फारसी के हो गए हैं। कहावतों और मुहावरों से आपने अपनी भाषा को खूब सजाया है। माधुर्य तो अपनी भाषा का विशेष गुण है, फिर भी वातावरण और प्रसंगानुकूल भाषा में परिवर्तन कर देना सूर को खूब आता था।

विषय वस्तु, दृश्य-विधान और भाव-निरूपण के अद्वितीय कवि सूरदास शब्द शिल्प के भी अद्भुत कलाकार हैं। उनके पदों में व्रजभाषा का अकृत्रिम प्रवाह अलंकार का स्वाभाविक संयोजन सर्वथा प्रशंसनीय है। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी जी के शब्दों में—"सूरदास जब अपने प्रिय विषय का वर्णन शुरू करते हैं तो मानो अलंकार शास्त्र हाथ जोड़कर उनके पीछे-पीछे दौड़ा करता है। पद-पद पर मिलने वाले अलंकारों को देखकर भी कोई अनुमान नहीं कर सकता कि कवि जान-बूझकर अलंकारों का उपयोग कर रहा है। पन्ने पर पन्ने पढ़ते जाइए, केवल उपमाओं और रूपकों की छटा, अन्योक्तियों का ठाठ, लक्षणा और व्यंजना का चमत्कार देखते ही विमुग्ध रह जाना पडता है।"

यद्यपि सूर ने और भी कई प्रकार के छन्दों का प्रसंगानुकूल प्रयोग किया है, किन्तु प्रधानतः उन्होंने गीति-शैली अपनाई है। सूर के पदों में संगीत की धारा इतनी सुकुमार चाल से चलती है कि हमें यह ज्ञात होने लगता है कि हम स्वर्ग के किसी पवित्र भाग में मन्दाकिनी की हिलती हुई लहरों का स्पर्शानुभव कर रहे हैं। सूरदास के कहने का ढंग भी बहुत सुन्दर है। जो बात वे कहते हैं, वह इतनी सुन्दरता के साथ उनके आगे कहने को कुछ भी नहीं रह जाता। जो कुछ वे कहते हैं, वही कहने की इति है।

गोस्वामी तुलसीदास

भाषा के क्षेत्र में तुलसी जैसा असाधारण अधिकार और दूसरे का है ही नहीं। व्रज और अवधी दोनों में समान रूप से उन्होंने रचना की।\ तत्सम, अर्द्धतत्सम, देशी और विदेशी सभी प्रकार के शब्दों को यथा-सुविधा अपनाया। संस्कृत, शौरसेनी, अर्द्धमागधी, बघेली, भोजपुरी छतीसगढी, गुजराती, पंजाबी, मराठी, खड़ी बोली आदि के शब्दों का आपने बड़ा ही सुन्दर प्रयोग किया है। भाषा को ऐसा केन्द्रीय रूप देने वाला और कौन है। तुलसी ने अपनी भाषा को लोकप्रिय बनाने के लिए मुहावरों का खुलकर प्रयोग किया है। तुलसी की भाषा और मुहावरों में मणि-कांचन का संयोग है। उनके मुहावरों के प्रयोग से उनके कथन में सुषमा ही नहीं आई, बल्कि उनका

व्यवहार-कौशल, उनकी सूक्ष्म-निरीक्षण शक्ति एवं-नैपुण्य भी दीप्त हो उठा है।

गोस्वामी जी की शब्द-स्थापना भी उत्तम है। कहाँ किस प्रकार के शब्द का प्रयोग होना चाहिए, इस कला के गोस्वामी जी परम पटु हैं। उपयुक्त भाषा मानो आप ही आप उनके हृदय में उमड़ी पड़ती है। पद-योजना की भाँति तुलसी की वाक्य-रचना का हाल है। अनेक काव्य इस कुशलता के साथ ही कहे गए हैं कि वे सुनते ही याद हो जाते है। वाक्य-रचना की सबसे बड़ी खूबी यह है कि आपने थोड़े में ही अधिक भाव भर दिये हैं।

गोस्वामी जी का शब्द-शक्तियों पर भी असीम अधिकार था। इसीलिए वे शब्द और अर्थ का सम्बन्ध-ज्ञान रखते थे। आपने प्रसंगानुकूल तीनों शक्तियों का समुचित उपयोग किया है। गोस्वामी जी के लाक्षणिक प्रयोग काव्य भाषा की व्यंजकता चारुता बढ़ाने वाले हैं। व्यंजना शक्ति के तो आप सफल प्रयोक्ता थे। तुलसी के उक्ति-वैचित्र्य ने भी उनकी भाषा को अधिकाधिक भावाभिव्यजक बनाया है। कथन का अनूठा ढग तुलसीदास जी को खूब आता था।

भावानुरूप शैली की रचना करने में तो तुलसी सिद्धस्त थे। 'रामचरित मानस' में रसानुरूप, पात्रानुरूप, स्थिति-ज्ञान-अवसर के अनुरूप शैलियाँ मिलती हैं। कहीं स्तुति शैली है, कहीं दार्शनिक शैली और कहीं उपदेशात्मक शैली। रसानुकूल शैली के लिए आपने ओज, प्रसाद, माधुर्य आदि गुणों को लाने वाली वृत्तियों का यथा स्थान उपयोग किया है। इसीलिए नाद-सौन्दर्य तुलसी के काव्य की अतिरिक्त विशेषता हो गई है।

गोस्वामीजी उदात्त छन्द-विधायक महाकवि थे। इसीलिए आपने अपने पूर्ववर्ती, समकालीन सभी प्रकार के प्रचलित छन्दों का उपयोग कर दिया। दोहा, चौपाई, हरिगीतिका, छप्पय, कवित्त, सवैया, चवपया, त्रिभंगी, तोटक, तोमर, प्रमाणिका, झूलना, बरवै, सोरठा, मंगल, नहछू, गीत आदि सभी कुछ तुलसी के काव्य में वर्तमान हैं। छन्दों के प्रयोग में तुलसी ने मर्यादा का ध्यान रखा है। केशव की भांति छन्दों का वैचित्र्य नहीं दिखाया है।

तुलसी को अलंकारों का सम्यक् ज्ञान था, यह इसी से सिद्ध हो जाता है कि उनके काव्य में अलंकारों के तीनों प्रकार अपने आप भेदोपभेद सहित उत्तम रीति से प्रयुक्त हुए हैं। आपके काव्य में शब्दालंकारों का प्रयोग स्वाभाविक ही हुआ है। अर्थालंकारों से सर्वत्र भाव अथवा वस्तु के सौन्दर्य की वृद्धि में सहायता मिली है। आपकी उपमायें और रूपक तो बेजोड़ हैं।

भूषण

वीर रस के कवि भूषण की भाषा ब्रज है, परन्तु उसमें संस्कृत के तत्सम शब्दों के साथ शुद्ध विदेशी शब्दों को भी निस्संकोच मिला लिया है। अरबी-फारसी आदि के शब्दों को मिलाकर ब्रजभाषा का रूप दे दिया है। आपने भाषा के साथ बहुत ही स्वच्छन्दता से काम लिया है। दूषित वाक्य-रचना और व्याकरण दोष अनेक स्थलों पर पाये जाते है। उनकी भाषा में व्यवस्था का अभाव है। शब्दों को तोड़ने-मरोड़ने के अतिरिक्त मनगढ़ंत शब्दों का भी काफी प्रयोग किया है। इनकी कविता का एक उदाहरण देखिए—

दारा की न दौर यह, रार नहीं खजुवे को,
बाँधिबो नहीं है कैधों मीर सहवाल को।
मठ विश्वनाथ को, न वास ग्राम गोकुल को.
देवी को न देहरा, मन्दिर गोपाल को॥
गाढ़े गढ़ लीन्हें, अरु बैरी कतलाम कीन्हें.
ठौर ठौर हासिल उगाहत है साल को।
बूड़ित है दिल्ली सो सम्भारो क्यों न दिल्लीपति,
धक्का आनि लाग्यो सिवराज महाकाल को॥

भूषण की सम्पूर्ण शब्द-योजना ओजस्वी है। वीर-रस के अनुकूल शब्दों में भेरी-रव की विकट ध्वनि लक्षित होती है। आपने लोकोक्ति और मुहावरों का प्रयोग बहुतायत से किया है। आपकी भाषा खड़ी बोली के मिश्रण से लोक भाषा की ओर झुकी दिखाई देती है। भूषण की भाषा-शैली वीर-रस के सर्वथा उपयुक्त है। वीर-रस के लिए जिसे ओज गुण के अनुकूल परुषा वृत्ति लाने के लिए जिन संयुक्ताक्षरों, कर्णकटु शब्दों की आवश्यकता होती है, उनका व्यवहार करना भूषण खूब जानतें थे। रस के अनुकूल शब्द गढ़ लेना अथवा शब्द को तोड़-मरोड़ लेना तो बायें हाथ का खेल था। आपकी भाषा-शैली की सबसे बड़ी विशेषता तो यह है कि आपकी रचना तो पढ़ते-पढ़ते ऐसा लगता है जैसे हमारे सामने से सेना का समुद्र उमड़ रहा हो, और सैनिक लोग कदम-पर-कदम मिलाते चले जा रहे हों।

बिहारी

बिहारी की लिखी हुई केवल एक पुस्तक "बिहारी सतसई" मिलती है।

यह कवि के लिखे हुए ७१९ दोहों का संग्रह है। आपने इसके अलावा और कोई रचना नहीं की, परन्तु इस छोटी सी रचना से ही कवि का नाम अमर हो गया है।

बिहारी का भाषा पर अधिकार था। भाषा पर वैसा अधिकार रखने वाला कोई मुक्तककार नहीं हुआ। यद्यपि आपकी भाषा ब्रज है, परन्तु बुन्देलखण्डी, अवधी, अरबी, फारसी, खड़ी बोली आदि के शब्द भी स्वच्छन्दता से प्रयुक्त हुए हैं। भाषा चलती हुई होने पर भी साहित्यिक कही जाएगी। बिहारी नये शब्द गढ़ने के भी चक्कर में नहीं पड़े हैं।

बिहारी की भाषा में माधुर्य, चित्रमयता, गूढ़ता और समास-निर्माण के अच्छे उदाहरण प्राप्त होते हैं। अभिव्यंजना की दृष्टि से आपकी भाषा बहुत ही उपयुक्त है। वाक्यों की बनावट चुस्त और पदावली वस्तु-संबंधी ध्वनि को व्यक्त करने वाली है। छन्द की सुविधा के लिए आपने शब्दों को 'तोड़ा-मरोड़ा है। इनकी भाषा का उदाहरण देखिए:—

मेरी भव बाधा हरो, राधा नागरी सोय।
जा तन की झाँई परे, श्याम हरित दुति होय॥
इक भीजे चहले परे, बूड़े बहे हजार।
किते न अवगुन जग करत, वै नै चढ़ती बार॥

श्री मैथिलीशरण गुप्त

गुप्त जी की भाषा खड़ी बोली है। भाषा पर आपका अच्छा अधिकार है, जिसके द्वारा आप प्रबन्ध-काव्यों में सफलता प्राप्त करते, अनेक वर्णन-शैलियों को अपनाते, दृश्यों एवं प्रकृति वर्णन में एक प्रकार का विचित्र आकर्षण उत्पन्न करते और गिने-चुने शब्दों में प्रचुर भाव-समूह को बाँध देते हैं; आपका छन्द भण्डार अपार है। तत्सम, तद्भव, देशी, विदेशी सभी प्रकार के शब्दों को आप निर्द्वन्द्व होकर प्रयोग में लाते हैं, आवश्यकतानुसार नए शब्द भी गढ़ लेते हैं। लोक-सामान्य भाषा लिखने में आप पटु है। लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग बड़ी कुशलता से करते और भाषा को अत्यन्त स्वाभाविक बना देते हैं।

हिन्दी में प्रचलित विभिन्न काव्य-शैलियों पर आपका अच्छा अधिकार है, प्रबन्ध-काव्य, महाकाव्य, खण्डकाव्य, मुक्तककाव्य, मिश्रकाव्य, गीतिकाव्य सभी पर आपने साधिकार लेखनी उठाई है। शैली की विविधता से भी आपका कार्य स्तुत्य है। सरलता तो आपके काव्य का सबसे बड़ा गुण है।

श्री सुमित्रानन्दन 'पन्त'

छायावादी कवि पन्त का हिन्दी काव्य-जगत् में महत्त्वपूर्ण स्थान है। आपने खड़ी बोली को काव्योचित भाषा का स्थान तथा रूप प्रदान किया। खड़ी बोली की परुषता दूर कर कोमलता तथा माधुर्य दिया। पुनरुक्ति दे क भाषा में ध्वनि और प्रभाव पैदा किया, भाषा को चित्रमयता दी और लाक्षणिक वैचित्र्य दिया। मुक्तक को स्वच्छन्दता और उत्कर्ष दिया और उसकी गद्यात्मकता दूर की। आपके मुक्तक में खंड-काव्य के जैसा आनन्द बहता है।

'पन्त' जी अपनी भाषा के स्वयं निर्माता हैं। आपकी भाषा कोमल, मधुर और प्राणमय है। भाषा को भावानुकूल बनाने में आप पटु हैं। नये शब्दों का गढ़ लेना, अंग्रेजी, उर्दू आदि के शब्दों का निर्द्वन्द्व प्रयोग कर लेना आपके लिए सहज है। अंग्रेजी की लाक्षणिकता, बंगला की भावुकता और संस्कृत की समास-बहुलता के समन्वय में आपकी भाषा का निर्माण हुआ है।

प्रश्न—निम्नलिखित में से किसी एक की शैली का विवेचन कीजिए—

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पंडित बालकृष्ण भट्ट, पं० प्रतापनारायण मिश्र, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, पं० बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', मुन्शी प्रेमचन्द।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु ने अपने सामाजिक निबन्धों में धार्मिक पाखण्डों और अन्धविश्वासों का घोर विरोध किया। देश और समाज की उन्नति के लिए वे इन पाखण्डों का त्याग और एकता की भावना के व्यापक प्रसार की आवश्यकता समझते थे। उनकी शैली नाटकीय थी, जिसे वे व्यंग्य-हास्य-व्यंजक विशेषणों विलक्षण आरोपों और अतिशयोक्तियों से चमत्कारपूर्ण तथा प्रभावोत्पादक बनाते थे उनके साँस्कृतिक निबंध प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन से संबंध रखते हैं। अपनी यात्राओं के वर्णन उन्होंने अत्यन्त सजीव किये हैं। यात्रा में आए प्रदेशों के रीति-रिवाज, सामाजिक पतन, सरकारी कर्मचारियों की धाँधली आदि और दर्शनीय स्थानों की प्राकृतिक छटा का कोई व्यौरा उनकी सूक्ष्म दृष्टि से नहीं छूटा। आपके निबन्ध विचारात्मक और व्याख्यात्मक शैली के हैं किन्तु उनमें पर्याप्त व्यंग्यात्मकता है भाषा में मार्मिक अभिव्यंजना, सजीवता, स्वाभाविकता के सर्वत्र दर्शन होते हैं। भाषा सम्बन्धी युग की लापरवाही के दर्शन भी आपके निबन्धों में होते हैं।

व्यावहारिक या परिचयात्मक शैली के तो आप धनी हैं। यह शैली प्रसादगुण पूर्ण है और छोटे-छोटे वाक्यों में प्रकट होती है। थोड़े शब्दों में बहुत भाव भरना आपको खूब आता था। आपकी परिचयात्मक शैली में संस्कृत-प्रधान या अरबी-फारसी प्रधान भाषा के दोनों भेदों के बीच का मार्ग है। आपकी इस शैली में सुबोधता है, वाक्य छोटे-छोटे हैं और मुहावरों का सुन्दर प्रयोग किया गया है, जिससे भाषा में सजीवता आ गई है। दुःख, क्षोभ आदि के कारण भावावेश में प्रायः आपकी भाषा बहुत जोरदार, मर्मस्पर्शी और भावपूर्ण हो जाती थी।

पं० बालकृष्ण भट्ट

भट्ट जी के निबन्धों की शैली के दो प्रधान रूप हैं— (१; परिचयात्मक और (२) भावात्मक। परिचयात्मक शैली की भाषा चलती हुई है, जिसमें प्रवाह और सरलता है। वाक्य कहीं बड़े और कहीं छोटे हैं। भावात्मक शैली की भाष बहुता शुद्ध है, साथ ही अलंकारों का प्रयोग किया है। आपकी भावात्मक साहित्यिक शैली में काव्य की सी छटा दिखाई देती है। कल्पना के पट्ठ से उसमें जो चमत्कार पैदा होता है, वह उक्ति-विचित्रता द्वारा हमारा मनोरंजन करता है।

आपका हास्य सरल न होकर कुछ तीखा और मार्मिक होता था। आपके हास्यपूर्ण लेख अथवा अवतरणों की भाषा भी सरल और चलती हुई है। मुहावरों की झड़ी सी लगा दी है'। आपकी शैली में नागरिकता के दर्शन होते हैं। हिन्दी में कोष्ठकों का प्रयोग सर्वप्रथम भट्ट जी ने ही किया था। आपके लेखों में विराम-चिन्हों का समुचित प्रयोग मिलता है।

भाषा की दृष्टि से भी भट्ट जी की शैली प्रधानतः दो प्रकार की है। एक में संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग किया गया है और दूसरी मिश्रित शैली है, जिसमें संस्कृत शब्दों के साथ-साथ अरबी-फारसी के शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। भट्ट जी ने अंग्रेजी के शब्दों और लोकोक्तियों के प्रयोग भी किए हैं। हिन्दी की व्यंजना-शक्ति बढ़ाने के लिए उन्होंने नये शब्द और मुहावरे गढ़े हैं। इस दृष्टि से आपका कार्य वास्तव में सराहनीय है।

पं० प्रतापनारायण मिश्र

मिश्र जी के निबन्ध प्रायः दो प्रकार के हैं—एक सामाजिक और दूसरे धार्मिक। तीसरे प्रकार के साहित्यिक निबन्ध विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। आपकी

शैली भी दो प्रकार की है, पहली में गम्भीरता का पुट है और दूसरी में हास्य और व्यंग्य की झलक। मिश्र जी ने गम्भीर विषयों की विवेचना भी हास्यपूर्ण शैली में ही की है, परन्तु कभी-कभी-गम्भीर हो गई है। गम्भीर और विचारात्मक गद्य लिखना एक प्रकार से उनकी प्रकृति के प्रतिकूल था। वे सदैव इस बात की चेष्टा किया करते थे कि चाहे जैसा भी विषय हो, उसे विनोदपूर्ण और मनोरंजक बना दिया जाए।

मिश्र जी ने किसी बात को सीधे-सादे ढंग से नहीं कहा यद्यपि उनकी भाषा प्रायः सीधी-सादी और सरल होती थी। यही कारण है कि ज्यों-ज्यों हम उनके लेख पढ़ते जाते हैं, त्यों त्यों उनकी रोचकता बढ़ती जाती है। मुहावरों का जैसा चमत्कारपूर्ण प्रयोग मिश्र जी ने किया है, वैसा हिन्दी के अन्य लेखकों की रचनाओं में कम देखने को मिलता है। कभी-कभी तो इनकी झड़ी सी लग गई है। आपने अपने कई लेखों के शीर्षक भी कहावत या मुहावरे में रखे हैं, जैसे:— 'मरे को मारे शाह मदर", 'ऊँच निवास नीच करतूती'।

मिश्र जी की शैली की दूसरी विशेषता यह है कि उनकी रचनाओं में उनके व्यक्तित्व की छाप सदैव रहती है। अपनी विद्वत्ता प्रदर्शित न करके कृत्रिमता लाने की चेष्टा आपने कभी नहीं की। आपकी शैली में सरलता, एकरूपता और घनिष्टता के दर्शन होते हैं। आपने जन-साधारण की प्रचलित भाषा को अपनाया। आपकी भाषा में ग्रामीणता का पुट अधिक है और पूर्वीपन की झलक पर्याप्त मात्रा में है। आपने अपनी जन्मभूमि में प्रचलित घरेलू शब्दों और मुहावरों का निःसंकोच प्रयोग किया है। आपको जब कभी भी अपना भाव प्रकट करने के लिये हिन्दी का उचित शब्द न मिलता तो पहले वे ग्रामीण शब्दों द्वारा अपना भाव व्यक्त करते और यदि फिर भी सफलता न होती तो वे संस्कृत के अधिक प्रचलित शब्दों का बहुत प्रयोग करते थे। यदि कभी संस्कृत का शब्द भी ठीक नहीं मिला तो अरबी-फारसी के अति प्रचलित शब्दों को अपनाते। अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग भी आपने जहाँ तहाँ किया है। अशुद्ध रूप भी पाए जाते है, व्याकरण सम्बन्धी दोष मिलते हैं और विराम चिन्हों का प्रयोग भी कम किया है। फिर भी मिश्र जी की भाषा में ऐसी सजीवता और चलतापन है कि पाठकों का ध्यान उसकी रोचकता और सादगी की ओर बराबर खिंच ही जाता है।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी

विषय के अनुसार द्विवेदी जी के निबन्धों की शैली मुख्यतः चार प्रकार

की है—परिचयात्मक, आलोचनात्मक, प्रेरणात्मक और गवेषणात्मक परिचयात्मक शैली अत्यन्त सरल है, मोटी बुद्धि के पाठकों को समझा-समझा कर बात लिखी गई है। आलोचनात्मक शैली में उन्होंने गद्य के दोष दूर किये हैं। तीसरे प्रकार की शैली में मसखरेपन का पुट रहता है जिससे उनके सरल स्वभाव और विनोद-प्रियता का पता चलता है। गवेषणात्मक शैली के दो रूप हैं एक वह है जिसकी भाषा अत्यन्त सरल और साधारण है। इसमें गम्भीरता का पुट है—और मार्मिकता तथा मसखरेपन का अभाव है। इस शैली का प्रयोग उन्होंने क्लिष्ट या विवादात्मक विषय को जन-साधारण को समझाने के लिये किया है। मूलतः भाषा सरल है, वाक्य छोटे-छोटे हैं और वर्णन की प्रणाली सुलझी हुई है। इसका दूसरा रूप वह है, जिसमें विशुद्ध हिन्दी है। यह शैली प्रायः कृत्रिम हो गई है।

द्विवेदी जी सरल से सरल भाषा लिखने के पक्ष में थे। साथ ही न वे प्रचलित संस्कृत शब्दों का विरोध या बहिष्कार करते थे और न अरबी फारसी का ही। अंग्रेजी शब्दावली को भी वे स्वीकार करते थे। अतः उनकी भाषा में सजीवता है और स्वाभाविकता भी, जिसे पढ़ और समझकर पाठक मुदित हो जाता है। क्लिष्टता के तो वे किसी प्रकार भी पक्षपाती न थे। वे हिन्दी भाषा को सरलतम रूप देने के पक्ष में थे, क्योंकि उसे किसी सीमा तक समझने वाले भारत के प्रायः सभी प्रान्तों में रहते हैं। उनका यह विचार था कि यदि भाषा का सर्वत्र प्रचार हो तो देश में राष्ट्रीयता या जातीयता की भावना सरलता से उत्पन्न हो जाएगी। उनका तीसरा उद्देश्य यह था कि हिन्दी भाषा में गम्भीर से गम्भीर और गूढ से गूढ़ विषयों को सरल भाषा में व्यक्त करने की क्षमता आ जाये।

पंडित बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'

पंडित बदरीनारायण चौधरी गद्य-पद्य के सिद्धहस्त लेखक थे। इनकी शैली सबसे विलक्षण थी। गद्य रचना को ये कलम की कारीगरी या कला के रूप में ग्रहण करते थे। रचनाओं के परिमार्जन और परिष्कार में इनका अटूट विश्वास था। इनकी अनुप्रासमयी चुहचुहाती भाषा में कही शब्दाडम्बर और बेकार का प्रदर्शन नहीं है। चौधरी जी अलंकृत भाषा के पक्ष मे थे। अर्थ की गम्भीरता और सूक्ष्म विचार शृंखला इनके निबन्धों की विशेषता है। शुक्ल जी के शब्दों में लखनऊ की उर्दू का आदर्श इन्होंने अपनी हिन्दी में उतारा। साहित्यालोचना का सूत्रपात करने वाले भट्ट जी और चौधरी जी ही हैं।

अपनी रंगीन लहजे भरी भाषा के कारण वे बहुत ही लोकप्रिय शैलीकार हैं। आपने कई नाटक भी लिखे हैं, परन्तु उनमें प्रायः सभी प्रान्तीय भाषाओं के शब्दों का प्रयोग हुआ है।

गद्य साहित्य के अतिरिक्त आपने हिन्दी काव्य-सर्जन भी किया है। दोनों ही क्षेत्रों में आपकी प्रतिभा समान थी। आपने व्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में विस्तार से लिखा है। अपने समय के प्रायः प्रत्येक विशेष अवसर पर आपने कविता लिखी है। नवीन विषयों के लिये आप रोला छंद लेते थे। अधिकांश कविताओं की भाषा में प्रवाह और मधुरता है। मुहावरों की छटा भी देखने को मिलती है।

मुंशी प्रेमचन्द

उपन्यास सम्राट् मुंशी प्रेमचन्द जी की भाषा (खड़ी बोली) पर असाधारण अधिकार था। आरम्भ में उनकी भाषा में प्रौढ़ता नहीं थी किन्तु बाद में जो प्रौढता आई वह आश्चर्यजनक थी। शब्दों की अद्‌भुत चुस्ती, भावाभिव्यंजना, काव्य-कला का उल्लास, संतुलित वाक्य-संगठन, मुहावरों का सफल प्रयोग, लोकप्रिय भाषा का निर्माण आदि सभी प्रेमचन्द जी की भाषा की निजी विशेषताएँ हैं। उन्होंने कहीं तो उर्दू लिखी है, कहीं उर्दू मिश्रित सरल हिन्दी और कहीं संस्कृत की तत्सम शब्दावली का प्रयोग किया है। ग्रामीण भाषा के तो वे पंडित ही थे। कबीर के पश्चात् प्रेमचन्द ही एक ऐसे महान् व्यक्ति हुए जिनकी दृष्टि राष्ट्रभाषा और लोक-सामान्य भाषा के निर्माण की ओर गई।

मुन्शी प्रेमचन्द जी में हमें पांच प्रकार की शैलियां मिलती हैं—वर्णनात्मक, मनोविश्लेषणात्मक, नाटकीय, विचारात्मक और उपदेशात्मक। इनके अतिरिक्त व्यंग्य और परिहास उनकी शैली की अन्य विशेषता है। आपके व्यंग्य चुटकीले होते है। सारांश में, प्रेमचन्द जी की भाषा-शैली बड़ी प्रवाहपूर्ण, सरल, स्वच्छ, अलंकृत और मधुर है। उसमें मानव-जीवन-प्रकृति की सूक्ष्म से सूक्ष्म भाव-व्यंजना को मूर्त करने की शक्ति है। शब्दों के सुष्ठु प्रयोग, वाक्य-विन्यास की चुस्ती, मुहावरे और लोकोक्तियों का समावेश, व्यग्य विनोद की छटा उनकी सशक्त गद्य शैली के उपकरण हैं। यही कारण है कि हिन्दी साहित्य में आधुनिक युग के लेखकों में मुन्शी जी बहुत अधिक लोकप्रिय लेखक हैं। न केवल प्रान्त और भारत में ही बल्कि विदेशों में भी उन्हें लोकप्रियता प्राप्त है।

हिन्दी व्याकरण

प्रश्न १—भाषा और व्याकरण की परिभाषा लिखिए और उनका संबंध भी बताइये। (रत्न, जून १९५५, नवम्बर ५६)

उत्तर—अपने विचारों को दूसरे व्यक्ति तक पहुंचाने के साधन को भाषा कहते हैं। मनुष्य अपने चारों ओर के संसार को देखकर जो कुछ अनुभव करता या सुनता है, वही दूसरे के आगे भी कहना चाहता है। दूसरे के विचारों को सुनना चाहता है। इस प्रकार एक दूसरे के विचारों के आदान-प्रदान के साधन को ही भाषा कहते हैं। इसी भाषा के सहारे साहित्य की सृष्टि होती है, सभ्यता का प्रसार होता है, राजनैतिक और आर्थिक कार्य चलते हैं।

व्याकरण—भाषा के शुद्ध एवं अशुद्ध शब्दों का ज्ञान एवं शब्दों की व्युत्पत्ति का ज्ञान कराने वाले शास्त्र को व्याकरण कहते हैं। भाषा में बहुत से शब्द शुद्ध होते है और बहुत से प्रमाद के कारण या बोलने की सुविधा के कारण अपने असली रूप से बदल जाते हैं। अशुद्ध रूप में भी इनका प्रयोग होता है। व्याकरण इस बात का ज्ञान कराता है कि शुद्ध शब्द यह है और इस शब्द का निर्माण इस प्रकार हुआ है।

भाषा और व्याकरण का सम्बन्ध—भाषा और व्याकरण का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। भाषा शब्दों और वाक्यों पर निर्भर है। व्याकरण शब्द निर्माण और वाक्य रचना का प्रकार बताता है, भाषा का विकसित रूप साहित्य होता है। साहित्य में शुद्ध और परिमार्जित भाषा का ही प्रयोग होता है। व्याकरण के बिना भाषा का संशोधन सम्भव नहीं। इसलिए प्रत्येक सभ्य जाति की विकसित भाषा का व्याकरण होना अनिवार्य है। संसार में सभी सभ्य भाषाओं के अपने-अपने व्याकरण बने हुए हैं।

प्रश्न २—व्याकरण के कितने अंग होते हैं और क्यों ?

उत्तर–व्याकरण भाषा के लिए होता है न कि भाषा व्याकरण के लिए। इसलिए भाषा के जितने अंग होंगे व्याकरण भी उतने ही भागों में बंटेगा। भाषा के तीन भाग माने गए हैं :—

१—वर्ण, २—पद (शब्द), ३—वाक्य। अनेक वर्णों के समूह से शब्द और अनेक शब्दों से वाक्य बनते है। इन तीनों भागों पर विचार करने के लिए व्याकरण के तीन अग होते हैं :—

१–वर्ण विचार, २–शब्द विचार, ३–वाक्य विचार।

प्रश्न ३—भाषा के कितने प्रकार होते हैं ? प्रत्येक का स्वरूप बताइये।

उत्तर—भाषा विद्वानों ने तीन प्रकार की मानी है—१. सांकेतिक, २. ध्वनि, ३. लिपि।

सांकेतिक—जिसमें वर्ण, शब्द आदि का प्रयोग न करके केवल अंग संचालन या चित्र आदि के संकेतों से विचार प्रकट किये जायं, जैसे कि सी. आई. डी. विभाग की अपनी सांकेतिक भाषा होती है, गूंगे इशारो में ही बातें कर लेते हैं। तारबर्की की भाषा भी सांकेतिक ही है।

ध्वनि—जिस में शब्द (नाद) का प्रयोग होता है। यह बोली जाती है। बोली ध्वनि मे ही गिनी जाती है।

लिपि—भाषा के लिखित रूप को लिपि कहते हैं। जहां तक उच्चारण किये गये शब्द की आवाज पहुंच सके, वहा के लिए तो ध्वनि का प्रयोग होता है, आवाज की पहुच से बाहर के लिए जिस भाषा का प्रयोग होता है, वह लिपि कहलाती है। आजकल स्थानगत अन्तर को मिटाने के लिए टेलीफोन, टेलीविजन और आकाशवाणी का आविष्कार हुआ है। इनमें ध्वनि का व्यवहार होता है।

प्रश्न ४–कुछ लिपियों का उल्लेख करके उनमें देवनागरी की विशेषता लिखिए।

उत्तर—प्रत्येक भाषा की अपनी लिपि अत्यावश्यक होती है। जैसे हिन्दी की देवनागरी, उर्दू की उर्दू, फारसी की पर्शियन, अंग्रेजी की रोमन, बंगाली की बंगला, पंजाबी की गुरुमुखी, मराठी की मराठी। इन सभी में देवनागरी

लिपि अपनी सबसे अधिक विशेषतायें रखती है। वे नीचे लिखी हैं :—

१—यह सबसे अधिक वैज्ञानिक है। इसका विकास, इसकी वर्णमाला, इसके वर्णों के मेल के प्रकार सभी विज्ञान के अनुकूल हैं।

२—इसमें वर्ण संकेत उच्चारण के अनुकूल है। जिस वर्ण का जैसा उच्चारण होता है, वैसा ही लिखा भी जाता है। अंग्रेजी की भाँति नहीं कि M U T T R A इन छः वर्णों को मिलाया गया, बना मुट्रा, बोलें मटरा, जबकि वास्तविक शब्द मथुरा है।

३—इसमें रोमन की भांति कई के उच्चारण के लिए एक ध्वनि न होकर सबके लिए पृथक् है, जैसे अंग्रेजी में द, ड के लिए D है; त, ट के लिए T है। वर्ग के दूसरे और चौथे वर्ण के लिए रोमन में कोई वर्ण ही नही है, जैसे पाथ लिखने के लिए Path में टी और एच दो वर्ण मिलाकर तब थ बनाना होता है।

४—देवनागरी में व्यर्थ की ध्वनि का प्रयोग नहीं होता है। जैसे 'Calm' यहाँ सी ए और एम का तो उच्चारण हो जाता है पर बीच में एल को फंसाने की क्या आवश्यकता थी जबकि वह बोला ही नही जाता। इसी प्रकार Wrestler रेसलर शब्द में आठ वर्णों का प्रयोग हुआ है, उच्चारण में केवल छः काम आये, W और T व्यर्थ ही है।

५—फिर देवनागरी में छोटे-बड़े वर्ण, लिखने और छापने के पृथक् वर्ण रखने का झगड़ा भी नहीं है।

६—अन्य लिपियों में स्वरों का भी अभाव है। कई स्वरों को समान रूप में पढ़ा जाता है। परिणाम यह होता है कि बहुधा सेट का सट ही बन जाता है। रोमन में औ का उच्चारण होने पर भी इस ध्वनि के लिए कोई वर्ण नहीं है। कही O, कहीं O U को और कही A U को मिला कर बनाया जाता है।

७—इस लिपि में किसी भी भाषा के शब्द को उसी रूप में लिखा जा सकता है परन्तु दूसरी लिपियों म ऐसा नहीं है। उदाहरण के लिए ब्राह्मण, फारसी में बिरहमन लिखा जा सकेगा, शुद्ध रूप नही आ सकता।

८—इसमें एक वर्ण का एक ही उच्चारण होता है अनेक नही। जैसे

रोमन सी का स, क दोनों होते हैं; U का उ, यू, अ तीनों होते हैं; आई, का आइ, इ दोनों होते हैं।

९—इस में किसी शब्द को लिखने के लिए उसका वर्ण-विन्यास (हिज्जे स्पेलिंग) कंठस्थ नहीं करना पड़ता, फारसी और रोमन में तो इसके बिना कार्य ही नहीं चल सकता।

बंगला, गुजराती, मराठी आदि तो देवनागरी से ही निकली हैं। उनका प्रान्तीय भाषाओं से ही सम्बन्ध है, इस प्रकार देवनागरी लिपि सभी से अधिक वैज्ञानिक है।

प्रश्न ५–हिन्दी वर्णमाला में कितने वर्ण हैं ? विभाग करके बताइये।

उत्तर—हिन्दी वर्णमाला में ४६ वर्ण हैं। जिनका विभाजन नीचे लिखा है।

स्वर—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ—	११
स्पर्श—क वर्ग, च वर्ग, ट वर्ग, त वर्ग, प वर्ग—	२५
अंतःस्थ—य, र, ल, व—	४
ऊष्म—श, ष, स, ह—	४
अयोगवाह—अं, अः—	२
कुल संख्या	४६

प्रश्न ६—नीचे लिखे व्याकरण सम्बन्धी संज्ञाओं की परिभाषा लिखिए—वर्ण, प्रयत्न, स्वराघात, प्रत्यय, अव्यय अनुनासिक, संयोग, अयोगवाह, अपवाद, शब्द।

उत्तर—**वर्ण**—वह छोटी से छोटी ध्वनि जिसके खंड न हो सकें, वर्ण कही जाती है। जैसे—अ, क, ट, च, थ आदि। (जून १९५५, नवम्बर ५६)

प्रयत्न—वर्णों के उच्चारण में जो व्यापार किया जाता है, उसे प्रयत्न कहते हैं। प्रयत्न दो प्रकार के होते हैं—(१) आभ्यान्तर, (२) बाह्य। आभ्यान्तर के भेद विवृत, ईषद् विवृत, स्पृष्ट, ईष्त् स्पष्ट। बाह्य के भेद-घोष और अघोष। (जून १९५५, नवम्बर ५६ जून १९५७)

स्वराघात—उच्चारण के विकार एवं दो व्यंजनों के संयोग के बोलने मे जो झटका सा लगता है या विशेष ध्वनि होती है, जैसे—आप वहां नही जायेंगे ? यहां रेखांकित के उच्चारण में बल पड़ता है। युद्ध से विश्व को

हानि होती है—यहां 'द्व' और 'श्व' के क़ारण 'यु' और 'वि' में जोर लगता है ।]

प्रत्यय—शब्द एवं क्रियाओं के निर्माण के लिए धातु एवं शब्द के अंत में लगने वाले शब्दांशों को प्रत्यय कहते हैं । जैसे—जनता, स्त्रीत्व, सुनार ।

अव्यय—जिनमें लिंग, वचन और कारक के कारण कोई विकार न हो । जैसे—हाय, यथा धीरे-धीरे, परन्तु ।

अनुनासिक—मुख और नासिका से जिनका उच्चारण हो, उन वर्णों को अनुनासिक कहते हैं । जैसे—म, न, ञ, ङ, आँ आदि ।

संयोग—दो व्यंजनों के मेल को संयोग कहते हैं ।

अयोगवाह—जो वर्ण स्वरों के साथ बोले जाने पर भी उनमें नहीं मिल सकते, वे अयोगवाह हैं । जैसे—अं, अ: । (नवम्बर १९५५)

अपवाद—जब एक नियम किसी स्थल पर प्रयोग में न आये, उसे अपवाद कहते हैं । जैसे—अकारांत स्त्रीलिंग के बहुवचन में लतायें, कलायें बनता है । पर बुढ़िया, चिड़िया का केवल बुढ़िया, चिड़िया रूप बनता है । यह स्थिति अपवाद होती है ।

शब्द—वर्णों के समूह को शब्द कहते हैं । जैसे राम, कमल, खटपट ।

प्रश्न ७—वर्ण के कितने भेद होते हैं ? उदाहरण सहित लिखिए ।

उत्तर—वर्ण के दो भेद होते हैं—१. स्वर, २. व्यंजन ।

स्वर—जिसका बिना दूसरे वर्ण की सहायता के उच्चारण किया जा सके, उसे स्वर कहते हैं । जैसे—अ, इ, उ, ए ।

(जून १९५५, नवम्बर १९५६, जून १९५७)

व्यंजन—जिसका उच्चारण बिना स्वर की सहायता न हो सके । जैसे—क, च, य, ब, स आदि । (नवम्बर १९५५, जून १९५७)

प्रश्न ८—स्वर और व्यंजन के भेद और उपभेद लिखिए । (जून १९५८)

अथवा

स्वरूप और उच्चारण की दृष्टि से स्वर और व्यंजन को कितने भागों में बांट सकते हैं ? प्रत्येक का उदाहरण दीजिए ।

उत्तर—स्वरूप के विचार से स्वर के दो भेद हैं—मूल स्वर, सन्धि स्वर। जो स्वर दूसरे स्वर को मिलाकर न बने हों, वे मूल स्वर कहे जाते हैं । जैसे—

अ, इ, उ, ऋ। ये चारों मूल स्वर हैं। जो दो वर्णों को मिलाकर बने हों, वे सन्धि स्वर हैं। जैसे—आ (अ+अ), ई (इ+इ), ऊ (उ+उ), ए (अ+इ), ऐ (अ+ए), ओ (अ+उ), औ (अ+ओ)।

कोष्ठक (brackets) में दिए हुए स्वर बता रहे हैं कि वे दो-दो स्वरों को मिलाकर बने है। इसलिए वे सन्धि स्वर कहे जाते हैं।

(जून १९५५, नव० १९५६)

उच्चारण के विचार से स्वरों के तीन भेद है—ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत।

ह्रस्व—जिस स्वर को बोलने में एक मात्रा के बराबर समय लगे, वह ह्रस्व होता है। जैसे—अ, इ, उ, ऋ।

दीर्घ—जिन स्वरों को बोलने में दो मात्राओं का समय लगे, उनको दीर्घ स्वर कहते है। आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ ये दीर्घ स्वर हैं।

प्लुत—जिसके उच्चारण में तीन मात्रा का समय लगे, वह स्वर प्लुत कहा जाता है। किसी को दूर से बुलाने या लम्बे उच्चारण आदि में इसका प्रयोग होता है। जैसे—ओ३म्, हे राम।

स्वरूप की दृष्टि से व्यंजक के भेद :—

स्वरूप के विचार से व्यंजन के दो भेद हैं—साधारण व्यंजन, सन्धि व्यंजन।

साधारण व्यंजन—जो व्यंजन अपने मूल रूप में हैं; किसी से मिलकर न बने हों, वे साधारण व्यंजन हैं। क से लेकर ह तक तेंतीस व्यंजन साधारण हैं।

सन्धि व्यंजन—जो दो व्यंजनों को मिलाकर बने हों, वे सन्धिव्यजन होते हैं। क्ष, त्र ज्ञ, सन्धिव्यंजन हैं।

जैसे—क्+ष=क्ष, त्+र=त्र, ज्+ञ=ज्ञ।

उच्चारण के विचार से व्यंजन के भेद—उच्चारण-प्रयत्न के विचार से व्यंजन के तीन भेद होते हैं—स्पर्श, अंत:स्थ, ऊष्म।

स्पर्श—जिनके उच्चारण में जिह्वा, तालु, आदि स्थानों का स्पर्श करती है। क से लेकर म तक स्पर्श होते हैं। (नवम्बर १९५५)

अन्त:स्थ—जो वर्ण स्वर और व्यंजन के मध्य में हों, उन्हें अन्त:स्थ कहते हैं। जैसे—य, र, ल, व।

ऊष्म—जो श्वास की उष्ण वायु से बोले जाते हैं, वे व्यंजन ऊष्म कहे जाते हैं जैसे—श, ष, स, ह।

इनके अतिरिक्त स्वरों के अनुनासिक और अननुनासिक ये दो भेद और माने गये हैं। आंच, आंत आदि अनुनासिक स्वर हैं। आचार, आकार ये अननुनासिक हैं।

प्रश्न ९—संयुक्त व्यंजन, द्वित्व व्यंजन, और सन्धि व्यंजन में क्या अन्तर उदाहरण देकर समझाइए।

उत्तर—संयुक्त व्यंजन—दो भिन्न-भिन्न व्यंजनों के मेल को, जिसके मध्य में स्वर न हो, संयोग कहते हैं। संयोग वाले व्यजन संयुक्त कहे जाते हैं, ये अपने उच्चारण और स्वरूप को नहीं छोड़ते। जैसे—द्+ध=द्ध, द्+य=द्य, क्+व=क्व, क्+त=क्त आदि। (नवम्बर १९५५)

द्वित्व व्यजन—जब एक ही व्यंजन को दुहरा दिया जाय तो द्वित्वव्यंजन कहलाता है जैसे—त्+ता=त्ता, च्+चा=च्चा, द्+दा=द्दा, ड्+डू=ड्डु, ट्+टू=ट्टू।

सन्धि व्यंजन—जो व्यंजन दो व्यंजनों के मेल से बने और अपने असली रूप को छोड़ दें, उन्हें सन्धि व्यंजन कहते हैं। जैसे क्ष, त्र, ज्ञ।

तीनों एक वाक्य में :—

संयुक्त व्यंजन दो व्यंजनों के मेल से बनते हैं और अपना स्वरूप नहीं छोड़ते, एक ही व्यंजन दोहराने से द्वित्वव्यंजन बनता है, सन्धि व्यंजन में मिले हुए व्यंजन अपना स्वरूप छोड़ देते हैं।

प्रश्न १०—दीर्घ स्वर और सन्धि स्वर पर प्रकाश डालिए।

उत्तर—दीर्घ स्वर—जिन स्वरों के उच्चारण में अधिक समय लगता है या अधिक बल पड़ता है, ध्वनि लम्बी होती है वे दीर्घ होते हैं।

सन्धि स्वर दो स्वरों को मिलाकर बनते हैं, जैसे—अ+इ=ए, अ+ए=ऐ, अ+उ—ओ, अ+ओ=औ। आजकल विद्वान् दीर्घ आ, ई, ऊ, को भी सन्धि स्वर मानने लगे हैं।

प्रश्न ११—उच्चारण स्थान से क्या तात्पर्य है? वे कितने प्रकार के हैं? यह लिखकर उनका वर्णों के साथ उल्लेख कीजिए। (नवम्बर १९५६)

उत्तर—जिन स्थानों के साथ जिह्वा का स्पर्श होने एवं आन्तरिक वायुका स्पर्श होने से वर्णों का उच्चारण होता है वे उच्चारण स्थान कहे जाते है। ये सात मूल स्थान और तीन स्थान दो-दो को मिलाकर बनते हैं। वे निम्न-लिखित हैं :—

स्थान	वर्ण	संज्ञा
१—कण्ठ	अ, आ, क, ख, ग, घ, ङ, ह, विसर्ग	कण्ठ्य
२—तालु	इ, ई, च, छ, ज, झ, ञ, य, श	तालव्य
३—दन्त	त, थ, द, ध, न, ल, स	दन्त्य
४—मूर्धा	ऋ, ट, ठ, ड, ढ, ण, र, ष	मूर्धन्य
५—ओष्ठ	उ, ऊ, प, फ, ब, भ, म	ओष्ठ्य
६—नासिका	ञ, म, ङ, ण, न, अं, अँ	अनुनासिक, नासिक्य
७—जिह्वामूल	ड़, ढ़, फ़, ज	जिह्वामूलीय
८—कण्ठ तालु	ए, ऐ	कण्ठ-तालव्य
९—कण्ठौष्ठ	ओ, औ	कण्ठौष्ठ्य
१०—दन्तौष्ठ	व	दन्तौष्ठ्य

प्रश्न १२—अक्षर विन्यास अथवा वर्ण-विन्यास का क्या अर्थ है ? उसके कुछ प्रकारों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर—वर्णों को परस्पर मिलाने की रीति को अक्षर-विन्यास या वर्ण-विन्यास कहते हैं। वर्ण मिलाकर लिखने में उच्चारण के अनुरूप रूप बदल लेते हैं ! अतः इसका भी विशेष ज्ञान होना चाहिए। इसके लिए नीचे लिखी बातों पर ध्यान देना चाहिए।

१—आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, व्यंजन से मिलने पर क्रम से ा, ि, ी, ु, ू, े, ै, ो, ौ, के चिन्हों में बदल जाते हैं। किसी भी व्यंजन को हल् (ल् की भाँति) करके आगे स्वर लिखना अशुद्ध है। जैसे—राम् आ, तुम न् ए।

२—व्यंजन के बाद स्वर अपने रूप में तभी लिखा जा सकता है जबकि व्यंजन सस्वर हो। जैसे—गाओ। यहां 'गा' में गा सस्वर है। सन्धि वाले

स्थलों पर ऐसे स्वरों में सन्धि हो जाती है। जैसे—इति आदि नहीं लिख सकते।

३—जब व्यंजन दूसरे व्यंजन से जुड़ता हो तो इसकी मात्रा उस हल् व्यंजन से पहले आती है। जैसे—शान्ति में शान्ति लिखना अशुद्ध है।

४—सीधी पाई।, आड़ी पाई वाले स्वरहीन व्यंजन को अगले व्यंजन से मिलाने के लिये सीधी पाई को हटा देना चाहिए, आड़ी पाई को थोड़ी तिरछी करके अगले व्यंजन से मिलाना चाहिए। जैसे—च्+चा=च्चा, त्+ता=त्ता, क्+व=क्व, फ्+त=फ्त।

५—बिना पाई वाले हल् व्यंजन सस्वर व्यंजन के ऊपर जोड़े जाते हैं। जैसे—लड्+डू=लड्डू, रद्+दी=रद्दी, ठट्+टू=टट्टू।

६—एक व्यंजन में कभी दो स्वर न लगाइये।

७—य, र, ल, व, श, स, ह सामने होने पर म् न जोड़िए। जैसे—संवत् (सम्वत् नहीं), संयमी (सम्यमी नहीं), संवाद (सम्वाद नहीं)।

८—सामने पांचवां वर्ण हो तो पहला हलन्त व्यंजन भी पांचवां ही रखिये।

जैसे—जगन्नाथ (जगत्नाथ नहीं), तन्निमित्त (तत् निमित्त नहीं)।

९—र् में स्वर न हो और उससे पहले स्वर हो तो उसको सामने के व्यंजन पर लगाइये, जैसे—वर्+ण=वर्ण। र में स्वर हो पर उससे पहले स्वर न हो तो पहले व्यंजन के नीचे, इस रूप में लगाइए, जैसे क्+र=क्र, ब्+र्+आ=ब्रा, र स्वर युक्त हो और उससे पहले भी स्वर हो तो बराबर में लिखिये। जैसे—चरण। टवर्ग के नीचे, हंस पद (‸) के रूप में लगता है।

१०—ऋ और रि—पहली व्यंजन में ृ के चिन्ह् से जुड़ेगी, वह व्यंजन सस्वर होगा। इसका उच्चारण कोमल होता है दूसरे का व्यंजन में सयोग होता है। (/) के रूप में पहले व्यंजन में जोड़कर 'ि' मात्रा लगा देना चाहिए।

११—वर्ग के दो दूसरे वर्ण या दो चौथे वर्ण संयुक्त नहीं होते, हल् व्यंजन दूसरा हो तो पहला, और चौथा हो तो तीसरा हो जाता है, जैसे—मख्+खी=मक्खी, मछ+छी=मच्छी, पथ्+थर=पत्थर, रघ्+घू=रग्घू।

अक्षर-विन्यास के लिये कुछ उदाहरण

क्+ष्+अ, त्+र्+इ, य्+अ=क्षत्रिय; ब्+र्+आ, ह्+म्+अ, ण्+अ=ब्राह्मण; क्+ऋ, ष्+ण्+अ=कृष्ण, त्+ऋ, ष्+ण्+आ =तृष्णा।

इसी प्रकार—क+ष्+अ, ण्+इ, क्+अ; उ+प्+अ, द्+र्+अ व्+अ; प्+अ, र्—इ, श्+र्+अ, म्+अ; ध=औ, र्+म्+इ, क्+अ; क्+र्+अ, म्+अ; स्+अ, त्+त्+ओ, ष्+अ;, अ,र्+प् +अ, ण्+अ; प्+र्+अ, त्+इ, ज+ञ्+आ; व्+इ, श्+र्+आ, म्+अ; प्+अ, र्+अ, म्+प्+अ, र्+आ; स्+त्+र+इ, य्+आ।

प्रश्न १३—प्रयत्न की परिभाषा लिखिये और उनके भेद-उपभेदों पर भी प्रकाश डालिये।

उत्तर—प्रत्येक कार्य को करने में कुछ न कुछ व्यापार करना पड़ता है। वर्णों को बोलने में जो व्यापार होता है, उसे प्रयत्न कहते हैं। इसके दो भेद होते हैं—

१. आभ्यन्तर, २. बाह्य।

आभ्यन्तर—वर्णों को बोलने के बाद होने वाले व्यापार को आभ्यन्तर प्रयत्न कहते हैं।

बाह्य—वर्णों को बोलने के बाद होने वाले व्यापार को बाह्य प्रयत्न कहते हैं।

आभ्यन्तर के भेद—इसके चार भेद हैं :

स्पृष्ट—स्पर्श संज्ञक (क से म तक) वर्णों का प्रयत्न स्पृष्ट होता है। इन्हें बोलने में जिह्वा का कण्ठ आदि से स्पर्श होता है।

ईषत्स्पृष्ट—जिन वर्णों को बोलने में जीभ का हल्का स्पर्श होता है, उनका ईषत्स्पृष्ट प्रयत्न होता है। जैसे श, ष, स, ह।

ईषद्विवृत—जिनके उच्चारण में मुंह थोड़ा सा खुलता है, उनका ईषद्-विवृत प्रयत्न होता है। जैसे—अन्तःस्थ—य, र, ल, व।

नोट—संस्कृत व्याकरण के अनुसार अन्तःस्थों का ईषत्स्पृष्ट प्रयत्न होता है।

विवृत—जिनके उच्चारण में मुंह अधिक खुलता है, ध्वनि गूंजकर बाहर निकलती है, उनका प्रयत्न विवृत होता है। जैसे—स्वर।

बाह्य—बाह्य के मुख्य भेद दो हैं—घोष, अघोष।

घोष—जिन वर्णों के उच्चारण के पश्चात् कुछ गूंज होती है। जैसे वर्गों के तीसरे, चौथे, पांचवें वर्ण, य, र, ल, व स्वर।

अघोष—जिनके उच्चारण में इस प्रकार ध्वनि न हो, जैसे वर्गों के पहले दूसरे वर्ण, श, ष, स, ह।

वर्णों को बोलने में लगने वाले बल के विचार से दो भेद और होते हैं—

१—अल्प प्राण, २—महाप्राण।

अल्पप्राण—जिन वर्णों को बोलने में कम बल लगे, वे अल्प प्राण कहे जाते हैं। जैसे वर्गों के पहले तीसरे, पांचवें वर्ण, य, र, ल, व स्वर।

(नवम्बर १९५५)

महाप्राण—जिन्हें बोलने में अधिक बल लगे, वे महाप्राण कहलाते हैं। वर्णों के दूसरे, चौथे वर्ण, श, ष, स, ह महाप्राण होते हैं।

(जून १९५५, नवम्बर ५६)

प्रश्न १४—अर्थ के विचार से शब्द के भेद लिखिये और उदाहरण भी दीजिये। (जून १९५५)

उत्तर—शब्द के अर्थ तीन होते हैं। उनका ज्ञान कराने के विचार से शब्द के भी तीन भेद होते हैं—वाचक, लाक्षणिक, व्यंजक।

वाचक—शब्द का सीधा या प्रसिद्ध अर्थ वाच्य होता है। उसका ज्ञान कराने वाला—शब्द वाचक होता है। जैसे गाय घास खा रही है। गधा मूर्ख पशु है। यहां गाय और गधा शब्द अपने प्रसिद्ध पशु अर्थ में ही प्रयुक्त हुए हैं। अतः दोनों ही वाचक हैं।

लाक्षणिक—जब सीधा अर्थ तो ठीक न लगे और शब्द उससे सम्बन्ध रखने वाला दूसरा अर्थ बताये। जैसे 'रामदीन तो गौ है।' 'यह बालक तो शेर है।' इन वाक्यों में गौ और शेर मनुष्य के लिये प्रयुक्त होने से सीधा अर्थ

ठीक नहीं जंचता; अतः गौ का सीधा सादा, शेर का बहादुर अर्थ लिया जायगा।

व्यंजक—जब शब्द किसी गूढ अर्थ का ज्ञान कराए। जैसे किसी का अकेला पुत्र मर जाने पर कहें—उसके कुल का दीपक बुझ गया। इसका अर्थ होगा कि अकेला पुत्र मरने से वंश ही नष्ट हो गया। इसी प्रकार और भी अर्थ निकलते हैं।

प्रश्न १५—व्युत्पत्ति के विचार से शब्द के भेद बताइये, प्रत्येक का लक्षण लिखकर दो उदाहरण दीजिए। (नवम्बर १९५५)

उत्तर—व्युत्पत्ति शब्दों की बनावट को कहते हैं। इसके विचार से शब्द के तीन भेद होते हैं—रूढ़, यौगिक, योग रूढ़।

रूढ़—वास्तविक शब्द रूढ़ है; जो शब्द अपने अंशों का पृथक् अर्थ न रखकर परम्परागत अर्थ रखे, अथवा जो किसी अर्थ को केवल प्रसिद्धि के कारण बतावे। जैसे—घोड़ा, लोटा, खाट, चुन्नू।

यौगिक—जिन शब्दों के हर एक खण्ड का अपना-अपना अर्थ हो, जैसे—पाठक=पाठ्+अक=पढ़ने वाला, पाचक=पाच्+अक=पकाने वाला। अध्यापक=अधि+आयक=अध्यापक=पढ़ाने वाला।

योग रूढ़—जो शब्द हो तो यौगिक, पर खास अर्थ का ही ज्ञान कराये। जैसे—पंकज, पीताम्बर, चारपाई, चौपाया।

पंक कीचड़ को कहते हैं, ज अर्थात् उत्पन्न होने वाला, कीच से मच्छर आदि उत्पन्न होते हैं, पर पंकज कमल के अर्थ में ही रूढ़ है। पीताम्बर पीले वस्त्र को कहते हैं परन्तु यह रेशमी वस्त्र में ही रूढ़ है। चार पैर पशु के भी होते हैं, परन्तु खाट को ही चारपाई कहते हैं। इसी प्रकार चौपाया शब्द केवल पशु के लिये प्रयुक्त होता है।

प्रश्न १६—हिन्दी के शब्द भण्डार में कितने प्रकार के शब्द होते हैं?

अथवा

उत्पत्ति के विचार से शब्दों के कितने भेद होते हैं?

उत्तर—उत्पत्ति के विचार से शब्द चार प्रकार के हैं—

तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशी।

तत्सम—जो शब्द संस्कृत से ज्यों के त्यों हिन्दी में आ गये हैं वे तत्सम

के नाम से पुकारे जाते हैं। जैसे—कर्म, धर्म, पुस्तक, माता, पिता।

तद्भव—जो संस्कृत के शब्द हिन्दी में अपना रूप बदल कर आये है। जैसे—गृह से घर, पुस्तक से पोथी, ग्रथि से गांठ, खट्वा से खाट, घृत से घी, माता से मां आदि।

देशज—जो शब्द देश के किसी भाग में केवल बोल-चाल में प्रयुक्त हों। जैसे—मुण्डा, लड़की, माहुर, बेंगन।

विदेशी—जो शब्द हिन्दी में विदेशी भाषा से आये हों। जैसे—कलम, चाकू, स्कूल, अलमारी, टेबल, नीलाम आदि।

परिवर्तन के विचार से शब्द के दो भेद होते हैं—१. विकारी २. अविकारी।

विकारी—वाक्य में प्रयोग होने पर जिन शब्दों का स्वरूप बदल जाय। संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया ये विकारी शब्द है।

अविकारी—जिनमें लिंग, वचन आदि के कारण परिवर्तन न हो वे अविकारी होते हैं। इन्हीं को अव्यय कहते हैं।

प्रश्न १७—वाक्य में प्रयोग की दृष्टि से शब्द के कितने भेद होते हैं?
(नवम्बर ५५)

उत्तर—वाक्य में प्रयोग की दृष्टि से शब्द के आठ भेद होते हैं—

१—संज्ञा, २—सर्वनाम, ३—विशेषण, ४—क्रिया, ५—क्रिया विशेषण, ६—सम्बन्ध बोधक अव्यय, ७—योजक अव्यय, ८—द्योतक अव्यय।

प्रश्न १८—संज्ञा की परिभाषा लिखते हुए उसके भेदों पर भी प्रकाश डालिए।

उत्तर—किसी वस्तु, स्थान, प्राणी, धर्म और व्यापार के ज्ञान कराने वाले शब्द को संज्ञा कहते हैं। जैसे राम, नगर, घोड़ा, पुस्तक, हिंसा।

संज्ञा के तीन भेद होते है—जातिवाचक संज्ञा, व्यक्तिवाचक संज्ञा, भाववाचक संज्ञा।

जातिवाचक संज्ञा— जिसके द्वारा उस प्रकार के सभी व्यक्तियों का ज्ञान हो जाय, उसको जातिवाचक संज्ञा कहते हैं।

जैसे—पुस्तक, नगर, पशु, गाय, घोड़ा, मनुष्य, नारी।

व्यक्तिवाचक संज्ञा—जो किसी खास वस्तु; स्थान या व्यक्ति का ज्ञान कराये, उसे व्यक्तिवाचक सज्ञा कहते है। जैसे—कलकत्ता, रामायण, राम, गंगा, ताज-महल।

भाववाचक संज्ञा (प्रथमा, सवत् २०१७)—जिससे किसी धर्म, अवस्था, व्यापार आदि का ज्ञान हो। जैसे—मनुष्यता, हिंसा, होड़, बुढापा, बचपन।

अंग्रेजी व्याकरण में द्रव्यवाचक और समुदाय वाचक ये दो सज्ञाये और भी मानी गई है।

द्रव्य वाचक—जो शब्द अन्य पदार्थ का निर्माण करने वाले तत्वों का ज्ञान कराये, जैसे—वायु, गैस, मिट्टी।

समुदाय वाचक—जो एक ही प्रकार की वस्तुओं के समूह का ज्ञान कराये। जैसे—कक्षा, सेना, सभा, माला, पक्ति।

हिन्दी व्याकरण मे इन दोनो की गणना जातिवाचक संज्ञा मे होती है।

प्रश्न १९—भाववाचक संज्ञा बनाने के नियमों पर प्रकाश डालिए।

उत्तर—भाव वाचक संज्ञा, जाति वाचक संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, क्रिया विशेषण और निरर्थक शब्दों से बनती है।

जातिवाचक संज्ञा से—ता, त्व लगाने से। जैसे—मनुष्य से मनुष्यता, मानव से मानवता, स्त्रीत्व, पशुत्व।

सर्वनाम से—आप मे आपा, अपनापन।

विशेषण से—रंगीन से रंगीनी, शिशु से शिशुत्व, शैशव, सुन्दर से सौंदर्य, सुन्दरता, मित्र से मैत्री, बच्चा से बचपन, बूढ़ा से बुढापा।

क्रिया से—लड़ना से लड़ाई, हसना से हंसाई, हसी, दौड़ना से दौड़, खोजना से खोज, गमन, चलन, खा से खाना।

क्रिया विशेषण से—दूर स दूरी, समीप से सामीप्य, शीघ्र से शीघ्रता।

निरर्थक या अनुकरणवाचक शब्दों से—खटपट, भिनभिनाहट, घिस-घिस, चरचराहट।

प्रश्न २०—व्यक्तिवाचक को जातिवाचक और जातिवाचक को व्यक्ति-वाचक में कैसे बदला जाता है? (नवम्बर १९५५)

उत्तर—जब तलना के रूप मे एक व्यक्ति को बहुवचन में कहा जाता है,

तब वह जातिवाचक संज्ञा के रूप में बदल जाता है। जैसे—भारत को लाखों सुभाषों और नेहरूओं की आवश्यकता है।

यहां सुभाष और नेहरू शब्द व्यक्तिवाचक होकर भी जातिवाचक के रूप में प्रयुक्त हुए हैं।

जातिवाचक संज्ञा व्यक्तिवाचक के रूप में:—

गांधी जी ने भारत को सत्याग्रह का अस्त्र दिया। यहां गांधी शब्द केवल मोहनदास के लिए प्रयुक्त होने से व्यक्तिवाचक बन गया।

प्रश्न २१—संज्ञा में विकार किन कारणों से होता है?

उत्तर—संज्ञा में विकार लिंग, वचन और कारक के कारण होता है।

प्रश्न २२—लिंग की परिभाषा देकर उसके परिवर्तन सम्बन्धी मुख्य नियमों का परिचय दीजिए।

उत्तर—जिससे संज्ञा के स्त्रीत्व और पुरुषत्व का ज्ञान होता है, उस चिन्ह को लिंग कहते हैं। लिंग का अर्थ ही चिन्ह होता है। हिन्दी में लिंग दो ही होते हैं। पुलिंग, स्त्रीलिंग।

पुरुषत्व का ज्ञान कराने वाले चिन्ह को पुलिंग कहते हैं।

स्त्रीत्व का ज्ञान कराने वाले चिन्ह को स्त्रीलिंग कहते हैं।

लिंग परिवर्तन के नियम:—

१. पुलिंग अकारान्त शब्दों के अन्त में जो कि तत्सम हो, स्त्रीलिंग में आ या ई लग जाता है।

जैसे—सुत से सुता, बाल से बाला, वैश्य से वैश्या, देव से देवी, नद से नदी।

२. आकारान्त पुलिंग शब्दों के अन्त में ई या इया लगाने से स्त्रीलिंग होता है।

जैसे—रस्सा से रस्सी, डण्डा से डण्डी, डिब्बा से डिबिया, डिब्बी, चूहा से चुहिया।

३. जातिवाचक शब्दों के अन्त में नी, ई, इन लगाने से स्त्रीलिंग बनता है।

मोरनी, ऊँटनी, शेरनी, धोबन, चमारी, लुहारी, सुनारी।

४. कुछ शब्दों के अन्त में आनी या आइन लगने से स्त्रीलिंग बनता है।

जैसे—क्षत्रियाणी, पण्डितानी, बबुआनी, बबुआइन।

५. जिन पुंलिग शब्दों के अन्त में अक आता है स्त्रीलिंग बनाने के लिए उनके अन्त में आ और क से पहले अ को इ होता है। जैसे—बालक से बालिका, अध्यापक से अध्यापिका।

६. जिनमें स्वर के बाद मान् या वान् आए, स्त्रीलिंग में मती या वती बन जाता है। जैसे—बुद्धिमान् से बुद्धिमती, श्रीमान् से श्रीमती, गुणवान से गुणवती।

७. कुछ के लिए स्त्रीलिंग पथक् हैं—

राजा	रानी
पिता	माता
भाई	भाभी
बहनोई	बहिन
पुत्र	पुत्रवधू
बिलाव	बिल्ली

८. कुछ शब्दों के स्त्रीलिंग पुलिंग शब्द एक ही होते हैं। उनके लिए नर और मादा शब्द का प्रयोग होता है। जैसे—

चीता—मादा चीता, भेड़िया—मादा भेड़िया, कौआ—मादा कौआ, कवि—स्त्री कवि (कवयित्री), कोकिल—कोकिला, कोयल, नर कोयल।

नोट—नीचे लिखे शब्द सदा पुंलिग या स्त्रीलिंग रहते हैं।

पुंलिग

१. अन्नवाचक	गेहूं, चना, चावल, बाजरा, जौ।
२. धातुवाचक	सोना, लोहा, पीतल, तांबा, सीसा, रांगा।
३. रत्नवाचक	हीरा, मोती, माणिक, पुखराज, नीलम।
४. समुद्र वाचक	हिन्दमहासागर, प्रशान्त महासागर।
५. मासवाचक	चैत्र, वैसाख ज्येष्ठ।
६. ऋतुवाचक	ग्रीष्म, वसन्त, आदि।
७. वारवाचक	रविवार, सोमवार आदि।
८. नदवाचक	सिन्ध, ब्रह्मपुत्र, चिनाव।

नियत स्त्रीलिंग—

१. नदीवाचक	गंगा, यमुना, सरस्वती।
२. दाल	मूंग, मसूर, उड़द।
३. भाषा	हिन्दी, अंग्रेजी, पंजाबी आदि।
४. तिथि	द्वितीया, चतुर्थी, चौथ।
५. राशि	कन्या, तुला, मकर।
६. रत्न	मणि।
७. धातु	चांदी।
८. अन्न	मकई।

समूह वाचक शब्दों में वृन्द, वर्ग, मण्डल, समूह, पुंज, यूथ पुल्लिग है और श्रेणी, आली, अवलि, राशि, सभा, कक्षा, संसद्, परिषद्, राजी आदि स्त्रीलिंग मे प्रयुक्त होते हैं।

प्रश्न २३—वचन किसे कहते हैं? वह कितने प्रकार का होता है?

उत्तर—वचन का अर्थ है 'संख्या'। 'संज्ञा' और 'सर्वनाम' की संख्या बताने वाले चिन्ह को ही वचन कहते हैं। जैसे लड़का, लड़के, यहां 'लड़का' कहने से एक का ज्ञान होता है और 'लड़के' कहने से अधिक का।

वचन दो होते हैं—एकवचन, बहुवचन।

एक संख्या बताने वाला एकवचन होता है और एक से अधिक संख्या का सूचक बहुवचन कहा जाता है। उदाहरण पहले ही है।

वचन विकार के नियम—

१. अकारान्त पुल्लिग के सामने 'ने', 'से', को आदि के न होने पर बहुवचन में भी कोई विकार नहीं होता। जैसे—एक मनुष्य, बहुत से मनुष्य, दो सेर चावल, दस पापड़। कारक चिन्ह आने पर अ को ओं हो जाता है। जैसे—मनुष्यों ने, चावलों में।

२. अकारान्त पुल्लिग शब्दों के बहुवचन में सामने कारक न हो तो आ का ए हो जाता है और कारक चिन्ह होने पर 'औ' और लग जाता है। जैसे—दादा, मामा, नाना। इनके साथ कारक हो तो शब्द के 'आ' को ही 'ओं' होता है। जैसे—'बाप दादों ने।"

३. अकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों के बहुवचन में बिना कारक चिन्ह के अतिरिक्त एं लगता है और कारक चिन्ह होने पर ओं लगता है। जैसे लताएं, माताएं, मातओं को, महिलाओं के लिए।

४ अकारान्त स्त्रीलिंग शब्द के बहुवचन में बिना कारक चिन्ह अ को एं और कारक-चिन्ह होने पर ओ होता है। जैसे—पुस्तकें, पुस्तकों में, दवातों से।

५. पुल्लिग इकारान्त, ईकारान्त, ऊकारान्त बिना कारक चिन्ह बहुवचन में भी ज्यां के त्यों रहते है पर कारक चिन्ह होने पर पहले दो के साथ इयों और शेष के साथ उवों, लग जाते है। उवों, अशुद्ध है जैसे मुनि, मुनियों-ने; कवि, कवियों ने; साधु, साधुओं को; डाकू, डाकुओं से; आदमी आदमियों से।

६. औकारान्त शब्दों के बहुवचन में कारक चिन्ह हो तो उओं, वों, बिना कारक चिन्ह एं, उएं, उवें लगते है। जैसे—गौएं, गउएं, गउओं को, गौवों को।

७. 'या' अन्त वाले स्त्रीलिग शब्दों के बहुवचन मे बिना कारक चिन्ह केवल अनुनासिक लगता है और कारक चिन्ह होने पर आ को ओं बन जाता है। वुढ़िया, वुढ़िया, चिड़िया।

८. शब्द के अन्त में ता लगा या समूहवाचक वृन्द, वर्ग, ढर आदि शब्द लगाने से बहुवचन बन जाता है। छात्र वृन्द, विद्यार्थी गए, जनता, मधुकर पुंज।

प्रश्न २४—कारक की परिभाषा लिखिए और उसके भेद भी सोदाहरण लिखिये।

उत्तर—वाक्य में आये शब्दों के परस्पर सम्बन्ध को बताने वाली रीति को कारक कहते हैं इसको सूचित करने वाले चिन्ह विभक्ति या कारक चिन्ह कहे जाते है। जैसे—राम ने श्याम को देखा।

कारक के भेद—कारक आठ होते है। वे निम्नलिखित है—

१. कर्ता—किसी व्यापार को स्वतन्त्रता से करने वाला कर्ता कारक कहा जाता है। जैसे—मोहन पुस्तक पढ़ता है। श्याम ने रोटी खाई। इन

वाक्यों में पढ़ने वाला और खाने वाला क्रमशः मोहन और श्याम है। अतः ये दोनों कर्ता कारक हैं। चिन्ह—ने, से।

२. **कर्म**—क्रिया के फल का आश्रय कर्म होता है। अथवा कर्ता का क्रिया को करने के लिए जो अत्यन्त आवश्यक उद्देश्य है, वह कर्म है। जैसे—पहले वाक्य में पुस्तक फल अर्थात् ज्ञान प्राप्ति का मुख्य आश्रय होने से कर्म है। दूसरे वाक्य में रोटी कर्म है।

बहुधा कर्ता और कर्म के चिन्ह लुप्त रहते है। कर्म का चिन्ह 'को' होता है।

३. **कारण**—किसी कार्य को करने में जो सहायक हो, उसे करण कहते हैं। इसका चिन्ह 'से' होता है। 'द्वारा' का भी प्रयोग होता है।

जैसे—राम ने बाण से बाली को मारा। यहां मारने मे बाण ही सबसे अधिक सहायक है।

४. **सम्प्रदान**—जिसे कुछ दिया जाय या जो क्रिया का प्रयोजन हो, उसे सम्प्रदान कारक कहते हैं। इसका चिन्ह 'के लिए' है। कभी-कभी 'को' का भी प्रयोग होता है। जैसे—बाला पढ़ने के लिए स्कूल गई। वह नहाने को जाता है। यहां 'को' सम्प्रदान के अर्थ में आया है।

५. **अपादान**—जिस वस्तु से अलग हो, जिससे डरे, जिससे रक्षा करनी हो, जिससे अन्तर बताया जाय, वे सब अपादान कहलाते हैं। इसका चिन्ह 'से' है। जैसे—पेड़ से पत्ता गिरता है। धनी चोरों से डरते है। मुझे अधर्म से बचाओ कलकत्ता दिल्ली से पूर्व में है। गुरु से विद्या पढ़ता है।

६. **सम्बन्ध**—दो शब्दों में सम्बन्ध प्रकट हो तो सम्बन्ध कारक होता है। इसका चिन्ह 'का, के, की' होता है। जैसे—राजा का पुत्र, हाथ की अंगुली।

७. **अधिकरण**—किसी वस्तु के आधार (सहारा) को अधिकरण कारक कहते है। इसका चिन्ह 'में' 'पै' 'पर' होता है। नगर में कोलाहल होता है। वृक्ष पर बन्दर रहते है।

सम्बोधन—किसी को पुकारने को सम्बोधन कहते है। इसके चिन्ह 'हे, अरे, ओजी, अजी, अरी, री, आदि हैं। अन्य कारकों के चिन्ह संज्ञा के अन्त में प्रयुक्त होते हैं। किन्तु सम्बोधन का चिन्ह पहले प्रयुक्त होता है। जैसे—हे

भगवान्, अरे राम ! अरी पगली, अजी, जरा सुनिए त सही। तू कहां जायगी री ? ओजी, आप यहाँ क्यों खड़े हैं ?

प्रश्न २५—रूपान्तर का क्या अर्थ है ? उसका क्या प्रकार है ? उदाहरण देकर समझाइये।

उत्तर- रूपान्तर का अर्थ है—रूप वदलना, जब शब्द का लिंग, वचन और कारक के कारण स्वरूप वदले, इसे रूपान्तर कहते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि सभी कारकों में शब्द का प्रयोग करना। उदाहरण के लिए हम पुल्लिग और स्त्रीलिंग दोनों में शब्दों के रूप लिख रहे हैं—

बालक

	एक वचन	वहुवचन
कर्ता	वालक, वालक ने, वालक से,	वालक, वालकों ने, वालकों से
कर्म	वालक को	वालकों को
करण	वालक से	वालकों से
सम्प्रदान	वालक के लिए	वालकों के लिए
अपादान	वालक से	वालकें से
सम्वन्ध	वालक का	वालकों का
अधिकरण	वालक में, वालक पर	वालकों में, वालकों पर
सम्वोधन	हे वालक	हे वालको

बालिका

कर्ता	वालिका, वालिका ने	वालिकाएं वालिकाओं ने
कर्म	वालिका को	वालिकाओं को
करण	वालिका से	वालिकाओं से
सम्प्रदान	वालिका के लिए	वालिकाओं के लिए
अपादान	वालिका से	वालिकाओं से
सम्वन्ध	वालिका का	वालिकाओं का
अधिकरण	वालिका में, वालिका पर	वालिकाओं में, पर
सम्वोधन	हे वालिके	हे वालिकाओ

नोट—अकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों के सम्बोधन के एकवचन में आ को ए हो जाता है। ईकारान्त शब्दों को 'इ' हो जाता है। उकारान्त को ओ हो जाता है।

नदी शब्द

कर्ता	नदी, नदी ने	नदियां, नदियों ने
कर्म	नदी को	नदियों को
करण	नदी से	नदियों को
सम्प्रदान	नदी के लिए	नदियों के लिए
अपादान	नदी से	नदियों से
सम्बन्ध	नदी का	नदियों का
अधिकरण	नदी में, नदी पर	नदियों में, नदियों पर
सम्बोधन	हे नदी !	हे नदियो !

इसी प्रकार अन्य शब्दों के रूपान्तर भी करने चाहिएं।

प्रश्न २६—सर्वनाम की परिभाषा और उनकी उपयोगिता लिखकर भेदोपभेदों पर प्रकाश डालिये। (नवम्बर ५५, जून ५६)

उत्तर—वाक्य में संज्ञा के स्थान पर प्रयुक्त होने वाले शब्द को सर्वनाम कहते हैं।

वाक्य में यदि एक ही शब्द कई बार प्रयोग आये तो अच्छा नहीं लगता। जैसे राम को राम के घर जाने पर राम के बाप ने मारा। यहाँ 'राम' शब्द का तीन बार प्रयोग अच्छा नहीं लगता। इसे ही सर्वनाम द्वारा कहते हैं—राम को अपने घर जाने पर उसके बाप ने मारा। यहां वाक्य में सौंदर्य आ गया है।

सर्वनाम के भेद—सर्वनाम के छः भेद हैं—पुरुषवाचक, निश्चय वाचक, अनिश्चय वाचक, सम्बन्ध वाचक, प्रश्न वाचक, निज वाचक।

१. **पुरुषवाचक**—जिससे वक्ता, श्रोता और जिसके सम्बन्ध में बात हो रही हो, उसका ज्ञान हो, उसको पुरुषवाचक सर्वनाम कहते हैं। इसके भी तीन भेद हैं:—

उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष, अन्य पुरुष।

उत्तम पुरुष—जिससे वक्ता का ज्ञान होता है। जैसे—मैं, हम।

मध्यम पुरुष—जिससे श्रोता का ज्ञान होता है। जैसे तू, तुम।

अन्य पुरुष—जिसके सम्बन्ध में बात की गई हो, उसका ज्ञान कराने वाला अन्य पुरुष होता है। जैसे—वह, वे, यह, ये।

२. निश्चय वाचक—जिससे निश्चित व्यक्ति का ज्ञान हो। यह, ये, वह, वे।

३. अनिश्चय वाचक—जिससे पुरुष का निश्चित ज्ञान न हो। जैसे—कोई, किन्हीं।

४. सम्बन्ध वाचक—जिससे दो संज्ञाओं में परस्पर सम्बन्ध का ज्ञान हो। जैसे—जो, सो वाक्य में इन दोनों का साथ ही प्रयोग होता है।

५. प्रश्नवाचक—कौन, क्या।

६. निजवाचक—जिससे वक्ता या श्रोता के स्वयं के सम्बन्ध में कहने का ज्ञान हो। जैसे—आप।

इसी का प्रयोग बहुवचन में हो तो आदरवाचक बन जाता है।

सर्वनाम के विकार एवं रूपान्तर—

सर्वनाम के वचन बदलने पर विकार होता है। जो कि निम्न प्रकार से है :—

१—मैं, हम। २—तू, तुम, तुम्ह। ३—यह, उस, उन। ४—यह, इस इन। ५—कोई, किसी, किन्हीं। ६—जो, जिस, जिन; सो तिस, तिन। ७—कौन, किस, किन। ८—आप, अपना।

मैं

मैं, मैंने, मुझसे	हम, हमने, हमसे
मुझको, मुझे	हमको, हमें
मुझसे	हमसे
मेरे लिए	हमारे लिए
मुझसे	हमसे

मेरा, मेरी	हमारा, हमारी
मुझ में, मुझ पर	हममें, हम पर

नोट—सर्वनाम में सम्बोधन नहीं होता।

यह

यह, इसने, इससे	ये, इन्होंने, इनसे
इसको, इसे	इनको, इन्हें
इससे	इनसे
इसके लिए,	इनके लिए
इससे	इनसे
इसका, इसकी	इनका, इनकी
इसमें, इस पर	इनमें, इन पर

कोई

कोई, किसी ने, किसी से	कोई, किन्हीं ने, किन्हीं से
किसी को	किन्हीं को
किसी से	किन्हीं से
किसी के लिए	किन्हीं के लिए
किसी से	किन्हीं से
किसी का	किन्हीं का
किसी में, किसी पर	किन्हीं में, किन्हीं पर

आप

निजवाचक	आदरवाचक
आप, अपने आप, आपने से	आपने, आपसे
अपने को, आपको	आपको
आपसे, अपने से	आपसे
अपने लिए	आपके लिए
अपने से	आप से
अपना	आपका
अपने में, अपने पर	आप पर, आप में

प्रश्न २७—विशेषण की परिभाषा लिखकर उसके भेद और उसके भी लक्षण और उदाहरण लिखिए। (जून १९५७)

उत्तर—संज्ञा और सर्वनाम की विशेषता का ज्ञान कराने वाला शब्द विशेषण कहा जाता है। जैसे मोरी से काला सांप निकला। यहां "काला" सांप का रंग बताता है।

विशेषण के चार भेद होते हैं—

१—गुणवाचक। २—संख्यावाचक। ३—परिमाणवाचक ४—सांकेतिक।

१. गुणवाचक—संज्ञा के रंग, अवस्था, देश, काल, दिशा, गुण, दोष और सम्बन्ध को बताने वाला गुणवाचक विशेषण होता है। जैसे—

(क) गुण-दोष—विद्वान्, मूर्ख, दुर्जन, सज्जन, सुशील, दुशील, सुन्दर, कुरूप।

(ख) वर्ण-रंग—गोरा, काला, पीला।

(ग) अवस्था—मोटा, पतला, ताजा, बासी, बूढ़ा, तरुण।

(घ) देश—भारतीय, रूसी, चीनी, मद्रासी, पंजाबी।

(ङ) काल—प्राचीन, नवीन, वार्षिक, मासिक, दैनिक आदि।

(च) दिशा—पूर्वी, पश्चिमी, दाक्षिणात्य।

(छ) सम्बन्धबोधक—भवदीय, गांगेय, पर्वतीय, राजकीय।

२. संख्या वाचक—जो संज्ञा या सर्वनाम की संख्या का ज्ञान कराये। जैसे—एक पुस्तक, दस प्राणी।

संख्यावाचक विशेषण के तीन भेद होते हैं—निश्चित संख्या वाचक, अनिश्चित संख्या वाचक, प्रत्येक बोधक।

(i) निश्चित संख्यावाचक—जिससे संज्ञा की निश्चित संख्या का ज्ञान हो। इसके चार भेद हैं:— (जून १९५५, जून ५६)

(अ) गणना वाचक (प्रथमा संवत् २०१७)—जो संज्ञा की गिनती बताये। जैसे एक, दो, चार, छः, आदि।

(आ) क्रम वाचक—जिससे संज्ञा के क्रम का ज्ञान हो। जैसे—पहला, दूसरा, चौथा।

(इ) **आवृत्ति वाचक**—जिससे संख्या के गुणन का ज्ञान हो । जैसे—दुगुना, चौगुना ।

(ई) **समुदाय वाचक**—जिससे सामूहिक संख्या का ज्ञान हो । जैसे—चारों, दसों ।

(ii) **अनिश्चित सख्या वाचक**—जिससे किसी संख्या का निश्चियात्मक ज्ञान न हो । जैसे—कुछ पुस्तकें, कई लोग, बहुत से आम, सैकड़ों रुपये ।

(iii) **प्रत्येक बोधक**—जिससे पृथक्-पृथक् व्यक्तियों की संख्या जानी जाय । जैसे—एक-एक, दो-दो, चार-चार ।

३. **परिमाण वाचक**—जिससे संज्ञा या सर्वनाम के नाप और तोल का ज्ञान होता है । जैसे—दो सेर दूध, चार बीघा भूमि ।

इसके भी दो भेद हैं—निश्चित परिमाण वाचक, अनिश्चित परिमाण वाचक ।

निश्चित परिमाण वाचक—जिससे संज्ञा के निश्चित नाप और तोल का ज्ञान हो ।

जैसे—दो गज कपड़ा, पांच बीघा भूमि, छः सेर पानी, चार सेर दूध ।

अनिश्चित परिमाण वाचक—जिससे संज्ञा के निश्चित नाप और तोल का ज्ञान न हो ।

जैसे—कुछ दूध, थोड़ा सा पानी, जरा सी आय, बहुत सा कपड़ा ।

अनिश्चित संख्या वाचक और अनिश्चित परिमाण वाचक में भेद—

अनिश्चित संख्या वाचक में गिनने योग्य वस्तुओं की गणना होती है ।

अनिश्चित परिमाण वाचक में नापने-तोलने-योग्य वस्तुएं गिनी जाती हैं ।

४. **सार्वनामिक विशेषण**—जब सर्वनाम संज्ञा के साथ उसके संकेत के रूप में आता है तब वह विशेषण बन जाता है । इ वाचक, निर्देशक या सार्वनामिक विशेषण कहते हैं ।

जैसे—वह मेरी पुस्तक है । यहां 'वह' सर्वनाम विशेषण है ।

वह पुस्तक मेरी है—यहां वह पुस्तक की ओर इशारा करने के कारण 'पस्तक' का विशेषण है ।

प्रश्न २८—विशेषण बनाने के कुछ प्रकारों का उल्लेख कीजिये।

उत्तर—विशेषण बनाने के अनेक नियमों में से कुछ निम्नलिखित हैं—

(i) अकारान्त भाव वाचक संज्ञाओं के सामने वान् लगाने में 'वाला' अर्थ का विशेषण बन जाता है। इसी प्रकार अन्त में 'इक' लगाने से और पहले स्वर की वृद्धि से भी विशेषण बनता है। जैसेः—

गुण-गुणवान्, धन-धनवान्, ऐश्वर्य-ऐश्वर्यवान् धर्म-धार्मिक।

इन्हीं अर्थो में निष्ठ, सम्पन्न, शाली, पूर्ण, शील आदि लगाकर भी विशेषण बन जाता है।

(ii) इकारान्त भाववाचक संज्ञा के साथ मान् एवं उपर्युक्त प्रत्यय लगते हैं। जैसे—कान्तिमान्, कान्तिपूर्ण, कान्तिसम्पन्न।

(iii) व्यक्ति वाचक संज्ञाओं के अन्त में 'ईय', 'ई' अथवा 'इया' प्रत्यय लगता है।

जैसे—भारत—भारतीय, चीन—चीनी, पंजाबी, कलकत्ता—कलकतिया।

(iv) काल वाचक, वस्तु वाचक अकारान्त शब्दों के साथ इक लगाने से विशेषण बनता है। जैसे—दिन से—दैनिक, वर्ष—वार्षिक, मास—मासिक।

(v) इकारान्त भाव वाचक संज्ञाओं के 'इ' के स्थान पर अ करने से भी विशेषण बनता है। जैसे—शान्ति—शान्त, बुद्धि—बुद्ध, कान्ति—कान्त।

(vi) स्त्रीलिंग नदी वाचक शब्दों के साथ अन्त में एय लगा कर आदि स्वर की वृद्धि (आ, ऐ, औ, आर) करने से भी विशेषण बनता है। जैसे—नदी—नादेय, यमुना—यामुनेय, गंगा—गांगेय।

(vii) हिन्दी के शब्दों के अन्त में एरा, एत, आका या आकू, आड़ी, आर, वैया, ईला लगाने से भी विशेषण बन जाते हैं। जैसे—सांप से—सपेरा, लाठी—लठैत, लड़ना—लड़ाका या लड़ाकू, खेल—खिलाड़ी, सोना—सुनार, लिखना—लिखवैया, लज्जा—लजीला आदि।

(आवश्यक विशेषण संग्रह करके व्याकरण भाग के अन्त में दिये हैं।)

प्रश्न २९—विशेषण की अवस्था कितनी होती है? प्रत्येक का स्वरूप उदाहरण सहित लिखिये।

उत्तर—विशेषता के विचार से जब संज्ञाओं की परस्पर तुलना की जाती हैं, इसे विशेषण की अवस्था कहते हैं । ये तीन होती हैं:—

मूलावस्था—जिसमें किसी से तुलना न की गई हो । जैसे—मोहन सुन्दर है ।

उत्तरावस्था—जब एक विशेषण के कारण दो पदार्थों में तुलना की जाती है । जैसे—बाला शीला से अधिक सुन्दर है । इस अवस्था को सूचित करने के लिये विशेषण के साथ 'तर' प्रत्यय लग जाता है । जैसे—बाला शीला से चतुरतर है ।

उत्तमावस्था—जब तुलना अनेक पदार्थों में की जाती है, उसे उत्तमावस्था कहते हैं । इसकी सूचना 'तम' प्रत्यय लगाने से भी होती है । जैसे—राम दशरथ को चार पुत्रों में प्रियतम थे । अथवा—राम दशरथ को चारों पुत्रों में सबसे अधिक प्रिय थे ।

प्रश्न ३०—'क्रिया' की परिभाषा लिख कर उसके भेद लिखिये ।

उत्तर—किसी कार्य का करना या होना जिस शब्द से जाना जाय, उसे क्रिया कहते हैं । जैसे दशरथ के चार पुत्र थे । इस वाक्य में 'थे' क्रिया है । छात्रों ने गुरु से विद्या पढ़ी—यहां 'पढ़ी' क्रिया है ।

इसके दो भेद हैं:—सकर्मक, अकर्मक ।

सकर्मक—जिस क्रिया का होना कर्ता के अतिरिक्त कर्म पर निर्भर हो । अथवा जिसके व्यापार का भार कर्ता पर और फल का भार कर्म पर हो । जैसे—मोहन पुस्तक पढ़ता है । यहां पढना क्रिया पुस्तक के बिना नहीं हो सकती । लेना, देना, पढ़ना, लिखना, कहना, देखना, सीना, छूना, रोकना, सुनना, मांगना, खाना, सकर्मक क्रियाएं हैं ।

अकर्मक—जिसके व्यापार और फल दोनों का भार कर्ता ही पर पड़े । जैसे—श्याम हंसता है । सोहन मर गया । यहां हंसना और मरना श्याम और सोहन पर ही आश्रित है, अन्य की आवश्यकता नहीं हैं । मरना, जीना, हंसना, रोना, उठना, बैठना, दौड़ना, भागना, रुकना, चलना, सोना, जागना, सब अकर्मक क्रियायें है ।

प्रश्न ३१—सकर्मक क्रिया अकर्मक और अकर्मक क्रिया सकर्मक कैसे बनती है ? उदाहरण देकर समझाइये।

उत्तर—जब वक्ता को केवल क्रिया के व्यापार से ही अभिप्राय हो, तब सकर्मक क्रिया अकर्मक बन जाती है। जैसे—तुम पढ़ रहे हो या सो रहे हो ? पूछने वाले का तात्पर्य केवल पढ़ने के व्यापार से है। क्या पढ़ता है, इसकी उसे कोई इच्छा जानने की नहीं।

अकर्मक क्रिया प्रेरणार्थक बनकर सकर्मक बन जाती है। जैसे—बालक रो रहा है। (अकर्मक)

श्याम बालक को रुला रहा है। (सकर्मक)

कुछ क्रियायें सकर्मक और अकर्मक दोनों प्रकार की होती हैं। जैसे—खेल—बच्चे खेल रहे हैं। (अकर्मक)

बच्चे खेल खेल रहे हैं। (सकर्मक)

प्रश्न ३२—द्विकर्मक क्रिया कौन सा होती है ? उसकी क्या परिभाषा है ? उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिये।

उत्तर—जब किसी क्रिया में दो कर्म हों, एक प्रधान और दूसरा गौण हो, वह द्विकर्मक क्रिया कही जाती है। इसमें प्राय: प्रधान कर्म क्रिया के साथ आता है और गौण कर्म के साथ कर्म कारक का चिन्ह 'को' लगता है। जैसे—सोहन भिक्षुक को वस्त्र देता है। यहां भिक्षुक गौण कर्म और वस्त्र क्रिया का अभीष्टतम होने से प्रधान कम है।

'देना' क्रिया प्राय: सर्वत्र द्विकर्मक रहती है। सकर्मक क्रिया प्रेरणाथक बनने पर द्विकर्मक हो जाती है। जैसे—

गुरु शिष्य को विद्या पढ़ाता है। किसान अतिथि को भोजन खिलाता है।

प्रश्न ३३—पूर्वकालिक क्रिया का परिचय देकर अपूर्ण क्रिया पर प्रकाश डालिये।

उत्तर—वाक्य की समापिका क्रिया (Definite verb) से पूर्व होने वाले व्यापार की सूचिका पूर्वकालिक क्रिया होती है। यह मुख्य क्रिया से सदा पहले आती हैं। जैसे—पढ़ कर समाज की सेवा करो। यहां सेवा करने से पहला कार्य पढ़ना हैं। अतः 'पढ़कर' पूर्वकालिक क्रिया है। इसी प्रकार

खा-पीकर स्कूल जाओ। देखकर चलो। इनमें रेखांकित पद पूर्वकालिक क्रिया ही है।

अपूर्ण क्रिया—कर्ता और कर्म के रहने पर भी जो क्रिया पूर्ण अर्थ को प्रकट न करे; उसे अपूर्ण क्रिया कहते है। जैसे—भारत ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् नेहरूजी को चुना। इस वाक्य में कर्ता, कर्म, क्रिया, तीनों ही विद्यमान है, तथापि इसका पूरा संगत अर्थ नहीं निकलता, 'क्या चुना' यह आकांक्षा वनी रहती है। इसको पूर्ण करने के लिए जिस शब्द का प्रयोग होता है: उसे पूरक (Compliment) कहते है।

पूरक दो होते है—कर्म पूरक, कर्तृ पूरक।

कर्म पूरक—जो सकर्मक क्रिया के अथ को पूर्ण करने के लिए कर्म के साथ लगता है, उसे कर्मपूरक कहते हैं।

जैसे—भारत ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के वाद नेहरू जी को चुना, इस वाक्य में 'चुना' क्रिया सकर्मक है और 'नेहरू' कर्म होने पर भी अपूर्ण है। यहाँ 'प्रधान मन्त्री' शब्द और जुड़ेगा। इस से वाक्य का अर्थ होगा कि भारत ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के वाद नेहरू जी को प्रधान मन्त्री चुना। 'प्रधान मन्त्री' शब्द ने कर्म के अर्थ को पूर्ण किया है, अतः यह कर्मपूरक है।

कर्तृ पूरक—जव अकर्मक क्रिया कर्ता के होने पर भी अपूर्ण रह जाय और उसका अर्थ पूरा करने के लिए अन्य शब्द लगे, उसे कर्तृपूरक कहते है। जैसे—पुत्र के वियोग में दशरथ······हो गये। यह वाक्य कर्ता और क्रिया के होने पर भी अपूर्ण है। यदि 'हो गये' से पहले 'मूर्छित' लगा दिया जाय तो वाक्य का अर्थ पूर्ण हो जाता है। यह कर्ता 'दशरथ' को पूर्ण अर्थ वाला वना देता है, इसलिये कर्तृपूरक है।

प्रश्न ३४—यौगिक क्रिया किसे कहते हैं? उसका स्वरूप और उदाहरण दीजिए।

उत्तर—जो क्रिया मौलिक धातु से न वन कर प्रत्यय आदि लगाकर बनी धातु से बनी हो, उसे यौगिक क्रिया कहते हैं। जैसे—प्रेरणार्थक क्रिया। कर मूल धातु है। उसमें आ लगाकर प्रेरणार्थक क्रिया वनती है। यह यौगिक

क्रिया है। इसी प्रकार नाम धातु, संयुक्त क्रिया भी यौगिक क्रियाएं हैं। लज्जा से—लजाता है, जा, चाहे से—जाना चाहता है।

प्रश्न ३५—प्रेरणार्थक क्रिया का लक्षण लिखकर उसको बनाने के प्रकार पर प्रकाश डालिए।

उत्तर—जिसमें कर्ता स्वयं कार्य न करके दूसरे से करवाये, वह प्रेरणार्थक क्रिया होती है। जैसे—धनी नौकर से वस्त्र धुलवाता है। यहां धनी धोना व्यापार स्वयं न करके नौकर से करवाता है।

प्रेरणार्थक बनाने के प्रकार :—

प्रेरणार्थक क्रिया दो होती है—पहली और दूसरी।

पहली को बनाने की रीति :—

१. एक स्वर वाली धातुओं के पहले दीर्घ स्वर को ह्रस्व करके उसके साथ ला या वा लगाने से पहली प्रेरणार्थक क्रिया बनती है। जैसे—देना—दिलाना, रोना—रुलाना, रुवाना, सीना—सिलाना।

२. दो स्वर वाली धातुओं के पहले दीर्घ स्वर को ह्रस्व करके अन्तिम व्यंजन के साथ 'आ' लगा देते है। जैसे—जागना-जगाना; भागना-भगाना, छीनना—छिनाना, सूझना—सुझाना, मारना—मराना, सीखना—सिखाना।

३. जिनके आदि में औ, ऐ स्वर हैं, उन्हें ह्रस्व नहीं होता, अन्त में आ लगाने से ही प्रेरणार्थक बन जाती है। जैसे—लौटना—लौटाना। कहीं-कहीं हो भी जाता है, जैसे—तौलना—तुलवाना, तौलाना, तुलाना भी होता है।

दूसरी प्रेरणार्थक—दूसरी प्रेरणार्थक बनाने के लिए दूसरे वर्ण के आ को ह्स्व करके वा लगाया जाता है। यदि 'ला' हो तो उसको ह्रस्व होकर आगे वा लग जाता है। दिलवाना, खिलवाना, जगवाना।

किसी-किसी के तीन रूप भी बनते हैं—

कहना, कहलाना, कहलवाना।

प्रश्न ३६—नाम धातु क्रिया का लक्षण लिखकर उसको बनाने की क्रिया लिखिये।

उत्तर—जो क्रिया संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और निरर्थक शब्दों के साथ प्रत्यय लगाकर बनी हो, उसे नामधातु कहते हैं। इसके बनाने का प्रकार

नीचे लिखा है :—

१. संज्ञा के संयुक्त व्यंजन को अकेला करके आगे क्रिया के प्रत्यय लगा देते हैं। जैसे—लज्जा—लजाना।

२. संज्ञा के आदि स्वर को ह्रस्व करके आ या इया लगाकर भी नाम-धातु बनती है। जैसे—हाथ—हथियाना, नाक—नकियाना, झूठ—झुठलाना।

नाम धातु नीचे लिखे शब्दों से बनती है:—

१. संज्ञा—लज्जा—लजाना, लात—लतियाना, बात—बतियाना, नाक—नकियाना।

२. सर्वनाम—आप—अपनाना।

३. विशेषण—गरम—गरमाना, झूठ—झुठलाना।

४. अनुकरणवाचक—भिनभिन—भिनभिनाना गुनगुन—गुनगुनाना।

प्रश्न ३७—क्रिया का विकार किन-किन कारणों से होता है ?

उत्तर—क्रिया में विकार सात कारणों से होता है जो कि नीचे लिखे है—

१—वाच्य, २—प्रयोग, ३—प्रकार, ४—काल, ५—लिंग, ६—वचन, ७—पुरुष।

प्रश्न ३८—वाच्य किसे कहते हैं ? ये कितने प्रकार के होते हैं। उनको उदाहरण देकर समझाइये।

उत्तर—वाक्य में कर्ता, कर्म अथवा क्रिया के अर्थ की प्रधानता बताने वाले विकार को वाच्य कहते हैं। जैसे—मोहन स्कूल गया। यहां 'गया' क्रिया जाने वाले की प्रधानता बताती है, वह एक है, पुरुष है और अन्य पुरुष है। वाच्य का अर्थ 'कहने' योग्य होता है। क्रिया से सूचित या उक्त होने वाला ही वाच्य है।

वाच्य के तीन भेद हैं :—

१. कर्तृ वाच्य—जब क्रिया से कर्ता उक्त या सूचित होता है। जैसे—लता पुस्तक पढ़ रही है। श्याम ने बेल तोड़ी।

इन वाक्यों में क्रियाएं पढ़ने वाली और तोड़ने वाले की सूचना देती हैं।

२. कर्मवाच्य (प्रथमा, संवत् २०१७)—जब क्रिया से कर्म उक्त हो एवं कर्म की प्रधानता हो।

जैसे—लता से पुस्तक पढ़ी जा रही है। श्याम से बेल तोड़ी गई।

इन वाक्यों में क्रियाएं कर्म के अतिरिक्त और किसी से सम्बन्ध नहीं रखतीं। उसी के लिंग आदि को सूचित करती हैं।

३. भाववाच्य—जब क्रिया का सम्बन्ध कर्ता या कर्म किसी से न होकर केवल क्रियार्थ से हो। जैसे—मुझ से उठा नहीं जाता।

यहां क्रिया का अपने अर्थ के अतिरिक्त और किसी से सम्बन्ध नहीं है।

कुछ नियम :—

१—कर्तृवाच्य में 'ने' के अतिरिक्त कर्ता के साथ प्रायः विभक्ति नहीं लगती। कर्म के साथ भी प्रायः 'को' नहीं लगता। क्रिया का लिंग, वचन और पुरुष कर्ता के अनुसार रहता है। 'ने' लगने पर क्रिया कर्म के अनुसार रहती है।

२—कर्मवाच्य में कर्ता के साथ 'से', कर्म खाली और क्रिया के साथ 'जाना' का प्रयोग होता है। क्रिया सर्वत्र कर्म के अनुसार रहती है।

३—भाववाच्य में कर्ता के साथ 'से', क्रिया के साथ 'जाना' का प्रयोग होता है। क्रिया में सदा पुल्लिग, अन्य पुरुष और एकवचन रहता है।

४—सकर्मक क्रिया का प्रयोग कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य दोनों में होता है। अकर्मक का कर्तृवाच्य और भाववाच्य में होता है।

प्रश्न ३९—वाच्य परिवर्तन किसे कहते हैं? उसकी क्या रीति है? उदाहरण देकर समझाइए।

उत्तर—वाक्य को एक वाच्य से दूसरे वाच्य में बदलने को वाच्य-परिवर्तन कहते हैं। जैसे—श्याम ने बेल तोड़ी (कर्तृवाच्य) से श्याम से बेल तोड़ी गई (कर्मवाच्य)।

कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य—कर्ता के साथ 'से' लगाकर क्रिया को सामान्य-भूत का बना दिया जाय, 'जाना' को सहायक क्रिया के रूप में प्रयुक्त करके उसका लिंग, वचन और पुरुष कर्म के अनुसार कर दिया जाय।

कर्तृवाच्य से भाववाच्य—कर्ता के साथ 'से', क्रिया को सामान्यभूत में बदलकर 'जाना' क्रिया लगा दी जाती है। पुल्लिग, एकवचन और अन्य पुरुष रहता है।

कर्मवाच्य और भाववाच्य से कर्तृवाच्य—कर्ता के आगे से 'से' हटा दें। भूत हो तो 'ने' लगा के सहायक क्रिया हटाकर मुख्य क्रिया को कर्ता के अनुसार कर दें। 'ने' हो तो कर्म के अनुसार क्रिया रखें। जैसे—मुझसे उठा नहीं जाता (भाववाच्य)। मैं उठ नहीं सकता (कर्तृवाच्य)। श्याम से पढ़ा गया—श्याम ने पढ़ा।

नोट—'ने' केवल सकर्मक क्रिया के सामान्यभूत में लगता है।

प्रश्न ४०—'प्रयोग' से आप क्या समझते हैं? उसका वाच्य से क्या अन्तर है। यह लिखकर उसके भेदों पर प्रकाश डालिये।

उत्तर—प्रयोग का अर्थ है 'काम में लाना'। यहां प्रयोग से देखा जाता है कि क्रिया कर्ता, कर्म और भाव में से किसके अनुसार है।

वाच्य और प्रयोग में अन्तर—वाच्य से कर्ता, कर्म और भाव की प्रधानता देखी जाती है। प्रयोग से क्रिया का कर्ता, कर्म और क्रियार्थ से सम्बन्ध देखा जाता है। वाच्य और प्रयोग दोनों के तीन-तीन भेद हैं। परन्तु वाच्य के अन्तर्गत कई-कई प्रयोग रहते है। एक वाच्य में दूसरा वाच्य नहीं रहता।

प्रयोग के भेद—प्रयोग के तीन भेद हैं। कर्तरि प्रयोग, कर्मणि प्रयोग, भावे प्रयोग। एक वाच्य में कई प्रयोगों के कारण इसके भेद इस प्रकार होंगे :—

१—**कर्तृवाच्य कर्तरि प्रयोग**—जब क्रिया कर्ता के अनुसार रहती है। जैसे—श्याम पुस्तक पढ़ता है।

२—**कर्तृवाच्य कर्मणि प्रयोग**—जब क्रिया कर्म के अनुसार रहती है और कर्ता के साथ 'ने' आता है। जैसे—श्याम ने पुस्तक पढ़ी। लता ने खेल देखा।

३—**कर्तृवाच्य भावे प्रयोग**—जब कर्ता के साथ 'ने', कर्म के साथ 'को' आये और क्रिया में पुल्लिग, एकवचन और अन्यपुरुष रहे। जैसे—श्याम ने पुस्तक को पढ़ा। लता ने खेल देखा। यहां कर्ता-कर्म बदलने से क्रिया पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

४—**कर्मवाच्य-कर्मणि प्रयोग**—जब कर्ता के साथ 'से' हो और कर्मवाच्य की क्रियां हो। जैसे—श्याम से पुस्तक पढ़ी गई। लता से खेल देखा गया।

५—**कर्मवाच्य-भावे प्रयोग**—कर्मवाच्य बनाकर कर्म के साथ को लगाने से भाव में प्रयोग हो जाता है। जैसे—श्याम से पुस्तक को पढ़ा गया। लता से खेल को देखा गया।

६—**भाववाच्य-भावे प्रयोग**— जब कर्ता के साथ 'से' और क्रिया सदा भाववाच्य की हो। जैसे—मुझसे उठा नहीं जाता। भाववाच्य में सदा भावे प्रयोग ही होता है।

प्रश्न ४१—'प्रकार' की परिभाषा लिखकर उसका प्रयोग समझाइए। भेद और उदाहरण भी दीजिए।

उत्तर—क्रिया को कहने का भाव ही प्रकार कहलाता है। तात्पर्य के भेद से क्रिया के रूप में अन्तर आ जाता है। इसके तीन भेद है—सामान्य, संभाव्य प्रवर्तनार्थक।

सामान्य—साधारण रूप से क्रिया को सूचित करना सामान्य प्रकार होता है। जैसे—श्याम सो रहा है। मोहन हंस रहा है। तुम घर गये थे। यहां साधारण रूप से व्यापार कहा गया है।

संभाव्य—संभावना, आशा, सन्देह आदि अनिश्चय के भाव सूचित करने में संभाव्य प्रकार होता है। जैसे—शायद मोहन आज ही आ जाय। वह आज आने वाला है। न जाने वह आज भी आये या नहीं।

प्रवर्तनार्थक—जिन में कर्म करने की प्रेरणा का भाव हो वह प्रवर्तनार्थक प्रकार होना है। आज्ञा, अनुमति, प्रार्थना, प्रश्न आदि की इसी में गणना होती है। जैसे :—

तुम घर जा सकते हो। यहां पानी मत डालो। कृपया इस बालक को पढ़ा दीजिए।

इसके विधि और निषेध दो उपभेद है। जहां कार्य का विधान होता है, वहाँ विधि और जहां न करने को कहा जाय वहां निषेध होता है। उपर्युक्त उदाहरण विधि के ही हैं। निषेध—शोर न करो। झूठ न बोलो।

विधि को भी प्रत्यक्ष और परोक्ष में बांटा जाता है।

जो कार्य तुरन्त करने को कहा जाय तो प्रत्यक्ष समझना चाहिए। जैसे—एक गिलास पानी लाओ। यह कार्ड लेटर-बक्स में डाल दो।

जहाँ उपदेश देने का अर्थ हो, वहां परोक्ष विधि होती है। जैसे—सत्य बोलना चाहिए। प्रमाद न करना, मन लगाकर पढ़ा करो।

४२—काल की परिभाषा लिखिये और उसके भेद उदाहरणों सहित गिनाइयें।

अथवा

भूतकाल किसे कहते हैं ? उसके भेद सोदाहरण लिखिये। (जून १९५८)

उत्तर—क्रिया के होने के समय को काल कहते हैं। काल से पता लगता है कि यह कार्य कब किया गया। जैसे—राम घर गया है। यहां क्रिया का चालू समय में ही होना ज्ञात होता है। सोम यहां से चला गया है। यहां क्रिया को हुए कुछ समय बीत जाने की सूचना मिलती है।

काल के तीन भेद हैं। १—भूत, २—वर्तमान, ३—भविष्यत्।

भूतकाल—बीते हुये समय को भूत काल करते हैं। जैसे—राम घर गया। इसके भी छः भेद हैं :—

१—सामान्य भूत—जिससे साधारण रूप से बीते समय का ज्ञान हो। जैसे—राम घर गया। मैंने मार्ग में सांप देखा। इन वाक्यों में कोई नियत समय नहीं कहा गया।

२—आसन्न भूत—जिससे क्रिया के कुछ ही समय पूर्व होने का ज्ञान हो। जैसे—मैं आया ही हूं। वह घर गया है। इन वाक्यों में कुछ ही समय पूर्व आना और जाना ज्ञात होता है।

३—अपूर्ण भूत—जिससे भूत काल में क्रिया का अधूरापन सूचित हो। जैसे—श्याम पढ़ रहा था, मैं सो रहा था। यहाँ पढ़ना और सोना दोनों क्रिया अधूरी सूचित होती हैं।

४—पूर्ण भूत—जिससे भूत काल में क्रिया का पूर्ण रूप से होना सूचित हो। जैसे—डाक्टर के आने तक रोगी मर चुका था। यहां भूत काल में क्रिया की पूर्णता सिद्ध है।

५—सन्दिग्ध भूत—जिससे भूत काल में क्रिया के होने की सम्भावना, आशा या सन्देह प्रकट हो। जैसे—शायद राम गया होगा। सम्भव है, चूहा मर गया हो। यहां अनिश्चितता है।

६—हेतुहेतुमद् भूत—जब एक क्रिया का होना दूसरी क्रिया पर निर्भर रहा हो। जैसे—वर्षा समय पर होती तो फसल भी अच्छी होती। तुम दौड़ते तो गाड़ी पकड़ ही लेते।

यहां फसल होती और गाडी पकडना, वर्षा होने और दौड़ने पर निर्भर हैं।

वर्तमान काल

सामने वीतते हुए समय को वर्तमान काल कहते है। जैसे श्याम जा रहा है। इसके तीन भेद है :—

१. **सामान्य वर्तमान**—जिसमें साधारण रूप से वर्तमान काल का उल्लेख हो। जैसे मोहन पढ़ता है। श्याम खाता है।

२. **अपूर्ण वर्तमान** – जब वर्तमान काल में क्रिया अभी हो रही हो। जैसे मैं आजकल रामजस स्कूल में पढ रहा हूं। वर्षा हो रही है।

३. **सम्भाव्य वर्तमान**—जिससे क्रिया के होने की सम्भावना प्रकट की जाय। जैसे वह सो रहा होगा। शायद वहीं पढ़ता हो।

भविष्यत्

आगे आने वाले समय को भविष्यत् काल कहते हैं।

जैसे—मैं बम्बई जाऊंगा। इसके भी तीन भेद हैं :—

(१) **सामान्य भविष्यत्**—जब साधारण रूप से किसी कार्य का भविष्य में होना कहा जाय। जैसे मोहन यहाँ आयेगा। कल वर्षा होगी।

(२) **सम्भाव्य भविष्यत्**—जब भविष्य में कार्य होने की सम्भावना की जाय। जैसे—शायद मोहन यहां आये। वह कल आ ही रहा होगा।

(३) **हेतुहेतुमद् भविष्यत्**—जब भविष्य में कोई क्रिया दूसरी क्रिया पर निर्भर हो। जैसे—परिश्रम करोगे तो अवश्य उत्तीर्ण होगे।

प्रश्न ४३—'कह' के सामान्य भूत कर्तृवाच्य में, 'पढ़' के वर्तमान कर्मवाच्य में और 'दौड़' के भविष्यकाल भाववाच्य के रूप (गरदान) लिखिए।

उत्तर—

कह कर्तृवाच्य (सामान्य भूत)

उत्तम पुरुष	मैंने कहा	हमने कहा
मध्यम पुरुष	तूने कहा	तुमने कहा
अन्य पुरुष	उसने कहा	उन्होंने कहा

पढ़—कर्मवाच्य (वर्तमान)

मुझ से पढ़ा जाता है	हमसे पढ़ा जाता है।

तुझ से पढा जाता है	तुमसे पढ़ा जाता है।
उससे पढ़ा जायेगा	उनसे पढ़ा जायेगा।

दौड़—भाववाच्य (भविष्य)

मुझ से दौड़ा जाएगा	हमसे दौड़ा जाएगा
तुझसे दौड़ा जाएगा	तुमसे दौड़ा जाएगा
उससे दौड़ा ज़ाएगा	उनसे दौड़ा जाएगा

(छात्रों को इस प्रकार अन्य धातुओं के रूप चलाने का अभ्यास करना चाहिये।)

प्रश्न ४४—क्रिया विशेषण की परिभाषा लिखकर उसके भेद और उदाहरण लिखिये।

उत्तर—क्रिया की विशेषता बताने वाले अव्यय को क्रिया विशेषण कहते हैं।

इसके चार भेद हैं—काल वाचक, रीति वाचक, स्थान वाचक, परिमाण वाचक।

१. **काल वाचक**—जो क्रिया के होने का समय बताये। जैसे—कल यहां वर्षा हुई थी, मैं अभी आया हूं। परसो यहां चोरी हुई थी।

२. **रीति वाचक**—जो क्रिया के होने का ढंग बताये। जैसे—धीरे से बोलो। मेंह जोर से बरस रहा है। गाड़ी तेज चलती है।

३. **स्थान वाचक**—जो क्रिया का स्थान बताये। जैसे—यहां १० परिवार रहते हैं। ऊपर मत बैठो। अन्दर क्या देखते हो?

४. **परिमाण वाचक**—जो क्रिया का नाप तोल बताए। जैसे—थोड़ा बोलो। यहां वर्षा बहुत होती है। उसे कम सुनता है।

प्रश्न ४५—क्रिया-विशेषण किन-किन शब्दों से बनते हैं?

उत्तर—क्रिया विशेषण निम्नलिखित शब्दों से बनते हैं :—

१- **संज्ञा**—प्रातः, सायं, क्रमशः, सुबह, ढिठाइ से, नम्रता से।

२. **सर्वनाम**—इतना, उतना, ऐसे, वैसे, यत्र, तत्र, यदा, कदा, आदि।

३. **विशेषण**—पहले, धीरे, ऊंची, जल्दी।

४. **क्रिया**—हंसते-हंसते, खाते-खाते, चलते हुये, रोते हुए।

५. **आवृत्ति**—धीरे-धीरे, शनैः-शनैः।

६. **विपरीत प्रयोग**—सांझ-सवेरे, दिन-रात, उन्नीस-बीस, उल्टा-सीधा।

प्रश्न ४६—सम्बन्ध बोधक अव्यय का लक्षण एवं उदाहरण लिखिये ।

उत्तर—दो शब्दों का परस्पर सम्बन्ध बताने वाले अव्यय सम्बन्ध बोधक होते हैं । इसके तीन भेद हैं ।

१. सम्बन्ध—जिसका प्रयोग कारक चिन्ह के बाद हो । जैसे—घर के अन्दर । छत के ऊपर । पिता के साथ । हमारे पास ।

२. अनुबद्ध—जिनसे पहले कारक चिन्ह न लगे । जैसे—घर तक, समुद्र पर्यन्त ।

३. उभयविध—जिनसे पूर्व कारक चिन्ह कहीं लगे, कहीं न लगे । जैसे—तुम बिना, तुम्हारे बिना ; पुत्र सहित, पुत्रों के सहित; धन रहित, धन से रहित ।

प्रश्न ४७—समुच्चय बोधक अव्यय की परिभाषा लिखकर उसके उदाहरण दीजिये ।

उत्तर—दो शब्दों अथवा वाक्यों को संयुक्त करने वाले अव्यय को समुच्चय बोधक कहते हैं । इनका नाम योजक भी है । जैसे—और, तथा, परन्तु ।

इसके तीन भेद हैं—१. संयोजक, २. विभाजक, ३. विरोधक ।

योजक या संयोजक—जो दो वाक्यों या शब्दों को परस्पर मिलाते हैं । जैसे—और, एवं, तथा व आदि । जैसे—राम और भरत में बहुत प्रेम था । मोहन पढ़ता है और सोहन खेलता है । पहले वाक्य में 'और' ने दो शब्दों को जोड़ा है और दूसरे में दो वाक्यों को ।

विभाजक—जो दो शब्दों या वाक्यों में भेद प्रकट करे । या, अथवा, चाहे, किंवा । इसको विकल्प बोधक भी कहते हैं । जैसे—तुम जा रहे हो अथवा मैं जाऊं ? तुम पढ़ोगे या नौकरी करोगे ? इन दोनों वाक्यों में 'अथवा' और 'या' पहले वाक्य से दूसरे को भिन्न करते हैं ।

विरोधक—जो दो शब्दों या वाक्यों में विरोध प्रकट करे । किन्तु, प्रत्युत, परन्तु, नहीं तो, अन्यथा, वरंच । जैसे—वह पास ही नहीं हुआ प्रत्युत साथियों में सबसे अधिक अंक भी प्राप्त किये ।

इनके अतिरिक्त 'परिमाण बोधक' और 'सम्बन्ध बोधक' दो और होते हैं

परिणाम बोधक—यह एक वाक्य का परिणाम या कारण सूचित करता है । अतः इसे कारण बोधक भी कहते हैं । अतः, अतएव इसीलिए, इसलिए । जैसे—तुम काम करने योग्य नहीं रहे, अतः विश्राम करो ।

सम्बन्ध बोधक—जो दो को परस्पर सम्बद्ध करे । जैसे-तैसे । यद्यपि—तथापि । इनका प्रयोग साथ ही साथ होता है । मैं यद्यपि छोटा हूं तथापि तुमसे डरता नहीं ।

प्रश्न ४८—'द्योतक' अव्यय की परिभाषा और भेद लिखिये ।

उत्तर—हर्ष, शोक आदि मानसिक भावों को प्रकट करने वाले अव्ययों को द्योतक कहते हैं । इन्हीं का नाम विस्मयादि बोधक भी है । इसके कुछ भेद निम्नलिखित हैं ।

१. **विस्मय बोधक**—जो आश्चर्य प्रकट करे । जैसे—हैं ! क्या ! ऐसा ! वाह !

२. **हर्ष बोधक**—वाह वाह ! बहुत अच्छा ! अहा अहा !

३. **शोक बोधक**—हाय हाय ! हाय ! शोक ! हाय रे !

४. **क्रोध बोधक**—रे ! ओ ! चल, हट ! हैं !

५. **घृणा बोधक**—छि: ! दुर ! हट ! छी छी !

६. **स्वीकृति बोधक**—हां, जी हाँ, बहुत ठीक ! अच्छा !

७. **निषेध बोधक**—नहीं नहीं, कभी नहीं ।

प्रश्न४९—शब्द बोध किसे कहते हैं ? उसकी रीति का परिचय दीजिये ।

उत्तर—किसी वाक्य में आये शब्दों का स्वरूप, उनकी वाक्यों में स्थिति आदि के वर्णन को शब्द बोध कहते हैं । आठों प्रकार के शब्दों का इसी प्रकार परिचय दिया जाता है । इसको 'पदपरिचय' भी कहते हैं । इसकी रीति यह है :—

१. **संज्ञा**—स्वरूप, भेद, लिंग, वचन और कारक का क्रम परिचय देना चाहिये ।

२. **सर्वनाम**—स्वरूप, भेद, लिंग, वचन कारक और अपने स्थानीय (जिसके लिये सर्वनाम का प्रयोग हुआ) का उल्लेख करना चाहिये ।

(नव० १९५६)

३. **विशेषण**—विशेषण का भेद, अवस्था, विशेष्य का निर्देश करना चाहिये ।

४. **क्रिया**—स्वरूप, भेद, वाच्य, प्रयोग, प्रकार, काल, लिंग, वचन, पुरुष का वर्णन करना चाहिए । कर्ता भी बताना चाहिए ।

५. क्रिया विशेषण—भेद और विशेष्य निर्देश करना चाहिये।

६. सम्बन्ध बोधक—स्वरूप और भेद का निर्देश।

७. योजक अव्यय—भेद और सम्बन्ध रखने वाले शब्द और वाक्य का निर्देश।

८. द्योतक—भेद।

उदाहरण—राम ने रावण को मारा। (वाक्य)

पद-परिचय :—

राम—व्यक्तिवाचक संज्ञा, पुल्लिग, एक वचन, कर्म कारक।

रावण को—व्यक्ति वाचक संज्ञा, पुल्लिग, एक वचन, कर्म कारक।

मारा—सकर्मक क्रिया, कर्तृवाच्य, भावे प्रयोग, सामान्य प्रकार, सामान्य भूत, पुल्लिग, एक वचन, अन्य पुरुष, कर्ता 'राम'।

प्रश्न ५०—संधि का लक्षण लिखकर उसके भेदों का उल्लेख कीजिये।

उत्तर—दो वर्णों के मेल से होने वाले विकार को सन्धि कहते हैं। जैसे-सुर+ईश=सुरेश। इन दो शब्दों के अ और ई को मिलाकर 'ए' बना दिया जाता है। संधि के तीन भेद हैं—

स्वर संधि, व्यंजन संधि, विसर्ग सन्धि।

प्रश्न ५१—स्वर सन्धि के उपभेदों और नियमों का उदाहरण देकर वर्णन कीजिये।

उत्तर—स्वर संधि के भेद नीचे लिखे है—

यण् सन्धि—सामने भिन्न स्वर होने पर इ को य्, उ को व्, ऋ को र् हो जाता है। जैसे—इति+आदि=इत्यादि, अभि+उदय=अभ्युदय। सु+आगतम्=स्वागतम्, पितु+आज्ञा=पित्राज्ञा।

गुण सन्धि—अ, ए, ओ, अर् इनको गुण कहते हैं। 'अ' के सामने इ, ई हों तो दोनों को मिलाकर ए; उ, ऊ हों तो दोनों को ओ; ऋ हो तो दोनों को मिलाकर अर् हो जाता है। जैसे—सुर+इन्द्र=सुरेन्द्र, महा+ईश=महेश, सूर्य+उदय=सूर्योदय, सप्त+ऋषि=सप्तर्षि।

दीर्घ सन्धि—ह्रस्व या दीर्घ अ, इ, उ, ऋ के सामने वही स्वर दीर्घ या ह्रस्व आ जाए तो दोनों को एक दीर्घ होता है। जैसे—कवि+इन्द्र=कवीन्द्र, गिरि+ईश=गिरीश, भानु+उदय=भानुदय।

वृद्धि सन्धि—ऐ, औ, आर् को वृद्धि कहते है। अ या आ के सामने ए, ऐ, ओ औ, ऋ आ जाएं तो दोनों को क्रम से ऐ, औ, आर् हो जाते है। जैसे—सदा+एव=सदैव, दिव्य+ऐश्वर्य=दिव्यैश्वर्य, महा+ओज=महौज, दश+ऋण=दशार्ण।

अयादि सन्धि—ए, ऐ, ओ, औ के सामने कोई भी स्वर हो तो, क्रम से पय्, आय्, अव्, आव् हो जाता है। जैसे—ने+अन=नयन, गै+अक=गायक, भो+अन=भवन, पौ+अन=पावन, भौ+उक=भावुक।

पूर्वरूप सन्धि—शब्द के अन्त का ए या ओ पहले हो और सामने 'अ' हो तो अ के स्थान पर ऽ चिन्ह लग जाता है। यशो+अधिकार=यशोऽधिकार।

प्रकृतिभाव सन्धि—सन्धि न होकर वर्णो का ज्यों का त्यों रह जाना प्रकृतिभाव कहा जाता है। जैसे—पितृ+ऋण=पितृऋण। हिन्दी में दीर्घ ॠ का प्रयोग नही होता।

प्रश्न ५२—व्यंजन सन्धि के कुछ प्रकार उदाहरण सहित लिखिये।

उत्तर—दो व्यंजनो में होने वाले विकार को व्यंजन सन्धि कहते है। जैसे—सत्+जन=सज्जन, सत्+चरित्र=सच्चरित्र।

नियम :—

१. सामने चवर्ग और श होने पर तवर्ग को अपनी सख्या का चवर्ग और स को श होता है। जैसे—सत+चरित्र=सच्चरित्र, सत+जन=सज्जन, दुस+शासन=दुश्शासन।

२. ट वर्ग के पहले हलन्त तवर्ग को टवर्ग होता है, स् को ष् होता है। जैसे—सत्+टीका=सट्टीका, उद्+डयन ‖ उड्डयन, दुष्+त=दुष्ट।

३. र्, ष्, और ऋ के वाद न को ण हो जाता है, कृष्+न=कृष्ण।

४ सामने वर्ग का पांचवां अक्षर हो तो पहले वर्ण को भी अपने वर्ग का पांचवां होता है। जैसे—जगत्+नाथ=जगन्नाथ, षड्+मुख=षण्मुख, तत+मय=तन्मय।

५. सामने ल हो तो त वर्ग को भी ल होता है। जैसे—तत्+लीन=तल्लीन। यदि पूर्व में न् हो तो न् से पहले स्वर को अनुनासिक और न् को ल होता है। जैसे सन्+लग्न=संलग्न।

६. सामने स्वर, वर्ग का तीसरा और चौथा वर्ण य, र, व, ह हो तो वर्ग के पहले वर्ण को अपने वर्ग का तीसरा हो जाता है। जैसे— जगत्+ईश=जगदीश, दिक्+गज=दिग्गज।

७. वर्ग के पहले या तीसरे और चौथे वर्ण के सामने 'ह' हो तो उसे पहले वर्ण के वर्ग का चतुर्थ वर्ण हो जाता है। पहले वर्ण को अपने वर्ण का तीसरा हो जाता है। जैसे तत्+हित=तद्धित, उत्+हार=उद्धार, अप्+हार=अब्भार।

८. अनुस्वार को सामने वाले वर्ण का पांचवां अक्षर हो जाता है। जैसे—सं+कल्प=संकल्प, सं+न्यास=सन्न्यास।

९. सामने अन्तस्थ या ऊष्म वर्ण होने पर म् को अनुस्वार हो जाता है। जैसे—सम्+हार=संहार, सम्+वाद=संवाद।

१०. र् के सामने दूसरा र हो तो पहले हल् र् का लोप हो जाता है और उससे पहले स्वर को दीर्घ हो जाता है। जैसे—निर्+रव=नीरव।

११. सामने छ होने पर पहले ह्रस्व स्वर के आगे छ साथ च् लगता है। जैसे—प्रति+छाया=प्रतिच्छाया।

प्रश्न ५३—विसर्ग सन्धि की परिभाषा लिखकर उसके भेद उदाहरण सहित लिखें।

उत्तर—विसर्गों के साथ मेल से होने वाले विकार को विसर्ग सन्धि कहते है। जैसे—दुः+शासन=दुश्शासन, निः+कलंक=निष्कलंक।

१—सामने स्वर अथवा वर्ग का तीसरा, चौथा, पांचवां वर्ण, य, ल, व, ह, हों तो विसर्ग के स्थान पर र् रह जाता है। जैसे दुः+आशीष=दुराशीष, दुः+गति=दुर्गति, दुः+लभ=दुर्लभ।

२—सामने वर्ग का पहला, दूसरा वर्ण हो तो विसर्ग को स् हो जाता है। चवर्ग से पहले श्, ट वर्ग से पहले ष् और त वर्ग से पहले स् होता है। दुः+चरित्र=दुश्चरित्र, धनुः+टंकार=धनुष्टंकार, दुः+तर=दुस्तर।

इ और उ के बाद के विसर्गों को सामने क वर्ग, ट वर्ग, होने पर ष् हो जाता है। दु:+कर=दुष्कर, नि:+फल=निष्फल।

३—अ के सामने विसर्ग और उसके बाद अ, वर्ग के तीसरे, चौथे, पांचवे वर्ण, य, र, व, ल, और ह हो तो विसर्ग और पहले अ को ओ होता है। यश:+अपवाद=यशोऽपवाद; मन:+हर=मनोहर; तम:=राशि=तमोराशि।

प्रश्न ५४—नीचे शब्दों में सन्धिच्छेद करो और सन्धि का नाम भी लिखो:—

भारतेन्दु, प्रत्युत्तर, नमस्ते, प्रत्येक, मनोरथ, नीरोग, वाङ्मय, सुरेश, प्रत्युपकार।

उत्तर—शब्द	सन्धिच्छेद	सन्धि का नाम
भारतेन्दु	भारत+इन्दु	गुण स्वर सन्धि
प्रत्युत्तर	प्रति+उत्तर	यण् स्वर सन्धि
नमस्ते	नम:+ते	विसर्ग सन्धि
प्रत्येक	प्रति+एक	यण् स्वर सन्धि
मनोरथ	मन:+रथ	विसर्ग सन्धि
नीरोग	निर्+रोग	व्यंजन सन्धि
वाङ्मय	वाक्+मय	व्यंजन सन्धि
सुरेश	सुर+ईश	गुण स्वर सन्धि
प्रत्युपकार	प्रति+उपकार	यण् स्वर सन्धि

प्रश्न ५५—समास की परिभाषा लिखकर भेद और उदाहरण लिखिए।

उत्तर—अनेक शब्दों को मिलाकर एक शब्द बनाने की रीति को समास कहते हैं। इसके छ: भेद हैं:—

अव्ययीभाव, तत्पुरुष, बहुव्रीहि, द्वन्द्व, कर्मधारय, द्विगु।

१. **अव्ययीभाव**—यह अव्यय और संज्ञा शब्दों के मध्य होता है और समास होने पर शब्द अव्यय बन जाता है। जैसे—प्रतिदिन (दिन दिन), यथाशक्ति (शक्ति के अनुसार), यथानियम (नियम के अनुसार), उपनगर (नगर के पास), आजीवन (जीवन पर्यन्त), भर पेट (पेट भरकर)।

तत्पुरुष—जिसमें दूसरा पद प्रधान हो, समास होने पर प्रधान के अनुसार लिंग और वचन होता है। इसके छः भेद हैं :—

कर्म तत्पुरुष—जब कर्म कारक का दूसरे शब्द से समास होता है। हस्त-गत (हस्त को प्राप्त), स्वर्गगामी (स्वर्ग को जाने वाला)।

करण तत्पुरुष—जब करण कारक का दूसरे समास होता है। हस्तलिखित (हाथ से लिखी), रेखांकित (रेखाओं से अंकित), अंगहीन (अंग से हीन), तुलसीकृत (तुलसी द्वारा कृत)।

सम्प्रदान तत्पुरुष—जहां सम्प्रदान कारक से समास हुआ हो। जैसे—हवनसामग्री (हवन के लिए सामग्री), रसोईघर (रसोई के लिये घर), देवो-पहार (देवता के लिए उपहार)।

अपादान तत्पुरुष—पथ-भ्रष्ट (पथ से भ्रष्ट) पदच्युत पद से च्युत), वृक्षपतित (वृक्ष से पतित), धर्मभीरु (धर्म से भीरु), पापरक्षित (पाप से रक्षित)।

सम्बन्ध तत्पुरुष—राजकुमार (राजा का कुमार), क्षीर सागर (क्षीर का सागर), नगर पिता (नगर का पिता), गृहपति (गृह का पति), राज-राज (राजाओं का भी राजा)।

अधिकरण तत्पुरुष (अधिकरण कारक समास)—वनवास (वन में वास), करस्थित (कर में स्थित)।

बहुव्रीहि—जिसमें अन्य पदार्थ प्रधान हो। जैसे—महासेन (महान् सेना वाला), लघुकाय (छोटे शरीर वाला), कनफटा (फटे कान वाला), पीताम्बर (पीले वस्त्र वाला), दिगम्बर (दिशा रूपी वस्त्र वाला)।

द्वन्द्व—जिसमे दोनों पद प्रधान हों। जैसे—सीताराम (सीता और राम), राम लक्ष्मण (राम और लक्ष्मण), दालरोटी (दाल और रोटी), देवासुर (देव और असुर), राधा कृष्ण (राधा और कृष्ण)।

कर्मधारय—विशेषण-विशेष्य सम्बन्ध और उपमान—उपमेय भाव (दो की तुलना करना) में यह समास होता है। दोनों खण्डों में समान कारक में समास होता है। नीला कमल=नीलकमल, पीत अम्बर (वस्त्र)=पीताम्बर, चन्द्र जैसा मुख=चन्द्रमुख, घन जैसा श्याम=घनश्याम।

द्विगु—कर्म धारय समास का पहला खंड संख्या वाचक हो तो द्विगु समास कहलाता है। जैसे त्रिफला (तीन फलों का समूह), चार आनों का समूह=चवन्नी, चार पथों का समूह=चतुष्पथ, त्रिलोकी, अठन्नी, त्रिभुवन।

प्रश्न ५६—नीचे शब्दों में समास का नाम बताओ और विग्रह करो।

उत्तर—यथोचित, यथाशक्ति, उपतट, त्रिभुवन, महात्मा, महावीर, राजनीति, घनश्याम, परोपकार, आटादाल, छमाही, अपार,अनुपम, चौराहा, राजमन्दिर, मृगनयनी, सुकेशी, राजेश्वरी, अरुणोदय, राज-तिलक, राज्याभिषेक, राजगद्दी, जल-पात्र, गुरुदक्षिणा, निर्गुण, करकमल, मेघवर्ण, सीतापति, तपोभूमि, पाठशाला, जेबकतरा, गठकटा।

उत्तर—शब्द	विग्रह	समास नाम
यथोचित	उचित का उल्लंघन न करके	अव्ययीभाव
यथाशक्ति	शक्ति के अनुसार	अव्ययीभाव
उपतट	तट के पास	अव्ययीभाव
त्रिभुवन	तीन भुवन	द्विगु तत्पुरुष
महात्मा	महान् आत्मा	कर्मधारय तत्पुरुष
महावीर	महान् वीर	कर्मधारय तत्पुरुष
राजनीति	राजा की नीति	सम्बन्ध तत्पुरुष
घनश्याम	घन जैसा श्याम	कर्मधारय
परोपकार	पर (दूसरों) का उपकार	सम्बन्ध तत्पुरुष
आटादाल	आटा और दाल	द्वन्द्व
छमाही	छः मास में होने वाली	बहुव्रीहि
अपार	जिसका पार न हो	बहुव्रीहि
अनुपम	जिसकी उपमा न हो	बहुव्रीहि
चौराहा	चार राहों का समूह	द्विगु
मृगनयनी	मृग के नयन जैसे नयन वाली	बहुव्रीहि
सुकेशी	सुन्दर केशों वाली	बहुव्रीहि
राजेश्वरी	राजाओं की ईश्वरी	सम्बन्ध तत्पुरुष
अरुणोदय	अरुण का उदय	सम्बन्ध तत्पुरुष

राजतिलक	राजा का तिलक	सम्बन्ध तत्पुरुष
राज्याभिषेक	राज्य पर अभिषेक	अधिकरण तत्पुरुष
राजगद्दी	राजा के लिए गद्दी	सम्प्रदान तत्पुरुष
जल-पात्र	जल के लिये पात्र	सम्प्रदान तत्पुरुष
गुरुदक्षिणा	गुरु के लिए दक्षिणा	सम्प्रदान तत्पुरुष
निर्गुण	गुणों से रहित	तत्पुरुष (उपपद)
करकमल	कर रूपी कमल	कर्मधारय
मेघवर्ण	मेघ के समान वर्ण वाला	बहुव्रीहि
सीतापति	सीता के पति	सम्बन्ध तत्पुरुष
तपोभूमि	तप के लिए भूमि	सम्प्रदान तत्पुरुष
पाठशाला	पाठ के लिए शाला (घर)	सम्प्रदान तत्पुरुष
जेब कतरा	जेब को कतरने वाला	कर्म तत्पुरुष
गठ कटा	गाँठ काटने वाला	कर्म तत्पुरुष

प्रश्न ५७—सन्धि संयोग और समास में अन्तर बताइए।

उत्तर—सन्धि में एक से अधिक वर्णों के मेल से विकार होता है। वह स्वर और व्यंजन दोनों का हो सकता है। पर संयोग केवल व्यंजन का होता है। संयोग होने पर विकार होना आवश्यक नहीं होता। समास में कई शब्दों का मेल करके एक शब्द बनाया जाता है।

प्रश्न ५८—व्युत्पत्ति किसे कहते हैं? यह लिखकर शब्द निर्माण में काम आने वाले उपकरणों का परिचय दीजिए।

उत्तर—अर्थ की संगति देखते हुए धातु एवं शब्द के साथ प्रत्यय का संयोग करके शब्द निर्माण की रीति को व्युत्पत्ति कहते हैं। इससे शब्द के मूल (Original source) का ज्ञान हो जाता है। शब्द निर्माण में दो प्रकार के शब्दांश काम में आते हैं—उपसर्ग और प्रत्यय। प्रकृति (मूल धातु या शब्द) के साथ इन दो में से किसी एक का संयोग होने से शब्दों का निर्माण होता है।

उपसर्ग—स्वयं अर्थ न रखते हुए अन्य शब्द या क्रिया के अर्थ में परिवर्तन करने वाले शब्दांशों को उपसर्ग कहते हैं। इनका प्रयोग धातु या शब्द से पहले होता है। वे संस्कृत, हिन्दी और उर्दू तीनों में से लिये गए है। जैसे—

संस्कृत

प्र+हार=प्रहार करना, सं+हार=संहार करना,
उप+हार=उपहार (भेंट) आ+हार=आहार (भोजन)
सम्+आहार=समाहार (एकत्र करना) वि+हार=विहार
परि+हार=परिहार (दूर करना) परा+अयन=परायण (तत्परहोना)
अनु+कूल=अनुकूल (पक्ष में) प्रति+कूल=प्रतिकूल (विरुद्ध)
प्रति+रूप=प्रतिरूप=(विरुद्ध रूपवाला) अनु+रूप=अनुरूप (योग्य)
अधि+रूप=अभिरूप (विद्वान्)

हिन्दी		उर्दू	
अन+थक	बिना थके	ला+जवाब	उत्तर के बिना
अन+पढ़	बिना पढ़ा	ला+इलाज	चिकित्सा के अयोग्य
भर=पेट	पेट भर कर	बे+कायदा	कायदे के विरुद्ध
भर+सक	शक्तिभर	ना+मुनासिब	अनुचित
		बा+कायदा	कायदे के अनुसार

प्रत्यय

धातु या शब्द के अन्त में लग कर क्रिया अथवा नवीन शब्द का निर्माण करने वाले शब्दांश को प्रत्यय कहते हैं। इसके चार भेद हैं—तिङन्त, कृदन्त, तद्धित, स्त्री प्रत्यय।

तिङन्त—जो धातु के साथ लग कर क्रिया बनाते हैं। जैसे—जाना से—गया, जायेगा, जाता हुआ।

कृदन्त—जो प्रत्यय धातु के साथ लगकर शब्द बनायें। जैसे—कारक (कृ+अक), लड़ाका (लड़+आका), लड़ाई (लड़+आई), इसके पांच भेद हैं—

कर्तृवाचक—आड़ (खिलाड़), हार (पालनहार), ता (कर्ता), आका (लड़ाका), वाला, वान्, ई, पढ़ने वाला, धनवान्, पारखी)।

कर्मवाचक—अ, अन, नी, ना। जैसे—लेख, भोजन, ओढ़नी, बिछौना।

करण वाचक—ई अन, ऊ, नी। जैसे—बुहारी: वाहन, झाड़, कतरनी।

भाव वाचक—आ, आवट, आई, अन, ति। जैसे—परीक्षा, लिखावट, ई, चलन, कृति।

योग्यता वाचक—अनीय, य, तव्य। जैसे—दर्शनीय, लेख्य, कर्तव्य।

तद्धित

जो शब्दों के साथ लग कर नवीन शब्दों का निर्माण करते हैं उन्हें तद्धति प्रत्यय कहते है। अर्थ के विचार से इनके भी छः भेद हैं :—

कर्तृ वाचक—एरा (संपेरा), आर (सुनार, लोहार) ऐत (लठैत)।

भाववाचक सस्कृत प्रत्यय—ता, त्व, य, इमा। मृदुता, स्त्रीत्व, सौन्दर्य, गरिमा।

भाववाचक हिन्दी प्रत्यय—पन, आपा, आहट, आस। जैसे—बचपन, बुढापा, फुसफुसाहट, मिठास।

सम्बन्ध वाचक—ईय, इक, अ, रा, ई, इया। जैसे—भारतीय, मानसिक, शैव, वैष्णव, चचेरा, ममरा, कलकत्ती, कलकतिया।

सन्तान वाचक—एला, सौतेला, एय (गांगेय), अ (शाकुन्तल)।

कुशलता वाचक- य (शरण्य)।

स्त्री प्रत्यय

स्त्रीलिंग बनाने वाले शब्द स्त्री प्रत्यय होते है। ई आ, इन, आनी, नी—ति। जैसे—ई—पुत्री, देवी, आ-बाला, इन-धोबिन, आनी-पण्डितानी, नी, मनोरनी, ति-युवति।

प्रश्न ५६—वाक्य किसे कहते हैं? उसके कितने भेद हैं? प्रत्येक का एक एक उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए। (जून १९५५, नवम्बर १९५६)

उत्तर—शब्दों की संगत अर्थ वाली रचना को वाक्य कहते हैं। जिस वाक्य का अर्थ संगति के अनुकूल हो वही वास्तव में वाक्य कहलाने योग्य होता है।

इसके तीन भेद हैं—साधारण वाक्य, संयुक्त वाक्य, मिश्रित वाक्य।

साधारण वाक्य—जो अनेक वाक्यो या वाक्याशों से न बना हो। जैसे राजा मानसिंह अकबर के सेनापति थे। इसमे कोई अन्य वाक्य मिला हुआ नही है।

संयुक्त वाक्य—जो एक से अधिक वाक्यों को जोड़कर बनता है और सब वाक्य समान होकर योजक अव्यय से संयुक्त हों। जैसे-सिकन्दर ने साम्राज्य स्थापना की इच्छा से भारत पर आक्रमण किया और उसने कई भारतीय राजाओं की सहायता से कई राज्य जीत लिए।

यहां दो वाक्यों को 'और' ने जोड़ा है। वैसे दोनों ही स्वतन्त्र हैं।

मिश्रित वाक्य—जो कई साधारण संयुक्त वाक्यों को मिलाकर बना हो और उनका प्रधान-गौण भाव हो, वह मिश्रित या जटिल वाक्य कहा जाता है। जैसे—"वाल्मीकि ने रामायण में लिखा है कि राम बड़े प्रजापालक राजा थे और उन्होने प्रजा की प्रसन्नता के लिए प्रिय पत्नी को भी त्याग दिया था।"

यहां पहला वाक्य प्रधान है 'कि' के बाद सारा वाक्य कर्म है। 'और' से शुरू होने वाला सारा वाक्य आश्रित संयुक्त हैं।

प्रश्न ६०—वाक्य-विश्लेषण का क्या अर्थ है ? यह लिखकर उनकी रीति उदाहरण देकर लिखिये।

उत्तर—वाक्य के स्वरूप, उसके प्रत्येक अंग को पृथक् करके जाँचने की विधि को वाक्य-विश्लेषण कहते हैं। प्रत्येक के वाक्य विश्लेषण की रीति पृथक् है।

साधारण वाक्य के विश्लेषण की रीति—प्रत्येक वाक्य के दो भाग होते हैं, उद्देश्य और विधेय। जिसके सम्बन्ध में कुछ कहते हैं, वह उद्देश्य है, उसके बारे में जो कुछ कहा जाता है, वह विधेय है। जैसे—मोहन चतुर लडका है। यहां 'मोहन' उद्देश्य है, शेष वाक्य विधेय है। उद्देश्य प्रायः कर्ता होता है। उसका विशेषण कर्त्ता का वर्धक कहाता है, कर्म का विश्लेषण उसकी वृद्धि कहाता है, क्रिया के पश्चात् क्रिया विशेषण आदि विधेय के विस्तार कहे जाते हैं। इसका उदाहरण सारणी में देखिये।

संयुक्त वाक्य का विश्लेषण—संयुक्त वाक्य में एक से अधिक वाक्य होते हैं जिनके उद्देश्य और विधेय अपने-अपने पृथक् होते हैं। विश्लेषण के समय उन वाक्यों को पूरा-पूरा पृथक् लिखना चाहिए। यदि उद्देश्य लुप्त (omit) हो तो उसे भी पूरा लिख देना चाहिए। वाक्यों को जोड़ने वाला योजक

पृथक् खाने में लिखो। इसके बाद उन वाक्यों का साधारण वाक्य की ही भांति विश्लेपण करते हुए प्रत्येक के उद्देश्य और विधेय को पृथक् कर दें। ध्यान रहे कि परीक्षा में प्रश्न पत्र में पूछे गए वाक्य का स्वरूप ऊपर लिख देना चाहिए। पृथक् करने पर उनका प्रत्येक का भेद लिखना चाहिए। इसकी सारणी भी आगे दी गई है।

मिश्रित वाक्य—ऊपर लिखा गया है कि मिश्रित वाक्य में एक वाक्य प्रधान होता है, शेष गौण होते हैं। गौण वाक्य तीन प्रकार के होते हैं। १—संज्ञा वाक्य जो प्रधान वाक्य के विशेषण का काम देता है।२—विशेषण वाक्य जो कि प्रधान वाक्य में निर्दिष्ट व्यक्ति की विशेषता बताता है। ३—क्रिया विशेषण वाक्य जो कि मुख्य वाक्य के क्रिया के साथ, समय आदि का निर्देश करता है। जैसे—

१—अध्यापक ने कहा कि श्याम बहुत चालाक है। यहाँ दूसरा वाक्य 'कहा' का कर्म है।

संज्ञा का काम देने से उसे संज्ञा वाक्य (Noun Clause) कहते हैं। यहां दोनों को 'कि' ने जोड़ा है। कि के स्थान पर विराम चिन्ह का भी प्रयोग होता है। तब दूसरे वाक्य को उद्धरण चिन्ह " " में लिखना होगा।

२—यह वही व्यक्ति है जिसकी कथा मैंने तुमसे कही थी। यहां दूसरा वाक्य 'व्यक्ति' की विशेषता प्रकट करता है। अतः विशेषण वाक्य है।

३—तुम वहां पर चलो जहाँ कि वह दुर्घटना घटी थी। यहां दूसरा वाक्य चलने के लिए निर्दिष्ट स्थान को बताता है। अतः यह क्रिया विशेषण वाक्य है।

विश्लेषण की रीति—संयुक्त वाक्य की भांति सभी वाक्यों को पृथक् कर के लिखना चाहिये। योजक अव्यय पृथक् लिखना चाहिए। प्रत्येक वाक्य के संज्ञा वाक्य आदि रूप का निर्देशक करना चाहिए। इसके बाद साधारण वाक्य की भांति विश्लेपण करना चाहिये। प्रत्येक अंग का पृथक् खाने में सारणी बना कर निर्देश करना चाहिए। इनका उदाहरण आगे सारणी में देखिये।

उदाहरण—सम्राट् चन्द्रगुप्त ने प्रतापी सैल्युकस को युद्ध में पराजित किया था। (साधारण वाक्य)

साधारण वाक्य का विश्लेषण

उदाहरण—(१) सम्राट चन्द्रगुप्त ने युद्ध में प्रतापी सैल्यूकस को पराजित किया था।
(२) राणा प्रताप ने स्वाधीनता के लिए घोर संघर्ष किया था।

उद्देश्य				विधेय		
कर्त्ता	कर्त्ता का विशेषण उद्देश्य की वृद्धि	कर्म	कर्म की वृद्धि	क्रिया	पूरक	विधेय का विस्तार
चन्द्रगुप्त ने	सम्राट्	सैल्यूकस को	प्रतापी	किया था	पराजित	युद्ध में
प्रताप ने	राणा	संघर्ष	घोर	किया था	—	स्वाधीनता के लिए

संयुक्त वाक्य का विश्लेषण

उदाहरण—आलसी मनुष्य सदा पिछड़े रहते हैं।

वाक्य साधारण	उद्देश्य					विधेय		
	योजक	कर्त्ता	कर्त्ता का विस्तार	कर्म	कर्म का विस्तार	क्रिया	पूरक	विधेय का विस्तार
आलसी मनुष्य सदा पिछड़े रहते हैं	और	मनुष्य	आलसी	—	—	रहते हैं	पिछड़े	सदा
पुरुषार्थी मनुष्य जीवन को ऊंचा उठाते हैं		मनुष्य	पुरुषार्थी	जीवन को	—	उठाते हैं	—	ऊंचा

मिश्रित वाक्य का विग्रह

उदाहरण—(१) जो परिश्रम से कार्य करते हैं, वे अवश्य सफलता प्राप्त करते हैं।
(२) बुद्धिमान् व्यक्ति कहते हैं, संसार में परोपकारी मनुष्य ही यश के भागी बनते है।

क्रम संख्या	वाक्य	वाक्य खण्ड का भेद	योजक	उद्देश्य, विस्तार		विधेय और विधेय का विस्तार				
				कर्त्ता	कर्त्ता का विस्तार	क्रिया	पूरक	कर्म	कर्म का विस्तार	क्रिया विशेषण आदि
(१)	वे अवश्य सफलता प्राप्त करते हैं।	प्रधान खण्ड वाक्य	......	वे	......	प्राप्त करते है	......	सफलता	......	अवश्य
(२)	जो परिश्रम से कार्य करते हैं	आश्रित विशेषण उपवाक्य	......	जो	......	करते हैं	......	कार्य	......	परिश्रम से
(१)	बुद्धिमान् व्यक्ति कहते हैं।	प्रधान खण्ड वाक्य	......	व्यक्ति	बुद्धिमान्	कहते है	......	कि संसार ...... बनते हैं	......	....
(२)	कि संसार में परोपकारी मनुष्य ही यश के भागी बनते हैं।	आश्रित संज्ञा उपवाक्य	कि	मनुष्य	परोपकारी	बनते है	यश के भागी	......	......	ही

प्रश्न ६१—विरामादि चिन्ह क्या होते हैं ? उनका स्वरूप और प्रयोग का स्थल लिखिए।

उत्तर—वाक्य के मध्य में विश्राम, वाक्य पूर्ति, मनोभावों के आवेगों आदि की सूचना के लिये लगने वाले चिन्ह विराम चिन्ह कहे जाते हैं। ये निम्नलिखित हैं :—

१. **पूर्ण विराम**—वाक्य की पूर्ति की सूचना देने वाला चिन्ह (।)। जैसे—आज विजयदशमी का उत्सव पूर्ण हो गया है।

२. **अर्धविराम**—वाक्य की पूर्ण समाप्ति न होने पर भी जहाँ बीच में समाप्ति सी लगे, अगले वाक्य से जोड़ने वाले अध्ययन का अभाव हो, तब इस का प्रयोग होता है।। चिन्ह (;) आजकल शिक्षा का उद्देश्य नौकरी है; आत्म, विकास की भावना जाती रही; इसलिये उसका वास्तविक महत्व जाता रहा है।

३. **अल्प विराम**—इसका प्रयोग शब्दों के मध्य में योजक के स्थान पर, पूर्ण लघु वाक्य से दूसरे वाक्य को जोड़ने के लिये, संज्ञा के बाद विशेषण से पूर्व, एक के लिये आने वाले कई विशेषणों के मध्य में और सम्बोधन के बाद इसका प्रयोग होता है। चिन्ह (,)। जैसे=राम कृष्ण और बुद्ध जैसी विभूतियों को इस पवित्र भूमि, भारत ने ही जन्म दिया है।

४. **कोष्ठक चिन्ह** (Brackets)—किसी बात के स्पष्टीकरण के लिये उसका अर्थ वाक्य का अंग न बनाते हुये इसमें लिखा जाता है। चिन्ह ( )। जैसे–३० जनवरी हमारे राष्ट्रपिता (महात्मा गांधी) की बलिदान तिथि है।

५. **उद्धरण चिन्ह**—किसी के कथन को ज्यों का त्यों दूसरे स्थान पर उद्धरण रूप में लिखने के लिये इन चिन्हों के मध्य में लिखा जाता है। चिन्ह " "। जैसे–लोकमान्य तिलक के ओजस्वी शब्द, "स्वतन्त्रता भारत का जन्म सिद्ध अधिकार है" इतिहास प्रसिद्ध हैं।

६. **अपूर्ण विराम**—आगे जाने वाली बात के लिये पहले वाक्य से संकेत करना हो तो इसका निर्देशक वाक्य के साथ प्रयोग होता है। चिन्ह (:—)। जैसे —निम्नलिखित प्रश्नों में से किन्ही ५ का उत्तर दीजिये :—

७. **निर्देशक**—किसी शब्द के भाव को साथ-साथ स्पष्ट करने के लिये उसके

आगे लगाया जाता है। चिन्ह (—) जैसे—सरदार पटेल—भारत के लौह पुरुष—से सारे भारतीय नरेश काँपते थे।

८. संयोजक—यह समस्त पदों के मध्य लगाकर समास की सूचना देता है। चिन्ह (-) जैसे—रघु-कुल-कुमुद-विधु।

९. लाघवचिन्ह—किसी शब्द को संक्षेप से लिखने के लिये इसका प्रयोग उसके आदि अक्षर के साथ कर दिया जाता है। चिन्ह (०)।

जैसे—डा० राजेन्द्रप्रसाद, स० पटेल।

१०. शीर्षकचिन्ह—लेख के शीर्षक के आगे लगता है। चिन्ह (:)। जैसे—घोर अनर्थ :

११. प्रश्नसूचक—वाक्य को प्रश्न वाचक सूचित करने के लिये इसका प्रयोग होता है। चिन्ह (?)। जैसे—वह क्या करता है?

१२. विस्मयादि द्योतक—मानसिक आवेश की सूचना के लिए इनका प्रयोग होता हैं। चिन्ह (!)। जैसे—हाय! मैं तो लुट गया!

छात्रों के लिये उपयोगी शब्दकोष

प्राय: अशुद्ध लिखे जाने वाले कुछ शब्दों की सूची

अशुद्ध	शुद्ध	अशुद्ध	शुद्ध
आधीन	अधीन	लावण्यता	लावण्य
क्षात्र	छात्र	शान्ति	शांन्ति
प्रयाप्त	पर्याप्त	पैत्रिक	पैतृक
श्रंगार	शृंगार	साहित्यक	साहित्यिक
प्रगट	प्रकट	स्मवन्ध	सम्बन्ध
प्रमात्मा	परमात्मा	स्वयम्वर	स्वयंवर
प्रमेश्वर	परमेश्वर	सम्वाद	संवाद
पत्नीयों	पत्नियों	कवित्री	कवयित्री
जागर्ति	जागृति	औपधि	ओषधि
सृजन	सर्जन	उज्जवल	उज्ज्वल
श्राप	शाप	निरपराधी	निरपराध

लक्ष्मीवान्	लक्ष्मीमान्	निर्दोषी	निर्दोष
दृस्टा	द्रष्टा	ऊषर	ऊसर
भावुक्ता	भावुकता	सुन्द्र	सुन्दर
स्वासथ्य	स्वास्थ्य	विधी	विधि

कुछ प्रमुख स्त्री-प्रत्ययांत शब्द

पुल्लिग	स्त्रीलिंग	पुल्लिंग	स्त्रीलिंग
मानुष	मानुषी	दैहिक	दैहिकी
मनुष्य	मानुषी	शिव	शिवा
सम्राट्	सम्राज्ञी	कर्ता	कर्त्री
ईश्वर	ईश्वरी	याचक	याचिका
शंकर	शंकरी	नेता	नेत्री
मत्स्य	मत्सी	निर्माता	निर्मात्री
नर	नारी	साधु	साध्वी
वैश्य	वैश्य	आकर्षक	आकर्षिका
गुरु	गुरुपत्नी	राम	रामा
सिंह	सिंही	गृही	गृहिणी
महिष	महिषी	कवि	स्त्रीकवि
नागर	नागरी	जनक	जननी
मेंढा	भेड़	पुत्रवान्	पुत्रवती
ग्राहक	ग्राहिका	वर	वधू
सभापति	सभापत्नी	राक्षस	राक्षसी
मृदु	मृद्वी	सुन्दर	सुन्दरी
तपस्वी	तपस्विनी	सन्यासी	सन्यासिनी
रमण	रमणी	युवा	युवति
मयूर	मयूरी	श्रोता	श्रोत्री
रक्षक	रक्षिका	परिचारक	परिचारिका
पिक	पिकी	हंस	हंसी
श्वशुर	श्वश्रू	विद्वान्	विदुषी

गज	करेणु	बलवान्	बलवती
हाथी	हथिनी	ब्रह्मा	ब्रह्माणी
अश्व	वडवा	कुमार	कुमारी
वृक्ष	लता	प्रिय	प्रिया
इन्द्र	इन्द्राणी	भव	भवानी

संज्ञाओं से विशेषण

अंग	अंगी, आंगिक, अंगज	अनुभव	अनुभवी, अनुभूत
अधर्म	अधर्मी, अधार्मिक	अस्त्र	अस्त्री, अस्त्रज्ञ
अभिमान	अभिमानी	अमर्ष	अमर्षी
अर्थ	आर्थिक	अविराम	अविरत
आविष्कार	आविष्कृत	अतिथि	आतिथेय
उदय	उदित	उपहार	उपहृत
आयु	आयुष्य, आयुष्कर	आयोजन	आयोजित
अनुग्रह	अनुगृहीत	आश्रय	आश्रित
उद्योग	उद्योगी, औद्योगिक	पाप	पापी
विधि	विहित, वैध	जाति	जातीय
सभा	सभ्य	दिन	दैनिक
वेद	वैदिक	वर्ष	वार्षिक
ऋषि	आर्ष	धर्म	धार्मिक
विरोध	विरोधी, विरुद्ध	देह	दैहिक
जिज्ञासा	जिज्ञासु	मास	मासिक
नरक	नारकीय	रात्रि	रात्र्य
स्वर्ग	स्वर्गीय	तप	तपस्वी, तापस
शान्ति	शान्त	मन	मनस्वी, मानस
कान्ति	कान्तिमान्	आत्मा	आत्मिक, आत्मवान्
शुद्धि	शुद्ध	धन	धनी, धनवान्
मूल्य	मूल्यवान्	गुण	गौण, गुणी, गुणवान्
साहस	साहसी, साहसिक	सूर्य	सौर

भोग	भोगी	दोष	दोषी, दुष्ट
कृपा	कृपालु	गो	गव्य
प्रकाश	प्रकाशित	इन्द्रिय	ऐन्द्रिय
मानव	मानवीय	प्रकृति	प्राकृतिक
प्रमाण	प्रमाणित, प्रामाणिक	समास	समस्त
उपकार	उपकृत, उपकारी	हिंसा	हिंसक
गौरव	गौरवपूर्ण	माधुरी	माधुर्यपूर्ण
महिमा	महिमाशाली	लावण्य	लावण्यसम्पन्न
यौवन	यौवनशोभी, युवा	सौकुमार्य	सौकुमार्ययुक्त

अनेकार्थ शब्द

अंक—चिन्ह, संख्या, अक्षर, गोद ।

अंग—शरीर, अवयव, बिहार देश का एक भाग ।

अंत—समाप्ति, अन्तिम भाग, कोना, मध्य ।

अक्षर—वर्ण, अविनाशी, ब्रह्म, मोक्ष, जल, सत्य, नित्य ।

अज—अजन्मा, ब्रह्मा, बकरा ।

अर्क—सूर्य, आक का पेड़, भाप से खींचा गया रस ।

ऋतु—समय, वर्ष के छः मौसम, स्त्री का मासिक धर्म ।

आशा—सम्भावना, इच्छा, दिशा ।

कनक—सोना, धतूरा, ढाक, नाग, केशर, गेहूं ।

कर—किरण, हाथ, राजा का कर, हाथी की सूंड, ओला ।

कांचन—सुवर्ण, धतूरा, केशर, कमल ।

काल—शिव, मृत्यु, समय, मुहूर्त, शनि, सांप, अकाल !

गण—समूह, सेना का भाग, छन्दों के वर्ग समूह, शंकर के सेवक ।

कुल—वंश, वर्ण, जाति, घर, समूह ।

गुण—डोरी, धनुष, स्वभाव, प्रकृति के तीन धर्म, रंग, राजनीति के छः अंग ।

गौ—इन्द्रियां, गाय, पृथ्वी, किरण, पशु, दिशा, घोड़ा, सूर्य ।

गुरु—भारी, श्रेष्ठ, मन्त्रदाता, आचार्य, शिक्षक, बड़ा, पिता, बृहस्पति, दो मात्रा वाला स्वर ।

घन—बादल, घना, ठोस, कपूर, सघन, दृढ़, मोटा।

ग्रह—तारे, रुकावट, जिद्द, अनुरोध, प्रयत्न।

चक्र—रथ का पहिया, समूह, जाल, कुम्हार का चाक, एक पैने घेरे वाला अस्त्र, राष्ट्र, देश, दिशा, भ्रमण।

चन्द्र—चन्द्रमा, कपूर, अनुनासिक, हीरा, सुन्दर।

चम्पा—एक नगरी, एक फूल, एक केला, एक कीड़ा।

जगत्—संसार, कुएं की छत, वायु, महादेव।

तरणि—सूर्य, नाव, घी कंवार, आक का पेड़।

तीर—तट, बाण, समीप, तालाब।

तीर्थ—शास्त्र, यज्ञ, पवित्र स्थान, उपाय, घाट, स्त्री-रज, पात्र, योनि, ब्राह्मण का हाथ, मन्त्र, अग्नि, माता-पिता।

द्विज—दांत, ब्राह्मण, पक्षी।

नग—पर्वत, वृक्ष, अचर।

पक्ष—महीने का आधा भाग, पंख, सहायक, दल, मित्र, राजा का हाथी, कंकड़, एक भाग, दिशा।

पट—पर्दा, कपड़ा, द्वार, तिरछा, चित्र का आधार।

प्रजा—सन्तान, जनता, नागरिक।

प्रसाद—कृपा, अनुग्रह, नैवेद्य, प्रसन्नता, काव्य का एक गुण, निर्मलता।

मधु—मीठा, शहद, रस, वसंत, सुरा, चैत्र का महीना।

रति—प्रेम, आसक्ति, मैथुन, कामदेव की स्त्री।

लोक—जनता, संसार, द्वीप, मनुष्यों का वास स्थान।

वन—जंगल, पानी, समूह।

वर्ण—जाति, रंग, ध्वनि।

वज्र—हीरा, बिजली, इन्द्र का अस्त्र, कठोर।

शिव—कल्याण, शंकर, गीदड़।

संधि—जोड़, वर्ण-विकार, दो शत्रुओं में मेल, संयोग, दरार, छल, षड्यंत्र।

सार—लोहा, बल, तत्व, खाद, फौलाद, हीरा, निष्कर्ष।

सारंग—एक राग, मोर, चातक बादल, मृग, पानी, सांप, हंस, कोयल, सिंह, काम, स्त्री, शंख, वस्त्र, कमल, कपूर।

सूत्र—गम्भीर अर्थ वाले छोटे वाक्य, धागा, रीति, प्रबन्ध, भार।

हरि—विष्णु, इन्द्र, धनुष, मेंढक, सिंह, घोड़ा सूर्य, चन्द्र, शुक्र, वानर, यम

अनेक शब्दों के लिए एक शब्द (वाक्य-संकोच)

१. जो बात न कही जा सके—अकथनीय। २. सबको समान देखने वाला—समदर्शी। ३. जिसका जन्म न हो—अजन्मा ४ बाहर से आने वाला—आगन्तुक। ५. जो बूढ़ा न हो—अजर। स्वयं लिखी जीविनी—आत्मकथा। ७. जो डिगे नहीं—अटल, अडिग। ८. अपनी हत्या स्वयं करना—आत्म-हत्या। ९. जिसके आने की तिथि न हो—अतिथि। १०. व्यर्थ अधिक बोलने वाला—वाचाल। ११. जो देखा न जा सके—अदृश्य। १२. आगे चलने वाला—अग्रसर। १३. जिसे दबाया न जा सके—अदम्य। १४. नई वस्तु का निर्माण-आविष्कार। १५. जिस सा दूसरा कोई न हो—अद्वितीय। १६. शास्त्र और ईश्वर को मानने वाला—आस्तिक। १७ शास्त्र और ईश्वर को मनाने वाला नास्तिक। १८. जिससे पहला कोई न हो—अनादि। १९. उपजाऊ भूमि—उर्वरा २०. जो देख न सके—अन्ध, प्रज्ञाचक्षु। २१. उपज के अयोग्य भूमि—ऊसर। २२. जो अज्ञात वस्तुओं की खोज करे—अन्वेषक। २३. कर्म करने वाला—कर्मठ। २४. जिसका कोई मूल्य न हो—अमूल्य। २५. सच्चे हृदय से—हार्दिक। २६. जो उचित अनुचित के ज्ञान से रहित हो—अविवेकी। २७. ऊंची भावना वाला—उदार। २८. जिस पद के लिए कोई वेतन न हो—अवैतनिक। २९ भावों के वश में रहने वाला—भावुक। ३०. न मिलने वाली वस्तु—अप्राप्त। ३१. जो दूसरों के मन की बात जाने—अन्तर्यामी। ३२. जिसके कहने-सुनने में लज्जा हो—अश्लील। ३३. जो उपकार को माने—कृतज्ञ। ३४. हाथ-पांव से रहित—लुंज। ३५. जो उपकार को न माने—कृतघ्न। ३६ पांवों से रहित—पंगु। ३७. अधिक दिन जीने वाला—दीर्घायु। ३८. कानों से रहित—बूचा। ३९. तीनों काल की बात जानने वाला—त्रिकाल-दर्शी। ४०. नाक से रहित—नकटा। ४१. जिसका शरीर न हो—निराकार। ४२. एक टाँग वाला—लंगड़ा। ४३. जिसका सहारा न हो—निराधार। ४४. जो सम्पत्ति पिता से प्राप्त हो—पैतृक। ४५. जो पुत्र गोद लिया गया हो—दत्तक।

कुछ पर्यायवाचक शब्द

अग्नि—वन्हि, कृशानु, अनल, पावक, दहन, वैश्वानर।

अंधकार—तम, तिमिर, कल्मष, कलुष ।
अश्व—तुरंग, हय, वाजी, तुरंगम ।
कमला (प्रथमा, संवत् २०१७)—अरविंद, उत्पल, जलज, सरोज पंकज, अंबुज, जलजात ।
चंद्र—शशी, चन्द्रमा, शशांक, मृगांक, इन्दु, विधु, निशाकर, तारापति, राकेश ।
जल—(प्रथमा, संवत्२०१७)—अम्बु, तोय, सलिल, जीवन, वन, नीर, पय, रस अम्भ ।
तरंग—लहर, वीचि, ऊर्मि, लहरी, कल्लोल ।
तारा—ऋक्ष, नक्षत्र, तारिका, उडु, ग्रह, खेचर ।
दूध—क्षीर, पय, स्तन्य, दुग्ध, गोरस ।
देव—सुर, अमर, निर्जर, त्रिदेश, सुमन, वृन्दारक ।
धन—द्रव्य, अर्थ, द्रवरिण, सार, विभव, वित्त, श्री, लक्ष्मी ।
पक्षी—विहग, विहंगम, खग, नभचर, खेचर ।
पुष्प—कुसुम, सुमन, प्रसूत, सून ।
पृथ्वी—मही, धरणी, धरित्री, धरा, वसुन्धरा, क्षमा, क्षोणी, वसुधा, मेदिनी ।
प्रकाश—प्रभा, तेज, ज्योति, वर्च, भा, बिभा, आभा, वद्युति ।
प्रातःकाल—प्रत्यूप, प्रताप, अरुणोदय, विहान, विभात, उषःकाल, निशावसान ।
बर्फ—हिम, प्रालेय, तुहिन, तुषार, नीहार ।
बाण—शर, सायक, शिलीमुख, विशिख ।
बादल—वारिद, मेघ पयोद, पयोमुच्, जलधर, नीरद, बलाहक, धन ।
भूषण—अलंकार, मण्डन भूषा, प्रसाधन, आभरण, आभूषण ।
मार्ग—पथ, सरणी, पन्था अध्वा ।
रात्रि—निशा, यामिनी, क्षपा, तमिस्रा, दोप, विभावरी ।
राजा—भूप, नृप, नरपति, पृथ्वीपाल, महीपाल, वसुधाधिप, नरदेव ।
वन—अटवी, वन, अरण्य, कानन, गहन, कान्तार ।
वायु—पवन, समीर, समरण, अनिल, मारुत, सदागति, नभस्वान् ।
वृक्ष—अग, नग, तरु, भरुह, विटपी, शाखी, विपट, पादप, महीरुह ।
शरीर—गात्र, तनु, वपु, देह, वर्ष्म, विग्रह, काय, कलेवर ।
शराब—मधु, मदिरा, मद्य, सुरा, शीधु, वारुणी, कादम्बरी ।

संध्या—दिनान्त, सायंकाल, प्रदोष, सूर्यास्तमनवेला।

सूर्य—आदित्य, पूषा, दिनकर, दिवाकर, प्रभाकर, सविता, उष्णकर, तमरिपु, भास्कर, अर्क।

हंस—मराल, कलहंस, राजहंस, चक्रांग, मानसौक।

शब्दों में परस्पर भेद

अग—जड़, पर्वत
नग—वृक्ष, पर्वत
नाग—हाथी, सांप
अविराम—लगातार, विना रुके
अभिराम—सुन्दर
शस्त्र—जिसे हाथ से पकड़कर चलायें
अस्त्र—जो हथियार फेंका जाय
अंचल—कोना, दामन
आकार—आकृति, डीलडौल
आकर—खान
आसन—बैठने के लिए आधार
आसन्न—पास
आयु—उम्र
आय—आमदनी
इस्त्री—कपड़े पर फेरने का लोहा
स्त्री—नारी
उज्ज्वल—सफेद, चटकीला
निर्मल—स्वच्छ
कर्म—कार्य
क्रम—बारी, सिलसिला
कीर्ति—पराक्रम से प्रसिद्ध
देश—गुण से ख्याति
नद—बड़ी नदी
नाद—शब्द
क्षिति—पृथ्वी
क्षात्र—क्षत्रिय का
छात्र—विद्यार्थी
ग्रन्थ—पुस्तक
ग्रन्थि—गांठ
जल—पानी
जाल—फंदा, समूह
तरणि—सूर्य
तरणी—नौका
तरुणी—युवति
अचल—अडिग, पर्वत
देव—देवता
दैव—भाग्य
पुरुष—कठोर
परुप—नर
प्रणय—प्यार
परिणय—विवाह
प्रसाद—प्रसन्नता
प्रासाद—महल
प्रकार—ढंग
प्राकार—परकोटा
प्रहर—पहर
प्रहार—आक्रमण
भिक्षु—बौद्ध साधु
भिक्षुक—भिखारी
क्षति—हानि
वर्ण—अक्षर, रंग
व्रण—घाव
वेस—भेस
वैस—अवस्था

सम्मान—आदर
समान—सदृश
परिमाण—नाप, तोल
परिणाम—फल
प्रणाम—नमस्कार
प्रमाण—साक्षी, सबूत
लज्जा—लाज, शर्म
ग्लानि—अपने पर घृणा
ओर—तरफ
और—तथा
खेद—मन की मलिनता उदासी
शोक—चित्त की विकलता
भ्रम—मिथ्या ज्ञान
प्रमाद—असावधानी
अलौकिक—लोकोत्तर
अस्वाभाविक—प्रकृति विरुद्ध, असाधारण।

विपरीतार्थक शब्द

अनुकूल	प्रतिकूल	एक	अनेक
अणु	बृहत्, महत्	ऐहिक	आमुष्मिक
अनुग्रह	निग्रह	ऐन्द्रिय	अतीन्द्रिय
अथ	इति	ओछा	बड़ा, गहरा
अनुराग	विराग	कटु	मधुर
अंगीकार	प्रत्याख्यान	कपूत	सपूत
अपराधी	निरपराध	कठोर	कोमल
अधिकारी	अनाधिकारी	यश	अपयश
आगमन	गमन	उपकार	अपकार
आरम्भ	समाप्ति	उज्ज्वल	मलिन
असीम	ससीम	कृतज्ञ	कृतघ्न
आय	व्यय	गरिमा	लघिमा
आशा	निराशा	गुरु	लघु
आरोह	अवरोह	गौरव	लाघव
आस्तिक	नास्तिक	गूढ़	स्पष्ट
आदर्श	यथार्थ	चर	अचर
आवश्यक	अनावश्यक	चपल	गम्भीर
आध्यात्मिक	भौतिक	जय	पराजय
उद्विग्न	शान्त	ज्ञानी	अज्ञानी

उपस्थित	अनुपस्थिति	देव	दानव
उदय	अस्त	दुर्गम	सुगम
इच्छा	अनिच्छा	दुर्लभ	सुलभ
उन्नति	अवनति	धर्म	अधर्म
उत्तीर्ण	अनुत्तीर्ण	निर्माण	ध्वंस
उत्कर्ष	अपकर्ष	निर्जीव	सजीव
उदार	अनुदार	प्रख्यात	कुख्यात
उद्यम	आलस्य	प्रसाद	कोप
प्रत्यक्ष	परोक्ष	वर	शाप
प्रवृत्ति	निवृत्ति	श्लाघा	निन्दा
भूषण	दूषण	शोषण	पोषण
भैरव	मधुर	सदाचार	दुराचार
मानव	दानव	शूर	कातर
विधि	निषेध	संक्षेप	विस्तार
वाद	विवाद	स्थूल	कृश, सूक्ष्म
विकास	ह्रास	संयोग	वियोग
सम्पद्	विपद	सुकुमार	कर्कश
स्त्री	पुरुष	सन्धि	विग्रह
समास	व्यास	स्तुति	निन्दा
सामान्य	विशेष	हर्ष	शोक
हास	रुदन	स्वार्थ	परार्थ
हित	अहित	हानि	लाभ

समूह वाचक शब्द

१—रत्नों की माला
२—मणियों का हार
३—पुष्पों की माला
४—पक्षियों का वृन्द
५—पशुओं का झुण्ड, रेवड़
६—औषधियों का वर्ग
७—शब्दों का समुदाय
८—पुष्पों का समूह, गुच्छ, स्तवक,
९—डाकुओं का गिरोह
१०—हाथियों का यूथ
११—वृक्षों का झुण्ड
१२—लताओं व घास का गुल्म

१३—नक्षत्रों की पंक्ति
१४—मनुष्य का समाज
१५—सोना-चांदी आदि का ढेर, राशि
१६—भवनों की पंक्ति
१७—सेनाओं का समूह, गुल्म
१८—दिशाओं का चक्र
१९—राजाओं का मण्डल
२०—सदस्यों की परिषद्

शब्द-युगल में अन्तर

(१) **उधार** :—मैंने उससे दो सौ रुपया **उधार** लिया।
उद्धार :—राम ने अहिल्या का **उद्धार** किया।

(२) **अदृश्य** :—बचन्द्रमा ादलों में **अदृश्य** हो गया।
अदृष्ट :—अदृष्ट वस्तुओं की कल्पना करना भी असम्भव है।

(३) **दिन** :—एक मास में तीस **दिन** होते हैं।
दीन :—श्रीकृष्ण जी सुदामा की **दीन** दशा देखकर बहुत दुःखी हुए

(४) **अनिल** :—शीतल अनिल चल रही है, कैसा सुहावना मौसम है।
अनल :—तुम तो अपने कुल को जलाने वाली **अनल** हो।

(५) **चिर** :—मैंने उसे बहुत **चिर** से नहीं देखा है।
चीर :—दुष्ट दुश्शासन ने दुर्योधन की सभा में द्रौपदी का **चीर** खींचकर उसे अपमानित किया।

(६) **अपेक्षा** :—मेरी **अपेक्षा** मोहन अधिक चतुर है।
उपेक्षा :—मेरी समझ में नहीं आता कि आप मेरी इतनी **उपेक्षा** क्यों करते हो?

(७) **परिश्रम** :—**परिश्रम** का ही दूसरा नाम पुरुषार्थ है।
श्रम :—उसे अपने **श्रम** के लिये दो रुपये प्रतिदिन मिलते हैं।

(८) **आयु** :—उसने पचास वर्ष की **आयु** भोगी।
अवस्था :—उसकी **अवस्था** चालीस वर्ष है।

(९) **आयास** :—आयास करने पर कार्य अवश्य पूर्ण होगा।
प्रयास :—उसने इस कार्य को समाप्त करने का **प्रयास** किया।

(१०) **चरित** :—राम **चरित** मानस विश्व साहित्य की एक उत्कृष्ट रचना है।
चरित्र :—उसका **चरित्र** महान है।

———

निबन्ध तथा रचना

निबन्ध क्या है ?—इस प्रश्न के उत्तर में हमें इस शब्द पर ही ध्यान देना चाहिए। नि+बन्ध इन दो शब्दों को मिलाकर इस शब्द का निर्माण हुआ है। नि उपसर्ग है जिसका अर्थ है 'सर्वथा' या 'पूरी तरह'; बन्ध का अर्थ है 'बाँधना' अर्थात् किसी विषय को अपने अनुकूल सामग्री से एक संगठित लेख के रूप में बाँधना। इस प्रकार निबन्ध उस लेख को कहते हैं जिसमें किसी एक विषय पर पूर्ण रूप से विचार किया गया हो। यद्यपि ऐसा लेख पद्य से भी हो सकता है तथापि निबन्ध गद्य में ही होता है। यह गद्य के अनेक महत्वपूर्ण अंगों में से एक है।

प्रबन्ध और लेख में अन्तर—प्रायः लोग निबन्ध के लिए प्रबन्ध और प्रस्ताव इन दो शब्दों का प्रयोग करते हैं। पर यह प्रयोग अब असंगत समझा जाने लगा है। कारण यह है कि निबन्ध के लिए संक्षेप, रोचकता और पूर्णता ये तीन बातें आवश्यक हैं। इसका कारण यह है कि वह साहित्य का एक अंग है। साहित्य का सम्बन्ध हृदय से अधिक होता, मस्तिष्क से कम। प्रबन्ध उन लेखों के सम्बन्ध में रूढ़ है, जो किसी विषय पर खोज के रूप में लिखे गये हों। ऐसे लेखों के लिए एक तो अन्य ग्रन्थों का भी आश्रय लेना पड़ता है, फिर वह निबन्ध की अपेक्षा विस्तृत होता है। इसका संबन्ध हृदय की अपेक्षा मस्तिष्क से अधिक होता है। इस कारण इसमें रोचकता नहीं होती। इस प्रकार यह निबन्ध से दूर जा पड़ता है।

प्रस्ताव शब्द को देखें तो किसी विषय को सामने रखना इस अर्थ में यह कुछ-कुछ संगत लगता है। परन्तु विचारार्थ प्रस्तुत किया गया विषय प्रस्ताव कहा जाता है। निबन्ध में विचार किया जाता है, प्रस्ताव पर विचार करना होता है। इसलिए दोनों में भेद है।

निबन्ध के लिए एक अन्य शब्द प्रयोग में आता है 'लेख', इसमें भी निबधन की भाँति एक ही विषय पर विचार किया जाता है, यह भी पूर्ण होता

परन्तु यह साहित्यिक ही न होकर राजनीतिक एवं वैज्ञानिक विषयों पर भी हो सकता है जिसके कारण निवन्ध वाली रोचकता इसमें भी नहीं होती। यह भी प्रवन्ध की भाँति पर्याप्त विस्तृत होता है। पूर्ण होने पर एक पुस्तिका या पुस्तक का रूप धारण कर सकता है। निवन्ध इतना विस्तृत नहीं हो सकता। अतः यह भी निवन्ध की कोटि में नहीं आ सकता।

निबन्ध का महत्व—निवन्ध गद्य साहित्य में विशेष स्थान रखता है। उसमें जहाँ कहानी, उपन्यास और नाटक आदि की रोचकता रहती है, वहाँ अध्ययन की सामग्री भी प्रचुर मात्रा में रहती है। कथा-कहानी तो एक साधारण शिक्षित भी लिख सकता है, परन्तु निवन्ध लेखन प्रत्येक के लिए सम्भव नहीं। उसके लिए सम्वन्धित विषय का पूर्ण ज्ञान अनिवार्य है। हम जिस विषय का ज्ञान नहीं रखते, उस पर निबन्ध कभी भी नहीं लिख सकते। इसलिए विविध विषयों का ज्ञान इसके लिए आवश्यक होता हैं। पहले विभिन्न विषयों का अध्ययन करना अनिवार्य है, फिर अच्छे एवं विद्वानों के निवन्धों को पढ़कर उनकी शैलियों का ज्ञान प्राप्त करना होता है। तदुपरान्त सभी प्रकार के निबन्धों को लिखने के लिए उनकी विशिष्ट प्रणाली का अभ्यास करना पड़ता है, विना अभ्यास के कोई भी अच्छा निवन्ध लेखक नहीं हो सकता। कारण यह है कि प्रत्येक निवन्ध को एक ही या मनमाने तरीके से नहीं लिखा जा सकता। वर्णनात्मक निवन्ध और भावात्मक निवन्धों की शैली में आकाश-पाताल का अन्तर होता है। इसी प्रकार विवरणात्मक और विचारात्मक निवन्ध भी लेखन पद्धति के विचार से सर्वथा पृथक् हैं।

निवन्धों के द्वारा हम लेखक के व्यापक ज्ञान, उसकी लेखनी का कौशल उसके विस्तृत अध्ययन और उसके विचारोंका परिचय प्राप्त करते हैं। उसके लेख पर उसके व्यक्तित्व की छाप होती है। लेखक का पांडित्य उसके निबन्धों से ही जाना जा सकता है। रामचन्द्र शुक्ल और श्यामसुन्दर दास के निवन्धों में उनकी विद्वत्ता की पूरी छाप है। यही कारण है कि आधुनिक उन्नति साहित्य की श्रेष्ठता उसके निवन्धों के आधार पर आंकी जाती है।

निबन्धों के भेद—निवन्धों के विषय एवं शैली के विचार से चार भेद हो। हैं—

१. वर्णनात्मक ।

२. विवरणात्मक ।

३. विचारात्मक या विवेचनात्मक ।

४. भावात्मक ।

वर्णनात्मक—इन निबन्धों में किसी दृश्य, स्थान, वस्तु, व्यक्ति आदि का वर्णन किया जाता है। यह प्रायः वर्तमान काल में और प्रसंग के अनुसार भूतकाल में भी लिखा जाता है। इसकी शैली बड़ी रोचक होनी चाहिये। वाक्य छोटे किन्तु भावपूर्ण होने चाहिए। आगे दिया "वसन्त ऋतु" का निबन्ध इसी प्रकार का है।

विवरणात्मक—इसमें किसी का जीवनचरित, बीती हुई घटना, यात्रा आदि का विवरण होता है। इसे भूतकाल में कहानी के रूप में लिखना चाहिए आगे दिया 'रेल यात्रा' निबन्ध इसी कोटि का है।

विचारात्मक—इसमें किसी सामाजिक, राजनीतिक या साहित्यिक विषय पर गहराई से विचार किया जाता है। उसके अंगों एवं सम्बद्ध बातों पर भी प्रकाश डाला जाता है। 'परिश्रम ही सफलता की कुञ्जी है,' निबन्ध इसी प्रकार का है।

भावात्मक—किसी वस्तु को लेकर या स्थान को देखकर मन के भावों को जिसमें प्रकट किया जाय, ऐसा निबन्ध भावात्मक होता है। इसमें भावुकता बड़ी मात्रा में रहती है। इसमें प्रायः उत्तम पुरुष का प्रयोग करना चाहिए, रूखापन कतई न आने देना चाहिए।

निबन्ध के अंग—संगठन के विचार से निबन्ध के चार अंग होते हैं—

१. भूमिका ।

२. उपपत्ति ।

३. उदाहरण ।

४. उपसंहार ।

भूमिका- जिस प्रकार किसी मकान की नींव उसकी दृढ़ता के लिए आवश्यक होती है, इसी प्रकार निबन्ध के संगठन के लिए भूमिका बांधना जरूरी होता है। निबन्ध के मुख्य विषय के परिचय या उससे सम्बन्धित अन्य

विषय से आरम्भ करके फिर धीरे-धीरे प्रधान सामग्री तक आना चाहिए। परन्तु भूमिका इतनी लम्बी भी न हो कि पाठक पढ़ता-पढ़ता अधीर हो जाय। निबन्ध के कलेवर के अनुपात से ही उसकी रचना होनी चाहिए।

उपपत्ति—इसमें निबन्ध के विषय पर आकर विस्तार से प्रकाश डाला जाता है। उससे सम्बन्ध रखने वाली सभी बातें इस भाग में दे दी जातीं हैं। साहित्यिक निबन्धों में इस भाग में. पद्यों के उद्धरण भी देने चाहिएं।

उदाहरण—कभी-कभी निबन्धों में उपस्थित विषय को स्पष्ट करने या उसकी पुष्टि के लिए कोई उदाहरण देना होता है। यह अत्यन्त संक्षेप में होना चाहिए। यह न हो कि उदाहरण सारे निबन्ध को ही घेर ले।

उपसंहार—यह सारे निबन्ध का निचोड़ होता है। सारे निबन्ध में हम जो कुछ विचार प्रकट करते हैं, उनमें जिस निर्णय पर पहुँचते है, वही यहाँ देना चाहिए। यह संक्षिप्त किन्तु प्रभावशाली हो। पर यह ध्यान रखना चाहिए कि एक बार समाप्त करके पुनः उसे आरम्भ न करना चाहिए।

आगे उदाहरणार्थ कुछ आवश्यक निबन्ध दिये जा रहे हैं जो कि चारों प्रकार के है। परीक्षार्थियों को उनको दृष्टिगत रखते हुए अन्य निबन्धों का भी अभ्यास करना चाहिए।

भारत में ग्राम-सुधार

यह कहना अनुचित न होगा कि वास्तविक भारत ग्रामों मे ही निवास करता है। कारण यह है कि भारत एक ग्राम प्रधान देश है। हमारे देश में छः लाख के लगभग गांव है और हमारे देश की कुल जनता का तीन-चौथाई भाग गाव में ही रहता है।

अंग्रेजों के शासन-काल में भारत के ग्रामों की दशा बहुत दयनीय हो गई थी। अंग्रेजों ने अपना व्यापार बढाने के लिए भारत के उद्योग-धन्धों को अपनी कुटिल नीतियों द्वारा नष्ट कर दिया था। इसका कारण यह हुआ कि ग्राम-वासियों के पास जीविका-निर्वाह का कृषि के अतिरिक्त और कोई साधन नबचा। कृपि में व्यक्ति के सम्पूर्ण समय का सदुपयोग नही हो पाता।

वर्ष के कई महीने किसान को निठल्ला बैठे रहना पड़ता है। इसलिए उसकी आय उसके निर्वाह के लिए पर्याप्त नहीं होती। अंग्रेजों के शासन काल में किसानों पर ऋण का बोझ बढ़ता ही चला गया। गाँवों की आर्थिक दशा और अधिक गिरती चली गई।

अंग्रेजों के आगमन से पूर्व भारतीय ग्राम बहुत सीमा तक आत्म-निर्भर इकाई थे। ग्रामवासियों की आवश्यकता की लगभग सभी वस्तुएं ग्राम में ही तैयार हो जाती थीं। परन्तु अंग्रेजों ने गाँवों की आत्म-निर्भरता को नष्ट कर दिया। उन्होंने ग्रामवासियों को विवश किया कि वे विदेशों में बना हुआ माल खरीदें। ग्रामों की आत्म-निर्भरता नष्ट हो जाने का फल यह हुआ कि गाँवों की समृद्धि अतीत की वस्तु बन गई।

विदेशी शासक इस देश में शोषण करने के लिए आये थे। इस दृष्टि से मुगल शासक अंग्रेजों की अपेक्षा कहीं अधिक अच्छे थे, क्योंकि मुगल शासक जनता से जो कुछ धन करों के रूप में वसूल करते थे, उसे वे छीन कर कहीं विदेश में नहीं ले जाते थे, बल्कि उस धन का व्यय फिर इसी देश में ही होता रहता था। देश की समृद्धि ज्यों की त्यों बनी रहती थी। परन्तु अंग्रेजों के शासन काल में प्रतिवर्ष करोड़ों रुपए की बहुमूल्य सामग्री इस देश से इंगलैंड को जाती थी, जो फिर कभी लौटने का नाम न लेती थी। 'सोने की चिड़िया' कहा जाने वाला भारतवर्ष थोड़े ही समय में इतना दरिद्र हो गया कि यहाँ पर बारम्बार अकाल पड़ने लगे और प्रजा भूखी मरने लगी। इस दुर्दशा का सब से अधिक प्रभाव गाँवों पर ही पड़ा, क्योंकि शहर के लोग तो जैसे-तैसे जीविका-निर्वाह के कुछ न कुछ साधन जुटा लेते थे।

शिक्षा का प्रचार बहुत कुछ मुगल काल की लड़ाई-भिड़ाई के दिनों में ही बहुत कम हो गया था। अंग्रेजों के शासन काल में यह लगभग समाप्त हो गया। अंग्रेजों ने बड़े-बड़े शहरों में तो अपना काम चलाने के लिए स्कूल और कालिज खोले, जहाँ वे भारतवासियों को अंग्रेजी पढ़ा-लिखा कर अपने काम का 'बाबू' बना सके। परन्तु ग्रामों में शिक्षा प्रचार की ओर सरकार की पूर्ण उपेक्षा रही। अशिक्षा के अन्धकार में रहने के कारण गाँव में तरह तरह के

अन्ध-विश्वास प्रचलित हो गये। इन अन्ध-विश्वासों की जड़ें इतनी गहरी जमी हुई हैं कि अनेक वर्षों के शिक्षा-प्रचार के वाद भी उन में किसी प्रकार की शिथिलता दिखाई नहीं पड़ रही है।

दरिद्रता सव दोषों की जननी है। क्षुधार्त व्यक्ति बड़े से बड़े पाप करने को तैयार हो जाता है। जब भारत का समृद्धि का काल था, तव यहाँ के ग्रामवासी सत्यप्रियता, उदारता, परोपकार और दान के लिए प्रसिद्ध थे। परन्तु ज्यों-ज्यों समृद्धि नष्ट होकर दरिद्रता बढ़ती गई, त्यों-त्यों वे सब उच्च भावनायें भी धीरे-धीरे लुप्त होती गईं। भाई-भाई की सम्पत्ति हड़प जाने के लिए मुकमेद्दवाजी करने लगा। अपने अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए लोग तरह-तरह के प्रपंच रचना सीख गये। गाँव का सामाजिक वातावरण भी अत्यन्त दूषित हो उठा।

अंग्रेजी शासन के दिनों में अशिक्षित ग्रामवासियों के साथ पुलिस बहुत बुरा व्यवहार करती थी। गाँव वालों की सुनवाई कहीं नहीं थी। पुलिस का अकेला सिपाही सारे गाँव में जाकर मनमाना उपद्रव कर सकता था और किसी में उसके विरुद्ध चूं तक करने की हिम्मत न थी। ऐसे घोर आतंक में रह कर ग्रामवासियों के व्यक्तित्व का विकास हो ही क्या सकता था।

जव काँग्रेस ने देश की स्वाधीनता का आन्दोलन आरम्भ किया तव देश के नेताओं की दृष्टि गांवों की ओर गई। सव से पहले गाँधी जी ने इस वात को अनुभव किया कि जव तक गाँवों की दशा सुधरती नहीं, जव तक ग्रामवासियों में राजनीतिक चेतना का संचार नहीं होता, तव तक स्वाधीनता आन्दोलन सफल नहीं हो सकता। इस वात को अनुभव कर लेने के पश्चात काँग्रेस ने ग्राम सुधार आन्दोलन प्रारम्भ किया। काँग्रेसी नेताओं का यह विचार था कि यदि किसानों की आर्थिक और सामाजिक दशा में सुधार किया जा सकेगा, तो किसान काँग्रेस के साथ मिलकर स्वाधीनता आन्दोलन का समर्थन करने लगेंगे। काँग्रेस का यह विचार ठीक ही निकला। जब सरकार ने देखा कि काँग्रेस के ग्राम-सुधार कार्यक्रम से प्रभावित होकर किसान काँग्रेस के समर्थक वनते जा रहे हैं, तो सरकार ने भी मुकावले में ग्राम-सुधार आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। गांव में विद्यालय और सहकारी समितियाँ खोली जाने

लगीं। गाँव तक पक्की सड़कें ले जाने की व्यवस्था की गई। गाँव में स्वच्छता रखने और महामारियों की रोक-थाम करने का भी प्रयत्न प्रारम्भ किया गया।

ग्राम-सुधार आन्दोलन आरम्भ होने के समय गाँव चरम दरिद्रता के जीते जागते उदाहरण थे। गाँव में छोटे-छोटे कच्चे घर होते थे, जिनकी छत पर फूँस का छप्पर होता था। इन घरों के अन्दर प्रकाश की किरण कभी प्रवेश न करती थी। अन्दर की वायु घुटी-घुटी होती थी। साधारणतया एक परिवार के पास एक ही कमरा होता था जिसमें स्त्री-पुरुष सभी जैसे-तैसे निर्वाह करते थे। कहीं-कहीं तो पशुओं को भी उसी कमरे में बाँधा जाता था, जिसमें मनुष्य सोते थे। वैसे आम रिवाज यह था कि पशुओं का बाड़ा मनुष्यों के रहने के कमरे के साथ ही लगा होता था, जहां से गोबर की दुर्गन्ध कमरे के अन्दर आती रहती थी। मक्खियाँ और मच्छर घर और बाड़े को अपना ही राज्य समझते थे। ऐसी दशा में रोगों का फैलना स्वाभाविक ही था। व्यक्ति के रोगी हो जाने पर उसकी चिकित्सा का कोई प्रबन्ध नही हो पाता था, क्योंकि गाँव में न तो अस्पताल होते थे और न चिकित्सक ही। परिणाम स्वरूप कुछ समय तक रोग की यन्त्रणा भुगतने के बाद रोगी स्वर्ग की राह लेता था।

जब काँग्रेस और सरकार ने ग्राम सुधार की योजनायें प्रारम्भ कीं, तब पहले-पहल लक्ष्य यह रखा गया था कि सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति में सुधार किया जाय। किसानों को ऐसी सुविधायें दी जाएं, जिससे वे अधिक उपार्जन कर सकें और उन्हें मितव्ययिता की आदत डाली जाय। मितव्ययिता सिखाने की बहुत बड़ी आवश्यकता थी। वैसे तो किसान इतना दरिद्र होता था कि वह कभी फिजूलखर्ची कर ही नहीं सकता था, परन्तु व्याह-शादी के अवसरों तथा मृतक-भोज इत्यादि जैसे अनुष्ठानों के अवसर पर चाहते न चाहते उसे अत्यधिक व्यय करना पड़ता था। यह व्यय अनिवार्य रूप से ऋण लेकर किया जाता था और इस ऋण को उतार पाना किसान के लिए कभी सम्भव न होता था। इसलिए मितव्ययिता की शिक्षा ग्राम सुधार का एक आवश्यक अंग थी।

किसानों की आर्थिक स्थिति सुधारने के साथ-साथ गाँव को स्वच्छता की

ओर भी ध्यान दिया गया। किसानों को खुले और हवादार मकानों का महत्व समझाया गया। कच्चे मकान के स्थान पर पक्के मकान बनाने का प्रबन्ध किया गया। गलियों में सफाई रखने और कुओं के पानी में पोटाशियम परमेगनेट डाल कर उसे शुद्ध करने की भी व्यवस्था की गई। गाँव में खाद को गड्ढों में जमा करने की शिक्षा दी गई। उन गड्ढों को भर दिया गया, जिनमें बरसात का पानी जमा हो जाता था। ये बरसाती जोहड़ मलेरिया इत्यादि बीमारियों के उद्गम स्थान थे।

१९३६ से लेकर स्वाधीनता प्राप्त होने तक कांग्रेस और सरकार दोनों ही ग्राम-सुधार के कार्यों में लगी रहीं। भाषणों द्वारा तथा मैजिक लालटेन के प्रदर्शनों के द्वारा आवश्यक जानकारी गाँवों तक पहुँचाई गई। चेचक, हैजा, प्लेग इत्यादि छूत की बीमारियों को रोकने के लिए टीके लगाने की व्यवस्था की गई। कहीं-कहीं गावों में अस्पताल भी खोले गए। गाँव की दाइयों को उचित शिक्षा देकर उन्हें अपने काम में प्रवीण बना दिया गया।

गांव की आर्थिक दशा को सुधारने के लिए सहकारी समितियों का निर्माण किया गया। ये समितियाँ ग्रामीणों को कम व्याज पर ऋण देती थीं। इसके ही प्रचार द्वारा ग्रामीणों की मुकद्दमेबाजी के कारण होने वाली हानियाँ समझाई गई और उन्हें यथासम्भव मुकद्दमेबाजी से बचने की सम्मति दी गई। इस प्रकार मुकद्दमेबाजी पर व्यय होने वाले धन की बड़ी राशि बच गई और समय का भी अपव्यय होने से बचा। ज्यों-ज्यों शिक्षा और प्रचार का प्रभाव पड़ने लगा, त्यों-त्यों ग्रामवासियों की फिजूलखर्ची की आदत सुधरने लगी। स्वाधीनता मिलने से पहले ही गाँवों की स्थिति काफी सुधर चली थी। गाँवों की स्थिति सुधारने का एक बड़ा कारण यह भी था कि युद्ध-काल में हुई मंहगाई के कारण कृषि की उपज के दाम बढ़ गए थे और किसानों की आय मन्दी के दिनों की अपेक्षा कई गुनी अधिक हो गई थी।

स्वाधीनता प्राप्त होने के बाद केन्द्रीय और राज्य सरकारों ने ग्रामोत्थान के लिए बहुत विस्तृत कार्यक्रम तैयार किया। प्रथम पंचवर्षीय योजना में कृषि को सबसे अधिक महत्व दिया गया है और कृषि को सुधारने का अर्थ है, गाँवों की दशा को सुधारना। नदी-घाटी-योजनाओं द्वारा कृषि-भूमि की

सिचाई का प्रबन्ध किया जा रहा है और इन योजनाओं से जो बिजली उत्पन्न होगी, उसका प्रयोग भी गाँवों में कुटीर-उद्योग प्रारम्भ करने के लिए किया जायगा। जब गाँवों में बिजली पहुँच जायेगी तो अवश्य ही गाँवों की आर्थिक स्थिति में सुधार हो जायगा।

इसके अतिरिक्त सामुदायिक परियोजनाएँ भी पंचवर्षीय योजना का महत्त्व पूर्ण अंग हैं। इन परियोजनाओं द्वारा गाँवों को फिर आत्मनिर्भर बनाने का प्रयत्न किया जाएगा। सामुदायिक परियोजनाओं का लक्ष्य यह है कि ग्रामवासी अपनी उन्नति के लिए स्वयं मिलकर प्रयत्न करें और सरकार की ओर न ताकते रहें। सरकार औजार देकर तथा उचित मार्ग प्रदर्शन के लिए अफसरों की नियुक्ति करके उनकी सहायता अवश्य करेगी, किन्तु अपनी दशा सुधारने के लिए, श्रम ग्रामीणों को स्वयं ही करना होगा। सामुदायिक योजनाओं के लिए देश को अनेक क्षेत्रों में बाँट दिया गया है, और एक-एक क्षेत्र में एक-एक परियोजना-प्रबन्ध अधिकारी (प्रोजैक्ट एक्जीक्यूटिव आफिसर) की नियुक्ति की गई है।

गांवों की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए चकबन्दी आन्दोलन शुरू किया गया है। अब तक स्थिति यह थी कि किसानों के पास पहले तो भूमि है ही बहुत थोड़ी और जो है भी, वह अलग-अलग कई टुकड़ों में बंटी हुई है, जिसके कारण किसान अपनी भूमि का उचित विकास नहीं कर पाता। चकबन्दी के द्वारा एक किसान की सारी भूमि एक या दो टुकड़ों में इकट्ठी कर दी जायगी, जिससे कृषि में अत्यधिक सुविधा हो जायगी।

जमींदारी उन्मूलन भी ग्राम-सुधार की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। भारत के लगभग सभी राज्यों में जमींदारी-उन्मूलन अधिनियम पास हो चुके हैं। पहले जमींदार नामक एक मध्यवर्ती वर्ग कृषि में बिना किसी प्रकार का सहयोग दिए किसानों के परिश्रम से उपार्जित धन का काफी बड़ा भाग हड़प लेता था। वह कहने को भूमि का स्वामी था, किन्तु भूमि को सुधारने की ओर उसका ध्यान तनिक भी न था। अब इस जमींदार-वर्ग की समाप्ति के कारण भूमि का स्वामित्व सीधा किसान को प्राप्त हो गया है। वस्तुतः तो भूमि का स्वामित्व सरकार का ही है, परन्तु उस पर कृषि करने का अधिकार

किसान का है। किसान एवं सरकार के मध्य अब कोई परोपजीवी मध्यवर्ती वर्ग शेष नहीं है।

किसानों में राजनीतिक चेतना और उत्तरदायित्व की भावना जागृत करने के लिए पंचायतों की स्थापना की गई। पंचायतों के कारण आशा की जाती है कि किसान लोग मुकद्दमेबाजी के झंझटों से बच सकेंगे और मुकद्दमों पर होने वाले धन और समय के अपव्यय को रोका जा सकेगा।

इस समय ग्राम-सुधार की ओर जितना अधिक ध्यान दिया जा रहा है, कृषि के लिए सिंचाई और गाँवों में कुटीर-उद्योगों की स्थापना का जैसा प्रयत्न चल रहा है, उसे देखते हुए यह आशा की जा सकती है कि निकट भविष्य में ही भारत के ग्राम भी सुखी और समृद्ध बन जायेंगे। जिस प्रकार विदेशों में ग्रामीण जीवन स्पृहणीय समझा जाता है, वैसा ही इस देश में भी समझा जाने लगेगा।

देश प्रेम

संसार में कौन सा ऐसा प्राणी है जिसे अपने जन्म स्थान से प्रेम न हो। पक्षी भी अपने घोंसले से मोह करता है। लोग सहस्रों मील चलकर अपनी छोटी सी झोंपड़ी में आश्रय पाने के लिए पहुँचते हैं। पशु दिन भर चरने के पश्चात् सायंकाल को अपने खूंटे पर पहुँच जाता है। ऐसी अवस्था में सदा सदृश भावुक व्यक्ति भला अपने जन्म-स्थान से प्रेम क्यों न करें ?

अपनी मातृ-भूमि के प्रति अनुराग स्वाभाविक प्रवृत्ति है। जैसे बालक को अपनी माता से प्रेम होता है। इसी प्रकार एक देश-भक्त को अपनी मातृ-भूमि से गहरा अनुराग होता है। वह उसके हित के लिए अपना सर्वस्व त्याग करने को तत्पर रहता है। देश पर कोई भी संकट आने पर वह प्राणों की चिन्ता न करके उसकी रक्षा के लिए समरांगण में कूद पड़ता है। ऐसे देश-भक्त राष्ट्र की आन और बान के लिए मर मिटते हैं। उनका इतिहास राष्ट्र

का इतिहास होता है, उनका सम्मान राष्ट्र का सम्मान होता है। ऐसे वीर पुरुषों के जीवन की मुख्य भावना देश-प्रेम ही होती है।

भला मानव अपनी मातृभूमि से प्रेम क्यों न करे ? जन्म होने के पश्चात् उसे जन्मदात्री माता की गोदी के पश्चात्; कहीं आश्रय मिलता है तो मातृ-भूमि की गोद में। उसके अंक से प्रकट हुआ अन्न और वक्षस्थल से प्रस्तुत रस से शरीर को उतनी ही पुष्टि होती है जितनी कि माता के स्तन्य से। वह भी जननी की भाँति जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त हमारे-मल-मूत्र को अपने ऊपर झेलती है। जो दुष्कर्म हम करते हैं, उन सबको क्षमा करती है, कभी भी रोष प्रकट नहीं करती। मृत्यु के पश्चात् हम जननी से भले ही पृथक् हो जायँ, किन्तु मातृ-भूमि से तब तक भी हमारा सम्बन्ध नहीं टूटता। हमारे शरीर के अवयव उसकी रज में मिल उसी में लीन हो जाते हैं। इस प्रकार मातृ-भूमि का पद जननी से भी उच्चारण सिद्ध हो जाता है। मातृ-भूमि के उपकारों का उल्लेख राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त ने निम्नलिखित पंक्तियों में भावुकता के साथ किया है :—

जिसकी रज में लोट-लोट कर बड़े हुए हैं।
घुटनों के बल सरक-सरक कर खड़े हुए हैं॥
परम हंस बाल्य काल में सब सुख पाए।
जिसके कारण धूल भरे हीरे कहलाए॥
हम खेल-कूदे हर्षयुत, जिसकी प्यारी गोद में।

हे मातृ भूमि ! तुझको निरख, मग्न क्यों न हों मोद में।

संस्कृत की भी इस सम्बन्ध में एक उक्ति है :—

"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।"

(माता और मातृ-भूमि स्वर्ग से भी बढ़कर हैं।)

देश के प्रति अनुराग से प्रभावित होकर अनेक कवियों ने देश के प्रति भावपूर्ण कविताएँ लिखी हैं। अंग्रेजी साहित्य में रूपर्ट ब्रिजेज की कवितायें देश-प्रेम से ओत-प्रोत हैं। हिन्दी साहित्य में अनेक कवियों ने देश के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की हैं। वियोगी हरि, दिनकर, मैथिलीशरण गुप्त, सोहनलाल द्विवेदी, नरेन्द्र शर्मा, माखन लाल चतुर्वेदी एवं सुभद्रा कुमारी चौहान इस

सम्बन्ध में उल्लेखनीय है । चतुर्वेदी जी तो देश-प्रेम से पूर्ण कविताओं के कारण ही 'एक भारतीय आत्मा' के नाम से प्रसिद्ध हो गए । उनकी 'फूल की अभिलाषा' इसका बहुत अच्छा उदाहरण है । स्वर्गीय प्रसाद जी की निम्नलिखित पंक्ति कितनी भावुकता पूर्ण है—

"अरुण यह मधुमय देश हमारा :

उड़ते खग जिस ओर मुंह किये समझ नीड निज प्यारा ॥"

परन्तु जहाँ देश-प्रेम इतनी महत्त्वपूर्ण भावना है, वहाँ इसमें कुछ दोष भी है । यदि देश-प्रेम में संकीर्णता आ जाय तो उसका परिणाम बहुत भयानक हो जाता है । मनुष्य अपने देश के प्रति तो प्रेम रखता है, किन्तु उसके हित के लिए वह दूसरे देशों के हितों की चिन्ता नही करता । अपने देश की समृद्धि के लिए वह दूसरे देशों पर आक्रमण करता है, उसमें लूटमार करता है, उन पर विजय पाने की अभिलाषा से घोर विपत्तियाँ बढ़ाता है । लाखों स्त्रियों को विधवा बनाता है लाखों बालकों को अनाथ और निराश्रित कर देता है । द्वितीय महायुद्ध से पूर्व योरुप में फसिज्म और नाजिज्म इस संकीर्ण देश प्रेम के ही परिणाम थे । मुसोलिनी और हिटलर ने इस संकीर्ण राष्ट्र-प्रेम के कारण ही संसार पर द्वितीय महायुद्ध का वज्र गिराया था । जापान का पिछले युद्ध में सम्मिलन घोर राष्ट्रवाद का ही परिणाम था । इस कारण आज संकीर्ण देश-भक्ति भय का कारण ही समझी जाती है । उसके स्थान पर अन्तर्राष्ट्रीय भावना को उत्तम समझा जाता है । क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय भावना वाला व्यक्ति अपने तथा अन्य देशों का भी कल्याण चाहता है । उदाहरण के लिए हमारे

स्वातन्त्र्य संग्राम के अमर सैनानी महात्मा गाँधी, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस जहाँ प्रथम श्रेणी के देश-भक्त थे, वहाँ अन्तर्राष्ट्रीय भावना भी रखते थे । हमारे प्रधानमन्त्री श्री जहारलाल नेहरू स्वयं को

मानते है । किन्तु इससे उनकी राष्ट्रभक्ति मे कोई सन्देह उत्पन्न नही होता । आजकल संसार के सभी बुद्धिमान् व्यक्ति इस घोर एवं संकीर्ण राष्ट्रवाद से सर्वथा भयभीत हैं और उसके स्थान पर अन्तर्राष्ट्रीय भावना पर बल देते हैं । वास्तव में उचित भी यही है । जहाँ तक अपने देश के प्रति प्रेम

वह उचित और सराहनीय है किन्तु जब वह दूसरे देशों के पक्ष में हानिकर बन जाता है तो वह अवाँछनीय हो जाता है। ऐसे राष्ट्रवाद से न अपने देश का भला होता है और न संसार का। कुछ दिन के लिए भले ही देश की उन्नति दिखाई दे परन्तु अन्त में उसका पतन अवश्यम्भावी है। अतः संकीर्ण देश-भक्ति से सदा बचना चाहिए।

विश्व शान्ति के साधन

आज संसार ऐसे ज्वालामुखी के मुख पर खड़ा है जो कि शीघ्र ही फूट पड़ने को है। लोग शान्ति चाहते हैं, शान्ति से जीना और अपना उत्थान चाहते हैं, किन्तु प्रयास विपरीत दिशा में हो रहे हैं। आग से आग बुझाने की चेष्टा की जा रही है। सम्पूर्ण राष्ट्रों में शान्तिप्रिय जनता के दल शान्ति की माँग कर रहे हैं। उसी की स्थापना करने के लिए पहले राष्ट्र संघ और वर्तमान संयुक्त राष्ट्र संघ का जन्म हुआ। सभी राष्ट्र शान्ति का नाम लेते हैं उसकी माँग करते हैं किन्तु कार्य सर्वथा विपरीत करते है।

यह बीसवीं शताब्दी है। इसे सभ्यता का युग कहा जाता है। इसका पूर्वार्ध समाप्त होने से पूर्व ही विश्व दो विनाशकारी युद्ध देख चुका है। सन् १९१४ से १ ८ तक प्रथम महायुद्ध चला। इसमें बीस लाख के लगभग व्यक्ति मृत और एक करोड़ से अधिक घायल हुए। इतना अधिक धन व्यय हुआ कि उससे विश्व के पिछड़े राष्ट्रों का पुनर्निर्माण आसानी से किया जा सकता था। युद्ध से होने वाली इस हानि की भयंकरता देखकर उसका अन्त करने के विचार से अमरीका के राष्ट्रपति मि० विलसन के प्रयत्न से प्रथम राष्ट्र संघ (League of Nations) का जन्म हुआ। किन्तु शीघ्र ही इटली, जर्मनी और जापान की महत्त्वाकाँक्षाओं एवं ब्रिटेन आदि साम्राज्यवादी राष्ट्रों की महत्वकाँक्षा ने २० वर्ष के भीतर ही उसका दुर्भाग्यपूर्ण अन्त कर दिया इसके पश्चात् दूसरा प्रलयंकर महायुद्ध हुआ, जिसमें कि अश्रुतपूर्व अस्त्रों का प्रयोग हुआ। अणु-बम के दो जापानी नगरों पर प्रयोग ने संसार को सन्न कर

दिया। इस युद्ध में अमरीका को छोड़कर विश्व के सभी राष्ट्रों को, चाहे वे विजेता रहे और चाहे विजित, भारी हानि उठानी पड़ी। उनका अर्थतन्त्र नष्ट हो गया। परमाणु बम के प्रयोग ने विश्व के ही विनाश की सम्भावना उपस्थित कर दी। अतः फिर युद्ध को रोकने के लिए वर्तमान संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना की गई।

संसार पिछले युद्ध को भूला नहीं था कि शक्तिशाली राष्ट्रों में अणु-बम और उद्जन बम बनाने की दौड़ लग गई। अमरीका, रूस और ब्रिटेन ने इस दौड़ में सब से अधिक भाग किया। परमाणु बम और उद्जन बम के परीक्षण विस्फोटो का ताँता लग गया। अमरीका, रूस इस क्षेत्र मे एक दूसरे के सब से बड़े प्रतिद्वन्दी हैं। किन्तु ये विस्फोट विश्व के लिए भय का कारण हैं।

अधिकाँश राष्ट्र इस समय ऐंग्लो-अमरीकन और रशियन इन दो गुटों में बंधे हुए हैं। अमरीका रूस को घेरने के लिए सीएटो और नैटो आदि अनेक राजनीतिक संगठन बना रहा है। रूस भी इसी प्रकार के प्रयत्न कर रहा है। इस प्रकार दोनों राष्ट्रों के राजनीतिज्ञ अपनी शतरंजी चाल खेल रहे हैं।

किन्तु इस राजनीतिक कूट चक्र में भारत सबसे पृथक् और तटस्थ है। उसकी तटस्थता केवल सैद्धान्तिक न होकर सक्रिय है। वह संसार से पूछता है कि यदि तुम शान्ति चाहते हो तो यह शस्त्र निर्माण की प्रतियोगिता क्यों? क्या शस्त्र के द्वारा शान्ति स्थापित की जायेगी? ऐसी शान्ति तो श्मशान की शान्ति होगी, जिसमें कि विषाद, चिन्ता और शोक भरे होंगे। अमरीका कहता है कि इन शस्त्रों के भण्डार को देख कर कोई राष्ट्र दूसरे राष्ट्र पर आक्रमण करने का साहस नहीं करेगा। यदि कोई आक्रमण करता है तो इसका अर्थ विनाश होगा। इसलिए यह शस्त्र-निर्माण को ही शान्ति स्थापना में कारण मानता है। पर भारत इस नीति पर विश्वास नहीं करता वह मानता है कि आग तो जलाने के लिए ईंधन चाहती है। ईंधन नहीं मिलेगा तो वह उससे खेलने वाले को जला डालेगी।

भारत गाँधी जी की प्रेम और अहिंसा की नीति पर विश्वास रखता है। गाँधी जी कहते थे कि हिंसा से अहिंसा का नहीं, प्रतिहिंसा का जन्म होता

है। शक्ति प्रेम के स्थान पर भय को जगाती है। भय शंका का और शंका अविश्वास को प्रकट करती है। अविश्वास से वैमनस्य और वैमनस्य युद्ध का कारण है। संसार का इतिहास इस बात का साक्षी है। क्या दूसरा महायुद्ध इस कारण नहीं हुआ कि प्रथम महायुद्ध के विजेता राष्ट्रों ने जर्मनी को सर्वथा कुचल देना चाहा था। इतनी कड़ी शर्तें स्वीकार कराई गईं कि उनसे जर्मनी ही क्या कोई भी राष्ट्र शताब्दियों तक नहीं उभर सकता। क्या जर्मन जनता इस अत्याचार को भुला सकती थी ? उसने फिर सिर उठाया और अपनी स्वतन्त्रता के सब से कट्टर शत्रु फ्राँस को बुरी तरह कुचल दिया। पर लोगों ने इससे सीखा कुछ नहीं। वे अभी भी विपरीत नीति पर चल रहे हैं।

भारत विश्व के शान्तिदूत नेहरू के नेतृत्व में बहरे जगत को प्रेम और अहिंसा का संदेश सुना रहा है। अब उसकी बातों में कुछ वजन समझा जाने लगा है। तृतीय विश्व युद्ध को निकट लाने वाली संकट की घटनाओं को दूर हटाने में उसने सबसे अधिक यत्न किया है। कोरिया में ३९ अक्षांस को पार करने के समय उसने अमरीका को चेतावनी दी थी कि यदि ऐसा किया गया तो चीन युद्ध में कूद पड़ेगा। अभिमानी अमरीका ने इस चेतावनी को अनसुनी कर दिया। भारत का कथन सत्य सिद्ध हुआ। अमरीका को लेने के देने पड़ गये। अन्त में उसी के प्रयत्नों से युद्धबन्दी हुई। हिन्दचीन में युद्धबन्दी का कार्य भारत के ही प्रयत्नों से हुआ। बांडुंग (इंडोनेशिया) की ऐतिहासिक कांफ्रेंस जिसमें भारत के पंचशील सिद्धान्तों को एशिया और अफ्रीका के प्रायः सभी राष्ट्रों ने स्वीकार किया, शांति-स्थापना सम्बन्धी भारतीय प्रयत्नों के इतिहास की उल्लेखनीय घटना है। ये पंचशील अथवा शान्ति के आधार पञ्च-शिलायें निम्नलिखित हैं—

१—कोई राष्ट्र दूसरे राष्ट्र पर आक्रमण न करे।

२—सभी राष्ट्र पारस्परिक झगड़ों को आपसी वार्ता द्वारा सुलझायें।

३—सभी राष्ट्र एक दूसरे की सार्वभौम सत्ता का आदर करें और दूसरे के अन्दरूनी मामलों में हस्तक्षेप न करें।

४—एक दूसरे के विकास के लिए पारस्परिक सहयोग प्रदान करें।

५—शान्तिपूर्वक मिल जुलकर अस्तित्व बनाये रखने का प्रयत्न करें।

निःस्वार्थ भाव से इन पाँचों सिद्धान्तों को मान लिया जाय और इनके अनुसार आचरण किया जाय तो अवश्य एक दिन विश्व के इतिहास में युद्ध अतीत की घटना बन जाएगा। जिनेवा कान्फ्रेंस में ब्रिटेन, अमरीका, फ्रांस और रूस ने इस सिद्धान्तों को स्वीकार किया। यह भारत की अभूतपूर्व विजय थी।

गत वर्षों में स्वेज नहर की समस्या विश्व-शान्ति में बाधा बन गई थी। इसको सुलझाने में भारत ने सबसे अधिक भाग लिया था। अमरीका और ब्रिटेन की कूटनीति वहां असफल हो रही। भारत के द्वारा सुझाया गया मार्ग ही इस समस्या का अन्त कर सका। आज युद्ध की विभीषिका से त्रस्त विश्व की आशापूर्ण दृष्टि भारत की ओर लगी हुई है। हमें विश्वास है कि उसकी यह आशा एक दिन सफल होगी।

रेलवे यात्रा

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह एकाकी किसी निर्जन में रहकर अपना जीवन-यापन नहीं कर सकता। इसलिये उसको विभिन्न देशों से और वहाँ की जनता से सम्पर्क स्थापित करना पड़ता है। दूर-दूर की यात्रा भी करनी पड़ती है। इस उद्देश्य के लिए विभिन्न साधनों का आश्रय लिया जाता है। इन सभी साधनों में रेल सबसे अधिक सुविधाजनक है। इसकी यात्रा में विशेष आनन्द आता है यदि कुछ साथी हों तो कहना ही क्या!

एक बार लम्बी रेल यात्रा का एक अवसर हमें भी मिला। फाल्गुन का महीना था। अभी सर्दी तो थी पर दाँत किटकिटाने वाली न थी। मुझे काशी कुछ आवश्यक कार्य से जाना पड़ गया। एक मित्र की वहाँ ससुराल थी, उन्हें वहाँ जाना था। काशी की शिवरात्रि प्रसिद्ध होती है, अतः उस उत्सव को देखने के लिए दो मित्र और तैयार हो गए। चार का यह वर्ग यात्रा के लिए सुखदायक रहेगा। इस विश्वास से अति प्रसन्न हुए मुरादाबाद स्टेशन पर सायंकाल चार बजे हम सब एकत्रित हो गए। सभी के पास एक हैंडबैग या

अटैची और हल्के विस्तर थे। उस समय देहरा-एक्सप्रेस मुरादावाद से सायं-काल ५ वजे चलती थी। अतः हम नियत समय से पूर्व स्टेशन पर आ गये थे। यह स्टेशन अच्छा जंक्शन है। मुरादाबाद कलई के लिए भारत में प्रसिद्ध है। हमें सर्वप्रथम तो टिकट लेने में ही पर्याप्त कठिनाई हुई। टिकट लेने वाले लोगों की बड़ी लम्बी पंक्ति लगी हुई थी। कुछ लोग चतुराई दिखाकर विना कष्ट उठाये टिकट लेने के प्रयास में थे। खैर, हममें से एक व्यक्ति लाइन में खड़ा हो गया और शेष सामान की देख-रेख करने खड़े हो गए।

जो लोग पंक्ति में खड़े हुए विना ही टिकट लेना चाहते थे, वे टिकट मिलने के समय पंक्ति में घुसने की चेष्टा करने लगे। इस पर वहाँ थोड़ा संघर्ष और हाथापाई भी हो गई। हमारा साथी जव टिकट लेकर आया तो वह पसीने में तर हो रहा था। उसके वस्त्र भी शिथिल हो रहे थे। खैर, हम अटैची आदि लेकर मुख्य प्लेटफार्म पर पहुँचे। वहाँ देखा तो हजारों की संख्या में यात्री खड़े थे। उन्हें देखकर एक बार तो हमारा उत्साह शिथिल हो गया कि देहरा-एक्सप्रेस पहले ही भरी-सी आती है, फिर इस जन सागर के मध्य गाड़ी में स्थान प्राप्त करना कैसे सम्भव होगा। अच्छी वात यह थी कि हमारे साथ कोई स्त्री या वच्चा नहीं था। जैसे ही सिगनल हुआ, गाड़ी दूर से फक-फक करती आती दिखाई दी, स्टेशन की घण्टी वजी और यात्रीगण सामान संभाल कर खड़े हो गए। रेलवे में टिकट लेने से भले ही कुछ सुभीता रही हो पर गाड़ी में ऐसी भीड़ के बीच चढ़कर वैठने के लिए जगह वनाना टेढ़ी खीर ही होता है। इसका पर्याप्त अनुभव उन्हें होता है, जो कि प्रायः थर्ड क्लास से दूर-दूर की यात्रा करते रहते हैं। खैर, हमने तुरन्त योजना वना ली और सम्भलकर खड़े हो गये, इसी समय गाड़ी प्लेटफार्म पर आ लगी। फिर क्या था ? जनता में हलचल मच गई। अब तो एक अद्भुत दृश्य उपस्थित हो गया। एक ओर असंख्य व्यक्ति रेल में से वाहर आने की चेष्टा में थे, दूसरी ओर उनसे अधिक भीतर घुसने की। कोई कुली को पुकारता था तो कोई साथी को। उस अपार भीड़ को देखकर एक बार तो हम ठिठक गए। पैर उसी क्षण अपनी योजनानुसार भीतर घुसने का प्रयास करने को उद्यत हो गए। हमारा एक साथी शीघ्रता से भीतर डिव्वे में चला गया और धड़ाधड़

बैग आदि भीतर खींचने लगा। बात की बात में हमारा सामान भीतर पहुँच गया तो अब हमारा भीतर घुसना भी आसान हो गया। एक-एक करके हम भी इसी कमरे में घुस गये।

भीतर देखा तो डिब्बा पर्याप्त लम्बा-चौड़ा था, केवल कुछ स्वार्थी लोग सारी सीटें घेरे लेटे हुए थे और स्थान न होने का बहाना कर रहे थे। हम ने उन्हें हाथ जोड़कर समझाया और स्थान देने की प्रार्थना की तो वे लाल-पीली आँखें दिखाने लगे। पर जब दो चार व्यक्ति और गर्म होकर उनके सिर पर चढ़ गए तो विवश होकर वे उठ बैठे और स्थान दे दिया। बैठने के पश्चात् हमने वहाँ की सारी स्थिति पर दृष्टि डाली और एक बार मन में विचारा कि यह संसार तो एक कम्पार्टमेंट ही है, जिसमें यह जनता एकत्रित हुई है। कुछ समय के पश्चात् जैसे ये सभी उतर कर चले जायेंगे और गाड़ी यों ही खाली रह जायगी, इसी प्रकार मनुष्य भी संसार छोड़ कर चला जाता है।

डिब्बे में भीड़ की अधिकता के कारण अत्यधिक गर्मी थी, सभी लोग उत्सुक थे कि गाड़ी चले तो कुछ चैन मिले। 'चाय गर्म,' 'गरम पूरी मिठाई', 'पान बीड़ी सिगरेट' आदि की आवाजों ने अलग कानों के पर्दे फाड़ रखे थे। गाड़ी चलने पर ही इस संकट से छुटकारा सम्भव था। अतः हम सब मनौतियाँ ही कर रहे थे कि गाड़ी चले। अनन्तः हमारी विनय स्वीकार हुई। गार्ड ने सीटी दी और रेल ने भी एक झटका सा दिया। हमने देखा कि बहुत से यात्री जो कि स्थान न मिलने से रह गए थे, जैसे-तैसे डिब्बों में भरने लगे और रहे-सहे खिड़कियों और दरवाजों पर डण्डे पकड़कर उनके सहारे खड़े हो गए।

गाड़ी पहले धीरे-धीरे फक-फक करती चली। जैसे-जैसे स्टेशन की सीमा से बाहर होती जाती थी, वैसे-वैसे उसकी गति भी तीव्र होती जा रही थी। क्रमशः प्लेटफार्म-सिगनल स्टेशन आदि पार करके गाड़ी खुले क्षेत्र में पहुँच गई और अब तो अपनी इच्छानुसार दौड़ने लगी। खिड़कियों से आती ताजी हवा ने सबके मस्तिष्क शीतल कर दिए। जो लोग पहले व्यर्थ ही लड़कर दिमाग में गर्मी ला रहे थे, वे भी शान्त हो गए। सब बाहर की ओर प्राकृतिक दृश्य देखने लगे। सूर्य ढलने लगा था और उसकी कान्ति से सारा क्षितिज

रक्त वर्ण का हो रहा था। श्वेत मेघ-खण्ड धधकते लौह-पिण्ड से लगते थे। संध्याकालीन धूप से पकी हुई श्वेत फसलें अति सुन्दर लगती थीं। भागती हुई रेलगाड़ी से तटवर्ती वृक्ष विपरीत दिशा में जाते से प्रतीत हो रहे थे।

शनैः शनैः यह लालिमा भी लुप्त हो चली और हल्की काली छाया सम्पूर्ण विश्व को ग्रसती सी आती दिखाई दी। धीरे-धीरे उसने पर्वत, नगर, वन और वृक्ष एवं मैदान सभी को ढक लिया। इसके पश्चात् कालिमा का सागर-सा उमड़ आया। जब बाहर सब कुछ दिखना बन्द हो गया तो विवश होकर हमें अपनी दृष्टि अपने डिब्बे में ही केन्द्रित करनी पड़ी, अब तो गपशप के अतिरिक्त समययापन का कोई चारा ही न था। गाड़ी छोटे-छोटे स्टेशनों को छोड़ती जा रही थी। अतः बड़ी देर के पश्चात् रामपुर का स्टेशन आया। यह एक मुसलमानी रियासत का प्रमुख नगर था। कुछ मिनट खड़ी रहने के पश्चात् गाड़ी यहाँ से भी आगे बढ़ी। फिर गाड़ी की धकाधक एवं खिड़कियों की खट-खट के शब्द के अतिरिक्त छन्नाटा छा गया। पुनः बातचीत शुरू हो गई। इसके पश्चात् पर्याप्त समय तक कोई स्टेशन नहीं आया। केवल बरेली स्टेशन पर आकर गाड़ी ने थोड़ा विराम लिया। यहाँ बहुत-सी सवारियाँ उतरी थीं जिससे कुछ भीड़ कम हो गई।

यहाँ से गाड़ी जब आगे चली तो सवारियों में शान्ति हो गई। हम बाहर देखना चाहते थे, पर अधकार में कुछ न दीखने के कारण असफल ही रहे। गाड़ी बहुत तेजी से चल रही थी। पर्याप्त देरी के बाद गाड़ी शाहजहाँपुर स्टेशन पहुँची। अब १०॥ बज चुके थे। गाड़ी देर तक रुकी, हमने कुछ चाय पानी लिया, फिर गाड़ी चल दी। अब यात्रियों को नींद सताने लग गई थी। सब लोग जैसी भी स्थिति में बैठे थे ऊंघने लगे। सहसा एक बड़ा झटका लगा और गाड़ी रुक गई। चौककर बाहर देखा तो गाड़ी बीच जंगल में खड़ी थी। बाहर घोर अन्धकार था। इतने में बन्दूकों के फायर का शब्द सुनाई दिया। चौकन्ने हुए तो पासवाले डिब्बे में बड़ा शोर-गुल सुनाई दिया पर बन्दूक के भय से कोई भी न उतर सका। १५ ही मिनट के पश्चात् 'हाय रे लूट लिया, मार डाला' का शब्द और साथ में विलाप का शब्द सुनाई दिया। कांपते-कांपते डिब्बे से उतरकर उसमें गए तो वहाँ का दृश्य देखकर शरीर के रोंगटे खड़े हो गए। वहाँ तीन लाशें पड़ी थीं, जो कि सेठ भाइयों और एक दूसरे व्यापारी

की थी। स्त्रियाँ फूट-फूट कर रो रही थीं। अब वहाँ गार्ड आया और पूँछताछ करके चला गया। पता लगा कि डाकू ५ हजार नकद और ६ हजार के आभूषण ले गए थे। लगभग आध घण्टे में गाड़ी चली। काफी देर के पश्चात् लखनऊ पहुँचे। यहाँ गार्ड ने स्टेशन मास्टर और रेलवे पुलिस को रिपोर्ट की। पुलिस ने अपनी कागजी कार्रवाई की। डिब्बे की सफाई की गई। इस दृश्य से हृदय में बड़ी ग्लानि हुई। अब नींद बुरी तरह सता रही थी। गाड़ी के चलते ही हम सो गए। मार्ग में संडीला और हरदोई जैसे स्टेशन आए। प्रातःकाल होते-होते हम अयोध्या पहुँच गए। इच्छा तो कर रही थी कि वहाँ उतरें और घूमें; परन्तु मुझे शीघ्रता थी। मैंने कहा कि लौटती बार देखेंगे। यहाँ बन्दर हमारा आतिथ्य स्वीकार करने स्वयं डिब्बों में घुस आए। फैजाबाद के बाद गाड़ी कुछ मन्द हो गई। अब तो गाड़ी खेतों के बीच से जा रही थी। अरहर के पके खेत और पान की बेलें दोनों ओर दिखाई दे रही थीं। प्रभातकालीन सूर्य की किरणों में, उस प्रदेश की शोभा बड़ी निराली थी।

अब हम इस दीर्घ यात्रा से उकता चले थे। मिर्जापुर स्टेशन आया। अब तो हम उत्कण्ठापूर्ण काशी की राह देखने लगे। शरीर थक गए थे। रात्रि की अनिद्रा ने रूक्षता-सी ला दी थी। आखिर हमारी गाड़ी कुछ समय के पश्चात् सिकरौल स्टेशन पर पहुँची।

हमने इस स्टेशन को आया देख सुख की सांस ली। कुली को बुलाया और स्टेशन के द्वार की ओर चले। यद्यपि इस यात्रा में हम पर्याप्त थक गए थे तथापि हमें आनन्द भी पर्याप्त हुआ। वास्तव में इस प्रकार की यात्राएं आनन्द-वर्धक होती हैं। प्रकृति-निरीक्षण की सुविधा होती है और घर से बाहर निकलने की सामर्थ्य उत्पन्न हो जाती है। यद्यपि इस घटना को बीते लगभग दो वर्ष बीत चुके हैं तथापि इसका प्रभाव मेरे हृदय पर अभी भी ज्यों का त्यों है।

चांदनी रात में पहाड़ी की यात्रा

मानव-जीवन में भ्रमण का कितना महत्त्व है? जिन लोगों को इसका व्यसन है, वे ही इसका आनन्द जानते हैं। इससे प्रकृति के विविध रूपों का

ज्ञान होता है, चारों ओर यह नटी जो अद्भुत रूप धारण करती है, उनका ज्ञान एक स्थान पर बैठे बैठे नहीं हो सकता । इस कारण घर से बाहर निकलना पड़ता है । देशान्तरों में जाकर भिन्न-भिन्न प्रकृति के व्यक्तियों से सम्पर्क बढ़ता है । इससे हृदय का विकास होता है । कष्ट सहने की शक्ति प्राप्त होती है । अनेक व्यक्ति सदाँ भ्रमण में लगे रहते हैं, दुर्गम स्थानों पर यात्रा करते हैं । प्राकृतिक दृष्य देखने का आनन्द भी पहाड़ों की यात्रा में विशेषकर मिलता है; क्योंकि प्रकृति नटी-हरी-भरी साड़ियाँ पहने वहाँ नित्य विहार किया करती है । चाँदनी रात में तो उसका स्वरूप इतना मनोरम हो जाता है कि देखते ही बनता है । अपने जीवन में ऐसा एक अनुभव मुझे भी हुआ है, जिसका विवरण इस प्रकार है :—

गीष्म ऋतु थी । जून मास में सूर्य अपने प्रखर ताप की चरम सीमा तक पहुँच रहा था । गरम लुएँ विष की ज्वाला सदृश तन और मन को झुलसा रही थीं । अवकाश के दिन थे ही, कोई निश्चित कार्य-क्रम था नहीं, दिन और रात खाने और सोने के अतिरिक्त कोई काम न था । ऐसी स्थिति में वह संताप और भी असह्य प्रतीत हो रहा था ।

अतः हम चार मित्रों ने परामर्श किया कि आलसियों की भाँति यों पड़े न रहकर कहीं भ्रमण ही कर आयें । विचार होते ही भ्रमण की योजना बन गई । हमने बद्रीनाथ की यात्रा का निश्चय कर लिया । शीत स्थानों के लिए आवश्यक उष्ण वस्त्र एवं यात्रा के अन्य उपकरण ले लिये । कार्य-क्रम बना कि ऋषिकेश तक रेल से जाकर इसके आगे पैदल चला जाय । यद्यपि आजकल उधर बहुत दूर तक मोटरें जाने लग गई हैं, जिनके कारण यात्रा सुगम हो गई है, परन्तु जिस उद्देश्य से हम जा रहे थे, उसकी पूर्ति मोटर यात्रा से असम्भव थी । अतः हमें यह जंचा कि एडवेंचर का आनन्द पैदल चलने में ही प्राप्त होगा । हम १५ जून को दिल्ली एक्सप्रेस से चलकर १६ के प्रातःकाल हरिद्वार पहुँचे । इच्छा तो थी कि दो दिन वहाँ ठहरें पर वहाँ भी इतनी गर्मी थी कि टिकना कठिन लगा । यात्रियों की अधिकता ने वहाँ की स्थिति विषम बना रखी थी । अतः हम केवल उसी दिन इधर-उधर घूम कर सायंकाल ही

ऋषिकेश चले गए। रात्रि को काली कमली वाले की धर्मशाला में ठहरे और अगले दिन भोजनादि से निवृत्त हो स्वर्गाश्रम पहुँच गए। यहाँ से हमारी पर्वत यात्रा आरम्भ होती थी। मार्ग बड़ा लम्बा था। दिन में तो हम प्रातः काल उठकर चलते और दोपहर में पड़ाव में विश्राम करते, खाना खाकर सो जाते। पुनः तीन वजे के लगभग वहाँ से प्रस्थान करते और सन्ध्या तक चलते रहते। पुनः पडाव आने पर विश्राम करते।

हमारे साथ दो गोरखे कुली थे जो कि पहले ही सारा सामान लेकर चलते और उपयुक्त पड़ाव देखकर वहाँ ठहर जाते थे। पीछे हम लोग भी पहुँच जाते थे। एक दिन मध्यान्ह को पड़ाव पर पहुँचे तो भोजनादि के उपरान्त उन कुलियों ने हमें वताया कि यहाँ आगे अति कठिन चढ़ाई है, जिसे धूप में चलकर पार करना अति कठिन है। इसका सबसे अच्छा उपाय यही है कि रात को यात्रा की जाय और प्रभात होने से पूर्व अगले पड़ाव पर पहुंचा जाय। इस समय उसको पार करना कठिन है। पड़ाव भी वारह मील की दूरी पर है। रात को थके मांदे चल भी नहीं सकेंगे, अतः दिन भर विश्राम करें और रात को दस वजे के लगभग चल पड़ें। उस दिन पूर्णमासी तो थी ही, चाँदनी के कारण मार्ग में भटकने का भय नहीं था, अतः यह कार्यक्रम निश्चित हो गया।

सायंकाल ५ वजे के लगभग हल्का-सा भोजन करके हम पुनः हल्की नींद लेने के लिए लेट गए। रात को ठीक नौ वजे हम लोग उठे। कुली तो तैयार थे ही। झट उनकी पीठ पर सामान कसवा कर उन्हें तो चलता किया और हम भी अपने वस्त्र पहनने लगे। वैसे तो गर्म विस्तर छोड़कर वाहर निकलने को जी नहीं करता था पर निश्चित कार्यक्रम के अनुसार चलना ही था।

खैर, हम लोग ठीक साढ़े नौ वजे तैयार होकर चल पड़े। सड़क बनी होने के कारण मार्ग में भटकने का भय तो था ही नहीं, न यहाँ की भाँति चोर-लुटेरों का ही डर था। थोड़ा-वहुत भय था भी तो केवल इसी का कि

कोई वन्य पशु न आ जाय। पर हम आखिर चार थे, फिर उन गरीब कुलियों की जान भी खतरे में झोंक चुके थे। अतः साहस के साथ हमने कूच किया पड़ाव से बाहर निकलकर हमने देखा तो आँखें चौधिया गईं। दूर-दूर काले घन-खण्डों के समान पर्वत-शिखर दिखाई देते। उन पर पड़ी हिम-राशि चांदनी में चमक कर रजत-मुकुट की भाँति दीखती थी। दाहिनी ओर महान् हिमालय का काय खड़ा था, जिस पर तरु-लता गुल्मों का रोम पुंज छाया हुआ था। उस पर पड़ती चांदनी श्वेत चादर ओढ़ी लगती थी। वृक्षों की पत्रावली के अन्तराल में से छन-छन कर चन्द्रातप भूमि पर पड़ रहा था। प्रकाश-खण्डों का यह अद्भुत रूप अत्यन्त आकर्षक था। हम धीरे-धीरे बातें करते आगे बढ़ रहे थे। धीरे-धीरे बोलने की तो कोई मर्यादा थी ही नहीं, अतः जब हम उद्गार प्रकट करने के लिए कई एक साथ बोलते तो उसका शब्द पर्वत में गूंज जाता था।

हमारे मार्ग के बांयी ओर खाई के समान निम्न भाग था। वह गंगा थी। जब दृष्टि नीचे की ओर जाती तो आँखें चकरा जातीं, मन में भाव आता कि यदि इधर गिर जाएं तो? वास्तव में यह कल्पना भी भयानक थी क्योंकि हम जहां थे वह भाग पर्वत के शरीर का भव्य भाग सा प्रतीत हो रहा था। निचले भाग में यद्यपि वृक्षों और झाड़ियों की कमी दिखाई नहीं देती थी तथापि हमारी दृष्टि केवल नीचे तलहटी में बहती हुई गंगा की पतली धारा पर पड रही थी। यही निर्णय होता था कि एक बार गिरने के बाद सम्भव है कि इस धारा में ही विश्राम मिलेगा। पक्षी गहरी नींद में सोये हुए थे, तथापि कोई जंगली विहंग कभी-कभी पास की झाड़ी से निकल कर उड़ जाता। हम या तो झाड़ियों की खड़खड़ और उसके परों की सरसराहट ही सुन पाते थे या उस पक्षी की काली छाया ही दिखाई देती थी। कभी-कभी तो इससे सारा शरीर ही सिहर उठता था। वृक्षों के नीचे से निकली वायु सांय-सांय करती थी। झिल्ली की मधुर-मधुर झंकार बड़ी ही कर्ण सुखद थी।

इसी समय एक झरना सामने आया। उसका नीचे पड़ता हुआ पानी चन्द्रकिरणों के पड़ने से एक पतली रजत शिला सदृश लगता था और उसकी

कलकल की ध्वनि दिग्दिगन्त में प्रसृत हो रही थी। रात्रि में न दीखते हुए भी पत्थर की टक्कर से ऊपर उठते जल-कण छिटक-छिटक कर टूटते तारों के समान प्रतीत होते थे। कहीं वृक्षों की शाखाएँ हिलती हुई अपनी ओर बुलाते मनुष्य की अंगुलियां सी लगती थीं। छाया में खड़े ठूंठ मनुष्य प्रतीत होते थे।

इसी प्रकार चलते-चलते आधी रात के लगभग हम छः मील पार कर गये। यहाँ कुछ विश्राम की इच्छा हुई। इस स्थान पर किसी साधु की कुटी बनी हुई थी। कहते है, पहले यहाँ दूकान थी पर मोटर के आने-जाने से इस ओर का यातायात बन्द हो गया। इसलिए वह बन्द हो गई। हमारे कुली वहाँ पहुँचकर विश्राम कर रहे थे। एक बण्डल खोलकर चाय बनाने की केतली, चीनी आदि निकाली। दो पत्थर रखकर चूल्हा बनाया और पास से पत्ते, लकड़ी आदि चुनकर आग बाली। झरना पास ही था। वहाँ से पानी लेकर चाय का पानी धरा। थर्मस में दूध था ही। चाय तैयार हो गई, दो-दो प्याले हमने पीए और शेष कुलियों को सौंप दी। वे चाय पीकर केतली मांज लाये। फिर सामान बाँधकर चल दिए। थोड़ी देर विश्राम करने के पश्चात् हम भी चल दिए।

रास्ता सुनसान था। आश्चर्य की ही बात थी कि उस रात्रि में भी वैसे जनशून्य मार्ग पर केवल हम छः व्यक्ति जा रहे थे। वे गोरखा भी सुस्ताते और बैठते धीरे-धीरे बढ़े जा रहे थे। किसी प्रकार का भय मालूम नहीं होता था। यह अवश्य था कि यह लगातार की चढ़ाई साँस फुला रही थी। केवल वायु के सहारे हम शिथिलता का अनुभव नहीं कर रहे थे। हम धीरे-धीरे बढ़ते ही गए। अब आधे मार्ग को पार करने के बाद चढ़ाई कुछ सीधी हो गई थी, अतः हमारी गति क्रमशः मन्द होती जा रही थी। कुली भी थोड़ी-थोड़ी दूर चलकर सुस्ता रहे थे। आगे चलकर हमने उनको साथ ही रखने का निश्चय किया। परस्पर के वार्तालाप से समय कट रहा था और थकान को भूल जाते थे। बीच में एक-आध पड़ाव भी आए पर वहाँ हमारे स्वागत के लिए भौंकते कुत्तों के अतिरिक्त और कोई न था। आखिरकार हमारी इस रात्रि-यात्रा का अन्त भी आया और हम चार बजे के लगभग वहाँ पहुँच

गये। यहाँ पर अच्छा पड़ाव बना हुआ था। दो-तीन दूकानें भी थीं। सौभाग्य से एक दूकानदार अभी जागकर अपने लिए चाय चढ़ाने लगा था। हमने उसे कुछ पैसे दिये तो उसने दूकान का एक भाग खोल दिया। उसमें तीन-चार चारपाइयाँ पड़ीं थीं। हमने उन पर टाँगें फैलाईं। कुलियों को पुनः चाय पिलवाई। वे लोग भी एक ओर कम्बल बिछाकर लेट गये। दो-तीन घण्टा हमने वहाँ पर अच्छी नींद ली। इसके बाद प्रात:काल आवश्यक कृत्यों से निपटकर आगे की यात्रा का प्रबन्ध किया।

यद्यपि हमारी पर्वत यात्रा अभी सर्वथा समाप्त नहीं हुई थी, तथापि चाँदनी रात्रि में पहाड़ी यात्रा का यह एक अनुभव जीवन की अविस्मरणीय घटना बन चुकी है। इसका हृदय पर अत्यन्त सुखद प्रभाव पड़ा है। उसकी स्मृतिमात्र से अब भी शरीर पुलकित हो उठता है।

दीपावली

दीपावली हिन्दुओं के चार बडे त्यौहारों में से एक है। यह प्रत्येक वर्ष कार्तिक मास में अमास्या के दिन मनाया जाता है। इस त्योहार के मनाये जाने के विषय में हिन्दुओं में, विभिन्न वर्ग के मनुष्यों के भिन्न-भिन्न विचार हैं। अधिकांश मनुष्य और विशेष रूप में क्षत्रिय तो इस पर्व को इस खुशी में मनाते हैं कि श्री रामचन्द्र जी लंका के राक्षस राजा रावण का वध करके इस दिन अयोध्यापुरी वापस पहुंचे थे। उनके आगमन के हर्ष में अयोध्या की प्रजा में समस्त नगर को सजाया और आपस में एक दूसरे को मिठाइयाँ बाँटी। तभी से प्रत्येक वर्ष यह त्यौहार इस दिन मनाया जाता है। इस त्यौहार के मनाये जाने के कारण में और भी कई महत्वपूर्ण बातें हैं। जैन धर्म के चौबीसवें तीर्थंकर महावीर स्वामी को इस दिन निर्वाण प्राप्त हुआ था। इस कारण जैन धर्मावलम्बी भी इस पर्व को बड़ी धूम-धाम से मनाते हैं।

यह त्यौहार वर्षा ऋतु के समाप्त होने पर मनाया जाता है। वर्षा ऋतु में बहुत गन्दगी फैल जाती है। अनेक प्रकार के रोगों के कीटाणु उत्पन्न हो जाते हैं और लाखों व्यक्ति इस ऋतु में रोग का शिकार होते है, जिनमें से सहस्रों तो काल के ग्रास बन जाते हैं। वर्षा ऋतु के समाप्त होते ही सब लोग इस पर्व को मनाने के लिए अपने मकानों व दुकानों की सफाई आरम्भ कर देते हैं और उन पर सफेदी कराते हैं। मकानों और गलियों की नालियाँ साफ कराते हैं और जो वर्षा ऋतु में टूट-फूट हो जाती है उसकी मरम्मत करते हैं। इस प्रकार लगभग सभी मनुष्यों व स्त्रियों में एक नवीन उत्साह दिखाई देता है।

यह त्यौहार पाँच दिन तक मनाया जाता है। प्रथम दिन को 'धन तेरस' कहते हैं। इस दिन सभी लोग नए-नए वर्तन खरीदते है। वाजारों में चारों ओर भीड़ दिखाई देती है। वर्तन विक्रेताओं की दुकानें बड़ी सुन्दरता से सजी हुई होती हैं। दूसरे दिन को 'छोटी दीपावली' कहतें हैं और तीसरे दिन 'बड़ी दीपावली' वहुत धूम-धाम से मनायी जाती है। चतुर्थ दिन सभी हिन्दू 'गोवर्द्धन' की पूजा करते हैं और पंचम दिन 'भाई दोज' का पवित्र पर्व होता है। इस दिन सब वहनें अपने भाइयों को टीका करतीं हैं और भाई उनको विभिन्न प्रकार की भेंट देते हैं।

दिवाली के दिन सभी घरों में नाना प्रकार के स्वादिष्ट भोजन बनाये जाते हैं। संध्या समय मकान, गलियाँ और वाजार प्रकाश से जगमगा उठते हैं। कहीं पर पंक्तियों में कड्वे तेल के दीपक जल रहे हैं, तो कहीं पर रंग-विरंगे विजली के वल्व पंक्तियों में लटके हुए अपनी निराली रोशनी से सब के मन को आकर्षित करते हैं। कहीं पर मोमवत्तियाँ जल रही हैं, तो कहीं पर कंडीलों की रोशनी और घूमते हुए चक्र सब के आकर्षण के केन्द्र बने हुए होते हैं। कोई मिठाई वाँट रहा है, तो कोई खील और बताशे। कोई अपने मित्र से गले मिल रहा है तो कोई अपने किसी सम्वन्धी से। इस प्रकार चारों ओर एक विशेष चहल-पहल होती है। सभी अपने सुन्दर वस्त्रों में प्रसन्न

दिखाई देते हैं। बाजारों की भीड़ का तो कहना ही क्या। चलने को मार्ग मिलना भी बहुत ही कठिन होता है। हलवाइयों की दुकानों पर मिठाई खरीदने वालों की भीड़ तो दर्शनीय होती है। इस प्रकार रात्रि के लगभग दस वजे तक यह कोलाहल रहता है।

रात्रि के दस वजे के लगभग लक्ष्मी का पूजन आरम्भ होता है। सभी लोग अपने-अपने घरों और दुकानों में लक्ष्मी का पूजन करते है और फिर सब प्रसन्नतापूर्वक साथ बैठकर भोजन करते हैं और मिठाई खाते हैं। फिर रात्रि के समय सभी अपने-अपने घरों में कम से कम एक दीपक जलता छोड़ कर सो जाते है। ऐसा करने का कारण यह है कि सभी का यह विश्वास है कि इस रात्रि को लक्ष्मी प्रत्येक घर में जाती है और जहां अन्धकार होता है वहाँ से लौट आती है और फिर वर्ष भर वहाँ नही जाती। लक्ष्मी का पूजन करके और अपना सगुन मनाकर ही व्यापारी लोग व्यापार के लिए वाहर जाते है।

यह हमारा दुर्भाग्य है कि इतना पवित्र त्यौहार भी कई बुराइयो से भरा हुआ है। अनेकों व्यक्ति इस दिन जुआ खेलकर अपने भाग्य की परीक्षा करते हैं। इस प्रकार वे अपनी थोडी-बहुत सम्पत्ति को जो उनके पास है जुए में हार जाते है और फिर जीवन भर निर्धनता और भुखमरी के पंजे में कसे रहते है। कुछ जुआरी रुपया उधार लेकर जुआ खेलते है और हार जाने पर फिर जीवन भर ऋण से दवे रहते है। चोर और डाकू भी अपने भाग्य की परीक्षा इसी दिन करते है। पुरुष तो जुए मे फँसे हुए होते है और चोर—पीछे स्त्रियों से बलात् धन छीनकर ले जाते है और कभी-कभी वे हत्या भी कर जाते है। इस प्रकार अनेकों घर इस बुराई के शिकार होकर नप्ट हो जाते है। यह बुराई इस पवित्र पर्व के माथे पर एक वहुत वड़ा कलक है।

यदि हम त्यौहार की पवित्रता को बनाये रखना चाहते है और समाज और जाति की उन्नति चाहते है तो हमारा यह कर्त्तव्य है कि इस बुराई को

शीघ्र से शीघ्र समाप्त कर दें और इस पर्व से प्रेम और ईमानदारी का संदेश प्राप्त करें।

प्रदर्शनी

यह संसार भी एक अद्भुतालय है। इसमें नित्य ऐसी वस्तुओं का जन्म और आविष्कार होता रहता हो, जो कि आश्चर्यजनक हों। परन्तु सभी लोग आर्थिक क्षमता और यातायात की दीर्घता से स्वयं देखने में समर्थ नहीं होते। इसके लिए सरल मार्ग प्रदर्शनी का ही होता है जिसमें सभी वस्तुओं को एक स्थान पर एकत्रित कर दिया जाता है। इससे उनका विक्रय भी होता है और जनता में प्रचार हो जाता है। तभी आजकल जहां तहाँ प्रदर्शनी का रिवाज सा हो गया है।

सन् १९५३ में देहली में एक रेलवे प्रदर्शनी का आयोजन हुआ। यह प्रदर्शनी क्या थी, वास्तव में भारतीय रेलों का इतिहास था। जनवरी मास में इसका उद्घाटन हुआ था। पुराने किले के पास के विस्तृत मैदान में लगभग एक डेढ़ मील के क्षेत्र में फैली यह विशाल प्रदर्शनी एक स्वतन्त्र नगर का आभास करा रही थी। सम्पूर्ण प्रदर्शनी के चारों ओर चमचमाती टीनों का घेरा बना हुआ था। बाहर आकर्षक द्वार बने थे, जिनमें कि अन्दर जाने के लिए प्रवेश-पत्र चार आना देकर मिलते थे। स्थान-स्थान से मोटर, साइकिल रिक्शाओं और प्राइवेट मोटरों का प्रबन्ध था जो कि दर्शकों को एक दूसरे स्थान पर पहुंचाती थीं। डी० टी० एस० के अधिकारियों ने प्रदर्शनी के मुख्य द्वार के सामने ही बसों का स्टेशन बनाया था और दर्शकों की सुविधा के लिए विशेष एकीकरण किया था।

प्रदर्शनी की ख्याति चारों ओर फैल चुकी थी। प्रतिदिन सहस्रों की संख्या में दर्शक देखने जाते थे। हमारे छात्रों ने भी आग्रह किया कि हमें भी यह प्रदर्शनी दिखाकर लाएं। अतः शुक्रवार को अधिक भीड़ न होने की सम्भावना

से जाने का विचार किया।

चार बजे के लगभग १० छात्र हमारे साथ मोटर में सवार हुए और देहली स्टेशन पर पहुँचे। यहाँ से प्रदर्शनी के लिए बसें जाती थीं। चार-चार आने देकर हम उसमें बैठ गए और थोड़ी ही देर में टेढ़े-मेढ़े मार्गों से चक्कर खाती मोटर हमें लिए प्रदर्शनी के द्वार पर जा पहुँचीं। उसके भव्य द्वार को देखकर ही वहाँ प्रदर्शनी का ज्ञान हो जाता था। मुख्य द्वार का अग्रभाग अर्ध चन्द्राकार बना हुआ था, जिसके आगे चारों ओर उसी आकार में मार्ग बना हुआ था। उस पर रोड़ियाँ बिछी हुई थीं। लाल बजरी ने सारी भूमि को ढक लिया था। द्वार के दाहिनी ओर प्रवेश-पत्र पाने का स्थान था जहाँ से पंक्तिबद्ध होकर चार आने में प्रवेश-पत्र मिलता था। प्रत्येक द्वार पर वर्दी-धारी रक्षक खड़े थे जो कि प्रवेश-पत्र देखकर ही जाने देते थे।

भीतर जाते ही ऐसा लगा कि किसी आश्चर्य-लोक में आ पहुँचे हों। चारों ओर दूकानें, स्टाल, चौराहे, उच्च स्तम्भ और माइक्रोफोन के शब्द सुनाई दे रहे थे। सामने ही वह स्टाल आरम्भ होता था जहाँ से प्रदर्शनी के वास्तविक भाग को देखना आरम्भ होता था। हमने वहाँ प्रवेश किया तो वहाँ उपस्थित वस्तुएँ देखकर चकित रह गए। कहीं पुराने इंजनों के नमूने रखे हुए थे, कहीं सिगनल करने का यन्त्र लगा हुआ था। एक स्थान पर लाइनें बिछी हुई थीं। बटन दबाते ही डिब्बे एक लाइन से दूसरी लाइन पर पहुँच जाते थे। दूसरी ओर बम्बई और शिमला के सुरंग मार्गों के माडल बने हुए थे। कृत्रिम पहाड़ी बना कर उन पर चक्करदार मार्गों का प्रदर्शन, रेल का फेर वाला मार्ग और सुरंग में प्रवेश करना दिखाया गया था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् किए गए भारतीय रेलवे के वर्गीकरण के अनुसार उत्तरी रेलवे आदि के स्टाल सर्वथा पृथक थे। ऐसे चित्र भी दिए हुए थे कि भारत में पहली लाइन कौन सी निकली, कितने वर्षों के पश्चात् किसमें क्या परिवर्तन हो गया।

उस भीतरी भाग में घूमते-घूमते हमें लगभग तीन घण्टे हो गए थे। अब हम बाहर निकले तो देखा कि रात हो गई है, किन्तु विद्युत के दीपों से सर्वत्र प्रकाश ही प्रकाश है। हम रेल के डिब्बों को देखने चले, पर एक कठिनाई

यह हुई कि जिस प्रकार भीतरी भागों में सरकारी कर्मचारी दर्शकों को समझाने के लिए नियुक्त थे, वे सभी को आवश्यक जानकारी अवश्य देते थे पर बाहर ऐसी सुविधा न थी। एक दो सज्जन ऐसे अवश्य मिले जो कि प्रदर्शनी पहले देख चुके थे। उनसे ज्ञात होने पर वह इंजन देखा जो कि भारत में सर्वप्रथम आया था। वह ग्वालियर के महाराज का था और कोयलों के स्थान पर लकड़ी जलाने से चलता था। तब हमने नए बने एयरकण्डीशण्ड डिब्बे देखे और वह आदर्श डिब्बा भी देखा जो कि भारत में बना है, एवं सम्पूर्ण सुविधाओं से सम्पन्न है। वही पुष्पक नाम से प्रसिद्ध है। तब हम उस रेल में बैठे जो कि सारी प्रदर्शनी में घूमती थी और अन्त में अपने चलने के स्थान पर ही आकर रुकती थी। इसमें हमें बड़ा आनन्द आया।

अब भूख और प्यास दोनों सताने लगी थीं। सामने एक रेल में अन्नपूर्णा की दूकान थी। वहाँ चार आने की एक पर्ची मिलती थी और उससे कोई भी एक वस्तु ली जा सकती थी। पर प्रबन्ध अच्छा न था। ठंडे पानी की भी कोई अच्छी व्यवस्था न थी।

अब हम मनोरंजन सम्बन्धी स्थानों की ओर बढ़े तो कहीं नाटक हो रहे थे, कहीं गोल कुएं में मनुष्य मोटर साइकिल चला रहा था, कहीं कोई जादू का खेल दिखा रहा था एक-एक दृश्य ऐसा था कि वहाँ से टलने को जी न चाहता था। पर अब रात के साढ़े नौ बज चुके थे और फिर सवारी न मिलने का डर था। अतः हम सब बाहर निकले। बसों में तो भारी भीड़ थी। अतः हमने तीन मोटर साइकिल रिक्शाएँ कीं और उनमें बैठकर स्टेशन पर आए। यहाँ से अपने-अपने परिचितों के पास चले गए।

इस प्रदर्शनी को देखने का प्रभाव छात्रों पर बहुत अच्छा पड़ा। उसका निर्माण बड़ी कुशलता से हुआ था। सम्पूर्ण प्रदर्शनी में बिजली का सम्बन्ध जोड़ा गया था। रेल के डिब्बों, इंजनों एवं पर्वत-मार्गों के माडल इतने आकर्षक थे कि देखते ही बनता था। इन सब बातों से चित्त में अति प्रसन्नता उत्पन्न हुई। हृदय में यह बात जम गई कि वास्तव में प्रदर्शनी को देखना ज्ञानवृद्धि में असाधारण रूप में सहायक है।

———

वसन्त ऋतु

अहा ! कैसा सुहावना समय है। आकाश-मण्डल निर्मल और रज से हीन है। उषा की अरुण कान्ति चारों ओर फूट-फूट कर छा रही है। सुषमा का अनन्त प्रवाह सा उमड़ रहा है। शीत के कारण संकुचित हृदय उल्लसित हो उठा है, वनस्पतियों की हिम-जड़ शुष्कता समाप्त हो रही है। प्रकृति अति मनोरम रंग-बिरंगे सुमनों का अम्बर धारण किये हुये हर्ष-विभोर होकर नृत्य सा कर रही है। ये चिन्ह संकेत कर रहे हैं कि वसन्त ऋतु का आगमन हो गया है।

अभी कुछ समय पूर्व सब के हृदय पर कितना आतंक था। शिशिर-हृदय शिशर ऋतु के कारण तरु-मालिका के पत्ते भू-पतित हो रहे थे। पीले और सिकुड़े, शुष्क प्रायः पत्तों से पूर्ण शोभाहीन तरु-शाखाएं वृद्धावस्था का सा ज्ञात करा रही थीं। तीव्र वेग से उड़ती धूलि-धूसर आंधिया सब की दृष्टि कलुषित कर रहीं थीं। तुषारपात के कारण हाथों की उंगलियां सिमटती जा रही थी; उनका रक्त सूख चुका था नव रक्त का प्रवाह मानो धमनियों में होना बन्द हो गया था। इन सभी कारणों ने जगती की नैसर्गिक छटा को म्लान कर दिया था। लतायें उद्विग्न थीं, शीत के असीम अत्याचार से उनकी रक्षा करने वाला कोई न रहा था। भगवान् भास्कर भी तेजहीन से हुए, मानो तप करके पुनः खोया तेज पाने के लिए दक्षिण की ओर चले गये थे। सब ओर नीरसता अनुत्साह और खिन्नता का साम्राज्य था कि सहसा अमराइयों से कोकिला की शहनाई बज उठी। भृंग-मालिका गूंज-गूंज कर वंशी की ध्वनि भर उठीं, अन्य पक्षियों की चह-चह और गुलाब की चट-चट ने महाराज ऋतुपति वसन्त के आगमन की सूचना दी।

मलयानिल अपने स्वामी कामदेव के मित्र; ऋतुराज के यश को विकसित कुसुमों की धूलि के मिस संपूर्ण विश्व में प्रकाशित करने चला। नव पल्लवों की वन्दनवार द्वार-द्वार पर लटका दी गई, कुमारी लताएं रसभरी कुसुमावली के पूर्ण कलस मस्तक पर धरे कुँज-भवनों के मार्गों में सिर झुकाये खड़ी हो

गईं। आम्र-मंजरी की खील वर्षा होने लगी। संपूर्ण सृष्टि आनन्द से उन्मत्त होकर विचलित हो उठी। तितलियां मनो सखी-सहेलियों को शुभ समाचार सुनाने इधर-उधर दौड़ पड़ीं।

लीजिये, ऋतुराज की जयजयकार हो रही है। शिशिर अपना बोरियाँ-बिस्तर बांध कर चल दिया है। उसके अत्याचारों से पीड़ित जड़ चेतन ने नवीन सुषमा धारण की है। सभी में नव-रक्त का संचार हो चला है। वसंत ने अपने आगमन के साथ ही संवत् (वर्ष) का आरम्भ कर दिया है।

रमणियां चम्पे के समान गोरे वदन पर सुन्दर वसन्ती रंग की साड़ियां पहने चलतीं-फिरतीं लता सी दिखाई दे रहीं हैं। उनकी रुनझुन की ध्वनि करती पायल ऋतुराज के स्वागत-समारोह में नृत्य करती प्रतीत होती है। कुसुमावली के विविध रत्नों की झालरों के नीचे किसलयों से ढके तरु-वृन्द की शाखाओं पर ऋतुपति का सिंहासन लगाया गया है।

महाराज के आगमन के उपलक्ष्य में नरेशों ने हर्षपूर्वक सार्वजनिक रूप से वसन्तोत्सव मनाने की घोषणा की है। स्थान-स्थान पर धूम-धाम से तैयारियाँ हो रही हैं। कविगण यशोगान कर रहे हैं। ब्राह्मण लोग नव सस्येष्टि यज्ञ करते हुए वेदपाठ कह रहे हैं। रमणियाँ अनेक उत्तम वस्त्राभरणों से संवर कर उद्यानों में महापराक्रमी कामदेव की पूजा करने चल दीं हैं। कोई आम का बौर अर्पित कर रही है, कुछ कामिनियां नव-पल्लव और हल्दी से काम का पूजन करती हुईं उसके सखा वसंत को अर्ध्य दे रहीं हैं। इसके पश्चात् प्रसाद के रूप में नई कोंपलों को खाती हैं। यह है ऋतुराज की अतुल महिमा।

वसंत की यह वर्णित महिमा कल्पित हो यह बात नहीं। जिनके हृदय की कोमलता सर्वथा नष्ट नहीं हुई है, जिन्हें ईश्वर ने सत्य सौंदर्य को परखने में समर्थ दृष्टि प्रदान की है, वे प्रतिवर्ष प्रकृति के विस्तृत प्रणय में नृत्य करती वासन्ती सुषमा का अवलोकन कर सकते हैं।

ऋतुराज का महत्व कवियों एवं आयुर्वेद के आचार्यों ने भी स्वीकार किया है। कविगण तो उसकी अनुपम छटा का वर्णन करते थकते ही नहीं। उनके

शब्दों के अनुसार अतनु (काम) उस ऋतु में आकर सतनु बन जाता है। कारण यह है कि उसके पाँचों बाणों के रूप में प्रयुक्त होने वाले कुसुम आम्र-मंजरी, श्वेत कमल, नील कमल, अशोक पल्लव और आम की कोंपल. ये पाँचों इस ऋतु में ही प्रत्यक्ष होते हैं। काम की दूती कोकिला की काकली भी इसी काल में दूर-दूर तक प्रतिध्वनित होती है। काम के धनुष की डोरी के रूप में वर्णित भृंग-मालिका इसी ऋतु में इतस्ततः संचार करती है। उसकी गुंजार टंकार का काम करती हुई सत्य ही कामनियों के हृदय को कम्पित करती होगी। रमणियों के भ्रूखंड से धनुष का भ्रम होना कोई अस्वाभाविक बात नहीं। निश्चय ही भ्रूभंग के होते ही उनसे कटाक्षों की शर-वर्षा होती होगी।

आयुर्वेद के अनुसार इस ऋतु में शरीर में नवीन रक्त का संचार होता है। गई हुई चेतना दौड़ आती है, हृदय का उल्लास पूर्ववत् गतिशील होता है। स्नायु-मण्डली में रुधिर के प्रवाह के योग्य शक्ति आ जाती है। इस कारण प्रत्येक व्यक्ति इस ऋतु में अपूर्व शक्ति का अनुभव करता है। इस काल में व्यायाम, प्रातः भ्रमण, आम की बोर, नीम की कोंपलें एवं त्रिफला अति स्वास्थ्यवर्धक हैं। चिकित्सा-विशेषज्ञ तो यहाँ तक कहते है कि दीर्घरोगी भी इस ऋतु में एक बार स्वस्थ होने लगता है और यदि वह इस काल में भी स्वस्थ न हो तो कभी भी नहीं हो सकता।

अनेक वृक्ष तो इसी ऋतु में पत्र-पुष्पों से अलंकृत होते हैं। अमलतास ही को देखिये, वह किस प्रकार पीले-पीले फूलों से लद कर मूर्तिमान् वसन्त बन जाता है। पलाश के शुष्क वृक्ष पर रक्त-वर्ण फूलों के छल से मानो नवीन और स्वस्थ रक्त भर जाता हो। इसी प्रकार सृष्टि के अन्य पदार्थ भी इस ऋतु में नवीन शोभा से पूर्ण हो जाते है। मदार के वृक्ष पर इसी ऋतु में हरियाली आती है। कनेर के कुसुमों की लालिमा इसी काल में सृष्टि को रक्तिमामयी बना देती है। उसके सम्पूर्ण व्यापार, ठाठ और स्वरूप ऐसे अद्भुत है कि उनमें राजसी स्वरूप के दर्शन होते हैं। तभी तो कवियों ने उसे ऋतुराज कहा, भावुकों ने उसे काम का सखा बतलाया, उर्दू के शायरों ने उसे

'मौसमे वहार' कह कर उसकी प्रशंसा में अनेक पत्र लिखे। उसके गुण और सौन्दर्य निराले ही है। धन्य हैं वे लोग जो कि प्रकृति के अद्भुत प्रसावक की नैसर्गिक छटा का आनन्द लेते हैं।

गणतन्त्र दिवस

भारत त्योहारो और पर्वो का देश है। वर्ष भर में यहाँ लगभग २०० त्यौहार आ ही जाते है। ये सामाजिक, धार्मिक और राष्ट्रीय तीनो ही प्रकार के होते हैं। गणतन्त्र दिवस एक राष्ट्रीय पुण्य पर्व है जो कि हमारी पूर्ण स्वाधीनता का प्रतीक है। १५ अगस्त सन् १९४७ को भारत को केवल औपनिवेशिक स्वतन्त्रता प्राप्त हुई थी। उस समय तक हमारे शासन का प्रतीक गवर्नर जनरल होता था जो कि ब्रिटिश सरकार की ओर से नियुक्त होता था। अपना कानून स्वयं वनाने की स्वतन्त्रता होने पर भी, उसकी पुष्टि के लिएं इंगलैंड के राजा की स्वीकृति आवश्यक थी। परन्तु २६ जनवरी सन् १९५० को भारत का स्वनिर्मित शासन-विधान स्वीकृत हुआ। इसी दिन से भारत में गवर्नर जनरल के पद की समाप्ति हो गई और भारत के शासन का प्रतीक राष्ट्रपति हो गया जो कि जनता का प्रतिनिधि है। इसलिए यह उत्सव भारतीय जनता के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

इतिहास—कोई प्रश्न करे कि गणतन्त्र दिवस होने का गौरव २६ जनवरी को क्यों दिया गया। इसमें भी हेतु है। सन् १९६० मे जव लाहौर में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ तो उसमें कांग्रेस के राष्ट्रपति जवाहरलाल नेहरू वने थे। उन्होने ही यह आदेश निकाला था कि २६ जनवरी के दिन प्रत्येक भारतवासी राष्ट्रीय पताका के नीचे खड़ा हो कर यह प्रतिज्ञा करे कि हम भारत के लिए पूर्ण स्वाधीनता प्राप्ति की माँग करेंगे और उसके लिए अन्तिम दम तक सघर्ष करेगे। तव से यह परम्पंरा चल पड़ी थी कि प्रत्येक २६ जनवरी को कांग्रेस की ओर से ध्वजारोहण होता और उसके नीचे खड़े होकर सम्पूर्ण कांग्रेस

सदस्य एवं अन्य जनता देश के लिए पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करने की प्रतिज्ञा करती थी। उससे पूर्व काँग्रेस औपनिवेशिक स्वराज्य को ही अपना लक्ष्य समझती थी।

शासन-विधान तैयार हो जाने पर भारत के लिए यह आवश्यक था कि वह ब्रिटिश जुए का नाम मात्र का भार भी अपने कन्धे पर न रखे। राष्ट्रमंडल (कामन वैल्थ) में इसे रखने के लिए विशेष नियम स्वीकृत किया गया था कि वह सार्वभौम सत्ता (Paramountcy) प्राप्त करने पर भी राष्ट्रमण्डल का सदस्य रह सकता है।

भारतीय नेताओं ने जब देखा कि २६ जनवरी के कुछ ही समय पूर्व हमारा शासन-विधान तैयार हुआ है, तो २६ जनवरी को ही इस नवीन विधान को भारत पर लागू करना उचित समझा और वर्ष तो इस दिन स्वाधीनता प्राप्ति की प्रतिज्ञा मात्र करते थे पर अब जबकि वह स्वप्न पूर्ण होने को आ रहा था तो उस प्रतिज्ञा-दिवस को ही पूर्ति-दिवस क्यों न मान लिया जाय। इस विचार से २६ जनवरी ही उपयुक्त जंचा।

२६ जनवरी सन् १९५० को प्रातःकाल भारत के प्रथम एवं अंतिम गवर्नर जनरल श्री राजगोपालाचार्य ने नव-निर्वाचित राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद को कार्यभार सौंपा। इसी दिन प्रथम राष्ट्रपति ने औपचारिक रूप से शपथ ग्रहण की। इसके पश्चात् राष्ट्रपति-भवन पर उनका निजी झण्डा फहराया गया। दोपहर में इण्डियागेट के मैदान में भारतीय सेनाओं की विशाल परेड, ध्वजारोहण, ३१ तोपों द्वारा सलामी की योजना थी। वहाँ पर लाखों जनता के एकत्रित होने की सम्भावना थी, परन्तु विशेष रूप से पास-धारियों के ही लिये व्यवस्था थी। इस उत्सव में सम्मिलित होने के लिए विदेशी राजदूतों भारत में विदेशों के कूटनीतिज्ञों, भारतीय अधिकारियों को निमन्त्रित किया गया था। प्रिय राष्ट्रपति का विराट् जलूस निकलना था। इस प्रकार के महत्व-पूर्ण उत्सव के बड़ी धूम-धाम से मनाये जाने की सम्भावना थी। इसी कारण देश के कोने-कोने से दर्शनार्थी लाखों की संख्या में यहाँ आये थे। यह पहला अवसर था कि संसद-भवन, सचिवालय आदि वर्जित थानों में भारत की

जनता अव्याहत भाव से प्रवेश कर रही थी। जलूस को देखने की उत्सुकता में लाखों आँखें घंटों राष्ट्रपति-भवन (जो उस समय तक 'गवर्नमेंट हाउस' या 'वायसरीगल लॉज' कहलाता था) की ओर लगी हुई थीं।

अकस्मात् राजभवन की ओर लोगों ने देखा कि कुछ रंग-बिरंगी पोशाकों वाले ध्वजाधारी घोड़ों पर सवार होकर आ रहे हैं। उनके साथ में घुड़सवार बैण्ड भी था, पर वह मौन होकर निकल गया। उसके पश्चात् एक बग्घी पर, जो कि निजाम हैदराबाद ने राष्ट्रपति को भेंट की थी, सुवर्णमय छत्र के नीचे काली अचकन पहने राष्ट्रपति की सवारी निकली। उसमें वर्दीधारी अंगरक्षक उनके साथ थे।

इस सादे जलूस को देखकर जनता का हृदय घोर निराश से भर गया। उसके मुँह से निकल पड़ा कि स्वतन्त्र भारत के प्रथम गणतन्त्र दिवस का यही समारोह है? क्या इसी के लिए हफ्तों से रिहर्सल किये जा रहे थे? क्या इतना ही कुछ देखने के लिए हम इतनी दूर से यहाँ आये थे? इस प्रकार सम्पूर्ण दर्शकों ने कठोर आलोचना की। इसका प्रभाव भारत सरकार पर भी पड़ा और कुछ ही दिनों के पश्चात् एक विराट् जलूस और निकाला गया जो कि नई दिल्ली की प्रमुख सड़कों पर से गुजरता हुआ चाँदनी चौक घंटा-घर तक आया और फिर लाल किले जाकर समाप्त हुआ। इसके साथ भारत की जल, स्थल और नभ सेनायें भी मार्च कर रहीं थीं। इससे देहली की जनता को सन्तोष हो गया, पर उन आगन्तुकों के लिये तो यह सर्वथा व्यर्थ था जो कि पहले निराश होकर चले गये थे।

उस दिन से अब प्रतिवर्ष यह उत्सव धूम-धाम से मनाया जाता है। यद्यपि मुख्य समारोह – सलामी, पुरस्कार वितरण आदि तो इण्डिया गेट पर ही होता है पर जलूस नई दिल्ली की प्रायः सभी सड़कों पर घूमता है। कभी-कभी वह लाल किले पर पहुँचता है। इसके साथ तीनों सेनाएँ, घुड़सवार एवं ऊँट रिसाले, टैंक, मशीनगनें, ट्रेक्टर, टैंक नाशक, पोत विध्वंसक एवं विमानभेदी आदि तोपें, सिगनल आदि के यन्त्र प्रभृति सभी रहते हैं। जनसाधारण के सह-योग से अब कई वर्षों से इस जलूस के सैना के पश्चात् सांस्कृतिक झाँकियाँ भी

रहती हैं। उनमें भारत के विभिन्न प्रान्तों के लोक-नृत्य, शिल्प आदि का प्रदर्शन होता है। कई ऐतिहासिक महत्व की वस्तुएं भी उपस्थित की जाती हैं। स्कूलों के लड़के और लड़कियाँ भी बहुधा इसमें भाग लेती हैं।

जनता में जितना उत्साह इस उत्सव को देखने का पाया जाता है, उतना और किसी को नहीं। अकेले इण्डिया गेट पर चार-पाँच लाख जनता की भीड़ रहती है। जलूस के मार्गो पर खड़ी रहने वाली जनता का तो अनुमान ही सम्भव नहीं है। हजारों व्यक्ति तो उत्सव को देखने के लिये दूर-दूर से आते हैं।

हमें इसको सफल बनाने में अवश्य भाग लेना चाहिये। इससे कई लाभ हैं। एक तो हम इसको देखने के लिये उत्साह दिखाकर अपने राष्ट्र के प्रति प्रेम प्रकट करते हैं। दूसरी बात यह है कि सैनिक परेड को देखने से हमें अपने राष्ट्र की सैन्यशक्ति का ज्ञान हो जाता है। पीछे आने वाले यन्त्रों को देख कर हमें युद्ध के आधुनिकतम साधनों का ज्ञान होता है। विज्ञान ने संग्राम के कैसे-कैसे भयानक साधनों को जन्म दिया है। इसका पता लग जाता है। इससे हमारे हृदय में अपनी शक्ति के प्रति आत्म-विश्वास प्रकट होता है कि हम किसी दूसरे राष्ट्र से निर्बल नहीं हैं, आक्रमण होने पर अपने शत्रु को शिक्षा देने में समर्थ हैं। अतः गणतन्त्र दिवस भारत के गर्व, प्रतिष्ठा और आत्मविश्वास का प्रेरणादायक है।

विज्ञान की देन

आज हम विज्ञान के युग में रह रहे हैं। चारों ओर विज्ञान के चमत्कार दिखाई देते हैं। विज्ञान ने मानव जीवन को बहुत सुखी बना दिया है। अब से एक शताब्दी पूर्व जिन बातों को असम्भव समझा जाता था, आज वे ही सब बातें सत्य सिद्ध होकर मानव के लिये वरदान सिद्ध हो रही हैं। जब आज हम अपने जीवन की तुलना अपने पूर्वजों के जीवन से करते हैं तो हमें उसमें आशातीत अन्तर दिखाई देता है और हमें यह आश्चर्य होता कि किस प्रकार वह अपना जीवन व्यतीत करते थे। उनके पास न तो आवागमन के आधुनिक

साधन थे, न उनके पास रेडियो, सिनेमा आदि मनोरन्जन के साधन और न विद्युत् के विषय में ही उन्हें ज्ञान था।

मानव के लिए विज्ञान का सबसे बड़ा वरदान विद्युत् का अविष्कार है। मानव का जीवन बहुत सुखमय बन गया है। आज हम गर्मी से बचने के लिये मकानों को 'ऐयर कण्डीशन' करा लेते हैं, जिससे ठंडी-ठंडी हवा आती है। बिजली का पंखा तो लगभग सभी घरों में प्रयोग में लाया जाता है। सर्दी के दिनों में ठंड से बचने के लिये विज्ञान ने हमें 'हीटर' दिया है। इससे कुछ ही मिनटों में समस्त कमरा गर्म हो जाता है। विद्युत् की सहायता से देखते ही देखते भोजन व चाय इत्यादि सभी वस्तुएं तैयार हो जाती हैं। कपड़ों पर इस्तरी करने के लिये भी आज हम 'विद्युत् इस्त्री' का प्रयोग करते हैं। विद्युत् के घरेलू कार्यों में प्रयोग करने से सभी कार्य शीघ्र हो जाते हैं और किसी प्रकार की गन्दगी भी नहीं होती। ऊंची-ऊंची इमारतों पर चढ़ने के लिये सीढ़ियों का प्रयोग न करके अब 'लिफ्ट' का प्रयोग किया जाने लगा है। देखते ही देखते 'लिफ्ट' कई-कई मनुष्यों को एक साथ मंजिलों ऊपर ले जाती है और ऊपर से नीचें ले आती है।

प्राचीन काल में एक स्थान से दूसरे स्थान तक समाचार भेजना बहुत ही कठिन कार्य था। कोई भी समाचार किसी व्यक्ति के द्वारा ही भेजा जा सकता था। परन्तु आज तो तार और टलीफोन ने यह समस्या सुलझा दी है। चन्द घण्टों में ही तार के द्वारा हम अपना कोई भी सन्देश अपने मित्र के पास भेज सकते हैं चाहे वह सैंकड़ों मील की दूरी पर क्यों न हो। टेलीफोन द्वारा तो हम सैंकड़ों मील की दूरी पर खड़े हुए व्यक्ति से बातचीत कर सकते हैं। विज्ञान का एक आश्चर्यजनक आविष्कार है, 'रेडियो' इसके द्वारा नित्यप्रति विश्व भर के सभी महत्वपूर्ण और आवश्यक समाचार हमें प्राप्त हो जाते हैं। अब तो विज्ञान एक पग और आगे बढ़ गया। 'टेलीविजन' के आविष्कार ने तो मानव को चकित कर दिया है। सहस्त्रों मील की दूरी पर भाषण देने वाले व्यक्ति के भाषण के साथ-साथ उसका चित्र भी 'टेलीविजन' के पर्दे पर स्पष्ट दिखाई देता है। यहाँ तक कि वायु में सैंकड़ों मील की ऊंचाई पर उड़ने वाले उपग्रहों का संकेत भी हम 'रेडार' जैसे यन्त्रों से पृथ्वी पर ले सकते हैं।

आज से लगभग एक शताब्दी पूर्व आवागमन के आधुनिक साधन भी हमें उपलब्ध नहीं थे। घोड़ों पर, रथों पर या पैदल यात्रा करते थे। छोटी छोटी यात्राएं भी महीनों में पूर्ण होती थीं, मार्ग भी सुरक्षित नहीं थे। परन्तु आज तो मनुष्य कुछ घण्टों में ही पृथ्वी की परिक्रमा कर सकता है। पृथ्वी पर दौड़ने वाली रेलगाड़ियों, मोटरों, कारों. आकाश में सैंकड़ों मील की गति से उड़ने वाले वायुयानों और समुन्द्र के वक्ष पर तैरने वाले जहाजों ने मानव के लिये आवागमन कितना सुगम और सस्ता कर दिया है। क्या ये सब वस्तुएं मानव के लिये आश्चर्य-जनक नहीं हैं। सौ वर्ष पूर्व वायु में उड़ने के स्वप्न देखने वालों की खिल्ली उड़ाई जाती थी और उन्हें मूर्ख कहा जाता था, परन्तु आज वे सभी सत्य सिद्ध होकर मानव के लिये वरदान सिद्ध हो रही हैं। वायुयान के अविष्कार ने समस्त विश्व को मिलाकर एक कर दिया है। आज दूरी और समय मानव की उन्नति के मार्ग में बाधक नहीं हो सकते। इतना ही नहीं आज तो मानव चद्रलोक, मंगल और शुक्र में पहुँचने के लिये स्वप्न देख रहा है और इस स्वप्न को पूरा करने में उसे पर्याप्त सफलता भी प्राप्त हो चुकी है। इतना ही नहीं, पृथ्वी से सैंकड़ों मील की दूरी पर उपग्रहों का छोड़ना, जो अन्य ग्रहों की भाँति निरन्तर गोलाकार मार्गों पर घूम रहे हैं, एक बहुत ही विस्मय का कारण बनी हुई है और अब तो रूस और अमेरिका अन्तरिक्ष में राकेट द्वारा मनुष्यों को भेजने और उन्हें वहाँ से सुरक्षित पृथ्वी पर उतारने में भी सफल हो गए हैं। इससे स्पष्ट है कि मनुष्य शीघ्र ही दूसरे ग्रहों में पहुँच जायेगा।

मानव के मनोरंज़न के लिये भी वैज्ञानिकों ने 'चलचित्र' का आविष्कार किया है। कितना आश्चर्य है कि पर्दे पर मूर्तियाँ घूमती फिरती हैं, हँसती बोलती और नाचती-गाती हैं। वे देखने में ऐसी प्रतीत होती हैं मानो वे वास्तविक आदमी व औरतें हैं जो स्टेज पर कार्य कर रही हैं।

विज्ञान की एक बहुत ही आश्चर्यजनक देन है 'टेलीप्रिंटर' टेलीप्रिंटर से समाचार अपने-आप ही कागज पर छपते रहते हैं। इस यन्त्र के आविश्कार ने समाचार-पत्रों के कार्यों को बहुत सुगम बना दिया है। इसकी सहायता से ही

संसार भर के समाचार दूसरे दिन प्रातःकाल ही समाचार-पत्रों में पढ़ने को मिल जाते है। परन्तु प्रश्न यह उठता है कि यह समाचार-पत्र इतनी शीघ्रता से छप कैसे जाते हैं। परन्तु यह भी विज्ञान का ही एक चमत्कार है कि देखते ही देखते बड़ी-बड़ी मशीनें लाखों समाचार-पत्र छाप देती हैं।

चिकित्सा-क्षेत्र में भी विज्ञान ने अपना बहुत चमत्कार दिखाया है। आज तो चिकित्सक हृदय और मस्तिष्क तक का 'आपरेशन' करने में सफलता प्राप्त कर चुके है। इस त्रेत्र में ऐक्स-रे ने तो कमाल ही कर दिखाया है। इसका शीशा हमारे शरीर के अन्दर की वस्तुओं का भी चित्र उठा लेता है। अनेकों घातक रोगों की चिकित्सा के लिए औषधिओं का आविष्कार कर विज्ञान ने मनुष्य के ऊपर बहुत अधिक उपकार किया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विज्ञान ने मानव-जीवन में एक महान परिवर्तन ला दिया है और अभी विज्ञान प्रतिदिन प्रगति की ओर बढ़ रहा है। आशा है कि एक दिन वह होगा जबकि विज्ञान की सहायता से मानव मृत्यु पर भी विजय प्राप्त कर लेगा।

सिनेमा या चलचित्र

जीवन के संघर्ष में फंसे हुए मनुष्य को पुनःस्फुर्ती प्राप्त करने के लिये मनोरंजन की नितान्त आवश्यकता रहती है। इससे थके मन, शरीर और दिमाग को विश्राम मिलता है। कार्य करने के लिये नयी शक्ति प्राप्त होती है, संघर्षों में साहसपूर्वक लड़ने की प्रेरणा मिलती है, इसीलिये आदिकाल से अनेकों ऐसे साधनों का आविष्कार होता आ रहा है, जो कि श्रान्त मन को शान्ति, आनन्द और नई स्फुर्ती प्रदान कर सके। इनमें घुड़दौड़, शिकार खेलना, शतरंज खेलना, पर्यटन, नवीन दृश्यों को देखना आदि अनेकों को गिनाया जा सकता है। परन्तु आज के मनोरंजन-सम्बन्धी साधनों में सिनेमा सबसे अधिक लोकप्रिय है। इस समय जनता पर इसका इतना प्रभाव है कि लोग भोजन भले ही त्याग दें पर सिनेता देखना नहीं छोड़ सकते है। युद्ध की मंहगाई में लोगों को

पेट भरना व तन ढाँपना भी कठिन हो गया था परन्तु उसके सिनेमा देखने में कोई कमी नहीं आई। सिनेमा-ग्रहों नें शान्ति-काल से अधिक भीड़ रही।

आधुनिक युग में सिनेमा जीवन का एक अंग कहा गया है। जहाँ नई वस्ती वनी, कोई स्थान जन-संख्या एवं आय के साधनों से सम्पन्न होता दिखाई दिया कि स्कूल खुलने के साथ ही वहाँ सिमेमा-गृह स्थापित हो जाता है। वड़े-वड़े नगरों में जहाँ स्कूल,कालेजों एवं अन्य सार्वजनिक स्थानों की भरमार रहती है। वहाँ अनेक सिनेमा-गृह भी रहते हैं। एक-एक वडे नगर में २०-३० छविगृह भी पाये जाते हैं। वम्बई और कलकत्ता जैसे नगरों में तो १०० तक इनकी संख्या पहुँच गई है।

भारत संसार में अमेरिका के पश्चात् सवसे वड़ा सिनेमा चित्र वनाने वाला देश है। यहाँ अनेकों सिनेमा-कम्पनियाँ है। वर्ष में सैकड़ों चित्र वनते है। लाखों व्यक्ति प्रतिदिन सिनेमा देखते है। अव तो भारतवर्ष की फिल्मे विदेशों में भी जाने लगी हैं।

सिनेमा मनोरंजन का सबसे सस्ता साधन है। यह ठीक है कि इसके एक चित्र के निर्माण में कई-कई लाख रुपया व्यय होता है। एक-एक अभिनेत्री का ठेका डेढ़ लाख तक बैठ जाता है। परन्तु दर्शक तो दस आने देकर ही उतना आनन्द उठा लेते है, जितना कि वह सैकड़ों रुपये खर्च करने पर भी नहीं उठा सकते। उसकी विशेषता ही ऐसी है। पहले लोग नाटक आदि देखते थे। पर नाटक में सिनेमा वाली वात कहाँ ? नाटक में दिन और रात का अन्तर समुन्द्र की ऊँची तरंगें, वसन्त की वहार, मूसलाधार वर्षा, भूकम्प और उजड़-ते हुए मकानों के दृश्य, भीषण युद्ध और हवाई जहाजों और रेल की छतो पर लडाई जैसे असम्भव दृश्य नहीं दिखाये जा सकते है। सिनेमा में आप कटा हुआ सर अलग देख लीजिए। पाँच मन्जिल के मकान से कूदकर मोटर-साइकिल पर बैठना, जादू के जरिये मकान को ही आकाश में उड़ा देना प्रत्यक्ष कर लीजिये। ऐसी करामात देखकर, भाँति-भाँति के वाजों की मधुर ध्वनि के साथ नई-नई लय में उठती संगीत-लहरी में गोते खाकर किसका हृदय और कुछ देखना चाहेगा ?

यह शक्ति यों ही नहीं आ जाती। इनके लिये चित्र-निर्माताओं को बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है। वे कैमरे लेकर कभी समुद्री किनारों पर जाते हैं, कभी दुर्गम पर्वत-शिखरों पर जाकर वहाँ के चित्र खींचते हैं। काश्मीर की घाटियों में जाते हैं। अभिनेताओं और अभिनेत्रियों का अभिनय कराया जाता है। इन चित्रों की फिर फिल्मों की लम्बी माल (रील) बनाता है। फिर ध्वनि भरी जाती है। उसके रिकार्ड पृथक् रहते हैं। फिल्में बनने पर सेंसर बोर्ड में भेजी जाती है। उसके प्रमाणित करने पर, आवश्यक संशोधन करने के पश्चात्, चित्र पूर्ण होकर छविगृहों में प्रसारित होने के लिए बाजारों में आ जाते हैं। चित्र निर्माण करने वाली कम्पनियाँ अनेक हैं। जिनमें रणजीत, मूवीटोन, प्रकाश मूवीटोन, राजकमल, फिलिमस्तान पिक्चर्स, बम्बई टाकीज आदि विख्यात हैं। इनमें अनेक कम्पनियों के निजी स्टूडियो हैं। कुछ दूसरों के स्टूडियो में चित्र निर्माण करती हैं।

छवि-गृह में एक विशाल हाल होता है। हाल के ठीक सामने एक मंच बना रहता है, जिस पर एक पर्दा पड़ा रहता है। पिछले भाग में ऊँचाई पर एक छिद्र में से मशीनें पर्दे पर प्रकाश फेंकती है। उसके प्रकाश के आगे फिल्म लगी रहती है जो कि घूमते पहिये पर चढ़ाई जाती है। साथ में ध्वनि का विस्तार होता रहता है। उस प्रकाश द्वारा चित्र का प्रतिबिम्ब पर्दे पर पड़ता है। उसे देखकर दर्शक हर्ष एवं विस्मय के सागर में डूबता-उतरता है। सिनेमा व्यापार, शिक्षा और प्रचार के लिए अच्छा साधन है। अमरीका आदि देशों में सिनेमा द्वारा व्यापार और शिल्प की शिक्षा दी जाती है। विज्ञापन तो इसके द्वारा बहुत अच्छी प्रकार से होता है। एक विज्ञापन को हजारों व्यक्ति देखते हैं और उसका उनके मन पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।

यद्यपि सिनेमा के उपर्युक्त लाभ प्रत्यक्ष हैं, तथापि उससे होने वाली हानियाँ भी कम नहीं हैं। इसके गन्दे गानों और नग्न व अर्धनग्न नृत्यों ने युवक और युवतियों के आचरण पर घातक प्रभाव डाला है। छात्र तो सिनेमा के इतने शौकीन हैं कि उसके लिए पढ़ाई, नींद और स्वास्थ्य सबका बलिदान कर सकते हैं। उन्हें, कक्षाओं को छोड़ पढ़ाई के समय चित्र देखते पाते हैं।

जब देखो मुख पर अभिनेताओं और अभिनेत्रियों के नाम लेते देखते हैं। स्कूलों और कालेजों की लड़कियाँ वेष-भूषा और चाल-ढाल के लिए अभिनेत्रियो का अनुकरण करने की चेष्ठा में रहती हैं। लड़के या तो अभिनेताओं के फैशन की नकल पर अपनी शक्ति एवं माता-पिता के धन का व्यय करने की चेष्टा में रहते हैं या अभिनेत्रियों के चित्र हाथों में रख उनसे विवाह की कामना में पते एकत्रित करते फिरते हैं। परिणाम यह होता है कि उनकी प्रवृत्ति विपरीत दिशाओं में जा रही है। इसके गानों ने तो और भी गजब ढाया है। छोटे-छोट बच्चे भी 'तिरछी नजर है पतली कमर है' गाते फिरते हैं। वासना को भड़काने के अतिरिक्त उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

इसमें सन्देह नहीं है कि अनेक चित्र शिक्षाप्रद भी बने हैं। 'राम राज्य', 'भरत मिलाप', 'अछूत कन्या', 'जागीरदार', 'चण्डीदास, 'अमर ज्योति' आदि चित्र जगत्प्रसिद्ध हैं। उन्होंने पर्याप्त सम्मान अर्जित किया है। परन्तु ऐसे चित्रों की संख्या अभी बहुत कम है। भारत के फिल्म-निर्माताओं का दृष्टि-कोण पूँजी बटोरने फे अतिरिक्त और कुछ नहीं है। वी० शान्ताराम एक-दो निर्देशक ऐसे हैं जिन्होंने फिल्म-उद्योग के शिक्षा सम्बन्धी महत्व की उपेक्षा नहीं की है। आशा हैं, भारत सरकार द्वारा स्थापित सैंसर बोर्ड के निरीक्षण के कारण सिनेमा के वर्तमान अवगुण दूर हो जायेंगे और छात्रों के लिए भी यह उपयोगी ही सिद्ध होगा।

समाचार पत्र

किसी ने कहा है, "समाचार-पत्र चतुर्थ सत्ता है।" पहली तीन सत्तायें सीमित शक्ति वाली है। परन्तु यह सत्ता कभी मूक नहीं रहती। दूसरा व्यक्ति कहता है कि 'समाचार पत्र जनता की एक ऐसी पार्लियामेंट है जिसका अधिवेशन कभी नहीं रुकता।' वह जनता की वाँणी है। उसके द्वारा लोक-मत प्रस्तुत किया और जाना जा सकता है। पश्चिम में प्रेस या समाचार-पत्र की स्वतन्त्रता सच्चे लोकतन्त्र के लिये आवश्यक मानी जाती है। तानाशाही

शासन के अतिरिक्त अन्य राष्ट्रों में समाचार-पत्र को प्रर्याप्त स्वतन्त्रता है। उनमें शासन की सभ्य आलोचना सहन की जाती है।

समाचार-पत्र आधुनिक युग के सभ्य जगत की आवश्यक वस्तु है। इसके द्वारा ससार मे देशकाल का अन्तर दूर किया जा सकता है। हम किसी भी देश और किसी भी समय की घटनाओं को समाचार-पत्र द्वारा जान सकते हैं। नित्य प्रति समाचार-पत्र का अनुशीलन करने वाले व्यक्ति विश्व की सभी हलचलों से भली प्रकार परिचित रहते हैं। उसका संसार से सम्बन्ध बना रहता है। कहीं भी होने वाली क्रन्ति, शासन चक्र सम्बन्धी परिवर्तन, किसी देश के प्रबल आन्दोलन आदि सभी का ज्ञान रहता है।

समाचार-पत्र सरकार और प्रजा के मध्य मध्यस्थ का कार्य सम्पादित करता है। वह सरकार की रीति-नीति से जनता को परिचित रखता है। और उसके सम्बन्ध में जनता के विचार सरकार तक पहुंचाता है। वह एक प्रकार से आघोपित गजट है। सभी सूचनाँएं उसमें प्रकाशित होती रहती हैं। देश के कोने कोने में घटने वाली घटनाँएं, पर्वत-शिखरों के समाचार, बम्बई, कलकत्ता के व्यापार भाव, समाचार पत्रों से जाने जाते है। रविवार के दिन विशेषाँक निकलता है। उसमें समाचार, लेख, कविता, कहानी, चुटकुले, खेलों के विवरण प्रकाशित होते हैं।

इस प्रकार दो ढाई आने के समाचार पत्र से बहुत कुछ सामग्री मिल जाती है। रद्दी में बेचने पर भी कुछ पैसे मिल ही जाते है।

समाचार-पत्र का आरम्भ कब हुआ, इस सम्बन्ध में विवाद ही है। पर अधिकाँश विद्वानों का विचार है कि संसार का सबसे पहला समाचर-पत्र चीन मे 'पेकिंग गजट' के नाम से प्रकाशित हुआ था। यह भी कहते है कि आधुनिक समाचार-पत्र का सर्वप्रथम रूप रोम मे प्रकाशित हुआ था। उसे 'डेन्युआ कार्टा' कहते थे। एक कागज पर प्रतिदिन के समाचार लिखकर सार्वजनिक स्थानों पर चिपका दिये जाते थे। मुगल काल में भी बादशाह समाचारों का सग्रह कराया करते थे। दरबारो मे वाकयानवीस रहते थे, जो कि प्रान्तो से आये हुए समाचारों का सग्रह करते थे। उनमे कुछ आवश्यक समाचार बाद-

शाह को सुनाये जाते थे। कुछ सार्वजनिक स्थानों पर घोषित कर दिये जाते थे।

आधुनिक समाचार पत्र का विकास मुद्रण-यन्त्र के आविष्कार के साथ हुआ। इंगलैंड में प्रजातन्त्र का उदय होने पर समाचार का गौरव भी बढ़ा। जनता की स्वतन्त्रता के लिये प्रेस की स्वतन्त्रता भी आवश्यक मानी गई। आज तो समाचार पत्र प्रकाशित करना, कला का रूप धारण कर चुका है। उसके लिये संवाद-संग्रह करने के लिये भी विशेष कौशल की आवश्यकता है। जो व्यक्ति संवाद-संग्रह में अधिक चुस्ती, जागरूकता और चतुरता वरतता है, वही सफल रहता है। उसका पत्र भी अधिक सफलता प्राप्त करता है। संवाद-संग्रह के लिये संवाददाताओं को होटलों, क्लबों बाजारों, गलियों और सरकारी दफ्तरों में चक्कर लगाने पड़ते हैं। वातों वातों में समाचार जानने होते हैं। तब थोड़े शब्दों, शीर्षकों और वाक्यों द्वारा अपने कार्यालय को समाचार भेजने होते है। समाचार-संग्रह के लिये कुछ एजैन्सियाँ हैं, जो विदेशों से टेलीग्राम द्वारा समाचार भेजती है। टेलीप्रिंटर के प्रकाशन में तारों से प्राँत समाचार स्वयं मुद्रित होते रहते है। सहायक सम्पादकों का मण्डल उनको काट छाँट कर प्रकाशनीय वनाता है और उनके लिये अवश्यक शीर्पक जमाता है। समाचार पत्र का मुख्य अधिकारी प्रधान सम्पादक होता है। वह दिन भर समाचार देखता है कि कौनसा समाचार प्रकाशित होने से छूट गया है। महत्वपूर्ण घटनाओं को देखते हुए, यह सम्पादकीय लेख और टिप्पणियाँ देता है, जो कि समाचार पत्र में अति महत्वपूर्ण पाठ्य-सामग्री होती है। इसके पश्चात् मैनेजर विज्ञापन पादि के स्थान नियत करके छोटे और बारीक टाइप की सूचना भेजता है। तब सब हामग्री कम्पोजिग विभाग में जाती हैं। छापने के लिये एक नवीन 'रोटरी' मशीन निकली है जो कि घण्टे भर में २० हजार प्रतियाँ छापती, काटती और तह करती है। वाद में सवेरा होते ही हॉकर उन्हें लेकर नगर में बाँटने चल देते है।

आज समाचार पत्र एक व्यसन गया है। जिन्हें, इसको पढ़ने का शौक है वे इसे पढ़े बिना तृप्ति का अनुभव नहीं करते। यह प्रचार का साधन है।

लाखों रुपये के विज्ञापन इसमें प्रकाशित होते हैं। फासिस्ट राष्ट्रों में समाचार पत्रों को सर्वथा स्वतन्त्रता नहीं होती। वहाँ सरकार समाचार पत्रों को अपने प्रचार का साधन वनाए रखती है। हिटलर ने अपना एक स्वतन्त्र प्रचार-विभाग खोला था। मार्शल गोल्वयस जो कि उस प्रचार विभाग का अध्यक्ष था, कहा करता था "I wish to play on the press as on the harmonium." अर्थात मैं समाचार पत्र को हारमोनियम की भाँति अपना खिलौना बनाना चाहता हूँ। परन्तु प्रजातन्त्री राष्ट्रों में समाचार पत्र जनता की सम्पति होते हैं, सरकार की नहीं। वहाँ सरकार की कड़ी से कड़ी आलोचना पत्रों में प्रकाशित होती है और सही जाती है। भारत में भी समाचार पत्रों को पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त है। यहाँ भारतीय नेताओं और मन्त्रियों की तीखी आलोचना की जाती है।

भारत के समाचर पत्रों का इतिहास बहुत गौरवपूर्ण है। यहाँ के सभी राष्ट्रीय नेता पत्रकार रहे। गाँधी जी 'यंग इण्डिया' और 'हरिजन' नामक दो पत्र निकालते थे। श्री जवाहरलाल नेहरू ने भी 'इण्डियन ओपीनियन' नामक पत्र निकाला था। स्वर्गीय लोकमान्य तिलक ने 'महाराष्ट्र', और 'सरी' नामक दो पत्र निकाले थे। अभी भी भारत में 'टाइम्स आफ इण्डिया', 'हिन्दुस्तान टाइम्स' आदि पत्र चल रहे हैं, जिनका प्रकाशन वहुत है। हिन्दी में भी 'हिन्दुस्तान', 'नव भारत टाइम्स' आदि अच्छे पत्र हैं। भारत के पत्रों का स्तर अभी निम्न है। पत्र धनियों के हैं और इनके द्वारा वे अपने हितों का ही प्रचार करते है। साम्प्रदायिकता को भड़काने में भी इनका हाथ है, परन्तु इनका भविष्य उज्ज्वल है।

सदाचार ही जीवन है

हमारे हिन्दू शास्त्रों में लिखा है कि मानव योनि अत्यन्त दुर्लभ है। चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करने के पश्चात जीवात्मा को शुभ कर्मों के प्रताप से मनुष्य योनि में जन्म मिलता है। मानवयोनी, कर्मयोनि और भोगयोनि दोनों प्रकार की है। एक ओर जीवात्मा उन्नति करने के स्वभाविक नियम के

अनुसार इस योनि में पहुंच कर प्रयास एवं साधना करता है, इसके बल से अंतिम उन्नति मुक्ति को पा सकता है। दूसरी ओर पूर्वजन्म के शुभ और अशुभ कर्मों का फल भोगता है। इसी के परिणामस्वरूप वह धनी, निर्धन स्वस्थ एवं सदाँ रोगी, समृद्ध एवं चिरदरिद्र आदि-आदि भिन्न-भिन्न स्वरूपों में देखा जाता है। महर्षियों ने इस मानव योनि को चरम उन्नति का एक मात्र साधन मानते हुए उसके चार उद्देश्व या पुरुषार्थ माने हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। अर्थ और काम इस लोक से सुखों का उपभोग एवं विषयों के वास्तविक स्वरूप के ज्ञान के लिये बताये हैं। इस लोक में आकर इन्द्रियों के प्रवृति के कर्म से उनके विषयों का अनुभव करना काम कहलाता है। उसके लिये धन सबसे बड़ा साधन है। इसलिये अर्थ को भी पुरुषार्थ माना गया है। परन्तु इन दोनों से पहले धर्म को स्थान दिया है। इसका कारण यह है कि भारतीय दर्शन धर्म को ही सुख देने वाला हेतु स्वीकार करता है। उसके अनुसार अधर्म द्वारा प्राप्त सुख क्षणिक होता है और धर्म से अर्जित सुख स्थायी रहता है। स्थायी वही जिसका भविष्य भी उज्ज्वल हो, इसलिये स्थायी सुखदाता ने धर्म का पालन अनिवार्य माना है।

धर्म क्या है ? इस विषय में प्राचीन विद्वानों ने जो कुछ कहा है उसमें दो बातें मुख्य हैं। १—धर्म आत्मा को धारण करता है अथवा पतन से सम्भालता है। आत्मा का जो सहज स्वरूप है उसी में रोके रखता है। २—इससे उन्नति व कल्याण दोनों होते हैं। इस लोक में उन्नति व परलोक में भलाई, यह दोनों काम धर्म के होते हैं।

ऊपर लिखा है कि आत्मा का वास्तविक धर्म उन्नति करना है। यह तभी सम्भव है कि वह पतन की ओर न जाय, पतन की ओर ले जाने वाले व्यापारों की ओर उसका झुकाव न हो। जो आचरण आत्मा को नीचे न ले जाकर ऊँचा उठाये। वही धर्म है, इसके विपरीत कार्य अधर्म है। इस प्रकार धर्म पालन के लिये आवश्यक है, कि आत्मा का पतन करने वाले काम न करे। इस विषय को अपने जीवन में ढाल देना सदाचार कहलाता है। मनुष्य आन्तरिक प्रवृत्तियों से प्रेरित हो जो कुछ कार्य करता है जोकि उसके जीवन पर विशेष प्रभाव

डालने वाले है। वे ही उसके आचार या आचरण कहलाते हैं। जिस पर चला जाय, जिसके अनुसार व्यवहार किया जाय, इस अर्थ से ही आचार का तात्पर्य स्पष्ट हो जाता है। यह आत्मा को गिराने वाला हो तो दुराचार कहा जाता है, ऊँचा उठाने वाला हो तो सदाचार के नाम से पुकारा जाता है। इसी आचार के आधार पर धर्म की स्थिति निश्चित होती है, जो व्यवहार मनुष्य को मनुष्य ही बनाये रक्खे. इससे न गिरने दे वही धर्म है। अतः आचार और धर्म भिन्न-भिन्न नही है। सदाचारी को धर्मात्मा और दुराचारी को अधर्मी इसीलिये कहा जाता है। तभी महाभारत मे कहा है :—

"आचारप्रभावो धर्मः"

अर्थात् धर्म की उत्पत्ति आचार से होती है। उस आचार मे आत्मा को पतन के मार्ग पर न ले जाने वाला प्रत्येक कार्य गिना जा सकता है। शील, आत्म दमन, सत्य-भाषण, अहिंसा, दयालुता, क्षमाशीलता, परोपकारिता आदि आचरण आत्मा को ऊँचा उठाते है, अतः इनको सदाचार में गिना है और इन्हे धर्म का मुख्य तत्व माना है।

महाभारत में शील के सम्बन्ध में कथा भी है। राजा का शील नष्ट हो जाने पर यश, सत्य, धर्म, लक्ष्मी आदि सभी उसे छोड कर जाने लगे थे। इसी प्रकार सत्य भाषण से आत्मा को बल प्राप्त होता है। कामादि वृत्तियों के दमन से मन वश में हो जाता है जो कि आत्मा को विषयो के लिये उत्सुक नही कर पाता है। अहिंसा से मन की क्रूरता नष्ट होती है। सम्पूर्ण विश्व के प्रति ममता उत्पन्न हो जाती है। दयालुता के कारण आत्मा का सम्बन्ध व्यापक होने लगता है और धीरे-धीरे प्राणिमात्र के कल्याण की इच्छा मन में जाग उठती है। क्षमाभाव के कारण विरोधी पशु-वृत्ति की पराजय और नैतिक वृत्ति की उन्नति होती है। शत्रुता रखने वाले भी उसकी क्षमा की शीतल जल-धारा मे द्वेषाग्नि को शांत कर, प्रेमामृत की गंगा मे डुबकियाँ लगाने लगते हैं। इस प्रकार शान्त-हृदय होकर आत्मा उस भूमि पर पहुँच जाती है जहाँ से उस परम शक्ति का साक्षात्कार कठिन नही होता।

आचार या सदाचार मनुष्य का लक्षण है। आचारवान पुरुष ही समाज में

पूजित होता है। आचारहीन का साथ उसके अपने भी नहीं देते। उसका उद्धार कभी भी नहीं होता। क्योंकि कहा भी है :—

"आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः"

अर्थात् आचार-रहित व्यक्ति का उद्धार वेद भी नहीं कर सकते। भारत में इसी कारण सदा से आचार की प्रतिष्ठा है। धर्म-शास्त्रों में परिवर्तन हुए, आर्य धर्म के अनेक स्वरूप बदले, पश्चिम व यवनों के सामाजिक विचारों का प्रभाव भी फैला, परन्तु आचार के सम्बन्ध में समाज की मौलिक भावना सदैव यथावत् बनी रही।

भारत में ही नहीं, अन्य देशों में भी किसी न किसी रूप में आचार को महत्व दिया है। फिर भारत तो आध्यात्मिक है, वह उसको प्रधानता क्यों न दे? खेद है कि वर्तमान युग में कुशिक्षा के प्रभाव से भारत के युवक और युवतियाँ आचार को निरर्थक समझने लगे हैं। सदाचार विरोधी आचरणों को वह सभ्यता का अंग मान बैठे हैं। इसके कारण हमारे समाज की जो दुर्दशा हो रही है, वह अत्यन्त शोक का विषय है। क्या इस पतन की ओर जाते हुए वर्ग को सद्बुद्धि आयेगी? क्या वह वर्ग अपने विनाश को समय से पूर्व पहचान कर सन्मार्ग की ओर मुड़ेगा? क्या वह अपने इस लुटते आचरण-रत्न की रक्षा के लिए अभी भी सचेत होगा?

यदि मैं शिक्षा-मंत्री होता!

किसी राष्ट्र की उन्नति उसकी शिक्षा के आदर्श एवं स्वरूप पर निर्भर है। यदि देश में शिक्षा, विज्ञान और शिल्प की अधिक दी जाय तो कोरे इन्जीनियर और वैज्ञानिक मिलेंगे, आध्यात्मिक उन्नति की ओर किसी का ध्यान न जायगा। इस प्रकार मतैक्य कोरा यन्त्र बन जायगा जिसके पास हृदय ही नहीं होता। यदि केवल साहित्यिक शिक्षा ही दी जाये तो आजीविका के लिए नौकरी ढूँढ़ने वालों की ही भरमार रहेगी, क्योंकि व्यास और कालीदास के साहित्य से

उदरपूर्ति सम्भव नहीं है। यदि कोरी आध्यात्मिक शिक्षा दी जाए तो मानव केवल आदर्श लोक की खोज में रहेगा। हमारे देश की वर्तमान शिक्षा प्रणाली इसी प्रकार एकाँगी है। इस प्रकार देखा जाए तो वह कलम-घिस्सू कठ-पुतले बनाने वाली मशीन है। इसकी कृपा से केवल फैशनेवल, मक्खन की भाँति मुलायम वावू वर्ग मिलता है जो कि तनिक से कष्ट की आँच से पिघल उठता है। यह लार्ड मैकाले का आविष्कार है, जिससे पहले-पहल तो ब्रिटिश सरकार का शासन-चक्र चलाने के लिए कर्मचारियों की आवश्यकता पूर्ण होती थी किन्तु इसके पश्चात यह बेकारी लिस्ट बढ़ाने वाले रक्त-बीजों की जननी बन गई। भारत की स्वतन्त्रता के इन दस वर्षों में भी, इस क्षेत्र में नहीं के बराबर परिवर्तन हुआ है।

केवल दूसरे की आलोचना से कार्य सिद्ध नहीं होता। स्वयं भी कुछ करके दिखाना अनिवार्य होता है। किन्तु इसके लिए मुझे अवसर ही कहाँ मिला है। यदि मैं शिक्षा-मंत्री होता तो मेरे कार्य का स्वरूप निम्नलिखित होता :—

मैं सर्वप्रथम वर्तमान शिक्षा-प्रणाली को सस्ती और सरल करने का यत्न करता। शिक्षा-संस्थाओं के लिए मैं यह आदेश भेजता कि किसी भी प्रकार छात्रों का व्यय भार न बढ़ने दिया जाये। एक अन्तरिम योजना बनाकर पहले आरम्भिक शिक्षा, फिर माध्यमिक और इसके पश्चात हाई स्कूल तक की शिक्षा को निःशुल्क कर देता। किन्तु भारत की आय सहसा शिक्षा का इतना भार उठाने योग्य नहीं हो सकती। इस सत्य को रखते हुए मैं आरम्भिक से लेकर हाई स्कूल तक के पाठ्य-क्रम में शिल्प और कला का समावेश कराता, जिससे कि एक ओर छात्र जीविका से उपार्जन के योग्य कला-कौशल सीख सकें, दूसरी बात यह है कि स्कूलों में निर्मित वस्तुओं और कला-कृतियों के विक्रय के द्वारा जो आय होती उससे स्कूल की व्यवस्था चलती रहती। मैं पाठ्य-क्रम ऐसा नियत करवाता, जिससे कि आजकल की भाँति छात्र-छात्राएं गधे की भाँति पुस्तकों के बोझ से लदकर भीतर से भी कोरे ही न रहते, आज की भाँति असमय में ही शारीरिक काँति, स्वास्थ्य एवं नेत्रों की ज्योति से वंचित होते।

मैं प्रयत्न करता कि मेरे देश के विद्यार्थी जहाँ प्राचीन साहित्य का अध्ययन करें, वहाँ उनमें निर्मापिका शक्ति का भी अविर्भाव हो। इस लोक को समझने के साथ-साथ उनमें आत्म-स्वरूप के सम्बन्ध में जिज्ञासा हो। वे मानव और ईश्वर, कर्म और धर्म दोनों को समझने की चेष्ठा करें। अपने ही शरीर की पुष्टि के लिए न सोचकर दूसरों के शरीर की सुरक्षा का भी ध्यान रखें। स्वार्थ और परमार्थ दोनों का साथ-साथ चिन्तन करें। सत्य को वास्तविक स्थिति के साथ मिलाकर देखें।

नवीन शिक्षा के अन्तर्गत मैं केवल मस्तिष्कजीवी और श्रमजीवी के अन्तर को समाप्त करता, जिससे कि मनुष्य मिथ्या अहंकार के वशीभूत होकर अपने ही भाइयों से घृणा करने लगा है। मैं श्रम का महत्व बढ़ाता जिससे सभी लोग शारीरिक श्रम का आदर करें, श्रमजीवियों से घृणा न करें। इसके लिए मैं दोनों के वेतन की बड़ी विषमता को समाप्त कर देता। इसलिए आरम्भिक से लेकर हाई स्कूल तक श्रम को पाठ्यक्रम का अनिवार्य अंग कर देता। कोरी साहित्यिक शिक्षा कालेज की उच्च शिक्षा का अंग रहती, जिसका आनन्द कुछ विशेष प्रतिभाशाली व्यक्ति ही उठा सकते। वे ही लोग आगे चलकर अध्यापक बनते। आचार की पवित्रता और धार्मिक सहिष्णुता उत्पन्न के लिए धर्म शिक्षा आरम्भिक शिक्षा का आवश्यक अंग होती, जिससे कि कोरी नास्तिकता का प्रचार रुक जाता।

राष्ट्र के प्रति प्रेम और उसकी सुरक्षा के लिए तत्परता का भाव प्रत्येक व्यक्ति में रहना अनिवार्य है। इसलिए मैं हाई स्कूल से लेकर उच्च शिक्षा तक सैनिक शिक्षा को अनिवार्य कर देता, जिससे कि छात्र-छात्राओं में अनुशासन-प्रियता अवश्य बनी रहे। यह अवश्य है कि मैं विदेशी शिक्षा की देन सहशिक्षा प्रणाली को सर्वथा समाप्त कर देता क्योंकि यह शिक्षा-मन्दिरों में व्यभिचार को प्रोत्साहन देती है। इसकी उपयोगिता का राग अलापने वाले वर्ततमान कमियों की ओर आंख मूंदकर चलते हैं। मैं पाठ्य-क्रम के अन्तर्गत ही छात्रों में श्रम-सहिष्णुता, सेवा-भाव और सादगी उत्पन्न करने के लिए वर्ष में एक-दो बार समाज-सेवा के कैम्प लगाने की व्यवस्था अवश्य करता। इससे छात्र कोरे

सिनेमा के दीवाने और फैशन के पुजारी न रह जाते।

मै धीरे-धीरे इस परीक्षा प्रणाली को भी समाप्त करता, साहित्यक परीक्षा के स्थान पर चारित्रिक परीक्षा को स्थापित करता। चारित्रिक श्रेष्ठता के प्रमाण-पत्र ही मनुष्य की योग्यता के आधार होते है। साथ में व्यक्ति में उपलब्ध विशेप योग्यता के प्रमाण-पत्र देने की प्रथा चलाता। इससे आजकल की सी परीक्षार्थियों की भीड़ न रहती। शिक्षा के द्वारा युवकों में आत्मावलम्बन से प्रेम और नौकरी के प्रति घृणा उत्पन्न करता, जिससे लोग हाथ से काम करें। इससे बेकारी का भी अन्त हो जाता।

मैं शिक्षा नीति की प्रगति और सामयिकता के लिए समय-समय पर शिक्षा-विशेपज्ञो से परामर्श लेता रहता। मुझे विश्वास है कि इस नीति से भारतीय समाज का सर्वांगीण विकास होता और आज की सी हानि न होती।

परहित सरिस धर्म नहीं भाई

समय की अविराम गति के साथ जल, थल तथा आकाश के सभी प्राणी जन्म लेते. विकसित होते तथा नष्ट होते देखे जाते है। प्रत्येक जीव मे प्राकृति रूप से अपने अस्तित्व को बनाये रखने की प्रबल आकांक्षा पाई जाती है, जिसे वह अपनी सन्तति मे साकार होते पाता है। अतः जहाँ जीव मिट रहा हे, वहाँ उसकी जाति निरन्तर चल रही है। मनुष्य अन्य जीवों की भाँति अपने अस्तित्व को बनाये रखने तक सीमित और सन्तुष्ट नहीं है वरन् विवेकशील होने के नाते उसका जीवन ध्येय भावुकता को उन्नतिशील बनाना है। मानवता के पवित्र और विशाल मन्दिर में मनुष्य एक माना हुआ पुजारी है, जिसका कर्तव्य त्याग, प्रेम, परोपकार के द्वारा उसकी सेवा करना है।

भूत और भविष्य के मध्य स्थित व्यक्ति बीती हुई मानवता का उत्तराधिकारी है और आने वाले मानव-समाज के लिए नव मानवता का निर्माता है। जन्म, पालन-पोपण, शिक्षा तथा अन्य सुविधाएँ उसमें समाज के अधिकारों के रूप पाई जाती है, उन्हें उसे कर्तव्यों के रूप में चुकाना है। मानवता की

सेवा द्वारा जहाँ मनुष्य अपने कर्तव्यों का पालन करता है वहाँ उनसे स्वयं सुख और आनन्द भी प्राप्त करता है, क्योंकि व्यक्तिगत रूप से जहाँ वह कुछ समाज को देता है उससे अधिक वह सामूहिक रूप में ग्रहण कर लेता है ! इसलिये मनुष्य का कल्याण अपना जीवन मानवता को अर्पण करने में है। जिस प्रकार बीज मिट्टी में मिलकर स्वयं मिटकर एक नये सुन्दर और विशाल वृक्ष को जन्म देता है, उसी प्रकार मानवता का विकास भी मनुष्य की त्याग-भावना पर निर्भर है।

जन्म से मनुष्य अपने को निर्जन न पाकर कुटुम्ब, वर्ण, ग्राम, प्रान्त, राष्ट्र और मानव-समाज के क्रमशः आवृत्तों से अपने को आवृत पाता है जो उसके जीवन को सम्भव ही नहीं करते वरन् विकसित भी करते हैं। प्रत्येक घेरे का अपना निज का स्थान है और महत्व है, पर मानवता का घेरा सबको ढके हुए है। इसलिए मनुष्य का परमहित मनुष्य की सेवा करने में है। भारतीय संस्कृति में इस सिद्धांत को 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का रूप दे दिया था। इस सिद्धांत को जीवन में ढालने के लिए मनुष्य केवल अपने स्वार्थ तक ही सीमित नहीं रहा वरन् अपने विशाल हृदय का परिचय परोपकार के द्वारा देता है। परोपकारी शरीर फिर अपना नहीं रहता, वह उसे किसी भी क्षण दूसरों की रक्षा के लिए अर्पित कर सकता है। परोपकार की यह भावना प्रकृति का नियम दीख पड़ती है। मिट्टी, पशु, वृक्ष, सरोवर, हवा, धूप आदि सभी दूसरों का उपकार किसी-न-किसी रूप में करते देखे जाते हैं।

प्रकृति के अन्य जीव जब मनुष्य के हित के साधन बनकर मानवता का कल्याण करते है तब मनुष्य यदि विवेकशील होते हुए भी मनुष्य के लिए प्राण न दे सके, तो उसका जन्म समाज के लिए भार है और मानवता के लिए कलंक है।

मानवता का कल्याण चाहने वाले मनुष्य के लिए यह आवश्यक है कि वह स्वयं-सेवक बने। स्वयं-सेवक बनने के लिए मनुष्य को धन, कानून संस्थाओं और विधानों की आवश्यकता नहीं है। मानवता की करुण पुकार हृदय तक पहुँचती है और सच्चा मनुष्य उस पुकार को सुनकर अपना स्वार्थ त्याग कर

दूसरों के दुःख को दूर करने के लिए दौड़ता है। वह जानता है कि मानवता में ईश्वर है उसकी सच्ची पूजा है। अतः उसे दीन दुखियों की सेवा करनी है। मानवता की यह पुकार प्रत्येक स्थान पर एक समान ही हुआ करती है जिसमें जाति और रग का कोई प्रश्न नहीं उठता। दुःख का अनुभव प्रत्येक मनुष्य को एक-सा होता है, इससे मानवता एक है और उसकी पुकार का उत्तर देना मनुष्य का परम कर्तव्य है। आर्थिक और राजनीतिक साधन निस्सन्देह मनुष्यों के कष्टों को दूर करते हैं, पर उनके प्राप्त होने में समय लगता है और हो सकता है कि जिस समय तक वे प्राप्त हो सकें उस समय तक उनकी उपयोगिता भी जाती रहे, फिर ऐसे संकटकाल में एक सहारा है और वह है मनुष्य की स्वयं सेवा। अन्धे, लंगड़े, मूक आदि समाज में दया के पात्र हैं। किसी दुःखी मनुष्य की पुकार सुनकर कोई धनी यह सोचता है कि मैं धन देकर तथा राजनीतिज्ञ या लेखक यह सोचकर कि मैं नियम बनाकर समाज का कल्याण करूँगा, उसके पास न जाकर स्वयं सेवा से मुख मोड़ता है तो उसकी मानवता की सेवा दो कौड़ी की है। स्वयं सेवक होना प्रत्येक मनुष्य का प्रथम कर्तव्य है।

प्रेम इस सिद्धान्त का जन्मदाता है। प्रेम के आधार पर ही समाज की सारी संस्थाएं संचालित-परिचारित होती हैं और इसके अभाव से असफल हो जाती है। प्रेम और त्याग की भावना जब मनुष्य को सत्कार्य करने के लिये प्रेरित करती है। उसी समय वह व्यक्ति समाज का प्रियपात्र बन जाता है। वह दूसरों के सुख में सुख और दुख में सहानुभूति प्रकट करता है। त्याग की यह भावना मनुष्य की आत्मा को शान्ति प्रदान करती है, पर इसके साथ ही समाज का कल्याण भी होता है।

मानवता के लिये प्राँण देने वाले व्यक्ति को विश्व आदर देता है। युग बीत जाते हैं परन्तु उसकी स्मृति समाज में अमर रहती है। वृत्रासुर के वध के लिये दधीचि का प्राणदान कौन नहीं जातता? राजा शिवि और कर्ण अपनी इस त्याग भावना के बल पर ही आज हिन्दू संस्कृति को आलौकित कर रहे हैं। मर्यादा पुरुषोत्तम राम जटायु की त्याग-भावना देखकर स्वयं सराहना कर रो उठे थे—"जल भरि नैन कहहि रघुराई, तात कर्म निजते गति पाई।"

मानवता पर प्राँण देने वाला व्यक्ति समझता है कि आत्मा अमर है, उसका शरीर समाज की धरोहर है, जिसे आवश्यकता पड़ने पर किसी क्षण भी उसे मानव-हित के लिये अर्पित कर सकता है। मनुष्य मानवता के लिये प्राँण देकर अपना कर्तव्य पूर्ण करता है ।

मानवता के उपासक अपने सुख की चिन्ता नहीं करते। वे दूसरों के कष्टों को दूर करने के लिये स्वयं कष्ट सहन करते हैं। मानवता की यही पुकार तो बुद्ध को वृद्ध भिखारी और मृतक के दृश्यों में सुनाई पड़ी थी और इसी खोज में तो वन-वन घूमे और वर्षों तक कठोर तपस्या की। मानवता की इसी पुकार के साथ तो ईसा ने अपने प्राँण मनुष्य के अज्ञान को मिटाने के लिये दे दिये थे। समाज भी उन सन्तों को महान देखकर उनकी पूजा करता है और अपना आदर्श मान लेता है। सच्चा संत तो अपने प्राँण देकर भी अपने यश की चिन्ता नहीं करता और अपने मार्ग पर दृढ़ रहता है। समाज में सत्य की खोज करने के लिये ही तो सुकरात ने हँसकर विषपान किया था। इस प्रकार मानवता पर प्राँण देने वाला व्यक्ति संत है और उसका जीवन साधक है, उसका हृदय दूसरों के दुःख को देखकर द्रवित हो उठता है। संत के इसी गुण की महिमा पर तो तुलसी रीझ उठते हैं—

'संत हृदय नवनीत समाना। कहा कविन्ह पर कहै न जाना ॥
निज परिताप द्रवहिं नवनीता। पर दुःख द्रवहि सन्त सपुनीता ॥

आधुनिक काल में भी ऐसे व्यक्तियों की कमी नहीं रही है, जिन्होंने अपने प्राँणों की चिन्ता न कर मानवता की सेवा की है। योरोप में टाल्स्टाय ने मानवता की एक नई लहर दौड़ा दी थी। महात्मा गाँधी ने मानवता की सेवा करना अपना जीवन सिद्धान्त मान लिया था। विश्व के किसी भाग में मानवता पर आने वाली आपत्ति से उनका हृदय भर आता था। तभी तो संसार उनको विश्व नागरिक मानता था। मानवता के कल्याण के लिये ही तो उन्होंने प्रेम और अहिंसा का संदेश व्यवहार में अपनाया था और इसके सहारे विश्व में सुख और शान्ति स्थापित करने की कल्पना की थी। देश का विभाजन होने पर तथा अपने प्राँण देकर बापू ने मानवता की एकता को विश्व के समनेक्षक

दिया था। मानवता के लिए प्राँण न्यौछावर करने में मनुष्य को किसी प्रकार का संकोच नहीं करना चाहिये। चीन के एक प्रसिद्ध महात्मा मोंग्रोत्जे के बारे में मैन्सिपद ने कहा था, 'यदि उनके समस्त शरीर के पिसवाने से संसार का लाभ होता तो वे उसे सहर्ष पिसवा देते।''

इतिहास में अरुणोदय काल से ही व्यक्ति और समाज में संघर्ष होता चला आ रहा है। प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि समाज में उसका सम्मान हो, उसे सुख मिले। समाज ने भी प्रत्येक युग में कोई-न-कोई मापदण्ड बनाए रखा है जिससे व्यक्ति की महानता का पता चलता। किसी समय शक्ति की महत्ता थी और आज धन की महत्ता है। आधुनिक युग में वर्ग युद्ध और क्रान्तियाँ यह प्रकट करती हैं कि मनुष्य अभी धन को मनुष्य से अधिक महत्व दे रहा है जिसके लिये वह महायुद्धों को जन्म देकर भीषण मानव-संहार भी सहन कर लेता है। आज भी दो महायुद्धों से मनुष्य ने कोई शिक्षा ग्रहण नहीं की और वह अब भी तृतीय महायुद्ध की संभावना कर रहा है। अपनी जाति को नष्ट करने के लिये वह यन्त्रों की आज भी पूजा कर रहा है। यदि अणु-बम जैसे विध्वंसकारी यन्त्रों का 'मानवीकरण' न हुआ तो मानव स्वयं मानवता पर कुठारघात करेगा। अभी तक मनुष्य धर्म, सम्प्रदाय और राष्ट्रीयता का अंधा उपासक बन रहा है। पर अब वह समय आ गया है, जब उसे अपना अस्तित्व रखने के लिये मानवता की महानता को पहचानना होगा। मानवता के कल्याण में ही मनुष्य का कल्याण सम्भव है।

मनुष्य का मनुष्य के लिये प्राँण देना एक धर्म है जो एक विशेष सम्प्रदाय और राष्ट्र से ही सम्बन्धित न होकर सम्पूर्ण मानव-समाज से सम्बन्धित है। इसलिए तो तुलसी ने लिखा है—"परहित सरिस धर्म नहीं भाई…।" ज्यों-ज्यों मनुष्य में विवेक बढ़ता जाता है। त्यों-त्यों उसकी सामूहिक भावना भी विस्तृत होती जाती है। इसी प्रकार मानव का अस्तित्व कुटुम्ब में और कुटुम्ब का अस्तित्व ग्राम में और ग्राम का राष्ट्र में सहयोग और प्रेम के आधार पर विश्व में सुरक्षित रह सकता है। लोक-संगठन के निर्माण के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य मनुष्य के लिए प्राँण दे सके। ऐसा होने पर ही

राजनीतिक और आर्थिक समस्याओं का महत्व सांस्कृतिक समस्या के रूप में परिणित हो जायगा ।

प्रेम और अहिंसा

प्रेम और अहिसा मे महान शक्ति छिपी हुई है । संसार में जो कार्य बडी बड़ी सेनायें और चक्रवर्ती सम्राट अपनी शक्ति के द्वारा नहीं कर सके, वह काम प्रेम और अहिसा के शस्त्र से सरलतापूर्वक हो गए। इस शस्त्र की देन आधुनिक न होकर प्राचीनतम है । यह मानव की सभ्यता और शक्ति का प्रतीक और बर्बरता एवं पाशविकता का विरोधी है भारतवर्ष जैसे धर्मपरायण और मानवताप्रिय देश के इतिहास मे तो समय-समय पर अनेको महापुरुष प्रेम और अहिसा के आचरण का उपदेश देते रहे है । उन्होने मानव को विश्वास ही नहीं दिलाया, परन्तु प्रत्यक्ष रूप से यह सिद्ध करके दिखाया हैं कि संसार में प्रेम और अहिसा अपार शक्ति के स्त्रोत हैं, भंडार है । इससे मनुष्य को इस लोक में तो सुख, शाँति और सम्मान प्राप्त होता है, वह अपने परलोक को भी सुधारता है। इसका आचरण करना एक महान पुण्य है, ईश्वर की भक्ति है और यह आत्मतृप्ति का महान साधन है ।

आज हम महात्मा बुद्ध की भगवान के रूप में पूजा करते है, उनको एक महापुरुष मानते है, क्यों ? इसका प्रमुख कारण यही है कि उन्होने मानव जाति को प्रेम और अहिसा का उपदेश दिया। उन्होने अपने जीवन मे भी इस महान व्रत का पालन किया। उन्होने इसकी महान शक्ति से बड़े-बड़े सम्राटो को परास्त कर उन्हें बौद्ध-धर्म का अनुयायी बनने के लिये विवश किया । महर्षि बाल्मीकि के हृदय मे क्रौंच पक्षी को शर से आहत हुआ देख जो प्रेम और अहिसा के भाव उत्पन्न हुए उनके परिणामस्वरूप उन्होने रामायण जैसे महान ग्रंथ की रचना कर डाली ।

योरप मे ईसा मसीह प्रेम और अहिसा के अवतार हुए हे। उन्होने योरपवासियो को इसकी शिक्षा दी । उन्होने अपने शिष्यो को 'जैसे को तैसा'

बनने की शिक्षा नहीं दी, अपितु उनको बताया कि यदि कोई तुम्हारे बायें कपोल पर थप्पड़ मारता है, तो तुम अपना सीधा कपोल भी उसके सामने कर दो। उनके कहने का तात्पर्य यह है कि अपने प्रतिद्वन्द्वी को हिंसा से नहीं बल्कि अहिंसा और प्रेम से जीतो। वह तुमसे घृणा करता है, तुम्हारे साथ दुर्व्यवहार करता है, तुमको तंग करता है, तो तुम उससे प्रेम करो, उसके साथ अच्छा व्यवहार करो। एक न एक दिन वह विवश हो तुम्हारे सम्मुख झुक जाएगा।

सम्राट् अशोक महान् ने प्रजा पर शासन के दण्ड से राज्य नहीं किया, बल्कि प्रेम और अहिंसा से। अपनी शासनकाल के शुरू में उन्होंने कलिंग से युद्ध किया. परन्तु युद्ध में होने वाली पाशविकता, बर्बरता, निर्दयता और हिंसा को देख उन्हें युद्ध से घृणा हो गई और उन्होंने यह व्रत ले लिया कि अब वे कभी भी युद्ध नहीं करेंगे और समस्त प्रजा पर प्रेम और अहिंसा के शस्त्र से राज्य करेंगे और फिर ऐसा ही किया। यही कारण है कि हम देखते हैं कि अशोक कितना सफल और महान शासक हुआ। उसका राज्य प्रजा के शरीर पर न होकर उनके हृदयों पर था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात भारत सरकार ने भी अपने राज्य के प्रतीक ध्वज, सिक्कों आदि पर अशोक चक्र को अपनाया है, क्योंकि यह चक्र उस समय से प्रेम और अहिंसा का प्रतीक चला आ रहा है।

महाकवि तुलसीदास जी ने 'रामचरित मानस' में राम-राज्य का आधार व स्तम्भ प्रेम और अहिंसा को ही बताया है। वियोगी हरि जी ने अपने लेख "दीनों पर प्रेम" में, प्रेम की महिमा बताते हुए लिखा है कि दीनों पर प्रेम करना भगवान से प्रेम करना है। उनका अटल विश्वास है कि दीनों पर प्रेम करने से मनुष्य दीनबन्धु सम हो जाता है। कितनी महान भावना है, प्रेम के सम्बन्ध में।

आधुनिक युग में महात्मा महात्मा गाँधी प्रेम और अहिंसा के अवतार हुए हैं। जिस समय गाँधी जी अवतीर्ण हुए उस समय भारतवर्ष पर संसार की सबसे बड़ी शक्ति ग्रेट ब्रिटेन का शासन था। उनका शासन भारतवर्ष पर ही नहीं

अपितु विश्व के आधे से अधिक भाग पर था। हम दास ही नहीं थे, बल्कि दासता के असहनीय अभिशाप अत्याचर व शोषण की चक्की में बुरी तरह पिस रहे थे। उस समय तो हमसे पशुओं की दशा कहीं अच्छी थी। ऐसे समय में अंग्रेजों के लिए पूर्व में महात्मा गाँधी रूपी एक पुच्छल नक्षत्र उदय हुआ जिसकी चमक में उनके शासन की नींव हिल उठी। इस महापुरुष ने सर्वप्रथम अफ्रीका में रहने वाले भारत-वासियों को संगठित कर सत्य, प्रेम और अहिंसा के शस्त्र से अपने अधिकारों के लिए लड़ना सिखाया। इसके पश्चात उन्होंने भारतवर्ष में आकर स्वतन्त्रता संग्राम आरम्भ कर दिया। इस संग्राम के लिए उनको पंडित जवाहरलाल नेहरू, सरदार वल्लभ भाई पटेल जैसे महान सेनानी भी मिल गए। संसार यह देखकर चकित ही नहीं था बल्कि उपहास करता था कि इतनी महान शक्ति की जड़ों को यह एक दुबला पतला व्यक्ति प्रेम, सत्य और अहिंसा से कैसे हिला सकेगा। परन्तु वह महापुरुष किसी की चिन्ता न करते हुए अपने अटल सिद्धाँत पर अडिग हो धीरे-धीरे अग्रसर होता रहा। शीघ्र ही उनको भारतीय जनता का पूर्ण सहयोग प्राप्त हो गया। अनेकों आन्दोलनों में उन्होंने पूर्ण रूप से प्रेम और अहिंसा के व्रत का पालन किया। असहयोग आन्दोलन में चोराचोरी में हुई हिंसा से इस महापुरुष का हृदय इतना दुःखी हुआ कि उन्होंने आन्दोलन को ही बन्द कर दिया। अंत में विश्व की महान शक्ति को अपने बमों और तोपों की शक्ति का सहारा छोड़, सत्य, प्रेम और अहिंसा के सामने झुकना पड़ा। अन्त में १५ अगस्त सन् १९४७ ई० को महात्मा गांधी जी ने भारत को दासता की शृंखलाओं से मुक्त करवा कर संसार के सामने सत्य, प्रेम और अहिंसा की शक्ति को महान शक्ति का भंडार स्वीकार किया।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात हमारे देश में अचानक ही चारों ओर कैसी बर्बरता, पाशविकता और हिंसा फैल गई। हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के प्राँणघातक शत्रु बन गए। चारों ओर खून की नदियाँ बह निकलीं। क्या कोई कल्पना कर सकता है कि कितना दुःख हुआ होगा उस महान आत्मा को इस हिंसा पर। अन्त में वृद्धावस्था में नोआखली में जाकर पैदल घूम-घूम कर मानव में धर्म के नाम पर जागृत राक्षसी भावना को दूर किया। दिल्ली में

इस प्रकार खून की नदियाँ बहते देख उनसे न रहा गया और आमरण अनशन लेकर इस मार काट को दूर किया। इस प्रकार इतनी बड़ी बबरता पर ही उनके प्रेम और अहिंसा की विजय हुई और अन्त में इसी के लिए वह दिव्य ज्योति बलिदान हो गई।

आज संसार को प्रेम और अहिंसा की आवश्यकता है। संसार के कोने-कोने में स्वार्थता, साम्राज्य की भावना परमाणु और हाइड्रोजन बमों और राकेटों की धूम मची हुई है। मानव मानव को निगल जाना चाहता है। किसी को भी अपनी शक्ति पर पूर्ण विश्वास नहीं है क्योंकि उनकी यह शक्ति राक्षसी है, हिंसा और घृणा से ओत प्रोत है। ऐसे समय में विश्व-शाँति का केवल एक ही मार्ग है और वह है प्रेम और अहिंसा।

भारतवर्ष का तो प्रेम और अहिंसा में पूर्ण विश्वास है ही; परन्तु अब तो अमेरिका जैसे महान देश भी इस पर विश्वास करने लगे हैं और आशा है कि निकट भविष्य में यदि मानव के अन्दर छिपी राक्षसी भावना बलवती नहीं हुई तो चारों ओर प्रेम ओर अहिंसा का शासन होगा। मानव मानव को मानव समझ कर उससे प्रेम करेगा और प्रेम के मार्ग में बाधक हिंसा को त्याग कर अहिंसा पर चलेगा।

भूदान-यज्ञ

भूदान-यज्ञ एक बिना अग्नि और घृत का यज्ञ है। इसके प्रस्तोता और आचार्य विनोबा भावे हैं। और यजमान भूदानकर्ता जमींदार हैं। स्वतन्त्र भारत यज्ञ वेदी है, यज्ञ-सामग्री भूमि है, अग्नि भूमिहीन किसान हैं, प्रचार के भाषण ही मंत्र-पाठ हैं, दरिद्र-नारायण ही इस यज्ञ का देवता है, जयप्रकाश नारायण आदि अन्य साथी इस यज्ञ के ऋत्विज हैं, दरिद्रता इसका पशु है। सुख-शांति ही इस यज्ञ का फल है। यह एक अपूर्व यज्ञ है। इसकी प्रतिष्ठा सम्पति-दान और श्रमदान से होती है। इसे आरम्भ हुए अनेक वर्ष हो चुके हैं और अभी चल रहा है। एक करोड़ एकड़ भूमि की आहुति इसका पूर्ण लक्ष्य है। प्राचीन

ग्रन्थों में द्रव्य यज्ञ, ज्ञान यज्ञ, स्वाध्याय यज्ञ और आत्म यज्ञ का उल्लेख मिलता है, किन्तु भूदान यज्ञ अपूर्व ही है। प्राचीन काल में भी राजा लोग भूमिदान करते थे किंतु वह पुरोहितों को दिया जाता था। यह भूमिदान इस उद्देश्य से है कि भूमिहीन किसानों और मजदूरों को अपनी आजीविका के योग्य भूमि मिल जाये।

भूदान आन्दोलन के आरम्भ की कहानी भी महत्वपूर्ण है। भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात हैदराबाद में निजामशाही का अन्त हो गया और वहाँ उत्तरदायी सरकार स्थापित हो गई। इसी समय वहाँ के तैलंगाना प्रांत के किसानों ने विद्रोह कर दिया। कम्युनिस्ट उन्हें शस्त्र देकर उकसा रहे थे। उनका विद्रोह था जमींदारी-प्रथा के विरुद्ध जिसमें, कि रात-दिन परिश्रम करने के पश्चात भी भूमि पर किसान का स्वामित्व नहीं होता! उसकी उपज का अधिकारी जमींदार ही बना रहता है। इस व्यवस्था के विरुद्ध किसानों में पहले से ही असन्तोष है किन्तु वह इस प्रकार विद्रोह के रूप में उभर नहीं पाता था। कम्युनिस्टों ने उन्हें सशस्त्र विद्रोह के लिए प्रस्तुत किया। हैदराबाद की सरकार ने उनके विद्रोह का कारण जानने की चेष्टा न करके स्पेशल पुलिस और सेना की सहायता से उस विद्रोह का दमन करने का प्रयत्न किया। सरकार के लाखों रुपये इस कार्य में व्यय हुये। पर सफलता न मिली। तभी आचार्य विनोबा भावे ने घोषणा की कि किसानों का यह सत्याग्रह भूमि के लिये है और भूमि के प्राप्त होने से ही शांत होगा। उन्होंने वृद्ध शरीर से ही तैलंगाना के लिये पैदल प्रस्थान किया। वहाँ जाकर उन्होंने भाषण दिया कि भूमि का वास्तविक स्वामी उसको जोतने वाला है। यदि वह भूँखा रहता है तो यह लज्जा की बात है। मैं भूमिपतियों से स्वेच्छा से किसानों के लिये भूमि देने की याचना करता हूँ। उनकी इस अपील के अनुसार बहुत से जमींदारों ने स्वेच्छा से भूमि दी और कुछ ही दिनों में कई हजार एकड़ भूमि मिल गई जो कि किसानों में बाँट दी गई। तुरन्त विद्रोह शांत हो गया।

भारत-सरकार जमींदारी प्रथा का अन्त जमींदारों को मुआवजा देकर करना चाहती थी। उत्तर प्रदेश में इसका परीक्षण किया गया। पर इस प्रकार

क्षति-पूर्ण देने के लिए अरबों रुपये की आवश्यकता थी। प्रश्न यह था कि यह रुपया कहाँ से आए। भूदान आन्दोलन इसका सहज उपाय था। इससे बिना किसी क्षति-पूर्ति के किसानों को भूमि मिल सकती थी। स्वेच्छा से दान देने की अपील से जमींदार स्वयं दान देने को उद्यत हो जाते है। जिनके पास वहुत अधिक भूमि नही है। वे भी यथाशक्ति कुछ भूमि देते है और 'चार जने की लकड़ी एक जने का वोझ' की कहावत है के अनुसार थोड़ी करके पर्याप्त भूमि एकत्रित हो जाती है जो कि उचित अनुपात से भूमिहीन किसानों में वॉट दी जाती है। यह मार्ग इतना उचित प्रतीत हुआ कि समाजवादी नेता श्री जयप्रकाश नारायण, महाराष्ट्र के प्रसिद्ध कॉंग्रेसी नेता शंकरराव देव आदि भी इस आन्दोलन में सहयोग दे रहे है, इनका दल विभिन्न प्रान्तों में पैदल यात्रा करता है। वहॉ भूमि के एक निश्चित लक्ष्य का निर्देश करता है। भूमि-पति इच्छानुसार भूमि देते है जो कि वाद में भूमिहीनों में वाँट दी जाती है। भूमि के साथ-साथ कुछ से संपत्ति-दान भी लिया जाता है जो कि किसानों को बीज आदि की सहायता के लिये दिया जाता है। कुछ लोग श्रमदान करके उनके लिये स्थान प्रस्तुत करते है। इस आंदोलन में अव तक ४० लाख एकड से अधिक भूमि एकत्रित हो चुकी है। विनोवा जी का लक्ष्य एक करोड़ एकड़ का है, जो कि वर्तमान सफलता को देखते हुए भविष्य में पूर्ण होता दीखता है। अब तक ये दस हजार मील से अधिक पैदल यात्रा कर चुके हैं। भारत सरकार और कॉग्रेस भी इसमें सहयोग दे रही है।

कुछ लोगो को इस आंदोलन की सफलता में सन्देह है। वे कहते है कि जो लोग भूमि-दान दे रहे है, वास्तव में वह भूमि वंजर और उपज के अयोग्य होती है। दूसरी वात यह है कि इतनी अधिक भूमि दान में मिलनी कठिन है। परन्तु यह उनका कथन मात्र है। खाली पड़ी जमीन को किसान अपने परिश्रम से उपजाऊ वना लेगा। इसमें सरकार वैज्ञानिक साधनों से सहायता करेगी। दूसरी वात यह है कि जितनी सफलता मिल चुकी है, इतनी भी कम नहीं है। इससे जहाँ भूमिहीन किसानों में आशा का संचार हुआ है। वे दूसरों को अपने लिये निःस्वार्थ श्रम करते देखकर स्वयं भी परिश्रम करते हैं वहाँ दूसरे लोगों

को भी भूमिदान की प्रेरणा मिल रही है। इससे महात्मा जी का स्वप्न पूरा होने की संभावना स्पष्ट हो जाती है।

वास्तव में भूदान यज्ञ एक रक्तहीन क्रान्ति है, विश्व में किसान-समस्या को समझाने का अद्वितीय उदाहरण है। इससे जमींदारी प्रथा का जब्ती और क्षति-पूर्ति के सिरदर्द के बिना ही अन्त सरल हो गया है। विनोबा जी गाँधी जी के पक्के शिष्य हैं। उन्होंने गाँधी जी के सिद्धान्त को सत्य रूप में प्रयुक्त कर दिखाया है। अहिंसा का ऐसा चमत्कार गाँधी जी के पश्चात वे ही दिखा सके हैं। इससे कम्युनिस्टों को अपनी हिंसा-नीति पर अवश्य पुनर्विचार करना पड़ेगा। इस योजना के पूर्ण होने पर गाँधी जी का एक महान स्वप्न पूर्ण हो जायगा और नवीन भारत के इतिहास में विनोबा जी का नाम स्वर्णाक्षिरों में अंकित रहेगा।

साहित्य और समाज

समाज विचारों वाले तथा समान परम्पराओं वाले मनुष्य-समुदाय को कहा जाता है। भले ही इस प्रकार के लोग अलग-अलग स्थानों में रहते हों, फिर भी वे एक ही समाज के अंग कहे जाते हैं। विस्तृत अर्थ में समस्त मानव जाति को भी मनुष्य-समाज कहा जा सकता है, क्योंकि संसार के सभी भागों में मनुष्यों की कुछ-न-कुछ परम्पराएँ तथा विचार तो समान हैं ही। परन्तु साधारणतया विचारों तथा परम्पराओं के अपेक्षाकृत सुदृढ़तर सूत्र में बँधे हुए मनुष्य-समुदायों को ही समाज कहा जाता है। इस प्रकार हिन्दुओं का एक अलग समाज है, यूरोप के ईसाइयों का अलग समाज है और मुसलमानों का एक अलग। इन सभी समाजों की परम्पराएँ एक-दूसरे से काफी भिन्न हैं, किन्तु उन समाजों के सदस्य-व्यक्ति उन परम्पराओं और विचारों को समाज रूप से स्वीकार करते हैं। कई बार एक देश के निवासियों का अपना अलग ही समाज बन जाता है और उसकी अपनी ही परम्पराएँ होती हैं, जिनके कारण उसे अन्य समाजों से पृथक् समझा जाता है।

साहित्य किसी भी समाज के लिखित या मौलिक रूप में संगृहीत अनुभवों का नाम है। समय-समय पर प्रत्येक समाज में प्रतिभाशाली कलाकार जन्म लेते हैं। वे अपने अनुभवों को, कविताओं, कहानियों या उपदेश ग्रन्थों के रूप में प्रस्तुत करते हैं। यदि ये अनुभव उस समाज की परिस्थितियों तथा मनोदशा के अनुकूल होते हैं, तो इनका प्रचार शीघ्र ही उस सारे समाज में हो जाता है। कलाकार मर जाता है, किन्तु उसकी रचनाएँ उसके बाद भी जीवित रहती हैं और न जाने वे कब तक आने वाली पीढ़ियों को प्रभावित करती हैं। इसी प्रकार की रचनाओं का संग्रह किसी भी समाज या जाति का साहित्य कहलाता है।

इतिहास साक्षी है कि जब-जब किसी समाज या जाति ने उन्नति की, उसके तुरन्त पहले या तुरन्त बाद उस जाति का साहित्य भी अत्यन्त उन्नति हो गया। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि समाज की उन्नति और साहित्य के उत्कर्ष में परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। समाज उन्नति होता है, तो साहित्य भी उत्कृष्ट हो जाता है, और साहित्य उत्कृष्ट होता है, तो समाज भी उन्नति हो जाता है। सिकन्दर के समय यूनानियों ने जो प्रसिद्ध विजयें प्राप्ति कीं, उनका श्रेय बहुत कुछ सुकरात, प्लेटो और अरस्तू के उच्च कोटि के साहित्य को है। भारत में मौर्य-काल और गुप्तकाल की अभिवृद्धि का श्रेय भी उस काल के अनुपम साहित्य को है। मौर्यकाल के पूर्व भारत में राजनीतिक-साहित्य प्रभूत मात्रा में विद्यमान था और गुप्तकाल तो राजनीतिक और साहित्यिक दोनों ही दृष्टियों से भारतीय इतिहास का स्वर्णकाल गिना जाता है। इसी प्रकार इंग्लैंड के इतिहास में भी रानी एलिजाबेथ का शासनकाल जितना राजनीतिक दृष्टि से समृद्ध था, उतना ही साहित्यिक दृष्टि से भी समृद्ध था।

यही बात अपने विलोम रूप में भी सत्य है। अर्थात् जब समाज का पतन होता है, तो उसके तुरन्त पहले या तुरन्त बाद साहित्य का भी पतन होने लगता है, और यह कहा जा सकता है कि साहित्य और समाज इन दोनों की अवनति में परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। उदाहरण के लिए हिन्दी साहित्य के इतिहास में 'रीति-काल' के भाग को लीजिए। इस काल में हिन्दू समाज जैसा दुर्दशा

ग्रस्त था, वैसा ही उस काल का साहित्य भी दृष्टिगोचर होता है। हिन्दू राजा परास्त होकर शक्तिहीन हो गये थे। महत्वाकांक्षा उनके हृदय में उत्साह का संचार नहीं करती थी। उसी प्रकार तत्कालीन साहित्य भी नग्न शृंगार के अंक में डूब रहा था और वह जाति में नवजीवन का संचार करने में असमर्थ था।

अब प्रश्न यह है कि समाज की उन्नति या अवनति से साहित्य का विकास और ह्रास होता है, या साहित्य के विकास और ह्रास से समाज की उन्नति या अवनति होती है? इसके लिए हमें साहित्य-सर्जन की प्रक्रिया और समाज पर होने वाले उसके प्रभाव की प्रक्रिया को समझना चाहिए। कोई भी श्रेष्ठ कलाकार जब अपनी किसी साहित्यिक रचना का निर्माण करता है, तो वह अपने चारों ओर की परिस्थिति और सामाजिक दशाओं से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। वह द्रष्टा होता है, अर्थात् जो कुछ वह देखता है उसे अपनी रचनाओं में अंकित करता है। इस प्रकार हम हिन्दी-साहित्य के 'वीर-गाथा काल' की रचनाओं में उस समय होने वाले युद्धों, पारस्परिक कलह, ईर्ष्या और द्वेष की सजीव झाँकी पाते हैं। इसी प्रकार कबीर की रचनाओं में हमें उस काल में फैले हुये पाखंडों, वाह्याडंबरों और मिथ्या विधि-विधानों का जीता-जागता चित्र दिखाई पड़ता है। इससे स्पष्ट है कि साहित्यकार जो कुछ लिखता है, उस पर तत्कालीन समाज की छाया अवश्य रहती है। इसलिए वह स्वाभाविक है कि यदि समाज आर्थिक और नैतिक दृष्टि से उन्नत होगा, तो उस काल के साहित्य में उदारता और परोपकार की भावनाएँ प्रभूत मात्रा में पाई जाएँगी। इसी प्रकार यदि किसी समाज में वीरता और आत्म-बलिदान की परम्पराएँ विद्यमान होंगी, तो उस काल के प्रतिभाशाली साहित्यकार अपनी रचनाओं में वीरत्व और बलिदान के आकर्षक चित्र प्रस्तुत करेंगे। इस अंश तक समाज साहित्य को प्रेरणा देता है और साहित्य का उत्कर्ष सामाजिक उन्नति पर निर्भर है। किन्तु साहित्यकार का यह कर्त्तव्य नहीं है कि समाज को यथावत् रूप में अपनी रचनाओं में प्रस्तुत करे। यदि साहित्य-कार जीवन को जिस रूप में देखता है उसे उसी रूप में उपस्थित करता है, तो वह तो कैमरे के द्वारा फोटो खींचने की भाँति हो गया। उसमें तो यांत्रि-

कता ही प्रधानता रहती है। इस विषय में राष्ट्रीय कवि मैथिलीशरण गुप्त ने कहा है कि—

"हो रहा है जो जहाँ वह हो रहा,
यदि वही हमने कहा तो क्या कहा?
किन्तु होना चाहिए कब, क्या, कहाँ,
व्यक्त करती है कला ही वह यहाँ।।"

मनुष्य अनुकरणप्रिय है। जो वस्तु या विचार उसे अच्छा लगता है, उसका वह अनुकरण करना चाहता है। इसलिए साहित्यकार अपनी रचनाओं में जिन बातों का उल्लेख कर जाते हैं, आने वाली सन्ततियाँ उन्हीं का अनुकरण करके अपना जीवन ढालती हैं। यही कारण है कि जिस समाज या जाति के साहित्य में वीरत्व की कहानियाँ अधिक प्रचलित होती हैं, उस जाति के लोग अधिक वीर होते हैं। हमारे भारतीय साहित्य में आत्मा को अजर-अमर माना गया है। शरीर का स्थान केवल कपड़े जैसा बताया गया है। इसका परिणाम यह हुआ कि अवसर पड़ने पर हमारे देश के वीर योद्धा क्षण-भर का भी विचार किये बिना आदर्श के लिए जीवन का बलिदान करने को उद्यत रहे हैं। राजपूतों के जौहर, जिनमें हजारों स्त्रियाँ एक साथ सती हो जाती थीं और वीर सैनिक केसरिया वस्त्र पहनकर मरते दम तक लड़ने के लिए दुर्ग से बाहर निकल पड़तीं थीं, इस बात के ज्वलन्त उदाहरण हैं। जर्मनी और जापान का साहित्य भी वीरता और देशभक्ति की अनगिनत गाथाओं से भरा हुआ है। उसका फल यह होता है कि ये भावनाएँ वहाँ के बालकों में बचपन से घर कर जाती हैं और अवसर पड़ने पर वहाँ के सैनिक आश्चर्यजनक वीरता प्रदर्शित कर पाते हैं। जिन जातियों के साहित्य में वीरत्व की ऐसी गाथाएँ विद्यमान नहीं हैं, उनके बालकों में ऐसी वीरता के भाव मुश्किल से ही जाग सकते हैं। साहित्य का प्रभाव समाज के व्यक्तियों पर बचपन से ही पड़ना शुरू हो जाता है और आयु बढ़ाने के साथ-साथ यह प्रभाव बढ़ता ही जाता है। इस प्रकार साहित्य से समाज को उन्नति होने की प्रेरणा प्राप्त होती है।

हम पहले कह आये हैं कि साहित्यकार द्रष्टा होता है। यह ठीक है। परंतु

वह केवल द्रष्टा ही नहीं होता। वह क्रान्तदर्शी भी होता है। अपनी कल्पना की विलक्षण शक्ति से वह अतीत, वर्तमान और भविष्यत् तीनों को ही देख पाता है। वह साथ ही स्रष्टा भी होता है। वह अपनी कल्पना से एक ऐसे नये और उत्कृष्ट जगत् का चित्रण करता है, जिसका पहले से कहीं अस्तित्व नहीं होता। वह ऐसे चरित्रों की सृष्टि करता है, जैसे उसने कहीं देखे-सुने नहीं होते। उसकी ये कल्पनाएँ यदि समाज को रुच जाती हैं, तो वे समाज को अपनी ओर खींचने लगती हैं। उदाहरण के लिए वाल्मीकि एक ऐसे राम का चित्रण करते हैं, जैसा उन्होंने कहीं देखा-सुना नहीं है। जितने भी गुणों की कल्पना की जा सकती है, वे सब राम में हैं। उनका प्रत्येक क्रिया-कलाप आदर्श से प्रेरित है। इस प्रकार का महान् चित्रण जब कवि की लेखनी से चित्रित होकर समाज के सम्मुख आता है, तब वह समाज की अक्षय सम्पत्ति बन जाता है। कवि मर जाता है, परन्तु उसकी रचनाएँ जीवित रहती हैं। वाल्मीकि आज नहीं हैं, परन्तु उन्होंने राम का जो चरित्र अंकित किया था, वह कितनी ही शताब्दियों के बाद भी लोगों को आत्म-विकास की ओर प्रेरित करता रहा है। इस विस्तृत भूखण्ड में न जाने कितने अन-गिनत बड़े भाइयों ने राम के पद चिह्नों पर चलने का प्रयास किया होगा। इसी प्रकार बड़े-बड़े साहित्यकार, जिन चरित्रों और आदर्शों का सर्जन कर जाते हैं, उनका प्रभाव युग-युगान्तरों तक आगामी सन्ततियों पर पड़ता है। प्रतिभाशाली कलाकार भावी समाज के निर्माता भी होते हैं।

यह स्थिति इस प्रकार समझी जा सकती है। समाज की परम्पराओं और विचारों को आधार बनाकर साहित्यकार साहित्य की सृष्टि करता है। उस साहित्य से जनसाधारण प्रेरणा ग्रहण करते हैं और अपने जीवन को उसके अनुकूल ढालते हैं। फिर किसी समय कोई प्रतिभाशाली कलाकार जन्म लेता है, जो अपनी प्रखर कल्पना द्वारा नये चरित्रों और आदर्शों की सृष्टि करता है। अर्थात् साहित्य एक पग आगे बढ़ जाता है। साहित्य के इस विकास का परिणाम यह भी हो सकता है कि समाज उस कलाकार की कल्पना से प्रेरणा प्राप्त करके दो कदम आगे बढ़ जाए। उस समय समाज की उन्नति से प्रेरणा

प्राप्त करके फिर साहित्य अपना विकास कर सकता है।

समाज मनुष्यों से निर्मित है और साहित्य मनुष्यों के विचारों और अनुभवों का संग्रह है। इसलिए दोनों एक-दूसरे से पृथक या अप्रभावित नहीं रह सकते। जब भी समाज में ऊपर या नीचे की ओर गति होगी, तभी साहित्य में भी विकास या ह्रास होगा और जब साहित्य कुछ ऊँचे आदर्श या गन्दे आकर्षक चरित्र प्रस्तुत करेगा, तब समाज को भी उनके पीछे चलना ही होगा। अमेरिका में हत्या और व्यभिचार इत्यादि के सम्बन्ध में जितना रोचक और आकर्षक साहित्य तैयार किया गया है, उसका परिणाम वहाँ के समाज पर भी स्पष्ट दिखाई पड़ रहा है। वहाँ जनता का नैतिक दृष्टि से अत्यधिक पतन हो गया है। छल, जालसाजी, डाकाजनी इत्यादि अपराध वहाँ तेजी से बढ़ रहे हैं। अमेरिका से इस तरह का बहुत-सा साहित्य छपकर और फिल्मों के रूप में इस देश में भी आ रहा है और समाज पर उसका जो दुष्परिणाम पड़ने लगा है, इसके विरुद्ध नेताओं की ओर से आवाज उठाई जा रही है।

साहित्य जो सच्चे चित्र उपस्थित करता है, वे तो जनता को आकृष्ट करते ही है, साथ ही यदि कुछ बिलकुल मिथ्या और निराधार, रोचक, सरस कहानियाँ प्रस्तुत कर दी जाएँ, तो समाज पर उनका भी वैसा ही प्रभाव पड़ता है। आज भी हमारे देश में ऐसे लोग करोड़ों की संख्या में हैं, जो पुराणो मे वर्णित कथाओं को अक्षरशः सत्य मानते है। स्वर्ग-नरक और यहाँ तक कि भूत-प्रेत उनके लिए काल्पनिक नहीं, बल्कि सत्य वस्तु है। ये विश्वास उनकी मज्जा तक में रम गये है। किसी समय इसी प्रकार की धाराएँ यूरोप की जनता में भी प्रचलित थीं और अंशतः आज भी प्रचलित है। यह साहित्य भी समाज को प्रभावित कर सकने की शक्ति का एक और रोचक उदाहरण है।

साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है, क्योंकि समाज की अच्छी-बुरी सब दशाएँ साहित्य में ज्यों-की-त्यों प्रतिबिम्बित रहती है। कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तल' में हमें उस काल के समाज की मनोरम झाँकी दिखाई पड़ती है। इसी प्रकार वाल्मीकि की रामायण और महाभारत मे भी तत्कालीन समाज का विशद अकन है। जब से आधुनिक यथार्थवादी प्रवृत्ति ने जोर

पकड़ा , तब से साहित्य का यह दर्पणरूप और भी स्पष्ट तथा महत्वपूर्ण हो उठा है। पुराने भारतीय साहित्यकार अपने ग्रन्थों में पाप की विजय नहीं दिखाना चाहते थे; क्योंकि वे जनता को सन्मार्ग पर चलाना चाहते थे। इसी लिए सदा पाप का फल बुरा और पुण्य का फल अच्छा प्रदर्शित किया जाता था। परन्तु यथार्थवादी लेखकों ने समाज का वैसा ही चित्रण करना प्रारम्भ किया है, जैसा वह वस्तुतः है। यह बात अंशतः ठीक भी है। जब समाज का बुरा रूप भी साहित्य में प्रतिबिम्बित होता है, तो उसे देखकर जनता को विचारने और आत्मसुधार करने की आवश्यकता पड़ती है। फ्रांस में रूसो और वाल्तेयर ने, रूस में टाल्स्टाय और गोर्की ने अपने साहित्य द्वारा यही कार्य किया। समाज का कलुषित और अन्यायपूर्ण-रूप अपनी रचनाओं में प्रतिबिम्बित किया। उसके फलस्वरूप दो क्रान्तियां हुईं—एक फ्रांस में और दूसरी रूस में। भारत में भी आधुनिक काल में अनेक कवियों और लेखकों ने अपनी रचनाओं में देश की दासता और दरिद्रता के मर्मस्पर्शी चित्र अंकित किये, जिनसे देश की स्वाधीनता-संग्राम को बल मिला। आज देश में सब जगह किसानों की दशा सुधारने के लिए प्रयास हो रहा है। उसका बहुत बड़ा श्रेय हिन्दी के प्रसिद्ध उपन्यासकार 'प्रेमचन्द' को है। उन्होंने अपने उपन्यासों में किसानों की दशा के जैसे करुणाजनक और सच्चे चित्र उपस्थित किये हैं, वैसे शायद किसी अन्य कलाकार ने नहीं किये। इन उपन्यासों ने समाज के सभी वर्गों में किसानों के प्रति सहानुभूति जगा दी है।

देश में और भी बहुत सा शोषित वर्ग है, जिसकी दुरवस्था का चित्रण आज के प्रगतिवादी साहित्य में हो रहा है और इस बात की पूरी सम्भावना है कि साहित्य के इस प्रयत्न का भी अभीष्ट परिणाम होकर ही रहेगा।

इस प्रकार हमने देखा कि साहित्य और समाज का पारस्परिक सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ है। यह निर्णय कर पाना तो बहुत कठिन है कि समाज से साहित्य प्रभावित होता है अथवा साहित्य से समाज। यह ठीक वृक्ष और बीज का-सा ही प्रश्न है। बीज से वृक्ष उत्पन्न होता है और वृक्ष से बीज। बीज की अच्छाई पर वृक्ष का विकास निर्भर है और वृक्ष की अच्छाई पर बीज का उत्कर्ष। इसी प्रकार साहित्य और समाज परस्पर अन्योन्याश्रित हैं। एक के

विकास या ह्रास का दूसरे के विकास या ह्र पर प्रभाव अनिवार्य रूप से पड़ता है ।

भारतीय समाज में नारी का स्थान

यदि किसी घोड़ा-गाड़ी में दो पहिए हों, और उनमें से एक पहिया बहुत बड़ा और मजबूत हो, और दूसरा पहिया मुकावले में बहुत छोटा और कमजोर हो, तो उस घोड़ा-गाड़ी की चाल कैसी होगी ? घोड़ा-गाड़ी तेजी से राजमार्ग पर दौड़ सकेगी या कदम-कदम पर लड़खड़ाती हुई अन्त में किसी गड्ढे में जाकर गिरेगी ? इस विपय में शायद ही किसी को सन्देह हो कि ऐसी असमान पहियों वाली गाड़ी का भविष्य बहुत उज्ज्वल न होगा ।

मनुय-समाज भी एक ऐसी घोड़ा-गाड़ी है, जिसके दो पहिये पुरुष और नारी हैं । पुरुपों की दशा तो लगभग सभी देशों और समाज में स्त्रियों की अपेक्षा श्रेष्ठ रही है, परन्तु स्त्रियों की दशा समय-समय पर बिगड़ती और सुधरती रही है । विशेष रूप से हमारे देश में तो स्त्रियों की सामाजिक दशा में बहुत हेर-फेर हुए हैं ।

जब हम प्राचीन काल के साहित्य का अध्ययन करते हैं, तो ज्ञात होता है कि उस समय स्त्रियों की सामाजिक दशा बहुत अच्छी थी । उस समय स्त्रियाँ न केवल शिक्षा की दृष्टि से, वल्कि कला-कौशल और युद्ध-विद्या की दृष्टि से पुरुपों के समकक्ष थीं । वेदों के मन्त्र-द्रष्टा ऋपियों में जहाँ अनेक पुरुष हैं, वहाँ कई स्त्रियाँ भी हैं । वेदों में स्त्री ऋपियों के सूक्तों का संग्रह होना, स्त्रियों की पुरुपों के साथ समानता का सूचक है । वैदिक काल के पश्चात् उपनिषद् काल में भी 'गार्गी और मैत्रेयी इत्यादि' स्त्रियाँ ब्रह्म-विद्या में पारंगत थीं और उनका ज्ञान याज्ञवल्क्य और जनक जैसे ब्रह्मविदों के समान ही समझा जाता था । यहाँ तक कि अनेक वड़े-वड़े विद्वानों को तो वे शास्त्रार्थ में परास्त भी कर देती थीं । वाल्मीकि-रामायण में भी ऐसा उल्लेख मिलता है कि स्त्रियाँ ऋपियों के आश्रम में रहकर पुरुपों के साथ-साथ ही उच्च कोटि की विद्या का ग्रहण किया करतीं थीं । इसी तरह शस्त्र-विद्या में भी स्त्रियों के पारंगत

होने की बात इससे स्पष्ट है कि कैकेयी दशरथ के साथ युद्ध में गई थी।

केवल शिक्षा प्राप्त करने की दृष्टि से ही नहीं, बल्कि सामाजिक दृष्टि से भी स्त्रियों का स्थान बहुत उन्नति दिखाई पड़ता है। स्त्रियाँ जो सम्मति देती थीं, वह पुरुषों को आदरपूर्वक सुननी पड़ती थी। महाभारत में 'द्रौपदी' इसका अच्छा उदाहरण है। वह पांडवों को यथासमय राजनीति-विषयक परामर्श देती रहती थी। वैसे भी हमारे समाज ने चिरकाल से ही स्त्री को पुरुष के समान ही आदर का पात्र बनाया है। जहाँ राम और कृष्ण हिन्दू समाज के पूज्य हैं, वहाँ सीता और राधा भी उतनी ही पूजनीया हैं। शास्त्रकारों ने भी स्त्रियों को उच्च स्थान में बतलाते हुए यह लिखा कि "देवता वहीं निवास करते हैं, जहाँ स्त्रियों का समुचित आदर किया जाता है।"

जब तक हमारे समाज में स्त्रियों का समुचित आदर करने की यह भावना बनी रही, तब तक समाज उन्नति के शिखर पर विद्यमान रहा। या यों कहना चाहिए कि जब तक हमारा समाज उन्नत रहा, तब तक उसमें नारियों का समुचित आदर होता रहा। बुद्ध के अविर्भाव और अशोक के बौद्ध धर्म में दीक्षित होने के उपरान्त हमारे देश की राजनीतिक दशा तेजी से बिगड़नी प्रारम्भ हुई। केन्द्रीय राजशक्ति क्षींण हो गई। इसका परिणाम यह हुआ कि देश पर विदेशी शाशकों और हूणों के आक्रमण प्रारम्भ हो गये। बहुत बार हमारे देशवासियों को परास्त भी होना पड़ा। उस दुर्बल अवस्था में स्त्रियों की स्वाधीनता की रक्षा कर पाना पुरुषों के लिए सम्भव न रहा। इसलिए उन्होंने स्त्रियों को अन्तःपुर की सुरक्षा में बन्द रखना आवश्यक ससझा। भारतवर्ष में राजनीतिक अशान्ति का यह काल बहुत लम्बे समय तक रहा। ऐसे समय शिक्षा और कला का ह्रास हुआ करता है। पुरुषों के लिए भी यथोचित शिक्षा प्राप्ति कर पाना कठिन हो जाता है। अशान्ति और उथल-पुथल के कारण जीवन-रक्षा की चिन्ता ही सबसे बड़ी बन जाती है। ऐसी दशा में सबल शत्रुओं की आँखों से परे रखने के लिए अन्तःपुर में रखी जाने वाली स्त्रियों की शिक्षा और सामाजिक दशा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ना बिलकुल स्वाभाविक ही था।

ज्यों-ज्यों पुरुष समाज अशक्त होता गया, त्यों-त्यों स्त्रियों को अपने ही

वश में रखने के लिए तरह-तरह के कायदे-कानून और विधि-विधान वनाए जाने लगे। ऐसा प्रतीत होता है कि पति के मरने पर उसके वियोग से व्याकुल स्त्रियों के सती हो जाने की प्रथा वहुत प्राचीन काल से चली आ रही था। परन्तु सभी स्त्रियाँ पति के मरने पर सती नहीं होती थीं। केवल वे ही सती होती थीं जो वैधव्य के कष्ट को न सहने के लिए स्वेच्छा से अग्नि में जलकर मर जाना पसन्द करती थीं। पति की मृत्यु के साथ-साथ इस प्रकार आत्मघात करने के उदाहरण भूले-भटके आजकल भी मिल जाते हैं, और केवल भारत में ही नहीं, वल्कि वाहर भी पाए जाते हैं। इस राजनीतिक दुर्वलता के काल में यह व्यवस्था की गई, कि सभी स्त्रियाँ पति की मृत्यु के साथ सती हो जाया करें। शायद वहुत वार स्त्रियों को सती होने के लिए विवश भी किया जाने लगा। परन्तु देश के इतिहास में कोई ऐसा समय नहीं रहा, जव कि अनिवार्य रूप में सभी स्त्रियाँ पति के साथ ही सती होती रही हों।

इसी तरह स्त्रियों का सामाजिक गौरव भी क्रमशः क्षीण होता गया। इसका वड़ा कारण यह था कि उस काल में वाहुवल और शस्त्र-कौशल का गौरव था। ये गुण स्त्रियों में कम पाये जाते हैं। इसलिए स्त्रियाँ उपेक्षित रहीं और उनका काम केवल पुरुषों का मनोरंजन करना भर रह गया। जिन दो-चार क्षत्राणियों ने वीरत्व प्रदर्शित किया, उनके नाम इतिहास में अमर हो गए। 'दुर्गावाई और लक्ष्मीवाई' की गणना इन्हीं में की जा सकती है।

आर्थिक दृष्टि से स्त्रियाँ शायद कभी भी स्वतन्त्र नहीं थीं, परन्तु वर्तमान युग से पहले अर्थ का इतना महत्व भी कभी नहीं था। आर्थिक पराधीनता ने स्त्रियों को पूर्णतया पुरुषों पर निर्भर वना दिया। पुरुषों ने स्त्रियों की प्रत्येक गतिविधि को ऐसे ढंग से नियन्त्रित किया, जिसे वे अपने लिए और समाज के लिए उपयोगी समझते थे। जाति की शुद्धता को वनाये रखने के लिए भी स्त्रियों पर वहुत से प्रतिवन्ध लगाये गये। वे उचित थे या नहीं, इसका निर्णय कर पाना सरल नहीं है। विधवाओं का पुनर्विवाह निषिद्ध कर दिया गया। सम्भवतः इसका सवसे वड़ा कारण अपनी सम्पत्ति की सुरक्षा का प्रयास था। विधवा के पुनर्विवाह से नई सन्तानों की सम्भावना थी, जो सम्पत्ति में अधिकार पाने का दावा कर सकती थी। उसके झंझट से वचने के लिए विधवाओं

के विवाह पर रोक लगाई गई। इस रोक का दुष्परिणाम यह हुआ कि विधवाओं का जीवन नरक से भी अधिक कष्टमय हो उठा। उनके इस जीवन को दुःखमय बनाने में स्वयं स्त्रियों का भी उतना ही हाथ था, जितना पुरुषों का। स्त्री की सामाजिक दशा और नीचे गिर गई।

स्त्री समाज का आधा अंग है। जब किसी समाज का आधा अंग दुर्दशाग्रस्त हो, तो सारे समाज की दशा देर तक अच्छी नहीं रह सकती। यही बात हमारे समाज पर भी लागू हुई। स्त्रियों के अधिकार छीन-छानकर उन्हें पंगु बना देने का दुष्परिणाम सारे समाज को भुगतना पड़ा। स्त्री केवल पत्नी ही नहीं है, वह माता, पुत्री और बहिन भी है। वैसे तो अशिक्षित पत्नी भी पुरुष की सहायता करके उसे उतना नहीं बना सकती, जितना कि शिक्षित पत्नी बना सकती है। परन्तु माता का अशिक्षित होना तो शिशु के लिए और अन्ततोगत्वा समाज के लिए अभिशाप ही है, क्योंकि बालक को प्रारम्भिक शिक्षा माता से ही मिलती है। अच्छे या बुरे संस्कार बचपन में जितनी दृढ़ता से बद्धमूल हो जाते हैं, उतने बाद में नहीं हो सकते। जब सारे समाज में सभी माताएँ अशिक्षित और अन्धविश्वासिनी हों, तब उस समाज के शिशुओं और बालकों का भविष्य कैसा होगा, यह सरलता से सोचा जा सकता है। इसका फल हमारे समाज को भी भुगतना पड़ा। सारे देश में अन्धविश्वासों, कुरीतियों और पाखण्डों का ऐसा जाल फैल गया कि उसमें हमारी सर्वांगीण अवनति होती गई। राजनीतिक, सामाजिक, नैतिक और आर्थिक सभी दृष्टियों से हम हीन हो गए। फलतः शताब्दियों तक विदेशी दासता का भार हमें ढोना पड़ा। हमारी सारी दुर्दशा का मूल कारण हमारे समाज में स्त्रियों की दुर्दशा थी।

परन्तु समय सदा एक-सा नहीं रहता। जिस प्रकार हमारे देश में राजनीतिक चेतना जगी और हमने विदेशी दासता से मुक्ति पाने के लिए भयंकर संघर्ष किया, उसी तरह सहृदय सुधारकों ने सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध भी विद्रोह का झंडा खड़ा किया। उन्होंने बताया कि जब तक हम समाज के आधे भाग को अशिक्षा और कुरीतियों के बन्धन में जकड़े रहेंगे, तब तक सारे समाज की उन्नति सम्भव नहीं है। महर्षि दयानन्द, राजा राममोहनराय,

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और महात्मा गांधी इत्यादि नेताओं के प्रयत्नों के कारण स्त्रियों की दशा सुधारने की ओर लोगों का ध्यान गया। जगह-जगह स्त्रियों के लिए विद्यालय खोले गए। विधवाओं के विवाह करने की व्यवस्था की गई और परदे की गर्हित प्रथा के विरुद्ध जोरदार आन्दोलन किया। यह परदा भी आजीवन कारावास से कुछ कम न था, जिसके कारण स्त्री को शेष सारे संसार से अलग होकर जीवन बिताना पड़ता था। बंगाल में प्रचलित सती-प्रथा को तो बाकायदा कानून बनाकर बन्द कर दिया गया।

स्त्रियों की दशा में पिछले तीस वर्षों में बहुत अन्तर पड़ गया है। न केवल स्त्रियों में शिक्षा का प्रचार दिनों-दिन बढ़ रहा है, बल्कि उन्होंने देश की स्वाधीनता के आन्दोलन में भी पुरुषों के साथ सक्रिय भाग लिया। पुरुषों की तरह ही उन्होंने भी सत्याग्रह किये, लाठियां और गोलियाँ सहीं और वे जेलों में गईं। इससे स्त्री-समाज में एक नई चेतना और आत्मगौरव जाग उठा है। अब स्त्रियाँ सभी क्षेत्रों में आगे बढ़ रहीं हैं। चिरकाल तक आर्थिक पराधीनता में रहने के बाद अब उन्होंने आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर बनने का प्रयत्न भी प्रारम्भ कर दिया है। अध्यापन, चिकित्सा, वकालत इत्यादि आजीवों (पेशों) में जाकर वे सफलतापूर्वक कार्य कर रहीं हैं।

रूस में साम्यवादी क्रान्ति होने के उपरान्त सारे संसार में साम्यवादी विचार धारा की एक लहर चल पड़ी है। इसके अनुसार न केवल सब पुरुष समान हैं, बल्कि पुरुषों और स्त्रियों का भी स्थान समान ही है। रूस में स्त्रियां और पुरुष सभी जीविका उपार्जन करने के लिए कार्य करते हैं। रूस की जीवन-प्रणाली ने अपने आपको द्वितीय विश्व-युद्ध में सफल प्रमाणित कर दिया है। इस प्रणाली के द्वारा ही संगठित और सशक्त होकर रूस जैसा अल्प विकसित देश जर्मनी जैसे सुविकसित देश की सेनाओं का मुकाबिला कर सका। रूस की सफलताओं के फलस्वरूप भारत में भी साम्यवादी विचार-धारा फैलती जा रही है।

इस समय हमारे समाज में वैज्ञानिक दृष्टि से स्त्रियों को पुरुषों के समान ही अधिकार प्राप्त हैं। उन्हें उन्नति करने के लिए पुरुषों के बराबर अवसर प्राप्त है। परन्तु हमारे देश की अधिकाँश जनता गाँवों में रहती है, जहाँ

अभी तक शिक्षा का प्रकाश नहीं पहुँच पाया है। इसलिए वहां पर अभी तक भी पुरानी परम्पराएं ही चल रही हैं और संविधान वहाँ स्त्रियों की वहुत सहायता नहीं कर सकता।

मध्यकाल में हमारे समाज में स्त्रियों की दशा को बिगाड़ने में विवाह और उत्तराधिकार सम्वन्धी कानूनों का भी वहुत हाथ रहा है। पुरुप को अधिकार था कि वह एक ही समय में अनेक स्त्रियों से विवाह कर सकता था, किन्तु स्त्री पुरुप द्वारा परित्यक्ता होकर भी दूसरा विवाह नहीं कर सकती थी। इसी तरह उत्तराधिकार में पिता की सम्पत्ति में पुत्रियों को भाग नहीं मिलता था। अव सरकार नए कानून वनाकर पुरानी स्थिति में सुधार करने का प्रयत्न कर रही है। नए कानून के अनुसार कोई भी हिन्दू पुरुष एक समय में एक से अधिक स्त्रियों के साथ विवाह नहीं कर सकेगा और उत्तराधिकार में कन्याओं का भाग भी लड़कों के समान ही माना जाएगा।

इस प्रकार हमारा समाज उन दोपों को हटाने के लिए प्रयत्नशील है, जिनके कारण स्त्रियों की दशा बिगड़ी थी। पिछले दस सालों में हुई प्रगति को देखते हुए यह निश्चय से कहा जा सकता है कि शीघ्र ही स्त्रियों की स्थिति इतनी सुधर जायेगी कि वे प्रत्येक क्षेत्र में न केवल पुरुषों का मुकावला करने लगेंगी, बल्कि उनसे कुछ आगे भी निकल जायेंगी।

भ्रष्टाचार की समस्या

भ्रष्टाचार जनतन्त्रीय सरकार का शत्रु है। स्वतन्त्र भारत में भ्रष्टाचार का बोल वाला घटने की वजाय सुरसा की तरह बढ़ता ही जा रहा हैं। स्थिति धीरे-धीरे विस्फोटक विन्दु तक पहुँच रही है। केन्द्र और राज्य सरकारे किंकर्त्तव्य विमूढ़ सी हो गयी हैं। रोग गहराई तक जड़ें जमा चुका है। भ्रष्टाचार की जड़ क्या है? वास्तव में भ्रष्टाचार का जन्म प्रशासन एवं न्याय पद्धति में विलम्ब के कारण होता है। आज भारतीय नागरिक चाहे वह किसान हो या मजदूर, उद्योगपति हो या नौकर किसी भी जीवन-क्षेत्र में हो सरकारी अधिकारियों के सम्पर्क में आता है। योजनावद्ध विकास में सरकार आर्थिक जीवन के हर पहलू को स्पर्श करती है।

आर्थिक विकास के कुछ क्षेत्रों में बड़े व भारी उद्योग, विद्युतशक्ति, जल यातायात व संचार, विदेशी विनिमय औद्योगिक माल को आयात, आज्ञापत्र तथा कुछ वस्तुओं में निर्यात केन्द्रीय व राज्य सरकारों का एकमात्र दायित्व है। निजी क्षेत्र में कृषि, उद्योग, शिक्षा, चिकित्सा आदि में सरकार वित्तीय, तकनीकी व विभिन्न प्रकार की सहायता प्रदान करती है। सहकारिता में भी सरकार वित्तीय सहायता के रूप में भारी योग प्रदान करती है। दूसरे शब्दों में हमारा राष्ट्र प्रजातन्त्रीय प्रणाली से शासित होता है, तथा उसमें जन कल्याण अथवा बहुजन हिताय तथा बहुजन सुखाय का उद्देश्य अक्षुण्ण माना गया है। इस उद्देश्य सिद्धि के लिए सरकार नागरिक सुविधाये प्रदान करती है जो आर्थिक सहायता के रूप में भी मिलती है। कुछ सहायता दूसरी तरह से भी मिलती है।

भ्रष्टाचार के अंग—प्रत्यक्षतः हम भ्रष्टाचार को दो रूपों में देखते हैं। प्रथम अनुचित तथा अनियमित रूप से आर्थिक लाभ प्राप्त करना व कराना, जिसमे प्रत्यक्ष रूप से नकद व भेंट में रिश्वत लेना व देना। केवल मन्त्री ही नहीं, स्थानीय कॉंग्रेस कमेटी के कार्यकर्त्ताओं से लेकर, केन्द्रीय कॉंग्रेस नेता जनधन भी लूट मे शामिल रहे हैं। भ्रष्टाचार का दूसरा रूप वह है जिसमें समकक्ष व्यक्तियों व संस्थाओं के हितों को भुलाकर व हानि पहुँचाकर स्वयं या अपने ही व्यक्तियों व संस्थाओं को अनुचित अवसर, सहायता व स्थान दिलवाना सम्मिलित है। इसे पक्षपात भी विशेष अधिकारी को भेजी जानी चाहिए। शिकायत की जाँच के बाद दोषी कर्मचारी को तुरन्त दण्ड मिलना आवश्यक है। इसके साथ दण्ड कड़ा भी होना चाहिए तथा इसका अधिकाधिक प्रसार आवश्यक है।

वास्तव में बहुत से मेरे इस विचार से सहमत नहीं होगे कि सरकारी दफ्तरों में काम कम है। यह विभिन्न अध्ययनों व तुलनाओं से स्पष्ट हो चुका है कि विदेशों में समकक्ष कर्मचारी कही अधिक कार्य करते है। इसलिए यह मानना गलत नही होगा कि कर्मचारी वर्ग अनुशासन के अभाव में अधिक काम नही करना चाहते। जहा वास्तव में कार्य भार अधिक हो वहाँ अध्ययन व प्रयोग से कर्मचारियों की सही आवश्यकता ज्ञात करनी चाहिए।

सरकारी अधिकारियों की जायदाद—वास्तव में किसी अधिकारी के विरोध में पूर्वाग्रह से उसके भ्रष्ट होने के सम्बन्ध में पूर्व-निर्णय करना अनुचित है। दूसरे आज भ्रष्टाचार के तरीके तथा प्राप्त पक्ष करने के साधन इतने सूक्ष्म हो गए है कि उनकी जांच का एक ही उपाय है। वह यह कि राज्य की सेवा में आने के पूर्व, हर राज्य कर्मचारी को अपनी जायदाद 'चल व अचल' लिखित में घोषित करनी चाहिये। जिस प्रकार से राज्य सेवा के पूर्व कई अन्य औपचारिकताएं पूरी करनी पड़ती हैं, उसी तरह यह भी अनिवार्य होनी चाहिए। शिकायत होने की अवस्था में, इससे अनुचित रूप से प्राप्त आय में सम्पत्ति का अनुमान लगाना सरल हो सकता है।

नेताओं का नैतिक कर्त्तव्य—लोकतन्त्र में शासकों के भ्रष्ट व ईमानदार होने की कसौटी जनता है। जिस मन्त्री या नेता में जनता का विश्वास हिल जाता है। उस नेता का यह नैतिक कर्तव्य है कि वह अपनी अग्नि परीक्षा जनता के समक्ष दे अथवा सार्वजनिक जीवन से स्वयं निष्कासित हो जाये। जब तक राष्ट्र के शासक जो राष्ट्र जीवन के आधार है। अनुशासित नही होंगे तब तक करोड़ों लोग आदर्शच्युत रहेंगे। कांग्रेस सत्ता की 'कामराज' योजना निरर्थक व निष्प्रभावपूर्ण होगी यदि भ्रष्ट नेता व राजनीतिज्ञ अपने स्वार्थ के लिए राष्ट्रीय जीवन को खोखला करते हैं क्योंकि भ्रष्ट-सत्ता में नागरिक भ्रष्ट होंगे तथा उच्छशृंखलता फैलेगी। स्वार्थ-त्याग सबसे बड़ी देश समस्या का समाधान नहीं होता। इस सम्बन्ध में इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि ऐसे विभागों की स्थापना के पश्चात् भ्रष्टाचार का पैमाना अधिक ही हुआ है। जिस प्रकार से सरकारी निर्णयों में असाधारण विलम्ब होने से न तो कार्य ही सिद्ध होता है और न इससे विकास कार्य में सहयोग मिलता है तथा मिला। सहयोग व उत्साह लुंठित होता है। उसी तरह विलम्ब से मिला दण्ड भी निरर्थक है। भ्रष्टाचार विरोधी अभियान के कुछ ऐसे हास्यस्पद परिणाम देखने को मिलते है, जिनसे उनकी उपयुक्तता पर शंका होती है। राजस्थान के किसी सहकारी भण्डार से ऋण देने में हुए गोलमाल के सम्बन्ध में, भ्रष्टाचार निरोधक विभाग को सूचना दी गयी। उक्त भंडार की जाँच के लिए कोई दो वर्ष बाद इस विभाग के अधिकारी आये। तब तक न तो भण्डार और न उन लोगों का ही

पता लगा, जिनके विरुद्ध शिकायत की गयी थी।

विलम्ब कैसे कम हो? कार्य अधिकारी की नियुक्ति—मूलभूत प्रश्न शासन में विलम्ब को दूर करने का है। हमारे देश में सरकारी दफ्तरों में काम करवाने में विलम्ब को आवश्यक तत्व मान लिया गया है। तब कार्य में शीघ्रता एक कल्पना की बात रह गयी है। सर्वप्रथम यह आवश्यक है कि हर विभाग में काम करने वालों के ऊपर एक कार्य अधिकारी नियुक्त किया जाये जिसका कार्य यह होगा कि वह अपने विभाग के कार्यों को पूरा करने की समय-सारिणी बनाये तथा यह निरीक्षण करे कि कार्य उन सारिणियों के अनुसार होता है या नहीं। यदि कार्य समय पर पूरा न हो तो दोषी कर्मचारी को दण्ड मिले। यह दण्ड केवल जुर्माने के रूप में ही नहीं, बल्कि छुट्टी को कम कर देने के रूप में भी हो सकता है अथवा रविवार की छुट्टी। दोषी कर्मचारी के लिए उसे कोई अतिरिक्त पारिश्रमिक न मिले।

कार्य-अधिकारी के काम के लिए उस विभाग का सचिव जिम्मेदार हो तथा समस्त विभाग के लिए सम्बन्धित मन्त्री व मन्त्रीगण उत्तरदायी हों। अब शिकायतों का शमन किस प्रकार हो। इसके लिए स्केंडिनेविया के आवंड्स्मन नियुक्त किये जाने चाहिए। सम्बन्धित विभागों की प्राप्त शिकायतों की जांच तुरन्त होनी चाहियें। इसके लिए एक अलग कर्मचारी नियुक्त किया जा सकता है।

शिकायतों को जनसम्पर्क कार्यालय भ तत्सम्बन्धी विभागों में भेजने की जगह इस कार्य के लिए नियुक्त कर सकते हैं। जिसने अपने भाई, भतीजे के लिए पैसा नहीं लिया, उसने भी पार्टी के लिए तो लिया ही है। भ्रष्टता भ्रष्टता ही कही जायेगी, चाहे वह घर परिवार के हित के लिए की जाए अथवा पार्टी के हित के लिए। इन दोनों रूपों को भ्रष्टाचार का सर्वांगीण स्वरूप नहीं माना जा सकता परन्तु व्यावहारिक अर्थ में उन दोनों में भ्रष्टाचार अपने नग्न रूप में—जिसका उन्मूलन हो सकता है, दृष्टव्य होता है।

भ्रष्टाचार की समस्या कोई नवीन घटना नहीं है। यह सामाजिक तथा मनुष्य के चरित्र की समस्या है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से लगातार अब तक इसके उन्मूलन के लिए प्रयत्न जारी है। परन्तु इसमें दो राय नहीं होंगी

कि इन समस्त प्रयत्नों के बावजूद भी यह बढ़ने से नहीं रुका है और भ्रष्टाचार का भयंकर कीड़ा बृहदकाय होता जा रहा है। केन्द्रीय ग्रहमन्त्री श्री गुलजारी लाल नन्दा की दृष्टि में भ्रष्टाचार एक बड़ा नासूर है अतः इस पर हमें चारों ओर से हमला बोलना होगा। भ्रष्टाचार दूर करने के काम में हमें लाखों अच्छे लोगों का सहयोग प्राप्त करना होगा।

भ्रष्टाचार की समस्या भारत में ही नहीं, योरुप के देशों में भी व्याप्त थी, जिसका समाधान उन देशों में ढूंढ लिया गया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि भ्रष्टाचार उच्च अधिकारियों तथा नीचे के कर्मचारियों दोनों में है। इसमें भी इसकी गहराई व व्याप्ति भिन्न-भिन्न विभागों में भिन्न-भिन्न है। यह कहना मूलतः गलत है कि पहले ऊँचे स्तर से भ्रष्टाचार नष्ट कर दिया जाए तो नीचे के वर्ग में स्वतः ही समाप्त हो जायेगा। वस्तुतः स्थिति तो यह है कि दोनों वर्गो का भ्रष्टाचार सह-अस्तित्व है। क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में जहाँ हमने सह अस्तित्व को स्वीकार किया है, वहाँ भ्रष्टाचारिता में भी इस सिद्धांत का व्यापक पालन किया गया है। अतः भ्रष्टाचार के सह-अस्तित्व को समाप्त करना इसके समूलोच्छेदन में प्रथम प्रहार है।

दूसरे, इस सम्बन्ध में देश के नेताओं को यह बात नहीं भूलनी चाहिए कि भ्रष्टाचार नौकरशाही व लालफीताशाही के साथ नत्थी है। जब तक शासन के कार्य सम्पादन में दीर्वसूत्रता नहीं टूटेगी तब तक भ्रष्टाचार उन्मूलन दिवास्वप्न रहेगा और हम इसको समाप्त करने में किए गए प्रयत्नों में शक्ति व धन को नष्ट करते रहेंगे जैसा कि अब तक करते आए हैं। पाकिन्सन के सिद्धांत से हमें उपयोगी शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। भ्रष्टाचार को मिटाने के लिए भ्रष्टाचार-विरोधी पुलिस-विभाग खोल देने से भीवत है। इस सम्बन्ध में हमारे नेताओं को स्वपरीक्षा करनी चाहिए। यदि वे अपनी आत्मा की ध्वनि से अपने आपको भ्रष्ट या अनुशासित पाते हैं तो उन्हें पुनः 'कामराज योजना' के अन्तर्गत गद्दी व पद त्याग देना चाहिए। राष्ट्रीय स्तर पर व्याप्त भ्रष्टाचार को मिटाने का एक मात्र यही उपाय है।

केन्द्रीय गृह मन्त्री के अनुसार दो वर्ष की अल्प अवधि में भ्रष्टाचार का सभूल उन्मूलन अनिवार्य है। यदि ऐसा नहीं हुआ तो आजादी का फल भी

नष्ट हो जाएगा। यदि हम दो वर्षों में भी भ्रष्टाचार को खत्म नही कर सके तो यह २० वर्षो मे भी समाप्त न होने पावेगा। गत १६ वर्षो तक लगातार भूखे और नंगे रहकर जनता ने जिस धैर्य का परिचय दिया, वह धैर्य अब टूटता जा रहा है। यदि शासकों ने आज भी उनकी उपेक्षा की, तो जन-रोष की सुलगती हुई चिनगारियाँ दावानल का रूप धारण कर लेंगी। यदि हमें अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा करनी है तो उसका एकमात्र उपाय यही है कि हम चारित्रिक विशेशता ईमानदारी के अर्जन मे जुट जाये। समाज मे ईमानदारी के व्याप्त होते ही भ्रष्टाचार स्वतः नष्ट हो जाएगा और तब हमारा देश दुगुनी उन्नति कर पाएगा।

अनेक राज्य अपनी अलग भ्रष्टाचार विरोध-व्यवस्था के पक्ष में हैं। मद्रास, बिहार और उत्तरप्रदेश ने केन्द्रीय गृह-मन्त्रालय को सूचित कर दिया है कि उन्होने अपने-अपने यहाँ भ्रष्टाचार की रोकथाम के लिए जो व्यवस्था की है। वे उसकी पूरी तरह परीक्षा करना चाहते है। पश्चिमी बंगाल और पंजाब अभी इस सुझाव पर विचार कर रहे है। केन्द्रीय सरकार ने सुझाव दिया था कि केन्द्रीय निगरानी-आयोग के नमूने के संगठन राज्यों में भी स्थापित किये जाये। गृह-मन्त्रालय ने राज्य सरकारो को यह भी सलाह दी थी कि वे निगरानी-आयोग के सदस्यो के चुनाव मे बहुत सावधानी बरतें, क्योंकि वे प्रतिष्ठित ईमानदार और अनुभवी होने चाहिएँ। इस आयोग को पूरी आजादी होनी चाहिए। आयोगो को अपने काम की रिपोर्ट विधान मंडलों को देने की छूट होनी चाहिए। इस प्रकार यदि प्रत्येक नागरिक ईमान-दारी को लक्ष्य कर अपने कार्य क्षेत्र में प्रविष्ट होगा। तो भ्रष्टाचार के बीज भी भारत मे नही रहेंगे।

आशा है कि अल्पावधि में, जो इसके उन्मूलन का निश्चय किया गया हे। वह पूण हो जाये।

हिन्दी रचना

पत्र-लेखन

प्रश्न १—किसी पत्र-सम्पादक को एक पत्र लिखते हुए आधुनिक परीक्षा प्रणाली के दोषों को दर्शाइए और उनको दूर करने के लिए अपने सुझाव भी दीजिए। (प्रथमा सम्वत् २०१४)

श्री संपादक महोदय,

नवभारत टाइम्स,

दरियागंज, दिल्ली।

महाशय,

मैं निम्नलिखित लेख आपके प्रतिष्ठित पत्र में प्रकाशित होने के लिये भेज रहा हूं। इस लेख में मैंने यह बताने का प्रयत्न किया है कि आधुनिक परीक्षा प्रणाली में क्या दोष हैं और उनको दूर करने में कुछ सुझाव भी दिए हैं। आशा है आप इसे प्रकाशित करके कृतार्थ करेंगे।

लेख

बहुत दुःख के साथ लिखना पड़ रहा है कि हमारे देश में परीक्षा की प्रणाली बहुत ही दूषित है। वास्तविकता तो यह है कि इस प्रणाली को अंग्रेजों ने हमारे यहां इस उद्देश्य से चालू किया था कि हिन्दुस्तानियों को केवल डिग्रियाँ व सार्टिफिकेट तो मिलते रहें' परन्तु योग्यता ना के बराबर ही हो। आधुनिक शिक्षा प्रणाली के दोष और उनके दूर करने के सुझाव निम्नलिखित हैं—

सर्वप्रथम तो वार्षिक परीक्षा के परिणाम के आधार पर दूसरी श्रेणी में चढ़ाए जाने के कारण वर्ष भर नियमित रूप से परीक्षा के एक या दो महीने पूर्व ही परिश्रम करते हैं। शेष समय उधर घूमने तथा आवारागर्दी करने में ही व्यतीत कर देते हैं

शासन भी नहीं रहने पाता है। विद्यार्थी कुसंगत में बैठकर बुरी आदतों में फँस जाते है और अध्यापकों का अपमान करने में तो वे अपनी प्रतिष्ठा समझने लगते हैं। यदि परीक्षा का यह ढंग परिवर्तित कर दिया जाय और मासिक परीक्षायें होने लगें, सत्र में होने वाली इन सभी परीक्षाओं के परिणाम के आधार पर तथा विद्यार्थी के नियमित रूप से कार्य करने तथा उसके अनुशासन पालन के आधार पर विद्यार्थी की सफलता-निर्भर हो, तो फिर उक्त सभी शिकायतें दूर हो जाएंगी। विद्यार्थी वर्ष भर नियमित रूप से कार्य करेंगे। इस प्रकार उन्हें योग्यता भी प्राप्त होगी और फालतू समय न होने के कारण वे आवारगर्दी भी नहीं करेगे और अध्यापकों के साथ सभ्य व्यवहार करना सीखेगे। आधुनिक परीक्षा प्रणाली का दूसरा सबसे अधिक हानिकारक दोष यह है कि इससे ट्यूशन का प्रचार हो रहा है और विद्यार्थी अपनी समझने की शक्ति को खोकर रटने की शक्ति में प्रगति कर रहा है। इससे हमारे राष्ट्र की बहुत हानि हो रही है, उसका विकास रुक रहा है। इसका कारण अध्पापकों की स्वार्थ भावनाएं तथा परीक्षा पत्रों की शैली है। इसको दूर करने के लिए अध्यापकों की वेतन वृद्धि होनी चाहिए और उनके ऊपर कठोर प्रतिबन्ध होना चाहिए कि वे एक भी ट्यूशन न करें। इसके साथ ही परीक्षा में आने वाले प्रश्न पत्रों की शैली मे परिवर्तन होना अति आवश्यक है। इस प्रकार के प्रश्न परीक्षा में पूछे जाने चाहियें जिनको विद्यार्थी रट न सके। केवल वही विद्यार्थी उनका उत्तर दे सकें जिन्होंने अच्छी तरह पुस्तकों का अध्ययन किया है। बाजार में छपने वाले अनुमानित पत्र, गाइडें तथा कुंजियों पर प्रतिबन्ध लगाना भी अति आवश्यक है। इसके कारण न तो विद्यार्थी ही कक्षा में एकाग्र-चित्त होकर बैठते हैं और न अध्यापक ही परिश्रम से पढ़ाते हैं।

शिक्षा विभाग का कर्त्तव्य है कि वह शीघ्र ही परीक्षा प्रणाली के दोषों की ओर ध्यान देकर उनका सुधार करे, अन्यथा इससे राष्ट्र का बहुत अहित होगा।

भवदीय
प्रेमप्रकाश
२०१५, दाईवाड़ा, दिल्ली।

२-६-१९५९

प्रश्न २—अपने मित्र को पत्र लिखो और उन्हें बताओ कि हिन्दी में आज कल किस प्रकार के साहित्य की कमी है। उस कमी को किस प्रकार दूर किया जा सकता है। (प्रथमा परीक्षा, सं० २०१४)

१५, बाबर रोड,
नई दिल्ली।

प्रिय सुरेश,

आज प्रातः तुम्हारा पत्र मिला। पढ़कर हृदय प्रसन्न हुआ। तुम्हारी इच्छा के अनुसार मैं अपने इस पत्र में यह लिखने का प्रयत्न कर रहा हूं कि हिन्दी में आजकल किस प्रकार के साहित्य की कमी है और उसको दूर करने के साधन पर अपने विचार प्रकट करता हूं। आशा है तुम इसे ध्यानपूर्वक पढ़कर पूर्ण लाभ उठाने का प्रयत्न करोगे :—

गत शताब्दियों में हिन्दी भाषा दासता में रहने के कारण कोई विशेष प्रगति न कर सकी। मुसलमानों ने हिन्दी को मिटाकर फारसी और उर्दू का प्रचार करने में कोई प्रयत्न शेष नहीं छोड़ा। इसी प्रकार अंग्रेजों ने अंग्रेजी का प्रचार किया। परन्तु भारतवर्ष के स्वतन्त्र होने के पश्चात् हिन्दी को राष्ट्र-भाषा के पद पर सुशोभित किया गया है। हिन्दी ही भारत की मातृ भाषा है। हिन्दी की उन्नति पर ही हमारे राष्ट्र, जाति तथा समाज की उन्नति निर्भर है। यद्यपि गत दस-ग्यारह वर्षों में हिन्दी का बहुत विकास हुआ है, परन्तु फिर भी अभी इसमें निम्नलिखित कमी हैं, जिनको दूर करना हम सबका प्रमुख कर्त्तव्य है।

अभी भी विज्ञान, गणित, ज्योतिष आदि विषयों की पुस्तकों का हिन्दी में अभाव है। इसका कारण हिन्दी की दुर्बलता है। जब तक हिन्दी का पर्याप्त विकास नहीं होगा, इसके कोष की वृद्धि नहीं होगी, तब तक उक्त साहित्य का हिन्दी में समावेश होना कठिन है। अतः शीघ्रातिशीघ्र हिन्दी शब्द कोष का विकास करके हमें इन सभी विषयों की उच्च कोटि की पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद करना अति आवश्क है।

राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत साहित्य की भी अभी हिन्दी में कमी है। यद्यपि राष्ट्रीय कवि मैथिलीशरण गुप्त ने इस कमी को बहुत कुछ दूर किया है

और करने का प्रयत्न कर रहे हैं, परन्तु फिर भी जितना किसी भाषा का राष्ट्रीय साहित्य होना चाहिए, उससे तो अभी हिन्दी का राष्ट्रीय साहित्य बहुत कम है। किसी भी राष्ट्र की उन्नति और वहाँ की प्रजा के हृदय में राष्ट्रीय भावना का ओत-प्रोत होना वहाँ की भाषा के राष्ट्रीय साहित्य पर निर्भर है, इसलिए हिन्दी के इस अभाव की पूर्ति शीघ्रातिशीघ्र की जा जानी चाहिए।

हिन्दी का गद्य-साहित्य गत सौ वर्ष की ही देन है। यद्यपि इस अल्प काल में इसका पर्याप्त विकास हुआ है, परन्तु फिर भी इसका विकास अभी अपूर्ण है। इसलिए हमें गद्य विकास में पूर्ण सहयोग देना चाहिए। आलोचना, उपन्यास, कहानी, नाटक, निबन्ध आदि सभी प्रकार के साहित्य का विकास करना चाहिए। ऐसा करने पर ही हम अपने कर्त्तव्य का पालन कर सकेंगे और अपने देश के भविष्य उज्ज्वल बना सकेंगे।

शेष सब कुशल है। माता-पिता जी को मेरी नमस्ते। मुन्नी को प्यार।

तुम्हारा
अभिन्न हृदय,
महेश चन्द्र गर्ग।

सुरेशचन्द्र गुप्त, एम० ए० (विज्ञान) महाराजा कालेज, जयपुर।

प्रश्न ३—अपने मित्र को पत्र लिखो और भारत की वर्तमान खाद्य समस्या पर अपने विचार व्यक्त करो। (प्रथमा परीक्षा, सं० २०१५)

१७०४, गली कुञ्जस,
दरीबा कलां, दिल्ली।
तिथि २-६-१६५६

प्रिय वेद प्रकाश,

आज प्रातःकाल तुम्हारा पत्र मिला। पढ़कर हृदय को प्रसन्नता हुई। तुमने कई बार भारतवर्ष की वर्तमान खाद्य समस्या के विषय में कुछ जानकारी प्राप्त करने की इच्छा प्रकट की है। अतः मैं इस पत्र में भारतवर्ष की वर्तमान

खाद्य समस्या के विषय में कुछ बताने का प्रयत्न कर रहा हूं। आशा है तुम ध्यानपूर्वक समझने का प्रयत्न करोगे :—

भारत कृषि प्रधान देश है। यहां की अधिकांश प्रजा का व्यवसाय कृषि है। यह बहुत ही आश्चर्य की बात है कि आज वह देश खाद्याभाव से पीड़ित है, जो सदा ही खाद्य का भण्डार रहा है। वह देश जो दूसरों का अन्नदाता रहा है, आज दूसरों के सामने अनाज के लिए भीख माँगता है। आखिर इसका क्या कारण है? ध्यानपूर्वक समस्या का अध्ययन करने पर हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि भारतवर्ष में कृषि तो उसी भूमि में ही होती है जिसमें पहले होती थी परन्तु यहां की जनसख्या दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ रही है। फिर ऐसी स्थिति में खाद्य का अभाव होना अवश्यम्भावी है। इसके अतिरिक्त हमारे कृषक देश की आवश्यकतानुसार अन्न की उपज न करके अपने व्यक्तिगत स्वार्थ को महत्व देते हैं और वे उस वस्तु को अधिक पैदा करते हैं जिससे उन्हें अधिक लाभ होता है। हमारे कृषकों का खेती करने का ढग भी प्राचीन है, वे वैज्ञानिक साधनों तथा खाद का प्रयोग बहुत कम कर रहे हैं इसके कारण उनको प्रति बीघा जो अन्न प्राप्त होता है वह अमेरिका जैसे देशों में प्रति बीघा प्राप्त अन्न से कई गुना कम है। इन सब अभावों की पूर्ति करने के लिये हमारी सरकार प्रति वर्ष लाखों टन अनाज विदेशों से मंगाती है।

खाद्याभाव से छुटकारा पाने के लिये हमारे कृषकों को वैज्ञानिक साधनों का प्रयोग करना चाहिये। रासायनिक खाद को खेतों में डालना चाहिए। सरकार को बंजर पड़ी हुई भूमि को उपजाऊ बनाने के लिये कृषकों को सहायता देनी चाहिये। सिंचाई की सुविधा के लिये नहरों तथा ट्यूबवैल आदि बनवाने चाहिएँ। इसके साथ बढ़ती हुई जनसंख्या पर भी नियन्त्रण होना चाहिये। तभी खाद्य समस्या का सुधार हो सकता है, अन्यथा देश खाद्याभाव से पीड़ित रहेगा और ऐसी स्थिति में राष्ट्र की उन्नति नहीं हो सकती।

शेष सब कुशल हैं। माता-पिता जी को मेरी नमस्ते तथा बच्चों को प्यार।

तुम्हारा
अभिन्न हृदय,
राकेश कुमार।

वेदप्रकाश गुप्त,
५९, डिप्टी मोहल्ला,
बलन्दशहर (यू० पी०)

प्रश्न ४—पढ़ाई के सम्बन्ध में छोटे भाई को पत्र।

इलाहाबाद
तिथि २-६-१९५९

प्रिय रमेश,

आज तुम्हारा पत्र मिला। यह पढ़कर कि तुम अपने कालेज की वार्षिक परीक्षा में अपनी श्रेणी में प्रथम उत्तीर्ण हुये हो, हृदय अति प्रसन्न हुआ। तुम्हारी इस आशातीत सफलता पर मैं यह गर्व के साथ कह सकता हूं कि तुम स्वर्गीय पिता जी के उपदेश का ठीक रूप से पालन कर रहे हो। वैसे तो तुम स्वयं ही समझदार और परिश्रमी हो, परन्तु फिर भी मैं तुम्हें बार-बार यही कहता हूं कि प्रिय बन्धु संसार में विद्या-धन ही सर्वोत्तम धन है। इसको ग्रहण करने के लिये जितना अधिक प्रयत्न कर सकते हो, करो। तुम्हारे लिए यही समय है इस धन को प्राप्त करने का। फिर जीवन भर इसका उपयोग करोगे और भावी जीवन में तुम्हें किसी प्रकार का भी कष्ट नहीं होगा।

पढ़ाई के साथ अपने स्वास्थ्य तथा आचार-विचार को ठीक रखना भी अति आवश्यक है। इनके अभाव में पढ़ाई-लिखाई सब व्यर्थ हो जाती है।

शेष सब कुशल है। माता जी ने तुम्हें प्यार लिखने को कहा है और कालेज की छुट्टियां होते ही शीघ्र ही घर चले आना, क्योंकि हम सबका मन तुमसे मिलने के लिए बहुत व्याकुल है।

तुम्हारा
प्रिय भाई,
शिव प्रसाद।

रमेश चन्द्र शर्मा
बी० ए० (फाइनल)
महानन्द मिशन कालेज,
गाजियाबाद (यू० पी०)

प्रश्न ५—पुस्तकें मँगवाने के लिए प्रकाशक को पत्र।

गवर्नमेंट हाई स्कूल,
आगरा।
तिथि २-६-१६५६,

सेवा में,
मैनेजर,
अशोक प्रकाशन,
नई सड़क, दिल्ली।

महोदय,

आपसे निवेदन है कि निम्नलिखित पुस्तकें वी० पी० द्वारा शीघ्रातिशीघ्र भेज दीजिए। उचित कमीशन काटना न भूलिए। पन्द्रह दिन तक पुस्तकें न मिलने पर मैं किसी अन्य प्रकाशक से मँगवा लूंगा। इसलिए यदि देर हो तो लिखने की कृपा करें।

(१) प्रथमा हिन्दी गाइड।
(२) अशोक निबन्ध-माला।
(३) अशोक पत्र लेखन।
(४) शाप और वरदान।
(५) कवि परिचय।
(६) हिन्दी साहित्य का नूतन इतिहास।

भवदीय
राधेलाल जैन
कक्षा (८)

प्रश्न ६—नौकरी के लिए प्रार्थना-पत्र।

सेवा में,
श्रीमान् मैनेजर,
आत्माराम एण्ड, सन्स,
काश्मीरी गेट, दिल्ली।

महोदय,

सविनय निवेदन यह है कि मुझे एक विश्वस्त सूत्र से ज्ञात हुआ है कि

आपकी फर्म में एक क्लर्क की आवश्यकता है। मैं अपने आपको इस सेवा के लिए उपस्थित करता हू।

मेरी शिक्षा सम्वन्धी योग्यता तथा अनुभव निम्नलिखित हैं—

(१) मैने सन् १९५० में पंजाव विश्वविद्यालय की मैट्रिक परीक्षा में द्वितीय श्रेणी में सफलता प्राप्त की।

(२) मैने सन् १९५२ में उक्त विश्वविद्यालय की इंटर परीक्षा में भी द्वितीय श्रेणी में सफलता प्राप्त की।

(३) सन् १९५३ (जनवरी) में मैंने प्रभाकर परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की।

(४) गत ४ वर्ष से मैं अशोक प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली में सेलसमैन तथा क्लर्क के रूप में कार्य कर रहा हूं। इसका अनुभव-सार्टिफिकेट मैं अपने इस प्रार्थना पत्र के साथ ही भेज रहा हूं।

(५) मैं २६ वर्षीय स्वस्थ नवयुवक हूं।

मैं आपको पूर्ण विश्वास दिलाता हूं कि मैं वहुत ईमानदारी तथा परिश्रम से कार्य करूँगा और कभी भी आपको शिकायत का अवसर नहीं दूँगा। आशा है कि योग्यता और अनुभव देखते हुये आप मेरी ओर विशेष ध्यान देकर मुझे कृतार्थ करेंगे।

कृपा के लिये धन्यवाद।

अनुग्रहाभिलाषी,

२—६—१९५९. पंजावी लाल गुप्त,

अशोक प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली।

प्रश्न ७—किसी सम्पादक को पत्र लिखकर—"स्वतन्त्र भारत में हिन्दी का क्या स्थान होना चाहिए"—इस पर अपने विचार प्रकट करो।

(प्रथमा परीक्षा सं० २०१५)

श्रीमान्

सम्पादक महोदय,

नवभारत टाइम्स,

दरियागंज, दिल्ली।

महाशय,

मैं निम्नलिखित लेख आपके प्रतिष्ठित तथा लोकप्रिय पत्र में प्रकाशित

होने के लिये भेज रहा हू । इस लेख में मैंने यह बताने का प्रयत्न किया है कि 'स्वतन्त्र भारत में हिन्दी का क्या स्थान होना चाहिये।' आशा है इसे प्रकाशित करके आप मुझे कृतार्थ करेंगे।

लेख

भारतवर्ष के स्वतन्त्र होने के पश्चात् अब यह प्रश्न उठ खड़ा हुआ है कि हिन्दी का क्या स्थान होना चाहिये। मुसलमानी काल में फारसी, तथा उर्दू को प्रोत्साहन मिला और शासकों ने हिन्दी का दमन किया। इसी प्रकार अंग्रेजों के शासन काल में अंग्रेजी राष्ट्र भाषा रही और हिन्दी का बहिष्कार किया गया। पराधीनता में तो हमने यह सब कुछ सहन किया, क्योंकि हम विवश थे, निर्बल थे। परन्तु आज जब हम स्वतन्त्र हैं, यह कैसे सहन कर सकते हैं कि अब भी हिन्दी का बहिष्कार किया जाय और विदेशी भाषाओं को महत्ता दी जाय।

हिन्दी हमारी मातृभाषा है। हमारे देश, राष्ट्र तथा समाज की उन्नति हिन्दी की उन्नति पर ही निर्भर है। यदि हमारी मातृभाषा अवनति के गर्त में गिरेगी, तो हमारा देश भी पतन के पंक में फंस जाएगा। राष्ट्रीय कवि मैथिलीशरण गुप्त ने भी कहा है—

निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटे न हिय को शूल॥

यह सब कुछ जानते हुए भी कुछ व्यक्तियों ने हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाने में पर्याप्त बाधा पैदा की है। कोई उर्दू के गीत गाता है, तो कोई अंग्रेजी के और कई अहिन्दी भाषी राज्यों के नेता सोचते हैं कि हिन्दी को उनके ऊपर बलात् लादा जा रहा है। परन्तु बात ऐसी नहीं है। उर्दू को तो स्वयं मुस्लिम देशों से भी निकाला जा रहा है, क्योंकि इसका साहित्य पर्याप्त विकसित नहीं है। अंग्रेजी भाषा को तो अब राष्ट्र भाषा बनाने की सोचना हमारी कोरी मूर्खता का प्रमाण है। रहा अब प्रादेशिक भाषाओं का प्रश्न, सो कोई भी प्रादेशिक भाषा हिन्दी के समान विकसित नहीं है। भारतवर्ष में सबसे अधिक संख्या हिन्दी भाषा के बोलने वालों की है। हिन्दी भाषा को सभी राज्यों के लोग

सरलता से सीख सकते हैं। हमारा समस्त उच्च साहित्य हिन्दी या संस्कृत भाषा में ही है। इसलिये यह तो सभी को मानना पड़ेगा कि हिन्दी ही भारत की राष्ट्र भाषा हो सकती है और कोई भाषा नहीं। इसके साथ यह बात अवश्य है कि हमें हिन्दी कोष का विकास करने में पूर्ण सहयोग देना चाहिए। तभी हिन्दी विश्व की सर्वश्रेष्ठ भाषाओं में स्थान प्राप्त कर सकती है।

भवदीय

तिथि २—६—१९५९. वेदप्रकाश गुप्त,

३३, गुरुद्वारा रोड, करोलबाग,

दिल्ली।

प्रश्न ८—अपने छोटे भाई को एक पत्र लिखिये और उसमें उसे विद्यार्थी जीवन के कर्त्तव्य समझाइए।

(प्रथमा परीक्षा, संवत् २०१६)

८०२, धर्मपुरा, नई सड़क,

दिल्ली।

तिथि २—३—१९६९

प्रिय रमेश,

आज प्रातः मुझे तुम्हारे प्रिंसिपल साहब का पत्र और तुम्हारी प्रगति-रिपोर्ट प्राप्त हुई। दोनों को पढ़कर मुझे इस बात का बहुत दुःख हुआ कि तुम वहाँ पर एक ऐसी सोसाइटी के चंगुल में फंस गए हो कि अपने उद्देश्य और कर्त्तव्य को भूलकर शरारत करने और व्यर्थ समय नष्ट करने पर उतरे हुए हो। माता जी और पिता जी तुम्हारे इन कारनामों को सुनकर बहुत दुःखी हो रहे हैं।

प्रिय रमेश, तुम यह भूल रहे हो कि तुम एक साधारण परिवार में उत्पन्न हुये हो और वहाँ कालेज में तुम्हें पढ़ने के लिये भेजा गया है न कि व्यर्थ समय नष्ट करने और शरारतें करने के लिए। तुमको तो एक आदर्श विद्यार्थी बनना चाहिए। तुम्हें अपने कालेज जीवन में केवल पुस्तकों का ही अध्ययन नहीं करना है, अपितु अनेकों दूसरी चरित्र सम्बन्धी बातों का भी ध्यान रखना

है। एक अच्छा विद्यार्थी बनने के लिए तुमको नीचे लिखी सभी बातों का बिना किसी अपवाद के पालन करना चाहिए।

तुम्हारा सबसे पहला कर्त्तव्य अपने गुरुजनों की आज्ञा का पालन करना और साथियों के साथ प्रेमपूर्वक रहना है। किसी भी अध्यापक के प्रति दुर्भावना रखना या किसी साथी के साथ झगड़ना अच्छे विद्यार्थी का काम नहीं है।

तुमको छात्रावास तथा कालेज के अनुशासन को किसी भी मूल्य पर भंग नहीं करना चाहिए। जीवन के सभी दैनिक-कार्यों को नियमित रूप से निश्चित समय पर करो।

किसी भी विद्यार्थी को निर्बल या निर्धन समझकर उससे घृणा नहीं करनी चाहिए और नहीं उसे अपने से हीन समझना चाहिए। यदि तुम्हारा किसी के साथ मतभेद है तो उसे सुलझाने का प्रयत्न करो, न कि विवाद को बढ़ाओ।

कालेज ठीक समय पर जाओ और वहां पर अध्यापक के लेक्चर को ध्यानपूर्वक सुनो। कालेज का कार्य नियमित रूप से करते रहो। कक्षा में बैठकर किसी भी प्रकार की शरारत नहीं करो। इस प्रकार नियमित रूप से मन लगाकर पढ़ने वाले विद्यार्थी सदा परीक्षा में अच्छी श्रेणी प्राप्त करते हैं। असफलता उनसे कोसों दूर भागती है।

उक्त बातों के अतिरिक्त तुमको सत्य बोलना चाहिए, किसी की कोई वस्तु नहीं लेनी चाहिए, प्रातःकाल सवेरे उठकर शौचादि से निवृत्त होकर भ्रमण के लिए जाना चाहिए, प्रतिदिन स्नान करना और स्वच्छ वस्त्र पहनना चाहिए, संध्या समय कालेज के खेलों में भी हाथ बंटाना चाहिए। नगर में जाकर किसी दूकानदार या अन्य किसी व्यक्ति को तंग करना बुरी बात है। विद्यार्थी के लिये ये बातें शोभनीय नहीं हैं।

मैं समझता हूं कि आदर्श विद्यार्थी के लिए इन सभी कर्त्तव्यों का पालन करना नितान्त आवश्यक है और अब तुम किसी को भी अपने विरुद्ध किसी प्रकार की शिकायत का अवसर नहीं दोगे। मुझे पूर्ण आशा है कि इन सभी बातों पर तुम आचरण करने में किसी प्रकार की कसर शेष न रखोगे। ऐसा

करने पर तुम एक अच्छे विद्यार्थी बन जाओगे और फिर सभी तुमको घृणा की बजाय प्यार करेंगे।

शेष यहाँ पर सब कुशल है और यदि किसी प्रकार की कठिनाई हो, तो मुझे निस्संकोच लिख देना। माता जी और पिता जी तुमको प्यार करते हैं। छोटे भाई बहन तुमको नमस्ते कहते हैं।

तुम्हारा अग्रज
कैलाशचन्द्र गोयल

प्रश्न ९—अपनी माता जी को एक पत्र लिखो और उसमें छात्रावास जीवन के अपने अनुभव लिखो।

(प्रथमा, संवत् २०१६)

छात्रावास,
गवर्नमेन्ट कालेज
रोहतक।
तिथि १६-५-१९६१ ई०

पूज्य माता जी,

निवेदन है कि मैं यहां पर सकुशल रह रहा हूं और जैसा कि आपको इस बात की आशंका थी कि कहीं ऐसा न हो कि मेरा मन छात्रावास में न लगे, सो आप मेरी ओर से इस प्रकार की चिन्ता न कीजिए। यहाँ पर मुझे अच्छी सोसाइटी प्राप्त हो गई है और मैं ऐसा अनुभव करने लगा हूं जैसे कि मैं घर पर ही रह रहा हूं। जैसा कि आपने प्रत्येक पत्र में मुझसे छात्रावास के जीवन के विषय में लिखने के लिए लिखा है, सो मैं अपने इस पत्र में अपने अब तक के अनुभव से जो कुछ समझ सका हूं लिख रहा हूं।

सबसे पहली बात तो यह है कि हमारा छात्रावास नगर से बाहर एक खुले मैदान में है। इसके चारों ओर सुन्दर बगीचा है और पास में ही खेलने के लिये मैदान और घूमने के लिये घास का मैदान है। इस कारण यहां का वातावरण व जलवायु शुद्ध है। इससे हम सब विद्यार्थियों का स्वास्थ्य ठीक रहता है और शरीर में स्फूर्ति रहती है।

दूसरी बात यह है कि यहाँ पर हम सब अनुशासन प्रिय और नियमित

रूप से कार्य करना सीखते हैं। प्रातःकाल पांच बजे उठते हैं और रात्रि को १० बजे सोते हैं। इस बीच में हमारा प्रत्येक दैनिक कार्य करने का समय निश्चित है। खाना, घूमना, खेलना, नहाना, पढ़ना आदि सभी का समय निश्चित है। जैसा कि आपने बताया है यह एक बहुत अच्छी आदत है और इसमें हमारे भविष्य की सफलता समावेशित है।

तीसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि हमारे छात्रावास में लगभग १५० विद्यार्थी रहते हैं, परन्तु सभी परस्पर एक दूसरे के साथ इस प्रकार मिलकर और प्रेमपूर्वक रहते हैं कि ऐसा सहयोग और प्रेम सहोदर में भी होना कठिन है। हमारे छात्रावास के प्रबन्ध और देखभाल का कार्य हमारे अंग्रेजी के एक प्रोफेसर साहब करते हैं। वे सब को पुत्र के समान प्यार करते हैं। इस प्रकार यहां पर किसी को भी कोई कष्ट नहीं हो पाता है।

एक विशेष बात यह है कि यहां पर जो पुराने छात्र हैं वे नए छात्रों को सब बातें, रहने का ढंग, छात्रावास के नियम आदि बताना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। वे सब प्रकार से हमारा पथ-प्रदर्शन करते हैं और पूर्ण सहयोग देते हैं। यहां छात्रावास के नियम इतने कठोर हैं कि कोई शरारती छात्र किसी भी दूसरे छात्र को किसी भी प्रकार से तग नहीं कर सकता है।

जब मैं शुरू में गत मास में आया था, तब तो सभी मेरे लिए अपरिचित थे और हम सब ही एक दूसरे से बातचीत करने तक में भी संकोच करते थे, परन्तु अब तो हम सब एक दूसरे से भली-भांति परिचित हो गये हैं और अब संकोच के लिए कोई स्थान नहीं रहा है।

छात्रावास में हमारी पढ़ाई भी ठीक प्रकार से हो जाती है। यहां पर प्रत्येक छात्र का अध्ययन के समय पढ़ने की ओर ध्यान रहता है। इस कारण कोई भी छात्र अपना समय व्यर्थ नष्ट नहीं कर पाता है। साथ ही प्रत्येक छात्र को अपने साथी छात्रों से अध्ययन करने में पर्याप्त सहायता मिल जाती है।

इस प्रकार मेरा अपना अब तक का अनुभव तो यही है कि छात्रावास का जीवन एक अच्छा और विद्यार्थी जीवन के अनुकूल ही होता है। यहां पर आकर हम अपने कर्त्तव्य का पालन करना सीखते हैं और बाहरी संसार का भी हमको ज्ञान होता है और छात्रों को अच्छा नागरिक बनाया जाता है।

आगे यदि किसी प्रकार की बाधा आयेगी तो मैं आपको पत्र द्वारा सूचित कर दूंगा।

मुझे यहां पर रमेश और मिथिलेश की बहुत याद आती है। सभी भाई-बहनों को प्यार, पूजनीय पिताजी को मेरा नमस्कार। शेष सबको यथायोग्य अभिवादन।

आपका
प्रिय पुत्र
वेदप्रकाश गुप्त

प्रश्न १०—अपने नगर की नगरपालिका के स्वास्थ्य अधिकारी को पत्र लिखकर अपने मोहल्ले के गन्दा रहने की शिकायत करो।

सेवा में,
स्वास्थ्य अधिकारी महोदय,
नगरपालिका, गाजियाबाद।

श्रीमान् जी,

निवेदन है कि मैं गत दो-तीन मास से इस नगर के चन्द्रपुरी मौहल्ले में रहता हूं। यद्यपि मौहल्ला खुला हुआ है, परन्तु फिर भी बहुत गंदा रहता है। सड़क पर कूड़े के ढेर लगे रहते हैं। नालियों में से दुर्गन्ध आती रहती है। नगरपालिका की ओर से नियुक्त भंगी नियमानुसार ठीक समय पर सफाई नहीं करता है। कभी-कभी वह दिन में दो बार सफाई कर देता है, परन्तु प्राय: दिन में एक बार ही सफाई करने का आदी है। सफाई भी वह ठीक ढंग से नहीं करता है। मौहल्ले के अनेक व्यक्तियों ने उससे कई बार ठीक प्रकार से सफाई करने के लिये कहा है। मैंने भी उसको कई बार समझाया है कि वह ठीक प्रकार से सफाई करके अपने कर्त्तव्य का पालन करे, परन्तु हमारे सबके प्रयत्न निष्फल रहे हैं। उसके ऊपर इन बातों का लेशमात्र भी प्रभाव नहीं हुआ है। इसका परिणाम यह हुआ है कि सारे मौहल्ले में मच्छरों का प्रकोप है और मलेरिया फैला हुआ है। इस प्रकार का वातावरण स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकारक है।

इस सम्बन्ध में एक शिकायत का पत्र पहले भी भेजा जा चुका है जिस

पर मौहल्ले के सभी व्यक्तियों के हस्ताक्षर हैं । परन्तु [illegible] पड़ रहा है कि लगभग एक महीने का समय बीत गया है. [illegible] उस शिकायत की ओर कोई ध्यान नहीं दिया है । [illegible] को प्राप्त करते ही शीघ्र से शीघ्र आवश्यक कार्यवाही करने [illegible] जिससे हम सब लोगों के कष्ट निवारण हो ।

[illegible]
[illegible]
२५, मोहल्ला चन्द्रपुरी ।

तिथि १६-५-१६६१

प्रश्न ११—पुलिस अधिकारी को साइकिल की रिपोर्ट लिखो ।

सेवा में,

कोतवाल महोदय,
कोतवाली गाजियाबाद ।

श्रीमान् जी,

सेवा में निवेदन यह है कि आज प्रातः १० बजे जब मैंने दुकान खोली तो साइकिल दुकान के बाहर तख्ते के सहारे खड़ी कर दी और मैं अपने कार्य में व्यस्त हो गया । जल्दी में मुझे ताला लगाने का ध्यान नहीं रहा । अब दो बजे जब मैं घर जाने के लिये बाहर आया तो देखा तो साइकिल वहाँ पर नहीं है । पूछताछ करके मैंने इस संदेह को भी दूर कर लिया है कि कोई मित्र या मिलने वाला तो नहीं ले गया है । अब स्पष्ट है कि साइकिल की चोरी की गई है । इसलिए मैं आपको इस चोरी को सूचना दे रहा हूं । साइकिल हिन्द मेक है और उसका नम्बर ५७५५४ है । मैंने यह अभी दो मास पूर्व क्रय की थीं । कम्पनी की रसीद भी मेरे पास मौजूद है ।

आशा है आप साइकिल का पता लगाने और चोर को पकड़ने का भरसक प्रयत्न करके मुझे कृतार्थ करेंगे । मैं इस मामले में आपको पूर्ण सहयोग देने के लिए तैयार हूं ।

भवदीय
वेदप्रकाश
नवजीवन प्रकाशन
जवाहर गेट, गाजियाबाद ।

तिथि १६—५—१६६१ ई०

प्रश्न १२—अपने मित्र को एक पत्र लिखकर उसके जन्म दिन पर न पहुँच सकने की असमर्थता प्रकट करते हुए अपना उपहार स्वीकार करने के लिए निवेदन करो।

मेरठ
तिथि १६-५-६१

प्रिय कमलेश,

मुझे कल तुम्हारा पत्र मिला। यह पढ़कर बहुत प्रसन्नता हुई कि तुम अपना २२ वां जन्म दिवस २५ मई तो मना रहे हो। इस अवसर पर उपस्थित होने का जो निमन्त्रण तुमने मुझे भेजा है उसके लिए मैं तुमको धन्यवाद देता हूं। परन्तु मेरा दुर्भाग्य है कि मैं २५ तारीख को तुम्हारे पास नहीं आ सकूँगा, क्योंकि २३ तारीख को मैंने आफिस की ओर से लखनऊ जाना है। वहाँ से मैं २९ तारीख को वापिस लौटूँगा। मैं तुम्हारे पत्र के आने से पहले ही अपने अधिकारी से लिखित रूप में जाने के लिए 'हाँ' कर चुका हूं और अब किसी भी मूल्य पर यह प्रोग्राम रद्द नहीं हो सकता। और न ही इसमें किसी प्रकार से विलम्ब किया जा सकता है, क्योंकि यह कार्य बहुत आवश्यक है। अपने प्रधान कार्यालय लखनऊ को हम इस प्रोग्राम की रिपोर्ट भेज चुके हैं। वहां पर भी अधिकारियों से मिलने का कार्य क्रम निश्चित किया जा चुका है।

आशा है कि तुम मेरी इस अनुपस्थिति का बुरा नहीं मानोगे और माता जी तथा पिता जी को भी मेरी विवशता से अवगत करा दोगे। इस पत्र के साथ ही मैं एक साधारण सी घड़ी इस शुभ अवसर के लिये तुच्छ उपहार के रूप में प्रेषित कर रहा हूं। मुझे पूर्ण आशा है कि तुम इसे मेरी शुभ कामनाओं सहित सहर्ष स्वीकार करोगे।

शेष सब कुशल हैं। बच्चे तुम सबको नमस्ते कहते हैं। माता जी तथा पिता जी को मेरी नमस्ते कहना। शेष सबको मेरा यथायोग्य अभिवादन।

तुम्हारा
प्रिय मित्र
विष्णुदत्त शर्मा

पता | टिकट

श्री कमलेश कुमार सक्सेना
२२, छत्ता मौहल्ला
गाजियाबाद

मुहावरे

(१) काला अक्षर भैंस बराबर (प्रथमा सं० २०१५)—निरक्षर होना।

प्रयोग—तुमको दफ्तर की नौकरी कैसे मिल सकती है ? तुम्हारे लिए तो काला अक्षर भैंस बराबर है।

(२) क्या वर्षा जब कृषि सुखानी (प्रथमा सं० २०१५)—समय के बीत जाने पर काम होना।

प्रयोग—तुम अब मेरी सहायता करने के लिए आये हो। अब तो सब कुछ काम बिगड़ चुका है। अब क्या होता है—'क्या वर्षा जब कृषि सुखानी।'

(३) अक्ल चरने जाना—बुद्धि ठिकाने न रहना।

प्रयोग—कक्षा में सबसे अच्छे विद्यार्थी होते हुए भी तुम परीक्षा मे अनुत्तीर्ण हो गए। क्या इन प्रश्न-पत्रों का हल करते समय तुम्हारी अक्ल घास चरने चली गई थी।

(४) अपना उल्लू सीधा करना—अपना स्वार्थ सिद्ध करना।

प्रयोग—चुनाव के दिनों में अवसरवादी नेता जनता को झूठे आश्वासन दे देकर अपना उल्लू सीधा करते है। फिर सीधे मुंह बात भी नही करते।

(५) अपनी खिचड़ी अलग पकाना—बहुमत से अलग अपनी बात कहना, सबके साथ न चलना, अलग रहना।

प्रयोग—चाहे संसार के सब राष्ट्र भारत की नीति का समर्थन करें, किन्तु पाकिस्तान जरूर अपनी खिचड़ी अलग पकाता है।

(६) अपने मुंह मियां मिट्ठू बनना—अपनी प्रशंसा आप करना।

प्रयोग—अपने मुंह मियाँ मिट्ठू बनना मूर्खता का लक्षण तो है ही।

(७) अपने पांव आप कुल्हाड़ी मारना—स्वय ही अपनी हानि करना।

प्रयोग—तेज बुखार में ठण्डे पानी से नहा कर तुमने अपने पाँव में आप कुल्हाड़ी मार ली है।

(८) अंग अंग ढीला होना—थक कर चूर हो जाना।

प्रयोग—बहिन के विवाह में दिन-रात कार्य करते रहने के कारण मेरा तो अंग अंग ढीला हो गया है।

(९) अंधे की लकड़ी—एक मात्र सहारा ।

प्रयोग—बेचारे रामप्रसाद का इकलौता पुत्र क्या मरा, अंधे की लकड़ी छिन गई ।

(१०) अंधे के हाथ बटेर लगना—किसी अयोग्य व्यक्ति का किसी उत्तम वस्तु को पा जाना ।

प्रयोग—सुना है, गोपाल स्वयं तो मिडिल पास है, लेकिन उसे पत्नी बी० ए० पास मिली है । भई, सच पूछो तो अंधे के हाथ बटेर लग गई है ।

(११) अंधेरे घर का उजाला—एक मात्र पुत्र होना ।

प्रयोग—रमेश सेना में भर्ती कैसे हो सकता है ? वह तो अन्धेरे घर का उजाला है ।

(१२) आकाश से बातें करना—बहुत ऊंचा होना ।

प्रयोग—हिमालय की चोटी एवरेस्ट आकाश से बातें करती है ।

(१३) आगबबूला हो जाना—बहुत क्रोधित होना ।

प्रयोग—अपने सामने किसी को अपने पिता की निन्दा करते देख कर प्रत्येक व्यक्ति का आगबबूला हो उठना स्वाभाविक ही है ।

(१४) आधा तीतर आधा बटेर—दो रंगा होना, दो जबान वाला ।

प्रयोग—तुम्हारा क्या विश्वास ? तुम तो आधे तीतर आधे बटेर हो ।

(१५) ईद का चांद होना—किसी व्यक्ति का बहुत दिन के पश्चात् मिलना ।

प्रयोग—आजकल कहां रहते हो, मिलते ही नहीं, आप तो बिल्कुल ईद के चांद हो गए ।

(१६) आशाओं पर पानी फिर जाना- उम्मीदें टूट जाना ।

प्रयोग—पिता जी की असामयिक मृत्यु से मेरी सारी आशाओं पर पानी फिर गया ।

(१७) आस्तीन का सांप—विश्वासघाती ।

प्रयोग—मैंने एक वर्ष तक उसे कितने प्रेम से रखा, किन्तु वह मेरे ही रुपए चुराकर भाग गया । वह पूरा आस्तीन का सांप निकला ।

(१८) आसमान के तारे तोड़ना—कठिन से कठिन कार्य करना।

प्रयोग—तुमने न जाने उस पर क्या जादू कर दिया है। वह तुम्हारे इशारे पर आसमान के तारे तोड़ने को भी तैयार रहता है।

(१६) आसमान टूट पड़ना—अचानक घोर विपत्ति में फंसना।

प्रयोग—कल रात बेचारी सरोज पर आसमान टूट पड़ा। उसका पति और पुत्र दोनों ही मर गए।

(२०) आसमान पर थूकना—किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति की निन्दा करने पर स्वयं ही निन्दित होना।

प्रयोग—पंडित नेहरू की निन्दा करने वाले व्यक्ति वास्तव में आसमान पर थूकने की कोशिश करते हैं।

(२१) आंखें चार होना—एक दूसरे से आँखें मिलाना।

प्रयोग—दस वर्ष के पश्चात् भी शम्भू से आँखें चार होते ही हम दोनों ने एक दूसरे को पहचान लिया।

(२२) ईंट से ईंट बजाना—नष्ट-भ्रष्ट कर देना।

प्रयोग—महाराणा प्रताप और शिवाजी ने मुगल साम्राज्य की ईंट से ईंट बजा देने की प्रतिज्ञा कर ली थी।

(२३) उल्लू बनाना—मूर्ख बनाना, धोखा देना।

प्रयोग—मुझे उल्लू न बनाओ, मैं तुम्हारी सब चालें समझता हूं।

(२४) उंगली पकड़ कर पहुँचा पकड़ना—थोड़ा मिलते ही अधिक पा लेने का प्रयत्न करना।

प्रयोग—ऐसे लोगों की सहायता करने से क्या लाभ, जो उंगली पकड़कर पहुंचा पकड़ने की कोशिश करें।

(२५) उंगली पर नाचना—पूरी तरह वश में करना।

प्रयोग—दीनदयाल की पत्नी ने उसे उंगली पर नचा रखा है।

(२६) ऊंट के मुंह में जीरा—अधिक आवश्यकता वाले व्यक्ति को कम देना।

प्रयोग—किसी पहलवान को पाव भर दूध पिलाना तो ऊंट के मुंह में जीरा देना है।

(२७) एक आंख से देखना—समान व्यवहार करना।

प्रयोग—गाँधी जी तो हिन्दू मुसलमान सबको एक आँख से देखते थे।

(२८) एड़ी चोटी का पसीना एक करना—बहुत परिश्रम करना।

प्रयोग—बाढ़-पीड़ितों को बचाने में हमारी सरकार ने एड़ी चोटी का पसीना एक कर दिया।

(२९) कलेजे पर सांप लौटना—ईर्ष्या से जलना।

प्रयोग—मेरी आशातीत सफलता का समाचार सुनकर रमेश के कलेजे पर सांप लौट गया।

(३०) कागजी घोड़े दौड़ाना—केवल पत्र व्यवहार करते रहना।

प्रयोग—आजकल कोरे कागजी घोड़े दौड़ाने से नौकरी नहीं मिलती, कोई सिफारिश ढूंढने की कोशिश करो।

(३१) कान कतरना—बढ-चढ़ कर होना।

प्रयोग—यह छोटा सा बालक साहस में बड़ों-बड़ों के कान कतरता है।

(३२) कान पर जूं न रेंगना—बार-बार कहने पर भी ध्यान न देना।

प्रयोग—मैंने उसे जुआ खेलने से लाख बार मना किया, परन्तु उसके कान पर जूं तक नहीं रेंगी।

(३३) कान भरना—चुगली करना।

प्रयोग—चापलूस क्लर्क अपनी तरक्की के लिए दूसरे कर्मचारियों के विरुद्ध अफसर के दिन रात कान भरा करते हैं।

(३४) खेत रहना—युद्ध में मारा जाना।

प्रयोग—महाभारत मे देश के हजारों वीर खेत रहे थे।

(३५) गड़े मुर्दे उखाड़ना (प्रथमा, सम्वत् २०१७)—पुरानी बातों को फिर से उखाड़ना।

प्रयोग—अब तो बात पुरानी हो गई, गड़े मुर्दे उखाड़ने से क्या लाभ?

(३६) गर्दन पर छुरी फेरना—अत्याचार करना, हानि पहुंचाना।

प्रयोग—निर्धनों की गर्दन पर छुरी फेरने वाले का कभी भला नहीं हो सकता।

(३७) गागर में सागर भरना—थोड़े में बहुत कहना।

प्रयोग—विहारी ने सचमुच एक-एक दोहे में गागर में सागर भर दिया है।

(३८) गुड़ गोबर कर देना—बना बनाया काम बिगाड़ना।

प्रयोग—मुश्किल से मैंने उसे विवाह करने को तैयार किया था। तुमने उसे फोटो दिखाकर सारा गुड़ गोबर कर दिया।

(३६) गुलछर्रे उड़ाना—मजे उड़ाना।

प्रयोग—बाप की कमाई पर थोड़े दिन गुलछर्रे उड़ा लो, फिर क्या करोगे ?

(४०) घड़ों पानी पड़ जाना—लज्जित हो जाना।

प्रयोग—मेघनाद पर घड़ों पानी पड़ गया, जब वह रावण की राज-सभा में अंगद के पैर को तिल भर भी न डिगा सका।

(४१) घाट-घाट का पानी पीना—बहुत अनुभव प्राप्त करना।

प्रयोग—जो घाट-घाट का पानी पी चुका हो, उसे तुम जैसे छोकरे चकमा नहीं दे सकते।

(४२) घाव पर नमक छिड़कना—दु:खी का दिल दुखाना।

प्रयोग—एक तो वह स्वयं कष्ट में है उस पर तुम ऐसी बातें करके क्यों बेचारे के घाव पर नमक छिड़क रहे हो।

(४३) जान का ग्राहक बनना—प्राण लेने पर उतारू होना।

प्रयोग—जब से मेरी उससे लड़ाई हुई है, वह मेरी जान का ग्राहक बन गया है।

(४४) टका सा जवाब देना—साफ मना कर देना।

प्रयोग—भविष्य में जब कभी तुम मुझसे पैसे माँगने आओगे, तो मैं टका सा जवाब दूँगा।

(४५) टेढ़ी अंगुली से घी निकालना—युक्तियों द्वारा काम निकालना।

प्रयोग—वह ऐसा आदमी है कि बिना टेढ़ी अंगुली किये घी निकालना मुश्किल है।

(४६) टेढ़ी खीर होना—अति कठिन कार्य होना।

प्रयोग—अंग्रेजों से भारत को स्वतन्त्रता दिलाना कोई सहज काम न था, बड़ी टेढ़ी खीर थी।

(४७) थाली का बैंगन—किसी भी पक्ष में न रहने वाला, अपने हानि-लाभ के अनुसार अवसरवादी मनुष्य।

प्रयोग—तुम तो थाली के बैंगन हो, थोड़े से रुपयों के लालच में ही लुढ़क जाओगे।

(४८) थूक कर चाटना—बात कह कर मुकर जाना।

प्रयोग—मेरे पाँच रुपयों के लिये तुमने थूक कर चाट लिया।

(४९) दंग रह जाना—आश्चर्य चकित रह जाना।

प्रयोग—उसकी बातें सुन सुन कर मैं तो दंग रह गया।

(५०) दांतों तले उंगली दबाना (प्रथमा, सम्वत् २०१७)—आश्चर्य प्रकट करना।

प्रयोग—मैं तो उसकी बातें सुनकर दांतों तले उंगली दबाकर रह गया।

(५१) दिल में घर करना—मन में बसना।

प्रयोग—तुम्हारी प्यारी सूरत मेरे दिल में घर कर गई।

(५२) दिवाली मनाना—खुशियाँ मनाना।

प्रयोग—आज तो खूब दिवाली मन रही है, कोई तकड़ी मुर्गी हत्थे चढ़ गई मालूम पड़ती है।

(५२) धूप में बाल सफेद करना—कुछ भी न सीखना।

प्रयोग—मुझे तुम से अधिक अनुभव है, मगर तुम समझते हो कि मैंने धूप में बाल सफेद किये है।

(५४) धोखे की टट्टी—भ्रम उत्पन्न करने वाली, देखने में तो अच्छा किन्तु वास्तव मे बुरा।

प्रयोग—इस कम्पनी के चक्कर में न पड़ना, यह तो रुपया ठगने के लिए धोके की टट्टी लगाई गई है।

(५५) नमक मिरच लगाना—बात बढ़ा-चढ़ाकर कहना।

प्रयोग—तुमने खूब नमक मिर्च लगाकर मेरी शिकायत की होगी, तभी तो आज मुझे मास्टर जी ने पीटा।

(५६) नमक हरामी करना—स्वामी का अहित करना, मालिक के साथ बेवफाई करना, कृतघ्न होना।

प्रयोग—जिसके यहां तुमने जीवन भर नौकरी की, उसी के साथ नमक हरामी करते हुए तुम्हें लज्जा न आई।

(५७) नमक हलाली करना—वफादारी करना, कृतज्ञता निभाना।

प्रयोग—मैं तो जिसके यहाँ नौकरी करता हूं, उसके साथ पूरी-पूरी नमक हलाली करता हूं।

(५८) पानी पानी होना—लज्जित होना।

प्रयोग—मुझे देखते ही रमा पानी पानी हो गई।

(५९) प्राण पखेरू उड़ जाना—मर जाना।

प्रयोग—एक दिन की बीमारी में ही उसके प्राण पखेरू उड़ गए।

(६०) बगलें झांकना—निरुत्तर हो जाने के कारण लज्जित हो जाना।

प्रयोग—हैडमास्टर ने जब कक्षा में एक सवाल पूछा, तो सब के सब लड़के बगलें झाँकने लगे।

(६१) बहती गंगा में हाथ धोना—मौके पर दूसरों के साथ स्वयं भी लाभ उठाना।

प्रयोग—भाई लड़ाई का जमाना था, वह भी ब्लैक मार्केट की बहती गंगा में हाथ धोकर लखपती बन गया।

(६२) बाल सफेद होना—बुढ़ापा आना।

प्रयोग—मेरे तो बाल सफेद हो गये अब घर का भार तुम्ही सम्भालो।

(६३) बालू की भीति—जिसका भरोसा न हो, शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तु।

प्रयोग—मनुष्य का जीवन बालू की भीति है, न जाने कब ढह जाए।

(६४) भागीरथ प्रयत्न—दुष्कर एव प्रशंसनीय प्रयत्न।

प्रयोग—प्रताप तथा शिवाजी जैसे शूरवीरों ने औरंगजेब से हिन्दू-मान की रक्षा का सचमुच भागीरथ प्रयत्न किया।

(६५) मिट्टी का माधो—निरा मूर्ख।

प्रयोग—तुम तो निरे मिट्टी के माधो हो, न जाने तुम्हें कब अकल होगी।

(६६) मुंह में पानी भर आना—खाने को तबियत ललचा उठना।

प्रयोग—उसे खीर खाते देखकर मेरे भी मुंह में पानी भर आया।

(६७) रात आंखों में काटना—नींद न आना।

प्रयोग—तुम्हारी याद में बेचैन रहने के कारण मैंने कल सारी रात आँखों में काटी।

(६८) लकीर का फकीर होना (प्रथमा, सम्वत् २०१६)—पुरानी प्रथा का ही अनुगामी होना।

प्रयोग—लकीर के फकीर लोगों ने हिन्दू तलाक बिल का घोर विरोध किया था।

(६९) लम्बी तानना—निश्चिन्त होकर सोना।

प्रयोग—आठ बज गये और तुम अभी तक लम्बी ताने पड़े हो।

(७०) विष के घूंट पीना—कटु वचन सहना।

प्रयोग—मैंने उसे इतनी जली कटी सुनाई मगर वह चुपचाप विष के घूंट पीता रहा।

(७१) सब्ज बाग दिखाना—झूठी आशा दिलाना।

प्रयोग—वह बहुत बड़ा धोखेबाज है। तुमको सब्ज बाग दिखा रहा है। तुमको उससे सावधान रहना चाहिए।

(७२) सिर चढ़ाना—आदत बिगाड़ना।

प्रयोग—नौकर को सिर पर चढाना ठीक नही।

(७३) सिर पर भूत सवार होना—धुन सवार होना।

प्रयोग—न जाने उसके सिर पर कौनसा भूत सवार है कि किसी की सुनता ही नहीं।

(७४) हाथ पर हाथ धरकर बैठना—निठल्ले बैठना।

प्रयोग—भाई, कब तक हाथ पर हाथ धरे बैठे रहोगे, कुछ काम धाम क्यों नहीं शुरू करते ?

(७५) हाथ मलना—पछताना।

प्रयोग—अवसर निकल जाने के बाद किसी काम के लिये हाथ मलने से क्या लाभ ?

(७६) हाथों के तोते उड़ जाना—स्तब्ध रह जाना।

प्रयोग—अचानक पत्नी की मृत्यु का तार पाकर मेरे हाथों के तोते उड़ गये।

(७७) हाथों हाथ बिकना—बहुत जल्दी बिकना।

प्रयोग—ईश्वर ने चाहा तो यह किताब हाथों हाथ बिक जायेगी।

(७८) हाथों हाथ लेना—सम्मान पूर्वक स्वागत करना।

प्रयोग—घर पहुंचते ही गांव वालों ने मुझे हाथों हाथ लिया।

(७९) होंठ चबाना—बहुत क्रोध करना।

प्रयोग—मारे क्रोध के वह होठ चबाने लगा।

(८०) चम्पत हो जाना—भाग निकलना।

प्रयोग—कोई कोई बदमाश जेल से भी चम्पत हो जाते हैं।

(८१) लोहे के चने चबाना (प्रथमा, सम्वत् २०१७)—कठिन काम होना।

प्रयोग—बी० ए० पास करना लोहे के चने चबाना है।

(८२) घी के चिराग जलाना (प्रथमा, सम्वत् २०१७)—बहुत खुशी मनाना।

प्रयोग—आजकल उसे बहुत लाभ हो रहा है फिर वह घी के चिराग क्यों न जलाये।

(८३) आंखें दिखाना (प्रथमा, सम्वत् २०१६)—अकड़ना, क्रोध में भर कर घूरना।

प्रयोग—शर्म नहीं आती, कल का छोकरा हमको आंखें दिखाता है।

(८४) दम तोड़ना (प्रथमा, सम्वत् २०१६)—मृत्यु हो जाना।

प्रयोग—महात्मा गांधी के दम तोड़ते ही सारे संसार में हाहाकार मच गया।

(८५) दूध की लाज (प्रथमा, सम्वत् २०१६)—सम्मान, प्रतिष्ठा, आत्माभिमान, शपथ।

प्रयोग—(१) राजपूत अपनी माता के दूध की लाज रखनेके लिए वीरता के साथ अपने प्राण देते थे, परन्तु शत्रु को पीठ नहीं दिखाते थे।

(२) मुझे दूध की लाज है जो मैं इस कार्य को किए बिना लौटूँ।

(८६) छक्के छुड़ाना (प्रथमा, सम्वत् २०१६)—परास्त कर देना।

प्रयोग—अकेले वीर अभिमन्यु ने चक्रव्यूह में बड़े-बड़े वीरों के छक्के छुड़ा दिए।

लोकोक्तियां

(१) चार दिन की चांदनी फिर अंधेरी रात (प्रथमा, सम्वत् २०१५) सुख के दिन स्थिर नहीं रहते।

प्रयोग—अरे भाई मोहन अब तुम पश्चात्ताप क्यों करते हो ? यह समय तो परिवर्तनशील है ! यहाँ सब दिन समान नहीं रहते। यहाँ तो 'चार दिन की चांदनी फिर अन्धेरी रात' का नियम अटल है।

(२) हाथ कंगन को आरसी क्या (प्रथमा, सं० २०१५, २०१६)—प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं।

प्रयोग—तुम इतने क्यों बोल रहे हो ? चल कर देख लो किसका अपराध है। हाथ कंगन को आरसी क्या ?

(३) मन चंगा तो कठौती में गंगा (प्रथमा, सं० २०१५)—पवित्र-हृदय मनुष्य को गंगा भी जाने की आवश्यकता नहीं।

प्रयोग—मैं इन तीर्थ स्नान आदि बाहरी आडम्बरों की आवश्यकता पर विश्वास नहीं करता हूं। मेरा तो सिद्धान्त है कि मन चंगा तो कठौती में गंगा।

(४) ऊंची दुकान फीका पकवान (प्रथमा, सं० २०१४, २०१६)—दिखावा अधिक, परन्तु तत्त्व कुछ न होना।

प्रयोग—इनके पास क्या रखा है ? ये तो केवल दिखावे के लिए हैं। इनका तो वही हाल है कि ऊँची दूकान फीका पकवान।

(५) धोबी का कुत्ता घर का न घाट का (प्रथमा, सं० २०१४)—कहीं का न रहना।

प्रयोग—या तो तुम मेरी सहायता करने का वचन दो, वरना मुझे राम के पास जाने दो। कहीं ऐसा न हो कि धोबी का कुत्ता घर का रहे न घाट का।

(६) चोर की दाढ़ी में तिनका (प्रथमा, सं० २०१४)—अपराधी अपराध को छिपा नहीं सकता।

प्रयोग—मैं तुम्हारा नाम तो नहीं ले रहा हूं। तुम क्यों चिढते हो ? वास्तव में चोर की दाढ़ी में तिनका होता है।

(७) चोरी और सीना जोरी (प्रथमा, सं० २०१६)—अपराध करके मुकरना।

प्रयोग—एक तो तुमने मेरी पुस्तक चुराई है और फिर अकड़ते हो। यह तो खूब रहा 'चोरी और सीना जोरी' इसी को कहते है।

(८) आंख के अन्धे नाम नयन सुख (प्रथमा, सं० २०१४)—गुणों के विरुद्ध नाम होना।

प्रयोग—सब लोग विद्याचन्द्र को बहुत बुद्धिमान् समझते थे, परन्तु वह तो कोरा मूर्ख ही निकला। इस पर मोहन ने कहा कि भई वह तो आंख का अंधा परन्तु नाम नयनसुख।

(९) ओखली में सिर दिया तो मूसलों से क्या डर—जब किसी कठिन कार्य में हाथ डाला तो फिर कष्टों की क्या चिन्ता?

प्रयोग—भाई जब मैदान में आ ही डटे, तो फिर मरने या जीवित रहने की क्या चिन्ता। अरे जब 'ओखली में सिर दिया तो मूसलों से क्या डर?'

(१०) उल्टा चोर कोतवाल को डांटे—अपराधी अपना दोष न मान-कर दोष बताने वाले को ही दोषी ठहरा दे।

प्रयोग—मैंने मोहन को सिगरेट पीते देखकर उसके बाप से शिकायत की, तो वह मुझे ही आँखें निकाल कर बोला तुमने ही तो पिलाई थी और अब शिकायत करते हो? मेरे मुँह से निकल ही गया वाह भाई! उल्टा चोर कोतवाल को डांटे।

(११) एक करेला, दूजे नीम चढ़ा—एक तो स्वभाव से ही दुष्ट होना, उस पर किसी कारण उसकी दुष्टता और बढ़ जाये।

प्रयोग—रामू एक तो स्वभाव से ही झगड़ालू था और अब शराब पीने लगा, इससे वह किसी न किसी से प्रतिदिन झगड़ता है अब तो उसका वही हाल है कि 'एक करेला दूजे नीम चढ़ा'।

(१२) आम के आम गुठलियों के दाम—किसी काम में दुगुना लाभ उठाना।

प्रयोग—सरोज इतनी चतुर है कि फटे पुराने कपड़े फेंकती नहीं, बल्कि उनसे चीनी मिट्टी के बर्तन खरीद लेती है। इस प्रकार वह अपने 'आम के आम गुठलियों के दाम' बना लेती है।

(१३) आप मरे जग परलै—अपने मरने के बाद अपने लिए तो संसार ही समाप्त हो जाना है।

प्रयोग—अपना जीवन चैन से कट जाय, उसके पश्चात् क्या होगा, इसकी चिन्ता कौन करे। 'आप मरे जग परलै'।

(१४) उल्टे बांस बरेली को—उल्टा काम करना।

प्रयोग—खुर्जे का घी तो समस्त भारत में प्रसिद्ध है और तुम वहाँ जाते हुए दिल्ली से घी ले जा रहे हो। यह तो वही बात हुई कि 'उल्टे बांस बरेली को'।

(१५) एक अनार सौ बीमार—एक वस्तु के कई ग्राहक होना।

प्रयोग—गांव भर में एक तो वैद्य है, मगर हैजा इतना ज़ोर पकड़ रहा है कि घर-घर लोग मर रहे है। बेचारा ऐसी दशा में एक साथ किस-किस के जाय? वही हाल है कि 'एक अनार सौ बीमार'।

(१६) एक और एक ग्यारह होते हैं—संगठन और एकता मे बड़ी शक्ति होती है।

प्रयोग—भाई, जिस काम को करो, सब भाई मिल-जुल कर किया करो, तभी उसमें सफलता होगी। यह न भूलो कि 'एक और एक ग्यारह होते हैं'।

(१७) एक पंथ दो काज (प्रथमा सं० २०१४)—एक उद्योग से दो काम करना।

प्रयोग—गत वर्ष रमेश ने गढ़ के मेले पर गंगा स्नान भी किया और दूकान लगाकर खूब पैसा भी कमाया। वह कितना बुद्धिमान् निकला—'एक पंथ दो काज' किए।

(१८) एक म्यान में दो तलवारें नहीं आ सकतीं—एक वस्तु के दो समान अधिकारी एक साथ उस वस्तु पर ऐकाधिपत्य नहीं कर सकते।

प्रयोग—एक आदमी यदि दो विवाह कर ले, तो वे दोनों स्त्रियाँ एक साथ कभी प्रेम और शान्ति से नहीं रह सकतीं। तभी तो कहा गया है कि—'एक म्यान में दो तलवारें नहीं आ सकतीं'।

(१९) एक हाथ से ताली नहीं बजती—झगड़ा एक ओर से नहीं होता, दोनों ओर से होता है।

प्रयोग—मैं कैसे मान लूँ कि इस झगड़े में सारा दोष मोहन ही का है। 'एक हाथ से ताली नहीं बजती'।

(२) ओस चाटने से प्यास नहीं बुझती—अधिक की आवश्कता के समय थोड़े से संतोष नहीं होता।

प्रयोग—मुझे १००) रुपये की आवश्कता है और आप मुझे पांच रुपये दे रहे हैं। भला सोचो तो कि 'ओस चाटने से प्यास नहीं बुझती है।'

(२१) कंगाली में आटा गीला—मुसीबत में और मुसीबत टूट पड़ना।

प्रयोग—बेचारा एक तो निर्धन वैसे ही था, दूसरे उसका घर भी बाढ़ में बह गया। वही बात हुई—'कंगाली में आटा गीला।'

(२२) आसमान से गिरा खजूर में अटका—एक विपत्ति से बचा तो दूसरी में फँस गया।

प्रयोग—बेचारा रमेश मोटर के नीचे से बाल-बाल बचा, तो आगे जाकर तांगे मे टकरा गया। वही बात हुई कि—"आसमान से गिरा खजूर में अटका।"

(२३) काठ की हाँडी बार-बार नहीं चढ़ती—किसी को बार-बार धोखा नहीं दिया जा सकता।

प्रयोग—एक बार तुम बहाना करके मुझसे रुपये ठगकर ले गये। अब बार-बार तुम्हारी चाल नहीं चलेगी। भाई "काठ की हांडी बार-बार नहीं चढ़ती।"

(२४) कोयलों की दलाली में हांथ काले—बुरी संगति का प्रभाव भी बुरा ही होता है।

प्रयोग—तुम से लाख बार कहा है कि जहां जुआ हो रहा है, वहां खड़े भी न हुआ करो। किसी दिन पुलिस की लपेट में आ जाओगे। तभी तो कहा गया है—"कोयलों की दलाली में हाथ काले होते हैं।"

(२५) खाने के दांत और दिखाने के और—अन्दर से कुछ और बाहर से कुछ और।

प्रयोग—तुम्हारे मन में तो कपट है, लेकिन ऊपर से सादा बनावटी प्रेम दिखाते हो। मैं अच्छी तरह समझता हूं कि तुम्हारे "खाने के दांत और दिखाने के और हैं।"

(२६)—बन्दर क्या जाने अदरक का स्वाद—(प्रथमा, सं० २०१५) किसी व्यक्ति को ऐसी वस्तु देना, जिसकी वह कद्र न जानता हो।

प्रयोग—अरे वह क्या जाने इन चित्रों का मूल्य। वह तो केवल दुकानदारी ही करना जानता है, वह कोई चित्रकार तो नहीं है। सच कहा है—"बन्दर क्या जाने अदरक का स्वाद।"

(२७) घर की मुर्गी दाल बराबर—जो वस्तु अपने घर में ही हो, उसका आदर नहीं होता।

प्रयोग—मोहन की स्त्री इतनी सुन्दर है, लेकिन वह उससे बात तक नहीं करता, वेश्याओं के तलवे चाटता फिरता है। सच है भाई—"घर की मुर्गी दाल बराबर।"

(२८) घर का भेदी लंका ढाये-आपस की फूट से घर तबाह हो जाता है।

प्रयोग—जब राणा प्रताप का छोटा भाई शक्तिसिंह ही अकबर से जा मिला, तो उनकी पराजय क्योंकर न होती। संसार कहता है कि—घर का भेदी लंका ढाये।

(२९) घर खीर तो बाहर खीर—घर में आदर हो तो बाहर भी आदर होता है।

प्रयोग—तुम्हारे घर वाले ही जब तुम्हें टके को नहीं पूछते, तो बाहर वाले तुम्हारी क्या इज्जत करेंगे। भाई संसार का तो यही नियम है कि—घर खीर तो बाहर खीर।

(३०) चमड़ी जाय पर दमड़ी न जाय—निहायत कंजूस आदमी के लिए प्रयुक्त होती है।

प्रयोग—श्यामलाल करोड़पति होकर भी अपने लिये एक कोट नहीं बनवा सकता चाहे ठंड लगने के बाद में डाक्टरों को सैकड़ों रुपये देने पड़ जाएँ। भाई ऐसी कंजूसी भी किस काम की कि—चमड़ी जाय पर दमड़ी न जाय।

(३१) चलती का नाम गाड़ी है—जिसे सफलता मिलती है, लोग उसी की वाह-वाह करने लगते हैं।

प्रयोग—आज जो मनुष्य मिनिस्टर बन गया है वह कल तक धक्के खाता

फिरता था, लोग अब उसकी जय जयकार करने लगे हैं। सच है भाई—चलती का नाम गाड़ी है।

(३२) छछून्दर के सिर में चमेली का तेल—(प्र०, सं० २०१४)—किसी अयोग्य व्यक्ति को यश अथवा कोई अन्य उत्तम वस्तु प्राप्त हो जाय तो उसके विषय में प्रयुक्त होती है।

प्रयोग—हमारे गांव का रामू जाति का चमार है, पढ़ा न लिखा, लेकिन सुना है कि मन्त्री बन गया है। वाह प्रभो! अजब तेरी कुदरत अजब तेरा खेल, छछून्दर के सिर में चमेली का तेल।

(३३) अन्धों में काना राजा (प्रथमा, संवत् २०१७)—मूर्खों में थोड़ी बुद्धि वाला भी आदर प्राप्त करता है।

प्रयोग—गांव में पटवारी का आदर जिलाधीश से भी अधिक होता है क्योंकि सारे गांव में वही कुछ पढ़ा-लिखा होता है। वास्तव में अन्धों में काना राजा होता है।

(३४) अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ता (प्रथमा, संवत् २०१७)—कोई व्यवित अकेला ही किसी बड़े कार्य को नहीं करता है।

प्रयोग—भारत की आर्थिक दशा अकेले पंडित जवाहर लाल नेहरू ही नहीं सुधार सकते। जब सारा देश उनका साथ दे, तभी कुछ हो सकता है। आखिर अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता।

(३५) कभी नाव गाड़ीं पर, कभी गाड़ी नाव पर (प्रथमा, संवत् २०१७)—समय-समय पर एक दूसरे की सहायता की आवश्यकता सबको होती है।

प्रयोग—वकील साहब के पास डाक्टर साहब को आया देखकर मोहन ने कहा, 'कहिए डाक्टर साहब, वकील साहब तो आप के पास आते ही रहते हैं आज आपको भी यहां आना पड़ा।" इस पर डाक्टर साहब ने कहा, "मैं तो एक मुक़दमे के सिलसिले में आया हूं। यह कोई नई बात तो नहीं है कभी नाव गाड़ी पर, कभी गाड़ी नाव पर।"

(३६) खग ही जाने खग की भाषा (प्रथमा संवत् २०१७)—जो जिसके साथ रहता है, उसकी बात वही समझ सकता है।

प्रयोग—भाई मैं तो एक साधारण सा दूकानदार हूं मैं तुम्हारी राजनीति की बातें क्या समझ सकता हूं, क्योंकि खग ही जाने खग की भाषा।

(३७) घर का जोगी जोगड़ा आन गाँव का सिद्ध (प्रथमा, सं० २०१७) —अपने घर में योग्यतम व्यक्ति को भी उचित आदर प्राप्त नहीं होता है।

प्रयोग—ठाकुर रवीन्द्रनाथ टैगोर को भारतवर्ष में इतना सम्मान प्राप्त नहीं हुआ जितना विदेशों में मिला। संसार का नियम ही निराला है—घर का जोगी जोगड़ा आन गांव का सिद्ध।

(३८) दूर के ढोल सुहावने (प्रथमा, संवत् २०१७)—बिना देखी व बरती वस्तुओं को हर आदमी अच्छा समझता है।

प्रयोग—बम्बई नगर की लोग इतना प्रशंसा करते हैं, परन्तु जब मैं वहाँ गया तो मुझे कोई विशेषता वहां पर दिखाई नहीं दी। सच है दूर के ढोल सुवाहने।

(३९) नौ नकद न तेरह उधार (प्रथमा, संवत् २०१६, २०१७)— उधार की अधिक कीमत से नकद के थोड़े पैसे अच्छे।

प्रयोग—मुझे इस साइकिल के तुम सौ रुपये की बजाय नव्वे रुपये ही दे दो, परन्तु नकद दे दो, क्योंकि अपना तो सिद्धान्त है—नौ नकद न तेरह उधार।

(४०) भेड़ जहां जायेगी वहीं मूंडी जायेगी। (प्रथमा, संवत् २०१७)— सीधे-सादे किन्तु धनी व्यक्ति से सभी रुपये ऐंठने का प्रयत्न करते हैं।

प्रयोग—मोहन बहुत सीधा-सादा है। प्रत्येक व्यक्ति उससे रुपये ऐंटकर अपना उल्लू सीधा करता है। सच है—भेड़ जहां जायगी वहीं मूंडी जाएगी।

(४१) खरी मजूरी चोखा काम (प्रथमा, संवत् २०१६)—अच्छे पैसे देकर ही अच्छा काम कराना।

प्रयोग—वह काम तो सुबह से संध्या तक करवाना चाहता है और वेतन पेट भरने के लिए भी पर्याप्त नहीं, बताओ फिर मैं कैसे काम करता। अपना तो सिद्धान्त है कि खरी मजूरी चोखा काम।

भारतवर्ष का इतिहास

प्रश्न १—भारतवर्ष की प्राकृतिक अवस्था का देश के इतिहास पर क्या प्रभाव पड़ा है ?

उत्तर—भारतवर्ष को प्राकृतिक दृष्टि से निम्नलिखित तीन भागों में विभाजित किया जाता है—

(१) हिमालय और उसकी पूर्वी तथा पश्चिमी शाखायें।

(२) उत्तरी भारतवर्ष का मैदान।

(३) दक्षिण की उच्च समभूमि (पठार)।

(१) हिमालय पर्वत का प्रभाव :—

(क) हिमालय पर्वत भारत के उत्तर में एक सुदृढ़ दीवार के रूप में खड़ा है, जिसको पार करना बहुत ही कठिन कार्य है। यही कारण है कि उत्तर की ओर से हमारे देश पर बहुत ही कम आक्रमण हुए हैं।

(ख) हिमालय की पूर्वी शाखायें यद्यपि बहुत ऊंची नहीं हैं, परन्तु घने जंगलों से ढकी होने के कारण अलंघ्य हैं। इसी कारण से इस ओर से भी कम आक्रमण होते रहे हैं।

(ग) पाकिस्तान के बनने से पहले उत्तर पश्चिमी सीमा पर खैबर, बोलन आदि के दर्रों के होने के कारण प्राचीन काल में भारतवर्ष पर इसी ओर से आक्रमण होते रहे हैं।

(घ) हिमालय पर्वत और उसकी पूर्वी और पश्चिमी शाखाओं ने उत्तर भारत को शेष संसार से लगभग सर्वथा पृथक् कर रखा है। यही कारण है कि भारतीय सभ्यता पर विदेशी सभ्यता का बहुत कम प्रभाव पड़ा है।

(२) उत्तरी मैदान का प्रभाव :—

(क) उत्तरी मैदान बहुत उपजाऊ है, इसलिए भारतवर्ष का सबसे धनाढ्य प्रदेश यही है। यहां की जलवायु गर्म होने के कारण इस प्रदेश के निवासी आलसी बन जाते हैं। विदेशियों के आक्रमण भी इसी प्रदेश पर हुए और यहां के निवासी आलसी होने के कारण उनसे सदा पराजित होते रहे।

(ख) इस प्रदेश के अधिक उपजाऊ होने के कारण यहाँ के निवासियों को अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ता है। उनके पास पर्याप्त समय होने के कारण

यहाँ के लोगों ने मानसिक तथा आत्मिक उन्नति और साहित्य की ओर बहुत ध्यान दिया और यहां पर तर्क विद्या ने भी बहुत उन्नति की।

(ग) इस प्रदेश पर आक्रमण उत्तर पश्चिम की ओर से होते थे और पंजाब आक्रमणकारी के मार्ग में पड़ता था। इसलिये पंजाब सदा विदेशियों की लूटमार का केन्द्र बना रहा। यही कारण है कि पंजाब विद्या तथा सभ्यता की दृष्टि से चिरकाल से अन्य प्रान्तों से पीछे रहा है। परन्तु यहाँ के रहने वाले वीर, साहसी तथा युद्ध-प्रिय रहे हैं।

(घ) राजपूताना के मरुस्थल में भी भारतवर्ष के इतिहास में एक विशेष भाग लिया है। आक्रमणकर्ता इस ऊसर भूमि को जीतना व्यर्थ समझते थे और यदि किसी ने इसे जीता भी, तो वह देर तक इसे न रख सका। इसलिये यहाँ राजपूतों ने अनेक स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिए। ये राज्य आज भी अपनी प्राचीन सभ्यता को स्थिर रखे हुए हैं।

(३) दक्षिण का प्रभाव :—

(क) विंध्याचल और सतपुड़ा पर्वतों ने दक्षिणी भारत को उत्तरी भारत से पृथक् ही रखा है। यही कारण है कि भारतवर्ष के इतिहास में दक्षिणी भारत ने कोई विशेष भाग नहीं लिया। केवल कुछ अवसरों पर उत्तरी भारत के शासकों ने उसे जीता, परन्तु वे भी पूर्ण रूप से उस पर अधिकार न जमा सके।

(ख) मुसलमानों के शासनकाल में उनके अत्याचारों से बचने के लिए अनेक हिन्दू पण्डितो ने भाग कर दक्षिण में शरण ली। इसलिए दक्षिण अब तक भी हिन्दुओं का प्राचीन सभ्यता का केंन्द्र बना हुआ है।

(ग) दक्षिण के पहाड़ों में दुर्गों की रक्षा करना आसान था। यही कारण है कि मराठे मुगलों की विशाल सेना से टक्कर ले सके।

(घ) यहाँ के लोगों को जीविका कमाने के लिये बहुत परिश्रम करना पड़ता है। इसीलिये मराठे वीर, साहसी तथा फुर्तीले होते हैं।

(च) दक्षिण भारत तीन ओर से समुद्रों से घिरा हुआ है। इसलिये प्राचीनकाल से ही दूसरे देशों के साथ व्यापार दक्षिण भारत में स्थित बन्दरगाहों के द्वारा ही होता रहा है।

प्रश्न २—सिन्धु नदी की घाटी की प्राचीन सभ्यता के बारे में आप जो जानते हो सो लिखिए। (प्रथमा, सं० २०१६)

अथवा

सिन्धु नदी के समीपवर्ती हड़प्पा, मोहनजोदड़ो के आधुनिक आविष्कारों से किन-किन प्राचीन ऐतिहासिक तत्त्वों पर प्रकाश पड़ा है? संक्षेप में लिखो। (प्रथमा परीक्षा, सं० २०१०)

अथवा

आर्यों के भारत में आने से पूर्व भारत की सभ्यता पर प्रकाश डालो।

उत्तर—प्राचीन खंडहरों तथा अन्य अवशिष्टों की खोज से उस काल के विषय में बहुत जानकारी प्राप्त होती है। इनमें हड़प्पा और मोहनजोदड़ो प्रसिद्ध हैं। इसकी खुदाई करने पर सिन्धु नदी की घाटी की प्राचीन सभ्यता के बारे में अनेक ऐसी बातों का पता चला है जो कि मिश्र, सीरिया तथा मेसोपोटामिया के साथ लाकर खड़ा करती हैं।

इन नगरों की खुदाई से बड़े-बड़े भवन, युद्ध के शस्त्र, खिलौने, मिट्टी और पत्थर की मूर्तियां, आभूषण, बहुत सी मुद्राएं और कई अन्य वस्तुएं भूमि के नीचे से मिली हैं। ये सब वस्तुएं बहुत ही सुन्दर तथा उच्च कोटि की कारीगरी का नमूना है। भवन इतने सुन्दर तथा पक्के बने है कि उनसे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उस समय मानव सभ्यता पूर्ण रूप से विकसित हो चुकी थी। इस सभ्यता को सिन्धु घाटी की सभ्यता कहते हैं।

यह सभ्यता शहरी सभ्यता थी। इच सभ्यता को लगभग छः हजार वर्ष प्राचीन माना जाता है। इससे स्पष्ट है कि भारतीय सभ्यता मिश्र, सीरिया और चीन की सभ्यताओं से भी प्राचीन है। कुछ इतिहासकार इसको आर्यों की सभ्यता मानते है, परन्तु अन्य इतिहासकारो के मत नुसार यह द्राविडियन या सुमेरियन सभ्यता है।

इन दो नगरों की खुदाई से उस समय के लोगों के जीवन के विषय में कहा जा सकता है कि वे बहुत सभ्य थे। उनका भोजन सादा था। वे गेहूं, जौ तथा खजूरों का प्रयोग करते थे। वे माँस, मछली तथा अंडे भी खाते थे। उनके अनेक व्यवसाय थे। वे खेती-बाड़ी करते और पशु पालते थे। गाय, भैंस और बकरियां दूध के लिये पाली जाती थीं। ये लोग सूत कातना और कपड़ बुनना भी जानते थे। मिट्टी के बर्तन बनाने का काम बहुत होता था। कई लोग बड़े धनाढ्य व्यापारी थे। ये लोग छोटी दाढ़ी रखते थे। स्त्री तथा पुरुष दोनों ही आभूषण पहनते थे। उनके आभूषण सोने चांदी तथा हाथी

दांत के बने होते थे । ये लोग लिखना-पढ़ना भी जानते थे । यहाँ से कई मुद्रायें भी प्राप्त हुई हैं जिन पर जन्तुओं के चित्र और अक्षर खुदे हैं, परन्तु अभी तक ये अक्षर पढ़े नहीं जा सके हैं ।

इनके मकान पक्की ईटों के बने होते थे । वे बहुत साफ सुथरे होते थे । प्रत्येक घर में कुआं, स्नानागार और अग्निकुण्ड होते थे । पानी के वाहर जाने के लिये नालियाँ बनी होती थीं । घरों में शौचागार नहीं थे । गालियाँ और बाजार सीधे और पर्याप्त लम्बे-चौड़े होते थे । शहरों मे बड़ी-बड़ी नलियां वनी हुई थीं । इसने स्पष्ट है कि म्यूनिसिपल प्रवन्ध बहुत अच्छा था । नगरों में पक्के स्नानगार होते थे । इससे स्पष्ट है कि लोग स्नान के बहुत शौकीन थे और साफ-सुथरे रहते थे । ये लोग खेल-कूद में भी बहुत चतुर थे ।

इन लोगों के धर्म के विषय में ऐसा प्रतीत होता है कि ये लोग देवी-देवताओं की पूजा करते थे । इनके एक देवता की आकृति आजकल के शिव से मिलती है । ये लोग वृक्ष तथा पशुओं की भी पूजा करते थे । ये लोग धातुओ का प्रयोग करते थे और पशु पालते थे, परन्तु विचित्र बात यह है कि लोहे के और घोड़ों के प्रयोग का कोई प्रमाण नहीं प्राप्त हुआ है ।

प्रश्न ३—प्राचीन आर्यो के सामाजिक जीवन की विशेषताओं पर प्रकाश डालो । (प्रथमा परीक्षा, सं० २०१०)

अथवा

वैदिक काल मे आर्यो के सामाजिक और राजनीतिक जीवन का वर्णन कीजिए । (प्रथमा परीक्षा सं० २००३)

अथवा

आर्यो की राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक दशा का वणन कीजिए ।
(प्रथमा, सं० २०१७)

उत्तर—आर्यो ने भारत में आकर कोल और द्राविड़ों को पराजित करके लगभग समस्त उत्तरी भारत पर अधिकार कर लिया । धीरे-धीरे उनकी सभ्यता का भी प्रचार होता गया । उनके द्वारा रचित वेदों, उपनिषदों तथा संहिताओं को पढ़कर हमें उसके सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक जीवन के विषय में पूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है ।

सामाजिक-जीवन

(१) आर्यो का जीवन बहुत सरल तथा पवित्र था ।

(२) वे खेती करते और पशु पालते थे ।

(३) वे लोग नगरों से दूर वनों, पर्वतों की उपत्याकाओं तथा नदियों के तट पर अपना जीवन व्यतीत करते थे । नगरों से इन्हें घृणा थी ।

(४) ये लोग सम्मिलित परिवार में रहते थे । गृह का सबसे बड़ा व्यक्ति गृह-स्वामी होता था ।

(५) विवाह में पूर्ण स्वतन्त्रता थी । उस समय बाल-विवाह तथा अनमेल विवाह नहीं होते थे, विधवा-विवाह अवश्य प्रचलित थे ।

(६) वे सोम तथा सुरा पीते थे। कभी-कभी मांस का प्रयोग भी करते थे ।

(७) सूती, रेशमी तथा ऊनी सभी प्रकार के वस्त्रों का प्रयोग होता था ।

(८) स्त्री-पुरुष दोनों ही आभूषण पहनते थे । धनी लोग तो मणियाँ भी रखते थे ।

(९) शृंगार के प्रसाधन पर्याप्त मात्रा में थे ।

(१०) वे लोग घुड़-दौड़, रथ-दौड़ तथा पासे का जुआ खेलने के शौकीन थे ।

(११) आर्य लोग ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय तथा शूद्र चार वर्णों में विभाजित थे और ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास इन चार आश्रमों की व्यवस्था थी ।

(१२) स्त्रियों का महत्व बहुत अधिक था । प्रायः सभी पर्वों और उच्च कार्यों में स्त्री का होना बहुत आवश्यक होता था ।

राजनीतिक जीवन

(१) समस्त साम्राज्य जनपदों में बंटा हुआ था । वे जनपद विशों से और विश ग्रामों में विभाजित थे ।

(२) ग्रामों का मुखिया 'ग्रामणी' कहलाता था और 'जनपद' का नेता राजा होता था । युद्ध के समय ये ही सेनापति का कार्य संभालते थे ।

(३) राजा का महत्व बहुत अधिक था, परन्तु उसे सभा के नियमों का पालन करना पड़ता था ।

(४) मन्त्रि-मण्डल में पुरोहित का महत्व बहुत अधिक होता था ।

(५) राजा प्रजा से कर लेता था । वह काम भी करता था और सैनिक संगठन भी ।

(६) आय का छठा भाग कर के रूप में लिया जाता था। यह कर अन्न के रूप में लिया जाता था।

(७) सैनिक शक्ति का महत्व भी बहुत अधिक था। सरदार लोग 'रथों' पर चढ़कर युद्ध करते थे। और पैदल सिपाही अपने साथ तीर, कमान, भाले; कवच आदि सभी कछ रखते थे।

धार्मिक-जीवन

(१) आर्य लोग विभिन्न देवी देवताओं की पूजा करते थे।

(२) देवताओं को प्रसन्न करने के लिये यज्ञ करते थे और यज्ञों में पशु बलि दिया करते थे।

वैदिक काल की मामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक स्थिति को देखने से पता चलता है कि उस काल की सभ्यता बहुत ऊची थी।

प्रश्न ४—हिन्दुओं के जातपात के विचार से तुम क्या समझते हो? इसके लाभ तथा हानियों का वर्णन करो। (प्रथमा, सं० २०१९)

उत्तर—हिन्दू समाज प्राचीन काल से चार वर्णों में विभाजित है—(१) ब्राह्मण, (२) क्षत्रिय, (३) वैश्य, (४) शूद्र। ये वर्ण ही जातियां कहलाती हैं। आरम्भ में यह विभाग केवल व्यवसायों के विचार से किया गया था और एक जाति से दूसरी जाति में जाना और परस्पर विवाह सम्बन्ध करना वर्जित न था, परन्तु समय के व्यतीत होने के साथ-साथ जात पात पैतृक बन गई और जाति जन्म से मानी जाने लगी। ऐसी दशा में एक जाति से दूसरी जाति में जाना असम्भव हो गया। आजकल तो पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से ये जाति-पांति-बन्धन पर्याप्त ढीले होते जा रहे हैं।

यह ठीक रूप से नहीं कहा जा सकता कि जात पात का आरम्भ कब और किन अवस्थाओं और दशाओं में हुआ। साधारणतया लोगों का विचार है कि वैदिक काल में जात-पात का कोई भेद नहीं था। वैदिक काल जब था तब आर्य लोग पंजाब में रहते थे। परन्तु इतना अवश्य था कि आक्रमणकारी जिनका रंग गोरा था अपने आप को आर्य और भारत के मूल निवासियों को जिनका रंग काला था दस्यु कहते थे। परन्तु जब आर्य लोग पंजाब से आगे बढ़कर गंगा की घाटी में पहुंचे तो जात-पात दृढ़ता से स्थापित हो गई और आर्य लोगों ने, जो भिन्न-भिन्न व्यवसाय करते थे, अपने आपको पेशे के अनुसार चार भागों में विभक्त किया।

(१) ब्राह्मण—ब्राह्मण लोग बहुत विद्वान और तपस्वी होते थे। इनका

काम धार्मिक कर्मकाण्डों को पूरा करना था। इनका बहुत आदर किया जाता था। राजाओं के मन्त्री प्रायः ब्राह्मण ही हुआ करते थे।

(२) **क्षत्रिय**—इनका काम लड़ना और देश को शत्रुओं से बचाना होता था। राजा प्रायः इसी जाति के होते थे।

(३) **वैश्य**—वैश्य लोग व्यापार और खेती-बाड़ी करते थे।

(४) **शूद्र**—शूद्र लोग छोटे दर्जे के लोग होते थे। इनका काम ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की सेवा करना था।

समय के साथ-साथ जातियों में वृद्धि होती चली गई। इस वृद्धि के बहुत से कारण थे:—

(१) भारतवर्ष की मूल जातियों ने हिन्दू धर्म में प्रवेश करके अलग जातियां बना लीं। जैसे मध्य भारत के गौड और बंगाल के राजवंशी।

(२) बाहरी आक्रमणकारियों ने भी अपनी अलग जातियां बना लीं। जैसे गूजर और हूण।

(३) लोगों ने भिन्न-भिन्न व्यवसाय ग्रहण करके अपनी नई जातियां बना लीं। जैसे लोहार, सुनार, धोबी, तरखान, मोची।

(४) एक जाति से पृथक् हुए लोग अलग-अलग स्थानों पर रहने से उनके रहन-सहन में भेद पड़ गया और उन्होंने एक दूसरे से विवाह और खान-पान का सम्बन्ध तोड़ दिया और अलग जातियां बन गईं।

जात पात से लाभ

(१) **कला कौशल की उन्नति**—इससे यह लाभ हुआ कि प्रत्येक मनुष्य अपने पूर्वजों का व्यवसाय ग्रहण करने लगा। इससे यह हुआ कि सारे कला कौशल विशेष-विशेष वंशों और जातियों के अधिकार में आ गये, जिससे कला-कौशल ने बड़ी उन्नति की।

(२) **रक्त की पवित्रता**—अपनी-अपनी जाति में रहने के कारण रक्त की पवित्रता बनी रही।

(३) **शुद्ध चरित्र**—जात-पात के कारण ऊंची जातियों का चाल-चलन और आचार-व्यवहार सुधरा रहा क्योंकि उन्हें डर था कि अगर वे बुरे काम करेंगे तो उन्हें बिरादरी से निकाल दिया जायेगा।

(४) **बिरादरी का अनुभव**—एक ही वर्ग के लोगों में घनिष्ठ प्रेम और सहानुभूति हो गई जिससे धनी मनुष्यों ने निर्धन लोगों की सहायता करनी

आरम्भ कर दी ।

जात-पात से हानियाँ

(१) **जातीय उन्नति में बाधा**—जात-पात के कारण हिन्दू जाति असंख्य भागों में बँट गई जो परस्पर ईर्ष्या-द्वेष रखते हैं। इसी कारण हिन्दू एक सुदृढ़ तथा संयुक्त जाति नहीं बन सके हैं।

(२) **विवाह में बाधा**—जात-पात की व्यवस्था ने हिन्दुओं में विवाह के क्षेत्र को बहुत ही संकुचित कर रखा है और कहीं-कहीं यह देखने में आया है कि कई हिन्दू विवाह न होने के कारण दूसरे धर्म को ग्रहण कर लेते हैं।

(३) **उच्च शिक्षा में बाधा**—जात-पात के कारण बहुत सी जातियों ने ऐसे नियम बना रक्खे थे कि जिससे लोग विदेश जाकर नाना प्रकार की विद्याओं को प्राप्त नहीं कर सके।

(४) **ऊंची जातियों की हानि**—ऊंचे वर्ग के लोग अत्यन्त निर्धन होने पर भी नीची जातियों के धन्धे ग्रहण नहीं कर सकते थे क्योंकि वे इसमें अपना अपमान समझते थे।

(५) **व्यक्तिगत उन्नति में बाधा**—जो मनुष्य जिस जाति में पैदा हुआ है वह उस जाति का माना जाता है और वह दूसरा धन्धा ग्रहण नहीं कर सकता था क्योंकि वह जाति बन्धनों से बंधा हुआ था और यह बात भी व्यक्तिगत उन्नति के मार्ग में बाधा थी।

(६) **छूत-छात का आरम्भ**—ऊंची जाति के लोगों का बर्ताव शूद्रों से ठीक नहीं था। ये लोग इनको नीच और इनसे छूना पाप समझते थे, जिससे छूत-छात की समस्या खड़ी हो गई।

(७) **हिन्दू धर्म की उन्नति में बाधा**—वर्तमान काल में अन्य बिरादरी के लोग हिन्दू धर्म में सम्मिलित नहीं हो पाते हैं, क्योंकि उन्हें प्रत्येक बिरादरी में बराबर का सम्मान नहीं दिया जाता है। जिससे हिन्दू धर्म की उन्नति में बाधा उत्पन्न हो गई।

प्रश्न ५—बुद्ध जी की जीवनी तथा उनके धर्म पर प्रकाश डालिए।

(प्रथमा, संवत् २०१९)

उत्तर—गौतम कपिलवस्तु के राजा शुद्धोधन का पुत्र था। वह ईसा से ६२३ अथवा ५६५ वर्ष पूर्व उत्पन्न हुआ और उसका नाम सिद्धार्थ रखा गया। उसकी मां उसकी उत्पत्ति के एक सप्ताह पश्चात् ही स्वर्ग सिधार

गई। सौतेली माँ ने इसका बड़े प्यार से पालन-पोषण किया और क्षत्रिय राजकुमार की भाँति उसकी शिक्षा का प्रबन्ध किया।

विवाह—गौतम सदैव गहरे विचारों में डूबा रहता था। संसार में गरीबों, रोगियों तथा विपत्तिग्रस्त लोगों को देखकर उसका हृदय दुःखी हो जाता था। पिता ने इसके विचारों को बदलने के लिए बहुत कोशिश की, परन्तु कुछ लाभ न हुआ। फिर उसने सोचा कि शायद विवाह हो जाने से उसका मन सांसारिक कार्यों में लग जाए। इसलिए उसने उसका विवाह एक रूपवती राजकुमारी यशोधरा से कर दिया। ब्याह के दस वर्ष पश्चात् एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ, परन्तु राजकुमार की मानसिक अवस्था में कोई परिवर्तन न हुआ।

महान् त्याग—संसार की दैनिक परिस्थिति पर विचार करने से उसे विश्वास हो गया कि संसार दुःखों का घर है। जीवन नश्वर है। प्रत्येक प्राणी रोग, बुढ़ापे तथा मृत्यु का शिकार होता है। इसलिए उसने सांसारिक दुःखों से छुटकारा प्राप्त करने के लिए कोई उपाय ढूंढने का पक्का निश्चय कर लिया। अन्त मे २८ वर्ष की आयु में उसने एक रात अपनी स्त्री एवं बच्चे को सोता छोड़कर वनों का रास्ता लिया और साधुओं का वेश अपना लिया।

ज्ञान प्राप्ति—गौतम आरम्भ में राजगढ़ी में ब्राह्मणों का शिष्य बना, परन्तु उसको शान्ति न मिली, बल्कि यज्ञों के बलिदान से उसका भय और भी बढ़ गया। फिर उसने गया के निकट छः वर्ष तक कठिन तपस्या की। एक दिन वहाँ एक बड़ के वृक्ष के नीचे ध्यान लगाये बैठे थे कि उनको अचानक ज्ञान प्राप्त हो गया, कि सच्चा आनन्द न वनों में है न नगरों मे, बल्कि प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में विद्यमान है और यह मनुष्यमात्र से प्रेम करने तथा शुभ कर्मों से प्राप्त हो सकता है। अब लोग उसे बुद्ध अर्थात् ज्ञानी कहने लगे।

बौद्धमत का प्रचार—अब बुद्ध ने अपने मत का प्रचार करना आरम्भ किया। पहले वह बनारस के निकट सारनाथ में गये। वहाँ उन्होंने तीन महीने में आठ शिष्य बनाये और उनको देश के विभिन्न भागों में प्रचार करने के लिए भेजा। इसके पश्चात् वह रियासत मगध में पहुंचे। वहाँ के राजा बिम्बसार को अपना अनुयायी बनाया। फिर अपनी जन्म भूमि कपिलवस्तु में गये, जहाँ उनके पिता, स्त्री, पुत्र तथा राज्य के प्रतिष्ठित व्यक्ति बौद्धमत

के अनुयायी हो गये। बुद्ध ने अपनी शेष आयु मगध तथा उसके आस-पास के इलाकों में अपने मत का प्रचार करने में व्यतीत की।

बुद्ध का स्वर्गवास—बुद्ध ८० वर्ष की अवस्था में गोरखपुर के निकट कुशी नगर में इस नश्वर शरीर को छोड़ परलोक सिधार गया।

(१) **निर्वाण**—बौद्ध मत में मनुष्य-जीवन का अभिप्राय निर्वाण प्राप्त करना है, जिससे कि मनुष्य आवागमन से छूट जाय और अविनाशी आनन्द प्राप्त कर ले। इस अभिप्राय के लिए बुद्ध ने धर्म के आठ मार्ग बताये—(१) सद्ज्ञान, (२) सद्उद्देश्य, (३) सद्वाणी, (४) सदाचार, (५) शुद्ध आजीविका (रोजी), (६) सद्प्रयत्न, (७) सद्विचार, (८) सच्चा सुख। इन्हें अष्टम मार्ग कहते हैं।

(२) **अहिंसा**—बुद्ध ने अहिंसा अर्थात् किसी प्राणी को दुःख न देने की शिक्षा दी।

(३) **समानता**—बुद्ध ने इस बात पर ज़ोर दिया कि समस्त मनुष्य समान हैं। उसने ब्राह्मण और शूद्र के भेद-भाव को उड़ा दिया।

(४) **कर्म का सिद्धान्त**—बुद्ध का विश्वास था कि मनुष्य को अपने कर्मों का फल अवश्य मिलता है। जैसा कोई करेगा, वैसा भरेगा।

(५) **पुनर्जन्म का विषय**—बुद्ध के विचार में जब तक मनुष्य मोक्ष प्राप्त नहीं कर लेता, जन्म मरण के चक्कर में पड़ा रहता है।

(६) बुद्ध ने ईश्वर के विषय में कोई शिक्षा नहीं दी। वह वेदों के महत्त्व को नहीं मानते थे।

प्रश्न ६—बौद्ध धर्म तथा जैन मत के प्रचार और विकास पर प्रकाश डालते हुए उनमें अन्तर स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—बौद्ध धर्म का प्रचार राजकुमार सिद्धार्थ ने किया। वे अपनी तपस्या के बल पर एक नया धर्म चलाने में सफल हुए, क्योंकि उस समय हिन्दू धर्म में अनेक बुराइयां फैल गई थीं और जनता उनसे दुःखी हो गई जिससे यह धर्म जल्दी से जल्दी फैलना शुरू हो गया। हिन्दू धर्म में चारों ओर ब्राह्मणों का बोल-बाला था। नाना यज्ञों तथा धार्मिक अनुष्ठानों के अधिक लम्बे तथा मंहगे हो जाने के कारण उन पर जनता में अधिक श्रद्धा नहीं रही। पशु बलि का अधिक महत्व था। संस्कृत के अप्रचार से प्रत्येक व्यक्ति वेद और शास्त्रों का अध्ययन नहीं कर पाता था। स्त्रियों की प्रतिष्ठा

पर भी विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था। शूद्रों का सारा समय शष तीन जातियों की सेवा में व्यतीत करना पड़ता था। वर्ण-व्यवस्था की प्रथा अधिक भयानक हो गई थी। जिसका परिणाम यह हुआ कि इस वैदिक धर्म की प्रतिक्रिया स्वरूप अनेक मत-मतान्तर खड़े हो गये। बौद्ध धर्म भी इनमें से एक था। बौद्ध धर्म की शिक्षा बहुत ही सरल, सारपूर्ण तथा व्यावहारिक थी। उनकी शिक्षा के निम्नलिखित चार मुख्य सिद्धान्त थे:—

(१) ससार दुःखों का घर है।

(२) वासना ही इन दुःखों के मूल में है।

(३) वासनाओं के विनाश में ही सच्चा सुख है।

(४) वासनाओं के हनन के लिए, शुद्ध ज्ञान, शुद्ध संकल्प, शुद्ध वार्तालाप, शुद्ध आचरण, शुद्ध जीवन, शुद्ध प्रयत्न, शुद्ध विचार तथा शुद्ध समाधि आदि 'श्रेष्ठ-मार्ग' पर चलना आवश्यक है। धीरे-धीरे इस शिक्षा का प्रचार भारतवर्ष में ही नहीं अपितु विदेशों में हो गया। इस धर्म के इतने अधिक प्रचार के निम्नलिखित कारण थे —

(१) बुद्ध का निजी जीवन उच्च और महान् होने के कारण वह लोगों के लिए आकर्षण का कारण बना।

(२) उनकी शिक्षायें जन साधारण के लिए बहुत उपयोगी थीं। उसका प्रचार सर्वसाधारण की प्रतिदिन की भाषा में किया जाता था।

(३) किसी प्रकार का जाति-पाति का भेद नहीं पाया जाता था और इसमें जीवन की ऊंचाई पर भी बल दिया जाता था।

(४) हिन्दू-धर्म का रूढ़िवादिता और क्लिष्टता ने भी इसके प्रचार में सहायता पहुंचाई।

(५) अपने युग का एक यही धर्म था जो कि हिन्दू धर्म का डटकर मुकाबला कर सकता था।

(६) इसके प्रचारकों और देवदूतों में त्याग, सरलता, लगन, कर्मशीलता और आदर्श की महत्ता पाई जाती थी। यहाँ तक कि राजाओं और राजकुमारों ने भी इसके प्रचार में अधिक हाथ बँटाया।

इन्हीं कारणों की वजह से बौद्ध धर्म शीघ्र ही तिब्बत, मंगोल, मलाया, सुमात्रा, चीन, जापान तथा लंका में फैल गया।

जैनमत—महावीर जैनमत के संचालन और चौबीसवें तीर्थंकर माने जाते

है। वे विहार प्रान्त में एक क्षत्रिय वंश के राजकुमार थे। उनका जन्म ५९९ ई० पू० पटना के निकट वैशाली नगर में हुआ। तीस वर्ष की आयु में अपने माता-पिता के देहान्त पर उन्होंने घर बार त्याग दिया और पार्श्वनाथ के स्थापित किये हुए साधुओं के सम्प्रदाय में सम्मिलित हो गये, परन्तु फिर भी उनके मन को शान्ति नहीं मिली। इसलिए उन्होंने अपने मन को शान्ति देने के लिए इस सम्प्रदाय को छोड़ दिया। फिर उन्होंने १२ वर्ष तक घर तपस्या की और अंत में उन्हें सच्चा ज्ञान प्राप्त हो गया और वे महावीर तथा जिन (महा विजेता) कहलाने लगे। इस समय इसकी अवस्था ४३ वर्ष की थी। फिर इन्होंने इस सम्प्रदाय का संशोधन किया और इसका नाम जैन मत रक्खा।

अधिकांश में इसके सिद्धान्त भी बौद्ध धर्म से मिलते जुलते ही हैं इसके आधार पर मानव का ध्येय मोक्ष प्राप्त करना है और इसके लिए सत्य विश्वास, सत्य ज्ञान और सत्य कर्म इन त्रिरत्नों का पालन करना आवश्यक है। "अहिंसा परमो धर्मः" इनके सिद्धान्तों का मूल मन्त्र है। आजकल भी ये लोग इन्हीं सिद्धान्तों का अनुकरण करते हुए, नंगे पांव, नंगे सिर और मुख पर पट्टी बांधकर चलते है और पानी भी छानकर पीते है। ये विश्वास के आधार पर २४ तीर्थंकरों (पवित्र आत्माओं) की भी पूजा करते हैं। घोर तपस्या के द्वारा अपने शरीर को अधिक कष्ट देकर ये लोग इसमें अधिक पुण्य समझते है। परन्तु इन दोनों मतों में अतर केवल इतना रहा कि जैन मत भारतवर्ष की सीमाओं मे ही पनपता रहा जबकि बौद्ध धर्म भारत की सीमाओं का उल्लंघन कर गया।

इस प्रकार ये दोनों मत अपने-अपने स्थान पर जनता को अपनी ओर आकर्षित करने में अधिक सफल रहे। इन दोनों धर्मों में निम्नलिखित समानताएं और असमानताएं है :—

समानता :—

(१) जात-पात के भेद-भाव को दोनो नहीं मानते।

(२) पुनजन्म और कर्म के सिद्धान्त में दोनों का मत एक है।

(३) दोनों इस संसार को एक बुरी वस्तु समझते हैं।

(४) ये दोनों मत यज्ञ और वलिदानों के विरोधी हैं इसलिए ये दोनों अहिंसा का प्रचार करते है।

(५) दोनों वेदों के महत्व तथा ब्राह्मणों की श्रेष्ठता को नहीं मानते ।

(६) दोनों धर्म भिक्षुओं और भिक्षुणिओं के संघ स्थापित करने के पक्ष में हैं ।

(७) दोनों धर्मो ने अपने धर्म का प्रचार सर्वसाधारण की भाषा में किया ।

(८) दोनों मत गूढ़ फिलासफी के स्थान पर शुद्ध आचरण पर जोर देते हैं ।

असमानता :—

(१) दोनों धर्मो के माननीय ग्रंथ भिन्न-भिन्न हैं ।

(२) बुद्ध मतवाले निर्वाण का मार्ग 'अष्ट मार्ग' बताते हैं और जैन धर्म वाले त्रिरत्न ।

(३) दोनों धर्म वाले अपने-अपने पूर्वजों की पूजा करते है । बुद्ध धर्म वाले अपने बोधिसत्वों की और जैन धर्म वाले तीर्थंकरों की ।

(४) दिगम्बर जैन वाले साधु नंगे रहते हैं परन्तु बुद्धमत वाले ऐसा कभी नहीं करते ।

(५) जैन धर्म वाले प्रत्येक वस्तु में आत्मा मानते हैं । परन्तु बुद्ध मत वाले केवल जन्तुओं में आत्मा मानते हैं ।

(६) बुद्ध धर्म वाले घोर तपस्या के विरुद्ध हैं परन्तु जैन धर्म वाले इसे शुभ कार्य समझते हैं और भूखा रहकर त्यागने को उत्तम समझते है ।

(७) जैन धर्म वाले बुद्ध धर्म की अपेक्षा अहिंसा पर अधिक बल देते है और कीड़ों तक को मारना भी महा पाप समझते हैं ।

प्रश्न ७—बुद्ध-धर्म के उत्थान तथा पतन के कारण लिखो !

(प्रथमा संवत् २०१७)

उत्तर—बौद्ध धर्म के इतनी शीघ्रता से फैलने के निम्नलिखित कारण हैं :—

(१) **राजकीय सहायता**—बुद्ध स्वयं राजकुमार थे । इसीलिये उत्तरी भारत के क्षत्रिय राजाओं ने उनके धर्म को अपनाया ।

(२) **बोल चाल की भाषा**—बौद्ध धर्म के उपदेश सरल भाषा में हैं । इससे जनता को उन्हें समझने में आसानी हुई ।

(३) **सरल धर्म**—बौद्ध धर्म के सिद्धान्त बहुत ही सरल थे ।

(४) **जाति प्रथा की निन्दा**—जाति-पाँति का भेद न होने के कारण

नीची जातियों के लोगों को भी इसमें सम्मिलित होने का अवसर मिला।

(५) **ब्राह्मण धर्म की जटिलता**—ब्राह्मण धर्म की जटिलता से जनता तंग आ चुकी थी। पशु बलि और दूसरे धार्मिक कार्यों में जनता की रुचि नहीं रही थी।

(६) **जैन धर्म की जटिलता**—जैन धर्म के सिद्धान्त भी कठिन थे।

(७) **बौद्ध धर्म में लचीलापन**—यह धर्म कठोर नहीं था। इसमें लचीलापन था। इसमें सभी धर्मों के कुछ नियमों का समावेश आसानी से हो जाता था। इस कारण से विदेशों में भी इसका प्रचार हुआ।

(८) **प्रचार के साधन**—अनेक भिक्षु-भिक्षुणियों ने बौद्ध-धर्म का सन्देश दूर-दूर जाकर सुनाया। बौद्ध संघ में रहने वाले ये भिक्षुक ससार से विरक्त होकर धर्म प्रचार करते थे। उनका आचार बड़ा शुद्ध था। उन्हें बुद्ध की आज्ञा थी कि वे संसार की भलाई के लिए घूम कर उपदेश दें।

(९) **महात्मा बुद्ध का व्यक्तित्व**—महात्मा बुद्ध के पवित्र जीवन की ओर सभी लोग सरलता से आकर्षित हो जाते थे।

बौद्ध धर्म की अवनति के कारण निम्नलिखित थे :—

(१) **दूषित आचरण**—महात्मा बुद्ध की मृत्यु के पश्चात् धीरे-धीरे भिक्षुओं तथा भिक्षुणियों का आचरण दूषित होने लगा।

(२) **बुद्ध की मूर्ति**—कलाकारों ने महात्मा बुद्ध की मूर्ति के साथ इन्द्र तथा ब्रह्मा की मूर्तियां भी बना दीं। इस प्रकार वे एक हिन्दू देवता बना दिए गए। हिन्दू महात्मा बुद्ध को अवतार मानने लगे।

(३) **महायान सम्प्रदाय**—बौद्ध धर्म में मोक्ष प्राप्ति के लिये देवताओं और पुरोहितों की सहायता नहीं ली गई थी। परन्तु महायान सम्प्रदाय ने महात्मा बुद्ध की वैसी ही पूजा करनी आरम्भ कर दी जैसी हिन्दू देवताओं की होती थी। इस प्रकार धीरे-धीरे बौद्ध धर्म की सत्ता हिन्दू धर्म में विलीन हो गई।

(४) **संस्कृत भाषा**—बौद्धों ने भी अपने धार्मिक ग्रन्थों को संस्कृत में लिखना शुरू कर दिया।

(५) **ब्राह्मणों की दूरदर्शिता**—ब्राह्मणों ने भिक्षुओं के समान कुछ अपने पण्डित तैयार कर लिए। वे कथाओं द्वारा साधारण जनता में प्रचार करते थे। बौद्ध विहारों के समय हिन्दू मठों की स्थापना भी कर दी। शंकराचार्य तथा कुमारिलभट्ट ने बौद्ध धर्म का खण्डन आरम्भ कर दिया।

(६) **इस्लामी आक्रमण**—मुसलमान आक्रान्ताओं ने बौद्ध मठों तथा बिहारों को बहुत हानि पहुंचाई।

(७) **राजपूतों का अहिंसा को न अपनाना**—अहिंसा राजपूतों के वीर स्वभाव के विपरीत थी।

(८) **राजकीय सहायता का अभाव**—महाराज कनिष्क के पश्चात् इस धर्म को राजकीय सहायता नहीं मिली।

प्रश्न ८—सिकन्दर महान् कौन था ? उसके आक्रमण तथा उसके भारत पर पड़े प्रभाव का वर्णन कीजिए। (प्रथमा परीक्षा, सं० २०११)

उत्तर—सिकन्दर यूनान देश की रियासत मकदुनिया के राजा फिलिप का पुत्र था। वह बहुत उत्साही तथा वीर था। उसकी गणना संसार के महान् विजेताओं में होती है। वह ३५६ ई० पूर्व उत्पन्न हुआ। वह यूनान के प्रसिद्ध विद्वान अरस्तू का शिष्य था। उसने बाल्यावस्था में ही विश्व को विजय करने का दृढ़ निश्चय कर लिया था। बीस वर्ष की आयु में वह सिंहासन पर बैठा और थोड़े ही समय में एशिया माइनर से अफगानिस्तान तक का समस्त प्रदेश जीत लिया और फिर ३२६ ई० पूर्व उसने भारपवर्ष पर आक्रमण किया।

३२६ ई० पूर्व सिकन्दर ने ओहिन्द के स्थान पर नावों का पुल बना कर सिंध नदी को पार किया और तक्षशिला की ओर बढ़ा। तक्षशिला के राजा आम्भी ने सिकन्दर का स्वागत किया और सेना तथा रुपये से उसकी सहायता की। कुछ दिन तक्षशिला में रहने के पश्चात् सिकन्दर आगे बढ़ा और जेहलम तथा चुनाव के मध्यवर्ती प्रदेश के राजा पोरस को आधीनता स्वीकार करने के लिये संदेश भेजा, परन्तु पोरस ने इसे अस्वीकार कर दिया और वह जेहलम नदी के पूर्वी तट पर अपनी सेना लेकर यूनानी विजेता का सामना करने के लिये आ डटा।

पोरस से युद्ध—उन दिनों जेहलम नदी में बाढ़ आई हुई थी। सामने पोरस की सेना तैयार खड़ी हुई थी। ऐसी स्थिति मे सिकन्दर के लिए नदी को पार करना असम्भव था। एक घोर अंधेरी रात्रि को, जबकि घोर वर्षा हो रही थी, सिकन्दर ने कुछ ऊपर जाकर नदी को पार कर कर लिया। जब पोरस की सेना को उनके इस कार्य का पता चला, तो पोरस ने अपने पुत्र को थोड़ी सी सेना लेकर उसे रोकने के लिये भेजा। वह बहुत वीरता से लड़ता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ। इसी समय सिकन्दर की शेष सेना नदी को

पार कर आई और उसने अचानक ही पोरस की सेना पर आक्रमण कर दिया। करी के मैदान में दोनों सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ। अन्त में पोरस के सेना के पैर उखड़ गये और पोरस पकड़ा गया। जब पोरस को सिकन्दर के सामने लाया गया, तो उसने पूछा, "तुम्हारे साथ कैसा व्यवहार किया जाय ?" इस पर पोरस ने बड़ी निडरता से उत्तर दिया, "जैसा एक राजा दूसरे राजा से करता है।" पोरस के इस उत्तर से प्रसन्न होकर सिकन्दर ने उसका राज्य उसे वापिस लौटा दिया !

पोरस की पराजय के कारण :—

(१) सिकन्दर युद्ध-कला में पूर्ण रूप से दक्ष था और उसकी सेना युद्ध के दांव-पेच भली भांति जानती थी।

(२) वर्षा के कारण युद्ध-भूमि फिसलनी हो रही थी, जिससे पोरस के धनुप धारी अपने लम्बे धनुषों को भूमि पर भली-भांति टिका न सके। इसके अलावा भारी रथ भी कीचड़ में धंस जाते थे।

(३) पोरस के हाथी यूनानी सैनिकों के नेजों से घायल होकर बड़े वेग से भागे और उन्होंने अपनी ही सेना को पैरों तले कुचल डाला।

(४) आम्भी ने देश द्रोह किया और पोरस के विरुद्ध सिकन्दर की सहायता की।

व्यास नदी तक बढ़ना—पोरस से युद्ध करने के पश्चात् सिकन्दर आगे को वढ़ा। उसने चुनाव तथा रावी के मध्यवर्ती प्रदेश को विजय किया। रावी के पार कठोई जाति ने उसका सामना किया, परन्तु हार खाई। इसके बाद सिकन्दर आगे बढ़ता हुआ व्यास नदी तक जा पहुंचा। वहाँ पहुचने पर उसकी सेना ने आगे बढ़ने को मना कर दिया। इसका कारण एक तो यह था कि वह वहुत थक गई थी और दूसरे मगध के नंद राजाओं की सैन्य शक्ति का समाचार सुनकर वह भयभीत हो गई थी। अतः सिकन्दर को विवश होकर लौटना पड़ा।

सिकन्दर का लौटना—सिकन्दर ने जेहलम नदी पर पहुंचकर दो हजार नावों का एक वेड़ा तैयार करवाया और जेहलम नदी के मार्ग से सेना सहित वापस हुआ। उसने जेहलम और व्यास नदियों के मध्य के प्रदेशों का पोरस को अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया। सिन्धु नदी और जेहलम के मध्य के प्रदेश में राजा आम्भी को अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया जाते हुए सिकन्दर को

मार्ग में कई जातियों से युद्ध करना पड़ा, परन्तु सिकन्दर ने सबको परास्त कर दिया। अन्त में सिन्ध प्रदेश को विजय कर वह समुद्र तक जा पहुंचा। यहां उसने अपनी सेना के दो भाग कर दिये। एक भाग तो समुद्र के मार्ग से चल पड़ा और दूसरे भाग को सिकन्दर स्वयं अपने साथ लेकर स्थल मार्ग से रवाना हो गया। मार्ग में ही वेबीलोन के स्थल पर रोगग्रस्त होकर सिकन्दर ३२ वर्ष की आयु में परलोक सिधार गया।

आक्रमण का प्रभाव—

(१) सिकन्दर के आक्रमण का भारतीय सभ्यता पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा, क्योंकि वह केवल १६ महीने यहां रहा और इस काल में वह निरन्तर युद्ध ही करता रहा।

(२) सिकन्दर के आक्रमण के परिणामस्वरूप पंजाब और सिन्ध की स्वतन्त्र रियासतें बहुत ही दुर्बल हो गई। इससे चन्द्रगुप्त मौर्य को उन्हें जीतने में कोई कठिनाई नहीं पड़ी और वह सुगमतापूर्वक भारतवर्ष में एक विशाल साम्राज्य की स्थापना कर सका।

(३) भारतवर्ष और योरुप के बीच नये मार्गों का पता लग जाने से परस्पर व्यापारिक सम्बन्ध दृढ़ हो गये।

(४) हिन्दुस्तानियों ने यूनानियों से शिला निर्माण और भवन निर्माण की कुछ बातें सीखीं।

(५) भारतवासियों ने यूनानियों से ज्योतिष के विषय में भी बहुत कुछ सीखा।

(६) यूनानियों पर हिन्दू धर्म का प्रभाव पड़ा और उनमें से बहुतों ने हिन्दू नाम ग्रहण कर लिए।

प्रश्न ६—चन्द्रगुप्त मौर्य कौन था ? इसकी विजय और शासन प्रबन्ध के विषय में आप क्या जानते हैं ? (प्रथमा परीक्षा, सं० २०१४)

अथवा

चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन प्रबन्ध पर प्रकाश डालिए। (प्रथमा, सं० २०१७)

उत्तर—चन्द्रगुप्त मौर्य वंश का सचालक और प्रतापी राजा था। भारतवर्ष का सबसे पहला ऐतिहासिक वंश मौर्य वंश है। चन्द्रगुप्त के बाल्यकाल का वृतान्त भली प्रकार ज्ञात नहीं है, परन्तु यह विचार है कि चन्द्रगुप्त मगध के नन्द वंश का एक राजकुमार था और उसकी माता का नाम मुरा था जो किसी नीच जाति की स्त्री थी। शायद इसलिए यह वंश भी मौर्य वंश के नाम

से प्रसिद्ध है। अन्तिम नन्द राजा के समय में चन्द्रगुप्त किसी उच्च सैनिक पद पर, सम्भवतः सेनापति के पद पर, नियुक्त था। ऐसा ख्याल किया जाता है कि उसने नन्द राज को हथियाने के लिए षड्यन्त्र रचा परन्तु असफल रहा और भाग कर अपने प्राण बचाए थे। यह पंजाब आया और वहां पर उसकी तक्षशिला में सिकन्दर से भेंट हुई और इसने मगध पर आक्रमण के लिए सिकन्दर को प्रोत्साहित किया। चन्द्रगुप्त ने अपने व्यवहार से सिकन्दर को रुष्ट कर दिया। सिकन्दर ने उसके वध की आज्ञा दे दी। उस पर चन्द्रगुप्त उसके कैम्प से भाग गया। तक्षशिला में उसकी भेंट एक सुयोग्य और चालाक ब्राह्मण चाणक्य से हुई जिसकी सहायता से उसने उत्तरी भारत में अपना राज्य स्थापित किया।

विजय—चन्द्रगुप्त एक महान् विजेता रहा। उसने कई विजयें प्राप्त करके उत्तरी भारत को अपने अधिकार में कर लिया।

(१) **पंजाब विजय**—सिकन्दर के लौट जाने तथा देहान्त के पश्चात् पंजाब में यूनानी राज्य के विरुद्ध एक प्रबल विद्रोह हुआ। चन्द्रगुप्त ने इसी विद्रोह से पूरा-पूरा लाभ उठाया और अपने गुरु तथा मन्त्री चाणक्य की सहायता से उसने एक भारी सेना एकत्रित की और पंजाब में स्थित यूनानी सेना को नष्ट करके पंजाब पर अपना अधिकार जमा लिया।

(२) **मगध विजय**—पंजाब विजय के पश्चात् इसने मगध पर आक्रमण किया और नन्द वंश के अन्तिम राजा को, जिससे यह रुष्ट हो गया था, गद्दी से उतार कर स्वयं राजा बन बैठा। पाटलीपुत्र उसकी राजधानी थी।

(३) **अन्य विजय**—चन्द्रगुप्त ने धीरे-धीरे समस्त उत्तरी भारतवर्ष को जीत लिया, जिसमें सौराष्ट्र, मालवा, सिन्ध इत्यादि हैं। उसके राज्य की सीमा नर्मदा नदी तक जा पहुंची। कई इतिहासकारों का मत है कि उसने दक्षिण देश को भी विजय किया परन्तु इस सम्बन्ध में विश्वस्त रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

(४) **सेल्यूकस का आक्रमण**—सेल्यूकस सिकन्दर का सेनापति था। सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात् इसने एशिया के भाग को अपने आधीन कर लिया था। सिन्ध नदी उसके राज्य की पूर्वी सीमा थी। ३०५ ई० पूर्व उसने सिन्ध नदी को पार करके भारतवर्ष पर आक्रमण किया। परन्तु चन्द्रगुप्त ने उसे परास्त कर दिया और दोनों में सन्धि हो गई। सेल्यूकस ने अपनी पुत्री की शादी चन्द्रगुप्त के साथ कर दी और वर्तमान बिलोचिस्तान और दक्षिणी

अफगानिस्तान का प्रवेश भी उसको दे दिया। चन्द्रगुप्त ने उसके बदले में उसे ५०० हाथी भेंट किए। सेल्यूकस ने एक यूनानी राजदूत मेगस्थनीज को भी पाटलीपुत्र मे उसके दरबार मे भेजा। इस प्रकार चन्द्रगुप्त का राज्य बंगाल से हिन्दूकुश पर्वत तक और हिमालय से नर्मदा तक फैल गया।

चन्द्रगुप्त का शासन प्रबन्ध

चन्द्रगुप्त मौर्य भारत का एक महान् सम्राट् था और वह बड़ा शूरवीर राजा था। चन्द्रगुप्त की प्रशंसा का सबसे बड़ा कारण उसका शासन प्रबन्ध है जो उसने बड़ी दक्षता से किया। इसके राज्य में किसी को दुःख और भय नहीं था। सब लोग सुख और चैन से रहते थे। कौटिल्य उसका मंत्री था।

(१) **केन्द्रीय शासन**—चन्द्रगुप्त मौर्य-साम्राज्य का सबसे बड़ा शासक था। पाटलीपुत्र उसकी राजधानी थी। राज्य प्रबन्ध में उसे परामर्श देने के लिये एक सभा थी जिसे मंत्री परिषद कहते थे। चाणक्य उसका सबसे बड़ा मंत्री था। वह एक निरंकुश राजा था जिसके अधिकार असीमित थे। साम्राज्य की समस्त बातों से अपने आप को परिचित रखने के लिये उसने गुप्तचर छोड रखे थे जो उसे हमेशा साम्राज्य के बारे में जनता के विचार बताते रहते थे। स्त्रियां भी गुप्तचर का काम करती थी। प्राणी राजसभा मे आ सकते थे और राजा स्वयं उनकी प्रार्थना को सुना करता था। युद्ध के समय राजा स्वयं सेना का नेतृत्व करता था।

(२) **आय के साधन**—आय का सबसे बड़ा साधन भूमिकर था जो समस्त उपज का एक चौथाई भाग होता था। इसके अतिरिक्त और भी टैक्स थे जिनमें एक बिक्री टैक्स था जो बिकी हुई वस्तुओं पर लगता था। खानों, बनों इत्यादि के ठेके से भी आय होती थी। जल सिंचाई की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था क्योंकि इसके बिना कृषि की उन्नति असम्भव थी और कृषि की उन्नति के बिना आय नही हो सकती थी।

(३) **कानून और न्याय विभाग**—फौजदारी कानून बड़ा कठोर था और दण्ड बहुत सख्त थे। साधारण अपराधों (जैसे झूठी गवाही देने, टैक्स न देने, पवित्र वृक्षों को काटने इत्यादि) पर भी अपराधियों के हाथ पाव काट दिये जाते थे। अधिक अपराध वालों को प्राणदण्ड दिया जाता था और अपराध को स्वीकार करवाने के लिये अपराधियो को बड़े कष्ट भी दिये जाते थे। सारे देश में न्यायालय बने हुए थे और अन्तिम अपील राजा के पास होती थी जो सबसे बड़ा न्यायाधीश था। कठोर दण्डों के कारण अपराध

कम हो गये थे।

(४) **प्रजा हितार्थ काम**—प्रजा हितार्थ कामों में राजा की विशेष रुचि थी। जल सिंचाई के लिये तालाब और नहरें बनाई गई थीं और उनकी देख-रेख के लिये एक सिंचाई विभाग था। आने जाने के लिये देश में उत्तम सड़कें थीं जिनके कारण व्यापार की बहुत उन्नति हुई। एक सडक पाटली-पुत्र से तक्षशिला तक जाती थी। सड़कों के किनारे मीलों के चिन्ह लगे हुए थे। सड़कों के दोनों तरफ छायादार वृक्ष लगे हुए थे और थोड़ी-थोडी दूर पर सरायें बनी हुई थीं और प्रसिद्ध सड़क पाटलीपुत्र को पश्चिमी भारत के बन्दरगाहों के साथ मिलाती थी। इन सड़कों का प्रबन्ध एक विशेष विभाग करता था।

(५) **प्रान्तीय शासन**— राज्य कई प्रान्तों में विभक्त था। प्रत्येक प्रान्त एक गवर्नर के अधीन था जो प्राय: राजघराने से सम्बन्ध रखता था। इन गवर्नरों को कुमार कहते थे। प्रान्त जिलों तथा गांवों मे विभक्त थे। जिलो के उच्च अधिकारी को स्थानिक और गांवों के मुखिया को ग्रामिक कहते थे। ग्रामिक पंचायतों की सहायता से ग्राम का प्रबन्ध करते थे। पांच से दस ग्रामों तक के प्रबन्धक को गोप कहते थे। नगर का बड़ा अफसर नागरिक होता था।

(६) **सैनिक प्रबन्ध**—चन्द्रगुप्त का सैनिक प्रबन्ध भी बहुत प्रसंशनीय था। सारी सेना शस्त्रों से सुसज्जित और बड़ी वीर थी। समस्त सेना लग-भग सात लाख थी। इसमें छ: लाख प्यादा, तीस हजार घुड़सवार, नौ हजार हाथी, और लगभग आठ हजार रथ थे। सैनिकों, घोड़ों तथा हाथियों के लिए कवच होते थे। समस्त सेना को नकद वेतन मिलता था। सेना के प्रबन्ध के लिए तीस सदस्यों का एक पृथक् सेना विभाग था जिसमें छ: विभाग थे। इनके अधिकार में (१) पैदल सेना, (२) घुड़वार सेना, (३) सामुद्रिक बेड़ा, (४) रथों, (५) हाथियों, (६) सामग्री पहुंचाने का प्रबन्ध था।

(७) **पाटलीपुत्र और उसका प्रबन्ध**—मगध की राजधानी पाटलीपुत्र थी जो वर्तमान पटना नगर के समीप बसी हुई थी। इसके चारों ओर लकड़ी की एक सुदृढ़ दीवार थी जिसमें ६४ दरवाजे और ५७० बुर्ज थे। यह नगर अत्यन्त शोभाशाली था और गंगा तथा सोन नदियों के संगम पर बसा हुआ था। इसकी लम्बाई नौ मील और चौड़ाई डेढ़ मील थी। नगर के चारों ओर खाई बनी हुई थी। जिसमें सोन नदी का पानी भरा रहता था। राज-

भवन लकड़ी का बना हुआ था परन्तु सुन्दरता तथा सजधज में अद्वितीय था। इसमें कई बाग और कृत्रिम झीलें थीं। नगर की जनसंख्या चार लाख के करीब थी।

प्रबन्ध—इसके प्रबन्ध के लिए तीस मेम्बरो की एक कमेटी थी जो छः बोर्डों में विभक्त थी। उन बोर्ड के कर्त्तव्य निम्नलिखित थे :—

(१) अतिथि लोगों के सुख तथा सुविधा का प्रबन्ध करना।

(२) नगर के कला कौशल की देखभाल करना।

(३) जन्म तथा मृत्यु का हिसाब रखना।

(४, माप के पैमानों की जाँच-पड़ताल करना।

(५) शिल्पालयों का ध्यान रखना।

(६) बिक्री पर दस प्रतिशत टैक्स लगाना।

गांवों का प्रबन्ध पंचायतें करती थीं और नगर का प्रबन्ध जैसे सफाई, सड़कों की देखभाल और पानी के पहुचाने के लिए म्युनिसिपल कमिश्नर सामूहिक रूप से उत्तरदायी थे।

प्रश्न १०—निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखो—

(क) मेगस्थनीज (ख) चाणक्य। (प्रथमा, संवत् २०१९)

उत्तर—(क) मेगस्थनीज—मेगस्थनीज एक यूनानी राजदूत था जिसे सेल्यूकस ने चन्द्रगुप्त मौर्य की राज सभा में भेजा था। वह लगभग पांच वर्ष तक पाटलीपुत्र मे रहा। उसने चन्द्रगुप्त मौर्य के राज्य-काल का वृत्तान्त लिखा है जो उस समय के इतिहास के लिए उत्तम स्रोत समझा जाता है। उसने जो पुस्तक लिखी थी वह तो खो गई है, परन्तु उसके कई लेख अन्य यूनानी इतिहास लेखकों की पुस्तकों में मिलते है, जिनका अंग्रेजी में अनुवाद हो चुका है।

(ख) **चाणक्य** (कौटिल्य)—चाणक्य जाति का ब्राह्मण था, परन्तु वह बहुत धुरन्धर विद्वान् तथा उच्च कोटि का नीतिज्ञ था यह तक्षशिला का रहने वाला था। इसको कौटिल्य और विष्णुगुप्त भी कहते हैं। इसने चन्द्रगुप्त की सेवा की। चाणक्य चन्द्रगुप्त मौर्य का गुरु तथा मन्त्री था। एक बार राजा नन्द ने इसका अपमान कर दिया था इसलिए इसने बदला लेने की शपथ खाई। चाणक्य अपनी धन का पक्का था और षड्यन्त्र रचने में बड़ा निपुण था। चन्द्रगुप्त ने इसकी सहायता से ही पंजाब जीता और बाद में नन्द को हटाकर स्वयं राजा बन बैठा। चाणक्य को सभी सुख साधन प्राप्त

थे परन्तु फिर भी वह एक दरिद्र का जीवन व्यतीत करता था और राजा के भवन के पास एक मिट्टी की झोंपड़ी में रहा करता था। चाणक्य ने जो ग्रन्थ लिखा है वह "कौटिल्य अर्थशास्त्र' के नाम से प्रसिद्ध है और अर्थशास्त्र नीति विद्या पर लिखा गया है। जिसमें चन्द्रगुप्त के शासन काल का पता चलता है। सत्य तो यह है कि चन्द्रगुप्त की उन्नति अधिकतर चाणक्य के कारण ही हुई।

प्रश्न ११—महाराज अशोक के राज्यकाल का संक्षिप्त वर्णन करो। उन्होंने बौद्ध धर्म को क्यों स्वीकार किया था? और यह भी लिखिये कि उन्होंने इस धर्म के प्रचार के लिये किन किन साधनों का उपयोग किया था।

(प्रथमा संवत् २०१९)

उत्तर—महाराज अशोक मौर्य वंश का सबसे प्रसिद्ध सम्राट् था। वह चन्द्रगुप्त मौर्य का पोता और बिन्दुसार का लड़का था। सम्राट् बनने के पहले वह तक्षशिला और उज्जैन के प्रान्तों का गवर्नर भी रह चुका था और इसने अपनी योग्यता का जनता पर प्रभुत्व जमा लिया था। अशोक बिन्दुसार का ज्येष्ठ पुत्र नहीं था परन्तु बिन्दुसार ने इसको योग्य समझ कर इसी को सिंहासन पर बैठाया। इसने चालीस साल तक राज्य किया। इसका राज्याभिषेक किसी कारण से सिंहासन पर बैठने के चार वर्ष पश्चात् हुआ। अशोक को शिकार खेलने और मांस खाने का बड़ा शौक था। अशोक शिव का उपासक था। उसके समय की सबसे प्रसिद्ध घटना कलिंग का युद्ध है जिसके द्वारा वह बौद्ध धर्म का अनुयायी बन गया था। अशोक का नाम इतिहास में बौद्ध मत के प्रचार के लिए सदा प्रसिद्ध रहेगा, क्योंकि उसी के यत्न से यह धर्म दूर-दूर देशों में फैल गया।

कलिंग विजय—अशोक के सिंहासनारोहण के समय लगभग समस्त भारतवर्ष पर मौर्य वंश का राज्य था, परन्तु कलिंग का प्रदेश जो खाड़ी बंगाल के तट के साथ महानदी और गोदावरी नदी के मध्य स्थित था, अशोक के राज्य में सम्मिलित नहीं था। अशोक ने इसे विजय करने के लिए इस पर चढाई की और एक भयंकर युद्ध के पश्चात् जिसमें लगभग एक लाख मनुष्य मारे गये, डेढ़ लाख कैद हुए और उससे और कई गुना बीमारी से मर गये। वह इस देश को विजय करने में सफल हुआ। इस युद्ध को देखकर अशोक का मन बहुत दुःखी हुआ और उस पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसने भविष्य में कभी युद्ध न करने की कसम खा ली और बौद्ध धर्म को अपना लिया।

अशोक का राज्य बहुत बड़ा था। हिन्दूकुश पर्वत से लेकर बंगाल तक सारा प्रदेश उसके अधीन था और दक्षिण में उसके राज्य की सीमा मैसूर तक थी। थोड़े से दक्षिण भाग को छोड़ कर समस्त भारतवर्ष तथा वर्तमान अफगानिस्तान और बिलोचिस्तान का लगभग समस्त भाग उसके राज्य में सम्मिलित था।

अशोक समस्त देश का सबसे बडा शासक था। अशोक का राज्य प्रबन्ध अपने दादा चन्द्रगुप्त के शासन के ढंग का ही था। अशोक इस बात का विशेष ध्यान रखता था कि किसी भी मनुष्य के साथ अन्याय न होने पाये परन्तु कानून और दण्ड तो पहिले की भांति कठोर थे। इसका शासन प्रबन्ध चन्द्रगुप्त जैसा ही था।

(१) **प्रान्तीय शासन**—अशोक ने अच्छे राज्य प्रबन्ध के लिए अपने राज्य को पांच भागों में बाँट रक्खा था। (१) उत्तरी प्रान्त, राजधानी तक्षशिला (२) पश्चिमी प्रान्त, राजधानी उज्जैन (३) दक्षिणी प्रान्त, राजधानी स्वर्णगिरी (४) पूर्वी प्रान्त, राजधानी टोसाली (५) केन्द्रीय प्रान्त, राजधानी पाटलीपुत्र। केन्द्रीय प्रान्त राजा के आधीन था बाकी सब प्रान्तों के सूबेदार राजकीय वंश के थे। सूबेदार राज्य प्रबन्ध बड़ी उत्तम रीति से करते थे। वे अपनी प्रजा की भलाई की ओर विशेष ध्यान देते थे। वे अपने सूबों का भ्रमण भी करते थे। सूबेदारों के अतिरिक्त और भी कर्मचारी थे।

(२) **प्रजा से व्यवहार**—अशोक अपनी प्रजा के साथ अच्छा व्यवहार करता था। वह प्रजा को अपने बच्चों के समान समझता और सदा उनकी भलाई में अपना समय व्यतीत करता था। निर्धनों, अनाथों, बूढों तथा विधवाओं का पालन राजकीय कोष से होता था। अपनी प्रजा का दुःख सुनने और उसे दूर करने के लिए वह हमेशा तत्पर रहता था। उसने यह आदेश दे रक्खा था कि राज्य के कर्मचारी हर समय और हर स्थान पर चाहे वह कुछ ही कर रहा हो, रात हो या दिन, प्रजा की शिकायतें उसके पास पहुंचा सकते हैं। उसका कहना था कि जिस प्रकार मैं अपने बच्चे के लिए लोक तथा परलोक में सुख चाहता हूं उसी प्रकार मैं अपनी प्रजा के सुख का इच्छुक हूं। इन बातों से पता चलता है कि अशोक बहुत दयालु स्वभाव का था।

(३) **देश भ्रमण**—अशोक अपने सूबेदारों के काम-काज की देख रेख के लिए देश भ्रमण भी किया करता था। उससे राजा और प्रजा में परस्पर सम्बन्ध घनिष्ठ हो जाता है। सूबेदार तथा अन्य कर्मचारी भी चौकन्ने रहते

थे और वे प्रजा पर मनमाना अत्याचार नहीं करते थे। इसका यह काम बड़ा लाभदायक सिद्ध हुआ।

(४) **प्रजा हितार्थ कार्य**—अशोक ने प्रजा की भलाई के लिए अनेक कार्य किये। उसने यात्रियों की सुविधा के लिए धर्मशालायें और सरायें बनवाईं, सड़कों पर छायादार वृक्ष लगवाये, कुएं खुदवाये और असंख्य स्थानों पर पानी पिलाने का प्रबन्ध किया गया। अशोक ही एक ऐसा सम्राट् हुआ जिसने जानवरों के लिए भी अस्पताल खुलवाये थे।

(५) **धर्म महामात्रों की नियुक्ति**—अशोक ने अपनी प्रजा के आचार को उत्तम बनाने के लिए अधिकारी नियुक्त कर रखे थे जिन्हें धर्म महामात्र कहते थे। ये लोग देश में भ्रमण करके लोगों को उनके कर्त्तव्य का ज्ञान कराते और उनके आचार विचार का ध्यान रखते थे।

सारांश यह है कि उसके राज्य में सुख और शान्ति थी। उसका राज्य प्रत्येक तरह से सराहनीय था। उसका राज्य सचमुच धर्म का राज्य था।

अशोक बड़ा धर्मात्मा था और उसकी यह इच्छा थी कि उसकी प्रजा धर्म पर चले। अशोक के विचार में धर्म नीचे लिखी चार बातों पर निर्भर था:—

(१) **अहिंसा**—किसी भी प्राणी को कष्ट नहीं दिया जाय।

(२) **सत्य**—हमेशा सदा सत्य बोलना चाहिये।

(३) **बड़ों का आदर और छोटों पर दया**—मनुष्यों को चाहिए कि वे अपने से बड़ों का आदर करें और अपने से छोटे और आधीन नौकरों तथा सेवकों पर दया और सहानुभूति का बर्ताव करें।

(४) **अन्य बातें**—इन बातों के अतिरिक्त अशोक ने दूसरों के सम्प्रदायों का सत्कार करने, दान देने, दया करने, परोपकार और शुद्धाचरण पर भी बल दिया।

बौद्धमत का प्रचार

कलिंग युद्ध के पश्चात् अशोक ने बौद्ध धर्म अपना लिया और उसको फैलाने में उसने भरसक प्रयत्न किया। उसके प्रचार के निम्नलिखित साधन थे:—

(१) **राज्य-आदेशों को शिलाओं पर खुदवाना**—अशोक ने धर्म के नियमों को स्तम्भों तथा पर्वतों की चट्टानों पर खुदवा दिया और इन स्तम्भों को अपने राज्य की सड़कों और विशेष स्थानों पर लगवा दिया ताकि आते

जाते यात्री इन्हें पढ़ सकें।

(२) **धर्म-महामात्रों की नियुक्ति**—उसने राजकीय अधिकारियों की एक श्रेणी बनाई जिसका काम जनता में बौद्ध धर्म का प्रचार करना और उनके आचरण का ध्यान रखना था। इन अधिकारियों को धर्म महामात्र कहते थे।

(३) **बौद्धमत-राजधर्म**—अशोक ने बौद्धमत को राजधर्म घोषित किया जिससे प्रजा को उस मत के स्वीकार करने में प्रोत्साहन मिल गया।

(४) **आदर्श**—अशोक ने अपना आदर्श उपस्थित किया, उसने स्वयं भी अहिंसा के नियम की पुष्टि करने के लिये युद्ध बन्द कर दिये। पशुवध को नियम के विरुद्ध ठहराया और पशुओं की रक्षा के लिए कई नियम बना दिये और मांस खाना छोड़ दिया और राजकीय मृगया विभाग तोड़ दिया गया।

(५) **बौद्धमत की सभा**—बौद्ध धर्म में जो मतभेद आ गये थे उनका निर्णय करने के लिए उसने बौद्ध विद्वानों की सभा पाटलीपुत्र में बुलाई। यह सभा तीसरी थी जिसमें एक हजार के लगभग बौद्ध सम्मिलित हुए।

(६) **अशोक का भिक्षु बनना**—कलिंग युद्ध के पश्चात् अशोक स्वयं भी कुछ समय के लिए भिक्षु रहा। उसने बौद्ध धर्म के तीर्थ स्थानों की यात्रा अपने गुरु उपगुप्त के साथ की जो उस समय का सबसे बड़ा बौद्ध महात्मा था। उसने बौद्ध धर्म के तीर्थ स्थानों की यात्रा की और मार्ग में बौद्ध धर्म का प्रचार करता गया। उसने पाटलीपुत्र से प्रस्थान किया और लुम्बनी (जो बुद्ध का जन्म स्थान है), कपिलवस्तु (जहां बुद्ध ने बाल्यकाल बिताया था), सारनाथ (जहां बुद्ध ने प्रथम उपदेश दिया), गया (जहां बुद्ध को ज्ञान हुआ था) और कुशीनगर (जहां बुद्ध ने प्राण त्यागे) की यात्रा की और इन स्थानों पर यादगारें स्थापित कीं।

(७) **बिहार निर्माण**—अशोक ने मगध प्रान्त में स्थान-स्थान पर बुद्ध भिक्षुओं और भिक्षुणियों के लिए बिहार बनवाये जो बौद्ध मत के प्रचार में बहुत सहायक सिद्ध हुए।

(८) **विदेशों में प्रचार**—अशोक ने बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिये अपने पुत्र महेन्द्र (जिसे कई इतिहासकार अशोक का भाई कहते है) और अपनी पुत्री संघमित्रा (जिसे इतिहासकार बहन बतलाते हैं) को विदेशों में भेजा। संघमित्रा ने लंका में बौद्ध धर्म का प्रचार किया और वहां के राजा ने बौद्ध धर्म की दीक्षा ली। अशोक ने बौद्धमत के प्रचार के लिए विदेशों में

भी अपने प्रचारक भेजे अर्थात् ब्रह्मा, लंका, मिस्र, श्याम और मकदूनिया में जाकर भिक्षुओं ने प्रचार किया। अशोक के प्रयत्नों से बौद्ध धर्म एशिया, अफ्रीका और यूरोप में फैल गया।

प्रश्न १२—गुप्त काल को हिन्दू काल का स्वर्ण-युग क्यों कहते हैं ?
(प्रथमा परीक्षा सं० २००६, २०१६)

उत्तर—गुप्तकाल में हिन्दुओं की सभ्यता, शिक्षा, शिल्प, विज्ञान, व्यापार तथा कला में जो उन्नति हुई, उसी के कारण यह काल इतिहास का स्वर्ण-युग कहलाता है। इस काल में लोग सुख सम्पन्न थे और समस्त देश में पूर्ण शान्ति थी। इस युग की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैः—

(१) **हिन्दू राज्य की पुनः स्थापना**—मौर्य वंश के पतन के पश्चात् भारतवर्ष में विदेशी शासन स्थापित हो गया था। गुप्तों ने इस विदेशी सत्ता का अन्त करके हिन्दुओं के राज्य की पुनः स्थापना की।

(२) **उत्तम राज्य**—गुप्तों का शासन बहुत अच्छा था। कानून नर्म थे और साधारण दण्ड दिये जाते थे। समस्त देश में शान्ति थी और प्रजा सुखी थी। टैक्स बहुत कम थे। सभी को पूर्ण स्वतन्त्रता थी। सड़के सुरक्षित थीं।

(३) **हिन्दू धर्म की उन्नति**—इस काल में हिन्दू देवताओं के मन्दिरों और मूर्तियों का निर्माण आरम्भ हुआ। हिन्दू देवताओं की पूजा होने लगी और ब्राह्मणों का मान बढ़ा। कई गुप्त राजाओं ने अश्वमेध यज्ञ किये।

(४) **संस्कृत भाषा की उन्नति**—हिन्दू धर्म की उन्नति के साथ-साथ इस काल में संस्कृत भाषा की बहुत उन्नति हुई। इस काल में संस्कृत को राजकीय भाषा नियत किया गया। संस्कृत भाषा के सुप्रसिद्ध कवि तथा नाटककार कालीदास ने इस काल में अपने प्रसिद्ध ग्रन्थों की रचना की। पुराण, महाभारत और मनुस्मृति अपने आधुनिक रूप में इसी समय में संकलित हुए।

(५) **विज्ञान की उन्नति**—इस काल में गणित और ज्योतिष विद्या ने भी बहुत उन्नति की। अति प्रसिद्ध वैद्य धन्वन्तरि इसी काल मे हुए थे। उनके अतिरिक्त और भी अनेक उच्च कोटि के वैद्य तथा गणितज्ञ इसी समय में हुए थे।

(६) **ललित कलाओं में उन्नति**—विभिन्न ललित कलाओं की इस काल में खूब उन्नति हुई। देवगढ (झांसी) में उस समय का पत्थर का एक बहुत ही सुन्दर मन्दिर और कानपुर के एक गांव में ईंटों का एक मन्दिर

अभी तक है जो उस समय की निर्माण कला का प्रमाण है। महरौली में लोहे की लाट, जो कि गुप्त काल में ही स्थापित की गई थी संसार के लिए आश्चर्य की वस्तु है। अजंता की गुफाओं की चित्रकला और एलौरा के मन्दिरों की मूर्ति कला इस शिखर को पहुंची है कि संसार भर के कला निपुण दूर दूर से इसे देखने के लिए आते हैं। इस काल की स्वर्ण मुद्रायें भी बहुत ही सुन्दर हैं।

(७) **शिक्षा में उन्नति**—गुप्त काल में तक्षशिला, सारनाथ, अजंता और नालन्दा में विश्व विख्यात विश्वविद्यालय थे। यहाँ पर विदेशों से भी शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रति वर्ष अनेक विद्यार्थी आते थे। इन विश्व-विद्यालयों में प्रत्येक विषय के बड़े-बड़े पंडित विद्यार्थियों को उस विषय की शिक्षा देते थे। विशाल पुस्तकालय थे, जिनमें प्रत्येक विषय की सहस्रों पुस्तकें होती थीं।

(८) **नई बस्तियां**—गुप्त काल में भारतवासियों ने दूर देशों में जाकर जावा, सुमात्रा, बालि आदि बस्तियां बसाई और वहां भारतीय सभ्यता तथा रहन-सहन को प्रचलित किया।

(९) **व्यापारिक उन्नति**—व्यापार में भी बहुत उन्नति हुई। पश्चिम में रोमन साम्राज्य के साथ और पूर्व में पूर्वी द्वीप समूह के साथ व्यापार होने लगा। इससे देश में धन की वृद्धि होने लगी।

गुप्तकाल में हुई इस उन्नति तथा प्रजा की दशा से स्पष्ट है कि यह काल भारतीय इतिहास में 'स्वर्णयुग' है।

प्रश्न १३—फाह्यान भारतवर्ष में क्यों आया? उसने भारत के विषय में क्या लिखा है?

अथवा

फाह्यान कौन था? भारतीय धर्म, संस्कृति और शासन प्रबन्ध के विषय में उसने क्या प्रकाश डाला है? (प्रथमा संवत् २०१७)

उत्तर—फाह्यान पश्चिमी चीन का रहने वाला था। वह एक बौद्ध यात्री था और अपने घर से भारत में बौद्ध तीर्थों के लिए रवाना हुआ था। चीन से चलकर गोबी के मरुस्थल से होता हुआ खुतन, ताशकन्द इत्यादि पहुंचा। फिर पामीर पर्वत को पार करके स्वात के मार्ग से भारत पहुंच गया और उत्तर भारत के समस्त प्रसिद्ध नगरों जैसे पेशावर, तक्षशिला आदि के दर्शन करता हुआ मथुरा और उसके बाद मालवा की ओर बढ़ गया। उसने

बौद्धों के समस्त तीर्थ स्थान जैसे कपिलवस्तु, बोध, गया, सारनाथ और कुशीनगर देखे और पाटलीपुत्र में तीन वर्ष तक रहा। इसके पश्चात् वह ताम्रलिप्ति पहुंचा। वहां द   ं रहने के पश्चात् वह लंका, जावा, सुमात्रा होता हुआ चीन लौट गया। उसकी समस्त यात्रा में १५ वर्ष लगे जिसमें ६ वर्ष उसने भारत में व्यतीत किये। जिस समय वह भारत में भ्रमण कर रहा था उसने इस देश के विषय में विशेष कर बौद्धों के पवित्र स्थान के विषय में अपने विचार प्रकट किये।

भारत के विषय में फाह्यान का वृत्तांत—पाटलीपुत्र नगर का वर्णन करते हुए वह लिखता है कि एक विशाल और समृद्धिशाली नगर है। इसके मध्य में अशोक का प्राचीन अद्भुत महल है। धनी और ऐश्वर्यवान् नागरिक दान देने और सच्चरित्रता में एक दूसरे से स्पर्धा करते हैं। अष्टमी के दिन मूर्तियों का एक जलूस निकाला जाता है। दो बड़े-बड़े मठ हैं जिनमें एक हीनयान का और दूसरा महायान का है। प्रत्येक में लगभग ६०० श्रमण रहते हैं। सबसे प्रसिद्ध श्रमण महायान विहार का मंजुश्री है। संसार के भिन्न-भिन्न भागों से विद्यार्थी इन विहारों में आते हैं। बड़े-बड़े विद्यालय हैं जिनको धनी लोग चलाते हैं और जहां मुफ्त चिकित्सा और मुफ्त भोजन मिलता है।

फाह्यान द्वारा चन्द्रगुप्त द्वितीय के राज्य का वर्णन—चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासन का वर्णन जो फाह्यान ने किया है वह मौर्य के शासन से बिलकुल विपरीत। उसके राज्य में गुप्तचरों का कोई संगठित विभाग नहीं था। दण्ड बहुत साधारण दिया जाता था। अपराधों की गुरुता को देखकर जुर्माना किया जाता था तथा विद्रोही और विश्वासघाती का दाहिना हाथ काट दिया जाता था। कर सामान्य थे और उसके संग्रह करने में कोई कठिनाई नहीं होती थी। राज्य ने लोगों को पूरी छूट दे रखी थे और लोगों के सामाजिक जीवन में विशेष हस्तक्षेप नहीं किया जाता था। लोग सुरक्षित थे और चिकित्सालयों, विश्रामगृहों और कुओं का प्रबन्ध था। राजा के अंगरक्षकों और अनुचरों को नियत वेतन मिलता था।

फाह्यान द्वारा भारतीय समाज का चित्र—देश की जलवायु समशीतोष्ण थी, जनसंख्या घनी और खुशहाल थी। लोग पूर्ण सदाचारी थे। देश भर में कोई भी किसी जीव का वध नहीं करता था, न मदिरा पीता था, न प्याज तथा लहसन खाता था। कोई भी व्यक्ति सूअर तथा पक्षी नहीं पालता था। और न पशु, मांस और मदिरा का क्रय-विक्रय करता था, केवल उन

चाण्डालों को छोड़कर जो नगर स बाहर रहते थे तथा नगर में प्रवेश करते समय लाठी-से शब्द करके अपने आने की सूचना देते थे। कौड़ियों से वस्तुओ का विनिमय होता था। बौद्धमत उस समय खूब फैला हुआ था। पाटलीपुत्र में बौद्धों के अनेको विहार थ और मथुरा के आस-पास २० और विहार थे जिनमें ३००० भिक्षुक निवास करते थे। लोग अधिकतर अहिंसक और शाकाहारी थे। विहारों को राज्य से आर्थिक सहायता मिलती थी। यद्यपि फाह्यान ने कहीं भी स्पष्ट नहीं बतलाया है कि उस समय बौद्धमत का ह्रास होने लगा था किन्तु हम उसके वृत्तान्तों से इस परिणाम तक पहुंचते है कि बौद्धों के पवित्र स्थान जैसे कपिलवस्तु, सारनाथ और कुशीनगर अवनत हो रहे थे। उसके द्वारा दिए गए मध्य देश के ब्राह्मणों की भूमि के विवरण से स्पष्ट है कि बौद्धमत की अवनति और हिन्दू धर्म का उदय हो रहा था। मालवा प्रदेश की फाह्यान प्रशसा की है। उसने उसकी सम जलवायु, प्रसन्न तथा समृद्धिशाली प्रजा और सुन्दर तथा उदार शासन-प्रबन्ध की अत्यन्त सराहना की है। संक्षेप में फाह्यान के कथनानुसार भारत के शासक अपराधों के लिये हलका दण्ड देते थे और अन्य मतों का आदर करते थे।

प्रश्न १४—महमूद गजनवी कौन था? उसके प्रसिद्ध आक्रमण का वर्णन करो और उसकी सफलता का कारण बताते हुए उसके आक्रमणों का भारत पर प्रभाव बताओ।

उत्तर—महमूद गजनी के शासक सुबुक्तगीन का बेटा था। ९९७ ई० मे पिता की मृत्यु के पश्चात् वह गजनी का शासक बना। वह बहुत ही शूरवीर तथा प्राणपण से लड़ने वाला विजयी योद्धा था। महमूद ने भारतवर्ष पर १७ आक्रमण किये। उनमें उसने सन् १०२५ ई० में सोमनाथ पर जो आक्रमण किया, वह सर्वप्रसिद्ध है।

सोमनाथ पर आक्रमण—सन् १०२५ ई० में महमूद गजनी से चलकर सोमनाथ पहुचा। वीर राजपूत सरदारों ने सोमनाथ के मन्दिर की रक्षा के लिये प्राणपण से सामना किया, परन्तु पराजित हुए। महमूद ने मन्दिर में प्रविष्ट होकर मूर्ति को तोड़ डाला और अगणित धन राशि लेकर गजनी लौट गया।

महमूद की सफलता के कारण—(१) उस समय भारतवर्ष अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित था और इन राज्यों के राजाओं में परस्पर फूट थी।

(२) महमूद अपने सैनिकों को धर्म के नाम पर युद्ध करने के लिए उत्साहित करता था। उसका विश्वास था कि इस्लाम के लिये लड़ते हुए मरने पर स्वर्ग की प्राप्ति होती है।

(३) महमूद स्वयं एक वीर, साहसी तथा रणकुशल योद्धा था।

महमूद के आक्रमणों का भारत पर प्रभाव—

(१) भारत से अगणित धन गजनी चला गया।

(२) भारतवर्ष के अनेक धार्मिक स्थान तथा मन्दिर भी नष्ट कर दिये गए।

(३) उत्तर भारत के राजा निर्बल हो गए। फलस्वरूप महमूद के पश्चात् विदेशी आक्रमणकारियों को भारत पर विजय प्राप्त करने में कोई विशेष कठिनाई नहीं हुई।

प्रश्न १५—मुहम्मद गौरी कौन था? उसकी भारत विजय का वर्णन करो।

उत्तर—मुहम्मद गौरी रियासत गौर के शासक गियासुद्दीन का अनुज था। वह बड़ा वीर तथा प्राणपण से लड़ने वाला योद्धा था। सन् ११७३ ई० में उसके भाई ने गजनी का राज्य विजय करके उसे सौंप दिया। सर्वप्रथम उसने गजनी में अपने राज्य को सुदृढ किया और इसके पश्चात् भारत की ओर उसकी यह इच्छा पूरी भी हुई। इस प्रकार मुहम्मद गौरी ही भारत में इस्लामी राज्य का स्थापनकर्ता सिद्ध हुआ।

(१) **पंजाब तथा सिन्ध की विजय**—गजनी पर अधिकार करने के दो वर्ष पश्चात् मुहम्मद गौरी ने भारत पर आक्रमण कर दिया। सन् १२७५ ई० में उसने मुलतान पर विजय प्राप्त की और सिन्ध पर अधिकार कर लिया। इसके तीन वर्ष पश्चात् उसने गुजरात की राजधानी अनहिलवाड़ा पर आक्रमण किया, परन्तु राजा भीमदेव ने उसे परास्त किया। सन् १८८६ ई० में उसने लाहौर के शासक खुसरो मालिक को जो गजनी वंश का अंतिम बादशाह था, पदच्युत कर दिया। इस प्रकार पंजाब और सिन्ध पर उसका पूर्ण अधिकार हो गया।

(२) **तराई की पहली लड़ाई**—सन् ११९१ ई० में मुहम्मद गौरी दिल्ली की ओर बढ़ा, परन्तु वीर राजपूत सरदारों ने दिल्ली के सम्राट पृथ्वीराज चौहान के नेतृत्व में असंख्य सेना के साथ तराई (तरावड़ी) के मैदान में उसका सामना किया। युद्ध में मुहम्मद गौरी घायल हो गया और मुसलमान

हार कर युद्ध क्षेत्र छोड़कर भाग गए। यह युद्ध तराई के प्रथम युद्ध के नाम से प्रसिद्ध है।

(३) **तराई का दूसरा युद्ध**—सन् ११९२ ई०. में मुम्मद गौरी ने पुनः दिल्ली विजय करने का प्रयत्न किया। वह १ लाख २० हजार अश्वारोहियों के साथ तराई के मैदान में आ डटा। घमासान युद्ध हुआ। इस बार पृथ्वीराज पराजित हुआ और उसको पकड़ पर गजनी ले जाया गया। इस युद्ध में विजयी होने पर मुहम्मद गौरी का दिल्ली और अजमेर पर भी अधिकार हो गया और राजपूतों की शक्ति टूट गई। इस लड़ाई से राजपूतों की शक्ति का ह्रास हो गया और भारत में मुसलमानों के राज्य की नींव पड़ गई।

(४) **कन्नौज विजय**:—सन् ११९४ ई० में मुहम्मद गौरी फिर भारत में आया और उसने कन्नौज के शासक जयचन्द राठौर को चन्दावर के मैदान में पराजित किया। जयचन्द की पराजय से कन्नोज तथा बनारस पर मुसलमानों का अधिकार हो गया इसके पश्चात् बहुत सारे राजपूत राजपूताने में जाकर बस गए।

प्रश्न १६—महमूद गजनवी और मुहम्मद गौरी के भारतवर्ष पर आक्रमण करने के क्या ध्येय थे और वे लाग अपने-अपने ध्येय में कहाँ तक सफल हुए? **(प्रथमा, संवत् २०१७)**

उत्तर—महमूद गजनवी के भारतवर्ष पर आक्रमण करने का मुख्य उद्देश्य उसकी धन संग्रह की लोलुपता थी। वह भारतवर्ष पर चढ़ाई करके उसे बेहिसाब दौलत और खजाने को पाना चाहता था जिसे वह जानता था कि हिन्दुओं के मन्दिरों में संचित है। देश के हिन्दू राजाओं ने मन्दिरों की रक्षा के लिए कोई उचित उपाय नहीं किए थे, जिससे उत्साहित होकर यह प्रतिवर्ष पवित्र देवस्थानों को लूटने के लिए चढ़ाई करता रहा। साथ ही उसका धार्मिक जोश और यह विश्वास भी था कि मूर्ति खण्डन व मूर्ति-पूजकों के घरों को नष्ट करना उसका धार्मिक कर्त्तव्य है तथा इस्लाम मत के अनुसार ऐसा करने से उसे न केवल इस लोक में राज्य प्राप्त होगा प्रत्युत परलोक का राज्य भी उसके लिए सुरक्षित हो जाएगा—इन दो उद्देश्यों को लेकर ही उसने भारत पर अनेकों आक्रमण किए।

महमूद गजनवी को अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त हुई। उसने भारत में अनेक प्रसिद्ध देवालयों को लूटा और बेहिसाब धन वह गजनी को ले गया।

सोमनाथ के मन्दिर से उसे सबसे अधिक धन राशि प्राप्त हुई थी।

मुहम्मद गौरी ने भारतवर्ष में अपना राज्य स्थापित करने की इच्छा से आक्रमण किए। अपनी इसी इच्छा की पूर्ति के लिए उसने भारतवर्ष पर अनेकों वार आक्रमण किए और उनमें अनेकों बार पराजित होकर उसको भागना भी पड़ा। सबसे अधिक टक्कर उसे पृथ्वीराज चौहान से लेनी पड़ी। परन्तु अंत में उसे पृथ्वीराज को परास्त करने में भी सफलता प्राप्त हुई। पृथ्वीराज को परास्त करने के पश्चात् उसने दिल्ली को अपने अधिकार में ले लिया। उसने अपने सर्वप्रिय दास कुतुबुद्दीन ऐबक को अपने द्वारा जीते गए सभी भारतीय प्रदेशों का शासक बना दिया। परन्तु मुहम्मद गौरी भारत में शासन स्थापना का लाभ न उठा सका, क्योंकि गजनी लौटते समय मार्ग में ही खोखर जाति के लोगों ने उसको मार डाला। गौरी की मृत्यु के पश्चात् ऐबक दिल्ली का स्वतन्त्र सुल्तान बन गया और उसने दास वंश के शासन की नींव डाली।

प्रश्न १७—अलाउद्दीन खिलजी कौन था? इसका वर्णन करते हुए उसके राज्य प्रबन्ध का वर्णन करो और बताओ कि उसने कौन-कौन से देशों पर विजय प्राप्त की। (प्रथमा परीक्षा, सं० २०१३, २०१७)

उत्तर—अलाउद्दीन दिल्ली के खिलजी बादशाह जलालुद्दीन का भतीजा तथा जमाता था। वह बहुत साहसी तथा मनचला युवक था। जलालुद्दीन ने उसे इलाहाबाद का शासक नियुक्त किया था। उसने सन् १२९२ ई० में मालवा और सन् १२९४ ई० में देवगिरि को विजय कर लिया। इसके पश्चात् सन् १२९६ ई० में अपने चाचा जलालुद्दीन खिल्ली की हत्या करके राजा बन गया। उसने गद्दी पर बैठते ही अमीरों, वजीरों तथा साधारण प्रजा को खूब रुपया बांटा ताकि लोग उसके चाचा को भूलकर उसकी ओर खिंच आवें। अलाउद्दीन ने २० वर्ष तक बहुत सफलतापूर्वक राज्य किया। वह एक योग्य शासक तथा विजेता था। उसने उत्तरी भारत को जीता और दक्षिण में मुस्लिम राज्य की संस्थापना की। इसने मुगलों के आक्रमण को भी रोका।

विजय—(१) गुजरात—अलाउद्दीन ने अपने सेनापति उलगखां को गुजरात विजय के लिये भेजा। गुजरात का राजा कर्ण गुजरात को छोड़कर देवगिरी भाग गया और गुजरात पर खिलजी बादशाह का अधिकार हो गया।

(२) रणथम्भौर—अलाउद्दीन ने स्वयं इस किले पर चढ़ाई करके वहां

के राजपूत राजा हम्मीर को पराजित किया।

(३) **चित्तौड़**—चित्तौड़ के राजा भीमसिंह की रानी पद्मिनी अपनी सुन्दरता के लिये इतिहास प्रसिद्ध हैं। अलाउद्दीन ने पद्मिनी को प्राप्त करने के लिये ही चित्तौड़ पर आक्रमण किया। राजपूतों ने जी तोड़ कर युद्ध किया, परन्तु पराजित हुये। जब खिलजी बादशाह अलाउद्दीन ने दुर्ग में प्रवेश किया तो उसे पता चला कि पद्मनी ने अपनी सात सौ सखियों के साथ पहले ही जौहर कर लिया है।

(४) **मालवा**—अलाउद्दीन ने मालवा को भी विजय किया।

(५) **दक्षिण विजय**—उत्तरी भारत पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् उसने विजय के लिए अपने सेनापति मलिक काफूर को भेजा। उसने लगभग सारे दक्षिण को विजय किया। परन्तु बादशाह ने दक्षिण के राज्यो को अपने राज्य में नही मिलाया। वहां के राजाओं से केवल कर वसूल किया।

शासन प्रबन्ध—अलाउद्दीन एक उच्च कोटि का राज्य प्रबन्धक था। राज्य के बहुत विस्तृत हो जाने के कारण इसमें विद्रोह होने लगे। बादशाह ने विद्रोहों को रोकने के लिए तथा एक सुदृढ़ तथा सुव्यवस्थित राज्य स्थापित करने के लिए निम्नलिखित कार्य किये—

(१) **मदिरा पान का निषेध**—बादशाह ने मदिरा पान निषिद्ध कर दिया। उसने स्वयं भी इसका त्याग कर दिया। जो कोई इस नियम का उल्लंघन करता था, उसे कठोर दण्ड दिया जाता था।

(२) **परस्पर मेल-जोल का निषेध**—परस्पर मेल जोल के लिए भी बादशाह से आज्ञा लेनी पड़ी थी। इससे सरदार लोग न आपस मे मिलते थे और न षड्यन्त्र करने की सोच पाते थे। भोज देने के लिए भी उन्हें बादशाह से स्वीकृति लेनी पड़ती थी।

(३) **जागीरे छीनना**—जिन अमीरों के पास अधिक जागीरे थीं या धन बहुत अधिक था वह सब उसने उनसे छीन लिया और उनके वजीफे तथा पेंशनें बन्द कर दी।

(४) **गुप्तचर विभाग**—अलाउद्दीन का गुप्तचर विभाग बहुत शक्तिशाली था। उसे देश भर में होने वाली प्रत्येक घटना की सूचना फौरन मिल जाती थी। यदि कोई अधिकारी अपने कार्य को ठीक ढग से नहीं करता था, तो उसे कठोर दण्ड दिया जाता था। इसलिए सभी लोग ईमानदारी और सावधानी से कार्य करते थे।

(५) लगान में वृद्धि—गंगा और यमुना के मध्य के प्रदेश पर सारी उपज का आधा भाग लगान का नियुक्त किया। यहां तक कि पशुओं तथा घरों पर भी कर लगाया गया।

(६) सेना के संगठन—विस्तृत साम्राज्य में शान्ति रखने के लिए तथा मुगलो के आक्रमण को रोकने के लिए बादशाह ने एक विशाल तथा सुरक्षित सेना तैयार की और सीमा पर सुदृढ़ दुर्ग बनवाये। वह सैनिकों तथा अधिकारियों को नकद वेतन दिया करता था।

(७) भाव नियत करना—प्रत्येक वस्तु का भाव नियत कर दिया गया था। नियत भाव से अधिक मूल्य पर वस्तु बेचने वाले को कठोर दण्ड दिया जाता था।

(८) अन्न सग्रह करना—बादशाह ने मण्डियों की देखभाल करने के लिए अफसर नियुक्त कर रखे थे। बड़े-बड़े गोदाम बनाये गये और उनमें अन्न का संग्रह किया जाता था। इस प्रबन्ध के कारण प्रजा को अन्नाभाव की कभी भी शिकायत नहीं होती थी।

प्रश्न १८—मुहम्मद तुगलक के चरित्र और राज्यकाल का संक्षेप में वर्णन करो और उसकी असफलता के कारण लिखो।

(प्रथमा परीक्षा सं० २०१३)

उत्तर—चरित्र—मुहम्मद तुगलक का चरित्र अनेक गुणों व दोषों का मिश्रण है।

गुण—वह एक उच्च कोटि का विद्वान् नीतिज्ञ, ज्योतिषी, गणितज्ञ तथा सुलेखक भी था। उसकी स्मरण शक्ति बहुत तीव्र थी। वह बहुत न्यायप्रिय तथा दानी था। उसका व्यवहार हिन्दू-मुस्लिम सभी के साथ अच्छा था। वह एक धर्मात्मा व्यक्ति था। शराब से उसे घृणा थी। वह एक योग्य जनरल भी था। विदेशियों का वह आदर करता था।

दोष—इतने अधिक गुणों के होते हुए भी उसमें कुछ ऐसे दोष थे जिनके कारण उसके ये सभी गुण व्यर्थ थे। उसमें साधारण ज्ञान का अभाव था। वह बहुत हठी तथा क्रोधी था। जिस बात की उसे धुन सवार हो जाती थी उसे वह करके ही छोड़ता था। क्रोध में आकर वह प्रजा को बहुत कठोर दण्ड देता था। उसने अपने इन्हीं दोषों के कारण अनेक ऐसे कार्य किए जिनके कारण वह इतिहास में बदनाम हो गया और इतिहासकार उसे मूर्ख बादशाह भी कहने लगे।

(१) **राजधानी परिवर्तन**—मुहम्मद तुगलक का राज्य लगभग समस्त भारत पर था। उसने सोचा कि सारे देश का शासन दिल्ली से ठीक नहीं हो सकता। इसलिए उसने दक्षिण में स्थित देवगिरि को अपने राजधानी बनाने का निश्चय किया। उसने उसका नाम दौलताबाद रखा, वहां पर सुन्दर महल तथा मस्जिदें बनवाई। दिल्ली से दौलताबाद तक ७०० मील लम्बी एक सड़क बनवाई। बादशाह ने इस कार्य में मूर्खता यह की कि उसने दिल्ली की समस्त प्रजा को अपनी सम्पत्ति सहित दौलताबाद जाने की आज्ञा दी। यद्यपि मार्ग में निर्धनों के लिये भोजन का तथा ठहरने का निशुल्क प्रबन्ध था परन्तु फिर भी सैकड़ों व्यक्ति इस कष्ट से मर गये। कुछ दिनों के पश्चात् बादशाह ने दिल्ली को पुनः राजधानी बनाया और अभागी प्रजा को भी पुनः दिल्ली आना पड़ा। इस प्रकार अपार धन राशि का अपव्यय हुआ। सहस्रों जानें गईं और लोगों को बहुत कष्ट सहन करना पड़ा तथा दिल्ली नगर को पुरानी रौनक प्राप्त न हो सकी।

(२) **मुगलों को धन देना**—जब बादशाह ने दौलताबाद को राजधानी बना लिया, तो उत्तरी भारत में अनेक सरदारों ने विद्रोह कर दिये। यह देखकर मुगलों का साहस भी बढ़ा और वे भी दिल्ली तक बढ़ते चले आये। तुगलक बादशाह ने लड़ना उचित न समझ कर उन्हें बहुत सा धन देकर लौटा दिया। इससे उसका साहस और भी बढ़ गया। अंत में विवश होकर सम्राट को पुनः दिल्ली को राजधानी बनाना पड़ा।

(३) **चीन और ईरान पर धावा**—सुलतान ने ईरान पर आक्रमण करने के विचार से ३,७०,००० सवारों की एक विशाल सेना तैयार की। सैनिकों को एक वर्ष का वेतन भी पेशगी ही दे दिया। परन्तु किसी कारण से सुलतान ने यह विचार त्याग दिया और सेना को भी तोड़ दिया। इन सैनिकों ने देश में ही लूटमार करनी आरम्भ कर दी। इसके पश्चात् बादशाह ने एक लाख सैनिकों को चीन विजय करने के लिए भेजा। उनमें से कुछ तो हिमालय की बर्फ में गलकर मर गये। जो चीन पहुंचे उन्हें वहां मुंह की खानी पड़ी। वापिस लौटते समय सहस्रों को मार्ग में ही पहाड़ियों ने मार डाला और जो थोड़े बहुत सैनिक दिल्ली वापिस पहुंचे, उनका बादशाह ने वध करवा दिया।

(४) **तांबे के सिक्के**—सुलतान के इन मूर्खता के कार्यों के कारण राजकोष खाली हो गया। तब उसने तांबे का सिक्का चलाया और उसका मूल्य

चादी और सोने के सिक्के बराबर ही रखा। लोगों ने अपने घरों में तांबे के नकली सिक्के बनाने आरम्भ कर दिये। प्रजा ने लगान तथा कर और सूबेदारों ने खिराज भी उन्हीं नकली सिक्कों में चुकाया। विदेशी व्यापारियों ने इन सिक्कों को लेने से मना कर दिया और व्यापार चौपट हो गया। इससे सुलतान को बहुत खेद हुआ और उसने ताँबे का सिक्का बन्द कर दिया। उसने प्रजा से तांबे के सिक्के वापिस लेकर उनके बदले में सोने और चांदी के सिक्के दिलवाये। इससे राजकोष को बहुत हानि हुई।

(५) **दोआब में कर**—राजकोष में धनाभाव की पूर्ति के लिए बादशाह ने दोआब में लगान बढ़ा दिया और अन्य कई प्रकार के कर लगा दिये। इन लगानों तथा करों को न देने के कारण अनेक कृषक अपनी खेती को छोड़कर भाग गये। इसी समय वर्षा न होने के कारण कई वर्ष तक अकाल पड़ता रहा। सुलतान ने अकाल पीड़ितों की खब सहायता की, परन्तु यह सहायता ठीक समय तक न हो सकी।

बादशाह की नीति का परिणाम—भूमियां उजड़ गई खेती बाड़ी को बहुत हानि पहुंची। देश भर में विद्रोह होने लगे। सुलतान ने अपने अंतिम १० वर्ष इन्हीं विद्रोहों का दमन करने में व्यतीत किए, परन्तु उसे सफलता नहीं मिली। बंगाल और दक्षिण के प्रांत सदा के लिये स्वतन्त्र हो गये। दक्षिण में दो नये राज्य बहमनी और विजयनगर स्थापित हो गए।

सफलता के कारण—(१) **क्रोधी स्वभाव**—सुलतान बहुत क्रोधी था। साधारण सी बात पर क्रोधित होकर वह प्रजा को बड़े-बड़े दण्ड देता था।

(२) **अद्भुत योजनायें**—सुलतान की अद्भुत योजनाओं के कारण राज्य कोष रिक्त हो गया और प्रजा उसकी इन योजनाओं को समझ नहीं पाती थी इसलिए उसे कष्ट होता था।

(३) **भयानक अकाल**—कई वर्ष तक देश भर में भयानक अकाल पड़ता रहा जिससे प्रजा तथा सरकार को बहुत हानि हुई।

(४) **धार्मिक उदारता**—सुलतान धार्मिक विचारों में बहुत उदार था। वह मुसलमान उलमा को राज्य कार्य में हस्तक्षेप नहीं करने देता था। इस कारण कट्टर मुसलमान उसके विरुद्ध थे।

(५) **विदेशियों को ऊंचे पद देना**—सुलतान ने विदेशियों को ऊंचे-ऊंचे पद दिये हुए थे, परन्तु अवसर पाकर इन सरदारों ने विद्रोह कर दिये। सुलतान ने क्रोध में आकर इन्हें कठोर दण्ड देना आरम्भ कर दिया, परन्तु उसे

विद्रोहों का दमन करने में सफलता प्राप्त नहीं हुई। विदेशियों के उच्च पद पर नियुक्त होने के कारण मुसलमान सुलतान से अप्रसन्न हो गये, क्योंकि इससे उनके अधिकारों पर हस्तक्षेप किया गया।

(६) राज्य का विस्तार इतना बड़ा था कि उस काल में उसका प्रबन्ध करना बहुत कठिन कार्य था।

प्रश्न १६—बाबर के आरम्भिक जीवन, विजयों और चरित्र का संक्षिप्त वर्णन करो।

उत्तर—ज़हीरुद्दीन बाबर भारतवर्ष में प्रथम मुगल बादशाह था। उसका पिता तैमूर वंश का था और माता चंगेज खां वंश की थी। इस प्रकार उसकी नसों में मध्य एशिया के दो विजयी जातियों के रक्त का सम्मिश्रण था। उसका पिता मिर्जा उमर शेख तुर्किस्तान की एक छोटी सी रियासत फर्गाना का शासक था। जब बाबर की अवस्था ११ वर्ष की थी, उस समय उसके पिता की मृत्यु हो गई और बाबर को कठोर विपत्तियों का सामना करना पड़ा। उसके सम्बन्धियों ने उससे उसका पैतृक देश छीन लिया। बाबर १० वर्ष लगातार प्रयत्न करता रहा, परन्तु उसे कोई सफलता नहीं मिली। अंत में सन् १४०४ ई० में उसे काबुल पर विजय प्राप्त हुई और वह वहां का शासक बन गया। इसके पश्चात् उसने भारतवर्ष पर विजय प्राप्त करने का विचार किया। उस समय दिल्ली पर इब्राहीम लोधी शासन करता था। उसके दुर्व्यवहार से प्रजा तथा अफसर सभी अप्रसन्न थे और वे उससे छुटकारा चाहते थे।

सन् १५२५ ई० में पंजाब के सूबेदार दौलतखां लोधी के निमन्त्रण पर बाबर ने भारत पर आक्रमण कर दिया। जब बाबर पंजाब में पहुंचा, तो स्वयं दौलतखाँ उसका विरोधी हो गया और बाबर को पहले उससे ही युद्ध करना पड़ा। इस युद्ध में बाबर विजयी हुआ। बाबर का पंजाब पर अधिकार हो गया। इसके पश्चात् उसने चार युद्धों में समस्त उत्तरी भारत पर अधिकार कर लिया।

(१) **पानीपत का प्रथम युद्ध (१५२६)**—यह युद्ध बाबर और दिल्ली के बादशाह इब्राहीम लोधी के मध्य हुआ। इब्राहीम लोधी के पास एक लाख सेना तथा कई हजार हाथी थे। और बाबर के पास केवल १२००० सैनिक थे और तोपखाना था। बाबर के सैनिक सुशिक्षित थे। स्वयं बाबर एक वीर तथा योग्य जनरल था। दोनों सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ। इब्राहीम लोधी युद्ध

में वीर गति को प्राप्त हुआ और बाबर की विजय हुई। बाबर के पुत्र हुमायूं ने आगरे पर भी अधिकार कर लिया। इस प्रकार दिल्ली और आगरे पर मुगलों का अधिकार हो गया और भारतवर्ष में मुगल साम्राज्य की नींव पड़ गई।

(२) कण्वाह का युद्ध (१५२७ ई०)—चित्तौड़ के शासक वीर शिरोमणि महाराणा संग्रामसिंह का विचार था कि बाबर भी अन्य विदेशी आक्रमणकारियों की भांति लूटमार करके वापिस लौट जायेगा, परन्तु जब उसने देखा कि यह तो दिल्ली और आगरे का बादशाह बन बैठा है, तो उसने राजपूतों को संगठित कर एक विशाल सेना तैयार की और बाबर को भारत से निकालने का दृढ़ निश्चय कर लिया। फतहपुर सीकरी के समीप कण्वाह के मैदान में दोनों सेनाओं का घमासान युद्ध हुआ। आरम्भ में तो मुगलों के होश उड़ गए और उन्हें अपनी पराजय पर पूर्ण विश्वास हो गया। परन्तु बाबर ने एक जोशीला भाषण देकर सैनिकों को उत्साहित किया। बाबर ने खुदा से विजय की प्रार्थना की और फिर कभी शराब न पीने की शपथ खाई और अपने शराब के सोने चांदी के बर्तनों को भी तुड़वाकर सैनिकों में बांट दिया। इससे मुगल सैनिकों में जोश उत्पन्न हो गया और राजपूतों के मैदान से पैर उखड़ गए। स्वयं राणा साँगा बुरी तरह घायल होकर युद्ध क्षेत्र से भाग निकला। मुगलों की विजय हुई और राजपूतों की शक्ति नष्ट हो गई।

(३) चन्देरी का युद्ध (१५२८ ई०)—कण्वाहा के युद्ध मे विजयी होकर दूसरे ही वर्ष बाबर ने आगे बढ़कर मालवा में राजपूतों के प्रसिद्ध दुर्ग चन्देरी को भी जीत लिया। वहाँ का राजपूत सरदार मेदिनीराव युद्ध में मारा गया।

(४) घाघरा का युद्ध (१५२९ ई०)—चन्देरी के दुर्ग को विजय करने के पश्चात् बाबर बंगाल और विहार की ओर बढ़ा। वहां पर अफगानों ने इब्राहीम लोधी के भाई महमूद लोधी के आधीन अपनी शक्ति दृढ़ कर ली थी। सन् १९२० ई० में घाघरा और गंगा के संगम पर बाबर ने अफगानों को हराया।

बाबर का चरित्र—बाबर बहुत हृष्ट-पुष्ट था। वह धैर्यवान् तथा साहसी था उसकी वीरता के कारण ही तुर्क सरदारों ने उसे बाबर (शेर-बब्बर) की उपाधि दी थी। वह लम्बी-लम्बी यात्राएं भी घोड़े की पीठ पर करता था। वह उच्चकोटि का तैराक था। गंगा के अतिरिक्त उसने भारतवर्ष में सभी नदियां तैर कर पार की। उसे शिकार का भी शौक था। वह मदिरा बहुत

पीता था। कण्वाह के युद्ध में इसने इसका पूर्ण रूप से त्याग कर दिया था। वह एक योग्य तथा अनुभवी जनरल था। चार वर्ष में ही उसने समस्त उत्तरी भारत पर अधिकार कर लिया था। वह अपने सैनिकों से बहुत प्रेम करता था, परन्तु वह नियन्त्रण को कभी ढीला नहीं होने देता था।

सन् १६३० ई० में बाबर का स्वर्गवास हो गया।

प्रश्न २०—हुमायूं और शेरशाह के युद्ध वर्णन का कीजिए और यह भी लिखिये कि हुमायूं युद्ध में असफल क्यों रहा ? (प्रथमा, संवत २०१६)

उत्तर—हुमायूं और शेरशाह के युद्ध

(क) चौंसा का युद्ध—जब हुमायूं १५३३ ई० में गुजरात में युद्ध कर रहा था उस समय शेरशाह ने बंगाल में अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। जब हुमायूं शेरशाह का सामना करने के लिये बढ़ा तो उसने हुमायूं से युद्ध नहीं किया और उसे बंगाल की ओर बढ़ने दिया। हुमायूं ने पहले चुनार गढ़ को विजय किया, फिर बंगाल की राजधानी गौड़ पर अधिकार किया, इसी अवसर में वर्षा ऋतु आरम्भ हो गई। हुमायूं ने वापिस लौटने का विचार किया, किन्तु शेरशाह ने उसके समस्त मार्ग बन्द कर दिए और हुमायूं का सम्बन्ध आगरे से तोड़ दिया। अब हुमायूं ने विवश होकर सन्धि कर ली और बंगाल तथा विहार पर शेरशाह का अधिकार स्वीकार कर लिया और रवाना हुआ। जब वह बक्सर के निकट चौंसा के स्थान पर ठहरा तो शेरशाह ने सन्धि का उल्लंघन करके उस पर आक्रमण कर दिया। हुमायूं प्राण बचाकर भाग गया और एक स्थान पर गंगा नदी में घोड़ा दिया और निजाम भिश्ती की सहायता से नदी को पार किया। हुमायूं ने आगरा पहुंचकर निजाम को उसकी सेवा के बदले में तीन घण्टे की बादशाही दी और उसने चमड़े के सिक्के चलाए।

(ख) कन्नौज का युद्ध—हुमायूं ने सन् १५४० ई० में फिर शेरशाह पर आक्रमण किया, परन्तु कन्नौज के निकट ऐसा पराजित हुआ कि दिल्ली का सिंहासन भी उसे छोड़ना पड़ा।

कन्नौज के युद्ध के पश्चात् शेरशाह ने हुमायूं का पीछा किया। हुमायूं ने अपने भाई कामरान के पास लाहौर आकर सहायता मांगी, किन्तु कामरान उसको वहां छोड़कर काबुल चला गया। हुमायूं अपने परिवार को साथ लेकर राजपूताना के मरुस्थल से गुजरता हुआ अमरकोट पहुंचा। सन् १५४२ ई० में बेगम हमीदा बानो के गर्भ से यहीं पर अकबर का जन्म हुआ। वहां से

हुमायूं ईरान चला गया।

हुमायूं की असफलता के कारण—(१) बाबर की मृत्यु कुसमय में हो गई थी और वह अपने राज्य को पूर्ण रूप से सुदृढ़ नहीं कर सका था। इसलिये हुमायूं को गद्दी पर बैठते ही शत्रुओं का सामना करना पड़ा।

(२) हुमायूं एक कार्य को पूरा किये बिना ही दूसरे कार्य में लग जाता था। अभी वह गुजरात को पूर्णतः विजय भी न कर पाया था कि वह बंगाल की ओर शेरशाह का दमन करने के लिए चल पड़ा। उसके हटते ही गुजरात फिर स्वतन्त्र हो गया। इस प्रकार गुजरात विजय का उसका परिश्रम बेकार हो गया।

(३) हुमायूं का अपने भाइयों को विभिन्न प्रदेशों का स्वतन्त्र शासक बनाना उसकी एक बहुत बड़ी राजनीतिक भूल एवं उसकी पराजय का प्रमुख कारण था। विपत्ति के समय उसके भाइयों ने उसकी कोई सहायता नहीं की।

(४) भाग्य ने भी हुमायूं का साथ नहीं दिया। बंगाल में उसके सैनिकों का बीमार हो जाना, वर्षा का प्रकोप ये सभी उस पर दैवी प्रकोप थे।

प्रश्न २१—शेरशाह सूरी के शासन-प्रबन्ध का संक्षिप्त वर्णन करो।

(प्रथमा, संवत् २०१७)

उत्तर—शेरशाह भारत का प्रथम मुसलमान बादशाह था जिसने राज्य-प्रबन्ध की ओर विशेष ध्यान दिया। इसने पांच वर्ष के अपने शासन काल में बहुत से लाभदायक संशोधन किए जिसके कारण वह भारत के सुविख्यात शासकों में गिना जाता है। शेरशाह को अच्छा शासक बनाने वाले निम्न-लिखित काम थे जो उसने पांच वर्ष के शासनकाल में किए थे—

(१) प्रान्तीय प्रबन्ध—शेरशाह अपने राज्य की देखभाल स्वयं करता था, परन्तु फिर भी विशेष सुविधा के लिये उसने अपने सारे राज्य को ४७ सरकारों में और प्रत्येक सरकार को परगनों में विभाजित किया हुआ था। प्रत्येक सर-कार और परगनों की देखभाल के लिये उसने योग्य और चतुर अधिकारी नियुक्त कर रक्खे थे।

(२) भूमि का प्रबन्ध—शेरशाह ने समस्त भूमि की माप कराई। वह उपज का चौथाई भाग लगान में लेता था। वह कृषकों की इच्छा पर था कि वे लगान उपज की वस्तु के रूप में अदा करें या नकद दें। बादशाह की ओर से इस बात का विशेष ध्यान रक्खा जाता था कि कृषकों पर किसी

प्रकार की कठोरता न होने पाए और खेती बाड़ी को किसी प्रकार की हानि न पहुंचे। यदि खेती को किसी प्रकार की हानि पहुंचती थी, तो राज्यकोष से यह क्षतिपूर्ति कर दी जाती थी। कृषकों को अकाल के समय पूरी सहायता भी दी जाती थी।

(३) **प्रजा की रक्षा**—प्रजा की रक्षा का प्रबन्ध बहुत अच्छा था। चोरी आदि के लिये गांव का नम्बरदार जिम्मेदार होता था। या तो वह चोर का पता लगाकर देता था, वरना उसे स्वयं हानि की पूर्ति करनी पड़ती थी। कत्ल की घटना हो जाने पर प्रबन्धक को कातिल (हत्यारे) का पता लगाना पड़ता था, नहीं तो उसे ही फांसी का दण्ड दिया जाता था। इस प्रबन्ध के कारण न तो चोरी डाके पड़ते थे और न कोई किसी की हत्या करने का ही साहस कर पाता था। समस्त राज्य में सुख और शान्ति थी।

(४) **गुप्तचर विभाग**—बादशाह को समस्त राज्य में होने वाली घटना की सूचना गुप्तचरों द्वारा प्राप्त होती थी। इन गुप्तचरों के भय के कारण बड़े से बड़ा अधिकारी अपनी स्वेच्छा से कार्य नहीं कर सकता था।

(५) **न्याय विभाग**—शेरशाह की दृष्टि में हिन्दू और मुसलमान, धनवान और निर्धन सभी समान थे। न्याय निष्पक्षता से होता था। दण्ड बहुत कठोर थे। चोरी और रिश्वत के अपराध में फांसी तक का दण्ड दिया जाता था। वास्तव में शेरशाह का न्याय प्रशंसनीय था।

(६) **सेना का प्रबन्ध**—शेरशाह की सेना शस्त्रों से सुसज्जित तथा भली प्रकार शिक्षित थीं। जिसका नियन्त्रण बहुत अच्छा था। यह सेना देश के विभिन्न भागों में, छावनियों में रहती थी। देहली और रौहतास में सबल बड़ी छावनिया थीं। शेरशाह ने सरकारी घोड़ों को अंकित करने और सवारों की पहचान लिखी जाने की रीति चलाई, इसीलिए कि घोड़ों और सवारों की झूठी गिनती को रोका जा सके। बादशाही सेना में १,५०,००० घुड़सवार और २५,००० प्यादे थे। सेना को नकद वेतन दिया जाता था और उनको यह आदेश था कि युद्ध पर जाते समय खेती को किसी प्रकार की हानि न पहुंचाएं। शेरशाह सैनिकों की भर्ती भी स्वयं करता था और योग्यता के अनुसार वेतन नियत करता था। हिन्दुओं को भी उच्च सैनिक पद प्राप्त थे।

(७) **सड़कों का निर्माण**—शेरशाह ने यात्रियों के सुख के लिए तथा सेना के एक स्थान से दूसरे स्थान पर सुगमता से जाने के लिए कई सड़कें बनाईं। उनके दोनों ओर छायादार वृक्ष लगवाए और थोड़ी-थोड़ी दूरी पर सराये और

कुएं बनवाये। उन सरायों में मुसलमानों और हिन्दुओं के रहने और भोजन का अलग-अलग प्रबन्ध था। हिन्दुस्तान की सब से बड़ी सड़क ग्रांडट्रंक रोड शेरशाह की बनवाई हुई है। आने-जाने के मार्ग सुगम हो जाने से व्यापार उन्नत हो गया और देश में धन की वृद्धि हुई।

(८) डाक प्रबन्ध—थोड़ी-थोड़ी दूर पर डाक की चौकियां बनी हुई थीं और हरकारे डाक ले जाते थे, परन्तु यह डाक सरकारी ही होती थी।

(९) दान और वृत्तियां—शेरशाह ने शिक्षा प्रसार के लिए अनेक मकतब खोले और विद्यार्थियों के लिए वृत्तियां नियत कीं। सम्राट् ने कई धर्मार्थ लगर खोले थे जिन पर प्रति वर्ष एक लाख अस्सी हजार सुवर्ण मुद्रा व्यय होती थीं।

(१०) विशुद्ध सिक्के—शेरशाह ने सिक्कों में भी संशोधन किया और विशुद्ध चांदी के कई सिक्के बनवाये।

प्रश्न २२—अकबर की विजयों का संक्षेप में वर्णन करो।

उत्तर—गद्दी पर बैठने के पश्चात् अकबर ने अपना राज्य बढ़ाना आरम्भ कर दिया और लगातार विजय प्राप्त करता चला गया और अन्त में वह एक सुदृढ़ राज्य स्थापित करने में सफल हुआ।

(१) अकबर ने सबसे पहले सन् १५५६ ई० में दिल्ली, आगरा और पंजाब को विजय किया।

(२) उसके मन्त्री बैरामखां ने ग्वालियर, अजमेर और जौनपुर के प्रदेश जीतकर मुगल साम्राज्य में सम्मिलित किये।

(३) मालवा—सन् १५६२ ई० में अकबर ने अपने सेनापति अधमखां को सेना देकर मालवा विजय के लिए भेजा। मालवा के अफगान सरदार बाज-बहादुर ने कुछ समय युद्ध करने के पश्चात् अधीनता स्वीकार कर ली। इस प्रकार मालवा भी अकबर के आधीन हो गया।

(४) गोंडवाना (१५६४ ई०)—गोडवाना का प्रदेश वर्तमान मध्य-प्रदेश का उत्तरी भाग था। यहा वीर राजपूत रानी दुर्गावती शासक थी। वह एक अत्यन्त साहसी, बुद्धिमती तथा नीतिज्ञ रानी थी। दुर्गावती ने जबलपुर के निकट बड़े धैर्य से वीरतापूर्वक मुगलों का सामना किया, परन्तु विजय की आशा न रहने पर उसने अपने स्त्री धर्म की रक्षा के लिए आत्महत्या कर ली। उसका पुत्र वीरनारायण भी वीरगति को प्राप्त हुआ। इस प्रकार गोंडवाना पर भी मुगलों का अधिकार हो गया।

(५) **चित्तौड़** (१५६८ ई०)—अकबर ने स्वयं १५६८ ई० में चित्तौड़ पर आक्रमण किया। राणा उदयसिंह दुर्ग सेनापति जयमल को सौंप कर स्वयं अरावली पर्वत को भाग गया और वहां पर उदयपुर के स्थान पर नयी राजधानी स्थापित कर ली। जयमल ने कई महीने तक वीरतापूर्वक अकबर का सामना किया, परन्तु एक रात्रि को जब वह दुर्ग की मरम्मत करवा रहा था, वह अकबर के तीर का निशाना बन गया। इस प्रकार चित्तौड़ दुर्ग पर भी अकबर का अधिकार हो गया।

(६) **रणथम्भौर और कालिंजर**—सन् १५६९ ई० में अकबर ने इन दोनों दुर्गों पर भी अपना अधिकार कर लिया।

इसके पश्चात् बीकानेर, जोधपुर और जैसलमेर के राजाओं ने भी अकबर की आधीनता स्वीकार कर ली। इस प्रकार समस्त राजपूताने पर अकबर का अधिकार हो गया।

(७) **गुजराज** (१५७२ ई०)—सन् १५७२ ई० में अकबर ने गुजरात पर आक्रमण किया। गुजरात का बादशाह मुज़फ्फरशाह खेतों में छिपा हुआ पकड़ा गया। उसने भी मुगलों की आधीनता स्वीकार कर ली।

(८) **बिहार और बंगाल** (१५७६ ई०)—अकबर ने बंगाल और बिहार के शासक दाऊद खां को हराकर इस प्रदेश को मुगल साम्राज्य में मिला लिया।

(९) **काबुल, काश्मीर, सिंध आदि**—१५८५ ई० में अकबर के सौतेले भाई मिर्जा हकीम की मृत्यु हो गई। वह काबुल का शासक था। उसकी मृत्यु के पश्चात् काबुल मुगल साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया गया। सन् १५८६ ई० में काश्मीर पर अधिकार हो गया। सन् १५९१ ई० में सिंध, सन् १५९२ ई० उड़ीसा और १५९५ ई० मे बिलोचिस्तान और कन्धार भी मुगल साम्राज्य में मिला लिए गए।

(१०) **दक्षिण विजय**—उत्तरी भारत पर अधिकार करने के पश्चात् अकबर का ध्यान दक्षिण का ओर गया। उस समय दक्षिण की मुस्लिम रियासतों के आपसी गृह कलह हो रहा था। इससे अकबर ने पूरा लाभ उठाया।

(क) **अहमदनगर की विजय**—अकबर ने अपने पुत्र मुराद को सेना देकर अहमदनगर के विरुद्ध भेजा। उस समय अहमदनगर का शासक एक नाबालिग था और उसकी बुआ चांदबीबी उसकी संरक्षिका थी। १५९५ ई० में मुराद ने अहमद नगर का घेरा डाला, परन्तु चांदबीबी ने उसकी एक भी चाल सफल न होने दी। उसने वीरता से उसका सामना किया। अन्त में सन्धि हो गयी

और चांदबीबी ने बरार का प्रान्त मुगलों को दे दिया। परन्तु सन् १५९९ ई० में चांदबीबी का अपने ही सैनिकों द्वारा धोखे से वध हो जाने पर, मुगलों ने अगले ही वर्ष अहमदनगर पर अधिकार कर लिया।

(२) **खानदेश की विजय**—सन् १५९१ ई० में अकबर ने खानदेश की राजधानी बुरहानपुर और १६०१ ई० में असीरगढ़ के प्रसिद्ध दुर्ग को जीतकर खानदेश पर अपना अधिकार कर लिया।

इस प्रकार अकबर का राज्य बंगाल से अफगानिस्तान तक और काश्मीर से लेकर दक्षिण में गोदावरी नदी तक फैल गया।

प्रश्न २३—अकबर की नीति क्या थी? उसने राजपूतों और हिन्दुओं को किस प्रकार प्रसन्न रखा?

अथवा

अकबर की हिन्दुओं के प्रति क्या राजनीति थी और उसका साम्राज्य पर क्या प्रभाव पड़ा था? **(प्रथमा, सं० २०१९)**

उत्तर—अकबर एक दूरदर्शी नीतिज्ञ था। यह अल्पायु में ही गद्दी पर बैठा था। उसे बच्चा समझ कर अनेक मुसलमान सरदारों ने विद्रोह किये, परन्तु वे विद्रोह बैराम खां की सहायता से दबा दिए गए। अकबर इस बात को भली भांति जानता था कि मुसलमान सरदारों की रोकथाम के लिए उसे हिन्दुओं और विशेषकर राजपूतों को अपनी ओर गांठना आवश्यक है। बाद में तो उसके धार्मिक विचार भी बहुत उदार हो गये थे। उसकी नीति थी कि हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच के भेद-भाव को दूर करके एक सम्मिलित जाति बनाई जाय। उसने अपनी नीति को सफल बनाने के लिए निम्नलिखित ढंग अपनाये—

(१) **राजपूतों से विवाह सम्बन्ध**—अकबर ने सन् १५६२ ई० में जयपुर के राजा बिहारीमल की पुत्री से विवाह किया। सलीम उसी रानी का पुत्र था। इसके पश्चात् बीकानेर तथा जैसलमेर की राजपूत राजकुमारियां भी शाही महल में आ गई। राजकुमार सलीम का विवाह भी एक राजपूत राजकुमारी के साथ हुआ। अकबर का अपने राजपूत रिश्तेदारों से बहुत अच्छा व्यवहार था।

(२) **हिन्दुओं को उच्च पद**—अकबर ने राजपूतों तथा अन्य हिन्दुओं को सिविल में ही नहीं, बल्कि सेना में भी ऊंचे पदों पर नियुक्त किया। राजा भगवानदास, टोडरमल, बीरबल और मानसिंह प्रसिद्ध राजपूतों में से

थे। अकबर की सेना में हिन्दू सैनिकों की संख्या मुसलमान सैनिकों से कम नहीं थी।

(३) **धार्मिक स्वतन्त्रता**—हिन्दुओं को पूर्ण स्वतन्त्रता थी। अकबर ने यह आदेश दे दिया था कि हिन्दू मन्दिरों को किसी प्रकार की हानि न पहुचे। हिन्दुओं को प्रसन्न करने के लिए अकवर ने विशेष अवसरों पर पशु वध भी निषिद्ध कर दिया था।

(४) **जजिया हटाना**—सन् १५६३ ई० मे जजिया भी हटा दिया गया। इन करों के हटाने से हिन्दू प्रजा अकबर से बहुत प्रसन्न हो गई और अब हिन्दू मुसलमानों को विदेशी न समझ कर इसी देश का रहने वाला समझने लगे।

अकबर की इस नीति ने सभी हिन्दुओं और विशेषतया राजपूतों को दिल्ली साम्राज्य का सहायक बना दिया और उन्होंने हृदय से सहायता करके भारतवर्ष मे मुगल साम्राज्य की जड़ को दृढ़ किया।

प्रश्न २४—अकबर को मुगल वंश का सबसे महान् शासक क्यों कहते हैं ?
(प्रथमा, सं० २०१६)

उत्तर—अकबर मुगल वश का सबसे महान् सम्राट् गिना जाता है। इसके निम्नलिखित कारण है :—

(१) वास्तव में भारतवर्ष मे मुगल साम्राज्य का संचालक अकवर ही था। बाबर को तो इतना समय नहीं मिला कि वह साम्राज्य को सुदृढ कर जाता।

(२) अकबर ने अपने विशाल साम्राज्य का बहुत ही उत्तम प्रबन्ध किया और उसकी जड को सुदृढ़ कर दिया। उसके राष्ट्रीय, आर्थिक और सेना सवधी सुधार उसकी योग्यता के स्पष्ट प्रमाण है।

(३) अकवर प्रथम मुसलमान बादशाह था जिसने यह अनुभव किया कि राज्य की दृढ़ता समस्त प्रजा की प्रसन्नता पर निर्भर है न कि प्रजा के किए भाग की प्रसन्नता पर। उसने इसीलिए हिन्दू और मुसलमानों के भेद-भाव को दूर करने का प्रयत्न किया और उनके साथ समान व्यवहार किया। उसने सभी जाति के लोगों को धार्मिक स्वतन्त्रता देकर सबका सहयोग प्राप्त कर एक विशाल, सुदृढ राज्य की स्थापना की।

(४) अकवर प्रथम शासक था जिसने हिन्दू और मुसलमान को मिलाकर एक सम्मिलित जाति बनाने का प्रयत्न किया। उसने इसी विचार से दीन इलाही धर्म चलाया। उसके शासन मे प्रजा संतुष्ट थी और देश समृद्धिशाली था।

प्रश्न २५—शाहजहाँ के शासन काल का संक्षिप्त हाल लिखो और उसकी दक्षिण की लड़ाइयों और भवनों के निर्माण का वर्णन करो।

उत्तर—जहाँगीर के दो पुत्र थे—एक शहरयार और दूसरा खुर्रम। शहरयार नूरजहाँ का जामाता था और खुर्रम नूरजहां के भाई आसफखां का जामाता था। जहाँगीर की मृत्यु के समय खुर्रम दक्षिण में था। आसफखां ने उसे तुरन्त बुला भेजा। शहरयार को आसफखां ने लाहौर के समीप युद्ध में पराजित किया और उसकी आंखें निकलवा दीं। खुर्रम ने आगरे पहुंचते ही बाबर की सन्तान के सभी पुरुषों को गुप्त रूप से मरवा डाला और स्वयं शाहजहां के नाम से सिंहासन पर बैठा।

दक्षिण की लड़ाइयाँ—(१) खांजहां लोधी का विद्रोह—शाहजहाँ के गद्दी पर बैठने के कुछ ही दिनों के पश्चात् दक्षिण के वायसराय और सेनापति खांजहां लोधी ने विद्रोह कर दिया, परन्तु वह पराजित हुआ और सन् १६३१ ई० में मारा गया।

(२) अहमदनगर का मिलना—सन् १६३७ ई० में शाहजहां ने अहमदनगर पर आक्रमण करके उसे अपने मुगल साम्राज्य में मिला लिया।

(३) बीजापुर और गोलकुंडा की आधीनता—शाहजहां का ध्यान इन दोनों रियासतों की ओर गया, परन्तु इन दोनों रियासतों ने उसकी आधीनता स्वीकार कर ली और कर देना स्वीकार कर लिया।

(४) हुगली पर आक्रमण—हुगली नगर मे पुर्तगालियों ने एक व्यापारिक कोठी स्थापित कर रखी थी और वे धीरे-धीरे अपनी शक्ति को बढ़ा रहे थे। वे लोग हिन्दू और मुसलमान बच्चों को पकड़कर ले जाते और उन्हें ईसाई बना लेते थे। वे दासों का व्यापार भी करते थे। एक दिन उन्होंने बेगम मुमताज महल की दो दास-कन्याओं को भी पकड़ लिया। बादशाह ने क्रुद्ध होकर हुगली पर आक्रमण करवा दिया। बंगाल के सूबेदार ने हुगली का घेरा डाल दिया। पुर्तगालियों की पराजय हुई। उनकी बस्ती उजाड़ दी गई।

कन्धार पर अधिकार—जहांगीर के शासनकाल में कन्धार पर ईरान का अधिकार हो गया था। शाहजहां उसे लौटा लेना चाहता था। अलीमर्दानखां ने जो कि शाह ईरान की ओर से कन्धार का गवर्नर था, कुछ धन लेकर कंधार को शाहजहां के हवाले कर दिया और उसने शाहजहाँ के आधीन नौकरी भी कर ली। परन्तु कुछ वर्षों के पश्चात् ईरानी सेना ने कन्धार पर पुनः अधिकार कर लिया। शाहजहाँ ने जीतने के लिये कई बार सेनाएं भेजी, परन्तु

उसे सफलता न मिली और कन्धार सदा के लिए मुगलों के हाथ से जाता रहा।

शाहजहां के भवन—शाहजहां को भवन बनवाने का बहुत शौक था, इसलिए उसने आगरा, दिल्ली, लाहौर और कई दूसरे नगरों में बड़े सुन्दर भवन बनवाये। इसी कारण शाहजहां को इन्जीनियर सम्राट् कहते है।

(१) **ताजमहल**—ताजमहल आगरे में यमुना नदी के तट पर बना है। संगमरमर का यह मकबरा शाहजहां ने अपनी प्यारी पत्नी मुमताज महल की स्मृति में बनवाया था। यह संसार में सर्वश्रेष्ठ अद्भुत इमारतों में से एक है। इसके बनने में २२ वर्ष और तीन करोड़ रुपये व्यय हुए थे। शाहजहां का शव भी इसी मकबरे में दफनाया गया था।

(२) **मोती मस्जिद**—यह आगरे में किले के अन्दर बनी हुई है। यह सफेद संगमरमर का एक अद्भुत भवन है।

(३) **मुसम्मन बुर्ज**—मुसम्मन बुर्ज आगरे में किले के अन्दर संगमरमर का बना हुआ एक अति सुन्दर भवन है। शाहजहाँ की मृत्यु इसी में हुई थी। इसमे से रोजा ताजमहल स्पष्ट दिखाई देता है।

(४) **लालकिला**—यह दिल्ली में यमुना नदी के तट पर बना हुआ है। इसमें दीवान-ए-आम और दीवान-ए-खास बहुत सुन्दर बने हुए है।

(५) **जामा मस्जिद**—यह दिल्ली में लालकिले के सामने स्थित है। यह एक विशाल भवन है और लाल पत्थर की बनी हुई है।

(६) **शाहजहानाबाद**—दिल्ली का वर्तमान नगर जो बहुत समय तक शाहजहानाबाद के नाम से प्रसिद्ध था, शाहजहां का बनवाया हुआ ही है।

(७) **जहांगीर का मकबरा**—शाहदरा (पाकिस्तान में जहांगीर का अति सुन्दर मकबरा भी शाहजहां का ही बनवाया हुआ है।

(८) **शालीमार बाग**—लाहौर का यह बाग भी शाहजहां का बनवाया हुआ ही है।

(९) **तख्त-ए-ताऊस**—शाहजहां ने बादशाह बनते ही एक नया राज्य सिंहासन बनवाया, जिसे तख्त-ए-ताऊस कहते है। यह सिंहासन ७ वर्ष में बना था। इसमें अनगिनत बहुमूल्य पत्थर और हीरे मोती लग हुए थे।

प्रश्न २५—शाहजहां के पुत्रों में सिंहासनारोहण के युद्ध का हाल लिखो और उसमें औरंगजेब की सफलता के कारण वर्णन करो।

(प्रथमा संवत् २०१७)

उत्तर—सन् १६१७ ई० में शाहजहाँ आगरे में बहुत बीमार हो गया। सबसे बड़ा पुत्र दारा उस समय बादशाह के पास ही था। शुजा बंगाल में औरंगजेब दक्षिण में और मुराद गुजरात में था। ये सभी भाई सूबेदार थे, इसलिए इन सबको राज्य प्रबन्ध तथा सैनिक युद्धों का अनुभव था और प्रत्येक के पास अपनी-अपनी सेना थी। दारा ने कोशिश की कि पिता की बीमारी का समाचार गुप्त रक्खा जाये, परन्तु उसे सफलता न मिली। गुप्त-चरों द्वारा सभी भाइयों को शाहजहां की बीमारी का समाचार मिल गया और सबने युद्ध की तैयारी आरम्भ कर दी। सर्वप्रथम बंगाल के सूबेदार शुजा ने अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा की और एक विशाल सेना लेकर वह आगरे की ओर बढ़ा, परन्तु दारा के पुत्र सुलेमान शिकोह और राजा जयसिंह से पराजित होकर बंगाल वापिस भाग गया।

औरंगजेब ने मुराद को अपने साथ मिला लिया। दोनों भाइयों में यह संधि हो गयी कि जीतने के पश्चात् पंजाब, काबुल, काश्मीर और सिन्ध के प्रदेश मुराद को मिलेंगे और शेष राज्य का स्वामी औरंगजेब होगा और वही भारतवर्ष का सम्राट् होगा। इस सन्धि के पश्चात् दोनों भाइयों ने मिलकर आगरे की ओर कूच किया। दारा ने जसवन्तसिंह राठौर और कासिमखां को उनका सामना करने के लिए भेजा, परन्तु वह युद्ध में पराजित होकर जोधपुर भाग गया। विजयी सेना आगरे के समीप पहुंच गयी। इस समय शाहजहां स्वस्थ हो चुका था। शाहजहाँ स्वयं युद्ध क्षेत्र में जाना चाहता था ताकि युद्ध समाप्त हो जाये, परन्तु हठी होने के कारण दारा स्वयं ही उनका सामना करने के लिए बढ़ा। सन् १६५८ ई० में आगरा से कुछ मील दूर सामूगढ़ के स्थान पर घमासान युद्ध हुआ। दारा ने बड़ी वीरता से युद्ध किया। वह विजयी होने वाला ही था कि वह अपने घायल हाथी से उतर पड़ा और घोड़े पर सवार हो गया। जब दारा का सेना ने हौदे को खाली देखा, तो सबने सोचा कि दारा मारा गया है। उसकी सेना के पैर उखड़ गए और दारा को भी युद्ध क्षेत्र से भागना पड़ा। औरगजेब ने फौरन आगरे पर अधिकार कर लिया और शाहजहाँ को दुर्ग में बन्दी बना दिया!

इसके पश्चात् औरंगजेब और मुराद दारा का पीछा करते हुए दिल्ली को चले। मथुरा पहुंच कर औरगजेब ने मुराद को खूब शराब पिलाकर उसे कैद करके ग्वालियर के किले में भेज दिया और वहीं पर उसका वध कर दिया। दारा ने पुनः प्रयत्न किया कि आगरे पर उसका अधिकार हो जाय, परन्तु

औरंगजेब की सेना ने उसे खजवा के स्थान पर पराजित किया। शुजा अराकान के पार भाग गया और इसके पश्चात् कुछ पता नहीं चला। दारा के साथ दादर के शासक ने विश्वासघात किया और उसे औरंगजेब को सौंप दिया। दारा को फटे-पुराने कपड़े पहनाकर और एक मरियल हाथी पर बैठाकर दिल्ली में घुमाया गया और फिर उसका वध कर दिया गया। इस प्रकार औरंगजेब ने सिंहासन प्राप्त किया।

सफलता के कारण—औरंगजेब की सफलता के निम्नलिखित कारण थे—

(१) औरंगजेब बहुत योग्य और अनुभवी सेनापति था। वह रणकुशल तथा साहसी था। उसकी सेना सुशिक्षित थी। दारा के सेनानायक विश्वासघाती थे और स्वय दारा एक वीर सेनापति नहीं था।

(२) औरंगजेब पक्का सुन्नी मुसलमान था, इसलिये राजसभा की सुन्नी पार्टी उसका पक्षपात करती थी। दारा को मुसलमान काफिर समझते थे और उसका विरोध करते थे।

(३) औरंगजेब ने अपने भाई मुराद को अपनी ओर मिलाया और बाद में उसकी सेना को घूस देकर अपने साथ मिला लिया।

(४) रोग मुक्त होने पर भी शाहजहां का युद्ध भूमि में न जाना उसकी एक बहुत बड़ी भूल थी। यदि वह युद्ध भूमि मे चला जाता, तो युद्ध उसी समय समाप्त हो जाता।

प्रश्न २६—औरंगजेब सम्राट् के रूप में सफल क्यों न हो सका ? संक्षेप में लिखिए। (प्रथमा, सं० २०११)

उत्तर—यद्यपि औरंगजेब को प्रत्येक युद्ध में सफलता मिली और उसके शासनकाल मे कोई भी ऐसी शक्ति न थी जो मुगल साम्राज्य से टक्कर ले सके और उसका साम्राज्य इतना बड़ा था कि अन्य किसी भी मुगल बादशाह का साम्राज्य इतना विशाल नहीं था, परन्तु फिर भी उसे एक सफल सम्राट् नहीं कहा जा सकता, क्योंकि मुगल साम्राज्य का पतन उसके शासनकाल मे ही आरम्भ हो गया था। उसकी इस असफलता के निम्नलिखित कारण थे—

(१) **धार्मिक नीति**—औरंगजेब पक्का सुन्नी मुसलमान था। उसने हिन्दुओं को सरकारी पदों से पृथक् कर दिया, मन्दिर गिरवा दिये और फिर से जजिया कर लगा दिया। इसके परिणामस्वरूप हिन्दू व राजपूत सभी मुगल सत्ता के विरोधी हो गये।

(२) **बीजापुर और गोलकुण्डा की विजय**—इन राज्यों को विजय करना

भी औरंगजेब की एक बड़ी भूल थी क्योंकि इससे मराठों की शक्ति बढ़ गई। इन राज्यों के सैनिक मराठी सेना में भर्ती हो गये।

(३) **दक्षिण की लड़ाइयाँ**—दक्षिण में लगातार २६ वर्ष तक हुए युद्धों ने केवल राज्य कोष ही खाली नहीं किया, परन्तु राज्यप्रबन्ध को भी शिथिल कर दिया। इसी बीच में सिक्खों को भी अपनी शक्ति बढाने का अवसर मिल गया। जाटों ने विद्रोह कर दिये और जमींदारों ने मुगल वाइसरायों का प्रतिरोध करना आरम्भ कर दिया।

(४) **अविश्वासी स्वभाव**—बादशाह का सन्देहशील स्वभाव भी मुगल साम्राज्य के पतन का कारण बना। उसे अपने पुत्रों पर भी विश्वास नहीं था। इन कारण से विश्वस्त कर्मचारी भी निराश हो गये और कोई भी सच्चे हृदय से उसकी सेवा न कर सका। राज्य प्रबन्ध खोखला हो गया और औरगजेब के पुत्रों को राज्य प्रबन्ध तथा युद्ध की शिक्षा ही प्राप्त न हो सकी।

प्रश्न २७—अकबर तथा औरंगजेब की नीतियों की तुलना करो और लिखो कि उसका मुगल साम्राज्य पर क्या प्रभाव पड़ा ?

उत्तर—(१) औरंगजेब कट्टर सुन्नी मुसलमान था। वह हिन्दुओं को काफिर समझता था और मुसलमानों का पक्ष लेता था। दूसरी ओर अकबर की नीति के अनुसार हिन्दू मुसलमान समान थे। वह किसी का भी पक्ष नहीं लेता था। वह तो हिन्दू-मुस्लिम भेद-भाव को मिटाकर एक सम्मिलित जाति बनाना चाहता था।

(२) अकबर ने हिन्दुओं को प्रसन्न कर मुगल साम्राज्य को दृढ़ करने के लिये उन पर से जजिया हटा दिया था, परन्तु औरंगजेब ने पुनः उस कर को लगा कर हिन्दुओं को अपना शत्रु बना लिया और मुगल साम्राज्य की जड़ों को हिला दिया। मुगल साम्राज्य के पतन का यह एक मुख्य कारण था।

(३) अकबर ने तो राजपूतों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करके उन्हें अपना मित्र बनाया था, परन्तु औरंगजेब ने जोधपुर नरेश महाराजा जसवन्तसिंह के साथ दुर्व्यवहार कर उन्हें अपना शत्रु बना लिया।

(४) अकबर ने हिन्दुओं को धार्मिक स्वतन्त्रता देने के साथ-साथ उनके मन्दिरों की भी रक्षा की, परन्तु औरंगजेब ने उसकी धार्मिक स्वतन्त्रता को छीनने के साथ-साथ उनके मन्दिरों को भी गिरवाया।

(५) अकबर ने हिन्दुओं को उच्च सरकारी पद दिए, परन्तु औरंगजेब

ने उन्हें सरकारी पदों से पृथक् कर दिया ।

(६) औरंगजेब ने सभी कार्य अकबर की नीति के विपरीत तथा हिन्दुओं के अहित में किये । इस नीति के परिणामस्वरूप मुगल साम्राज्य की नींव हिल गई और उसका पतन आरम्भ हो गया । जिन हिन्दुओं की सहायता से अकबर ने भारतवर्ष में सुदृढ़ मुगल साम्राज्य की नींव डाली थी, वे हिन्दू ही अब औरंगजेब की नीति से अप्रसन्न होकर मुगल साम्राज्य के पतन के कारण बने । यदि औरंगजेब भी अकबर की नीति को अपनाता, तो मुगल साम्राज्य की जड़ें इतनी दृढ हो जातीं कि कोई भी शक्ति इसको आसानी से नहीं हिला सकती थी ।

प्रश्न २८—शिवाजी के जीवन चरित्र का संक्षेप से वर्णन करो और उसके राज्य प्रबन्ध पर नोट लिखो । **(प्रथमा संवत् २०१७)**

अथवा

"शिवाजी एक सफल शासक था" इस कथन की पुष्टि कीजिए ।

(प्रथमा, संवत् २०१५)

उत्तर—शिवाजी का जन्म सन् १६२७ ई० में शोनीर के दुर्ग में हुआ । शिवाजी का पिता शाहजी भोंसला बीजापुर दरबार में एक उच्च सैनिक पद पर नियुक्त था । दरबार की ओर से पूना का प्रदेश उसे जागीर में मिला हुआ था । करनाटक में भी उसकी जागीर थी । शिवाजी का लालन-पालन उसकी माता जीजाबाई की देख रेख में हुआ था । माता ने प्राचीन हिन्दू वीरों की कथायें सुना-सुनाकर शिवाजी के हृदय में धर्म और जाति की रक्षा का भाव कूट-कूट कर भर दिया था । शिवाजी ने दादाजी कोण्डदेव से युद्ध विद्या तथा शासन प्रबन्ध की शिक्षा प्राप्त की । महाराष्ट्र के धार्मिक नेता गुरु रामदास और तुकाराम की शिक्षा ने शिवाजी के मन में हिन्दू धर्म के लिए असीम प्रेम उत्पन्न कर दिया । इन सब बातों का परिणाम यह हुआ कि शिवाजी ने मराठा जाति को संगठित करने का दृढ़ निश्चय कर लिया और अपने इस कार्य के लिए उसने अपने साथ कई और वीर मराठों को भी लिया । धीरे-धीरे शिवाजी ने अपनी सैनिक शक्ति बढ़ाकर रियासत बीजापुर के दुर्ग तोरण, राजगढ़, पुरन्धर, रायगढ़ आदि पर अधिकार कर लिया । सन् १६५६ ई० में बीजापुर के बादशाह ने शिवाजी को पराजित करने के लिए अफजल खां को भेजा । परन्तु शिवाजी ने उसको मार डाला और उसकी सेना को भगा दिया । अन्त में १६६२ ई० में शाह बीजापुर ने शिवाजी के साथ सन्धि कर

ली और उसे सारे अधिकृत प्रदेश का स्वतन्त्र स्वामी मान लिया।

इसके पश्चात् शिवाजी ने मुगल प्रदेश पर छापा मारना शुरू कर दिया। औरंगजेब ने अपने मामा शाइस्ताखां को शिवाजी को दबाने के लिए भेजा, परन्तु शिवाजी ने एक रात्रि को चुपचाप भेस बदल कर पूना दुर्ग पर छापा मार दिया जहां से शाइस्ताखां मुश्किल से जान बचा कर भागा। इसके पश्चात् शिवाजी ने सूरत को लूट कर बहुत धन प्राप्त किया। इसके पश्चात् शिवाजी ने मुगल राजकुमार मुअज्जम को पराजित किया, परन्तु राजा जयसिंह ने उसे मुगल दरबार में उपस्थित होने के लिए राजी कर लिया। जब शिवाजी मुगल दरबार में पहुंचा, तो वहां उसका अपमान किया गया और उसे जेलखाने में डाल दिया गया, जहां से वह बड़ी चतुराई से मिठाई की टोकरी में बैठकर निकल गया और भेस बदलकर पूना पहुंचा।

आगरे से लौटने पर शिवाजी ने पुनः सब किलों को जीता और सूरत को लूटा। सन् १६७४ ई० में रायगढ़ को राजधानी बना कर बड़े सजधज से अपना राज्याभिषेक किया। इसके पश्चात् कर्नाटक के प्रदेशों में जिजी, वैल्लौर तथा अन्य कई दुर्ग जीते। सन् १६८० ई० में ५३ वर्ष की आयु में रायगढ़ में शिवाजी की मृत्यु हो गई।

शासन प्रबन्ध—शिवाजी ने समस्त प्रदेश को दो भागों में बांटा—एक स्वराज्य जो कि सीधा शिवाजी के आधीन था और दूसरा मुगलाई जो कि मुगलों के आधीन था परन्तु शिवाजी वहाँ से चौथ और सरदेशमुखी कर वसूल करता था। शिवाजी ने शासन प्रबन्ध के लिए आठ मन्त्रियों की एक सभा बनाई हुई थी जिसे 'अष्ट प्रधान' कहते थे। प्रत्येक मन्त्री को राज्य प्रबन्ध का एक विभाग मिला हुआ था। प्रधान मन्त्री पेशवा कहलाता था। समस्त देश सूबों और जिलों में बंटा हुआ था। प्रत्येक जिले के प्रबन्ध के लिए राजकीय अधिकारी नियुक्त थे। गाँव के नम्बरदार को पटेल या मुखिया कहते थे। गांव का प्रबन्ध पंचायतें करती थीं।

आर्थिक प्रबन्ध—कृषकों से उपज का $\frac{2}{5}$ भाग लगान के रूप में लिया जाता था। कृषकों पर किसी प्रकार की कठोरता नहीं की जाती थी। अकाल के समय कृषकों को ऋण दिया जाता था। भूमि कर के अतिरिक्त राजकीय आयकर के और भी अनेक साधन थे, जैसे चौथ और सरदेशमुखी। लूटमार का धन भी राजकोष में ही जमा होता था।

सैनिक प्रबन्ध—शिवाजी के पास सशस्त्र सेना थी जिसमें पैदल और घुड़-

सवार दोनों ही सम्मिलित थे। उसके पास २०० लड़ाई के जहाजों का एक बेडा और ८० के लगभग तोपें थी। सेना का वेतन नकद दिया जाता था। दुर्गों की रक्षा की जाती थी और उनको अच्छी दशा में रखने के लिए धन व्यय किया जाता था। किसी भी सैनिक को युद्ध-क्षेत्र मे स्त्री को साथ ले जाने की आज्ञा नही थी। लूटमार का सारा धन राजकोष में जमा करना पड़ता था। मृत्यु के समय शिवाजी के पास तीस-चालीस हजार घुड़सवार और एक लाख प्यादे थे।

प्रश्न २६—मुगल साम्राज्य के पतन के क्या कारण थे ?

(प्रथमा, संवत् २०११)

उत्तर—मुगल साम्राज्य का पतन तो औरंगजेब के शासन काल मे ही शुरू हो गया था, परन्तु जब तक वह जीवित रहा उसके प्रभाव के कारण मुगल शासन की नीवे नही हिली, परन्तु उसकी मृत्यु के पश्चात् शीघ्र ही उसका पतन होना आरम्भ हो गया। मुगल साम्राज्य के पतन के मुख्य कारण निम्नलिखित थे—

(१) **औरंगजेब की धार्मिक नीति**—औरंगजेब कट्टर सुन्नी मुसलमान था। वह प्रत्येक कार्य धार्मिक दृष्टि से करता था। हिन्दुओ को वह काफिर कहता था। हिन्दुओं के साथ उसका व्यवहार बहुत कठोर था। उसने हिन्दुओं पर जजिया कर लगा दिया और उनके मन्दिरों को गिरवाया। उसकी इस नीति से राजपूत, सिक्ख, मराठे तथा अन्य सभी हिन्दू अप्रसन्न हो गये और ये मुगल साम्राज्य के घोर शत्रु बन गये। उसके व्यवहार से शिया मुसलमान भी उससे नाराज हो गये।

(२) **दक्षिण की लड़ाइयाँ**—अपनी आयु के अन्तिम २६ वर्ष औरंगजेब ने दक्षिण मे युद्ध करने में व्यतीत किये। राजधानी से दूर रहने के कारण उसका शासन-प्रबन्ध खोखला हो गया। निरन्तर युद्धों के कारण सेना निर्बल हो गई और राज्य कोष रिक्त हो गया। सैनिकों को वेतन न मिलने के कारण उन्होंने विद्रोह कर दिया।

(३) **बीजापुर और गोलकुण्डा की विजय**—इन दोनों रियासतों को जीतना भी औरगजेब की राजनीतिक भूल थी। इन रियासतों को विजय करने का परिणाम यह हुआ कि मराठे सीधे मुगल प्रदेश पर छापा मारने लगे और इन रियासतों के बेकार सैनिक मराठों की सेना में भर्ती हो गये जिससे मराठों की शक्ति बढ़ गई।

(४) **विदेशी राज्य**—मुगल साम्राज्य भारतवर्ष की अधिकांश जनता के लिए विदेशी राज्य था, इसलिए उसको इस साम्राज्य से कोई सहानुभूति नहीं थी।

(५) **अयोग्य उत्तराधिकारी**—औरंगजेब का स्वभाव बहुत संदेहशील था। उसे अपने पुत्रों तक पर भी विश्वास नहीं था। इसका परिणाम यह हुआ कि उन्हें युद्ध और शासन की अच्छी शिक्षा प्राप्त न हो सकी और औरंगजेब के उत्तराधिकारी अयोग्य तथा निकम्मे हुए। वे अपने मंत्रियों के हाथों में कठ-पुतली बने रहते थे। ये उत्तराधिकारी न तो अच्छे योद्धा थे और न ही साहसी व वीर थे। इनके अतिरिक्त ये लोग विलास-प्रिय थे।

(६) **निरकुश राज्य**—मुगल शासन निरंकुश शासन था और इस प्रकार का शासन केवल उसी समय चल सकता है जबकि बादशाह दूरदर्शी तथा योग्य हो। औरंगजेब के उत्तराधिकारी निकम्मे, अयोग्य तथा अदूरदर्शी थे, इसलिए वे असफल रहे और मुगल साम्राज्य का पतन होने लगा।

(७) **उत्तराधिकारी नियुक्त न करने का नियम न होना**—मुगल वंश में उत्तराधिकारी नियुक्त करने का कोई नियम नहीं था, इसलिए जब कभी बादशाह मरता था तो उसके पुत्रों में राजगद्दी के लिए युद्ध होता था। इससे मुगल साम्राज्य की शक्ति क्षीण होती चली गई।

(८) **अमीरों की अयोग्यता**—औरंगजेब के पश्चात् मुगल दरबार के अमीर भी अयोग्य, विलासी तथा निकम्मे होने लगे।

(९) **मुगल सेना की निर्बलता**—असीम धन और विलासिता के कारण मुगल सेना भी विलास-प्रिय और निर्बल हो गई थी। अफसर पालकियों में बैठ कर युद्धक्षेत्र में जाते थे। सैनिक अपने साथ अपनी स्त्रियों को भी ले जाते थे। बाबर के समय में जो साहस और वीरता मुगल सेना में थी वह औरंगजेब के समय में बिल्कुल नष्ट हो गयी थी।

(१०) **प्रान्तों की स्वतन्त्रता**—औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् कोई योग्य शासक न होने के कारण सूबेदार अपने प्रान्तों में स्वतन्त्र हो गये।

(११) **विदेशी आक्रमण**—नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणों ने मुगल साम्राज्य की रही सही शक्ति को नष्ट कर दिया।

(१२) **साम्राज्य विस्तार**—औरंगजेब के समय में मुगल साम्राज्य का विस्तार बहुत अधिक हो गया था और उस काल में आने जाने के साधन ठीक न होने के कारण इतने बड़े साम्राज्य को अपने आधीन रखना बहुत ही कठिन

था। इसलिये साम्राज्य का विस्तार भी उसके पतन का एक कारण बना।

(१३) **नई शक्तियां**—मराठे और सिक्खों ने अपनी शक्ति को बहुत बढा लिया था। योरोपीय जातियों ने भी भारत में अपने पैर जमा लिये थे। ये सभी शक्तियां मुगल साम्राज्य के पतन का कारण बनी।

(१४) **अच्छे यौद्धिक बेड़े का न होना**—योरोपीय शक्तियों के पास अच्छे जहाजी बेड़े थे परन्तु मुगल बादशाहो के पास इतने अच्छे यौद्धिक बेड़े नही थे। इसका भी मुगल साम्राज्य के पतन पर पर्याप्त प्रभाव पडा।

प्रश्न ३०—पानीपत के तृतीय युद्ध के कारणों, प्रसिद्ध घटनाओं तथा परिणाम का संक्षिप्त वर्णन करो।

उत्तर—पानीपत का तृतीय युद्ध सन् १७६१ ई० में अफगानिस्तान के बादशाह अहमदशाह अब्दाली और मराठों के बीच मे हुआ।

कारण—पंजाब पर अहमदशाह अब्दाली का अधिकार था, परन्तु सन् १७५८ ई० में मराठों ने पंजाब पर अधिकार कर लिया और अब्दाली के प्रतिनिधि को वहां से निकाल दिया। इस पर अब्दाली सन्, १७६१ ई० में एक विशाल सेना लेकर मराठों के विरुद्ध बढ़ा और पानीपत के मैदान में दोनों सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ।

घटनायें—दोनों सेनायें कुछ दिनों तक तो एक दूसरे के सामने डेरा डाले पड़ी रहीं और कोई युद्ध नही हुआ। अब्दाली ने धीरे-धीरे मराठों की रसद के आने के सभी मार्गों को रोक दिया। विवश होकर मराठों को शत्रु सेना पर धावा बोलना पड़ा। कई दिन तक घमासान युद्ध होता रहा। अन्त में मराठे पराजित हुए। मराठा सेनापति सदाशिवराव और पेशवा का पुत्र विश्वासराव युद्ध में काम आये।

असफलता के कारण—(१) मराठे खुले मैदान में लड़ने के अभ्यस्त नहीं थे।

(२) अब्दाली की सेना का अनुशासन मराठों की सेना से उत्तम था।

(३) अब्दाली के पास घोड़े और तोपखाने अधिक अच्छे थे।

(४) इस युद्ध में अवध के नवाब ने अब्दाली की सहायता की।

(५) मराठा सेनापति सदाशिवराव एक अहंकारी व्यक्ति था। उसने जाट सरदार सूर्यमल की बात को नहीं माना। यदि वह उसकी बात को मानकर छापामार युद्ध करता तो सम्भव है मराठों की विजय होती और जाटों की सहायता भी उनको प्राप्त हो जाती।

परिणाम—(१) मराठों की शक्ति क्षीण हो गई जिससे अंग्रेजों ने लाभ उठाया।

(२) पठान भी विजय के पश्चात् शीघ्र ही अपने देश को वापिस चले गये। उन्हें भी इस जीत से कोई विशेष लाभ नहीं हुआ।

(३) पंजाब में सिक्खों का प्रभुत्व जम गया।

प्रश्न ३१—अंग्रेजों और फ्रांसीसियों के व्यापारिक युद्ध में अंग्रेज क्यों विजयी हुए? (प्रथमा परीक्षा, सं० २०११)

उत्तर—फ्रांसीसियों के मुकाबले में अंग्रेजों की भारत में व्यापारिक युद्ध में सफलता के निम्नलिखित कारण थे—

(१) अंग्रेजों की ईस्ट इण्डिया कम्पनी की आर्थिक दशा अच्छी थी और फ्रांसीसी कम्पनी की आर्थिक स्थिति बहुत शिथिल थी।

(२) अंग्रेजी कम्पनी को इंगलैंड की सरकार पूरी सहायता दे रही थी, परन्तु फ्रांसीसी कम्पनी को अपनी सरकार की उचित सहायता नहीं मिल रही थी।

(३) अंग्रेजों ने अपने व्यापारिक उद्देश्य को सदैव अपने सामने रक्खा जिससे उन्हें आर्थिक लाभ होता रहा, परन्तु फ्रांसीसी व्यापार की ओर ध्यान न देकर व्यर्थ युद्ध में धन नष्ट करते थे।

(४) अंग्रेज़ों की कोठियां अच्छे व्यापारिक स्थान पर बनी थीं।

(५) अंग्रेज़ों की जलशक्ति फ्रांसीसियों की अपेक्षा कहीं अधिक थी।

(६) सन् १७५७ ई० में अंग्रेज़ों का बंगाल के उपजाऊ प्रदेश पर अधिकार हो गया था। उन्हें वहां से धन और सैनिक सुगमता से मिल जाते थे, परन्तु फ्रांसीसियों के अधिकार में कोई ऐसा केन्द्र नहीं था।

(७) अंग्रेज़ अधिकारी परस्पर मिलकर कार्य करते थे और फ्रांसीसी अधिकारियों में परस्पर ईर्ष्या व द्वेष था।

(८) फ्रांसीसी सरकार के द्वारा डूप्ले का पदच्युत किया जाना भी फ्रांसीसियों की पराजय का एक कारण बना, क्योंकि उस समय भारत में उसकी उपस्थिति आवश्यक थी।

(९) इंगलैंड के युद्ध मन्त्री पिट ने फ्रांस को यूरोप के युद्धों में उलझाये रखा और वह भारत को उचित सहायता न भेज सका। दूसरी ओर उसने इंगलैंड को योरोपीय युद्धों से पृथक् रखा और भारत में उसने अपनी पूरी शक्ति का प्रयोग किया।

(१०) लाली का बुसे को हैदराबाद से बुलाना भी एक राजनैतिक भूल सिद्ध हुई। इससे दक्षिण में फ्रांसीसी प्रभाव की समाप्ति हो गई।

प्रश्न ३२—डूप्ले भारतवर्ष में फ्रांसीसी साम्राज्य स्थापित करने में क्यों असफल रहा ? (प्रथमा परीक्षा, सं० २०१३)

उत्तर—डूप्ले की असफलता के कारण—

(१) फ्राँस की सरकार ने डूप्ले की समय पर सहायता नहीं की और वह अपनी सेना के लिए पर्याप्त धन प्राप्त न कर सका।

(२) डूप्ले के आधीन फ्रांसीसी कर्मचारियों में एकता नहीं थी। वे एक दूसरे से ईर्ष्या-द्वेष रखते थ।

(३) डूप्ले स्वयं एक साहसी योद्धा न था।

(४) डूप्ले में कुछ अहंकार भी था।

(५) डूप्ले को अपनी सफलता का पूर्ण विश्वास था। वह कभी यह तो सोच भी नहीं सकता था कि वह अंग्रेजों से हार जायेगा।

(६) अंग्रेजों की जल शक्ति फ्रांसीसियों की जल शक्ति से कहीं अधिक थी।

(७) फ्रांस की सरकार डूप्ले के कार्यों में अनुचित हस्तक्षेप करती थी।

प्रश्न ३२—प्लासी के युद्ध के कारण, घटनायें और परिणाम लिखो।

उत्तर—प्लासी का युद्ध सन् १८५७ ई० में बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला और अंग्रेजों के मध्य हुआ।

कारण—(१) अग्रेज कलकत्ते में अपने किले की मरम्मत करवा रहे थे। बंगाल के नवाब ने उन्हें रोका, परन्तु वे न माने। अंग्रेजों ने बंगाल के धनाढ्य व्यक्ति किशनदास को नवाब के मना करने पर भी शरण दे दी थी। तीसरे अंग्रेज अपने व्यापारिक अधिकारों का अनुचित प्रयोग कर रहे थे। इससे क्रोधित होकर नवाब ने अंग्रेजों पर आक्रमण करके कलकत्ता नगर उनसे छीन लिया।

(२) जब कलकत्ता नगर के छिन जाने का समाचार मद्रास पहुंचा, तो क्लाइव तथा जल सेनापति वाटसन सेना लेकर कलकत्ता पहुंचे और उन्होंने कलकत्ता नवाव से जीत लिया। नवाब ने सन्धि कर ली और कम्पनी के सभी व्यापारिक अधिकार लौटा दिए।

(३) क्लाइव ने चन्द्र नगर (फ्रांसीसी बस्ती) पर अधिकार कर लिया।

(४) क्लाइव ने सिराजुद्दौला की नवाबी का अन्त करने के लिए उसके

प्रधान सेनापति मीरजाफर के साथ मिलकर नवाब के विरुद्ध षड्यन्त्र रचा। क्लाइव ने मीरजाफर को नवाब बनाने का वायदा किया। इसके पश्चात् क्लाइव ने एक पत्र लिखकर नवाब पर गुप्त रूप से फ्रांसीसियों के साथ जोड़-तोड़ करने का आरोप लगाया। अभी नवाब ने पत्र का उत्तर भी नहीं दिया था कि क्लाइव ३००० सैनिकों के साथ प्लासी के मैदान में आ डटा। नवाब भी ५०,००० पैदल, १८००० घुड़सवार तथा कुछ फ्रांसीसी सैनिकों को साथ लेकर मैदान में आ डटा।

घटनाएं—२३ जून सन् १७५७ ई० की दोपहर बाद अंग्रेजों ने नवाब की सेना पर धावा बोल दिना। देशद्रोही मीरजाफर ने युद्ध में कोई भाग नहीं लिया। नवाब के एक और सैनिक अधिकारी राय दुर्लभ ने भी धोखा दिया। केवल थोड़े से फ्रांसीसी लड़े, परन्तु वे पराजित हुए। नवाब युद्ध भूमि से भाग निकला, परन्तु पकड़ लिया गया और मीरजाफर के पुत्र ने उसका वध कर दिया। अपने ही सैनिक अधिकारियों के धोखे के कारण नवाब की पराज़य हुई और अंग्रेज विजयी हुए।

परिणाम—(१) मीरजाफर बंगाल का नवाब बन गया, परन्तु वह अंग्रेजों के हाथ की कठपुतली बनकर रहा।

(२) ईस्ट इण्डिया कम्पनी को मीरज़ाफर से बहुत सा धन और २४ परगने का प्रदेश प्राप्त हुआ।

(३) भारतवर्ष में अंग्रेजों की शक्ति बहुत बढ़ गई और फ्रांसीसियों का भारत विजय का स्वप्न भंग हो गया।

प्रश्न ३४—क्लाइव को भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का संस्थापक क्यों कहा जाता है? उसने किस प्रकार भारत में अंग्रेजों की शक्ति बढ़ाई?

(प्रथमा परीक्षा, सं० २०१०, २०१६)

उत्तर—भारतवर्ष में क्लाइव को ही अंग्रेजी राज्य का संस्थापक कहना उचित है। उसने अपनी वीरता, साहस और धैर्य से ईस्ट इण्डिया कम्पनी को जो सर्वथा एक व्यापारिक कम्पनी थी शासक शक्ति बना दिया। क्लाइव के निम्नलिखित कार्यों के लिए उसे अंग्रेजी राज्य का संस्थापक कहा जा सकता है—

(१) कर्नाटक के द्वितीय युद्ध में अंग्रेजों की दशा बहुत खराब थी और फ्रांसीसियों की विजय पर तनिक भी सन्देह नहीं था, परन्तु अरकाट पर अधिकार करके क्लाइव ने डूप्ले की आशाओं पर पानी फेर दिया और

दक्षिण में अंग्रेजी प्रभाव को नष्ट होने से बचा लिया।

(२) सन् १७५७ ई० में प्लासी की लड़ाई जीतकर क्लाइव ने भारत में अंग्रेजी राज्य की नींव डाल दी और फ्रांसीसी प्रभाव को नष्ट कर दिया।

(३) सन् १७५७ ई० में क्लाइव ने शाह आलम द्वितीय के साथ इलाहाबाद की सन्धि की। इस सन्धि के अनुसार अंग्रेजों को बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी मिल गई। इससे भारत में अंग्रेजी राज्य की नींव बहुत दृढ हो गई।

(४) क्लाइव ने मुगल सम्राट् शाह आलम को अपने अधिकार में कर लिया जिससे वह कम्पनी के लिये हर प्रकार के अधिकार प्राप्त कर सकता था। क्लाइव ने अपने सुधारों से कम्पनी के प्रबन्ध को सुन्दरता-पूर्वक संगठित कर दिया।

(५) क्लाइव तीन बार भारत में आया और हर बार उसने कोई न कोई महत्त्वपूर्ण कार्य किया। प्रथम बार उसने दक्षिण में कम्पनी की सत्ता को दृढ किया, दूसरी बार बंगाल को जीता और तीसरी बार उसने कम्पनी की राजनैतिक शक्ति को बढाया।

प्रश्न ३५—वारेन हेस्टिंग्ज के शासन-सुधारों का वर्णन कीजिये।

(प्रथमा परीक्षा, सं० २०१२, २०१३)

उत्तर—वारेन हेस्टिंग्ज के शासन-सुधार—

द्वैत शासन का अन्त—सर्वप्रथम वारेन हेस्टिंग्ज ने क्लाइव के द्वैत शासन को समाप्त किया और समस्त बंगाल पर अंग्रेजी राज्य स्थापित किया।

लगान में सुधार—(१) भूमि का लगान पंचवर्षीय कर दिया। भूमि सबसे अधिक ठेका देने वाले को दी जाने लगी।

(२) भूमि-कर उगाहने के लिए प्रत्येक जिले में अंग्रेज कलेक्टर नियुक्त किया गया। उसकी सहायता के लिए देशी कर्मचारी नियुक्त किए गए।

(३) भूमि-कर का लेखा ठीक-ठीक रखने के लिए कलकत्ता में एक रेवेन्यू बोर्ड स्थापित किया गया।

न्याय सुधार—(१) प्रत्येक जिले में एक दीवानी और एक फौजदारी न्यायालय स्थापित किया। दीवानी न्यायालय का अंग्रेज जज ही कलेक्टर होता था, जो लगान भी वसूल करता था।

(२) कलकत्ते में अपील के दो न्यायालय स्थापित किए गए—एक सदर दीवानी अदालत और दूसरी सदर नजामत अदालत।

(३) हिन्दुओं और मुसलमानों के राज नियमों का एक सरल संग्रह किया गया, जिससे उसके अनुसार अभियोगों का निर्णय किया जा सके।

(४) चोरो और डाकुओं का भी दमन किया गया।

व्यय में कटौती—(१) बंगाल के नवाब का शुल्क ३२ लाख की बजाय १६ लाख कर दिया गया।

(२) मुगल सम्राट् शाहआलम का २६ लाख रुपये का वार्षिक शुल्क बंद कर दिया गया, क्योंकि वह मराठों की संरक्षता में दिल्ली चला गया था।

(३) कड़ा और इलाहाबाद के जिले शाह आलम से वापिस लेकर अवध के नवाब को ५० लाख रुपये में बेच दिये।

(४) रुहेलों के विरुद्ध अवध के नवाब की सहायता करने के बदले मे ४० लाख रुपया कम्पनी ने उससे प्राप्त किया।

प्रश्न ३६—मैसूर के द्वितीय युद्ध के कारण, प्रसिद्ध घटनाएं तथा परिणाम लिखो।

उत्तर—मैसूर के प्रथम युद्ध के पश्चात् (१७६९ ई०) में (अंग्रेजों ने मैसूर के सुलतान हैदरअली से प्रतिज्ञा की थी कि यदि किसी शत्रु से उस पर आक्रमण किया तो वे उसकी सहायता करेंगे, किन्तु इस प्रतिज्ञा के कुछ समय पश्चात् जब मराठों ने उस पर आक्रमण किया तो अंग्रेजों ने उसकी सहायता न की। इससे हैंदरअली बहुत अप्रसन्न था।

(२) अमेरिका के स्वतन्त्रता-युद्ध में जो इंगलैंड और अमेरिका के वस्ती वासियों के मध्य हुआ, फ्रांस (१७७८ ई० में) इंगलैंड के विरोधी पक्ष में मिल गया। इस बात पर रुष्ट होकर अंग्रेजों ने भारत में फ्रांसीसियों के प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। जिसमें माही का बन्दरगाह भी था। जिससे हैदर-अली को बहुत लाभ था। इसीलिए उसने अंग्रेजों से माही के बन्दरगाह को खाली करने को कहा परन्तु अंग्रेजों ने उसकी परवाह न की। इस पर हैदर-अली ने युद्ध छेड़ दिया।

घटनाएं—हैदरअली ने एक विशाल सेना के साथ कर्नाटक पर आक्रमण किया और सारे देश को तहस-नहस कर डाला। अंग्रेजों के कर्नल बेली की हार हुई और बकसर विजेता मेजर मनरो भी अपनी तोपें कांजीवरम के एक तालाब में फेंक कर स्वयं मद्रास भाग गया। इसके पश्चात् सर आयरकूट हैदर अली के विरुद्ध बढ़ा और उसने पोर्टोनोवो, पोलीयूर और सोलनगढ़ स्थानों पर हैदरअली को हराया। उस समय फ्राँस से एक सहायक सेना आ पहुंची, जिससे

हैदरअली का साहस बढ़ गया। किन्तु अभी युद्ध हो रहा था कि १७८२ ई० में हैदरअली की एक नासूर के कारण मृत्यु हो गई।

हैदरअली की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र टीपू सुलतान ने युद्ध जारी रखा और बहुत से प्रदेश भी विजय किए। अंत में १७८४ ई० में मंगलौर के संधि पत्र द्वारा दोनों पत्रों मे संधि हो गई। परिणामस्वरूप मंगलौर के संधि पत्र द्वारा एक दूसरे के विजित प्रदेश तथा वन्दी बांट लिए गए।

प्रश्न ३७—लार्ड कार्नवालिस के शासन काल का संक्षिप्त वर्णन करो और उसके सुधारों का विशेषता पूर्वक वर्णन करो।

अथवा

लार्ड कार्नवालिस के शासन सुधारों का उल्लेख कीजिए।

(प्रथमा संवत् २०१४)

अथवा

"स्थायी प्रबन्ध" पर सक्षिप्त प्रकाश डालिए।

(प्रथमा, संवत् २०१७, २०१९)

उत्तर—लार्ड कार्नवालिस गवर्नर जनरल और कमाण्डर-इन-चीफ नियुक्त होकर आया था। वह इंगलैंड का प्रभावशाली और धनवान् जमींदार था। उसे एक नये कानून द्वारा अपनी कौसिल की सम्मति को अस्वीकृत करने का अधिकार दे दिया गया था।

सुधार—लार्ड कार्नवालिस ने जो सुधार किये उनकी वजह से प्रसिद्ध हो गया था। उसके सुधार तीन भीगों में बांटे जा सकते है—

( ) **घूंसखोरी को रोकना**—कम्पनी के नौकर अपनी आय को वढ़ाने के लिए रिश्वत और निजी व्यापार करते थे क्योंकि उस समय उनके वेतन बहुत थोड़े थे और पेन्शन का भी कोई नियम नही था। कार्नवालिम ने आते ही वेतनों में उचित वृद्धि की और घूंसखोरी को रोकने के लिये कठोर नियम वनाए। इस प्रकार उसने इस दोष को दूर किया।

(२) **न्याय-सम्बन्धी सुधार**—

(अ) **कठोर दण्डों का हटाना**—प्राचीन काल के कठोर दण्ड जैसे हाथ पांव काट देना, हटा दिये गये।

(ब) **दण्ड-विधान**—एक नया दण्ड विधान प्रचलित किया गया जिसे कार्नवालिस कोड कहते थे।

(स) **अपील की अदालतें**—कलकत्ता, ढाका, पटना, मुर्शिदावाद, में चार

बड़ी अदालतें डिस्ट्रिक्ट अदालतों के विरुद्ध अपील सुनने के लिए स्थापित की गई। अपील की अंतिम अदालतें पहले की भांति सदर दीवानी अदालत और सदर निजामत अदालत ही रहीं।

(द) डिप्टी जजों की नियुक्ति—कार्नवालिस के आने से पहले कलेक्टर दो काम करते थे—पहला भूमिकर वसूल करना और दूसरा अदालत का काम। कार्नवालिस ने इन दोनों कामों को अलग कर दिया। कलेक्टर को केवल लगान वसूल करने का काम सौंपा गया और दीवानी अदालतों के लिए डिस्ट्रिक्ट जज नियुक्त किए गए।

(ई) पुलिस सुधार—कार्नवालिस के आने से पहिले पुलिस का काम जमींदार किया करते थे। कार्नवालिस ने यह काम जमींदारों से ले लिया। पुलिस के प्रबन्ध के लिए प्रत्येक जिला कई थानों में बांटा गया। एक दरोगा को एक थाना सौंपा गया और उसके आधीन कई सिपाही होते थे। उन सब के ऊपर एक बड़ा अफसर होता था। इस प्रकार उसने पुलिस में सुधार किया।

कार्नवालिस ने यह कानून बना दिया कि भारतवासी किसी ऊंचे पद पर नियुक्त न किया जावे क्योंकि वह उनकी योग्यता पर विश्वास नहीं करता था। परन्तु उसने राज्य शासन तथा न्याय विभाग सुदृढ़ बना दिया। इसने रिश्वत-खोरी बन्द करा दी। कार्नवालिस के ये सुधार अत्यन्त लाभकारी सिद्ध हुए।

(३) स्थायी बन्दोबस्त—पहिले भूमिकर जमींदार एकत्र करते थे। कृषकों से लगान एकत्र करके उसमें से अपना कमीशन काटकर शेष लगान राजकोष में जमा करा देते थे। बंगाल का स्थायी बन्दोबस्त कार्नवालिस के शासनकाल की प्रसिद्ध घटना है। क्लाइव ने लगान उगाने के पुराने ढंग में कोई परिवर्तन नहीं किया। जब इलाहाबाद के सन्धिपत्र के अनुसार १७६५ ई० में बंगाल, उड़ीसा और बिहार की दीवानी अंग्रेजों को मिली। वारन हेस्टिंग्ज ने राजकोष की आय बढ़ाने के लिए नीलामी की प्रथा चलाई। इसके अनुसार जिसकी बोली सबसे ऊंची होती थी उसको भूमि दी जाती थी। पहले यह ठेका पांच वर्ष के लिए दिया जाता था परन्तु बाद में यह वार्षिक कर दिया गया। परन्तु इससे असन्तोषजनक परिणाम निकला। इस असंतोष के निम्नलिखित कारण थे—

(अ) जमींदारों को यह डर उत्पन्न हो गया था कि उनकी भूमि की दशा सुधारने पर लगान बढ़ा दिया जायगा।

(ब) भूमि का ठेका उसको दिया जाता था जिसकी बोली सबसे ऊंची

होती थी। इससे यह विश्वास नहीं होता था कि जो भूमि अब उनके आधीन है अगले वर्ष भी उनके आधीन रहेगी। इस प्रकार वे भूमि में स्थायी सुधार नहीं करते थे।

(स) जमींदार नीलम के समय इतनी अधिक बोली लगा बैठते थे कि वे इतना लगान भूमि की आय में से पूर्ति नहीं कर सकते थे जिससे लोग निर्धन हो गये और सरकार की आय अनिश्चित हो गई।

कम्पनी के संचालकों ने इस प्रथा को प्रोत्साहन नहीं दिया क्योंकि इसके द्वारा भूमि ऊसर हो गई। लार्ड कार्नवालिस जब गवर्नर जनरल बनकर आया तब उसने इस समस्या पर विचार किया और उसने इसमें यह सुधार किया कि भूमि सदा उनके पास रहेगी और भूमि में सुधार करने पर लगान नहीं बढ़ाया जायगा। इस सुधार को करने से कम्पनी की आय निश्चित हो गई और साथ में भूमि का सुधार हो गया। राजकीय टैक्स सदा के लिए निश्चित कर दिया और जमींदारों का भूमि पर अधिकार मान लिया गया। इस प्रबन्ध को स्थायी प्रबन्ध कहते हैं।

स्थायी बन्दोबस्त के लाभ—

(१) जमींदारों के धनवान् बन जाने से व्यापार में उन्नति हुई।

(२) सरकार की आय अब निश्चित हो गई और वार्षिक बजट बनाना सुगम हो गया।

(३) सरकार को समय पर लगान नियत करने के झंझट से छुटकारा मिल गया।

(४) बंगाल के जमींदार धनवान बन गए क्योंकि वहां की भूमि अधिक उपजाऊ हो गई थी। इस प्रकार भयंकर अकाल घट गए।

(५) क्योंकि भूमिकर की रकम सदा के लिए निश्चित हो गई थी, इसलिए जमींदारों ने भूमि को सुधारना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार ऊसर भूमियां उपजाऊ बन गईं और अच्छी तरह खेतीबाड़ी होने लगी।

(६) सबसे बड़ा राजनैतिक लाभ यह हुआ कि बंगाल में जमींदारों की एक राजभक्त श्रेणी स्थापित हो गई। इन लोगों ने १८५७ ई० के गदर में सरकार को बहुत सहायता दी क्योंकि ये लोग राज्य की ही कृपा से धनाढ्य बने थे।

स्थायी बन्दोबस्त की हानियां—

(१) स्थायी बन्दोबस्त से जमींदारों को लाभ हुआ परन्तु किसानों की अवस्था खराब हो गई क्योंकि जमींदारों पर यह कोई कानून नहीं था कि वे

कितना लगान किसानों से लेवें । इस दशा को सुधारने के लिये बाद में कई नियम बनाये ।

(२) सरकार का व्यय प्रतिदिन बढ़ता चला जा रहा था परन्तु उसकी आय निश्चित थी ।

(३) इस हानि की पूर्ति करने के लिये सरकार को दूसरे प्रान्तों पर अधिक कर लगाने पड़े ।

प्रश्न ३८—सबसीडियरी सिसटम पर (सहायक सन्धि) पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखो । **(प्रथमा, संवत् २०१७, २०१६)**

उत्तर—लार्ड वेलेजली ने भारतवर्ष में अंग्रेजी प्रभाव को बढ़ाने के लिये जो योजना तैयार की उसे सबसिडरी सिस्टम (सहायक सन्धि) कहते हैं ।

सहायक सन्धि की शर्तें—जो राजा या नवाब इस सन्धि को अपनाते थे उन्हें निम्नलिखित शर्तें स्वीकार करनी पड़ती थीं—

(१) वे कम्पनी को अपना सर्वोच्च प्रभु स्वीकार करें ।

(२) अंग्रेजों के अतिरिक्त किसी योरोपियन को अपने यहाँ नौकर न रखें और जो पहले से हैं उन्हें निकाल दें ।

(३) किसी अन्य शासक के साथ सन्धि या युद्ध करने के लिये अंग्रेजी सरकार की अनुमति प्राप्त करनी आवश्यक है ।

(४) अपने दरबार में अंग्रेज रेजीडेन्ट रखें ।

(५) यदि परस्पर कोई झगड़ा हो तो अंग्रेजों को वे पंच मानें ।

(६) अपने प्रदेश में एक अंग्रेजी सेना रखें और उसका व्यय भी दें ।

(७) कम्पनी उस राज्य के बाह्य आक्रमणों और आन्तरिक विद्रोहों से रक्षा करने के लिये जिम्मेदार होगी ।

वैलेजली ने किसी न किसी अवस्था में निम्नलिखित नवाबों तथा राजाओं से इस सन्धि को स्वीकार करवाया—

(१) निजाम हैदराबाद (२) अवध का नवाब (३) टीपू की मृत्यु के पश्चात् मैसूर के राजाकृष्ण ने इसे माना (४) पेशवा बाजीराव द्वितीय (५) भोंसला और सिंधिया (६) गायकवाड़ तथा कई राजपूत रियासतों ने इसे स्वीकार किया ।

सहायक संधि से लाभ—यह सन्धि अंग्रेजों को बहुत लाभदायक सिद्ध हुई । अनेक रियासतों पर अंग्रेजी सरकार का प्रभाव जम गया और वे परस्पर अंग्रेजों के विरुद्ध कोई सन्धि—आदि नहीं कर सकते थे । फ्राँसीसी प्रभाव

समाप्त हो गया । अंग्रेजों की आवश्यकता के लिये एक शिक्षित सेना अंग्रेजी सरकार का व्यय हुये बिना ही तैयार हो गई ।

हानियां—इस संधि से यह हानि हुई कि नवाबों तथा राजाओं को बाह्य आक्रमण का कोई भय नहीं रहा, इसलिए वे असावधान तथा विलास-प्रिय हो गए और राज्यों में अशांति फैल गई। राजा तथा नवाब आत्म-सम्मान भी खो बैठे।

प्रश्न ३६—लार्ड वेलेजली का भारत में अंग्रेजी साम्राज्य सुदृढ़ करने में क्या भाग है ? (प्रथमा परीक्षा, सं० २०११)

अथवा

लार्ड वेलेजली की प्रसिद्ध सफलताओं का वर्णन करो।

(प्रथमा परीक्षा, स० २०१३)

उत्तर—लार्ड वेलेजली की गणना भारतवर्ष के सर्वश्रेष्ठ गवर्नर जनरलों में की जाती है। उसने कम्पनी के सबसे अधिक प्रभावशाली शत्रुओं को पराजित करके उनका बहुत सा प्रदेश अंग्रेजी राज्य में मिला लिया और कम्पनी को भारतवर्ष की सबसे बड़ी शक्ति बना दिया। जिस समय वेलेजली गवर्नर जनरल होकर भारतवर्ष में आया, उस समय कम्पनी की दशा बहुत ही खराब थी। सर जान शोर की हस्तक्षेप न करने की नीति ने देशी रियासतों को कम्पनी का शत्रु बना दिया था। निजाम अग्रेजों से बहुत अप्रसन्न था। टीपू तो अंग्रेजों को देश से निकालने के लिये फ्रांसीसियों से गुप्त पत्र-व्यवहार कर रहा था। मराठों की शक्ति बढ रही थी। देशी शासकों के दरबार में फ्रांसीसियों का प्रभाव प्रतिदिन बढता जा रहा था। इस प्रकार चारों ओर से कम्पनी शत्रुओं से घिरी हुई थी।

ऐसी अवस्था में वेलेजली के हस्तक्षेप करने की नीति को अपनाया। उसने सहायक संधि को अपना आधार बनाया। वैलेजली ने निज़ाम हैदराबाद, अवध के नवाब और पेशवा बाजीराव जैसे बडे शत्रुओं को भी इस संधि को मानने के लिए विवश करके उन्हें कम्पनी के आधीन कर लिया। टीपू ने इस संधि को मानना अस्वीकार कर दिया, परन्तु मैसूर के चौथे युद्ध में वह मारा गया और उस के उत्तराधिकारी राजा कृष्ण ने इसको मान लिया। सिंधिया और भोंसले ने भी मराठों के द्वितीय युद्ध में हार खाकर इस संधि को स्वीकार कर लिया। इस प्रकार वेलेजली ने अपने सभी प्रबल शत्रुओं को समाप्त कर

डाला। उसने कर्नाटक, तंजौर, सूरत के प्रदेश अंग्रेज़ी राज्य में मिला लिये। वर्तमान मद्रास प्रान्त और आगरा प्रदेश लार्ड वेलेज़ली के शासन काल में ही अंग्रेजों के अधिकार मे चले गये थे। इस प्रकार फ्रांसीसी प्रभाव का अंत करके लार्ड वैलेज़ली ने कम्पनी के प्रभाव को बढ़ाया और कम्पनी को व्यापारी कम्पनी से एक राजनीतिक शक्ति बना दिया।

प्रश्न ४०—मराठा शक्ति के पतन के क्या कारण थे?

उत्तर—मराठा शक्ति के पतन के कारण—(१) शिवाजी के उत्तराधिकारी अयोग्य थे। उनका पुत्र सम्भाजी एक निर्बल व्यक्ति था और उनका पौत्र साहू विलास प्रिय तथा निकम्मा था। अपनी इस कमजोरी के कारण उसने शासन प्रबन्ध का कार्य पेशवाओं के सुपुर्द कर दिया था। परन्तु अन्त में पेशवा भी बहुत दुर्बल हो गये।

(२) शिवाजी अफसरों को नकद वेतन दिया करता था, परन्तु पेशवा बालाजी विश्वनाथ ने जागीरो की रीति प्रचलित की। इससे मराठे सरदार शक्तिशाली हो गए और केन्द्रीय राज्य का प्रभाव क्षीण हो गया।

(३) पानीपत के तृतीय युद्ध में मराठों की पराजय हुई। इस पराजय से मराठे कुछ समय के लिये बहुत निर्बल हो गए।

(४) पानीपत की तृतीय लड़ाई के पश्चात् मराठों को अंग्रेजों से टक्कर लेनी पड़ी जिससे उनकी रही सही शक्ति भी नष्ट हो गई।

(५) नाना फड़नवीस की मृत्यु के पश्चात् मराठों मे कोई ऐसा नीतिज्ञ नहीं रहा जो राज्य प्रबन्ध की कुटिल नीति में अंग्रेजों का मुकाबला कर सके।

(६) मराठा सरदारों में परस्पर ईर्ष्या द्वेष था। नाना फड़नवीस के मरते ही मराठा संगठन का अन्त हो गया और उनमें गृह युद्ध छिड़ गये। ये युद्ध मराठा शक्ति के लिये बहुत हानिकारक सिद्ध हुए। राघोबा और माधवराव नारायण का गृह युद्ध भी उनके पतन का कारण हुआ।

(७) उनके अधिकृत प्रदेशों में उनके राज्य की जड़ें पूर्णतया नहीं जम सकी, क्योंकि मराठों का व्यवहार अपनी अमराठा प्रजा के साथ अच्छा न था।

(८) मराठों ने अपने राज्य की आर्थिक दशा सुधारने की ओर तनिक भी ध्यान नही दिया।

(९) जब तक मराठों के आक्रमण निकटवर्ती पहाड़ी प्रदेशों तक ही

सीमित रहे, उनकी युद्धविधि ऐसी थी जिसका कोई मुकाबला नहीं कर सकता था। जब उनका साम्राज्य मैदानों में फैल गया तो उन्हें डटकर शत्रु का सामना करना पड़ा, परन्तु इन खुले मैदानों में युद्ध करके मराठे अंग्रेजों का मुकाबला न कर सके।

(१०) पानीपत के तीसरे युद्ध की पराजय से मराठा प्रभुत्व धूल में मिल गया और उनकी सैनिक शक्ति क्षीण हो गई।

(११) पानीपत के तीसरे युद्ध के पश्चात् मराठों को अंग्रेजों से निपटना पड़ा और नाना फ़ड़नवीस के पश्चात् कोई ऐसा योग्य मराठा सरदार न था, जो अंग्रेजों की नीति को समझता था। अतः अंग्रेजों ने जो कि युद्ध-नीति तथा युद्ध करने की योग्यता में मराठों से अच्छे थे, मराठों की रियासतों पर एक-एक करके अधिकार कर लिया और फिर उनके लिये सिर उठाना असम्भव हो गया।

प्रश्न ४१—लार्ड विलियम बैंटिक के सुधारों और शासन काल की अन्य महत्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन करो। (प्रथमा, संवत् २०१६)

उत्तर—लार्ड विलियम बैंटिक की नियुक्ति का सबसे बड़ा कारण उसकी आर्थिक जानकारी थी। वह १८२८ ई० में गवर्नर जनरल नियुक्त होकर आया। जब वह मद्रास का गवर्नर था उस समय वैलोर का विद्रोह चल रहा था। इस समय कम्पनी का कोष खाली हो चुका था क्योंकि इन्होंने बहुत सी लड़ाइयां लड़ी थीं। लार्ड विलियम बैंटिक ही ऐसा गवर्नर था जिसने सबसे पहले यह सोचा था कि अंग्रेजी सरकार का सर्वप्रथम कर्त्तव्य प्रजा की सुख और शान्ति का ध्यान रखना है न कि देश पर अधिकार करना है। उसका नाम सुधार के कारण भारतवर्ष के इतिहास में बहुत प्रसिद्ध है। बैंटिक के सुधार निम्नलिखित हैं।

(१) **कन्यावध का निषेध**—राजस्थान और काठियावाड़ के कुछ भागों में रहने वाले राजपूतों में यह प्रथा प्रचलित थी कि वे किसी को अपना दामाद नहीं बनाना चाहते थे इसीलिए जब कभी उनके यहां कन्या का जन्म होता था तो वे उसकी हत्या कर डालते थे। बैंटिक ने इस प्रथा का अन्त किया।

(२) **सती की प्रथा का निषेध**—विलियम बैंटिक का सबसे अच्छा सुधार सती प्रथा को रोकना था। इस प्रथा में कई बुराइयां उत्पन्न हो गई थीं परन्तु वैसे यह एक हिन्दू स्त्री की पति-भक्ति का एक अनुपम आदर्श था। अतः

सम्पत्ति के लोभ से विधवा स्त्रियों को सती होने के लिए विवश किया जाता था। यहां प्रति वर्ष हजारों औरतें अपनी जान आग में जलकर गंवाती थीं। यह प्रथा बंगाल में विशेष जोरों पर थी। १८२९ ई० में एक कानून बनाया गया जिसमें सती होना घोर अपराध बताया गया और सती होने के लिए किसी स्त्री को उकसाने वाले या सहायता करने वाले को वही दण्ड दिया जायगा जो एक हत्या की कोशिश करने वाले को होता था। सती प्रथा को आत्महत्या में शामिल किया गया था। बंगाल के प्रसिद्ध सुधारक राजा राममोहनराय ने इस शुभकार्य में बहुत हाथ बटाया।

(३) **ठगी का अन्त**—ठग लोगों का मध्य भारत में विशेष जोर था। वैसे तो ये लोग भारत के भागों में भेस बदल कर फिरा करते थे। इन लोगों ने आपस में बात चीत करने के लिए विशेष भाषा प्रचलित कर रक्खी थी और ऐसे संकेत बना रक्खे थे जो इनके साथी ही इनको समझ सकते थे। इन लोगों का यह काम था जहाँ ये लोग एक दो यात्री देखते थे। वे लोग उनसे मीठी-मीठी बातें करके अपने चंगुल में फंसा लेते थे और बाद में उनका गला घोट कर माल असबाब छीन लेते थे। बेंटिक ने मेजर सलीमन को ठगी का अन्त करने के लिए नियुक्त किया। जिसने अपने कठिन परिश्रम के द्वारा लगभग छः वर्ष में इस ठगी का अन्त कर दिया जबलपुर में इन ठगों की भलाई के लिए एक शिल्पी स्कूल खोला गया था और वहां पर उनको शिल्पी का काम सिखाया जाता था परन्तु इस स्कूल में उन्हीं ठगों को काम सिखाया जाता था जो अधिक बुरे न थे।

(४) **मानव बलि निषेध**—मनुष्य को बलि चढ़ाने की प्रथा, उडीसा की असभ्य और जंगली जातियों में प्रचलित थी। जिसका बेंटिक ने सुधार किया।

आर्थिक सुधार

ऐमहर्स्ट और लार्ड हेस्टिंग्ज के शासन काल में कम्पनी का बहुत सा रुपया युद्धों में व्यय हो गया था। विलियम बेंटिक ने कम्पनी की आर्थिक अवस्था सुधारने के लिए निम्नलिखित कार्य किए—

(१) कलकत्ते के १०० मील के अन्दर के सैनिक अफसरों का भत्ता आधा कर दिया।

(२) सिविल सर्विस के वेतन घटा दिए गये।

(३) भारतवासियों को उच्च पदवियां दी गईं। जिनको कार्नवालिस के

शासन काल में वंचित किया था क्योंकि भारतवासी कम वेतन पर मिल सकते थे जिससे व्यय में बचत हो गई।

(४) आगरा प्रान्त में नवीन भूमि प्रवन्ध प्रचलित किया गया जिसे उन दिनों में उत्तर-पश्चिमी प्रान्त कहते थे। जिससे कम्पनी की आय में वृद्धि हुई।

(५) मालवा की अफीम पर कर लगा दिया गया, जिससे सरकारी आय में बहुत वृद्धि हुई। अफीम के ठेके का बहुत अच्छा प्रबन्ध किया गया।

(६) बहुत से जमींदार भूमिकर नहीं दिया करते थे। वे यह बात कह-कर भूमिकर टाल देते थे कि उनको यह भूमि पहले शासकों ने पुरस्कार में दी है। बैंटिक ने कागज-पत्रों की जांच की। उन भूमियों पर कर लगा दिया गया था जो अपना अधिकार सिद्ध नहीं कर सके। १८५७ ई० के गदर में इन असंतुष्ट जमींदारों ने भाग लिया।

शासन सम्बन्धी सुधार

(१) बैंटिक ने सोचा कि अच्छे पढ लिखे भारतवासी कम वेतन पर मिल सकते हैं इसलिए उसने भारतवासियों को उच्च पदवियां दीं।

(२) कार्नवालिस द्वारा स्थापित प्रान्तीय न्यायालय उठा दिए गए और न्यायालयों की त्रुटि को दूर किया गया।

(३) उत्तर-पश्चिमी प्रान्त में ३० वर्षों के लिए बन्दोबस्त किया गया। इस उत्तर-पश्चिमी प्रान्त को आजकल उत्तर-प्रदेश कहते है।

(४) कलेक्टर और डिस्ट्रिक्ट जज की पदवियां एक कर दी थीं जो कार्नवालिस के समय में पृथक् थीं। देशी मैजिस्ट्रेट नियुक्त किए गए।

(५) देशी भाषाएं तथा अंग्रेजी भाषा राजकीय भाषा घोषित की गई और फारसी को हटा दिया गया।

(६) पहला कानूनी सभासद मेकाले था। उसके स्थान में कानूनी सभा-सद् की नवीन पदवी नियुक्त की गई।

(७) बैंटिक स्वयं सेनापति का कार्य करने लगा और उसने सेना का सुधार किया।

(८) इलाहाबाद में एक सदर अदालत स्थापित की गई और वहां पर एक बोर्ड आफ रैविन्यू भी स्थापित किया गया। इनको स्थापित करने की वजह कलकत्ता सुप्रीम कोर्ट का कार्य भार घटाना था क्योंकि कलकत्ता सुप्रीम

कोर्ट का काम कम्पनी का राज्य बढ़ जाने से बढ़ गया था। इसके स्थापित हो जाने से कलकत्ता सुप्रीम कोर्ट का कार्य भार हलका हो गया।

शिक्षा सम्बन्धी सुधार

शिक्षा किस भाषा में होनी चाहिए। इस बात का वाद-विवाद बैंटिक के समय में हुआ। कम्पनी भारतवर्ष में शिक्षा विस्तार के लिए एक लाख रुपया वार्षिक १८१३ ई० से शिक्षा पर व्यय करती आ रही थी परन्तु यह रुपया केवल पूर्वी भाषाओं अर्थात् संस्कृत, फारसी और अरबी की शिक्षा पर भी व्यय होता था। भारत में शिक्षा किस भाषा में होनी चाहिए इस बात पर दो दल बन गए थे। मेकाले अंग्रेजी भाषा के पक्ष में था और एच० एच० विलसन पूर्वी भाषाओं के पक्ष में था। वह दोनों दो दल के नेता थे। भारत-वासियों को ऊंची नौकरियां दी जाने लगी थीं इसीलिए उनको यह आवश्यक हो गया था कि वे अंग्रेजी जानें। मेकाले की राय मान ली गई क्योंकि भारत के सुधारक राजा राम मोहन राय भी इसके पक्ष में थे और रुपया अब अंग्रेजी और पश्चिमी विज्ञान पर खर्च किया जाने लगा। कलकत्ते में एक मैडिकल कालिज और बम्बई में एलफिन्सटन कालिज खोला गया।

रियासतों को अंग्रेजी राज्य में मिलाना

देशी रियासतों के हस्तक्षेप करने के विषय में लार्ड विलियम बैंटिक पक्ष में नहीं था। परन्तु समय के अनुसार उसको रियासतों के मामलों में हस्तक्षेप करना पड़ा।

(१) मैसूर—लार्ड वैलजली ने कृष्ण नामक व्यक्ति को मैसूर का राजा बनाया परन्तु बाद में यह व्यक्ति अयोग्य और निर्दयी निकला। बैंटिक ने इसे गद्दी से उतार कर राज्य अंग्रेजों के हाथ मे सौंप दिया। लार्ड रिपन ने ५० वर्ष बाद यह रियासत कृष्ण के दत्तक पुत्र को लौटा दी।

(२) कछार—कछार निवासियों ने इसको अंग्रेजी राज्य में मिलाने की प्रार्थना की क्योंकि वहां के राजा की मृत्यु हो गई थी। इसलिए कछार को अंग्रेजी रियासत में मिला लिया गया। कछार बंगाल के उत्तर पश्चिम में स्थित है।

(३) कुर्ग—कुर्ग के राजा का प्रबंध असन्तोषजनक था। उसने अपने वंश के सब व्यक्तियों का वध कर डाला था। यह राजा अत्यन्त क्रूर और निर्दयी

था। वहां के निवासियों ने इसे ब्रिटिश साम्राज्य में मिलाने की प्रार्थना की। उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली गई। वहां के राजा को बैंटिक ने उतार दिया और सन् १८३४ में इसे मिला लिया।

रोपड़ नामक स्थान पर १८३१ ई० में विलियम बैंटिक की महाराजा रणजीतसिंह से भेंट हुई। विलियम बैंटिक पंजाब और सिन्ध से पक्की मैत्री करना चाहता था क्योंकि उसे उस समय रूस के आक्रमण का भय था। गवर्नर जनरल ने महाराज रणजीतसिंह का अच्छा स्वागत किया और अंग्रजों और सिक्खों में मित्रता हो गई।

सिन्ध के अमीरों से मित्रता—बैंटिक ने एक व्यापारिक सन्धि पत्र सिन्ध के अमीरों से किया जिसमें यह निश्चय हुआ कि एक दूसरे पर आंख नहीं रखें और अंग्रेज अपनी सेनाएं सिन्ध में नहीं भेजें।

चार्टर—कम्पनी को १८२३ ई० में एक नया चार्टर प्राप्त हुआ और कई महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए।

(१) बम्बई तथा मद्रास सरकार ने कानून बनाने के अधिकार छीन लिये और वे गवर्नर जनरल के आधीन कर दी गई।

(२) कम्पनी अब केवल शासक रह गई क्योंकि उससे व्यापार छीन लिया गया।

(३) गवर्नर जनरल की सभा में नियम बनाने के लिए एक सभासद् की वृद्धि हुई।

(४) बंगाल के गवर्नर को समस्त भारत का गवर्नर जनरल बना दिया गया और उसे समस्त देश के लिए कानून बनाने के अधिकार दे दिये गये।

(५) यह भी निश्चित हुआ कि कोई भारतवासी केवल अपने रंगरूप, जाति, धर्म के कारण किसी पदवी से वंचित नहीं रखा जायगा अगर वह उसके योग्य है।

प्रश्न ४३—लार्ड डलहौजी के शासन-काल की प्रसिद्ध घटनाओं और उसके सुधारों का वर्णन कीजिये।

उत्तर—घटनाएं—(१) सिक्खों का दूसरा युद्ध और पंजाब का अंग्रेजी राज्य में सम्मिलिन—यह युद्ध सिक्खों की ओर से अपनी पहली हार की प्रतिक्रिया का परिणाम था। युद्ध का तात्कालिक कारण मूलराज का विद्रोह था। दीवान मूलराज दरबार लाहौर की ओर से मुलतान का शासक था। जब उससे

लेखा माँगा गया तो उसने त्यागपत्र दे दिया। उसके स्थान पर सरदार काह्नसिंह को नियुक्त किया गया और दो अंग्रेज अधिकारी चार्ज दिलवाने के लिए उसके साथ गये, परन्तु उन अग्रेजों का किसी पदच्युत सैनिक ने मुल्तान मे वध कर दिया। इसके पश्चात् दीवान मूलराज ने विद्रोह कर दिया। एक अंग्रेज अधिकारी ऐडवर्डज ने थोड़ी सी सेना एकत्र करके मूलराज को मुलतान के दुर्ग में घेर लिया। जब यह सूचना लाहौर पहुंची तो खालसा दरबार ने शेरसिंह अटारी वाले को सेना देकर विद्रोह दबाने के लिए भेजा, परन्तु शेरसिंह मूलराज के साथ मिल गया। इस समय सारे पंजाब में विद्रोह फैल गया और सिक्खों ने अंग्रेजों के विरुद्ध शस्त्र उठा लिये। उन्होंने दोस्त मोहम्मत खां को पेशावर लौटाकर पठानों से भी सहायता प्राप्त की। चितियां वाले के स्थान पर सिक्खों की हार हुई। मुलतान भी हाथों से गया। पंजाब अंग्रेजी राज्य में मिल गया। दीवान मूलराज को जब काले पानी भेजा जा रहा था, तो उसने रास्ते में आत्महत्या कर ली।

(२) **ब्रह्मा का दूसरा युद्ध**—ब्रह्मा के प्रथम युद्ध के पश्चात् बहुत से अंग्रेज व्यापारी रंगून में आकर बस गये थे। परन्तु रंगून का बर्मी गवर्नर उनसे अत्यन्त अनुचित व्यवहार करता था और उनके व्यापार में बाधा डालता था। इन व्यापारियों ने लार्ड डलहौजी से शिकायत की। उसने ब्रह्मा के राजा को शिकायतें दूर करने और हानिपूर्ति के लिए लिखा, परन्तु उसने कुछ उत्तर न दिया। इस पर लार्ड डलहौजी ने १८५२ ई० में युद्ध घोषणा कर दी। थोड़ी सी लड़ाई के पश्चात् रंगून और प्रोम पर विजय प्राप्त कर ली गई। इसके पश्चात् पीगू का देश भी अंग्रेजी साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया गया और युद्ध समाप्त हो गया।

(३) **लैप्स की नीति**—सब-सिडियरी-सिस्टम के द्वारा अंग्रेजी गवर्नमेंटों पर अपनी आधीन रियासतों को भीतरी विद्रोह और बाहरी आक्रमणों से सुरक्षित रखने की जिम्मेदारी थी, इसलिए उन रियासतों के राजा और नवाब विलासप्रिय हो गये थे और प्रजा की बुरी दशा थी। डलहौजी का विचार था कि यदि ऐसी रियासतों का प्रबन्ध अंग्रेज अपने हाथ मे ले लेंवे तो रियासती प्रजा को अत्यन्त लाभ हो सकता है। इसलिये उसने लैप्स की नीति पर विचार आरम्भ कर दिया। यह नीति यह थी! यदि आधीन करदायी रियासत का राजा मर जाय तो उसके दत्तक पुत्र को राजसिंहासन पर नहीं बैठाया जायगा,

बस वह रियासत अंग्रेजी साम्राज्य में सम्मिलित कर ली जायगी । भाग्य की बात है कि उस समय में बहुत सी रियासतों के राजाओं की जो पुत्रहीन थे मृत्यु हो गई, जिससे सात रियासतें अंग्रेजी साम्राज्य मे सम्मिलित कर ली गई । सितारा, झाँसी और नागपुर प्रसिद्ध रियासतें थी । शेष छोटी-छोटी रियासतें जैतपुर (बुन्देलखण्ड मे), सम्बलपुर (उड़ीसा में), बघाट (शिमले के समीप) और उदयपुर (मध्य प्रांत में) थीं । इस नीति से देशी शासक अंग्रेजी शासन से अप्रसन्न हो गये और उन्हें यह भय उत्पन्न हो गया कि उनकी रियासतें शीघ्र ही या कुछ समय पश्चात् ब्रिटिश साम्राज्य में सम्मिलित कर ली जायेंगी । लैप्स की यह नीति विद्रोह का एक कारण बनी । अवध का प्रबन्ध असंतोषजनक था और रियासत में अशान्ति फैली हुई थी, अतः १८५६ ई० में एक घोषणा द्वारा अवध को कुप्रबन्ध के कारण अंग्रेजी साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया गया और वहाँ के नवाब वाजिदअली शाह को एक यथेष्ट पैंशन देकर कलकत्ते भेज दिया गया । परन्तु इससे अवध में अशान्ति की लहर फैल गई ।

(४) **सहायक सेना के व्यय के बदले में प्राप्त प्रदेश**—१८४३ ई० में बरार का प्रदेश निजाम हैदराबाद ने सहायक सेना के व्यय के स्थान में अंग्रेजों को दे दिया (१) कर्नाटक के नवाव और तंजौर के राजा की मृत्यु पर उनकी पदवियां उड़ा दी गई (२) पेशवा बाजीराव द्वितीय की मृत्यु पर उनकी आठ लाख रुपये की वार्षिक पेंशन को उसके दत्तक पुत्र नाना साहिब को देने से निषेध किया गया । यह भी निश्चित हुआ कि मुगल बादशाह बहादुरशाह द्वितीय की मृत्यु पर उसकी सन्तान को दुर्ग और राजभवन त्याग करने पड़ेगे । १८८३ ई० में कम्पनी को अधिकार-पत्र अन्तिम बार प्रदान किया गया । इस समय कुछ परिवर्तन किये गये । जैसे—(१) पार्लियामेंट जब चाहे कम्पनी का राज्य समाप्त कर दे, (२) गवर्नर जनरल को बंगाल के शासन से पृथक कर दिया गया और उस प्रान्त के प्रबन्ध के लिये लैफ्टिनैण्ट गवर्नर नियुक्त कर दिया गया, (३) सिविल सर्विस के लिये लन्दन में मुकाबिले की परीक्षा होनी नियत की गई, (४) राज्य-नियम बताने वाली एक सभा भी बनाई गई जिसके सब मेम्बर सरकारी थे ।

लार्ड डलहौजी ने देश में कई लाभदायक सुधार प्रचलित किये ।

सुधार (१) प्रजा हितार्थ निर्माण विभाग—लार्ड डलहौजीने पब्लिक वर्क्स विभाग स्थापित किया, जिसका उद्देश्य सड़कों, नहरों पुलों इत्यादि को बनाना, ठीक अवस्था में रखना था । इस विभाग ने नई सड़कें, नहरें और पुलबनवाये ।

गंगा नदी से नहर निकाली गई। प्रसिद्ध जरनैली सड़क (ग्रांड ट्रंक रोड) जो कलकत्ते से पेशावर तक जाती है और कई अन्य छोटी-छोटी सड़कें इसी समय में बनाई गईं।

(२) डाक तथा तार का विभाग—देश में स्थान-स्थान पर आधुनिक ढंग के डाक घर और तार घर स्थापित किये गये, जिससे समाचार पहुंचने के कार्य में अधिक सुविधा हो गई। एक ही मोल का टिकट लगाकर पत्र भेजने की रीति इस समय में आरम्भ हुई। इससे पहले पत्र भेजने का व्यय स्थान की दूरी के अनुसार देना पड़ता था। थोड़े समय में प्रसिद्ध-प्रसिद्ध छावनियों को तार से मिला दिया गया।

(३) रेल—रेलवे लाइन भी भारत में डलहौजी के समय में ही आरम्भ हुई जिससे यात्रा करने में धीरे-धीरे बहुत सुविधा हो गई। १८५३ ई० में बम्बई तथा थाना के मध्य पहली रेलवे लाइन बनाई गई जो बीस मील लम्बी थी। अब तो सारे देश में रेलों का जाल-सा बिछा हुआ है।

(४) सामाजिक सुधार—(१) हिन्दू विधवाओं का पुनर्विवाह नियमानुसार नियत किया गया, (२) यह भी निश्चय किया गया कि यदि कोई व्यक्ति अपना मत परिवर्तन कर ले तो भी वह पैतृक सम्पत्ति का अधिकारी होगा।

(५) शिक्षा विभाग—लार्ड डलहौजी ने शिक्षा विभाग की ओर विशेष ध्यान दिया। १८५४ ई० बोर्ड आफ कन्ट्रोल के सभापति सर चार्लस वुड की शिक्षा सम्बन्धी रिपोर्ट भारतवर्ष पहुंची। इस रिपोर्ट को वर्तमान शिक्षा प्रणाली की आधारशिला माना जाता है। इसमें ये प्रस्ताव किये गये कि (१) प्रत्येक प्रान्त में एक एक विभाग स्थापित किया जाय (२) कलकत्ता, बम्बई और मद्रास आदि स्थानों में विश्वविद्यालय खोले जायें (३) प्रत्येक ज़िले में एक सरकारी स्कूल खोला जाये (४) प्रजा को देशी भाषा में भी शिक्षा दी जाये (५) प्राइवेट स्कूलों में सरकारी सहायता दी जाये।

(६) अन्य सुधार—लार्ड डलहौजी ने सेना का भी सुधार किया और सैनिकों के आराम का प्रबन्ध किया। इसके अतिरिक्त उसने राज्य की आर्थिक दशा को भी पहले से अच्छा बना दिया।

प्रश्न ४३—लार्ड कर्जन के सुधारों पर संक्षेप में प्रकाश डालिये तथा उनके कार्यों की समीक्षा कीजिये। (प्रथमा संवत् २०३७)

उत्तर—लार्ड कर्जन का शासन काल विशेषतया सुधारों के लिए प्रसिद्ध है। उसके समय के प्रसिद्ध सुधार निम्नलिखित हैं।

(१) **आर्थिक सुधार**—(i) लवण का कर लगभग आधा कर दिया गया। (ii) एक हजार रुपया वार्षिक से कम आय पर इन्कम टैक्स हटा दिया गया।

(२) **पुलिस का सुधार**—(i) पुलिस के वेतन बढ़ा दिये गये। (ii) रंगरूटों की शिक्षा के लिये शिक्षालय खोले गये। (iii) गुप्त पुलिस के विभाग का संशोधन किया गया।

(३) **पंजाब में भूमि-विक्रय कानून**—लार्ड कर्जन ने किसानों की दशा सुधारने के लिये बहुत काम किया, क्योंकि वह उन्हें देश की उन्नति का सबसे महान् कारण समझता था। उसके समय में किसान अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए महाजनों आदि से ऋण के तौर पर रुपया उधार लिया करते थे, परन्तु जब वह इस ऋण को उतार न सकते थे तो महाजन लोग जबरदस्ती उनकी भूमि पर अधिकार जमा लेते थे, जिसका परिणाम यह होता था कि किसान निर्धन होते जा रहे थे। इस प्रकार की दशा अधिकतर पंजाब में होती थी। १९०० ई० लार्ड कर्जन ने पंजाब के लिए एक कानून लागू किया, जिसका नाम भूमि-विक्रय कानून रखा गया। इसके द्वारा यह निश्चित हुआ कि कोई अकृषक जाति का व्यक्ति किसी कृषक जाति के व्यक्ति से भूमि मोल नहीं ले सकता और न ही बीस वर्ष से अधिक समय के लिए गिरवी रख सकता है और न ही किसी कृषक जाति के व्यक्ति की भूमि ऋण में कुर्क की जा सकती है।

(४) **कृषक-विभाग**—भारत वर्ष में कृषि अवस्था को अच्छा बनाने के लिये कर्जन ने कृषि विभाग स्थापित किया।

(५) **परस्पर सहायक सभाओं की स्थापना**—किसानों में मितव्ययिता की आदत डालने और थोड़े दर पर रुपया ब्याज पर ले सकने के लिये लार्ड कर्जन ने समस्त देश में कोआपरेटिव सोसाइटियां स्थापित कीं और जमींदारी बैंक खोले।

(६) **यूनिवर्सिटी एक्ट**—१९२४ ई० में एक एक्ट पास हुआ, जिसका नाम यूनिवर्सिटी एक्ट रखा गया। इस एक्ट के अनुसार चार महान् परिवर्तन किये गये।

(१) विश्वविद्यालयों को जिसका काम केवल परीक्षा लेना था, उच्च कोटि की शिक्षा देने का कार्य भी सौंपा गया।

(२) कालेजों का निरीक्षण होने लगा।

(३) यूनिवर्सिटियों के प्रबन्ध आदि में सरकारी अधिकार बढ़ा दिये गये परन्तु फैलोज़ को नियुक्त करने के लिए चुनाव की रीति प्रचलित की गई।

(४) विज्ञान की शिक्षा को महत्वपूर्ण बना दिया गया ।

(७) **प्राचीन स्मारक रक्षा कानून**—लार्ड कर्जन ने प्राचीन ऐतिहासिक स्थानों की रक्षा के लिये एक कानून पास किया जिसके अनुसार प्राचीन ऐतिहासिक स्थानों को हानि पहुचाना जुर्म नियत किया गया । इसके अतिरिक्त एक प्राचीन स्मारक रक्षा-विभाग स्थापित किया गया । इसके द्वारा जहाँ पुराने भवन नष्ट होने से बच रहे हैं, वहाँ बहुत से प्राचीन नगर तक्षशिला पाटलीपुत्र, हड़प्पा, मोहनजोदरो आदि भूमि से खोदकर निकाले गए हैं । जिससे प्राचीन इतिहास के जानने मे अधिक सुविधा हो गई है ।

(८) **इम्पीरियल केडिट कोर**—राजाओं और नवाबों के पुत्रों को सैनिक शिक्षा देने के लिये लार्ड कर्जन ने इम्पीरियल केडिट कोर की नींव रखी ।

(६) **व्यापार तथा शिल्प विभाग**—लार्ड कर्जन ने व्यापार तथा शिल्प की उन्नति के लिए भी एक विभाग स्थापित किया ।

(१) **प्लेग और दुर्भिक्ष**—लार्ड कर्जन के शासन काल के आरम्भ मे एक भीषण अकाल पड़ा हुआ था और प्लेग भी फैली हुई थी । यों तो यह अकाल भारत के सारे पश्चिमी भाग मे पंजाब से लेकर बम्बई प्रान्त तक था, परन्तु गुजरात काठियावाड़ में इसका विशेष जोर था । कई लाख व्यक्ति इससे मर गये । यह अकाल तो दूर हो गया परन्तु प्लेग कर्जन के सारे शासन काल में रही और इससे बहुत लोग मृत्यु वश हो गये ।

(२) **देहली दरबार (१६०३)**—१६०१ में साम्राज्ञी विक्टोरिया की मृत्यु हो गई और उसका पुत्र ऐडवर्ड सप्तम गद्दी पर बैठा । ऐडवर्ड सप्तम के अभिषेक की घोषणा के लिये प्रथम जनवरी १६०३ ई० को देहली में एक धूम-धाम से दरबार लगाया गया ।

(३) **बंग भंग (१६०५)**—बंगाल उन दिनो में बड़ा प्रान्त था । इसकी जनसंख्या ७ करोड़ ८० लाख और क्षेत्रफल दो लाख वर्ग मील था । लार्ड कर्जन के हृदय में यह विचार समा गया था कि एक लैफ्टिनैन्ट गवर्नर इसका प्रबन्ध भली प्रकार नही कर सकता । इसलिये उसने १६०५ ई० में बंगाल को दो भागों में विभक्त कर दिया । पूर्वी बगाल को आसाम के साथ सम्मिलित करके एक नवीन प्रान्त बना दिया जिसका नाम पूर्वी बंगाल और आसाम रखा गया और ढाका उसकी राजधानी नियत हुई परन्तु बंगालियों ने बंग भंग के विरुद्ध आन्दोलन खड़ा किया, क्योंकि उनका विचार था कि ऐसा

करने में लार्ड कर्जन का अभिप्राय बंगाली जाति की एकता को दुर्बल करना है। शीघ्र ही यह आन्दोलन सारे देश मे फैल गया और विदेशी माल का बायकाट आरम्भ कर दिया गया। यह आन्दोलन लार्ड कर्जन के चले जाने के बाद भी होता रहा। एक दो स्थानों पर बमो के द्वारा वध भी हुए। अन्त में १६११ ई० में देहली दरबार के समय सम्राट् जार्ज पंचम ने इसको हटा दिया।

(४) **कर्जन का त्याग पत्र**—१६०५ ई० मे लार्ड कर्जन और भारत की सेनाओं के सेनापति लार्ड किचनर के मध्य इस प्रश्न पर मत भेद हो गया कि गवर्नर-जनरल की प्रबन्धक कौंसिल मे सैनिक मेम्बर कौन हो। लार्ड किचनर इस विषय के पक्ष में था कि सेनापति ही सैनिक मेम्बर होना चाहिये परन्तु लार्ड कर्जन इस बात के पक्ष मे था कि इस पदवी पर कोई सिविल विभाग का व्यक्ति होना चाहिए। भारत मन्त्री ने लार्ड किचनर के पक्ष का समर्थन किया। इस सम्बन्ध में लार्ड कर्जन ने त्याग पत्र दे दिया।

प्रश्न ४४—सन् १८५७ के गदर के कारण और परिणाम पर प्रकाश डालते हुए बताइए कि यह गदर असफल क्यों रहा ?

(प्रथमा परीक्षा, सं० २०११, २०१२)

अथवा

प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के होने के कारणों पर प्रकाश डालिये।

(प्रथमा, संवत् २०१६)

उत्तर—भारतवर्ष में लार्ड डलहौजी की नीति के कारण अशान्ति और सन्देह फैले हुए थे। इसी कारण १८५७ ई० मे विद्रोह उठ खड़ा हुआ। इसके निम्न कारण थे।

(१) **राजनैतिक कारण**—

(अ) लार्ड डलहौजी की लैप्स की नीति ने सारे रियासती राजाओं और नवाबों को अंग्रेजी राज्य का शत्रु बना दिया।

(ब) अवध के अंग्रेजी राज्य मे मिलने से वहाँ के सम्बन्धियों और सिपाहियों के हृदय मे अंग्रेजों के विरुद्ध नाराजगी पैदा हो गई।

(स) झांसी की रानी को दत्तक पुत्र बनाने की आज्ञा नही दी गई थी इससे वह रुष्ट हो गई।

(द) सतारा और नागपुर की रियासते अंग्रेजी राज्य मे सम्मिलित हो

गई थीं। इससे मराठे भी असन्तुष्ट हो गये।

(इ) बहादुरशाह के लड़के को लार्ड डलहौजी ने राजभवन देना स्वीकृत नहीं किया। इसलिये वह झगड़ा करने पर उतारू हो गया।

(२) सामाजिक तथा धार्मिक—

(अ) लार्ड डलहौजी ने प्रजा के लिये रेल, तार, डाकखाने, स्कूल और दवाखाने खुलवाये, परन्तु लोगों में यह विचार समा गया कि अंग्रेज भारतीयों को ईसाई बनाना चाहते हैं।

(ब) सती प्रथा का निषेध और विधवा विवाह का नियम करने की आज्ञा देने से हिन्दुओं के विचार विगड़ गये।

(स) अंग्रेजों ने यह नियम पास कर दिया था कि धर्म बदलने से उन्हें माता-पिता की जायदाद से अलग नहीं किया जायगा। इससे उन्हें और विश्वास हो गया कि अंग्रेज उन्हें ईसाई बनाना चाहते हैं।

(३) सेना सम्बन्धी—

(अ) कैनिंग ने एक कानून पास किया कि देशी सिपाहियों को आवश्यकतानुसार समुद्र पार करके लड़ना होगा। परन्तु भारतीय समुद्र की यात्रा धर्म के विरुद्ध समझते थे। इससे फौज में खलबली मच गई।

(ब) भारतीय सैनिकों के साथ अंग्रेज अच्छा व्यवहार नहीं करते थे।

(स) भारतीय सैनिकों का वेतन बहुत थोड़ा था।

(द) भारतीयों को उच्च सैनिक पदों पर नियुक्त नहीं किया जाता था।

(य) बंगाल की सेना में अवध के सैनिकों की संख्या अधिक थी और वे अवध को अंग्रेजी राज्य में मिलाये जाने के कारण रुष्ट थे।

(र) प्रथम अफगान युद्ध में अंग्रेजों की पराजय ने भारतीयों के मन में यह भाव पैदा कर दिया था कि अंग्रेज भी पराजित हो सकते हैं।

(ल) भारतीय सेना की संख्या उस समय की अंग्रेज सेना से पांच गुनी थी। इससे उनका साहस बढ़ गया था।

(४) अन्य कारण—उस समय यह विश्वास बहुत प्रचलित था कि प्लासी के युद्ध के ठीक सौ वर्ष पश्चात् सन् १८५७ में अंग्रेजों का भारत से शासन समाप्त हो जायेगा। भारतवासी इस बात को सत्य मानकर विदेशी सत्ता का अन्त कर देना चाहते थे।

(५) तात्कालिक कारण—उन दिनों सैनिकों को नई रायफलें दी गई

थीं और इन राइफलों में चरबी वाले कारतूस प्रयोग में लाये जाते थे और इन राइफलों में कारतूसों को चढ़ाने से पूर्व उन्हें मुंह से काटना पड़ता था और यह बात फैल गई कि यह चर्बी गाय और सूअर की है। इसी धारणा को लेकर कई छावनियों में विद्रोह हो गया।

परिणाम—(१) कम्पनी के राज्य की समाप्ति हो गई। भारतवर्ष सीधा इंग्लैंड के शासक और पार्लियामेंट के आधीन हो गया।

(२) लैप्स की नीति हटा कर देशी राजाओं तथा नवाबों को यह विश्वास दे दिया गया कि उनके प्रदेश अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित नहीं किये जायेंगे।

(३) प्रजा को धार्मिक स्वतन्त्रता का विश्वास दिलाया गया।

(४) अंग्रेजी सेना की संख्या बढ़ा दी गई और तोपखाना उन्हीं के आधीन किया गया।

(५) कई भारतीय जातियों को सेना में भर्ती होने से वंचित कर दिया गया।

(६) गवर्नर जनरल को वाइसराय का नाम दिया गया।

असफलता के कारण—भारतीय स्वतन्त्रता के इस प्रथम युद्ध में भारतीयों की असफलता के निम्नलिखित कारण हैं—

(१) विद्रोह निश्चित तिथि से पूर्व ही आरम्भ हो गया।

(२) साधारण जनता ने इस विद्रोह में कोई विशेष सहायता नहीं की।

(३) अनेक भारतीय राजाओं तथा नवाबों ने इस विद्रोह में अंग्रेजों का पूर्ण रूप से साथ दिया।

(४) इस विद्रोह की योजना पहले सोचकर कोई निश्चित योजना नहीं बनाई गई।

(५) इस विद्रोह का नेतृत्व किसी विशेष योग्य पुरुष के हाथ में नहीं था।

(६) भारतीय सैनिकों के पास न तो पर्याप्त युद्ध सामग्रीं ही थी और न वे अंग्रेजों की भांति अनुशासन का ही पालन करते थे।

(७) अंग्रेजों का आवागमन के साधनों पर पूर्ण अधिकार था।

(८) समुद्रों पर अधिकार होने के कारण इंगलैंड से अंग्रेजों को आसानी से सहायता पहुंच सकती थी।

प्रश्न ४५—महारानी विक्टोरिया के घोषणा पत्र पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखो।

उत्तर—सन १८५७ ई० के विद्रोह की समाप्ति पर इंगलैंड की महारानी विक्टोरिया ने एक अत्यन्त महत्वपूर्ण घोषणा की। इस घोषणा की प्रसिद्ध बातें ये हैं—

(१) भारतीय राजाओं तथा नवाबों को यह विश्वास दिलाया गया कि उनकी रियासतें अंग्रेजी साम्राज्य में सम्मिलित नहीं की जायेंगी। शासक के पुत्रहीन होने की अवस्था में उन्हें किसी लड़के को गोद लेने का पूर्ण अधिकार होगा।

(२) प्रजा को धर्म में हस्तक्षेप न करने का विश्वास दिलाया गया।

(३) भारतीयों को योग्यता के अनुसार ऊंचे से ऊंचा पद दिया जायेगा।

(४) अंग्रेजों का वध न करने वाले विद्रोहियों को क्षमा कर दिया गया।

(५) देशी राजाओं के साथ कम्पनी द्वारा की गई सन्धि का पूर्ण सम्मान तथा अनुसरण किया जायेगा।

(६) भारतवर्ष की आर्थिक, व्यापारिक, शिल्प विद्या सम्बन्धी उन्नति के लिए हर प्रकार से पूर्ण प्रयत्न किया जायेगा।

प्रश्न ४६—लार्ड रिपन के सुधारों पर प्रकाश डालिए।

(प्रथमा सं०, २०१७)

उत्तर—लार्ड रिपन के सुधार—

(१) **चुंगी तथा भूमिकर नीति**—जहाँ तक चुंगी तथा भूमि कर नीति का सम्बन्ध है वह बहुत भाग्यशाली था क्योंकि सर जान स्ट्रैची के प्रयत्न से आय बहुत अधिक हो गई थी और बजट में बराबर बचत हो रही थी। सरकार को अब अवसर मिल गया कि नार्थब्रुक तथा लिटन की खुले व्यापार की नीति अपनायी जाए। सन् १८८२ ई० में पदार्थों के मूल्यों के हिसाब से जो आयात कर लगे थे तोड़ दिये गये। केवल नमक, शराब और स्प्रिट पर टैक्स बना रहा। परन्तु नमक पर टैक्स कम कर दिया गया।

(२) **स्थानीय स्वायत्त-शासन**—रिपन ने जो अर्थ-विभाग तथा शासन का विकेन्द्रीयकरण किया उससे जनता को इतना धन प्राप्त हो गया जिससे वे अपना स्थानीय कार्य व चुंगी आदि सरलता पूर्वक चला सकें। आरम्भ मे तहसील अथवा ताल्लुके को शासन की सबसे छोटी इकाई बनाया गया। इसके बाद छोटे-बड़े स्थानीय बोर्डों की स्थापना हुई जिनके पास जनता के छोटे-मोटे कार्यों के लिए फंड भी होता था और उनसे बड़ी संस्थाओं को

शिक्षा तथा सार्वजनिक कार्य सौंप दिए गये। निर्वाचन की नीति चालू की गई और बहुत से बोर्डों का चेयरमैन बजाय नामजद होने के चुना जाने लगा।

(३) **वर्नाक्यूलर प्रैस एक्ट का रद्द होना**—लार्ड लिटन के द्वारा चालू किए गए प्रैस ऐक्ट को हटा दिया गया। इससे सभी समाचार-पत्रों को एक जैसी स्थिति प्राप्त हो गई।

(४) **हण्टर कमीशन**—हण्टर कमीशन के द्वारा जांच करवा कर प्राइमरी व सैकिण्ड्री स्कूलों की संख्या बढ़ाई गई।

(५) **फैक्टरी के मजदूरों का कानून**—एक ऐक्ट के अनुसार फैक्टरी में काम करने वाले अल्पायु बच्चों के कार्य करने के घण्टे निश्चित कर दिये गये। इसकी देख भाल के लिए इन्सपैक्टर नियुक्त किये गये।

(६) **इलबर्ट बिल**—इस बिल के द्वारा लार्ड रिपन ने फौजदारी मुकदमों की सुनवाई के रंग-भेद को मिटाया। इससे यह लाभ हुआ कि अब भारतीय लोग भी सेशन जज तथा मजिस्ट्रेट बनने लगे। अंग्रेजों के मुकदमों की सुनवाई के लिए जूरी नियत की जाने लगी जिसमें अंग्रेज और हिन्दुस्तानी दोनों ही प्रकार के न्यायाधीश होते थे।

प्रश्न ४७—लार्ड माउण्टबैटन के काल की महत्वपूर्ण घटनाओं पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

उत्तर—लार्ड माउण्टबैटन स्वतन्त्र भारत के प्रथम गवर्नर जनरल थे। चाहे वह एक ही वर्ष के लिये भारत में रहे, किन्तु उनका काल विशेष महत्त्वपूर्ण रहा है। उनके काल की प्रसिद्ध घटनाओं का वर्णन निम्न पंक्तियों में किया जाता है—

(१) **भारत का उपद्रव**—१५ अगस्त १९४७ के पश्चात् भी पश्चिमी तथा पूर्वी पंजाब में उपद्रव मचा रहा। रक्तपात, लूटमार का कांड जोरों पर था, जिसका परिणाम यह हुआ कि पश्चिमी पंजाब से सारे हिन्दू तथा सिक्ख हिन्दुस्तान में आ गए और पूर्वी पंजाब से मुसलमान लोग पाकिस्तान चले गए। इस उपद्रव का सीमा प्रान्त, क्वेटा और सिन्ध पर भी प्रभाव पड़ा जिसका परिणाम यह हुआ कि हिन्दू वहाँ से निकलने के लिए मजबूर हो गये।

सितम्बर १९४७ ई० में देहली में भी एक उपद्रव हुआ। मुसलमानों के पास बहुत हथियार इकट्ठे थे। जिससे इन्होने हिन्दुस्तानी पुलिस व सेना का डटकर मुकावला किया परन्तु वह पुलिस का मुकावला करने में असफल रहे और हथियार डालने पर मजबूर हो गये। इनम कई मुसलमान देहली छोड़कर पाकिस्तान चले गये। शेष मुसलमानों ने हिन्दुस्तान के प्रति देशभक्त होने का वायदा किया।

(२) **शरणार्थियों को वसानेका काम**—शरणार्थियों को वसाने की समस्या भी भारत के सामने थी। पाकिस्तान से ५० लाख हिन्दू और सिक्ख भारत में आये, जिनकी अवस्था बहुत दयनीय थी। सरकार ने इनको फिर से वसाने के लिए, इनको रोजगार दिलाने के लिए, अपनी जान लगा दी। सरकार ने कई आफिस खोले।

(३) **रियासतों का हिन्दुस्तान से मिलाना**—हिन्दुस्तान के उपप्रधानमंत्री और गृह मंत्री सरदार वल्लभ भाई पटेल ने अपनी राजनीति से काश्मीर और हैदरावाद की रियासतों के अतिरिक्त शेष सारी हिन्दुस्तानी रियासतों को हिन्दुस्तान के साथ मिला दिया। छोटी-छोटी रियासतें या तो अपने पड़ोसी प्रान्तों के साथ मिल गई या उन्होंने परस्पर मिलकर यूनियन वना ली। वड़ी-वड़ी रियासतें पृथक्-पृथक् रही परन्तु सव की सव भारत सरकार के साथ हैं।

(४) **काश्मीर की लड़ाई**—अक्तूवर १९४७ ई० में कवायली पठानों ने पाकिस्तान सरकार की सहायता से काश्मीर पर आक्रमण करने आरम्भ कर दिए। वे श्रीनगर के निकट पहुंच गये। काश्मीर के महाराजा हरीसिंह व वहां के लोगों के नेता शेख अव्दुल्ला की प्रार्थना पर भारत सरकार ने काश्मीर की सहायता करना स्वीकार कर लिया। इस लड़ाई के कारण निम्न-लिखित थे :—

(१) पाकिस्तान यह चाहता था कि काश्मीर उसमें मिल जाए, इसलिये उसने आवश्यक वस्तुएं वहाँ भेजना वन्द कर दिया और जव उससे प्रोटैस्ट किया गया तो वह भी उसने स्वीकार न किया।

(२) काश्मीर के मुसलमान भी पाकिस्तान के साथ मिलना चाहते थे।

(३) कवाइलियों के भय से पाकिस्तान ने उन्हें काश्मीर का लालच देकर

काश्मीर पर आक्रमण करवा दिया।

इस सबका परिणाम यह हुआ कि आक्रमणकारी श्रीनगर के समीप धीरे-धीरे पहुंच गए और काश्मीर सरकार की प्रार्थना पर भारत ने उस हमले को रोका बाद में यह मामला संयुक्त राष्ट्रसंघ में भारत ने पेश किया। कितने ही वर्ष बीत गये किन्तु काश्मीर की समस्या हल नहीं हो सकी। अनेकों बार पाकिस्तान व भारतवर्ष के नेता व सरकारी प्रतिनिधि मण्डल परस्पर एक दूसरे से इस समस्या को सुलझाने के लिए मिल चुके हैं, परन्तु अभी तक इसका कोई हल नहीं निकला है।

(५) **हैदराबाद का मामला**—हैदराबाद भी भारत की एक महत्त्वपूर्ण रियासत है। बर्तानिया साम्राज्य के चले जाने के बाद उसने अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी, और एक वर्ष के लिए भारत सरकार के साथ जूं-तूं कर समझौता कर लिया, किन्तु एक वर्ष बाद वह समय बीत गया और हैदराबाद में कासिम रिजवी के आक्रमण दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगे। परिणाम यह हुआ कि हिन्दू जनता त्राहि-त्राहि पुकार उठी। प्रयत्न किया गया कि किसी न किसी प्रकार यह मामला शान्ति के तरीके से सुलझाया जा सके। किन्तु इसमें कुछ भी सफलता न हुई। अन्त में सरदार पटेल को पुलिस ऐक्शन के द्वारा इस समस्या को सुलझाना पड़ा।

महात्मा गांधी की हत्या—माउन्टबेटन के समय की यह महत्वपूर्ण घटना है। ३० जनवरी सन् १९४८ को महात्मा गांधी एक हिन्दू युवक नाथूराम गौडसे द्वारा मार डाले गये। इससे सारे भारत में शोक फैल गया। एक महापुरुष भारत के हाथ से छीन लिया गया।

प्रश्न ४८—श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य के काल की महत्वपूर्ण घनटाओं पर प्रकाश डालिए।

उत्तर—२१ जून सन् १९४८ ई० को लार्ड माउन्टबैटन इंगलैंड चले गए। उनके चले जाने पर चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य को भारत का गवर्नर जनरल बनाया गया। आप २५ जनवरी सन् १९५० तक इस पद पर सुशोभित रहे। २६ जनवरी सन् १९५० ई० को भारतवर्ष एक गणतन्त्र राज्य घोषित कर दिया गया और यहां पर गवर्नर जनरल के पद को समाप्त करके

राष्ट्रपति का निर्वाचन होने लगा। भारतीय स्वतन्त्र भारत के प्रथम गवर्नर जनरल श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य के शासनकाल की मुख्य घटनायें निम्नलिखित हैं :—

(१) **काश्मीर कमीशन का आगमन**—यह कमीशन सन् १९४८ ई० के जुलाई के महीने में संयुक्त राष्ट्र संघ ने काश्मीर के झगड़े की जांच करने के लिए भारतवर्ष में भेजा। इस कमीशन के सदस्यों ने भारतीय तथा पाकिस्तानी नेताओं से पृथक्-पृथक् बातचीत की। उन्होंने काश्मीर का दौरा करके वहां की स्थिति को समझा। इस कमीशन की सिफारिश पर दोनों देशों ने युद्ध बंद कर दिया और काश्मीर समस्या का निर्णय संयुक्त राष्ट्र संघ ने अपने हाथ में ले लिया।

(२) **हैदराबाद की विजय**—भारतवर्ष के विभाजन के पश्चात् हैदराबाद के निज़ाम ने भारत में विलय स्वीकार न करके अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। यह भारत के विरुद्ध विद्रोह करने के स्वप्न देखने लगा। रजाकारों ने अत्याचार करने शुरू कर दिये। भारत सरकार ने बार-बार निज़ाम से इन अत्याचारोंको रोकने के लिए भारतीय सेना को सिकन्दराबाद में रखने के लिए कहा परन्तु वह नहीं माना। अन्त में विवश होकर भारतीय सरकार ने सितम्बर सन् १९४८ ई० को हैदराबाद पर 'पुलिस ऐक्शन' के लिए सेनायें भेज दीं। निज़ाम पराजित हुआ और उसने भारतीय सरकार की आधीनता स्वीकार कर ली।

प्रश्न ४९—गोआ सत्याग्रह के विजय में तुम क्या जानते हो ? यह भी बताइये कि गोआ किस प्रकार स्वतंन्त्र हुआ।

उत्तर—१५ अगस्त सन् १९४७ ई० को भारतवर्ष स्वतन्त्र हो गया, परन्तु गोआ, दमन और ड्यू नामक तीन बस्तियों पर पुर्तगाल का अधिकार बना रहा। भारत सरकार ने बार-बार पुर्तगाल सरकार से इन बस्तियों को स्वतन्त्र करने के लिए लिखा, परन्तु उसने एक न सुनी। अन्त में भारतीय जनता पुर्तगाल सरकार के विरुद्ध सत्याग्रह करने के लिये विवश हुई। १५ अगस्त सन १९५५ ई० को २००० सत्याग्रहियों ने इन बस्तियों में प्रवेश किया। पुर्तगाली सेना ने इन पर निर्दयता से गोलियों की बौछार की, परन्तु

ये वीर पीछे न हटे। सैकड़ों देशभक्तों ने हंसते-हसते अपने जीवन की वलि दे दी घायल सत्याग्रहियों को घसीटकर और दूसरों को धक्के देकर उन्होंने इन बस्तियों की सीमा से बाहर निकाल दिया। भारतवासियों का जोश इस अत्याचार से और अधिक बढ़ने लगा। परन्तु भारत सरकार ने जनता को सत्याग्रह बन्द करने के लिये विवश किया और इन पुर्तगाली बस्तियों की आर्थिक नाकाबंदी भी कर दी। भारत सरकार के अनेक प्रयत्न करने पर भी जब पुर्तगाल की सरकार गोआ को स्वतन्त्र करने को तैयार नहीं हुई, तो विवश हो भारत सरकार को पुलिस कार्यवाई करनी पड़ी। सेना भेजकर भारत सरकार ने गोआ को स्वतन्त्र करा लिया।

प्रश्न ५०—भारतीय संविधान की विशेषताएं लिखिए।

(प्रथमा, सं० २०१५)

उत्तर—एक राजनीतिक विचारक के अनुसार भारत का नवीन संविधान एक अनूठा संविधान है और इसके कई स्रोत हैं। इस संविधान ने भारतीय समाज की असमानता 'साम्प्रदायिकता, दमन आदि अनेक बुराइयों को दूर किया है। इसके निर्माण में भारतीय परिस्थितियों पर भी पूर्ण रूप से ध्यान रखा गया हैं और भारत में एक आदर्श लोकतन्त्रात्मक समाज को जन्म दिया गया है। इस संविधान की विशेषताएं निम्नलिखित हैं—

(१) **एक विशाल संविधान**—भारत का संविधान एक विशाल लेख है। इसमें संघ सरकार, विभिन्न राज्य तथा इनके विधान का वर्णन, नागरिकों के मूल अधिकारों, राज्य की नीतिक निर्देशक तत्वों, सम्पत्ति, वित्त, व्यापार और निर्वाचन सम्बन्धी बातें, अल्प संख्यकों की स्थिति तथा सरकारी सेवायें आदि सभी विषयों का समावेश है।

(२) **परिवर्तनशील संविधान**—परिस्थितियों के अनुसार इसमें परिवर्तन किये जा सकते हैं। विशालता, विकासशीलता तथा परिवर्तनशीलता इसके विशेष गुण हैं। इसके परिवर्तन में कोई वैधानिक बाधा नहीं पड़ सकती है।

(३) **लिखित संविधान**—भारतीय संविधान का अधिकांश भाग लिखित है।

(४) **लोकतन्त्रात्मक संविधान**—भारत का नवीन संविधान लोकतंत्रा-

त्मक सिद्धान्त पर आधारित है। इसके अनुसार राज्य की शक्ति जनता में निहित है। सरकार केवल जनता की प्रतिनिधि है। जनता को यह अधिकार है कि यदि सरकार अयोग्य सिद्ध हो तो वह उसे हटाकर दूसरी सरकार का निर्माण कर ले।

(५) **संघात्मक सरकार**—भारत के नवीन संविधान का रूप संघात्मक है। सविधान में यह घोषित किया गया है कि भारत संघातगंत राज्यों का संघ है। इस संघ में चार प्रकार का राज्य सम्मिलित हैं—(१) वे राज्य जो ब्रिटिश भारत के प्रांत थे, (२) वे राज्य जो पहले भारतीय रियासतों के रूप में थे, (३) वे राज्य जिनका शासन केन्द्रीय सरकार द्वारा होता है, (४) अंडमान और निकोवार टापू।

(६) **शक्तिशाली केन्द्र की स्थापना**—यद्यपि भारतीय संविधान एक संघात्मक संविधान है, भारत में एक शक्तिशाली केन्द्रकी स्थापना की गई है।

(७) **संसद् पद्धति की सरकार**—भारत के नवीन संविधान की यह विशेषता है कि भारत का प्रधान राष्ट्रपति होते हुए भी यहाँ की सरकार अध्यक्षात्मक न होकर साँसद पद्धति की है। प्रधान तो केवल नाममात्र का है. राज्य की वास्तविक शक्ति तो मन्त्रि-परिषद् के हाथ में होत है।

(८) **संविधान मे संशोधन की सरलता**—प्राय: संघ-संविधान में संशोधन की सरलता नहीं होती है। इसके लिये किसी विशेष विधि का प्रयोग करना पड़ता है। परन्तु भारतीय संविधान के अनुसार संसद् ही कानून बना सकती हैं और वह संशोधन भी कर सकती हैं। वास्तव में भारतीय संविधान "अपरिवर्तनशीलता तथा परिवर्तनशीलता का मेल है।"

(९) **साम्प्रदायिकता का विरोधी संविधान**—धर्म निरपेक्ष राज्य की स्थापना—नवीन संविधान के अनुसार भारत में एक धर्म निरपेक्ष राज्य की स्थापना की गई है और साम्प्रदायिकता का अन्त कर दिया गया है।

(१०) **अल्प संख्यकों के हितों की रक्षा**—भारत के नवीन संविधान के अनुसार भारतीय सरकार का यह प्रथम कर्तव्य होगा कि वह अल्पसंख्यक जातियों के सांस्कृतिक तथा धार्मिक अधिकारों की रक्षा करे। यहाँ पर संयुक्त निर्वाचन प्रणाली को अपनाया गया है, परन्तु दलित जातियों के लिये विधान

मण्डलों तथा स्थानीय संस्थाओं में जनसंख्या के अनुपात से उनके लिये स्थान सुरक्षित कर दिये हैं। सरकारी नौकरियों में भी उनके लिये स्थान सुरक्षित हैं।

(११) **एक राष्ट्रभाषा, एक नागरिकता और एक संविधान**—समस्त देश के लिए एक संविधान की व्यवस्था की गई है। भारत का प्रत्येक निवासी भारत का नागरिक है। इससे प्रान्तीयता की भावना का लोप हो रहा है। समस्त देश की राष्ट्रभाषा हिन्दी स्वीकार की गई है।

(१२) **नागरिकों के मूल अधिकार**—भारत के नवीन संविधान में भारतीय नागरिकों के अधिकार का विस्तृत वर्णन किया गया है। ये अधिकार लोकतन्त्र की भावना से ही दिये गये हैं। उनका उद्देश्य है कि राज्य या सरकार नागरिकों के व्यक्तित्व के विकास में किसी प्रकार बाधक न हो और यदि हो तो नागरिक न्यायालय में जाकर अपने अधिकारों की रक्षा कर सकें। ये मूल अधिकार निम्नलिखित हैं—

(१) समता का अधिकार, (२) स्वातन्त्र्य-अधिकार, (३) शोषण के विरुद्ध अधिकार, (४) धर्म-स्वातन्त्र्य का अधिकार, (५) संस्कृति और शिक्षा सम्बन्धी अधिकार, (६) सम्पत्ति का अधिकार, (७) संवैधानिक उपचारों के अधिकार।

(१३) **नीति निर्देशक तत्त्व**—नीति निर्देशक तत्त्व वे सिद्धान्त हैं जिनके आधार पर राज्य अपनी नीतिका निर्धारण करेगा और विधि निर्माण करेगा। परन्तु इन सिद्धान्तों के पीछे कोई वैधानिक सत्ता नहीं है। कोई भी न्यायालय इन तत्वों का पालन करने के लिए राज्य को बाध्य नहीं कर सकता। संविधान में इन नीति निर्देशक तत्वों का समावेश इसलिए किया गया है कि भारत के नागरिकों के प्रति कोई अन्याय न हो तथा भारत के स्त्री पुरुष दोनों ही आर्थिक क्षेत्र में समान अधिकार प्राप्त कर सकें।

(१४) **स्वतन्त्र न्यायपालिका**—नागरिकों के मूल अधिकारों की रक्षा तथा संविधान के संरक्षण के लिए भारतीय संविधान में एक स्वतन्त्र न्यायालय की व्यवस्था की गई है। जो राज्य स्वतन्त्र है उनके लिये यह आवश्यक है कि वहां पर एक स्वतन्त्र और निष्पक्ष न्यायपालिका हो। भारत के संघीय न्याया-

लय को इस बात का अधिकार है कि वह उन सभी कानूनों को संविधान विरोधी घोषित कर दे जिनके द्वारा भारतीय नागरिकों के मूल अधिकारों का अपहरण होता है।

(१५) **ग्राम पंचायतों की महत्ता**—ग्रामीणों को शासन में भाग लेने का अवसर देने के लिए ग्राम पचायतों की स्थापना की गई है। ये पंचायतें गांव का शासन प्रबन्ध करती हैं।

प्रश्न ५१—निम्नलिखित पर टिप्पणियां लिखो—

सर टामस रो, कलकत्ते की काल कोठरी, फिरदौसी, मलिक काफूर, जजिया, राणा संग्रामसिंह, महात्मा गांधी, पंडित नेहरू, सरदार वल्लभ भाई पटेल, रैगुलेटिंग ऐक्ट, पिट्स इंडिया ऐक्ट, दीन इलाही, तैमूर लंग, पृथ्वीराज चौहान, क्लाइव का द्वैत शासन।

उत्तर—सर टामस रो—सर टामस रो एक अंग्रेजी राजदूत था। यह सन् १६१५ ई० में जहांगीर के दरबार में इंगलैंड के शासक जेम्स प्रथम की ओर से आया था। यह यहां पर तीन वर्ष तक रहा। इसका यहाँ पर आने का उद्देश्य अंग्रेजी कम्पनी के लिये विशेष व्यापारिक सुविधाएं प्राप्त करना था। यह यहाँ पर रह कर कुछ सफलताएं पाने में सफल हो गया था। उसने जहांगीर के शासन-काल का वर्णन लिखा है। यह लिखता है कि जहांगीर का दरबार बड़ी सज-धज वाला था। देश में बहुत धन था। जनता के पास धन दौलत की कमी नहीं थी। विषय-विलास की सभायें प्रायः लगी रहती थीं। आप लिखते हैं कि जहांगीर का राज्य प्रबन्ध अच्छा नहीं था। वहां पर घूस खोरी का बाजार गर्म था सड़कें डाकुओं से सुरक्षित न थीं। राज्य के आदमी जनता के साथ बुरा बर्ताव किया करते थे। विदेशियों से बहुत अच्छा बर्ताव किया जाता था।

कलकत्ते की काल कोठरी (प्रथमा सं० २०१४)—सिराजुद्दौला सन् १७५६ ई० में बंगाल का नवाब बना। सिंहासनारूढ़ होते ही उसका अंग्रेजों से झगड़ा हो गया, जिसका एक कारण यह था कि उन दिनों अंग्रेज फ्रांसीसियों के साथ युद्ध छिड़ जाने के भय से कलकत्ता में अपने किले फोर्ट विलियम की मरम्मत करवा रहे थे। सिराजुद्दौला ने उन्हें रोका था, परन्तु उन्होंने उसका

कहना नहीं माना। दूसरा कारण यह था कि अंग्रेज अपने व्यापारिक अधिकारों का अनुचित प्रयोग कर रहे थे। तीसरे अंग्रेजों ने एक किशनदास व्यक्ति को अपने यहाँ आश्रय दे दिया था जिससे नवाब अप्रसन्न था और यह बंगाल का एक धनाढ्य व्यक्ति था। नवाब के कहने पर भी अंग्रेजों ने उसे समर्पण नहीं किया। इन कारणों से नवाब को अंग्रेजों पर बहुत क्रोध आया। उसने बहुत बड़ी सेना लेकर कलकत्ते पर, जो अंग्रेजों के आधीन था चढ़ाई कर दी और उसे विजय कर लिया। इसने १४६ अंग्रेज बन्दियों को फोर्ट विलियम की एक तंग और अंधेरी कोठरी में बन्द कर दिया था। इस समय बहुत गर्मी पड़ रही थी और यह जून का महीना था। दूसरे दिन जब द्वार खोला गया तो उनमें से केवल २३ व्यक्ति जीवित निकले थे। इस दुर्घटना को ही कलकत्ते की काल कोठरी की घटना कहते हैं। उसे ब्लैक होल कांड भी कहते हैं।

फिरदौसी—इसका जन्म खुरासान के एक नगर तूस में हुआ था। वह महमूद के समय में फारसी का एक अत्यन्त प्रसिद्ध तथा उच्चकोटि का कवि था। इसने शाहनामा नामक एक पुस्तक लिखी है। सुल्तान महमूद ने फिरदौसी से यह प्रतिज्ञा की थी कि शाहनामा के प्रत्येक श्लोक के लिए एक मोहर दूंगा। परन्तु जब यह पुस्तक बनकर तैयार हो गई थी तब महमूद ने इसे मोहर की स्थान पर प्रति श्लोक एक रुपया देना चाहा था। फिरदौसी ने इसे लेने से इनकार कर दिया। यह शाहनामे के आरम्भ में महमूद की निन्दा लिखकर चला गया। महमूद ने उसको मोहरें तब भेजीं जब उसने अपने बारे में निन्दा के श्लोकों को सुना। परन्तु जब मोहरें भेजी गई थीं तब तक फिरदौसी की मृत्य हो चुकी थी।

मलिक काफूर—यह एक हिन्दू दास था। यह गुजरात विजय के समय खम्बायत नगर से अलाउद्दीन की सेना के हाथ लगा। यह अपनी योग्यता से सुल्तान का प्रधान सेनापति तथा मुख्य मन्त्री बन गया था। यह बाद में मुसलमान बन गया। इसी ने अलाउद्दीन के लिए दक्षिण का प्रदेश जीता था। जब अलाउद्दीन बूढ़ा हो गया तब मलिक काफूर राज्य को हथियाने की चेष्टा करने लगा। कहते हैं कि उसने सुल्तान को इस प्रकार का विष देना आरम्भ किया कि वह घुल-घुल कर मरने लगा। मलिक काफूर ने अलाउद्दीन की मृत्यु

के बाद उसके पुत्र को गद्दी पर बैठाया और खुद उसका संरक्षक बना परन्तु बाद में मलिक काफूर ने उसका वध कर डाला।

जजिया—जज़िया एक टैक्स था जो मुसलमान बादशाह अपनी अमुसलमान प्रजा पर लगाया करते थे। इस टैक्स को मुहम्मद बिन कासिम ने जो सिन्ध का विजेता था, भारतवर्ष में लगाया था। आरम्भ में तो मुगल शासकों ने ब्राह्मणों पर जजिया टैक्स नहीं लगाया था परन्तु फिरोज तुगलक ने ब्राह्मणों पर जजिया लगा दिया। अकबर ने १५६४ ई० में जज़िया सबके लिए हटा लिया परन्तु औरंगजेब ने १६७९ ई० में फिर से लगा दिया। इस जज़िया टैक्स से बचने के लिए कई हिन्दू मुसलमान हो गये। बाद में मुहम्मद शाह ने इसे बिल्कुल हटा दिया।

राणा संग्रामसिंह—यह कुशल और साहसी योद्धा था। यह चित्तौड़ का वीर राजपूत सरदार था, इसने अपने जीवन में कई लड़ाइयां लड़ीं। इसने मालवा और गुजरात के शासकों को पराजित किया था। इन युद्धों में इसकी एक आँख, एक हाथ और एक टांग निकम्मे हो गये थे। इसने बाबर को भारत पर आक्रमण करने का नियन्त्रण दिया था। परन्तु राणा सांगा यह नहीं चाहता था कि बाबर भारत का बादशाह बने इसलिए जब बाबर ने इब्राहीम को पानीपत के मैदान में हराया तो राणा ने उसे रोकने की ठानी और १५२७ ई० में कण्वाहा के स्थान पर बड़ी वीरता से सामना किया और इसमें हार कर भाग गया। इसके दो वर्ष बाद इसका देहान्त हो गया था। कहते हैं कि इसके शरीर पर तलवार और भालों के अस्सी निशान थे।

महात्मा गांधी (प्रथमा, संवत् २०१९)—आपका जन्म काठियावाड़ के एक नगर पोरबन्दर में एक प्रतिष्ठित बनिया घराने में २ अक्टूबर १८६९ ई० में हुआ था आपका पूरा नाम मोहनदास कर्मचन्द गाँधी था। आपके पिता और दादा काठियावाड़ की एक छोटी सी रियासत के दीवान थे। हाई स्कूल की परीक्षा पास करने के पश्चात् आप आगे बढ़ने के लिये विलायत चले गये। वहां से बैरिस्टरी पास करने के पश्चात् आप बम्बई हाई कोर्ट में वकालत करने लगे परन्तु उसमें आपको विशेष सफलता नहीं मिली। आप एक अभियोग के लिए दक्षिणी अफ्रीका गये। आप वहां बीस वर्ष तक रहें। आपने वहां अपनी वकालत शुरू कर दी। जब आपने वहां भारतवासियों के साथ दुर्व्यव-

हार होते देखा तो आपने आन्दोलन आरम्भ कर दिया जिसमें आपने बहुत यश प्राप्त किया। आप वहां तीन बार कैद किये गये थे। आप १९१४ ई० में भारतवर्ष लौट आये। इस समय इन्होंने सरकार की बहुत सहायता की क्योंकि इस समय प्रथम महायुद्ध चल रहा था। युद्ध के समाप्त होते ही रालेट एक्ट पास हुआ। इस एक्ट के पास होते ही आपने आन्दोलन शुरू किया जिससे आप और प्रसिद्ध हो गये। आपने अहिंसा और सत्यता के बल पर देश को स्वतन्त्र करा दिया। आपका उद्देश्य राम राज्य स्थापित करना था। ३० जनवरी १९४८ में आपका वध कर दिया गया जिससे भारत सरकार को गहरा धक्का पहुंचा। इन्हें लोग बापू के नाम से याद करते हैं।

पंडित जवाहरलाल नेहरू—आपका जन्म १८८९ ई० में इलाहाबाद में हुआ। आप स्वर्गीय मोतीलाल नेहरू के सुपुत्र हैं। इंगलैंड से आपने बैरिस्ट्री की परीक्षा पास की थी जब आप इंग्लैंड में थे तब से ही आपके मन में स्वतन्त्रता की भावना जाग उठी थी वहां से लौटने के बाद ही आपने राजनैतिक क्षेत्र में कार्य करना आरम्भ कर दिया था। आप १९२९ ई० में लाहौर कांग्रेस के सभापति बने थे। जिसमें सम्पूर्ण स्वराज्य का प्रस्ताव पास किया गया था। आप कई बार कांग्रेस के प्रेसीडेन्ट भी रहे। और आप एक प्रसिद्ध लेखक भी हैं। आप कांग्रेस के उच्चकोटि के नेता हैं। आपने देश के लिये काफी बलिदान दिया है। आजकल आप स्वतन्त्र भारत के प्रधान मन्त्री हैं। आपकी गणना संसार के उच्चकोटि के राजनीतिज्ञों में की जाती है।

सरदार पटेल—सरदार पटेल भारत के एक श्रेष्ठ और बहुत प्रभावशाली व्यक्ति थे। आप एक उच्च कोटि के वकील थे। आप वकालत छोड़कर कांग्रेस में शामिल हो गये। देश सेवा के लिए आपने कई बार जेल यात्रा की। आप स्वतन्त्र भारत के उप-प्रधान मन्त्री तथा रियासती विभाग के मन्त्री थे। आपने भारतीय रियासतों का भारत संघ में विलय करके एक बहुत ही महान् कार्य किया। आप बड़े वीर साहसी तथा दृढ़-निश्चय पुरुष थे। इसी कारण आप भारत के लौह पुरुष के नाम से प्रसिद्ध थे। दिसम्बर सन् १९५० ई० में आपका स्वर्गवास हो गया।

डा० राजेन्द्रप्रसाद—आपकी गणना भारतवर्ष के महान् पुरुषों में है। आप एक उच्चकोटि के विद्वान्, राजनीतिज्ञ तथा देशभक्त थे। आपका

जीवन बहुत सादा था। आपने काँग्रेस में सम्मिलित होकर अनेक वार जेल यात्राएं की। देश के स्वतन्त्र होने के पश्चात् आप भारत के खाद्य-मन्त्री बने, संविधान सभा के भी आप प्रधान थे। २६ जनवरी सन् १९५० को आप गणतन्त्र भारत के प्रथम प्रधान चुने गये। सन् १९५२ में दोवारा तथा सन १९५७ में तीसरी वार आपको राष्ट्रपति चुनकर भारतीय जनता ने आपके प्रति प्रेम, विश्वास और आपकी योग्यता का परिचय दिया। १२ मई सन् १९६२ ई० तक आपने वड़ी योग्यता से राष्ट्रपति के पद पर कार्य किया। सन् १९६३ ई० में आपका स्वर्गवास हो गया।

रैगुलेटिंग एक्ट—

धाराएं—(१) बंगाल के गवर्नर को गवर्नर जनरल वना दिया गया और उसकी सहायता के लिए चार मेम्वरों की एक कौंसिल वनाई गई। गवर्नर जनरल को वहुमत का निर्णय मानना आवश्यक था, परन्तु उसे कास्टिंग वोट का अधिकार था। पहले चार मेम्वर पांच वर्ष के लिए सरकार ने आप ही नियत कर दिये थे।

(२) बम्बई तथा मद्रास प्रान्तों के गवर्नर वैदेशिक नीति अर्थात् युद्ध और सन्धि के विषयों में गवर्नर जनरल के आधीन कर दिये गये, परन्तु उन्हें यह अधिकार दिया गया कि विशेष आवश्यकता के समय वे अपनी इच्छानुसार काम कर सकते हैं।

(३) कलकत्ते में एक सुप्रीम कोर्ट स्थापित की गई, जिसमें चीफ जस्टिस के अतिरिक्त तीन और जज थे। पहला चीफ जस्टिस इम्पे था।

(४) कम्पनी के समस्त कर्मचारियों को निज का व्यापार करने तथा भेंट आदि लेने का निषेध कर दिया गया।

(५) कम्पनी के डायरेक्टरों के लिए यह अनिवार्य हो गया कि वे दीवानी तथा फौजदारी विषयों सम्वन्धी आवश्यक पत्र इंगलैंड की सरकार को पेश किया करें।

त्रुटियां—इसमें कई त्रुटियां थीं, जिनके कारण यह अपूर्ण तथा अधूरा सिद्ध हुआ।

(१) इसमें सवसे वड़ी त्रुटि यह थी कि गवर्नर जनरल को अपनी कौंसिल

पर पूरा अधिकार न था और चूंकि प्रत्येक बात का निर्णय बहुमत से होता था, इसलिए कौंसिल के मेम्बर गवर्नर जनरल के विरुद्ध जो चाहें कर सकते थे।

(२) इस एक्ट में यह भी स्पष्ट नहीं किया गया था कि सुप्रीम कोर्ट के क्या अधिकार होंगे और उसका सम्बन्ध कम्पनी की स्थापित की हुई अदालतों के साथ क्या होगा।

(३) बम्बई और मद्रास के गवर्नर यद्यपि वैदेशिक नीति में गवर्नर जनरल के अधीन थे, परन्तु आवश्यकता की ओट में अपनी इच्छानुसार काम कर लिया करते थे। इस तरह से गवर्नर जनरल को उन पर पूरा काबू न था।

पिट्स इण्डिया एक्ट—

रैगुलेटिंग एक्ट में कई त्रुटियां रह गई थीं। इसलिए १७८४ ई० में इंगलैण्ड के प्रधान मन्त्री पिट ने भारत के शासन प्रबन्ध को अच्छा बनाने के लिए एक नया राज्य नियम बनाया। रैगुलेटिंग एक्ट का दूसरा कारण यह था कि १७८३ ई० में अमरीका अंग्रेजी सरकार की आधीनता से स्वतन्त्र हो गया था और पार्लियामेंट को भय था कि कहीं भारत भी हाथ से नहीं जाता रहे। इसलिए वह ईस्ट इण्डिया कम्पनी पर अधिकार पाना चाहती थी।

धाराएं—(१) इस एक्ट की विशेष बात यह थी कि कम्पनी का व्यापारिक प्रबन्ध राजनैतिक प्रबन्ध से पृथक् कर दिया गया। व्यापारिक प्रबन्ध तो कम्पनी के संचालकों के आधीन ही रहने दिया गया, परन्तु राजनीतिक प्रबन्ध छः मेम्बरों के एक बोर्ड को सौंप दिया गया। जिसे बोर्ड आफ कन्ट्रोल कहते थे। सदस्यों की नियुक्ति सम्राट् स्वयं करता था।

(२) गवर्नर जनरल की कौंसिल के मेम्बरों की संख्या चार के स्थान पर तीन कर दी गई।

(३) गवर्नर जनरल को बम्बई और मद्रास की गवर्न्मेंटों पर पूर्ण अधिकार दिया गया।

(४) यह भी निर्णय हुआ कि कम्पनी को अहस्तक्षेप की नीति पर पूर्ण अनुकरण करना चाहिये अर्थात् देशी राजाओं के सम्बन्ध में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

इस एक्ट के पास होने से कम्पनी के काम में पालियामेंट को हस्तक्षेप करने को विस्तृत अधिकार मिल गया। यह एक्ट थोड़े बहुत परिवर्तनों के साथ १८५८ ई० तक रहा।

दीन-इलाही—

१५८२ ई० में अकबर ने एक नया मत चलाया जिसका नाम दीन इलाही रक्खा। इस मत में विभिन्न मतों विशेषतः हिन्दू, जैन, इस्लाम, पारसी, ईसाई मत की अच्छी-अच्छी बातें सम्मिलित की गई थीं। इसका मुख्य नियम यह था कि ईश्वर एक है और अकबर उसका प्रतिनिधि है। मनुष्य को बुद्धि से काम लेना चाहिए, क्योंकि किसी बात पर आँखें मूँदकर विश्वास करना धर्म नहीं है। अकबर स्वयं प्रातःकाल उठकर सूर्य की पूजा किया करता था और उसके अनुयायी अकबर के आगे सिर झुकाया करते थे। इस मत में मांस खाना निषिद्ध था। इस धर्म के अनुयायियों से यह आशा की जाती कि वे अपनी सम्पत्ति, अपना जीवन, मान और धर्म सम्राट के लिये न्योछावर करने के लिये तैयार होंगे। परन्तु इसको थोड़े ही लोगों ने अपनाया। इसलिये अकबर के मरते ही इस मत की भी समाप्ति हो गई।

तैमूर लंग (प्रथमा, संवत् २०१९)—तुर्किस्तान का शासक था। उसकी राजधानी समरकन्द थी। यह एक बहुत साहसी और युद्ध में निपुण था। इसकी बचपन में ही एक टांग लंगड़ी हो गई थी इसलिये इसको तैमूर लंग कहते हैं। यह लम्बे कद का मनुष्य था। उसने १३९८ ई० में भारत पर आक्रमण किया था। इसने लगभग सारे मध्य एशिया पर अपनी धाक जमाई हुई थी। तैमूर लंग ने ९२००० सेना के साथ भारत पर आक्रमण किया था। तैमूर ने यह हमला इस उद्देश्य से किया कि भारतवर्ष एक धनशाली देश है और उस समय जो बादशाह राज्य कर रहा था वह एक निर्बल शासक था। इसी विचार से उसने भारतवर्ष पर हमला किया। तैमूर लूटमार करता हुआ दिल्ली के समीप पहुंचा। महमूद तुगलक जो इस समय दिल्ली का शासक था, उसकी सेना ने बहुत डटकर तैमूर की सेना का सामना किया परन्तु महमूद तुगलक इससे अन्दर हार कर गुजरात की तरफ भाग गया। तैमूर दिल्ली के अन्दर आया और उसने इस वायदे पर लोगों को जीवन रक्षा का विश्वास दिलाया

कि लोग उसे बहुत बड़ी धनराशि दें । परन्तु भाग्यवश दिल्ली के निवासियों और तैमूर की सेना में झगड़ा हो गया जिनमें तैमूर के कई सिपाही मारे गये जिसमें तैमूर नाराज हो गया और उसने लूटमार करने का आदेश जारी कर दिया । इस प्रकार इस आदेश को पाकर पाँच दिन तक लूट मार चलती रही । तैमूर पन्द्रह दिन तक दिल्ली में रहकर मेरठ और हरिद्वार होता हुआ वापिस समरकन्द लौट गया । तैमूर अपने साथ अतुल सम्पत्ति ले गया जिससे देश निर्धन पड़ गया और इसके बाद एक भीषण अकाल पड़ा जिसमें कितने ही मनुष्य मर गये । तैमूर जाते वक्त अपने साथ कई कारीगर भी ले गया जो कि वहां पर अच्छे-अच्छे भवन बना सकें ।

पृथ्वीराज चौहान—यह एक वीर योद्धा और अच्छा शासक था । यह दिल्ली और अजमेर का अन्तिम हिन्दू राजा था इसको राय पिथौरा भी कहते हैं। इसने कनौज के राजा की लड़की संयुक्ता को स्वयम्बर में से बलपूर्वक उठा लिया और उससे अपनी शादी की। इससे कन्नौज के राजा जयचन्द और इसमें शत्रुता हो गई । इसने अपने कई पड़ौसी राजाओं से युद्ध भी किये । ११९१ ई० में इसने मुहम्मद गौरी को हराया और ११९२ ई० में इसने गौरी से हार खाई और मारा गया । इसके राज्य कवि चंदवरदाई ने पृथ्वीराज रासो पुस्तक लिखी है जिसमें इसका वृतान्त मिलता है । इसकी मृत्यु से हिन्दू महानता का सूर्य सदा के लिये अस्त हो गया । इसका नाम आज तक उत्तरी भारत में प्रसिद्ध है ।

क्लाइव का द्वैत शासन—कम्पनी को बंगाल, बिहार, उड़ीसा की दीवानी (अर्थात् लगान प्राप्त करने का अधिकार) इलाहबाद के सन्धि पत्र के आधार पर १७६५ ई० में मिल गई । इस तरह से बंगाल का शासन पूर्ण रूप से अंग्रेजों के हाथ में आ गया । कम्पनी इतने बड़े प्रदेश का प्रबन्ध अपने हाथ में लेने के लिए तैयार नहीं थी क्योंकि इतने बड़े प्रदेश का प्रबन्ध हाथ में लेने के लिये इनके पास कुशल कर्मचारी नहीं थे । इसी कारण से बंगाल का शासन दो भागों में विभक्त कर दिया गया । इस नवीन प्रबन्ध को द्वैत शासन अर्थात् दो शक्तियों का शासन कहते हैं ।

देश रक्षा का भार तो कम्पनी ने अपने हाथ में लिया और शेष सारा प्रबन्ध नवाब के हाथ में छोड़ दिया । इस द्वैत शासन के अनुसार नवाब ने कम्पनी को ५३ लाख रुपया वार्षिक व्यय के लिए देना स्वीकार कया । द्वैत शासन का यह ढंग सात वर्ष तक चालू रहा ।

द्वैत शासन असंतोषजनक सिद्ध हुआ क्योंकि इसके मुताबिक सब अधिकार कम्पनी के हाथों में थे किन्तु जिम्मेदारी सारी नवाब की थी । कम्पनी प्रबन्ध को ठीक करने के लिये तैयार नहीं थी और नवाबों में शासन प्रबन्ध की इतनी योग्यता नहीं थी । इसी कारण से बंगाल में घोर अशान्ति और अत्याचार क्लाइव के लौटते ही फैले । नटखट अधिकारियों ने भारतीयों पर कई घोर अत्याचार किये । इससे प्रजा की बड़ी दुर्दशा हो गई और १७६९-७० ई० में बंगाल में भयानक अकाल पड़ा ।

भूगोल

तैयार करने की विधि

इस विषय में १०० अंकों का केवल एक प्रश्न पत्र होता है।

पाठ्यक्रम—भूगोल के सिद्धान्तों का पूरा पूरा ज्ञान—पृथ्वी, पृथ्वी और सूर्य के सम्बन्ध, अक्षांश व देशान्तर रेखायें, मानचित्र, वायुमंडल, जलवायु, पृथ्वी के जलवायु विभाग, भूपटल, जल भाग, वनस्पति, प्रधान प्राकृतिक खण्ड, संसार के राजनीतिक प्रदेश, मानव-जातियाँ, जनसंख्या और व्यवसाय।

पाठ्य-ग्रन्थ—(१) भूपरिचय—रामनारायण मिश्र।
(२) भारतवर्ष का भूगोल—रामनारायण मिश्र।
(३) भूगोल सार—रामनाथ दुबे।

भूगोल के अध्ययन करने के लिए विद्यार्थियों को इतिहास के लिए बताई गई बातों को ध्यान में रखना चाहिए।

इस पत्र में एक प्रश्न मानचित्र का होता है जिसमें प्रश्न में दिये गये नगरों, नदियों, पर्वतों तथा अन्य बातों को भरना होता है।

प्रश्न—भारतवर्ष का एक मानचित्र बड़े से बड़ा जो उत्तर पुस्तिका के एक पृष्ठ में समा सके, खींचकर निम्नलिखित अंकित करो—

(क) नागा, पारसनाथ, अजन्ता, महादेव।

(ख) भीमा, कावेरी, साबरमती, व्यास।

(ग) चण्डीगढ़, कानपुर, राँची।

(घ) एक प्रमुख क्षेत्र जहाँ मिट्टी का तेल पाया जाता है।

(ङ) एक प्रमुख क्षेत्र जहाँ चाय उत्पन्न होती है।

(च) ७५° फां० जनवरी की समताप रेखा।

प्रस्तुत गाइड में कोई भी मानचित्र नहीं दिया गया है। इससे विद्यार्थियों को यह नही समझ लेना चाहिए कि अब यह प्रश्न परीक्षा में आता ही नहीं है। इस प्रश्न को किसी अच्छी एटलस की सहायता से तैयार कर लेना चाहिए।

आवश्यक प्रश्न

१. उत्तर भारत और दक्षिण भारत की तुलना निम्नलिखित बातों में करो—

(क) भूमि की बनावट और नदियाँ, (ख) जलवायु, (ग) उपज, (घ) मनुष्य और उद्यम।

२. निम्नलिखित उपज का भौगोलिक कारण और वितरण क्षेत्र बताओ—(क) धान, (ख) गन्ना, (ग) मक्का।

३. सूती कपड़े और चमड़े के उद्योगों के लिए किन-किन भौगोलिक बातों की आवश्यकता होती है और भारतवर्ष में किन-किन क्षेत्रों में उनके उद्योग धन्धे चलाये जाते है ?

४. निम्नलिखित नगरों के विकास और उन्नति का भौगोलिक कारण लिखो—काँदला, बम्बई, बंगलौर, जमशेदपुर, वाराणसी, शिमला, बर्लिन, काहिरा, शिकागो, न्यू ग्रालियन्स, पेकिंग, मेलबोर्न, मार्सेलीज।

५. कारण बताओ—

(क) राजस्थान में बहुत कम वर्षा होती है।

(ख) पूर्वी घाट की अपेक्षा पश्चिमी घाट में अधिक वर्षा होती है।

(ग) दक्षिण भारत का मध्य भाग शुष्क होता है।

(घ) शंघाई जनवरी में बहुत ठण्डा रहता है।

(ङ) रूमसागरिक प्रदेशों में जाड़े में वर्षा होती है।

(च) संसार में बहुधा उष्ण मरुस्थल महाद्वीपों के पश्चिमी भागों में २०° ३०° अक्षांशों के बीच पाये जाते हैं।

६. निम्नलिखित की उत्पत्ति का भौगोलिक कारण बताओ और संसार के उन क्षेत्रों का नाम लिखो, जहाँ उनकी उत्पत्ति होती है—

गेहूं, गन्ना कपास।

७. संसार की समुद्री नहरों के नाम लिखो और उसका विवरण दो।

८. सदाबहार के जंगलों का नाम लिखो तथा उनमें से किसी एक प्रकार के जंगल का विवरण दो।

९. अक्षांश और देशान्तर से क्या समझते हो ? दोनों की तुलना करो और अन्तर बताओ।

१०. गरम नम जलवायु और सूडान-तुल्य जलवायु में क्या अन्तर है ? दोनों प्रकार के जलवायु प्रदेशों की मुख्य उपज का उल्लेख करो।

भूगोल

प्रश्न १—सिद्ध कीजिये कि पृथ्वी गोल है।

उत्तर—प्राचीन काल में यह विश्वास किया जाता था कि पृथ्वी चपटी है, परन्तु आज विज्ञान के युग में यह सिद्ध हो चुका है कि पृथ्वी चपटी नही है, बल्कि गेंद की भांति गोल है। यह केवल ध्रुवों के निकट पिचकी हुई और भूमध्य रेखा के पास कुछ ऊपर को उठी हुई है। पृथ्वी के गोल होने के प्रमाण में निम्नलिखित बातें कही जा सकती है:—

(१) सूर्य समस्त भूमण्डल पर एक साथ उदय नहीं होता है। पृथ्वी पर कहीं प्रातः है तो कहीं सन्ध्या है, कहीं दोपहर तो कहीं अर्द्धरात्रि है। वस्तुतः सूर्य पूर्व दिशा में पहले दिखाई देता है और पश्चिम में बाद में। यदि पृथ्वी चपटी होती, तो सब ही स्थानो पर सूर्य एक साथ दिखाई देता। गोल होने के कारण ही विभिन्न स्थानों में सूर्य विभिन्न समयों पर उदय और अस्त होता है।

(२) जब हम तट पर खड़े होकर समुद्र में आते हुए किसी जहाज को दूर से देखते हैं, तो जहाज के सब भाग एक साथ दिखाई नही देते हैं। पहले जहाज का ऊपर का भाग दिखाई देता है और फिर धीरे-धीरे जहाज दृष्टि-गोचर हो जाता है। यदि पृथ्वी चपटी होती तो सारा जहाज एक साथ दिखाई देता। इसप स्पष्ट है कि पृथ्वी गोल है।

(३) यदि हम हवाई जहाज में बैठकर सीधे एक ही दिशा में उड़ते चले जायें तो अन्त में हम उसी स्थान पर आ पहुंचते है, जहां से हम प्रारम्भ में रवाना हुए थे।

(४) चन्द्रग्रहण के समय चन्द्रमा पर पृथ्वी की जो छाया पड़ती है, वह भी गोल ही होती है। चपटी वस्तु की छाया कभी भी गोल नहीं हो सकती। इससे प्रमाणित होता है कि पृथ्वी की आकृति भी गोल है।

(५) ब्रह्माण्ड में जितने भी नक्षत्र दिखाई देते है, वे सभी गोल है। पृथ्वी भी एक नक्षत्र है। फिर इसका भी अन्य नक्षत्रों की भांति गोल होना आवश्यक है।

(६) दोपहर के समय दो विभिन्न स्थानों पर सूर्य की ऊंचाई समान होती है, परन्तु ये स्थान एक दूसरे के उत्तर और दक्षिण दिशा में होने चाहियें।

यदि पृथ्वी चपटी होती, तो सूर्य की ऊंचाई मे इस प्रकार का अन्तर नहीं पाया जाता। इससे स्पष्ट है कि पृथ्वी गोल है।

(७) जब हम किसी ऊंचे स्थान पर खड़े होकर अपने चारों ओर दूर तक देखते हैं, तो क्षितिज सदा गोल ही दिखाई देता है। इससे सिद्ध होता है कि पृथ्वी गोल है।

(८) एक बार इंगलैंड में बेडफोर्ड लैवल नहर मे तीन-तीन मील की दूरी पर तीन बास गांड़े गये। उन बांसो के जो भाग जल की सतह से ऊंचे उठे हुए थे, वे सब समान थे। परन्तु जब एक बाँस के पास से दूरबीन द्वारा इन बांसों के सिरो को देखा गया, तो मध्य के बांस का सिरा लगभग ६ फुट ऊंचा उठा हुआ दिखाई दिया। यह बात सिद्ध करती है कि पृथ्वी गोल है, यदि पृथ्वी चपटी होती तो तीनों बांसों के सिरे एक ही सीध में होते।

(९) अब तो मानव ने राकेटों मे बैठकर हजारों मील की ऊंचाई पर जाकर पृथ्वी को देख लिया है। वह एक गोला दिखाई देती है। इसके पश्चात् अब पृथ्वी को गोल सिद्ध करने के किसी प्रमाण की आवश्यकता नही रह जाती है।

प्रश्न २—पृथ्वी की दैनिक तथा वार्षिक गतियों का क्या तात्पर्य है? रेखाचित्रों द्वारा दिन-रात तथा मौसम बदलने की क्रियाओं को समझाकर बतलाइये। **(प्रथमा परीक्षा, सं० २०१२)**

उत्तर—पृथ्वी की दैनिक गति—पृथ्वी अपने कक्ष के चारों ओर पश्चिम से पूर्व की ओर २४ घण्टे में एक चक्कर पूरा करती है। पृथ्वी की इस गति को दैनिक गति कहते है।

प्रभाव—(१) पृथ्वी की दैनिक गति से दिन रात बनते है।

(२) सूर्य, चन्द्रमा तथा अन्य सभी नक्षत्र पूर्व से पश्चिम दिशा की ओर पृथ्वी के चारों ओर घूमते दिखाई देते है।

(३) पवनों और धाराओं की दिशा में परिवर्तन होता है।

(४) भिन्न-भिन्न स्थानों के समयों में अन्तर होता है।

वार्षिक गति—पृथ्वी सूर्य के चारों ओर एक अंडाकार मार्ग पर घूमती रहती है। पृथ्वी इस चक्र को लगभग ३६५¼ दिन में पूरा कर लेती है। पृथ्वी की यह गति वार्षिक गति कहलाती है।

प्रभाव—(१) ऋतुयें परिवर्तित होती है।

(२) दिन-रात छोटे-बड़े होते हैं।

(३) कर्क रेखा, मकर रेखा, उत्तरी ध्रुववृत्त और दक्षिणी ध्रुववृत्त निश्चित किये जा सकते हैं।

दिन-रात का बनना—पृथ्वी की दैनिक गति के कारण दिन-रात बनते हैं। पृथ्वी अपने अक्ष पर पश्चिम से पूर्व की ओर २४ घण्टे में एक चक्कर पूरा कर लेती है। सूर्य अपने स्थान पर अचल रहता है। पृथ्वी का जो भाग सूर्य के सामने आता है, वह उसके प्रकाश से प्रकाशित होता है और जो भाग दूसरी ओर चला जाता है वहाँ प्रकाश न होने के कारण अन्धकार हो जाता है और रात्रि हो जाती है। इसका कारण यह है कि प्रकाश की किरणें सीधी रेखाओं में ही चलती हैं। इसलिए बारी-बारी से पृथ्वी के उस भाग में जो सूर्य के सामने होता है दिन और दूसरे भाग में रात्रि होती है। इस प्रकार दिन-रात बनते हैं।

ऋतु परिवर्तन—वर्ष भर सदा एक सा मौसम नहीं रहता है। कभी अधिक गर्मी तो कभी अधिक सर्दी और कभी मौसम समान होता है। इस परिवर्तन के निम्नलिखित कारण हैं—

(१) पृथ्वी का वर्ष भर में सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाना।

(२) पृथ्वी का अक्ष के गिर्द घूमना।

(३) अक्ष का कक्ष तल पर ६६$\frac{1}{2}$° पर और सदैव एक ही ओर झुके रहना।

अक्ष के तिरछा होने और सदैव एक ही ओर झुके रहने के कारण छः मास पृथ्वी का उत्तरी गोलार्द्ध और दूसरे छः मास पृथ्वी का दक्षिणी गोलार्द्ध सूर्य की ओर झुका रहता है। इससे ऋतु परिवर्तन होता है। सूर्य की ओर झुकाव की दृष्टि से पृथ्वी की वर्ष भर में चार विभिन्न दशायें होती हैं। वे दशायें तीन-तीन महीने के अन्तर पर होती हैं। इन अवस्थाओं को समझने से हम ऋतु परिवर्तन होने के कारण को अच्छी प्रकार समझ सकते हैं—

(क) **जून २१ की अवस्था**—(१) इस दिन पृथ्वी का उत्तरी ध्रुव सूर्य की ओर और दक्षिणी ध्रुव सूर्य से परे झुका होता है।

(२) उत्तरी ध्रुव सूर्य के प्रकाश में होता है और दक्षिणी ध्रुव अन्धकार में।

३) सूर्य की किरणें उत्तरी गोलार्द्ध में भूमध्य रेखा से २३$\frac{1}{2}$° उत्तर में अर्थात् कर्क रेखा पर लाम्बिक पड़ती हैं और दक्षिणी गोलार्द्ध में तिरछी।

(४) उत्तरी गोलार्द्ध का अधिक भाग प्रकाश में और थोड़ा भाग अन्धेरे

में होता है। यही कारण है कि इस गोलार्द्ध में दिन बड़े और रातें छोटी होती हैं, परन्तु दक्षिणी गोलार्द्ध में इसके विपरीत अवस्था होती है। यहां पर रात बड़ी और दिन छोटा होता है।

(५) उत्तरी गोलार्द्ध में सूर्य की किरणें अपेक्षाकृत लाम्बिक हैं और दिन भी बड़े होते हैं। इस कारण इसमें ग्रीष्म ऋतु और दक्षिणी गोलार्द्ध में सर्दी का मौसम होता है।

(ख) दिसम्बर २२ की अवस्था—(१) इस अवस्था में दक्षिणी ध्रुव सूर्य की ओर झुका रहता है और उत्तरी ध्रुव सूर्य से परे होता ।

(२) दक्षिणी ध्रुव प्रकाश में और उत्तरी ध्रव अन्धकार में होता है।

(३) सूर्य की किरणें गोलार्द्ध में भूमध्य रेखा से २३½° दक्षिण में अर्थात् मकर रेखा पर लाम्बिक पड़ती हैं और उत्तरी गोलार्द्ध में अपेक्षाकृत तिरछी पड़ती हैं।

(४) दक्षिणी गोलार्द्ध का अधिक भाग प्रकाश में और थोड़ा भाग अन्धकार में होता है। यही कारण है कि यहाँ दिन बड़े और रातें छोटी होती हैं। इस समय उत्तरी गोलार्द्ध में इसके विपरीत अवस्था होती है।

इस समय दक्षिणी गोलार्द्ध में सूर्य की किरणें अपेक्षाकृत लाम्बिक होती हैं और दिन-रात भी लम्बे होते हैं, इसलिए दक्षिणी गोलार्द्ध में ग्रीष्म ऋतु और उत्तरी गोलार्द्ध में सर्दी की ऋतु होती है।

सितम्बर २३ और मार्च २१ की अवस्थायें—दोनों अवस्थाओं में दोनों ध्रुव सूर्य की ओर समान झुके हुए होते हैं। इस कारण सूर्य की किरणें भूमध्य रेखा पर सीधी लम्ब रूप में पड़ती हैं। इन अवस्थाओं में समस्त भूमण्डल पर रात और दिन बराबर होते हैं। ऋतुयें भी एक जैसी होती हैं। २३ सितम्बर को दक्षिणी गोलार्द्ध में वसन्त ऋतु और उत्तरी में पतझड़ होता है। २१ मार्च को दक्षिणी गोलार्द्ध में पतझड़ और उत्तरी मे वसन्त ऋतु होती है।

प्रश्न ३—भूमध्य रेखा, मैरीडियन और प्राईम मैरीडियन क्या हैं?

उत्तर—(१) भूमध्य रेखा—यह एक कल्पित रेखा है। यह दोनों ध्रुवों से समान दूरी पर मानी गई है। यह पृथ्वी को दो बराबर भागों में विभाजित करती है। यह रेखा ०° अक्षांश मानी जाती है। अक्षांश रेखाओं की गणना यहीं से होती है। २१ मार्च और २३ सितम्बर को दोपहर के समय सूर्य की किरणें यहां लम्ब रूप में पड़ती हैं। यहां वर्ष भर दिन और रात बराबर होते हैं।

(२) **मैरीडियम**—ये कल्पित रेखायें उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों को मिलाती हैं। ये भूमध्य रेखा को लम्ब रूप में काटती हैं। इनमें से प्रत्येक रेखा पर स्थित सभी स्थानों पर दोपहर का समय एक ही साथ होता है, इसीलिए इन्हें मध्यान्ह रेखायें भी कहते हैं।

(३) **प्राईम मैरीडियम**—यह उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव को मिलाने वाली वह रेखा है, जो ग्रिनविच से होकर जाती है। इसको ०° मध्यान्ह रेखा गिनते हैं। यहाँ से मध्यान्ह रेखाओं की गणना की जाती है।

प्रश्न ४—अक्षांश और देशान्तर रेखाओं से क्या तात्पर्य है? इनसे क्या लाभ हैं? (प्रथमा, संवत् २०१६)

उत्तर—भूमध्य रेखा के दोनों ओर (उत्तर तथा दक्षिण में) इसके समानान्तर हुई कल्पित रेखाओं को अक्षांश रेखायें कहते हैं। ये रेखायें पूर्व से पश्चिम की ओर एक-एक अंश के अन्तर पर है। इस प्रकार ६० रेखायें उत्तर में और इतनी ही दक्षिण में हैं। इनसे किसी स्थान के उत्तर और दक्षिणी दूरी नापी जाती है।

जो रेखायें उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव को मिलाती है और भूमध्य रेखा को समकोण पर काटती है, वे देशान्तर रेखायें कहलाती हैं। ये रेखायें भी एक एक अंश की दूरी पर स्थित होती हैं। देशान्तर रेखायें ३६० होती हैं। प्राइम मैरीडियन के १८०° पश्चिम में एक ही रेखा है।

लाभ—(१) इन रेखाओं से किसी भी स्थान की स्थिति का ज्ञान हो जाता है।

(२) अक्षांश के द्वारा किसी भी स्थान की भूमध्य रेखा से मीलों में दूरी ज्ञात हो जाती है।

(३) अक्षांश की सहायता से किसी स्थान के ताप के विषय में जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

(४) इनके द्वारा स्थानीय समय का भी ज्ञान प्राप्त होता है।

(५) ये रेखायें मान चित्रों के बनाने में बहुत सहायक होती हैं।

प्रश्न ५—किसी स्थान के स्थानीय समय और सार्वदेशिक समय में स्पष्टतया अन्तर बताओ। भारत के लिए सार्वदेशिक समय क्या है?

उत्तर—स्थानीय समय—यह समय प्रत्येक स्थान का भिन्न-भिन्न होता है। यह उस स्थान की स्थिति पर निर्भर करता है। किसी स्थान पर सूर्य जिस समय ठीक हमारे सिर के ऊपर होता है अर्थात् दोपहर का समय होता

है, उस समय को हम १२ बजे दोपहर का समय मान कर जो समय की गणना करते हैं; वह समय स्थानीय समय कहलाता है। एक ही मैरीडियन (देशान्तर रेखा) पर स्थित सब स्थानों का स्थानीय समय एक ही होगा।

सार्वदेशिक समय—यह वह समय होता है जो किसी देश या देश के भाग में सब स्थानों पर समान हो, चाहे उनके स्थानीय समय कुछ भी हों।

भारतवर्ष का सार्वदेशिक समय—इलाहाबाद के समीप ग्रीनविच से ८२½° रेखांश पूर्व में स्थित एक स्थान स्थानीय समय को भारतवर्ष के लिए सार्वदेशिक समय माना गया है। इस स्थान का स्थानीय समय ग्रीनविच के समय से ५½ घंटे आगे होता है। इसलिए भारतवर्ष का सार्वदेशिक समय ग्रीनविच के समय से ५½ घंटे आगे रहता है।

प्रश्न ९—निम्नलिखित का संक्षिप्त परिचय दीजिये ;—

चट्टानें, ज्वालामुखी, ग्लेशियर, आइसवर्ग, स्रोत, डेल्टा, साईक्लोन, कोहरा, ओले, ओस, आर्टीजियन कुआं, कैनयन, हिम-रेखा, गेसर्ज।

उत्तर—चट्टानें—वे सभी पदार्थ जिनसे पृथ्वी का आवरण बना हुआ है चाहे वे कठोर हों अथवा कोमल, चट्टान कहलाते हैं। वैसे तो जनसाधारण की भाषा में चट्टान शब्द केवल कठोर आवरण के लिए ही प्रयोग होता है, परन्तु भौगोलिक भाषा में इस शब्द का प्रयोग भूमि के आवरण के लिए ही होता है।

ज्वालामुखी—लावे की पर्तों के एकत्रित होने से बने हुए पर्वत को ज्वालामुखी कहते हैं। ये आकार में शुण्डाकार होते हैं इन पर्वतों के मुंह से गर्म वाष्प, गैस, राख, पत्थर और लावा बाहर निकलते हैं। जापान में फ्यूजीयामा और इटली में विसूवियस संसार के प्रसिद्ध ज्वालामुखी हैं।

ग्लेशियर—यह वर्फ की मंद गति से चलने वाली नदियाँ होती हैं। ये पर्वतों से वर्फ के बड़े-बड़े तोदों को लेकर ढलान की ओर बहती हैं। इनकी गति बहुत ही मंद होती है। वे कई घण्टों में कुछ इंच चल पाती हैं। इनके साथ बहुत से पत्थर भी लुढ़कते चले जाते हैं। गर्म प्रदेशों में पहुंचने पर वर्फ पिघल जाती है और चारों ओर पत्थरों के ढेर लग जाते हैं और झील बन जाती है।

आईसवर्ग—वर्फ के बड़े-बड़े तोदे जो कि समुद्र में तैरते रहते हैं, आईसवर्ग कहलाते हैं। ये प्रायः ग्लेशियरों के उन वर्फानी तोदों से बनते हैं, जो बिना पिघले समु में पहुंच जाते हैं। कभी-कभी तो ये तोदें इतने बड़े होते हैं कि बड़े-बड़े जहाज इनसे टकराकर नष्ट हो जाते हैं।

स्रोत—जिस स्थान से जल स्वयं ही निकलता रहता है उसे स्रोत कहते हैं। वर्षा का जल रिसता-रिसता जब ऐसी चट्टानों की तह में पहुंच जाता है, जहां से वह आगे नहीं जा सकता तो कोमल स्थान पाकर वह कहीं से फूट निकलता है, उसे स्रोत कहते है।

डेल्टा—यह वह त्रिकोणाकार भूमि होती है जो नदी के अन्तिम भाग में उपजाऊ मिट्टी के एकत्रित होने से बनती है। जैसे नील नदी का डेल्टा।

साईक्लोन (चक्रवात)— किसी विशेष भूखण्ड पर गर्मी अथवा वायु का दबाव कम हो जाने से जब चारों ओर का दबाव कम हो जाता है, तब वायु अधिक दबाव से कम दबाव की ओर चलना आरम्भ कर देती है, परन्तु पृथ्वी की गति के कारण यह पवन एक चक्र का रूप धारण कर लेती है। पवनों के ऐसे चक्र को जिसमें भीतर का दबाव कम और बाहर का अधिक होता है, चक्रवात (साईक्लोन कहते हैं)।

कोहरा—गर्म तथा सीली वायु जब ठंडे जल से मिलती है या किसी प्रकार की ठंड होती है, तो वाष्प-कणों का कुछ भाग जल के रूप में परिवर्तित होकर वायु में उड़ते हुए मिट्टी या रेत के कणों पर लटक जाता है, उसे कोहरा कहते है।

ओले—वर्षा का बूंदें जब पृथ्वी की ओर को आती हैं, तो कभी-कभी मार्ग में ऐसे खंड को लांघती है जहां सख्त सर्दी होती है, वहाँ पर वे बूंदें जम कर ओले का रूप ग्रहण कर लेती हैं।

ओस—रात्रि के समय सभी वस्तुएं दिन भर गर्मी को बाहर निकाल कर ठंडी हो जाती है। जब जल-वाष्प से लदी हुई वायु, घास, पत्ते, फल, वृक्ष आदि के ऊपर से गुजरती है, तो वह ठंडी हो जाती है और ठंडी होने पर वायु फिर उतनी मात्रा में जल वाष्प को अपने अन्दर नहीं रख सकती है। परिणाम यह होता है कि जल कणों के रूप में वह वाष्प उन पर लग जाती है। इन्हीं जल कणों को ओस कहते हैं।

आर्टीजियन कुआं—यह भी स्रोत की भांति ही होता है। इसमें से जल फव्वारे की भांति बाहर निकालता रहता है।

कैनयन—नदियो की बहुत गहरी और सीधे खड़े तटों वाली घाटियों को कैनयन कहते हैं।

हिम रेखा—यह वह सीमा है जिससे ऊपर बर्फ सदा जमी रहती है। इस रेखा की ऊंचाई साधारणतया अक्षांश के अनुसार होती है। भूमध्य रेखा पर

इसकी ऊंचाई १८००० फुट के लगभग है। ध्रुवों पर यह समुद्रतल के बराबर है। हिमालय पर्वत पर इसकी ऊंचाई १६००० फुट है।

गेसर्ज़—यह गर्म पानी के स्रोत है। ये थोड़ी-थोड़ी देर के पश्चात् गर्म जल की धारा फव्वारों की भांति गजों ऊपर उछालते हैं।

प्रश्न ७—भूचाल क्या होते हैं? उनके कारण स्पष्टतया वर्णन करो। ये किस स्थान पर अधिकता से अनुभव होते हैं? क्या उनसे कोई लाभ है?

उत्तर—भूचाल—पृथ्वी के किसी भाग के अचानक हिलने को भूचाल कहते हैं। भूचाल क समय प्रायः थरथराहट अनुभव होती है और किड़किड़ का शब्द सुनाई देता है।

कारण—भूचाल आने के कारण निम्नलिखित हैं—

(१) जब कोई सुप्त ज्वालामुखी पर्वत जाग उठता है या किसी जीवित ज्वालामुखी पर्वत से लावा बहुत तेजी से निकलना आरम्भ होता है. उस समय निकटवर्ती स्थानों में हलचल मच जाती है।

(२) जब पृथ्वी के अन्दर का भाग ठंडा होकर सुकड़ता है तो बाहरी आवरण पर इतना दबाव पड़ता है कि उसका कुछ भाग फट जाता है या गिर भी जाता है। इससे भूचाल उत्पन्न होता है।

(३) जब पृथ्वी के अन्दर ठंडा जल नीचे चला जाता है, तो वह गर्मी पा कर भाप बन जाता है और फिर वह फैलना तथा ऊपर निकलना चाहता है। इससे भी भूमि का कुछ भाग हिलने लगता है।

(४) नदियां अपने साथ मिट्टी बहाकर लाती हैं। इससे भूमि-आवरण के उस भाग पर दबाव कम हो जाता है। इससे पृथ्वी का भीतरी ठोस द्रव्य पिघलकर गति प्रारम्भ कर देता है और भूचाल आ जाता है।

भूचाल के प्रदेश—वैसे तो भूचाल समस्त पृथ्वी पर प्रतिदिन कहीं न कहीं आते ही रहते हैं, परन्तु जहां पर ज्वालामुखी होते है या दरारें पड़ने से पृथ्वी ऊंची नीची हो गई है, वहां पर भूचाल अधिक आते रहते हैं। इनके दो बड़े प्रदेश हैं—

(१) **प्रशांत महासागर के गिर्द के प्रदेश**—अमरीका के पश्चिमी तट और एशिया के तट के साथ-साथ का प्रदेश।

(२) **पुरानी दुनिया का भाग**—यह प्रदेश पूर्व से पश्चिम को एशिया से लांघता हुआ रूमसागर के पार चला गया है।

इसके अतिरिक्त भारत, पश्चिमी द्वीप समूह में भी भूचाल आते हैं।

भूचाल का प्रभाव—(१) जन और धन की बहुत हानि होती है। बड़े-बड़े नगर नष्ट हो जाते है।

(२) भूतल में बड़ी-बड़ी दरारें पड़ जाती हैं। आने-जाने के साधन टूट जाते हैं।

(३) कभी-कभी समुद्र में बड़ी-बड़ी लहरें उठती हैं, जो भूमि पर आकर बड़ी हानि करती हैं।

(४) नदियों के मार्ग बदल जाते हैं और उनमें बाढ़ें आ जाती हैं, जिससे खेती वाली भूमि को बहुत हानि पहुंचती है।

लाभ—(१) भूचालों के कारण बहुमूल्य धातुओं की खानें भूतल के पास आ जाती हैं और मनुष्य उनसे लाभ उठा सकते हैं।

(२) बस्तियों के लिए नई धरतियां उत्पन्न हो जाती हैं।

(३) नये स्रोत फूट निकलते हैं।

(४) पृथ्वी पर बड़े-बड़े भूचालों के कारण कई-पहाड़ियां व पर्वत बन गये हैं, जो वर्षा-वाली पवनों को रोक कर वर्षा करने में सहायता करते हैं।

प्रश्न ८—मानसून पवनें क्या हैं और वे किस प्रकार उत्पन्न होती है ? भारतवर्ष पर उनका क्या प्रभाव पड़ता है ? संसार के किन-किन प्रदेशों में ये पवनें चलती हैं ? बताओ अप्रैल और अक्तूबर के महीनों में भारतवर्ष में कैसी ऋतु होती है ?

अथवा

मानसून से आप क्या समझते हैं ? मानसून वाले प्रान्तों की जलवायु की क्या विशेषताएं हैं ? कारण देकर समझाइए। (प्रथमा संवत् २०१७)

उत्तर—मानसून पवनें—मानसून पवनें ऋतु सम्बन्धी पवनें होती हैं। ये ग्रीष्मकाल मे छः महीने समुद्र से स्थल की ओर और शीतकाल में छः महीने स्थल से समुद्र की ओर चलती हैं। इनके चलने का कारण भमि और समुद्र पर वायु के दबाव का अन्तर है।

ग्रीष्म ऋतु की मानसून पवनें—ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की किरणें कर्क रेखा पर प्रायः सीधी पड़ती हैं। इससे भारतवर्ष, हिन्द-चीन और चीन के मैदान के रेखा के पास होने के कारण बहुत गर्म हो जाते हैं। इनके ऊपर की हवा गर्म होकर हल्की हो जाती है और ऊपर को उठती है। इस समय भारत के दक्षिणी महासागर पर सूर्य की किरणें तिरछी पड़ती हैं और वे समुद्र को मैदानी भाग की अपेक्षा कम गर्म कर पाती हैं। इस कारण समुद्र के ऊपर

की हवा ठण्डी रहती है और यह हवा मैदानी भाग की ओर रिक्त स्थान की पूर्ति करने के लिए चलती है। दैनिक गति के कारण भारत को चलने वाली पवन की दिशा भूमध्य रेखा को पार करने के पश्चात् दक्षिण-पश्चिम हो जाती है। इसे ग्रीष्म ऋतु की दक्षिण-पश्चिमी मानसून कहते हैं। परन्तु चीन के देश पर पवन की दिशा दक्षिण-पूर्वी होती है। ये पवनें मई से अक्तूबर तक चलती हैं। समुद्र से आने के कारण ये पवनें वर्षा लाती हैं।

शीतकाल की मानसून पवनें—शीतकाल में सूर्य की किरणें भारतवर्ष और चीन के मैदानों में तिरछी पड़ती हैं, इसलिए यह प्रदेश ठण्डा रहता है। शीत पड़ने के कारण वहाँ की हवा भी ठण्डी और भारी होती है। परन्तु इन दिनों में हिन्द महासागर पर सूर्य की किरणें लम्ब रूप से पड़ती हैं और समुद्र मैदानी भाग की अपेक्षा अधिक गर्म हो जाता है और हवा हल्की होकर ऊपर को उठती है। इसके रिक्त स्थान की पूर्ति करने के लिए मैदान की ओर से समुद्र की ओर हवा चलती है। इसे शीतकाल की उत्तर-पूर्वी मानसून कहते हैं। ये पवनें नवम्बर से अप्रैल तक चलती हैं। भूमध्य रेखा को पार करने के पश्चात् पृथ्वी की दैनिक गति के कारण इनकी दिशा उत्तर-पश्चिमी हो जाती है और आस्ट्रेलिया में ये उत्तर-पश्चिम मानसून पवनों के नाम से चलती हैं, परन्तु वहाँ पर ये ग्रीष्म ऋतु की मानसून होती हैं।

मानसून पवनों का प्रभाव—ग्रीष्म काल की मानसून पवनें हिन्द महासागर से चलकर भारतवर्ष के पर्वतों से टकराकर बहुत वर्षा करती हैं। भारतवर्ष में ९० प्रतिशत वर्षा इन्हीं पवनों से होती है। इन्हीं पवनों पर ही भारतवर्ष की वन-सम्पत्ति निर्भर है। इन पवनों के ठीक समय पर न चलने पर भारतवर्ष में दुर्भिक्ष पड़ने का भय उत्पन्न हो जाता है। शीतकाल की मानसून पवनें स्थल से आती हैं, इसलिए ये वर्षा नहीं लाती हैं। परन्तु समुद्र के पूर्वी तट पर पहुँचने के पूर्व ये पवनें बंगाल की खाड़ी को पार करती हैं और अपने साथ जल ले आती हैं और वहां पर इस ऋतु में अच्छी वर्षा होती है। वहां पर ये ग्रीष्म ऋतु की मानसून पवनें कहलाती हैं।

मानसून पवनों वाले देश—मानसून पवनें उष्ण कटिबन्ध अथवा उसके समीप के उन देशों में चलती हैं जिनके पास विशाल समुद्र है। ये पवनें अधिकतर (१) दक्षिण-पूर्वी एशिया अर्थात् भारत, लंका, ब्रह्मा, हिंद-चीन, जापान, (२) उत्तर-पश्चिमी आस्ट्रेलिया, क्वीनज़लैंड, (३) गिनी और मेडेगास्कर, (४) मैक्सिको की खाड़ी के साथ-साथ वर्षा करती हैं। भारत-

वर्ष में इनका विशेष प्रभाव होता है।

अप्रैल तथा अक्तूबर में ऋतु—अप्रैल और अक्तूबर के महीनों में मानसून पवनें अपनी दिशा बदलती हैं। इस कारण प्रायः झक्कड़ और आंधियां आती हैं। कभी-कभी इन दिनों में वर्षा भी हो जाती है। ऋतु बहुत देर तक एक जैसी नहीं रहती, प्रायः बदलती रहती है। बंगाल और आसाम में तूफान आते हैं और उत्तर-पश्चिमी भारत में आंधियाँ आती हैं।

प्रश्न ९—समुद्री धारा से आप क्या समझते हैं ? समुद्री धारा के क्या कारण हैं ? संसार की प्रमुख धाराओं का परिचय देते हुए लिखिये कि उनका किसी देश के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

(प्रथमा, सं० २०१७, २०१९)

उत्तर—समुद्री धारायें—यह धारायें समुद्रों के भीतर गर्म अथवा सर्द जल की बहती हुई एक प्रकार की नदियां होती हैं। जो स्थल की नदियों की अपेक्षा अति अधिक चौड़ी और गहरी होती हैं। इनके किनारे तथा बहाव स्थान प्रायः खड़े पानी के बने होते है। समुद्री गतियों में ये सबसे उपयोगी हैं।

धाराओं के उत्पन्न होने के कारण निम्नलिखित हैं:—

(१) **स्थायी पवनें**—ये पवनें एक ही दिशा में चलने के कारण समुद्र के जल को भी अपनी दिशा में बहाकर ले जाती हैं और इस प्रकार धाराएं उत्पन्न हो जाती हैं। यथा दक्षिणी भूमध्य रेखाओं की धाराये व्यापारिक पवनों के प्रभावाधीन सदा पूर्व से पश्चिम को बहती हैं और खाड़ी की धारा तथा जापान की क्यूरोसिवो धारा पश्चिमी पवनो के प्रभावाधीन सदा दक्षिण-पश्चिम से उत्तर-पूर्व को बहती हैं। पवनों और धाराओं का पारस्परिक सम्बन्ध हिन्द-महासागर की धाराओं से भली भांति स्पष्ट हो जाता है। इस सागर में जब पवनों की दिशा गर्मियों और सर्दियों में बदल जाती है तो धाराओं की दिशा भी बदल जाती है।

(२) **असम ताप**—भूमध्य रेखा के समीप समुद्र का जल गर्म और ध्रुवों के समीप ठण्डा होता है। गर्म जल हल्का और ठण्डा जल अपेक्षया भारी होता है। इसलिए भूमध्य रेखा के समीप का गर्म जल हल्का होने के कारण तल के ऊपर ही ऊपर ध्रुवों की ओर जाता है और ध्रुवों का ठण्डा जल भारी होने के कारण नीचे ही नीचे भूमध्य रेखा की ओर आता है। इस प्रकार धाराओं का एक चक्कर स्थापित हो जाता है।

(३) **न्यूनाधिक वाष्पक्रिया**—कई स्थानीय धारायें दो साथ के समुद्रों मे

जल की न्यूनाधिकता के कारण उत्पन्न हो जाती हैं। उदाहरणतया रूमसागर में वाष्पक्रिया अधिक होने के कारण जल थोड़ा रह जाता है। इसलिए अन्ध-महासागर में से जल की धारा रूमसागर में आती है। इसके प्रतिकूल बाल-टिक सागर में वाष्पक्रिया कम होती है और वहां से जल की एक धारा उत्तरी सागर में जाती रहती है।

धाराओं की शृंखलाएं—धाराओं की तीन बड़ी शृंखलाएं हैं:—

(१) अन्ध महासागर की धाराएं।

(२) शान्त महासागर की धाराएं।

(३) हिन्द महासागर की धाराएं।

अन्ध महासागर की धाराएं—अन्ध महासागर की आठ बड़ी-बड़ी धाराए हैं। चार भूमध्य रेखा के दक्षिण में और चार भूमध्य रेखा के उत्तर में।

(१) **दक्षिणी हिन्द महासागर की धारा**—यह बहुत ठण्डे जल की धारा है और दक्षिणी हिन्द महासागर में पृथ्वी के चारों ओर पश्चिम से पूर्व को बहती है। यह धारा अन्ध महासागर, शान्त महासागर तथा हिन्द महासागर की साझी धारा है।

(२) **बंगेला की धारा**—यह ठण्डे जल की धारा है और दक्षिणी हिन्द महासागर की धारा से ही निकलती है और दक्षिणी अफ्रीका के पश्चिमी तट के साथ-साथ दक्षिण से उत्तर को जाती है।

(३) **भूमध्य-रेखा की दक्षिणी धारा**—यह गर्म पानी की धारा है और भूमध्य रेखा के दक्षिण में व्यापारिक पवनों के प्रभाव से पूर्व से पश्चिम को बहती है। फिर दक्षिण अफ्रीका के उत्तरी पूर्वी कोने में अन्तरीप से टकरा कर इसके दो भाग हो जाते हैं। एक भाग उत्तरी धारा में जा मिलता है और दूसरा भाग ब्राजील की गर्म धारा बन जाता है।

(४) **ब्राजील की धारा**—यह गर्म जल की धारा है और ब्राजील के पूर्वी तट के साथ-साथ उत्तर से दक्षिण को बहती है और फिर दक्षिण हिन्दसागर की धारा में मिल जाती है।

(५) **भूमध्य रेखा की उत्तरी धारा**—यह गर्म पानी की धारा है और भूमध्य रेखा के उत्तर में व्यापारिक पवनों के प्रभावाधीन पूर्व से पश्चिम को बहती है और फिर मैक्सिको की खाड़ी में प्रवेश करती है और वहां से खाड़ी की धारा बनकर निकलती है।

(६) **खाड़ी की धारा**—यह गर्म पानी की धारा है और भूमध्य रेखा की

उत्तरी धारा की शाखा है। खाड़ी मैक्सिको में से निकलने के पश्चात् इसका नाम खाड़ी की धारा हो जाता है। पहले पहल यह उत्तरी अमरीका के पूर्वी तट के समानान्तर उत्तर को बहती है इसकी गति कोई चार पांच मील प्रति घण्टा है। न्यूफाउण्डलैंड के समीप इसमें लैब्रेडोर की ठण्डी धारा आ मिलती है और वहां खाड़ी की धारा के ऊपर की गर्म आद्रवायु लैब्रेडोर के ऊपर की सर्द वायु से टकराती है। इसलिए बहुत धून्ध उत्पन्न हो जाती है। यह धारा पश्चिमी पवनों के प्रभावाधीन उत्तर पूर्व को मुड़कर ब्रिटिश द्वीपसमूह और नार्वे देश के पास बहती है। यहां पहुच कर इसकी गति मन्द हो जाती है। नार्वे से कुछ दूर जाकर यह समाप्त हो जाती है।

प्रभाव—यह धारा अन्ध महासागर की प्रसिद्धतम धारा है और अपने साथ गर्मी की बड़ी मात्रा ले जाती है। इस धारा के कारण उत्तरी अमरीका के पूर्वी तट का निचला आधा भाग गर्म रहता है जिससे उत्तरी भागों के धनाढ्य लोग सर्दियां व्यतीत करने के लिए यहां आ जाते है।

इस धारा का पश्चिमी यूरोप की जलवायु पर विशेष प्रभाव पड़ता है। एक तो पश्चिमी पवने जो इसके ऊपर से लांघती हैं, अपने साथ बहुत सी गर्मी ले जाती है और पश्चिमी योरुप के देशों में विशेष कर ब्रिटेन तथा नार्वे में शीत की कठोरता कम हो जाती है और वहां के निवासी सारा वर्ष पर्याप्त परिश्रम कर सकते हैं। दूसरे इन देशों के बन्दरगाह भी सारे वर्ष खुले रहते हैं। जिससे व्यापार सारे वर्ष हो सकता है। तीसरे इस गर्म धारा के ऊपर से लांघने के कारण पश्चिमी पवनें अधिक जल चूस लेती हैं और जब वे पश्चिमी योरुप के पर्वतों से टकराती हैं तो वर्षा भी पर्याप्त करती है। सच तो यह है कि यह धारा पश्चिमी योरुप की जान है।

(७) केनरी की धारा—यह थोड़े ठण्डे पानी की धारा है। जो खाड़ी की धारा से पृथक् होकर पुर्तगाल के पश्चिमी और अफ्रीका के उत्तरी पश्चिमी तट के पास से लांघ कर द्वीपसमूह केनरी के साथ-साथ बहती हुई भूमध्य सागर की धारा में मिल जाती है।

(८) लैब्रेडोर की धारा—यह ठण्डे पानी की धारा है और उत्तरी अमरीका के देश लैब्रेडोर के तट के साथ दक्षिण को बहती हुई न्यूफाउन्डलैंड के समीप खाड़ी की धारा मे मिल जाती है। यह अपने साथ हिम के बड़े-बड़े तोदे ले जाती है जो कई अवसरों पर जहाजों को बड़ी हानि पहुंचाते हैं।

इस धारा के प्रभाव से लैब्रेडोर का प्रदेश वर्ष के अधिक भाग मे

हिमाच्छत रहता है। जिससे वहां उपज वहुत कम होती है। इसके अतिरिक्त सैन्टलारेन्स नदी सर्दियों में जम जाती है और उसके मार्ग से व्यापार नहीं हो सकता। इस भाग के बन्दरगाह भी सर्दियों में वर्फ से ढके रहते हैं।

शान्त महासागर की धाराएं—शान्त महासागर की धाराएं लगभग वैसी ही हैं जैसी अन्ध महासागर की धाराएं हैं।

(१) दक्षिणी हिम महासागर की धारा – यह अति ठण्डे जल की धारा है और दक्षिणी हिम महासागर के समीप पृथ्वी के इर्द-गिर्द पश्चिम से पूर्व को बहती है।

(२) हम्बोलट अथवा पीस की धारा—यह ठण्डे पानी की धारा है और दक्षिणी हिम महासागर की धारा से निकलती है और दक्षिणी अमरीका के पश्चिमी तट के साथ-साथ दक्षिण से उत्तर को बहती है।

(३) भूमध्य की दक्षिणी धारा—यह गर्म पानी की धारा है और भूमध्य-रेखा के दक्षिण में व्यापारी पवनों के प्रभावाधीन पूर्व से पश्चिम को बहती है।

(४) न्यू साउथ वेल्ज की धारा—यह गर्म जल की धारा है और आस्ट्रेलिया के पूर्वी तट के साथ-साथ उत्तर से दक्षिण को बहती हुई दक्षिणी हिम महासागर की धारा में जा गिरती है। इसे पूर्वी आस्ट्रेलिया की धारा भी कहते हैं।

(५) भूमध्य रेखा की उत्तरी धारा—यह गर्म पानी की धारा है और भूमध्य रेखा के उत्तर में व्यापारी पवनों के प्रभावाधीन पूर्व से पश्चिम को बहती है।

क्योरोसीवो अथवा जापान की धारा—यह गर्म पानी की धारा है और भमध्य-रेखा के उत्तरी धारा की एक शाखा है। यह उत्तर की ओर बहती हुई जापान के पास से लांघती है जहां इसमें क्यूराईल की ठण्डी धारा आ मिलती है और वड़ी धुन्ध उत्पन्न होती है। फिर यह धारा पश्चिमी पवनों क प्रभावाधीन उत्तर पूर्व को मुड़कर उत्तरी अमेरिका के प्रान्त ब्रिटिश कोलम्बिया तक जा पहुचती है। यह धारा खाड़ी की धारा के समान है। इस धारा के कारण जापान के दक्षिण-पूर्वी भाग में और उत्तरी अमेरिका के पश्चिमी भाग में सर्दी कम हो जाती है और वर्षा भी पर्याप्त होती है।

कैलेफोर्निया की धारा—यह ठण्डे जल की धारा है और कैलेफोर्निया, मैक्सिको के पश्चिमी तट के साथ-साथ दक्षिण को बहती है और भूमध्य-रेखा की उत्तरी धारा में मिल जाती है।

क्यूराईन की धारा—यह ठण्डे पानी की धारा है। बैरिंग जलडमरूमध्य से आरम्भ होकर दक्षिण को बहती हुई द्वापसमूह क्यूराईल के पास से लांघती हुई जापान की गर्म धारा में मिल जाती है।

हिन्द महासागर की धाराएं—(१) दक्षिणी हिम महासागर की धारा—यह ठण्डे पानी की धारा है और दक्षिणी हिम महासागर के समीप पृथ्वी के चारों ओर पश्चिम से पूर्व को बहती है।

(२) पश्चिमी आस्ट्रेलिया की धारा—यह ठण्डे पानी की धारा है और आस्ट्रेलिया के पश्चिम तट के साथ-साथ दक्षिण से उत्तर की ओर बहती है।

(३) भूमध्यरेखा की दक्षिणी धारा—यह गर्म पानी की धारा है और भूमध्यरेखा के दक्षिण में व्यापारिक पवनों के प्रभावाधीन पूर्व से पश्चिम को बहती है।

(४) मोजम्बीक धारा—यह गर्म पानी की धारा है और भूमध्य रेखा की ही एक धारा है। यह दक्षिणी अफ्रीका के पूर्वी तट के साथ-साथ दक्षिण की ओर बहती है। फिर यह धारा दो शाखाओं मे बंट जाती है। एक शाखा मैडेगास्कर द्वीप के पूर्व में और दूसरी पश्चिम में बहती है। आगे चलकर यह दोनों शाखाएं मिल जाती हैं और इसका नाम अगुल धारा पड़ जाता है।

हिन्द महासागर की परिवर्तनशील धाराए

हिन्द महा सागर में भूमध्य रेखा के उत्तर में धाराएं मानसून पवनों के प्रभाव से अपनी दिशा परिवर्तन करती हैं। गर्मियों में दक्षिण-पश्चिमी मानसून पवनें चलती हैं तो दक्षिणी-पश्चिमी मानसून धारा पूर्व को बहती है और सर्दियों में उत्तर-पूर्वी मानसून चलती है तो उत्तर-पूर्वी मानसून धारा पश्चिम को बहती है।

सामुद्रिक धाराओं का जलवायु पर प्रभाव निम्नलिखित है—

(१) **तापांशों की न्यूनाधिकता** :—गर्म पानी की धारा समुद्र तट के समीपस्थ प्रदेश के तापांश को बढ़ा देती है और ठण्डे पानी की धाराएं तापांश को घटा देती है। इसका कारण यह है कि इन धाराओं के ऊपर से चलने वाली पवनें अपने साथ गर्मी या सर्दी ले जाती है।

उदाहरण—(i) ब्रिटिश द्वीप समूह और लैब्रेडोर प्रायः एक ही अक्षांश रेखाओं मे स्थित है। परन्तु लैब्रेडोर ठण्डी धारा के कारण वर्ष में भी नौ मांस तक हिमाच्छादित रहता है, जबकि ब्रिटिश द्वीप समूह का जलवायु

खाड़ी की गर्म धारा के कारण सुहावना है।

(ii) आस्ट्रेलिया दक्षिणी अफ्रीका और दक्षिणी अमेरिका के पूर्वी तट पश्चिमी तटों की अपेक्षा अधिक गर्म हैं, क्योंकि पूर्वी तटों के पास से गर्म धाराएं लाँघती है और पश्चिमी तटों के पास से ठण्डी धाराएं।

(२) **वर्षा में न्यूनाधिकता**—जिन देशों के पास से गर्म धाराएं लांघती हैं। वहाँ अधिक वर्षा होती है। परन्तु जिन देशों के पास से ठंडी धाराएं लांघती है वहां वर्षा वहुत थोड़ी होती है। इसका कारण यह है कि गर्म धाराओं के ऊपर लांघने वाली पवनें गर्म होकर अधिक जल चूस लेती हैं और वर्षा भी वहुत होती है। परन्तु वायु के ऊपर से गुजरने से चलने वाली पवनें ठंडी होने के कारण अधिक जल नहीं चूस सकतीं इसलिए वर्षा थोड़ी होती है।

उदाहरण—(i) पश्चिम योरोप में खाड़ी की गर्म धारा के कारण वर्षा अधिक होती है। (ii) दक्षिणी पश्चिमी अफ्रीका के तट पर बंगला की ठंडी धारा के कारण वर्षा वहुत थोड़ी होती है।

(३) **धुन्ध की उत्पत्ति**—जहाँ गर्म धारा के ऊपर की गर्म आर्द्र वायु सर्द धारा के उपर की सर्द वायु से मिलती है वहाँ धुन्ध उत्पन्न होती है।

उदाहरण—(i) न्यूफाउण्डलैंड के पास खाड़ी की गर्म धारा और लैब्रेडोर की ठंडी धारा के ऊपर की वायु के मिलने से धुन्ध उत्पन्न होती है।

(ii) जापान के समीप गर्म क्यूरोसीवो और ठडी क्यूराईल धाराओं के ऊपर की वायु के मिलने से धुन्ध उत्पन्न हो जाती है।

(४) **झक्कडों का आना**—ठंडी और गर्म धाराओं के चलने से वायु मे वड़ी अदला वदली हो जाती है। ठंडी वायु वड़े वेग स गर्म वायु का स्थान लेना चाहती है। जिससे तीव्र आँधियाँ और वड़े-वड़े झक्कड़ आते हैं।

उदाहरण—(i) न्यूफाउंडलैंड के समीप वड़ी आंधियां आती हैं।

(ii) जापान के पास वड़े-वड़े झक्कड़ आते हैं।

समुद्री धाराओं का व्यापार पर प्रभाव निम्नलिखित है :—

(१) **वन्दरगाहों का खुला रहना**—गर्म धाराओं के कारण ठडे देशों के बन्दरगाह जमने नहीं पाते जिससे व्यापार सारे वर्ष होता रहता है। तथा खाड़ी की गर्म धारा के कारण व्रिटिश द्वीप समूह तथा नार्वे के वन्दरगाह वर्ष भर खुले रहते हैं। परन्तु सर्द धारा के कारण ठंडे देशों के वन्दरगाह जम जाते हैं। जैसे लैब्रेडोर की वन्दरगाह।

(२) **मछलियों के व्यापार पर प्रभाव**--सर्वोत्तम मछलियाँ ठंडे जल में

रहती हैं। परन्तु जब ठंडे पानी की धारायें गर्म प्रदेशों को जाती हैं तो मछलियां भी साथ ले आती हैं और गर्म प्रदेशों के लोग भी मछलियों का व्यापार कर सकते हैं।

(३) **समुद्र के जल की स्वच्छता**—धाराओं के कारण समुद्र का जल हिलता रहता है इसलिए शुद्ध और स्वच्छ रहता है।

(४) **जहाज चलने पर प्रभाव**—धारायें बादबानी जहाजों के चलने में या तो सहायता देती हैं या रुकावट डालती है। यदि जहाजों को धाराओं की दिशा में चलाया जाए तो उनकी चाल तीव्र हो जाती है परन्तु यदि ये जहाज धाराओं की दिशा के विरुद्ध जायें तो घट जाती है परन्तु आजकल के वाष्पी जहाजों की गति पर धाराओं का कोई विशेष प्रभाव नहीं होगा।

(५) **गर्म और ठण्डी धाराओं के मिलने से**—जो धुन्ध उत्पन्न होती हैं वह जहाजों के आवागमन में बाधा डालती हैं और कई बार हिम के बड़े-बड़े तोदे जो ठंडी धाराओं के साथ बहकर आते हैं बड़े भयंकर सिद्ध होते हैं। १९१२ ई० में अंग्रेजी जहाज टाईटैनिक जो उस समय संसार का सबसे बड़ा जहाज था, न्यूफाउण्ड लैंड के समीप के नष्ट हो गया और कोई १५ यात्री डूब गये थे।

प्रश्न १०—ज्वारभाटा किसे कहते हैं ? उसके कारण तथा लाभ लिखिए। यह भी बताइए कि जहाजों के चलाने में इससे किस प्रकार सहायता होती है।

उत्तर—समुद्र के जल के २४ घंटे में दो बार उतार तथा चढ़ाव को ज्वार भाटा कहते है।

कारण—चन्द्रमा में आकर्षण शक्ति है और इसी आकर्षण शक्ति से ज्वार भाटा उत्पन्न होता है। चन्द्रमा पृथ्वी के समीप है और वह अपनी आकर्षण शक्ति से समुद्र के पानी को अपनी ओर खींचता है जिससे ज्वार भाटा उत्पन्न होता है। वैसे तो सूर्य भी अपनी ओर समुद्र का पानी खींचता है परन्तु इसका प्रभाव तब अधिक होता है जब चन्द्रमा पृथ्वी और सूर्य के बीच मे होता है। यह ज्वार सबसे बड़ा ज्वार होता है। इसके विपरीत जब पृथ्वी चन्द्रमा और सूर्य के बीच में होती है तब ज्वार कम उठता है क्योंकि दोनों अपनी ओर पानी खीचते है। इस प्रकार अधिक ज्वार नही उठता है।

लाभ—(१) ज्वार भाटा नदियों द्वारा लाई गई और मुहाने पर एकत्रित की गई मिट्टी को बहाकर ले जाते है जिससे बन्दरगाह पर जहाज आसानी से खड़े हो सकते है और नदियों के अन्दर भी जा सकते हैं क्योंकि मुहाने हरदम

खुले रहते है।

(२) ज्वार भाटे के कारण समुद्र का जल जमने नहीं पाता है क्योंकि वह हिलता रहता है।

(३) समुद्र की बहुत सी चीजे ज्वार के समय ऊपर आ जाती हैं।

(४) ज्वार भाटे की तरंग नगर के कूड़ा-करकट को बहाकर ले जाती हैं जो तट पर पड़ा रहता है।

(५) जिन बन्दरगाहों से पास पानी की गहराई कम होती है वहाँ ज्वार के समय पानी की गहराई बढ जाती है जिससे जहाज वहाँ आ सकत है और माल आदि उतार चढ़ा सकते है। वैसे माल को दूर से लाना पड़ता है क्योंकि बड़े जहाज वहाँ तक नहीं आ सकते। मद्रास इसका एक उदाहरण है।

प्रश्न ११—संसार में अधिक वर्षा और कम वर्षा वाले देशों का नाम और उनका वर्णन कीजिए।

उत्तर—(१) संसार में सबसे अधिक वर्षा वाले प्रदेश निम्नलिखित है—

(क) कॉंगो की घाटी, अमेजन की वाटी और द्वीपसमूह मलाया।

कारण—ये प्रदेश भूमध्यरेखा के निकट है और यहां पर किरणें साल भर लवरूप मे पड़ती है जिससे वाष्प क्रिया ज्यादा होती है। जब पानी भाप बनकर ऊचा उठता है तब प्रत्येक ३०० फीट की ऊंचाई पर १० तापमान गिर जाता है जिससे ज्यादा ऊचाई पर पहुंचने पर ये बादल ठंडे हो जाते है और वही पर वर्षा कर देते है।

(ख) पश्चिमी घाट, हिमालय पर्वत का निचला भाग, ब्रह्मा, हिन्दचीन, पूर्वीचीन, खासी की पहाड़ियां।

कारण—यहा पर अधिक वर्षा मानसून द्वारा होती है। ये मानसून बंगाल की खाड़ी और अरब सागर से उठते है और भारतवर्ष की तरफ आते है। अरब सागर के मानसून का काफी भाग पश्चिमी घाट पर बारिश कर देता है और अब वे इन्हें पार कर लेते हैं तो सीधे हिमालय पहुच जाते है क्योंकि इन्हें रोकने के लिए कोई बीच में पर्वत नही है और वहा पर बारिश कर देते है। इसी प्रकार बगाल की खाड़ी वाले मानसून ब्रह्मा और बगाल और आसाम में काफी बारिश कर देत है और इनका रुख पश्चिम की तरफ हो जाता है जिससे हिमालय के निचले भागों में भी पर्याप्त वर्षा हो जाती है।

(ग) बर्तानिया, कैनाडा का पश्चिम तट, नार्वे, सयुक्तराष्ट अमेरिका, दक्षिणी चिली, न्यूजीलैंड।

कारण—इन प्रदेशों में पश्चिमी पवनें पर्वतों से टकराकर वर्षा करती हैं।

(घ) नेंटाल, पूर्वी ब्राजील, फ्लोरिंग, पूर्वी क्वीन्जलैंड इत्यादि।

कारण—यहाँ पर व्यापारिक पवनों के चलने से वर्षा होती है।

(२) संसार में कम वर्षा वाले प्रदेश निम्नलिखित है :—

(क) दक्षिण कैनेफोर्निया, अरब, ईरानी, राजपूताना, सिन्ध, महामरुस्थल।

कारण—यह प्रदेश कर्क रेखा पर स्थित है। यहाँ छः मास वायु ऊपर के ठंडे खण्डों से नीचे के गर्म खंडों में उतरती है जिससे द्रवीभवन की क्रिया नहीं होती है। और यहां पर व्यापारिक पवनें अपने साथ कोई वर्षा नही लाती है। जो थोड़ी बहुत सील होती भी है,वह भी पूर्वी भागों में ही बरस जाती हैं।

(ख) कालाहारी, पश्चिमी आस्ट्रेलिया, एटाकामा।

कारण—ये प्रदेश मकर रेखा पर स्थित हैं। इनमें भी पूर्व की सी स्थिति है।

(ग) तिब्बत, गोबी (मरुस्थल), पेटेगोनिया, साल्टलेक का प्रदेश, तुर्किस्तान।

कारण—ये प्रदेश ऊंचे पहाड़ोंके पीछे आए हुए हैं जिससे वर्षा पहाड़ों पर ही हो जाती है और हवाएं यहां तक पहुंचते-पहुंचते शुष्क हो जाती हैं।

(घ) टुण्ड्रा का मैदान।

कारण—यहां पर ठण्ड अधिक पड़ती है। जिससे वाष्प क्रिया बहुत कम होती है। जब वाष्प क्रिया नहीं होती है तब वर्षा होने का सवाल ही नहीं उठता है क्योंकि वर्षा वहां होती है जहां वाष्प क्रिया होती है।

इसी प्रकार हमको मालूम पड़ता है कि संसार के कौन से अधिक और कौन से कम वर्षा वाले भाग हैं।

प्रश्न १२—जलवायु से क्या अभिप्राय है? वे कौन सी बड़ी-बड़ी बातें हैं जिन पर किसी स्थान का जलवायु निर्भर होता है?

उत्तर—किसी स्थान को जलवायु से यह तात्पर्य है कि वह स्थान किस मात्रा में गर्म, सर्द, शुष्क या सीला है। वहां पर कितनी वर्षा होती है। किसी स्थान का जलवायु निम्नलिखित बातों पर निर्भर करता है—

(१) **भूमध्यरेखा से दूरी**—जो स्थान भूमध्य रेखा से जितना पास में होगा, वहाँ पर उतनी ही अधिक गर्मी पड़ेगी और जितना अधिक दूर होगा उतनी ही अधिक ठंड पड़ेगी। इसका कारण यह है कि भूमध्य रेखा पर सूर्य

की किरणें वर्ष भर लम्ब रूप में पड़ती हैं। वे किरणें ज्यों-ज्यों ध्रुवों की ओर को जाती हैं, उतनी ही इनकी तीव्रता कम होती जाती है।

(२) **समुद्रतल से उस स्थान की ऊंचाई**—जो स्थान समुद्रतल से जितना अधिक ऊंचा होगा, वह उतना ही अधिक ठण्डा होगा। कारण यह कि पर्वतीय प्रदेशों में धूल के कण हवा में न होने के कारण हवा गर्मी को अपने अन्दर नहीं रख सकती है।

(३) **समुद्र से दूरी**—स्थल जल की अपेक्षा अधिक और शीघ्र ही गर्म तथा शीघ्र ही ठण्डा हो जाता है। इसलिए समुद्र के समीप के स्थानों की जलवायु पर समुद्र की निकटता का प्रभाव पड़ता है। गर्मी में समुद्र का जल अधिक गर्म नहीं होने पाता है और सर्दी में अधिक ठण्डा। इस कारण उन स्थानों की जलवायु समशीतोष्ण रहती है अर्थात् न वहां पर अधिक गर्मी पड़ती है और न अधिक ठण्ड।

(४) **समुद्र की धाराओं का प्रभाव**—समुद्र की धारायें तटवर्ती प्रदेशों की जलवायु को प्रभावित करती है। यदि किसी देश के पास से गर्म जल की धारा चलती हो, तो उसका जलवायु भी साधारण की अपेक्षा गर्म और यदि ठण्डे जल की धारा चलती हो, तो वहां का जलवायु साधारण की अपेक्षा ठण्डा होगा। गर्म धारा के ऊपर से जाने वाली हवायें भी गर्म हो जाती है और वे अधिक जल सोख सकती हैं। इस कारण गर्म जलधारा के निकटवर्ती प्रदेशों मे वर्षा भी पर्याप्त होती है। इसका जलवायु पर विशेष प्रभाव पड़ता है।

(५) **पवनें**—किसी भी स्थान की जलवायु पर उसके ऊपर से होकर गुजरने वाली पवनों का भी प्रभाव पड़ता है। यदि वायु गर्म होगी तो वह प्रदेश गर्म रहेगा और यदि वायु ठण्डी होगी तो वहाँ स्थान ठण्डा रहेगा। यदि वायु में वर्षा के कण होंगे, तो वह प्रदेश नमीदार बन जायेगा और यदि वायु खुश्क होगी तो वहां का जलवायु भी खुश्क होगा।

(६) **पर्वतों की दिशा**—पर्वतों की दिशा का भी किसी प्रदेश की जलवायु पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। यदि पर्वत वायु की दिशा में ही फैले हुए होंगे, तो वायु बिना वर्षा लिये ही वहां से गुजर जायेगी। यदि पर्वत वायु के मार्ग में बाधा बनेंगे, तो वायु उनसे टकराकर वर्षा करेगा।

(७) **मिट्टी का प्रकार**—रेत बहुत ही शीघ्र गर्म तथा शीघ्र ही ठण्डा होती है। यही कारण है कि रेतीले स्थानों के दिन-रात के तापांशों में बहुत अन्तर होता है। संसार के मरुस्थलों की यही स्थिति पाई जाती है।

(८) **वनों का होना**—वन जल के गुप्त भंडार होते हैं। यही कारण है कि वहां पर वाष्पीक्रिया अधिक होती है। ठण्डे होने के कारण वहां पर द्रवीकरण की क्रिया भी अधिक होती है। यही कारण है कि उन प्रदेशों में पर्याप्त वर्षा होती है।

(९) **देश का ढलान**—यदि किसी देश का ढलान सूर्य से परली तरफ होता है, वहां पर सूर्य की किरणें तिरछी पड़ती हैं और वहां की जलवायु सर्द हो जाती है। यदि स्थिति इसके विपरीत होती है, तो जलवायु गर्म होता है।

प्रश्न १३—पृथ्वी पर ताप की असमानता के क्या कारण हैं ?

उत्तर—उत्तर के लिए प्रश्न (१२) को पढ़िये।

प्रश्न १४—संसार के जलवायु की दृष्टि से कौन.कौन से बड़े खंड हैं ? प्रत्येक के जलवायु का वर्णन करो।

उत्तर—जलवायु की दृष्टि से संसार को निम्नलिखित बड़े-बड़े खंडों में विभक्त किया जा सकता है।

(१) भूमध्यरेखा के जलवायु का खंड—यह खण्ड भूमध्यरेखा के दोनों ओर ५° उत्तर और ५° दक्षिण के बीच में फैला हुआ है। इस खड में सूर्य साल भर लम्ब रूप में रहता है जिससे वहां पर साल भर गर्मी रहती है। गर्मी ज्यादा पड़ने से वाष्प क्रिया होती है। पानी भाप बनकर जब ऊपर उठता है तब वह ठण्डक पाकर वापस बरस पड़ता है जिससे यहां पर साल भर वर्षा होती है। यहां मार्च और सितम्बर में ज्यादा वर्षा होती है क्योंकि इन दिनों में सूर्य भूमध्यरेखा पर होता है। वर्षा का वार्षिक माध्यम ४०″ और तापक्रम लगभग ४०° होता है। यहां सर्दी नहीं पड़ती है। इस खंड का जलवायु सारे वर्ष गर्म और आर्द्र रहता है। यह जलवायु अमेजन की घाटी, कांगो की घाटी, लंका का कुछ भाग, गिनी तट, इडोनेशिया और मलाया प्रायद्वीप में पाई जाती है।

(२) **सूडान जैसे जलवायु का खंड**—यह खंड भूमध्य रेखा के दोनों ओर ५° उत्तर से लेकर कर्क रेखा तक और और ५° दक्षिण से लेकर मकर रेखा तक फैला हुआ है। उष्ण कटिबन्ध में होने के कारण यहां तापमान सारे वर्ष ही पर्याप्त रहता है। गर्मियों का तापक्रम ८०° से ऊपर और शीतकाल का लगभग ७०° होता है। वर्षा यहा सिर्फ गर्मियो में होती है। यहां सर्दी की ऋतु सर्द और शुष्क होती है और गर्मी की ऋतु गर्म और आर्द्र होती है। इस

प्रकार का जलवायु सूडान में पाया जाता है। इसलिए इसे सूडान की जलवायु जैसा प्रदेश कहते हैं। यह जलवायु निम्नलिखित भागों में पाई जाती है। उत्तरी गोलार्द्ध में इस खंड में वैन्जवेला, गिआना, सूडान, और केनिया और दक्षिणी गोलार्द्ध में मध्य ब्राजील, अंगोला, रोडेशिया और टांगानीका सम्मिलित हैं।

(३) मानसून जलवायु का खण्ड—यह जलवायु दक्षिणी पूर्वी एशिया और आस्ट्रेलिया में पाई जाती हैं। यह तापक्रम सारे वर्ष पर्याप्त गर्म होता है और वर्षा ऋतु तथा शुष्क ऋतु बारी-बारी आती है। यहां वर्षा मानसून द्वारा लगभग चार महीने होती है। इस भाग का जलवायु गर्मियों मे गर्म और आर्द्र और शीतकाल में कम सर्द तथा शुष्क होता है। इस जलवायु के निम्न-लिखित प्रदेश हैं। उत्तरी गोलार्द्ध में भारत, पाकिस्तान, लंका का कुछ भाग, ब्रह्मा स्याम, हिन्द-चीन, दक्षिणी चीन और फिलीपाईन द्वीप, दक्षिणी गोलार्द्ध में उत्तरी आस्ट्रेलिया सम्मिलित है।

(४) गर्म मरुस्थली खंड—यह खंड भूमध्यरेखा के दोनों ओर २०° और ३०° के मध्य महाद्वीपों के पश्चिम में स्थित है। इस भाग में गर्म मरुस्थल है। यह खंड अधिक दबाव वाले भागों में हैं इसलिए यहां वायु ऊपर के शीत-खंडों से नीचे के गर्म खंडों में उतरती है जिससे द्रवीभवन क्रिया नही होने पाती, दूसरे छः महीने में यहां व्यापारिक पवनें चलती हैं जो यहा तक आने पर शुष्क हो जाती हैं। इसलिए यहां का जलवायु गर्म तथा शुष्क है। वर्षा यहा कभी-कभी होती है। यहां रात और दिन के तापमान में बहुत अन्तर रहता है। यह जलवायु निम्नलिखित भागो में पाई जाती है। उत्तरी गोलार्द्ध में दक्षिणी कैलेफोर्निया, महामरुस्थल अफ्रीका, अरब, सिन्ध और पश्चिमी राजस्थान सम्मिलित हैं और दक्षिणी गोलार्द्ध मे रोटेकामा, कालाः-हारी, पश्चिमी आस्ट्रेलिया है।

(५) रूमसागरी जलवायु का खंड—यह खंड भूमध्यरेखा के दोनों ओर ३०° और ४५° के मध्य महाद्वीपों के पश्चिम में स्थित है और यह रूमसागर के तटीय प्रदेशों में मिलती है। यह खंड गर्मियों में अधिक दबाव वाले भाग में रहता है जिससे यहां वर्षा नहीं होती है। सर्दियों में यहाँ पर पश्चिमी हवायें चलती हैं जो समुद्र पर से आती हैं जिससे पर्याप्त वर्षा होती है। इस खंड की विशेषता यह है कि वर्षा यहां सर्दियों में ही होती है। शीत ऋतु कम सर्द तथा आर्द्र होती है और गर्मियों मे गर्म तथा शुष्क रहता है। वर्षा

का वार्षिक माध्यम २०″ से ३०″ के लगभग है। यह जलवायु उत्तरी गोलार्द्ध में उत्तरी कैलेफोर्निया, रूमसागर तटीय प्रदेश और दक्षिणी गोलार्द्ध के मध्य चिली, आशा अन्तरीप प्रान्त, दक्षिण-पश्चिमी आस्ट्रेलिया, विक्टोरिया का पश्चिमी भाग और दक्षिण आस्ट्रेलिया का कुछ भाग सम्मिलित हैं।

(६) **स्टैप जैसे जलवायु का खंड**—यह भाग उत्तरी गोलार्द्ध में समद्र के प्रभाव से दूर है। जिससे शीतकाल बड़ा लम्बा तथा कठोर होता है परन्तु गर्मियों की ऋतु छोटी और गर्म होती है। वर्षा २०″ के लगभग है और अधिकतर बसन्त ऋतु तथा गर्मियों के आरम्भ में होती है। सर्दियों में हिम-वृष्टि भी होती है। परन्तु दक्षिण गोलार्द्ध में मैदान तंग और समुद्र का प्रभाव भी पड़ता है। अतः उनका जलवायु सम है यह जलवायु उत्तरी गोलार्द्ध में उत्तरी अमेरिका का प्रेरीज का मैदान और यूरेशिया स्टेप का मैदान और दक्षिणी गोलार्द्ध में दक्षिणी अमेरिका का पम्पाज़ दक्षिण अफ्रीका का वैल्ड सम्मिलित हैं।

(७) **चीन जैसे जलवायु वाला खंड**—यह खंड समशीतोष्ण कटिबन्ध (३०° से ४५°) के पूर्वी भागों में स्थित है। यहाँ ग्रीष्म ऋतु गर्म तथा आर्द्र और शात ऋतु बहुत सर्द होती है। वर्षा का माध्यम ३०″ और ५०″ के बीच में है और वर्षा अधिकतर गर्मियों में होती है। ऐसा जलवायु चीन में पाया जाता है इसलिये इसे चीन वाला जलवायु कहते है। यह जलवायु उत्तर गोलार्द्ध में दक्षिणी पूर्वी यू० एस० ए० तथा उत्तरी और मध्य चीन, दक्षिणी जापान और दक्षिण गोलार्द्ध में दक्षिणी-पूर्वी ब्राजील, यूरोगोय, नैटाल, न्यूसाउथ वेल्ज़ का तटीय भाग सम्मिलित हैं।

(८) **उत्तर-पश्चिमी योरुप जैसा जलवायु**—इस भाग में सारे वर्ष पश्चिमी पवनें चलती हैं और वर्षा सारे वर्ष होती है। परन्तु साईक्लोनों के कारण गर्मियों की अपेक्षा सर्दियों में वर्षा अधिक होती है। गर्मियों का मौसम तापक्रम ६०° F (फारनहाइट) और सर्दियों का ४०° F रहता है। गर्मी की ऋतु ठंडी और सर्दी की ऋतु में बहुत सर्दी पड़ती है। इस भाग की जलवायु ठंडी और आर्द्र है। यह जलवायु उत्तरी गोलार्द्ध में ब्रिटिश कोलम्बिया, उत्तरी पश्चिमी योरुप, और दक्षिणी गोलार्द्ध में दक्षिणी चिली, तस्मानिया, न्यूजीलैंड के दक्षिणी टापू सम्मिलित हैं।

(९) **सेन्ट लारेंस का जलवायु**—यहां गर्मी की ऋतु नीम गर्म होती है और सर्दी में काफी सर्दी पड़ती है। वर्षा यहाँ साल भर होती है परन्तु गर्मियों

में ज्यादा होती है और वर्षा का औसत २०" और ४०" के बीच है। सर्दियों का तापक्रम ३२° F से कम होता है परन्तु गर्मियों का तापक्रम ६५° F होता है। ऐसा जलवायु सेंट लारेंस नदी की घाटी में विशेषतया मिलता है इसलिए इसको सेंट लारेंस का जलवायु कहते हैं।

(१०) **साइबेरिया जैसा जलवायु** - गर्मियों की ऋतु नीम गर्म होती है और तापक्रम ६०°F होता है। यहां सर्दियों की ऋतु सख्त सर्द होती है और साइबेरिया मे तो तापक्रम ०° से भी कम होता है। वर्षा यहां गर्मी में होती है और अनुमानतः २० इंच होती है।

(११) **टुन्ड्रा जैसा जलवायु**—यहाँ साल भर बर्फ जमी रहती है। गर्मियों का तापक्रम ५०° F और सर्दियों का ०° से भी कम होता है। वर्षा १०" से कम होती है और गर्मियों में पश्चिमी पवनों द्वारा होती है। सर्दियों में हिम-वृष्टि होती है। इस भाग का जलवायु सारे वर्ष बहुत सख्त सर्द है। यह जलवायु एशिया, योरुप तथा उत्तरी अमेरिका के उत्तरी भाग में मिलती है।

प्रश्न १५—प्राकृतिक खंडों से क्या अभिप्राय है ? संसार के प्रसिद्ध प्राकृतिक खण्डों के नाम लिखकर उनका संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उत्तर—प्राकृतिक खंड से अभिप्राय संसार के एसे भाग का समूह है जिनका तल, जलवायु, प्राकृतिक वनस्पतियां और जीव-जन्तु एक ही प्रकार के हों।

ससार के प्राकृतिक खण्ड निम्नलिखित हैं—(१) भूमध्यरेखा के जलवायु का खंड, (२) सूडान जैसे जलवायु का खंड, (३) मानसून जलवायु का खड, (४) गर्म मरुस्थली खंड, (५) रूम सागरी जलवायु का खंड, (६) स्टैप जलवायु का खंड, (७) चीन जैसे जलवायु वाला खड, (८) उत्तर-पश्चिमी योरुप जैसे जलवायु का खड (९) सेंटलारेंस के जलवायु का खंड (१०) साइबेरिया जैसा जलवायु खंड, (११) टुन्ड्रा जैसा जलवायु का खंड।

नीचे की पंक्तियों मे उपर्युक्त के विषय में संक्षेप से प्रकाश डाला जाता है—

(१) **भूमध्य रेखा का खंड**—यह खण्ड भूमध्यरेखा से ५° उत्तर ५° दक्षिण में पाया जाता है। इस भाग में अमेजन की घाटी, कांगो, अपरगिनी का तट, प्रायद्वीप मलाया और भारत पूर्वी द्वीप समूह आता है। इसका जलवायु गर्म और आर्द्र है। इस प्रदेश में वर्षा अधिक होने से वन अधिक पाये जाते हैं। इन वनों में महोगनी, रबड़, आबनूस, ब्रैड़फूट और सिनकोना के

वृक्ष अधिक पाये जाते हैं। यह प्रदेश उपज में रबड़, नारियल, कहवा, चाय, गन्ना और गर्म मसालों के लिये प्रसिद्ध है।

यहां के लोगों का धन्धा फल एकत्रित करना और हाथी दांत एकत्रित करना है। इन प्रदेशों के बन्दर, सांप, छिपकली, चिमगादड़ और रंग-बिरंगे पक्षी पाये जाते हैं। सिंहापुर और बटेविया यहाँ के प्रसिद्ध नगर हैं।

(२) **ग्रीष्म ऋतु का वर्षा का खंड**—यह खंड भूमध्य रेखा के दोनों ओर ५° से लेकर उत्तर में कर्क और दक्षिण में मकर रेखा तक पाया जाता है। गिआना, सूडान, दक्षिण एशिया इस खड में आते है। इस प्रदेश में लम्बी घास उगती है. और कहीं-कहीं पर वृक्ष पाये जाते है जिन्हें सावनाज कहते हैं यहां पर गर्मियों और सर्दियों का मौसम शुष्क रहता है। इस प्रदेश में कहवा, गन्ना, रुई कोको, बाजरा और मक्की की खेती की जाती है। बारह सिंहा, जीवरा घोड़ा, भेड़, बकरी पशु इस प्रदेश में पाये जाते हैं और खाल, कहवा, मूंगफली का धन्धा यहां के लोग करते। यहां के लोग कृषि और शिकार भी करते हैं। नरोबी, खरतूम, मम्वासा यहां के प्रसिद्ध नगर है।

(३) **मानसूनी खड**—इस प्रकार की जलवायु दक्षिणी-पूर्वी एशिया और उत्तरी आस्ट्रेलिया मे पायी जाती है। इस भाग में पाकिस्तान, भारत, ब्रह्मा, उत्तरी आस्ट्रेलिया, हिन्द चीन द्वीप समूह, फिलीपाईन द्वीप समूह, जापान और कोरिया आते है। यहां का जलवायु गर्मियों में आर्द्र और सर्दियों में शुष्क रहता है, वर्षा यहां पर ग्रीष्म ऋतु में होती है। यहा आबनूस, चन्दन, बांस, शहतूत, चील, देवदार और सागवान के वृक्ष पाये जाते हैं। यहां गन्ना, मक्का, नील की खेती की जाती है। यहां बन्दर, तोते, चील, हिरण पाये जाते हैं। यहां के लोग गाय-भैंस भेड़-बकरी पालते हैं। आसाम, ब्रह्मा और हिन्द चीन में हाथी पाया जाता है। यहां के लोग सभ्य तथा उनका जीवन खेती पर ही आश्रित है। यहां के प्रसिद्ध नगर मॉडले, शंघाई, हांगकांग और भारत के नगर हैं।

(४) **गर्म मरुस्थल खण्ड**—यह खंड भूमध्यरेखा के दोनों ओर महाद्वीपों पश्चिम में २०° और ३०° के बीच फैला हुआ है। इस प्रदेश में दक्षिणी कैलीफोर्निया, अफ्रीका का मरुस्थल, राजपूताना, सिन्ध, अरब, ऐटेकाना, कालाहारी, पश्चिमी मैक्सिको आते है यहां का जलवायु गर्म और शुष्क है। यहाँ वर्षा कम होती है। यहां पर काँटेदार झाड़ियां, पलाश, कीकर, खजूर पाया जाता है। यहां मक्की और ज्वार की खेती होती है। यहां ऊंट, भेड़, बकरियां पायी

जाती हैं। यहाँ की जनसंख्या वहुत कम। ऊंट यहाँ की मुख्य सवारी है और इसे रेगिस्तान का जहाज कहते हैं। काहिरा, किम्वरले यहाँ के प्रसिद्ध नगर हैं।

(५) **रूम सागर का खंड**—रूमसागर की जलवायु रूमसागर के तटीय प्रदेशों और भूमध्य रेखा के दोनों ओर ३०° और ४५° के मध्य महाद्वीपों के पश्चिम में स्थित है। इस प्रदेश में उत्तर कैलीफोर्निया, रूमसागर के तटीय प्रदेश, मध्य चिली व पश्चिमी आस्ट्रेलिया आते हैं। यहाँ गर्मियों में गर्म और सर्दियों में कम ठण्ड और आर्द्र रहता है। वर्षा यहां शीत ऋतु में होती है। यहां वर्षा की वार्षिक औसत २५" है। इस प्रकार की जलवायु में अंजीर, शहतूत, नीवू, जैतून, सन्तरे की उपज होती है। यहां वकरियाँ, घोड़े और खच्चर पाये जाते हैं। यहाँ पर वहुत विद्वान् पाये जाते हैं। यहां के लोगों का धन्धा गेहूं, फल, रेशम, शराव और ऊन का है। इस प्रदेश के प्रसिद्ध नगर सेनफ्रांसिसिको, रोम, नेपल्स, एथेन्ज, यूरेसलम, केपटाउन, मार्सल्ज हैं।

(६) **स्टैप जलवायु का खंड**—यह भाग उत्तरी गोलार्द्ध में समुद्र के प्रभाव से दूर जिससे यहां शीतकाल वड़ा लम्वा तथा कठोर होता है परन्तु गर्मियों की ऋतु छोटी और गर्म होती है। वर्षा यहां अधिकतर वसन्त और गर्मियों के आरम्भ में होती है। वर्षा का औसत २०" है। सर्दियों में हिमवृष्टि भी होती है। परन्तु दक्षिणी गोलार्द्ध में तंग मैदान और समुद्र का प्रभाव भी पड़ता है। अतः उनका जलवायु सम है। यहाँ घास ही घास पाई जाती है और वह घास भी गर्मियों में झुलस जाती है। यहां वृक्ष भी वहुत कम पाये जाते हैं। यहाँ गेहूं, जौ, कपास और शहतूत की खेती होती है। यहाँ गेहूं, खाल, माँस और मक्खन का व्यापार होता है। यहाँ के लोग निर्दयी, युद्धप्रिय और उच्च कोटि के घुड़सवार होते हैं। इस भाग के वुखारा, समरकन्द, जौहनवर्ग प्रसिद्ध नगर हैं।

(७) **चीन जैसे जलवायु वाला खण्ड**—यह खण्ड समशीतोष्ण कटिवन्ध (३०° से ४०°) के पूर्वी भागों में स्थित हैं। यहाँ ग्रीष्म ऋतु गर्म तथा आर्द्र और शीत ऋतु वहुत सर्द होती है। इस जलवायु वाले खंड में उत्तरी गोलार्द्ध में दक्षिणी-पूर्वी यू० एस० ए०, उत्तरी और मध्य चीन, दक्षिणी जापान और दक्षिणी गोलार्द्ध में दक्षिणी पूर्वी व्राजील, यूरोपीय, नैटाल, न्यूसाउथ वैल्ज का तटीय भाग सम्मिलित हैं। वर्षा का औसत ३०" और ५०" है। ओक, वीच चीड़, अखरोट के वृक्ष यहाँ मिलते हैं। यहां चावल, चाय, गन्ना, मक्की, कपास, तम्वाकू, ज्वार, वाजरा और गेहूं की खेती की जाती है। यहां गाय,

बैल और भेड़-बकरियाँ तथा चीन और जापान में रेशम के कीडे पाले जाते यहां के प्रसिद्ध नगर शंघाई, ओसाका, पीकिंग, सिडनी, डर्बन, मैकबौर्न, वैलिंग्टन है।

(८) उत्तरी-पश्चिमी योरुप जैसा जलवायु—यहाँ वर्षा सारा वर्ष होती है यहां सारा वर्ष पश्चिमी पवनें चलती है परन्तु साईक्लोनों के कारण गर्मियों की अपेक्षा सर्दियों में वर्षा अधिक होती है। गर्मियों का औसत तापक्रम ६०°F और सर्दियों का ४०° F (फारनहाइट) रहता है। गर्मी की ऋतु ठण्डी और सर्दी की ऋतु में बहुत सर्दी पड़ती है। यहाँ की प्राकृतिक उपज चौड़े पत्तों वाला पतझड वृक्ष हैं। यहाँ के प्रसिद्ध वृक्ष ओक, आश, मैपल ऊल्म, बीच और बिरच है! यहां गेहूं, जौ, अलसी, चुकन्दर और आलू की खेती की जाती है। यहां के प्रसिद्ध नगर वैनकुवर, लडन, मेनचैस्टर, हल; वैलाकास्ट और और लिवरपूल हैं।

(९) सेंट लारेंस का जलवायु—यहाँ गर्मी की ऋतु नीम गर्म होती है और सर्दी में काफी सर्दी पड़ती है। वर्षा यहाँ गर्मियों में ज्यादा होती है। वर्षा का औसत २०" और ४०" है और वर्षा यहाँ साल भर होती है। सर्दियों का तापक्रम ३२° F से कम होता है परन्तु गर्मियों में ६५° F फारनहाइट रहता है। यहाँ के प्राकृतिक वृक्ष डेसडूयस और कनीफेरस के प्रकार के हैं।

यहाँ गेहूं, जौ, जई और आलू की खेती की जाती है। यहाँ के लोगों का धन्धा लकड़ी काटना, कृषि करना, खानें खोदना, पशु पालना और डेरी फार्मिंग हैं। यहां के प्रसिद्ध नगर न्यूयार्क, व्लाडीवास्टक, मांट्रीयल और हैली फैक्स है!

(१०) साइबेरिया जैसा जलवायु—गर्मियों की ऋतु नीम गर्म होती है और तापक्रम ७०° F होता है। यहां सर्दियों की ऋतु सख्त सर्द होती है और साइवेरिया में तापक्रम ०° से भी कम रहता है। वर्षा गर्मी में और करीब २०" होती है। यहाँ के प्रसिद्ध वृक्ष पाइन, फिट, स्प्रूप और लार्च हैं। यहां गेहूं, जई, राई, आलू और अलसी की खेती की जाती है। यहां गिलहरी, लोमडी, बीवर और मार्टन जन्तु पाये जाते हैं। यहां के लोगों का धन्धा लकड़ी काटना है। यहां के प्रसिद्ध नगर विनीपैग, मास्को, आरकेन्जल, लैनिनग्राड हैं।

(११) टुण्ड्रा जैसा जलवायु—यहां साल भर बर्फ जमी रहती है। गर्मियों का तापमान ५०° F और सर्दियों का ०° से भी कम होता है। वर्षा

१०" से भी कम होती है और वर्षा गर्मियों में पश्चिमी पवनों द्वारा होती है। सर्दियों में हिमवृष्टि होती है। इस भाग का जलवायु सारे वर्ष बहुत सख्त सर्द है। यहां कोई और लिचन और छोटी-छोटी वेरी वाली झाड़ियां गर्मियों में उग आती है। यहां रेण्डियर, कुत्ता, कैरीबू, ध्रुवी रीछ, वालरस, लोमड़ी आदि जन्तु पाये जाते हैं। यहा के लोगों का धन्धा शिकार करना, मछलियाँ पकड़ना, रेण्डियर पालना है।

प्रश्न १६—स्पष्टतया वर्णन करो कि निम्नलिखित वस्तुओं के लिए कौन सी भौगोलिक स्थितियाँ अनुकूल हैं और वे किन देशों में पैदा होती हैं—

गेहूं, चावल, मक्का, चाय, कहवा, खांड, तम्बाकू, रवड़, अगूर, पटसन, अलसी, रेशम और ऊन।

उत्तर—गेहूं (प्रथमा सं० २०१५-२०१७)—गेहूं को बोते समय शीतल आर्द्र जलवायु और पकते समय गर्मी और खुश्की चाहिए। इसके लिए २०" से लेकर ३०" वर्षा पर्याप्त होती है। तापांश ५५° से लेकर ७०° तक अनुकूल होता है। गेहूं पकने से पहले अगर वर्षा हो जाय तो गेहूं की फसल के लिए अच्छा रहता है। इनके दाने मोटे पड़ जाते हैं। गेहूं समशीतोष्ण कटिवन्ध की उपज है। मैरा भूमि अर्थात् ऐसी मिट्टी हो जिसमें चिकनी और बालू रेत की लगभग वरावर मिलावट हो, इसके लिए अनुकूल है। भारत में ज्यादा गेहूं उत्तर प्रदेश और पंजाव में होता है। वैसे गेहू की खेती मध्यप्रदेश, विहार और वम्बई में भी की जाती है। गेहूं की खेती रूस, चीन, कैनेडा, फ्रांस, अर्जनटाईन, आस्ट्रेलिया, यू० एस० ए०, और पश्चिमी पाकिस्तान में भी की जाती है।

(२) चावल—(प्रथमा स० २०१४, २०१५, २०१७, २०१९)—चावल के लिए समतल मैदानी भूमि की आवश्यकता है। जितनी भूमि अधिक समतल होगी उतनी ही वह चावल के लिए उपयोगी। चावल के लिए नदियों के डेल्टाई मैदान अनुकूल हैं। चावल के लिए चिकनी मिट्टी और उपजाऊ मिट्टी चाहिए। इसके लिए बहुत जल की आवश्यकता होती है। इसकी पनीरी कुछ दिनों तक पानी में डूबी रहनी चाहिए। वर्षा ४०" से ८०" तक इसके लिए पर्याप्त होगी। इसके लिए सस्ती मजदूरी चाहिए। चावल की खेती भारत, चीन, पाकिस्तान, जापान, इण्डोनेशिया, हिन्द-चीन, स्याम, ब्रह्मा और लका मे की जाती है। भारत में चावल की खेती पश्चिमी वंगाल, मद्रास तथा आन्ध्र में की जाती है।

(३) **मक्का**—(प्रथमा सं० २०१५)—यह गर्म समशीतोष्ण कटिबन्ध की उपज है। इसके लिए गर्म आर्द्र जलवायु और चमकीली धूप चाहिए। पाला इसका शत्रु है। वर्षा इसको २५" से लेकर ५०" तक पर्याप्त होगी। इसके लिए समतल मैदान और उपजाऊ मैरा भूमि की आवश्यकता है। इसके लिए औसत तापक्रम ७०° और ८०° अनुकूल है। इसे गेहूं से अधिक गर्मी और पानी चाहिए। सूडान जैसी जलवायु वाला भाग इसकी खेती के लिए उत्तम है। इसकी खेती ब्राजील, यू० एस० ए०, चीन, रोमानिया, अर्जनटाईन, यूगोस्लाविया, भारत, रूस, हंगरी, इटली, मैक्सिको में की जाती है। भारतवर्ष में मक्का अधिकतर यू०पी०, पंजाब, राजस्थान, बिहार, बम्बई में होती है।

(४) **चाय**—(प्रथमा, संवत् २०१९)—चाय एशिया के मानसून खण्ड की पर्वतीय ढालों पर होती है। इसके लिए मिट्टी बड़ी उपजाऊ और धरती ढलवां होनी चाहिए जिससे वर्षा का जल शीघ्रता से वह जाए ताकि इसकी जड़ें नहीं गलें। मिट्टी में लोहे के कणों का होना लाभदायक है। इसके लिये तापक्रम लगभग ६०° से लेकर ८०° तक चाहिए। वर्षा ६०" से अधिक होनी चाहिए। वर्षा का बौछारों में होना आवश्यक है। इसके लिए सस्ती मजदूरी का होना आवश्यक है। क्योंकि मजदूर लोग ही इसकी पत्तियां तोड़ते हैं। चाय की खेती भारत, चीन, लंका, जापान, जावा, पूर्वी पाकिस्तान, नैटाल; ब्रह्मा में की जाती है।

(५) **कहवा**—कहवा की खेती उष्ण कटिबन्ध तक ही सीमित है। कहवा वास्तव में एक प्रकार की झाड़ी के भुने और पिसे हुए बीज होते हैं। इसके लिए तापक्रम ८०" के लगभग चाहिए। इसके लिए वार्षिक वर्षा ७५" से लेकर १२०" तक होनी चाहिये। पानी बहता रहना चाहिए। पाला इसका शत्रु है। इस झाड़ी के लिए १५०० से २५०० फुट की ऊंचाई, गर्म आर्द्र और उपजाऊ भूमि चाहिए। ज्वालामुखी लावा वाली मिट्टी इसके अनुकूल है। सूर्य की तीक्ष्ण किरणें और वेगवान् वायु भी इसके लिए हानिकारक है इसीलिए कहवा के पौधे केलों के पत्तों के साये में बोये जाते हैं। कहवा की खेती ब्राजील कोलम्बिया,-सैंण्ट्रल अमेरिका, मैक्सिको, कांगो, वेंजवेला, अरब, दक्षिणी भारत, लंका में होती है। भारत में कहवा मैसूर, कुर्ग, मद्रास, ट्रावनकोर-कोचीन में होता है।

(६) **खांड**—गन्ना (प्रथमा, सवत् २०१४-१५)—गन्ने के लिए गर्म

आर्द्र जलवायु चाहिए। यह उष्ण और गर्म समशीतोष्ण कटिबन्ध का पौधा है। इसलिए इसको तापक्रम ७५° के लगभग और वर्षा कम से कम ४०" चाहिए। इसके लिए उपजाऊ भूमि चाहिए। समुद्र की समीपता इसके लिए अनुकूल होती है क्योंकि वहां पर इसको लवणयुक्त भूमि और लवण रूपी वायु मिल जाती है जो इसके लिए बहुत लाभदायक हैं। गन्ने की खेती भारत, चीन, क्यूबा, जावा, फिलीपाईन, ब्राजील, नैटाल में की जाती है। भारत में गन्ना उत्तर प्रदेश, बिहार, मद्रास, पश्चिमी बंगाल और पंजाब में होता है।

(७) चुकन्दर—चुकन्दर के लिए शीतल तथा आर्द्र और कोमल जलवायु चाहिये। चूने वाली मिट्टी और खाद की इसे आवश्यकता होती है। यह ठंडे समशीतोष्ण कटिबन्ध का पौधा है। इसके लिए तापक्रम ४०° से लेकर ६०° तक चाहिये और वर्षा २०" से लेकर ४०" तक चाहिए। चुकन्दर और गन्ने से ही खांड बनती है। इसलिए इन दोनों का लिखना आवश्यक है। चुकन्दर की खेती रूस, जर्मनी, फ्रांस, आस्ट्रेलिया, पोलैंड, बैल्जियम, कैनेडा में होती है।

(८) तम्बाकू—यह उष्ण और समशीतोष्ण कटिबन्ध का पौधा है। इसके लिए उपजाऊ मिट्टी चाहिये। चूने वाली और पोटास वाली मिट्टी इसके लिये गुणकारी है। तम्बाकू के लिए नीम गर्म जलवायु चाहिए। पाला इसके लिए हानिकारक है भारत में तम्बाकू यू० पी०, बिहार, मद्रास, बम्बई और पश्चिमी बंगाल में होता है। भारत के अलावा तम्बाकू की खेती चीन, रूस, पाकिस्तान, यू० एस० ए०, क्यूबा, टर्की, मिस्र, यूनान में की जाती है।

(९) रबड़—रबड़ भूमध्य रेखा के खण्ड में उत्पन्न होता है। रबड़ एक प्रकार के वृक्षों का रस होता है जो उसे चीड़कर निकाला जाता है। फिर उसे गर्म करके रबड़ बनाया जाता है। इन वृक्षों के लिए सारे वर्ष बहुत गर्मी तथा निरन्तर वर्षा की आवश्यकता है। इसके लिए औसत तापक्रम ८०° और वार्षिक वर्षा ८०" से लेकर १२०" तक चाहिये। शुष्क ऋतु नहीं होनी चाहिये। इसके लिए उपजाऊ और चिकनी मिट्टी चाहिये और वहां पर पानी नहीं ठहरना चाहिये। इसके लिये सस्ती मजदूरी का होना आवश्यक है। भारत में रबड़ केरल, कोचीन, मद्रास और आसाम में होता है। भारत के अलावा रबड़ मलाया प्रायद्वीप, लंका स्याम, ब्रह्मा, ब्राजील, कांगो की घाटी में होता है।

(१०) अंगूर—अंगूर रूम सागरी जलवायु की विशेष उपज है। अंगूर

के लिए गर्म जलवायु चमकीली धूप और कम वर्षा चाहिये। अधिक वर्षा होने से अंगूर फीका पड़ जाता है। खरिया वाली मिट्टी अपने गर्म स्वभाव के कारण इसकी खेती के लिए बहुत अच्छी है। अंगूर की जड़ें लम्बी होती हैं और वे सुगमता से पानी भूमि में से प्राप्त कर सकती हैं। अंगूर की उपज फ्रांस, इटली, स्पेन, पुर्तगाल, अल्जेरिया, अफगानिस्तान, ईरान में होती है।

(११) **पटसन**—पटसन के लिए हर साल नदियों द्वारा लाई हुई मिट्टी चाहिए क्योंकि यह पौधा भूमि की उपजाऊ शक्ति को शीघ्र ही दुर्बल कर देता है। खाद भी इसके लिए पर्याप्त नहीं होता है। पटसन की खेती के लिए गर्म तथा आर्द्र जलवायु चाहिये। तापक्रम ८०° से ऊपर और वर्षा ६०" से अधिक होनी चाहिये। पटसन से बोरियां बनाई जाती हैं और बोरियां बनाने के लिये यह सब से सस्ती वस्तु है। पटसन की खेती बंगाल में होती है। बंगाल पटसन का घर है। भारत के अलावा पटसन लंका, फार्मोसा, मलाया प्रायद्वीप में होता है।

(१२) **अलसी**—अलसी का पौधा दो भिन्न-भिन्न जातियों का होता है और उनके लिए भिन्न-भिन्न जलवायु चाहिये। एक प्रकार के पौधे से अच्छे बीज मिलते हैं जिनसे तेल निकलता है जो रंग रोगन बनाने के काम आता है। इस पौधे के लिए गर्म आर्द्ध जलवायु चाहिए। दूसरे पौधे से तन्तु मिलते हैं जिनसे कपड़ा बनाया जाता है। यह कपड़ा बहुत मजबूत होता है। इस पौधे के लिए शीतल और आर्द्र जलवायु चाहिए। यह पौधा भूमि को शीघ्र ही दुर्बल बना देता है इसलिए यह पौधा उस भूमि पर कई वर्ष बाद बोया जाता है। पहली प्रकार का पौधा अर्जनटाईन, भारत, दक्षिणी यू० एस० ए० में होता है। दूसरी प्रकार का पौधा पालैंड, बैल्जियम, उत्तरी फ्राँस तथा आयरलैंड और सारे योरुप के शीतल समशीतोष्ण कटिबन्ध के देशों में होता है।

(१३) **रेशम**—शहतूत के वृक्ष गर्म समशीतोष्ण कटिबन्ध में अर्थात् मानसून और रूमसागरी जलवायु में पाए जाते है। इसीलिए रेशम भी यहीं होता है क्योंकि रेशम के कीड़े शहतूत के पत्तों पर पाले जाते हैं जो इन्हें खा-खाकर रेशम बनाते हैं। इसके लिये सस्ती मजदूरी का होना आवश्यक है क्योंकि कीड़ों पत्तों पर पालना और जो चीज वे बनाते हैं उससे रेशम तैयार करने के लिए काफी मजदूरों की आवश्यकता होती है। रेशम उत्पन्न करने वाले देश जापान, चीन, इटली, फ्रांस, ईरान, टर्की, भारत हैं।

(१४) **ऊन**—ऊन उत्पन्न करने वाली भेड़ों के लिये शुष्क समशीतोष्ण

जलवायु और घटिया किस्म की घास की विस्तृत भूमियों की आवश्यकता है। व्यापारिक उद्देश्यों के लिए ऊन भेड़ों से प्राप्त होती है। सबसे बढ़िया ऊन मरीनो भेड़ की होती है। अत्यधिक शीत या गर्मी या नमी ऊन की भेड़ों के लिए अच्छी नहीं होती है। भेड़े प्रायः दक्षिणी गोलार्द्ध के समशीतोष्ण कटिबंध की घास भूमियों में पाई जाती हैं। ऊन की उपज आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, दक्षिणी अफ्रीका, यू० एस० ए०, ब्रिटेन, स्पेन, फ्राँस आदि में होती है।

प्रश्न १७—निम्नलिखित खनिज पदार्थ पृथ्वी के किन-किन भागों में पाये जाते हैं—

कोयला, लोहा, ताँबा, सोना, चांदी, पैट्रोलियम, कलई, मैंगनीज और मिट्टी का तेल ?

उत्तर—(१) **कोयला**—कोयला कारखानों को चलाने की अब भी सबसे बड़ी शक्ति है क्योंकि जहां पर जल विद्युत नहीं जा सकती है, वहाँ पर कारखाने कोयले की सहायता से ही चलाए जाते है। यह भट्टी, इजनों और घरेलू काम में आता है और इससे गैस भी बनाई जाती है। भारत में कोयला रानी गंज और झरिया में पाया जाता है। संसार में कोयला यू० एस० ए०, ग्रेट ब्रिटेन, जर्मनी और पोलैंड में होता है। इसके अलावा कोयला फ्रांस, जापान , बैल्जियम, दक्षिणी अफ्रीका और कैनेडा में भी मिलता है।

(२) **लोहा**—लोहा बड़ी उपयोगी धातु है और यह बहुत काम आता है इससे मशीनरी, रेल. बड़े-बड़े पुल, भवन, जहाज, मोटरें बनती हैं। लोहा अस्त्र शस्त्र बनाने का काम आता है। लोहा हवाई जहाज में काम आता है। लोहा मनुष्य की उन्नति में हर तरह से सहायक सिद्ध हुआ है क्योंकि मनुष्य इसके बिना आगे कहीं बढ़ सकता है। भारत में अधिकतर लोहा बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश और मैसूर में पाया जाता है। संसार में सबसे अधिक लोहा यू० एस० ए०, रूस, ग्रेट ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रांस, स्वीडन में होता है। वैसे लोहा स्पेन और बेल्जियम में भी पाया जाता है।

(३) **ताँबा**—इस धातु के सिक्के और बर्तन बनते है। इससे मूर्ति भी बनाते हैं। ताँबा बिजली में बहुत काम आता है। ताँबे के बिजली के तार बनते हैं! टैलीग्राफ और टैलीफोन के तार भी ताँबे से ही बनते हैं। सबसे अधिक ताँबा यू० एस० ए० में मिलता है। ताँबा चिल्ली, कैनेडा, रोडेशिया बैल्जियम, कांगो, रूस, जापान,स्पेन, जर्मनी, आस्ट्रेलिया में मिलता है। भारत में तावा बिहार में मिलता है।

(४) **पेट्रोलियम**—पेट्रोलियम भी एक उपयोगी तेल है जो बड़े-बड़े कारखानों, जहाजों, हवाई जहाजों और मोटरों में काम आता है। पेट्रोलियम को साफ करने में पैट्रोल, मिट्टी का तेल, डीज़ल तेल, मशीनी तेल, मोम, वैसलीन प्राप्त होती है। ये भिन्न-भिन्न चीजें भिन्न-भिन्न जगह काम आती हैं जिनसे भिन्न-भिन्न काम लिये जाते है। भारत में पैट्रोलियम आसाम में डिग्वोई में पाया जाता है। अभी फिलहाल में पजाव में कांगड़ा में पैट्रोलियम मिला है। अब वहां से पैट्रोलियम निकाला जायेगा। पैट्रोलियम अधिकतर यू० एस० ए०, वैन्जवेला, रोमानिया, अरब, ईरान, ब्रह्मा इंडोनेशिसा में मिलता है।

(५) **सोना**—सोना बहुत कीमती धातु है। इससे गहने बनाये जाते हैं। पहले जमाने में यह सिक्के बनाने के काम आता था। सोना ट्रांसवाल, कैनेडा, यू० एस० ए, रूस और आस्ट्रेलिया में मिलता है। भारत में सोने की खानें कोलार में हैं। ट्राँसवाल में जोहन्सवर्ग नामक स्थान है जहां संसार का आधा सोना निकाला जाता है।

(६) **चांदी**—यह धातु भी चीजें बनाने के काम आती है। आजकल इस के बर्तन बनाये जाते हैं। पहिले जमाने में इसके सिक्के बनाये जाते थे। इसकी खानें मैक्सिको, यू०एस० ए०, कैनेडा, पीरु, बोलविया, जापान, जर्मनी और ब्रह्मा में हैं। संसार की सबसे ज्यादा चांदी मैक्सिको में होती है।

(७) **कलई**—कलई बर्तनों पर करने के काम आती है जिससे खाद्य वस्तुयें विषैली नहीं होती हैं। कलई अधिकतर टीन की चादरें बनाने के लिए प्रयुक्त होती है। इन चादरों से बड़े-बड़े टीन और डिब्बे बनाये जाते है जो सामान भरने के काम आते हैं। कलई की खानें मलाया, प्रायद्वीप में ज्यादा है और यहीं पर संसार की सबसे ज्यादा कलई होती है। वैसे कलई बोलविया, इण्डोनेशिया, स्याम, चीन, ब्रह्मा में भी पाई जाती है।

(८) **मैंगनीज**—यह धातु लोहे के द्वारा इस्पात बनाने में प्रयुक्त होती है। यह लोहा को मजबूत बनाने के काम आता है। आजकल इसकी मांग बहुत बढ़ती जा रही है। यहां पर यह मध्यप्रदेश में भंडारा, छिन्दवाड़ा, जबलपुर और नागपुर तथा मद्रास में विजगापट्टम, बम्बई में पंचमहल आदि स्थानों में पाया जाता है। इसके अतिरिक्त मैंगनीज संसार में ब्राजील, जर्मनी, क्यूबा और गोल्ड कोस्ट में मिलता है।

(९) **मिट्टी का तेल**—यह भी आजकल बहुत उपयोगी पदार्थ है। यह पृथ्वी से निकलता है। इससे गैस बनाई जाती है; जो बड़े-बड़े कारखाने

चलाने के काम आती है। यह ब्रह्मा में बहुत पाया जाता है। भारत में यह अटक और आसाम के लखीमपुर जिले में मिलता है। यह कन्यास, ऐसास, कैनाडा, पीरू, कोलम्बिया, रूस, पोलैंड, फारस, ब्रह्मा, जावा' जापान, न्यूजीलैंड में भी मिलता है।

प्रश्न १८—पर्वतों और नदियों से क्या लाभ हैं ? इनका संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उत्तर—पर्वतों के लाभ—(१) प्राकृतिक सीमा—ये पर्वत दो देशोंके बीच में प्राकृतिक सीमाओं का निर्माण करते है। जैसे हिमालय पर्वत भारत और चीन की सीमाओं का निर्माण करते हैं।

(२) **आक्रमणकारियों से रक्षा**—ये पर्वत देश की रक्षा करते है। भारत के उत्तर पूर्व में हिमालय पर्वत फैला हुआ है जिसे पार करके आना बहुत कठिन है।

(३) **जलवायु पर प्रभाव**—ये पर्वत जलवायु पर भी प्रभाव डालते हैं। जैसे हिमालय पर्वत सर्दियों में भारत को साइवेरिया की ठण्डी हवाओंसे बचाता है। उसी प्रकार यह ग्रीष्म ऋतु में मानसून को रोक कर भारत को वर्षा का लाभ पहुचाता है।

(४) **नदियों का निकास**—बड़े-बड़े पहाड़ों से नदियां निकलतीं हैं जो साल भर बहती हैं जिससे देश को लाभ पहुंचता है।

(५) **लकड़ी का गोदाम**—पर्वतों पर बडे-वड़े वन पाये जाते हैं जिनसे तरह-तरह की लकड़ियां प्राप्त होती हैं ये लकड़िया भवननिर्माण और फर्नीचर एवं ईवन के काम आती है।

(६) **चाय-फल-जड़ी-बूटियां**—इन पर्वतों पर कई जड़ी-बूटियाँ मिलती हैं जो औषधियों में काम आती है। आजकल पर्वतों पर चाय उगती है, क्योंकि पहाड़ों की जलवायु चाय के लिए उत्तम है। पहाड़ों पर फलों के बाग भी मिलते हैं।

(७) **चरागाहें**—इन पर्वतों पर वड़े-वड़े घास के मैदान है जिन पर भेड़-बकरियां आदि चराई जाती है।

(८) **खनिज पदार्थ**—पर्वत खनिजो के भण्डार है। इनके अन्दर सोना, चादी, तांवा, रांग, गन्धक इत्यादि की खाने मिलती है।

(९) **स्वास्थ्यवर्धकस्थान**—इन पर्वतों पर स्वास्थ्यवर्धक जलवायु पाई जाती है। इसलिये पहाड़ों पर हिल स्टेशन बना दिये गये है जहां पर हजारों

आदमी ग्रीष्म ऋतु में जाते है।

(१०) **विद्युत् शक्ति**—पहाड़ों पर से नदियाँ बहते समयकई प्रपात बनाती हैं जिससे विद्युत् शक्ति बनाई जाती है।

(११) **जंगली जानवर**—पर्वतों पर जंगली जानवर पाये जाते हैं जिनका मनुष्य शिकार करते हैं। और उनकी खाल से अपने कमरे आदि को सजाते हैं। ये जंगली जानवर चिड़ियाघर में रखने के काम भी आते हैं।

नदियों के लाभ (१)**सिंचाई**—नदियों का सबसे अधिक प्रयोग सिंचाई के द्वारा ही प्राप्त किया जाता है। नदियों से नहरें निकाली जाती है जिनसे सिंचाई की जाती है।

(२) **सीमा**—ये नदियां भी दो देशों के बीच सीमा का काम करती है।

(३) **आवागमन**—जो नदियां साल भर बहती है, वे आवागमन के साधन के काम आ सकती हैं। क्योंकि इनके अन्दर जहाज चल सकते हैं जिससे व्यापार होता है।

(४) **मछलियां**—साल भर बहने वाली नदियों में मछली पाई जाती हैं जो कई जातियों का आहार हैं। इस प्रकार ये नदियाँ हजारों मनुष्यों को रोज़ का आहार देती हैं।

(५) **मार्ग निर्माण**—नदियों की घाटियों में रेलों, सड़कों और अन्य मार्गों का बनाना भी सुगम होता है।

(६) **उपजाऊ मैदान**—ये नदियाँ अपने साथ जो मिट्टी और कीचड़ बहाकर ले आती हैं वे लाकर मैदानों में बिछा देती है जिससे मैदान उपजाऊ बन जाते हैं। इन मैदानों में उपज बहुत अच्छी होती है।

(७) **विद्युत् शक्ति**—इन नदियों से जल विद्युत् पैदा की जाती है। यह विद्युत् बड़े-बड़े कारखाने चलाने के काम आती है।

(८) **शिल्प की अनुकूलता**—कई नदियों का जल शिल्प में प्रयुक्त होता है। जैसे फ्राँस में रोम नदी का जल रेशम रंगने के लिए और श्रीनगर में झेलम नदी का जल ऊन धोने के काम में बड़ा लाभदायक सिद्ध हुआ है।

(९) **स्वर्ण कण**—कई नदियों के रेत के कणों में सोने के कण भी पाये जाते है।

(१०) **शहरों को पानी**—आजकल बहुत से शहरों को नदियों का पानी पहुंचाया जाता है। नदियों में बड़े-बड़े पम्प डालकर पानी खींच लेते हैं और यह पानी शहर के आदमियों के काम आता है।

प्रश्न १९ – संसार की समुद्री नहरों के नाम लिखो और उनका विवरण दो। (प्रथमा सं० २०१४

उत्तर—संसार में तीन प्रसिद्ध समुद्री नहरें हैं—

(१) स्वेज नहर, (२) पनामा नहर, (३) कील नहर।

(१) स्वेज नहर—इस नहर को सर फांडिग जीलेट्स नामक एक फ्राँसीसी ने बनवाया था। इसके बनने में १० वर्ष (१८६९ से १८७९ तक) लगे थे। यह नहर १०० मील लम्बी, ३०० फुट चौड़ी और ३५ फुट गहरी है। इसके दोनों किनारे रेतीले हैं। इस रेत से बचने के लिये नहर पर बहुत धन व्यय करना पड़ता है। यह नहर स्वेज के स्थल-डमरुमध्य को काट कर बनाई गई है। प्राचीन काल में भी एशिया और योरुप के बीच होने वाला व्यापार इसी स्थलडमरु द्वारा होता था। इस नहर के खुदवाने में १८ लाख पौण्ड खर्च हुए हैं। इस नहर के बनवाने से भारत और इंगलैण्ड की दूरी में ४००० मील का अन्तर पड़ गया है। योरुप के लिये इस नहर का बहुत महत्व है, क्योंकि उनका सारा व्यापार इसी के द्वारा होता है। इस नहर में सभी राष्ट्रों के जहाज आ जा सकते हैं। अब मिस्र की सरकार ने इसका राष्ट्रीयकरण कर लिया है और यह नहर मिस्र और योरुप के बीच विवाद का कारण बनी हुई है।

(२) पनामा नहर (प्रथमा, संवत् २०१९)—अमेरिका के लिए पनामा नहर का उतना ही महत्व है जितना कि अंग्रेजों के लिए स्वेज का है इसको बनाने वाले वही इंजीनियर थे जिन्होंने स्वेज़ नहर बनायी थी। परन्तु वहां का जलवायु मुआफिक नहीं आया और वे सब वहीं पर मृत्यु की गोद मे सो गए। इसके पश्चात् अमेरिका के इंजीनियरों ने इसे सन् १८८२ ई०में बनवाना आरम्भ किया और १४ अगस्त सन् १९१४ को इसका उद्घाटन हुआ। इसके बनवाने में १४ करोड़ डालर खर्च हुए। यह नहर अमेरिका के अधिकार मे है। इसकी लम्बाई अटलांटिक तथा प्रशान्त महासागर के बीच ४$\frac{1}{2}$ मील है। यह नहर ४१ फुट गहरी है। इसकी दूसरी लम्बाई ५० मील है। इसमें से जहाज़ – घन्टे में गुजर जाता है। इसमें एक दिन में ४८ जहाज निकल जाते हैं। यह नहर पहाड़ी प्रदेश से होकर जाती है। चट्टानों को काटकर तथा लाक्स बना कर इन कठिनाइयों को दूर किया गया है। इस नहर के खुल जाने से अनेक मार्गों में परिवर्तन हो गया है। इसका व्यापारिक और राजनैतिक दोनों ही दृष्टियां बहुत महत्व है। इस नहर के खुलने से विविध देशों मे दूरी

कम हो गई है। इसके परिणाम स्वरूप संयुक्त राज्य अमेरिका का व्यापार आस्ट्रेलिया, चीन, जापान और न्यूजीलैंड के साथ बहुत होने लगा है। इससे अमेरिका को राजनैतिक लाभ यह हुआ है कि अब अपने एक ही जहाजी बेड़े से दोनों तटों की रक्षा कर सकता है।

(३) **कील नहर**—यह नहर बाल्टिक और उत्तरी सागर को मिलाती है। यह नहर जर्मनी की सीमा पर है। ऐल्ब नदी से बाल्टिक सागर तक का मार्ग ६०० मील लम्बा है। इस मार्ग से बड़े-बड़े जहाज़ गुज़र सकते हैं। इस मार्ग के खुल जाने से सभी देशों को लाभ पहुंचा है। अब जहाज़ों को डेनमार्क और कोपनहेग का चक्कर नहीं लगाना पड़ता है। यह नहर ६६$\frac{1}{2}$ मील लम्बी, १४४ फुट चौड़ी और ४० फुट गहरी है। इस नहर के खुल जाने से व्यापार को बहुत लाभ पहुंचा है।

प्रश्न २०—निम्नलिखित नगरो का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

(१) लन्दन, (२) न्यूयार्क, (३) लिवरपूल, (४) ग्लासगो, (५) मास्को, (६) डार्विन, (७) पेरिस, (८) नैरोबी।

उत्तर—लन्दन—यह इगलैंड की राजधानी और संसार का सबसे बड़ा नगर तथा सबसे प्रसिद्ध बन्दरगाह है। यह नगर समुद्र से ६५ मील दूर टेम्स नदी के तट पर स्थित है। ज्वार भाटे की सहायता से जहाज़ लन्दन ब्रिज तक चले जाते हैं। संसार के मध्य में स्थित होने के कारण सभी देशों का इससे व्यापार होता है। रेल और सड़कों से मिले होने के कारण इसका व्यापार उन्नति करता हैं यहां पर ६४००० कारखाने हैं। लन्दन का अजायबघर संसार में सबसे बड़ा है। यहां पर सभी देशों के और सब प्रकार के लोग रहते है।

न्यूयार्क—यह संयुक्त राज्य अमेरिका का सबसे बड़ा नगर एवं सबसे प्रसिद्ध बन्दरगाह है। यह अटलांटिक के तट पर स्थित है। यह नगर देश के सभी भीतरी भागों से रेलों द्वारा मिला हुआ है। यहां पर अनेक उद्योग धंधे हैं। इस नगर में १०२ मंजिल की एक इमारत है। यहां पर सूती, ऊनी कपड़े तथा लोहे के कारखाने हैं। इस बन्दरगाह से गेहूं, कोयला व इमारती लकड़ी का व्यापार अधिक होता है। इस बन्दरगाह के द्वारा संसार के सभी देशों के साथ व्यापार होता है।

लिवरपूल—यह इंगलैंड का एक बहुत बड़ा नगर तथा बन्दरगाह है। मर्सी नदी के मुहाने पर इगलैंड के पश्चिमी तट पर स्थित है। यह एक व्यापारिक केन्द्र है। यहाँ पर साबुन, चीनी, रासायनिक पदार्थ आदि के कारखाने

हैं। दूसरे देशों को इस बन्दरगाह से यही माल जाता है।

ग्लासगो—जहाजों के निर्माण का सबसे बड़ा केन्द्र है। यह क्लाइड् नदी पर स्थित है और नदी के तट पर जहाज़ बनाने के सैकड़ों कारखाने हैं। इसके पास ही ऊनी कपड़ा, रंग, दरियां, शीशे, रासायनिक पदार्थ, तेल आदि के कारखाने हैं। इस कारण से इस नगर का महत्व और अधिक हो गया है।

मास्को—यह रूस की राजधानी है। रेलों का जंकशन है। सूती कपड़े के उद्योग के लिए प्रसिद्ध है।

डार्विन—उत्तरी आस्ट्रेलिया की राजधानी है और यहां पर प्रसिद्ध हवाई अड्डा है।

पेरिस—फ्रांस की राजधानी है और यह एक बहुत ही सुन्दर नगर है।

नैरोबी—अफ्रीका में कीनिया कालोनी की राजधानी है और जन्तुओं के आखेट का बड़ा भारी केन्द्र है।

प्रश्न २१—एक उत्तम बन्दरगाह की विशेषताएं बताकर यह लिखो कि कटे-फटे तट से क्या लाभ है ?

अथवा

किसी अच्छे बन्दरगाह के लिए किन-किन बातों की आवश्यकता होती है ? भारत के किन्हीं दो बन्दरगाहों का उदाहरण देकर समझाइये।

(प्रथमा, संवत् २०१७)

उत्तर—एक अच्छे बन्दरगाह के लिए निम्नलिखित बातों की आवश्यकता होती है :—

(१) **बन्दरगाह प्राकृतिक और सुरक्षित हो**——अगर बन्दरगाह में यह गुण न हो तो उसे चौड़ा बनाने में काफी धन खर्च होता है।

(२) **तट पर पानी गहरा हो**—जहाँ तट पर पानी गहरा नहीं होता वहां बड़े-बड़े जहाज़ तट से दूर गहरे पानी में ठहरते हैं। उनका माल उतारने और चढ़ाने में खर्च बहुत अधिक होता है।

(३) **समुद्री तूफानों से सुरक्षित हो**—जिस बन्दरगाह के निकट छोटे-छोटे टापू हों वह समुद्री तूफानों से सुरक्षित रहता है। मद्रास की बन्दरगाह सुरक्षित नहीं, परन्तु बम्बई की बन्दरगाह समीप के छोटे-छोटे टापुओं के कारण सुरक्षित है।

(४) **बन्दरगाह सारे वर्ष खुली रहनी चाहिए**—बन्दरगाह के निकट समुद्र का पानी सर्दी की ऋतु में जमने न पाये, नहीं तो व्यापार में उन्नति का होना

असम्भव है।

(५) **स्थिति**—जिस बन्दरगाह की स्थिति अच्छी नहीं होती वह उन्नति कम करती है। कोलम्बो (लंका) में भिन्न-भिन्न दिशाओं से आकर व्यापारिक मार्ग मिलते हैं और व्यापार में बड़ी उन्नति होती है।

(६) **आवागमन के साधन**—बन्दरगाह भीतरी नगरों के साथ रेलों, सड़कों और व्यापारिक नहरों के द्वारा मिला हुआ हो इससे माल बाहर भेजने या देश के अन्दर भेजने में बहुत सुगमता हो जाती है।

(७) आस-पास के क्षेत्र उपजाऊ हों और जन-संख्या भी घनी हो। यही कारण है कि कलकत्ता भारत की सबसे उत्तम बन्दरगाह है।

(८) **कोयले तथा लोहे का प्रबन्ध हो**—अगर कोयला बन्दरगाह के बहुत समीप हो तो जहाज ईंधन लेने के लिए वहाँ ठहर जाते हैं और कर भी दे जाते हैं।

(९) **जलवायु स्वास्थ्य के अनुकूल हो**—इससे लोग वहां बसने में भय न खाएं।

(१०) **समुद्र से ज्वार भाटा की लहर उठती हो**—ज्वार के समय जल बढ़ जाता है और पानी की गहराई अधिक हो जाती है। इस कारण बड़े-बड़े जहाज़ सुगमता से आ जाते हैं। कलकत्ता की बन्दरगाह की उन्नति का यही एक बड़ा कारण है।

(११) बन्दरगाह विशाल होनी चाहिए और कर हल्के होने चाहिएं नहीं तो जहाज़ बन्दरगाह में आने से कतरायेंगे।

बम्बई

बम्बई एक टापू है किन्तु पुल के रास्ते पश्चिमी तट के मैदान के साथ मिला हुआ है। यह प्राकृतिक और सुरक्षित बन्दरगाह है और भारत का दूसरे नम्बर का घनी जन-संख्या का नगर है। यह बम्बई प्रान्त की राजधानी है। इसे भारत का द्वार कहते हैं। इसके साथ का देश बहुत उपजाऊ है। जिसकी काली मिट्टी में कपास की उपज बहुत होती है। इस कारण बम्बई भारतवर्ष में सूती कपड़े की शिल्प का सबसे बड़ा केन्द्र है। सूती कपड़े के कारखाने बिजली की शक्ति से चलाए जाते हैं। इसमें बड़े-बड़े जहाज दाखिल हो सकते हैं। बम्बई से सबसे अधिक कपास और सूती कपड़े बाहर जाते हैं। इसलिए बम्बई कपास का बन्दरगाह है। इसके अतिरिक्त तेल निकालने के बीज, खालें, ऊन, मैंगनीज़, मूंगफली इत्यादि भी बाहर जाते हैं।

कलकत्ता

यह प्राकृतिक बन्दरगाह है और समुद्र से दूर हुगली नदी के पूर्वी तट पर स्थित है। कलकत्ता भारतवर्ष की सबसे बड़ी तथा महत्वशाली बन्दरगाह हैं। इसके कारण निम्नलिखित हैं :—

(१) इस बन्दरगाह के पीछे गंगा का मैदान, बिहार और उत्तर प्रदेश के उपजाऊ प्रदेश है।

(२) यह भीतरी इलाकों के साथ रेलों तथा सड़कों द्वारा मिला हुआ है।

(३) कोयला, लोहा, मैंगनीज़ इसके समीप पाये जाते है।

(४) हुगली नदी के तट पर बीस मील तक पटसन के कारखाने चले गए हैं। इसके आस-पास भिन्न-भिन्न वस्तुयें जैसे :—कागज़, चमड़ा, लोहे के सामान, दवाइयां, दियासलाई आदि के बड़े-बड़े कारखाने है।

(५) यहां पर चितरन्जन लोकोमोटिव कारखाना स्थापित हो गया है। यह भारत का सबसे बड़ा शिल्पी नगर है और यह संसार भर में जूट(पटसन) के शिल्प का केन्द्र है और जूट की बन्दरगाह है।

(६) यहां से पटसन, लाख, चाय, अफीम, कोयला, लोहा, अबरक, तेल निकालने के बीज और बोरियां बाहर जाती हैं।

कटे-फटे तट से निम्नलिखित लाभ हैं—

(१) यदि तट कटा-फटा होगा, तो वहाँ पर उत्तम तथा सुरक्षित बन्दरगाह बनाया जा सकता है। इससे व्यापार में उन्नति होती है।

(२) वहाँ के लोगों को सामुद्रिक व्यवसायों, जहाज़ चलाने तथा मछली पकड़ने का शौक होता है। इससे देश की जहाज़रानी में उन्नति होती है।

(३) समुद्र के भागों के पृथ्वी के अन्दर घुस जाने के कारण वहाँ की जलवायु समशीतोष्ण हो जाती है और वहां के लोग परिश्रमी बन जाते हैं।

प्रश्न २२—भारतवर्ष को हिमालय पर्वत से क्या लाभ है ?

(प्रथमा परीक्षा, सं० २०१२)

उत्तर—भारतवर्ष को हिमालय पर्वत से निम्नलिखित लाभ हैं—

(१) **प्राकृतिक प्रकोप**—हिमालय पर्वत इतना ऊंचा है कि इसे पार करना दुर्गम कार्य ही नहीं, बल्कि असम्भव ही रहा है। इसलिए भारतवर्ष के उत्तर में यह एक प्रकोट का काम देता है।

(२) **नदियों का विकास**—यह पर्वत वर्ष भर बर्फ से ढका रहता है।

इससे जो गंगा, यमुना, ब्रह्मपुत्र आदि बड़ी बड़ी नदियां निकलती हैं, वे सदा जल से भरी रहती हैं। उनसे प्रत्येक ऋतु में ग्लेशियर का बर्फ पिघल-पिघल कर भरता रहता है। ये नदियां देश को सदा हरा भरा रखती हैं।

(३) **शीतल पवनों की रोक-थाम**—उत्तर एशिया से जो शीत वायु आती हैं, उसे रोककर यह पर्वत भारतवर्ष को अधिक शीत से बचाता है।

(४) **वर्षा में सहायक**—जो मानसून हिन्द महासागर से आती हैं वे इस पर्वत को पार नहीं कर पाती हैं और इससे टकराकर हमारे देश में ही वर्षा कर देती हैं। इसी कारण से गंगा का मैदान बहुत उपजाऊ है।

(५) **वन**—पर्वत पर बहुत वर्षा होती है, इसलिए वहाँ वन बहुत हैं और इन वनों में देवदार, चीड़, पड़तल, कैल आदि के वृक्ष पाये जाते हैं। ये वन बहुत लाभदायक हैं।

(६) **चाय, फल, ऊन**—इस पर्वत के ढलानों पर चाय के बहुत बड़े-बड़े बाग हैं और अनेक फल भी वहां पर उगते है। काश्मीर और कुल्लू के सेव तथा नाशपातियां बहुत प्रसिद्ध हैं। पश्चिमी शुष्क ढलानों पर भेड़-बकरियां पाली जाती हैं। इनकी ऊन से शाल, दुशाले, लोइयां, कम्बल और कालीन बनाए जाते हैं।

(७) **खनिज पदार्थ तथा जड़ी-बूटियां**—सीसा, तांबा, जैसे खनिज पदार्थ तथा अनेक जड़ी-बूटियाँ इस पर्वत पर प्राप्त होती हैं।

(८) **परिश्रमी जातियां**—पर्वत पर रहने वाले व्यक्तियों को कठिन परिश्रम करना पड़ता है, इसलिए वे मजबूत तथा परिश्रमी होते हैं।

(९) **आय का साधन**—इस पर्वत की ऊंची चोटियों तथा विभिन्न सुन्दर तथा मनोरंजक दृश्य को देखने के लिए यहां पर संसार के कोने-कोने से प्रति-वर्ष सहस्रों यात्री आते हैं। इनसे पर्याप्त आय होती हैं।

(१०) **स्वास्थ्य-वर्द्धक स्थान**—हिमालय पर्वत पर शिमला, नैनीताल, मंसूरी, डलहौजी, दार्जिलिंग, कुल्लू की घाटी आदि कई स्वास्थ्यवर्द्धक स्थान हैं

प्रश्न २३—भारतवर्ष की जलवायु पर किन किन भौगोलिक बातों का प्रभाव पड़ता है? भारतवर्ष के जलवायु का संक्षिप्त वर्णन करो।

उत्तर—भारतवर्ष की जलवायु निम्नलिखित तीन बातों पर निर्भर है—

(१) **भूमध्यरेखा से निकटता**—भारतवर्ष ८° उत्तर से ३६° उत्तर अक्षांश के बीच स्थित है। कर्क रेखा भारत के बीच में होकर जाती है। इसका दक्षिणी भाग उष्णकटिबंध के पास है। इस स्थिति के कारण यहां का जल-

वायु गर्म है। उत्तरी पश्चिमी भाग के अतिरिक्त शेष समस्त देश में सर्दी भी कम पड़ती है।

(२) **समुद्र से दूरी**—भारतवर्ष का अधिक भाग समुद्र से दूर है। इसलिए यहां का जलवायु गर्मियों में अपने अक्षांश की अपेक्षा अधिक गर्म है।

(३) **मानसून पवनों का प्रभाव**—मानसून पवनों का भारतवर्ष की जलवायु पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। यहां पर गर्मियों में हिन्दमहासागर से वाष्प से भरी हुई दक्षिण-पश्चिमी मानसून चला करती हैं। इन मानसूनों से देश भर में खूब वर्षा होती है। सर्दियों में यहां पर उत्तर-पूर्वी मानसून चलती हैं। यह शुष्क होती हैं, इसलिए इस मौसम में वर्षा नहीं होती है। परन्तु बंगाल की खाड़ी को पार करने के पश्चात् जब ये मद्रास के प्रदेशों में पहुंचती हैं, तो वहां पर वर्षा करती हैं। यही कारण है कि हमारे देश का जलवायु गर्मियों में गर्म और आर्द्र होता है और सर्दियों में शुष्क और थोड़ा सर्द होता है। भारतवर्ष के अधिकांश भाग का जलवायु इसी प्रकार का है। इसे मानसून प्रकार का जलवायु कहते हैं।

भारतवर्ष का जलवायु—भारतवर्ष का जलवायु मानसून प्रकार का है। परन्तु यह एक बहुत विशाल देश है और इसके भिन्न-भिन्न भागों के तल में अन्तर है। कुछ भाग समुद्र के समीप हैं और कुछ भाग समुद्र से दूर हैं। यही कारण है कि समस्त देश की जलवायु समान नहीं है। जलवायु के अनुसार भारतवर्ष को निम्नलिखित भागों में बांटा जा सकता है—

(१) **हिमालय का पर्वतीय भाग**—यह भाग बहुत ऊंचा है। यहां अधिक वर्षा होने के कारण जलवायु सर्द तथा सीला है।

(२) **उत्तरी मैदान का पूर्वी भाग आसाम**—इसमें पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल तथा आसाम सम्मिलित हैं। यहां सर्दी कम पड़ती है, गर्मी अधिक पड़ती है। वर्षा भी होती है।

(३) **उत्तरी मैदान का उत्तर पश्चिमी भाग**—इसमें पश्चिमी उत्तर प्रदेश तथा पंजाब का प्रदेश है। यहाँ पर सर्दियां सख्त पड़ती हैं। यहां पर कुछ वर्षा भी होती है।

(४) **राजस्थान और कच्छ**—गर्मियों में सख्त गर्मी और सर्दियों में सख्त सर्दी पड़ती है।

(५) **दक्षिणी प्रदेश**—यह प्रदेश उष्ण कटिबन्ध में स्थित है। इसलिए यहां पर गर्मी ही पड़ती है। जलवायु गर्म तथा थोड़ी आर्द्र है। यहां पर

गर्मी तथा सर्दी के तापांश में बहुत थोड़ा अन्तर होता है।

(६) **पश्चिमी तटीय मैदान**—उष्ण कटिबन्ध में होने के कारण जलवायु गर्म है। वर्षा होती है।

प्रश्न २४—भारतवर्ष में सिचाई क्यों आवश्यक है? सिचाई के कौन-कौन साधन कहां-कहां हमारे देश में पाये जाते हैं? (प्रथमा, सं० २०११)

अथवा

भारतवर्ष में सिंचाई के विभिन्न साधन क्या हैं और वे कहां-कहां प्रयोग में लाये जाते हैं और क्यों?

अथवा

"भारतवर्ष में सिंचाई व्यवस्था"—इस विषय पर एक निबन्ध लिखिए।

(प्रथमा, संवत् २०१७)

उत्तर—भारतवर्ष एक कृषि प्रधान देश है। यहां पर ८० प्रतिशत लोगों का जीवन खेती पर निर्भर है। परन्तु यहां पर सब भागों में पर्याप्त वर्षा नहीं होती है, इसलिए खेती को सींचने की आवश्यकता होती है। परन्तु यहां पर सिंचाई के साधन पर्याप्त नहीं हैं। इसलिए सिंचाई साधनों में उन्नति करने की बहुत आवश्यकता है। हमारे देश में सिंचाई के मुख्य साधन निम्न-लिखित हैं—

नहरें—भारतवर्ष में नहरों से बहुत सिंचाई की जाती है। गंगा के मैदान के पश्चिमी भाग में नहरों की संख्या देश भर में सबसे अधिक है। पंजाब, उत्तर प्रदेश तथा बिहार के कुछ भागों में भी नहरों से सिंचाई की जाती है।

कारण—(१) इस मैदान का तल सम है और मिट्टी कोमल है। इसलिए नहरों को खोदने में कोई विशेष कठिनाई नहीं उठानी पड़ती है।

(२) यहां की नदियां बर्फीले पर्वतों से निकलने के कारण वर्ष भर चलती रहती हैं और नहरों में भी वर्ष भर पानी आता रहता है।

(३) वर्षा के अधिक न होने के कारण कुओं का खोदना उपयोगी नहीं है।

(४) इस मैदान का ढलान कम होने के कारण नदियों की गति भी मन्द और नहरों में पानी सरलता से आ जाता है।

(५) भूमि के उपजाऊ होने के कारण नहरों को खोदने का खर्च भी शीघ्र ही पूरा हो जाता है।